श्रीमद्भागवत-रसामृत

(भागवत रहस्य का नया संस्करण)

पूज्यपाद श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज

॥ श्रीरामाय श्रीकृष्णाय च नमः ॥

परम पू० श्रीरामचन्द्रजी डोंगरे महाराज के
हृदय-निर्झर से निसृत

श्रीमद्भागवत-रसामृत

[श्रीमद्भागवत के बारह स्कन्धों की सरल हिन्दी भाषा में व्याख्या]

मूल सम्पादक
कृष्णप्रसाद पटेल एवं 'निमित्त मात्र'
अनुवाद
डॉ० भावना बहन मेहता

प्रसारक
सद्विचार परिवार
मंगलमूर्ति, आश्रम रोड, अहमदाबाद-१

प्रकाशक
राधा प्रकाशन
राधा धाम, विहार घाट, वृन्दावन (मथुरा)
फोन - ०५६५ - २४५५६८५

प्राप्ति स्थान, दिल्ली
राधा प्रेस
२४६५, मेन रोड, कैलाश नगर, दिल्ली-११००३१
फोन - ०११ - २२०८३१०७

अपने आसपास के असहाय लोगों की सहायता करके

श्रीराम की कृपा का प्रसाद प्राप्त कीजिए

- राम नाम रटते-रटते अपने हृदय को करुणा और मैत्री-भाव के अमृत जल से सींचते रहो और अपने आसपास रहने वाले असहाय लोगों की आँखों के आँसू पोंछने के लिए अपना हाथ बढ़ाते रहो।
- राम का नाम रटते-रटते पीड़ितों के हृदय में विराजमान प्यारे राम को प्रसन्न करने का हमेशा प्रयत्न करो और उसकी भक्ति युक्त सेवा द्वारा अमूल्य हार्दिक आशीर्वाद प्राप्त करके अपने जीवन को धन्य बनाते रहो।
- ईमानदारी की कमाई से जीवन-यापन करो और उसका एक अंश किसी के अँधेरे घर में उजाला करने के लिए एक विनम्र प्रयास के रूप में काम में लो।

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशक ● राधा प्रकाशन
प्रकाशन ● बसंत पंचमी
तिथि ● वि० सं० २०६७
संस्करण ● ११०० प्रतियाँ
मुद्रक ● राधा प्रेस,
२४६५ कैलाश नगर, दिल्ली-११००३१
दूरभाष २२०८३१०७

BHAGWAT RASAMRIT

पैकिंग एवं डाकव्यय अलग

न्यौछावर - ११०/ रुपये

Packing & Postage Extra

Price Rs. 110/-

वन्दना

भारत का यह परम सौभाग्य है कि आधुनिक शुकदेवजी की तरह पू॰ रामचन्द्रजी डोंगरे महाराज पूरे देश में मानव सेवा और दीन-दुखियों की सुश्रुषा से जुड़ी प्रवृत्तियों की मदद के लिए बड़े प्रेम से भागवत कथा की गंगा प्रवाहित करते रहे, जिसके परिणामस्वरूप कई प्रकार की सेवा-प्रवृत्तियाँ विकसित हुईं, पल्लवित और पुष्पित हुईं।

सद्विचार परिवार के लिए अहमदाबाद में की गई पू॰ डोंगरेजी कीं भागवत कथा के आधार पर **'श्रीमद्भागवत रसामृत'** नाम ग्रन्थ निर्मित हुआ। महाराजश्री के मुख से कथा-गंगा की जो अस्खलित धारा प्रवाहित हुई, उसका आचमन जनता-जनार्दन कर सकें, इसके लिए गुजराती से हिन्दी में संस्करण प्रकाशित किया है।

यह एक स्मरणीय तथ्य है कि जब इस ग्रन्थ का गुजराती संस्करण प्रकाशित हो रहा था, तब पू॰ महाराजश्री ने उसे समय-समय पर देखकर आवश्यक संशोधन परिवर्तन और परिवर्द्धन किए और कई नई सूचनाएँ प्रदान कीं। उन सबका समावेश उन संस्करणों में किया गया, यह आनन्द का विषय है।

ग्रन्थ के गुजराती संस्करणों को इतना अधिक सम्मान और आदर प्राप्त हुआ कि भारत के हिन्दी भाषी जन समुदाय के लिए उसका हिन्दी अनुवाद भी आवश्यक हो गया। श्री डोंगरेजी महाराज को श्रद्धाञ्जलि रूप में इसे अर्पित कर देश की हिन्दी भाषी जनता के हाथों में देते हुए हम हर्ष का अनुभव कर रहे हैं।

इस अनुवाद कार्य को आर्ट्स कॉलेज गाँधीनगर (गुजरात) की हिन्दी प्राध्यापिका डॉ॰ भावना बहन मैहता ने पूरी निष्ठा और निःस्वार्थ सेवा से किया है, इसके लिए हम उनके हृदय से आभारी हैं।

इस ग्रंथ कों आपके हाथों में देते हुए हम एक विनम्र निवेदन कर रहे हैं कि जो तन्मयता, भक्ति भावना, विनम्रता और एकाग्रता पू॰ महाराजश्री की कथा के समय श्रोताओं ने अनुभव की, वही आप भी इस ग्रंथ के पठन-पाठन के समय अनुभव करें।

यह दिव्य अनुभव आपके सभी परिजनों, इष्ट मित्रों एवं स्नेहियों को प्राप्त हो, इसलिए विभिन्न प्रसंगों पर उन्हें यह ग्रंथ-रत्न भेंट स्वरूप प्रदान करें।

दीन-दु:खियों एवं पीड़ितों में विराजमान परमात्मा की सेवा में आपके जीवन का हर क्षण लगा रहे और इस प्रकार की सेवा-प्रवृत्ति में संलग्न संस्थाओं और व्यक्तियों को आप उदारतापूर्वक सहयोग प्रदान करते रहें, ईश्वर से यही प्रार्थना है।

— प्रकाशक

अनुक्रमणिका

श्रीमद्भागवत–रसामृत

क्र० सं०	विषय	पृ० सं०
	श्रीमद्भागवत माहात्म्य	
१.	सच्चिदानंद स्वरूप परमात्मा	१
२.	प्रेमरस भक्ति	८
३.	भगवत स्वरूप शास्त्र–भागवत	१९
४.	आचार प्रभवो धर्मः	२८
	प्रथम स्कन्धः	
५.	मंगलाचरण-परमात्मा सत्य-स्वरूप	४५
६.	वैष्णवों की निष्काम भक्ति	५४
७.	कलियुग में श्रेय-प्राप्ति का सरल-साधन	६२
८.	प्रेम शास्त्र के निर्माण की प्रेरणा	७३
९.	नारदजी की आत्म-कथा	८२
१०.	अधिकारी वक्ता और श्रोता	९३
११.	कुन्ती जी और भीष्माचार्य की स्तुति	१०७
१२.	भीष्मपितामह को सद्गति का दान	११३
१३.	द्वारकाका उपसंहार और पांडवों का स्वर्गारोहण	१२२
१४.	परीक्षित को शाप और शुकदेवजी का आगमन	१३१
	द्वितीय स्कन्धः	
१५.	जगद्गुरु-परमात्मा	१४२
१६.	अंतकाल, ध्यान और विराट् पुरुष की धारणा	१४९
१७.	कैवल्य मुक्ति और भागवती मुक्ति	१६१
१८.	चतुःश्लोकी भागवत	१६७
	तृतीय स्कन्धः	
१९.	तीर्थयात्रा	१७३
२०.	बिना निमन्त्रण प्रभु पधारे	१८३
२१.	विदुर जी तीर्थ-यात्रा में	१९१
२२.	वराहनारायण का अवतार	२०८
२३.	कपिलदेव नारायण का अवतार	२२५
२४.	कपिल गीता	२३९
	चतुर्थ स्कन्धः	
२५.	हरि और हर-तत्त्व से एक ही हैं	२६०
२६.	ध्रुव-चरित्र	२७६
२७.	मुझे दस हजार कान दीजिये	३०३
२८.	भगवान क्या चाहते हैं ?	३१४
	पंचम् स्कन्धः	
२९.	ज्ञानी परमहंस और भागवत परमहंस	३२३
३०.	भवाटवी में भूला हुआ जीव	३३४
	छठा स्कन्धः	
३१.	भवरोग की औषधि–नाम-जप	३४१
३२.	नारायण कवच	३५३
	सप्तम् स्कन्धः	
३३.	अंगना-अंगना मध्य माधव	३६१
३४.	प्रह्लाद जन्म	३६८
३५.	प्रह्लाद-स्तुति	३८२
३६.	अयं ब्रह्म	३९६
	अष्टम् स्कन्धः	
३७.	गजेन्द्र मोक्ष	४०१
३८.	हरि और हर एक ही हैं	४०४
३९.	भिक्षु नारायण	४१३
४०.	लक्ष्मी से भेंट	४३४

क्रं० सं०	विषय	पृ० सं०
	नवम् स्कन्धः	
४१.	सूर्य वंश राजा अम्बरीश	४३८
४२.	भगवान् रघुनाथजी का प्राकट्य	४४९
४३.	मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम	४५८
४४.	जगत्-माँ श्रीसीताजी	४७३
४५.	भागवत और रामायण—परमात्मा के नाम-स्वरूप	४७५
४६.	जगन्मित्र और जगदीश	४८७
	दशम् स्कन्धः	
४८.	श्रीकृष्ण कथा गंगा	५१०
४९.	प्रभु-प्राकट्य	५१६
५०.	नंद-महोत्सव	५२८
५१.	जोगी-लीला	५३९
५२.	वासना-विनाश	५४५
५३.	मंगला-दर्शन	५५९
५४.	जीवन की गाड़ी को संभालिये	५६४
५५.	नारायण के समान गुण	५६८
५६.	चतुर्भुज-विष्णु को शीश झुकाता हूँ	५७४
५७.	वत्सोंको छोड़ रहे हैं...... असमय में......	५७९
५८.	निष्काम भाव से प्रस्फुटित होती है प्रेम लक्षणा भक्ति	५९१
५९.	प्रेम-परतन्त्र परमात्मा	५९६
६०.	हमारी वाणीः भगवद्-गुणगान करे	६१४
६१.	बंसी का बजवैया	६१८
६२.	ब्रह्म कृष्ण—जगत् कृष्ण	६२६
६३.	गोपाल कृष्ण	६४२
६४.	वेणु गीत	६५०
६५.	लाला का ठाकुरः जागती ज्योति	६६१
६६.	शुद्ध जीव और ईश्वर का मिलन	६७७
६७.	वियोग-लीला	६९२
६८.	उस जन्म को धिक्कार है, जिसमें न प्रभु-आदर भरा	७००
६९.	मथुरा-प्रयाण	७१०
७०.	बाबा! मेरी गायों को सम्हालना	७२३
७१.	गोपिकाभ्यो नमोस्तु	७३२
	दशम् स्कन्धः उत्तरार्ध	
७२.	ब्रह्मविद्यापुरी द्वारका	७३६
७३.	रुक्मिणी विवाह	७४१
७४.	प्रभु का गृहस्थाश्रम	७५२
७५.	शिशुपाल-वध	७६८
७६.	मेरी मित्रता श्रीकृष्ण से जन्म-जन्मातर हो	७७२
७७.	ब्रह्मविद्या	७८६
	एकादश स्कन्धः उत्तरार्ध	
७८.	उपसंहार	७९०
७९.	कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्	७९७
	द्वादश स्कन्धः	
८०.	आश्रयलीला	८०९

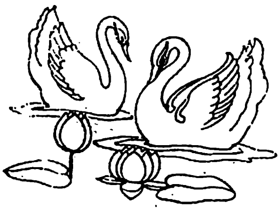

मङ्गलाचरण

करारविंदेन पदारविंदं मुखारविन्दे विनिवेषयन्तम्।
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं बालं मुकुंदं मनसा स्मरामि ॥१॥
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥२॥
विक्रेतु काया किल गोपकन्या मुरारिपादार्पित चित्रवृत्तिः।
दध्यादिकं मोहवशाद्वोचत् गोविन्द दामोदर माधवेति ॥३॥
गृहे-गृहे गोपवधूकदम्बाः सर्वे मिलित्वा समवाय योगे।
पुण्यानि नामानि पठन्ति नित्यं गोविन्द दामोदर माधवेति ॥४॥
सुखं शयाना निलये निजेपि नामानि विष्णोः प्रवदन्ति मर्त्याः।
ते निश्चितं तन्मयतां व्रजन्ति गोविन्द दामोदर माधवेति ॥५॥
जिह्वे सदैव भज सुन्दराणि नामानि कृष्णस्य मनोहराणि।
समस्त भक्तार्ति विनाशनानि गोविन्द दामोदर माधवेति ॥६॥
सुखावसानेत्विदमेवसारं दुःखावसानेत्विदमेव गेयम्।
देहावसाने ह्रदमेव जाप्यं गोविन्द दामोदर माधवेति ॥७॥
श्रीकृष्ण राधावर गोकुलेश गोपाल गोवर्द्धननाथ विष्णो।
जिह्वे पिबस्वामृतमेतदेव गोविन्द दामोदर माधवेति ॥८॥

मधुराष्टक

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम्।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥१॥
वचनं मधुरं चरितं मधुरं वसनं मधुरं वलितं मधुरम्।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥२॥
वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः पाणिर्मधुरः पादौ मधुरौ।
नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥३॥
गीतं मधुरं पीतं मधुरं भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम्।
रूपं मधुरं तिलकं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥४॥
करणं मधुरं तरणं मधुरं हरणं मधुरं स्मरणं मधुरम्।
वमितं मधुरं शमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥५॥
गुंजा मधुरा माला मधुरा यमुना मधुरा वीची मधुरा।
सलिलं मधुरं कमलं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥६॥
गोपी मधुरा लीला मधुरा युक्तं मधुरं भुक्तं मधुरम्।
दृष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥७॥
गोपा मधुरा गावो मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा।
दलितं मधुरं फलितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ॥८॥

ॐ जय जगदीश हरे

ॐ जय जगदीश हरे, प्रभु जय जगदीश हरे।
भक्तजनों के संकट, क्षण में दूर करे॥ ॐ जय.........॥

जो ध्यावे फल पावे, दुःख बिनसे मन का।
सुख सम्पति घर आवे, कष्ट मिटे तन का॥ ॐ जय.........॥

मात-पिता तुम मेरे, शरण गहूँ किसकी।
तुम बिन और न दूजा, आस करूँ जिसकी॥ ॐ जय.........॥

तुम पूरन परमात्मा, तुम अन्तर्यामी।
पारब्रह्म परमेश्वर, तुम सबके स्वामी॥ ॐ जय.........॥

तुम करुणा के सागर तुम पालन कर्त्ता।
मैं मूरख खल-कामी, कृपा करो भर्त्ता॥ ॐ जय.........॥

तुम हो एक अगोचर, सबके प्राणपति।
किस विधि मिलूं गुसांई, तुमको मैं कुमति॥ ॐ जय.........॥

दीनबन्धु दुःख-हर्त्ता, ठाकुर तुम मेरे।
अपने हाथ उठाओ, द्वार पड़ा तेरे॥ ॐ जय.........॥

विषय विकार मिटाओ, पाप हरो देवा।
श्रद्धा-भक्ति बढ़ाओ, सन्तन की सेवा॥ ॐ जय.........॥

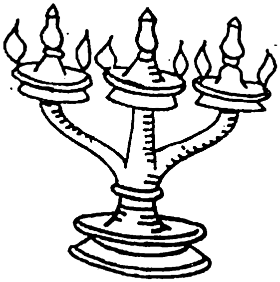

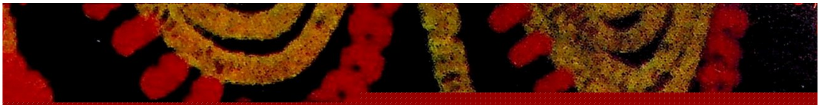

जब से भरतजी राज्य करने लगे, तब से इस खंड का नाम भरत खंड हुआ है। प्राचीन काल में इस खंड को 'अजनाभि खंड' कहते थे। भरतजी का नाम अजनाभ भी था।

भरतजी महाराज महान योगी थे, तपस्वी थे। मन में सूक्ष्म वासना रह जाती है तो भी ज्ञानी और योगी का पतन होता है। वासना भयंकर है। भरतजी वैराग्य को पूर्णत: नहीं पा सके हैं–इससे घर छोड़कर वन में गये तो वन में उनका पतन हुआ। घर में रहकर धीरे-धीरे संयम बढ़ाइए। अपने मन को समझाइए। मन को शुद्ध कीजिये। मन में कोई वासना न रहनी चाहिये। घर छोड़कर जाने पर क्या एकदम प्रभु मिलते हैं? घर में रहकर भी जो सावधान हो कर भक्ति करता है, उसे घर में भी प्रभु मिलते हैं पर जो वन में जाकर लापरवाह या असावधान रहता है, उसे माया बहुत त्रास देती है। घर छोड़ने की जरूरत नहीं है किन्तु मन में से घर को त्यागने की जरूरत है। जिसके मन में घर है, वह जहाँ जाता है। संसार रचा लेता है। जिसके मन में संसार है, वह मन्दिर में जाकर भी चकवी चकवा के जोड़े को देखकर संसार पा लेता है। वह आँख से, मन से पाप करता है। संसार छोड़कर कहाँ जायेंगे? मन से संसार निकाल देने का यत्न कीजिये।

भागवत की कथा सब के लिये है। जिसे घर में रहकर भक्ति करनी है, उसके लिये प्रह्लाद का चरित्र-वर्णन आगे आयेगा। कई लोग ऐसा समझते हैं कि घर में भक्ति नहीं हो सकती है। प्रह्लादजी की भक्ति घर में सफल हुई। प्रह्लादजी ने घर नहीं छोड़ा था। कई लोग ऐसा कहते हैं कि घर में प्रभु सभी तरह से अनुकूलता दें तब भक्ति करनी है। सभी तरहसे अनुकूलता कभी किसी को नहीं मिली है, न मिल सकती है। जीव जब जगत् में आता है, तब पाप-पुण्य दोनों लेकर आता है। पुण्य का फल सुख है, पाप का फल दु:ख है। इस से घर में सुख-दु:ख यानी अनुकूलता प्रतिकूलता तो रहेगी ही।

एक भाई ने कथा में सुना था कि पूर्णिमा के दिन समुद्र-स्नान से सभी तीर्थों के स्नान का फल मिलता है। समुद्र में गंगाजी हैं, जमुनाजी हैं, नर्मदाजी हैं–सभी तीर्थ समुद्र में मिलते हैं। इससे वे भाई समुद्र-तट पर जाकर बैठ गये पर स्नान नहीं करते हैं। एक सज्जन ने पूछा कि आप क्यों स्नान नहीं करते हैं? भाई ने कहा–मुझे स्नान करना है पर समुद्र में बहुत-सी लहरें उठ रही हैं। मैं राह देख रहा हूँ कि समुद्र की तरंगें बंद हो जायँ समुद्र शांत हो जाय, तो समुद्र में जाकर स्नान कर लूँ। समुद्र कभी शांत नहीं होता है। समुद्र कभी शांत होने वाला भी नहीं है। जो समुद्र में स्नान करना चाहता है, उसे समुद्र की तरंगों का त्रास सहना ही पड़ता है।

संसार, समुद्र है। संसार–समुद्र में कष्ट-रूपी तरंगें हर रोज उठती हैं। एक कष्ट दूर होगा तो दूसरा आयेगा। कष्ट आता है और जाता है। जो जगत् में आया है, वह कुछ-न-कुछ दु:ख सहन

करने के लिये ही आया है। पाप लेकर आया है। जीवन में किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं रहेगा, ऐसी आशा नहीं रखनी चाहिये। ऐसा दिन कभी नहीं आयेगा। कैसी भी कष्ट दायक स्थिति हो, भक्ति छोड़िये नहीं। अरे, कष्ट में क्या भोजन को छोड़ते हैं? भोजन तो करना ही पड़ता है। इसी तरह भक्ति करिये। घर में रहकर जो भक्ति करना चाहता है, उसे प्रह्लाद का चरित्र याद रखना है, और जिन्होंने घर छोड़ा है, वे भरतजी का चरित्र याद रखें—कभी न भूले।

भरतजी घर छोड़कर वन में गए। घर में बच्चों को खिला रहे थे, उनकी सूक्ष्म वासना मन में थी। जंगल में जाने पर भी वह मन में जाग्रत हुई। मात्र वासना का विषय बदल गया। वन में जाने के बाद हिरन को खिलाने लगे। वासना ज्ञानी पुरुष का महान योगी का किस तरह पतन करती है। वासना के प्रवेग में ज्ञान बह ज़ाता है। भरतजी अब हिरन के बच्चे को गोद में खिलाते हैं। हिरन में उनका मन फँसा है। शुकदेवजी महाराज उस चरित्र का दिव्य वर्णन करते हैं। भरतजी महाराज नेपाल में गंडकी नदी के तट पर तप करने गये हैं। नेपाल में पशुपतिनाथ विराजमान हैं। यह जीव पशु है। पशु उसे कहते हैं, जिसे बाँध कर रखा जाता है। जीव को काम बाँधकर रखता है। काम जीव को नहीं छोड़ता है। जीव बँधा रहता है। जीव के पति श्रीशिव हैं। इससे उन्हें पशुपतिनाथ कहते हैं। पशुपतिनाथ शिवजी का स्वरूप अति दिव्य है। गंडकी नदी है। गंडकी का दूसरा नाम शालिग्रामी है, क्योंकि गंडकी से शालिग्राम प्रकट होते हैं। भरतजी महाराज वहाँ तप करने गये हैं। पृथ्वी के सार्वभौम राजा थे। सब कुछ छोड़कर वन में गये हैं। साथ में कोई नौकर नहीं रखा है। एकांत में अकेले भक्ति करते हैं। सुबह चार बजे उठकर, स्नान करके कमर तक पानी में खड़े रहकर तेजोमय नारायण का ध्यान करते-करते गायत्री जप करने का उनका नियम है। सूर्यनारायण की भक्ति करने से बुद्धि शुद्ध होती है। बुद्धि के मालिक सूर्य नारायण हैं। सूर्य उदित होने पर भरतजी जल से बाहर आते हैं। सूर्यनारायण की स्तुति करते हैं, शलिग्राम की पूजा करते हैं, जो बहुत भक्ति करते हैं, माया उन्हें बहुत त्रास देती है। माया सोचती है कि यह बहुत भक्ति कर रहा है, मेरे सिर पर पाँव रखकर भगवान् के धाम में जायगा। माया के प्रवाह में बहने वाले को माया त्रास नहीं देती है। जो बहुत क्रोधी है, बहुत कामी है उसे देखकर माया कहती है कि ऐसा व्यक्ति तो मृतवत् ही है। उसे क्या मारना? जो निरन्तर भक्ति कर रहे हैं, ऐसे भरतजी को माया त्रास देने पहुँच गई।

शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं कि राजन्! जो असावधान हैं, वह वन में जाता है तो उसे वन में माया त्रास देती है। जो बहुत सावधान है, वह घर में भक्ति करके भगवान् के दर्शन करता है। माया जीव को असावधान बना देती है। माया ने भरतजी के लिये ऐसा प्रसंग खड़ा कर

दिया। एक बार गर्मी के दिन थे। सूर्य उदित हुआ। भरतजी जल से बाहर आये। उसी समय नौ मास परिपूर्ण किये हुए सगर्भा हरिणी वहाँ जलपान करने आयी। उसे बहुत प्यास लगी थी। वह जैसे ही जलपान करने पहुँची कि एक सिंह ने गर्जना की। जंगल में बाघ-सिंह रहते ही थे। सिंह ने फिर गर्जना की। सिंह की गर्जना सुनकर हरिणी घबरा गई। जिस ओर से आवाज आ रही थी, उस ओर देखने लगी। सिंह ने फिर गर्जना की। गर्जना सुनकर हरिणी को विश्वास हो गया कि मेरी गंध सिंह को आती होगी। वह दौड़कर अभी आयेगा और मुझे मार डालेगा। अब मैं कहाँ जाऊँ? मेरा रक्षण कौन करेगा?

गंडकी नदी का लघु प्रवाह था हरिणी ने सोचा कि जोर से कूदकर सामने के तट तक पहुँच सकूँ तो बचं सकती हूँ। उसने छलाँग लगा दी। प्रसव का समय था। उसके कूदते ही गर्भ का बच्चा पेट से बाहर निकल आया। हरिणी को प्रसव की वेदना हो रही थी। वह तड़पने लगी थी। उसका बच्चा जल में पड़ा था। बच्चे को देखती रही। भरती जी वहाँ खड़े थे। हरिणी भरतजी की ओर देखने लगी। मानो कह रही हो कि महाराज! मेरी सन्तान आपके सुपुर्द है। उसे बड़ा करना। भरतजी को इस बच्चे में श्रीहरि के दर्शन हुए। भगवान् सभी में हैं। भरतजी जगत् को ब्रह्म रूप में देखते थे। सोचने लगे कि यह बच्चा कैसा है? जन्म से माँ से बिछुड़ गया है। इसके पिता का भी पता नहीं है। प्रसव वेदना में हरिणी के तत्काल ही प्राण निकल गये। भरतजी दौड़कर गये और उन्होंने उस हरिण-शावक को उठा लिया। उसे अपने कुटीर में ले आये। भरतजी ने सोचा कि इसका माता-पिता अब मैं ही हूँ। इसका लालन-पालन अब मुझे करना चाहिए। भरतजी हरिण-शावक को बहुत प्यार करने लगे। जंगल में अकेले रहते थे। अब साथी मिल गया। इससे वे बहुत प्रसन्न रहने लगे। उसे गोद में लेते हैं, हृदय से लगाते हैं। दर्शन करने जाते हैं तो इसे साथ लेकर जाते हैं। स्नान करने जाते हैं तो इसे साथ लेकर जाते हैं। जहाँ भी जाते हरिण-शावक को कंधे पर चढ़ा कर ले जाते। बहुत बुरा हुआं। हरिण बालक को पानी से निकाला तो बुरा नहीं है। उसे कुटीर में रखा तो भी बुरा नहीं है, पर उस हरिण बालक को हृदय में रख लिया, यही बुरा हुआ। घर में चाहे जिस किसी को रखिये पर हृदय में तो श्रीकृष्ण को ही रखिये। श्रीकृष्ण के बिना किसी को हृदय में न रखिये। श्रीकृष्ण के बिना आप जिसे मन में रखेंगे, वह रुलायेगा, मरण बिगाड़ेगा। मन में परमात्मा को ही रखिए। भरतजी ने हरिण-शावक को मन में रखा। भरतजी उसका लालन-पालन करने लगे। आज तक संध्या-गायत्री करते हुए भरतजी को तेजोमय नारायण के दर्शन होते, अब गायत्री-जप करते हुए वह हरिण-शावक दिखाई देने लगा। भरतजी श्रीहरि के

लिए घर छोड़कर आये थे किन्तु हरिण में फँस गये। भरतजी का प्रारब्ध हरिण-बालक के स्वरूप में आया था।

नाव पानी में रहती है, पर पानी नाव में भर जाता है तो नाव डूबती है और नाव में बैठे व्यक्ति भी डूबते हैं। नाव में बैठने वाले को बहुत सावधान रहना होता है। संसार समुद्र है। मानव का शरीर नाव है। संसार के विषय जल हैं। विषय स्वरूप जल नाव में आ जाता है तो नाव डूबती है। संसार के विषय मन में आ जाते हैं तो पतन होता है। भरतजी ने हरिण को मंन में रखा। ध्यान में तथा भक्ति में अब विक्षेप होता था। कभी-कभी भीतर से आवाज आती कि क्या इस हरिण के लिये घर छोड़ा है? मैंने तो प्रभु के लिये घर छोड़ा है। मेरा मन हरिण में फँसा है। यह अच्छा नहीं है। पर नहीं, नहीं, मैं तो परोपकार कर रहा हूँ। मैं उसकी उपेक्षा करूँगा तो बाघ-भालू उसे मार डालेंगे। मैं तो इसका रक्षण कर रहा हूँ।

अरे! जो स्वयं काल का ग्रास है, वह अन्य का क्या रक्षण करेगा? रक्षण तो परमात्मा करते हैं, प्रारब्ध के अनुसार। किसी मानव में रक्षण करने की शक्ति होती तो कभी किसी की मृत्यु होती ही नहीं। जीव रक्षण कर ही नहीं सकता है पर भरतजी ने ऐसा मान लिया कि मैं इसका रक्षण कर रहा हूँ। मुझे इसकी देख-भाल करनी चाहिए।

धीरे-धीरे भक्ति के नियम छूटने लगे। भक्ति में विक्षेप आने लगा। अब ठीक से ध्यान नहीं हो रहा है। हरिण-बाल दीख पड़ता है। माया जीव को इस तरह ठगती रहती है। कोई भक्ति करता है, तब माया बिघ्न लाती है और जीव संसार के विषयों में जैसे-जैसे फँसता है, माया ताली बजा-बजाकर हँसती है—अब कैसा फँसा है! बहुत भक्ति कर रहा था न! माया ने भरतजी को फँसा लिया। मन भरतजी को समझा रहा है कि यह तो परोपकार का काम है। जो बहुत परोपकार करता है वह प्रभु को भूलता है। भक्ति मार्ग में अति परोपकार अच्छा नहीं है। बहुत परोपकार से निम्न कोटि के व्यक्तियों का साथ होता है। बहुत परोपकार से अहम् बढ़ जाता है, अभिमान आ जाता है। भरतजी भगवान् को भूल गये। हरिण-बाल में उनका मन फँसा है। हरिण-बाल धीरे-धीरे बड़ा होने लगा।

एक बार ऐसा हुआ कि जंगल में हरिण को हरिणी दीख पड़ी, वह उस हरिणी के पीछे-पीछे चला गया। भरतजी के आश्रम में वापस नहीं आया। संध्या हुई। अंधकार हो गया फिर भी वह क्यों नहीं आया? भरतजी प्रतीक्षा कर रहे थे। अभी तक क्यों नहीं आया? मेरा पुत्र कहाँ गया होगा? क्या रूठ गया होगा? अरे! मैं प्रेम नहीं करता हूँ। उसे सुबह मैंने पानी तक नहीं पिलाया है। वह ही मुझे प्रेम कर रहा था। जब मुझे पीठ में खुजली होती, वह समझ जाता और अपने

कोमल-कोमल सींगों से खुजलाने लगता। तब कैसा आनन्द आता। तब मुझे बहुत सुख मिलता था। भरतजी उसे खोजने निकले। जहाँ कन्दमूल लेने जाते, जहाँ स्नान करने जाते, वहाँ सभी जगह ढूँढने गये, पर वह कहीं नहीं मिला। भरतजी घबरा गये। सोचने लगे कि जंगल में बाघ, सिंह घूमते हैं। किसी बाघ ने उसे पकड़ा होगा? मार डाला होगा? मेरे पुत्र को बाघ ने मार डाला होगा? यह सोचकर भरतजी रोने लगे। महान योगी, महान ज्ञानी पर माया में फँस गये। पुनः सोचते हैं....ना, ना, जो मेरा पुत्र है, प्रभु उसका रक्षण करते हैं। मैं उसे पुत्र मानता हूँ। मैं प्रभु की बहुत भक्ति करता हूँ तो प्रभु क्या मेरे हरिण-बाल की रक्षा नहीं करेंगे? मुझे लगता है कि वह मरा नहीं है, जी रहा है। पर अब बड़ा हो गया है, शादी करने गया होगा। अब आयेगा तो अकेला नहीं, पर बहू को लेकर आयेगा।

भरतजी ने भगवान् के लिये घर छोड़ा था, फिर जंगल में बैठे-बैठे ऐसे विचार करने की क्या जरूरत थी? मानव असावधान होता है। काल नहीं सोचता कि इसका काम अभी बाकी है। भरतजी का प्रारब्ध पूर्ण हुआ था। मरण का समय आ गया। भरतजी को बुखार आया। दर्भ की शय्या पर पड़े थे। शय्या में अन्तिम साँस ले रहे थे।

इधर वह हरिण, हरिणी के पीछे-पीछे गया। आठ-दस दिन वह उसके साथ रहा। वहाँ एक बलवान हिरण आया। उसके साथ उसका हरिणी के लिए युद्ध हुआ। आने वाला हिरण बलवान था। उसने इसको मार भगाया। यह हरिण घायल, रोता हुआ भरतजी के आश्रम में आ पहुँचा। पशु भी प्रेम को समझते हैं। हरिण समझ गया कि मेरे पिता अन्तिम साँस ले रहे हैं। वह हरिण भरतजी के चरणों में आकर बैठ गया। भरतजी ने एक बार आँखें खोलीं और हरिण को देखा। उसको देखते ही भरतजी खुश हो गये।

गंडकी नदी के तट पर जो घटना हुई थी, उसका स्मरण भरतजी को मृत्यु-शय्या पर हुआ। अन्तकाल में, उस हरिणी का स्मरण हुआ। शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं कि उसी हरिणी के पेट में भरतजी गये। मन वासना में जहाँ फँसा होता है, उसके अनुसार अन्तकाल में चित्र दीख पड़ता है और उस चित्र को—यह मैं हूँ—ऐसा जानकर जीवात्मा इस शरीर को छोड़ता है। भरतजी को अन्तकाल में वही हरिणी दिखाई दी, जिसने कूदकर प्राण गंवाये थे। वह हरिणी कालंजर पर्वत पर पुनः हरिणी बनकर घूम रही थी। भरतजी को उस हरिणी का स्मरण हुआ, भरतजी उस हरिणी के पेट में गये।

हमारे सनातन धर्म में इसी से मूर्ति-पूजा को बहुत महत्व दिया गया है। कई ज्ञानी पुरुष ऐसा मानते हैं कि मूर्ति-पूजा गौण है। ऐसा नहीं है। मूर्ति-पूजा करते हुए परमात्मा का स्वरूप मन

में रह जाता है और अन्तकाल में जब परमात्मा के इस दिव्य स्वरूप का चित्र खड़ा होता है तब हमारी जीवन-नैया पार हो जाती है।

परीक्षित राजा शुकदेवजी महाराज से पूछते हैं कि महाराज, बहुत से वर्षों तक भरतजी ने भक्ति की तो क्या वह व्यर्थ हो गई? शुकदेवजी कहते हैं कि राजा! भक्ति कभी व्यर्थ नहीं जाती है। भरतजी से एक भूल हुई, इससे हरिण हुए पर इस पशु-देह में भी उनको ज्ञान था।

एक राजा को मालूम हुआ कि वह अगले जन्म में सुअर होगा। मरण का समय आने पर उसने कहा कि भाल में सफेद टीके वाले सुअर को मार डालना क्योंकि वह मैं होऊँगा। मुझे सुअर के रूप में गन्दगी में लौटना नहीं है। पर जब उसे मारने गये, तब उसने कहा कि मुझे आनन्द है। मारने की जरूरत नहीं है।

जीव जहाँ जाता है, वहाँ सुख समझकर ही रहता है। भरतजी हरिण हुए पर हरिण के स्वरूप में भी उन्हें ज्ञान था। हरिण के समूह को त्याग कर वे गंडकी नदी के तट पर अपनी कुटीर में पहुँच गये। उन्हें सबका स्मरण हुआ। भरतजी रोने लगे हैं। नदी में स्नान करते हैं। वृक्ष के सूखे पत्ते खाते हैं। हिंसा के डर से घास भी नहीं खाते हैं। एकादशी का व्रत करते हैं। सभी के संग से दूर रहते हैं। आधा शरीर जल में, आधा जल के बाहर रख कर रहते हैं। पूर्व जन्म में 'हरये नमः' मन्त्र का जप करते थे। उस मन्त्र का स्मरण होते ही वे पशु-शरीर में भी जप करते हैं—

श्रीकृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणत क्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥

जितने दिन हरिण बालक का संग किया उतने दिन हरिण के रूप में रहे। प्रारब्ध पूर्ण हुआ। हरये नमः बोलते-बोलते शरीर छोड़ दिया। पवित्र ब्राह्मण के घर प्रकट हुए। यह भरतजी का अन्तिम जन्म था। बाल्यावस्था में ही उनको परिपूर्ण ज्ञान था। सोचा कि हरिण के संग से हरिण हुआ। मानव के संग से मानव होऊँगा। अब मुझे जन्म नहीं लेना है। वे माता-पिता का संग छोड़कर कोने में बैठ गये। माता उनको हँसाती है, बुलाती है पर वे कभी हँसते नहीं हैं, न कभी रोते हैं। महाज्ञानी के सभी लक्षण उनमें हैं। यह बालक कैसा है। यह तो पागल है क्या? पिता को भी आश्चर्य होता है। पिता ने जनेऊ दिया। ॐकार प्रणव का मंत्र पढ़ाते हैं। भरतजी कुछ बोलते नहीं हैं। बोलने से स्नेह होता है। पिताजी ॐकार मन्त्र पढ़ा रहे हैं, भरतजी कुछ नहीं बोलते हैं। वे तो निरन्तर परमात्मा के ध्यान में रहते हैं। कोई उनको पहिचान नहीं सकता। सभी उन्हें जड़ समझ रहे हैं। माता-पिता के अवसान के बाद भरतजी गाँव में पागल की तरह घूम रहे हैं। भाई-भाभी उनका तिरस्कार करते हैं। भरतजी ने घर छोड़ दिया। वे बाहर घूमते रहते हैं। मुफ्त में मजदूरी करते हैं।

कोई देता है तो लेते हैं। नहीं देता तो माँगते नहीं हैं। भाइयों ने उन्हें पकड़ कर खेत में रखा, और खेत की रखवाली सौंपी। भरतजी बैठे-बैठे ध्यान कर रहे हैं। गाय-बैल खेत में आते हैं, उन्हें वे रोकते नहीं हैं। भरतजी सभी में भगवान् के दर्शन करते हैं–

खाने वाला राम खिलाने वाला राम।
तो रोकने का मेरा क्या है फिर काम॥

बैठे-बैठे दर्शन करते हैं। भाइयों ने सोचा कि यह तो मूर्ख है। इसे अकल नहीं है। कोई इसे पहिचान नहीं सकता। संसारी जीव परमात्मा का त्याग करके संसार-सुख में फँसता है और ज्ञानी संसार-सुख छोड़कर परमात्मा का ध्यान करते हैं। भरतजी ध्यान में रहते हैं। जंगल में भीलों का राजा रहता था। उसने भद्रकाली माता की मनोती मानी थी कि मेरे घर पुत्र-जन्म होगा तो मैं तुम्हें नरबलि अर्पण करूँगा। उसके घर पुत्र-जन्म हुआ। राजा ने किसी हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति को पकड़कर लाने का आदेश दिया। भील खोजने निकले। भरतजी को कोई चिंता नहीं है। वे शरीर से हृष्ट-पुष्ट हैं। फटी धोती पहनी है। पंचकेश बढ़े हैं। बाहर से पागल से दीख रहे हैं। भीतर से सावधान हैं। भीलों ने कहा कि पकड़ो इसे! पकड़ो-कहा, तो वे खड़े रह गये। वे प्रत्येक को भगवद्भाव से देखते थे। सभी भगवान के स्वरूप हैं। जो मुझे पकड़ने के लिये कहता है, वह भी भगवान् है। ऐसी भरतजी की निष्ठा थी। भरतजी उनके पीछे-पीछे चलते हैं। भीलों के सरदार ने कहा कि यह तो पागल हैं। इसे बाँधने की जरूरत नहीं है। इस पर दृष्टि रखिये। भील इन्हें जंगल में ले आये। उनको मल-मल कर स्नान करवाया। लाल कपड़ा पहिनने के लिए दिया। भाल-पर रक्त चन्दन का तिलक किया। जासुद के पुष्पों की माला पहिनायी। गर्म मिठाई खाने के लिये दी। भरतजी शान्ति से नारायण का स्मरण करते-करते खाने लगे। विचार किया कि मरेगा तो शरीर मरेगा, मैं असावधान नहीं हूँ-सावधान हूँ। परमात्मा के चरणों में जाने वाला हूँ। भीलों को आश्चर्य हुआ। सोचने लगे कि यह कैसा मूर्ख है! दो घण्टे के बाद मरना है, फिर भी शान्ति से खा रहा है! इसे जरा भी डर नहीं है! भोजन पूरा हो गया। भीलों ने मदिरा पान किया। गाते-बजाते भरतजी को महाकाली के मन्दिर में ले गये। भद्रकाली के समक्ष बैठने की आज्ञा की। भरतजी सिर झुकाकर बैठ गये। भाव आया कि यह मेरी माँ है। माता कभी बालक को नहीं मारती है और कदाचित माता कभी मारती है तो प्रेमवश मारती है। माता की मार में भी प्रेम रहता है। भीलों का राजा वहाँ आ पहुँचा। भद्रकाली की पूजा करके कहने लगा कि माता! तुमने मुझे पुत्र दिया, मैं तुम्हें नरबलि अर्पण करता हूँ। यह हृष्ट-पुष्ट है, तुम रुधिर-पान करना। मेरे पुत्र को मार्कण्डेय जैसी आयु वाला बनाना। राजा ने भरतजी को मारने के लिए तलवार उठा ली।

भरतजी को जरा भी डर नहीं है। वे मानते हैं कि मेरे मालिक चतुर्भुज हैं। चारों ओर से रक्षण करते हैं। यह दो हाथों वाला मुझे क्या मारेगा? भरतजी निर्भय थे पर भद्रकाली माता से यह सहन नहीं हुआ। उन्होंने सोचा कि यह मेरा लाड़ला पुत्र है। यह महान् ज्ञानी है। इसने ब्रह्म-दृष्टि स्थिर की है। इन मूर्खों को होश नहीं है।

बालक को जब कोई मारता है तो माता से सहन नहीं होता। भील राजा जैसे ही तलवार उठाकर मारने लपके, कड्-कड्-कड्-कड्-शब्द ध्वनि हुई। मूर्ति को तोड़ कर अष्टभुजा देवी भद्रकाली बाहर आयी। वही तलवार राजा के हाथ से खींचकर राजा का मस्तक काट डाला। उसके मस्तक को गेंद बनाकर माता खेलने लगी। भरतजी को—मैं बच गया—इसका सुख नहीं था तथा यह मर गया—इसका दुःख भी नहीं था। भरतजी पर संसार के सुख-दुःख का असर नहीं होता है। जहाँ सुख नहीं है, जहाँ दुःख नहीं है, जहाँ केवल आनन्द है, भरतजी उस आनन्दमय परमात्मा के स्वरूप में स्थिर हैं।

३०—भवाटवी में भूला हुआ जीव

भद्रकाली माता ने भरतजी का रक्षण किया। भरतजी ने निश्चय कर लिया कि अब घर नहीं जाना है। अब खेत पर भी नहीं जाना है। शरीर का प्रारब्ध पूरा करना है। घूमते-घूमते भरतजी इक्षुमती नदी के तट पर आये। कच्छ प्राँत का राजा रहूगण कपिल महामुनि के आश्रम में तत्त्वज्ञान का उपदेश लेने जा रहा था। चार दास पालकी उठाकर चल रहे थे। इक्षु नदी के तट पर जलपान के लिए तथा विश्राम के लिये वे लोग रुक गये। एक दास भाग गया। अब राजा ने कहा— रास्ते में भटकते किसी व्यक्ति को पकड़ लाइए। सेवकगण खोजने निकले। भरतजी शरीर से हृष्ट-पुष्ट थे। सेवकों ने कहा कि अरे चल! तुझे मजदूरी देंगे। 'चल' कहा इससे भरतजी चलने लगे। कहा कि यह पालकी उठानी है। पूर्व जन्म में अनेक बार पालकी में विराजमान हुए थे, पर पालकी उठाने का प्रसंग पहिली बार आया। भरतजी ने कंधे पर पालकी रख ली। नारायण का स्मरण करके चलने लगे। पांवों तले किसी जीव की हिंसा न हो यह सोच कर भरतजी धरती पर नजर डालकर चल रहे थे। रास्ते में छोटा भी जन्तु दीख पड़ता तो तुरन्त कूद कर आगे बढ़ते। बार-बार कूदते इससे पालकी में बैठे राजा रहूगण को धक्का-सा लगता और पालकी का डंडा उनके सिर पर टकराता था। दो-चार बार उन्होंने सहन किया। पर अन्त में राजा ने सेवकों को धमकाया। ठीक से चलो, हमें त्रास होता है। सेवकों ने कहा कि हम तो ठीक से चलते हैं पर यह जो नया आदमी आया है, पागल-सा दीखता है। कभी दौड़ने लगता है, कभी खड़ा रह जाता है। कभी खड़े-खड़े रोता

है, कभी हँसता है। भरतजी रास्ते में परमात्मा का ध्यान करते हैं। प्रभु को मनाते हैं। विचारते हैं कि अभी मेरे कितने पाप हैं? मैं अपने प्रभु से बिछुड़ गया हूँ। मैं संसार में भटक रहा हूँ। मेरा श्रीकृष्ण से वियोग हुआ। है। भरतजी वियोग में व्याकुल होते तब उनकी आँखों में आँसू आ जाते। श्रीकृष्ण के वियोग में जब रोने लगते तब बालकृष्ण-लाल रास्ते में प्रकट होते और धैर्य देते। कहते कि यह अन्तिम जन्म है। अब तुम मेरे चरणों में आने वाले हो। श्रीकृष्ण के दर्शन होते तब भरतजी को आनन्द होता और वे हँसने लगते।

रहूगण राजा ने भरतजी पर दृष्टि डाली। भरतजी को रास्ते में चीटियां दीख पड़ीं। चींटी में भी श्रीकृष्ण विराजमान हैं, ऐसी ब्रह्म दृष्टि से भरतजी जगत् को देखते थे। चींटियों को देखकर वे कूद पड़े। अब राजा रहूगण से सहन न हुआ। उसने भरतजी का तिरस्कार किया। कहा कि जीवित होकर भी मृत के समान दीख पड़ते हो। वैसे तुम मोटे दीख पड़ते हो, पर तुमने उल्टे होकर पालकी उठायी है। क्या तुम्हें बहुत भार लगता है? ठीक से चलो। क्या तुम मुझे नहीं पहिचानते हो? मैं कच्छ प्रान्त का राजा हूँ। मैं तुम्हें सजा दूँगा। मार जब पड़ेगी तब तेरा पागलपन चला जायेगा।

राजा से भरतजी ने एक पैसा भी नहीं लिया। राजा के घर का कुछ खाया भी नहीं है। रास्ते में जाते हुए को जबर्दस्ती वे लोग पकड़ लाये और उस पर मारने को तैयार हुए। भरतजी का मन शांत है। राजा ने बहुत तिरस्कार किया, पर भरतजी के मन पर कोई प्रभाव नहीं है। वे मान-अपमान को पी गये हैं। मान भी असत्य, अपमान भी असत्य, मेरे श्रीकृष्ण सत्य हैं। कंधे पर पालकी है और चल रहे हैं। सोच रहे हैं कि कोई भी हो मैंने इसे कन्धे पर बैठाया है। मेरा अपमान यह कर रहा है, इसका मुझे दुःख नहीं है। मैं आनन्द हूँ पर कदाचित मेरा अपमान करने वाले को मेरे प्रभु दण्ड देंगे। इस जीव का कल्याण हो, इसकी दुर्गति न हो, इसे मैं प्रभु के धाम में ले जाऊँगा। सत्संग के माहात्म्य को समझाने के लिए आज भरतजी की बोलने की इच्छा हुई।

शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं कि सारा जगत् यह मान रहा है कि यह गूँगा है। भरतजी को कोई पहिचान नहीं पाता। भगवान् की इच्छा हुई कि अपने भक्त के ज्ञान को प्रकट करना है। अपने भरत की कीर्ति मुझे बढ़ानी है। लोग इन्हें पहिचानते नहीं हैं, इसे पागल समझते हैं, इसे गूँगा मानते हैं।

प्रभु की इच्छा थी। प्रभु ने लीला की। आज भरतजी की बोलने की इच्छा हुई। जीवन में एक बार बोले हैं, पर जिस रहूगण के साथ बोले हैं उसका उन्होंने कल्याण किया है। बोलना है तो ऐसा बोलिए कि सुनने वाले को कन्हैया प्रिय लगे। ऐसा बोलिये कि सुनने वाले के पाप जल जायँ। चलते-चलते भरतजी, राजा रहूगण को बोध देते हैं–

त्वयोदितं व्यक्तमविप्रलब्धं भर्तुः स मे स्याद्यदि वीर भारः।
गन्तुर्यदि स्यादधिगम्यमध्वा पीवेति राशौ न विदां प्रवादः॥

(५-१०-९)

राजन्! तुमने कहा कि मैं मोटा हूँ, पर यह तो शरीर का धर्म है, आत्मा का नहीं। मैं शरीर नहीं हूँ, शरीर का साक्षी हूँ। मैं दुबला नहीं हूँ, पुष्ट नहीं हूँ। आपने कहा कि मैं जिन्दा भी मृत सदृश हूँ पर मुझे तो सारा जीवित जगत् मृत लगता है। जो आज है, वह कल नहीं है। यह पालकी जीवित ही मृत सदृश है। पालकी में जो पुतला बैठा है, वह भी जीवित-मृत है। आपने मुझ से कहा कि तुम्हें वजन लग रहा है क्या? अरे! वजन नाम की कोई चीज ही नहीं है। ज्ञानी पुरुष ऐसा मानते हैं कि जगत् असत्य है तो वजन कहाँ से सत्य होगा? मेरे प्रभु सत्य हैं। परमात्मा के सिवाय दूसरा कुछ भी नहीं है। वजन तो मन की कल्पना है। मन मानता है, तब वजन होता है। माता बालक को उठाकर ले जाती है। बालक में माता की ममता होती है। माता को जरा भी वजन नहीं लगता। अपना बालक माता को फूल के समान हलका लगता है परन्तु पड़ोसी का पुत्र पहाड़ जैसा भारी लगता है। पाव भर मिठाई हाथ में है तो वह भारी लगती है पर उसे खा जाने के बाद, पेट में जाने के बाद वजन नहीं लगता है। अगर वजन है तो उसका सम्बन्ध मन के साथ है, आत्मा के साथ नहीं है। मैं मन नहीं हूँ, मन का साक्षी हूँ। मैं चेतन हूँ। मैं परमात्मा का अंश हूँ। राजा मुझ से तुमने कहा कि मैं तुम्हें मारूँगा। इस शरीर से मैं अलग हूँ। शरीर को कोई मारे तो इससे मेरी चाल नहीं सुधरेगी। मैंने ब्रह्म दृष्टि स्थिर की है। बोलते-बोलते भरतजी की ब्रह्म-निष्ठा प्रकट हुई है।

सन्त स्वरूप को छिपाते हैं। भरतजी ने कहा– ना, ना, मैं ब्रह्मनिष्ठ नहीं हूँ, मैं तो पागल हूँ। पग के नीचे किसी जीव की हिंसा न हो जाय, इसलिए कूदता रहता हूँ। जो पाप लेकर आया हूँ, वही भोग रहा हूँ। इससे नया पाप नहीं करता हूँ। जगत् को साक्षी के रूप में देखता हूँ। तुम्हें जो कुछ करना है, वही तुम कर सकते हो। मेरी चाल नहीं सुधर सकती है। अगर कोई पागल को मारता है तो पागल बुद्धिमान नहीं हो सकता। मार खाने से अगर पागल बुद्धिमान हो जाता है तो जगत् में कोई पागल न रहता।

भरतजी ने निर्भय होकर जवाब दिया है। पालकी में बैठा रहूगण सोचता है कि यह क्या बोल रहा है? यह तो वेदांत के सिद्धाँत कह रहा है। यह पागल नहीं है। यह कोई साधारण व्यक्ति नहीं है। यह कौन होगा? पालकी में से देखा कि भरतजी के कंधे पर जनेऊ था। इसे देखकर राजा को विश्वास हो गया था कि यह ब्राह्मण है। वह भी केवल जाति से नहीं। इसने तो ब्रह्म दृष्टि स्थिर की है। ऐसे पवित्र ब्राह्मण के द्वारा मैंने पालकी उठवायी? धिक्कार है मुझे। मैंने बड़ी भूल की।

मेरी दुर्गति होगी। मैं अब नरक में जाऊँगा। राजा पालकी में से कूद पड़ा। भरतजी के चरणों में उसने साष्टाँग वंदन किया। राजा ने भरतजी को बहुत मान दिया। पालकी से गद्दी निकल कर भरतजी को उस पर सादर बैठाया।

राजा ने बहुत अपमान किया तब भरतजी नाराज न हुए, अति मान दिया तो प्रसन्न नहीं हुए। जहाँ मान नहीं है, जहाँ अपमान नहीं है, जहाँ सुख नहीं है, जहाँ दुःख नहीं है, भरतजी ज्ञान की उस अन्तिम भूमिका में–वहाँ आनन्दमय परमात्मा के स्वरूप में स्थिर थे। साधारण व्यक्ति मान मिलने पर वह प्रसन्न होता है। अपमान होने पर जी जलाता है। जिसे मान पसन्द है, उसे अपमान बहुत दुःख देता है। जिसे मान पसन्द नहीं है, वंह अपमान में शान्ति नहीं खोता है। राजा ने पूछा– महाराज! आप कौन हैं? मैंने सुना है कि गुरुदत्तात्रेय भगवान् पागल के रूप में अनेक बार घूमते रहे हैं। आपगुरु दत्तात्रेय हैं? आप शुकदेवजी हैं? जिन कपिल नारायण के आश्रम में मैं तत्त्वज्ञान का उपदेश लेने जा रहा हूँ, वें कपिल भगवान् मेरी परीक्षा लेने, रास्ते में तो नहीं आये हैं? मैरे जैसा कामी विलासी आपको क्या पहिचान सकेगा? मैं अंधा हूँ। जिसकी आँखों में काम है, वह आँखों के होने पर भी अंधा ही है। मैं आपको पहिचान नहीं रहा हूँ। महाराज! आप अपना परिचय दीजिये। मुझे कुछ उपदेश दीजिये। आपने कहा कि वजन जैसी कोई वस्तु नहीं है। आत्मा आनन्द रूप है सूक्ष्म है। यह सत्य है, पर आत्मा का सम्बन्ध बुद्धि के साथ, बुद्धि का मन के साथ, मन का इन्द्रियों के साथ और इन्द्रियों का शरीर के साथ रहता है। इससे अगर शरीर को दुःख होता है तो आत्मा को भी दुःख होना चाहिये। प्रत्यक्ष अग्नि के साथ सम्बन्ध न होने पर भी चावल पकते है। भरतजी कहते हैं कि आत्मा पूर्ण निर्विकार है। चावल विकारी है, जड़ है। मन बन्धन में आता है। आत्मा समझ रहा है कि मैं बन्धन में हूँ। मन विषयों का चिंतन कर रहा है तो वह जीव का शत्रु है, और परमात्मा का चिंतन करता है तो मित्र है। पानी होने पर कीचड़ होती ही है। और पानी से ही कीचड़ धोयी जाती है। कीचड़ का कारण पानी है। कीचड़ धुलने का कारण भी पानी है। बन्धन का कारण मन है और मोक्ष का कारण भी मन है। मन संसार का बहुत चिंतन करता है तो विषयों में फँसता है। विषय मन में घर कर लेते हैं। मुझसे एक बार भूल हुई थी। मैं हरिण का ध्यान करता था इससे मुझे हरिण का अवतार मिला। मैं एक बार पशु हुआ। अब मैं सावधान हूँ। मैं मन पर जरा भी विश्वास नहीं रखता हूँ। मैं निरन्तर भक्ति करता हूँ। नारायण का ध्यान कर रहा हूँ। ज्ञान और भक्ति, वैराग्य से दृढ़ होती है। संसार का कोई भी सुख जब मीठा लगता है, तब भक्ति ज्ञान बह जाते हैं। वैराग्य के बिना ज्ञान और भक्ति में दृढ़ता नहीं आती है।

वैराग्य को जाग्रत करने के लिये भवाटवी की कथा भरतजी राजा रहूगण को सुनाते हैं। संसार जंगल में जीव अनादि काल से भटक रहा है। इसका कोई अंत नहीं है। जीव होश खो बैठा है। वह यह नहीं सोच पाता कि मैं कहाँ था और कहाँ जा रहा हूँ? संसार-जंगल में जीव अनादि काल से भटक रहा है। वहाँ रास्ते में उसे छह ठग मिलते हैं—

यस्यामिमे षण्नरदेव दस्यवः सार्थं विलुम्पन्ति कुनायकं बलात्।
गोमायवो यत्र हरन्ति सार्थिकं प्रमत्तमाविश्य यथोरणं वृकाः।।

(५-१३-२)

ये छह ठग विवेक रूपी धन लूट लेते हैं और गड्ढे में फेंक देते हैं। पंच ज्ञानेन्द्रिय और छठा मन—ये छह ठग हैं। ये आत्मा का विवेक-धन लूट लेते हैं और इसे ठग लेते हैं। यह स्त्री बहुत सुन्दर है, यह पुरुष बहुत सुन्दर है—ऐसा समझाकर सभी ठग संसार में जीव को, फँसाकर रखते हैं। घर के लोग भी ऐसा झूठमूठ का प्रेम दिखाते हैं। सोचते हैं कि यह अधिक सुख भोगे और संसार में ही लीन रहे। वासना के वश में आकर जीव सुख भोगता है, इससे आँख और मन—दोनों अधिक बिगड़ते हैं। जब मन बिगड़ता है, तब यह सब बहुत अच्छा लगता है। सब मालूम होने पर भी मन, वासना में फँस जाता है। वासना के बीज जलते नहीं हैं। मानव का मन वासना का खेत है। खेत में पड़े बीज जलते नहीं हैं। पुनः-पुनः उग आते हैं। मन के भीतर कितने ही वासना के बीज पड़े हुए हैं। राजन्! तुम्हें मालूम नहीं है कि साधारण ज्ञान और भक्ति से वासना के ये बीज जलते नहीं हैं। दूसरे जन्म में फिर उग आते हैं। जीव कामान्ध और मोहान्ध बनता है। इस जंजाल का कोई अन्त नहीं है तीव्र भक्ति से, ज्ञान-निष्ठा से वासना के बीज जलते हैं।

साधारण भक्ति से वासना का बीज जलता नहीं है। जीव जन्म-मरण के त्रास से मुक्त नहीं होता है। संसार-जंगल में जीव भटकता है। कभी वह गंधर्वनगर में जाता है। वहाँ उसे सुख का आभास होता है, मजा आता है, पर गंधर्वनगर का सुख सदैव नहीं रहता है, वह क्षणिक होता है। अनुकूल गृहस्थाश्रम, गंधर्वनगर है। पैसे हैं, बंगला है, सुन्दर स्त्री है, और वहाँ ऐसा सोचता है कि मैं बहुत सुख भोग रहा हूँ, मैं बहुत सुखी हूँ। भोगी रोगी बनता है। गंधर्वनगर का सुख क्षणिक है। जब शरीर बिगड़ता है तब बुद्धि आती है। मेरी मति बहुत भ्रष्ट हो गई थी। माया ने मुझे ठग लिया है। मैंने लौकिक सुख में बहुत पाप किये थे। मैं संसार में फँसा था। मैं सोच रहा था कि मैं बहुत सुखी हूँ। मेरी कल्पना तो गलत थी। संसास्वन में जीव को कभी दावाग्नि जलाने आती है। लोग झूंठी निंदा करते हैं। तिरस्कार करते हैं तो उसे बहुत दुःख होता है। वही तो दावाग्नि है। हाथ में

पैसा भी न हो, वह स्थिति भी दावाग्नि है। पैसे के लिए जीव वैर-वैमनस्य करते हैं, क्रोध करते है। हिंसा करते हैं और पाप करते हैं।

संसार-जंगल में जीव भटकता है, तब कभी उसे हंस मिलते हैं। परमहंस, विरक्त साधु, संन्यासी, महात्मा, भजनानंदी संत ही हंस हैं। संतों का सत्संग हंसों का मिलन है पर उसे हंस भाते नहीं हैं। सुबह चार बजे उठकर ध्यान करना, सूर्य के उदय होने से पहले स्नान करना, संध्या करना, पूजा करना, गायत्री-जाप करना, सादा भोजन करना आदि नियम हंसों के समूह के होते हैं, जो उसे पसंद नहीं आते हैं। वह जीव, हंसों के टोले को छोड़कर बंदर की टोली में शामिल होता है। विलासी का संग, बंदर की टोली का संग है। मन चाहे तब उठना, मन चाहे उसके हाथ का खाना, आचार नहीं और विचार भी नहीं। वहाँ स्वेच्छाचार है और दुराचार भी है।

अनादिकाल से जीव संसार-जंगल में इस तरह भटक रहा है। उसके भटकने का अन्त नहीं है। अन्त तब आता है, जब पाप छूटते हैं। पापों से छूटने की इच्छा है तो पवित्र भावना रखिये। शुभेच्छा है तो पाप छूटते हैं। पवित्र और अपवित्र—सभी प्रकार की इच्छा-वासना छोड़कर परमात्मा का चिन्तन करने पर परमात्मा के साथ प्रेम करने पर इस संसार जंगल से जीव मुक्त होते हैं—

यो दुस्त्यजान् क्षितिसुतस्वजनार्थदारान् प्रार्थ्यां श्रियं सुरवरैः सदयाबलोकाम्।
नैच्छन्नृपस्तदुचितं महतां मधुद्विट् सेवानुरक्तमनसामभवोऽपि फल्गुः॥

(५-१४-४४)

राजा, अनादि काल से तुम भटक रहे हो। अनेक बार तुम राजा बने, अनेक बार रानी बने, अभी तुम्हें संसार-सुख से घृणा नहीं होती? यह सब तुम कब तक करोगे? राजा को भरत जी ने ऐसा सुन्दर बोध दिया है। राजा के भीतर की आँखें खुल गयी हैं। राजा सावधान हुए हैं। राजा को अब सुवर्ण की पालकी और मिट्टी एक समान दीख पड़ती है। नौकरों से उन्होंने कहा—यह सोने की पालकी ले जाओ मुझे रास्ते में सद्गुरु मिले हैं। मुझे अब घर नहीं आना है। भरतजी का सत्संग हुआ। भरतजी ने दीक्षा दी। ध्यानयोग की विधि सिखायी आदिनारायण परमात्मा का ध्यान करते-करते रहूगण कृतार्थ हुए। भरतजी परमात्मा का ध्यान करते-करते भगवान् के चरणों में लीन हुए।

एक अध्याय में, भरतजी के वंश का वर्णन किया गया है। बाद में भूगोल-खगोल का वर्णन है। जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाकद्वीप, शाल्मलीद्वीप, कैंचद्वीप, कुशद्वीप, पुष्करद्वीप—अनेक द्वीपों का वर्णन है। उन द्वीपों में अनेक नदियां हैं, पर्वत हैं, उनका भी वर्णन है। जम्बूद्वीप में नौ खंड हैं— उत्तर, इलावृत, दक्षिण इलावृत, किम्पुरुष, हरिवर्ष, कुरुवर्ष, भद्राश्व, केनुमाल, हिरण्मय और

भारत अर्थात् भरतखंड। एक-एक खंड में परमात्मा के स्वरूप अनन्य भक्तों के साथ विराजमान हैं। भरतखंड के मालिक नर-नारायण स्वामी हैं। उनकी सेवा नारदजी करते हैं।

भरतखंड की महत्ता समझायी गयी है। ग्रहों की नक्षत्रों की गति, राशि गति– दोनों प्रकारों को समझाया है। पृथ्वी के नीचे अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, और पाताल–ये सप्त पाताल हैं, इनकी कथा कही गई है। समाप्ति के अंतिम अध्याय में नरकों का वर्णन है। जितने पाप हैं, उतने नरक हैं। यमदूत पापी जीव को वहाँ ले जाते हैं और नरक का दुःख भोगने के लिये शरीर देते हैं। जीव वहाँ अपने किये पापों का फ़ल भोगता है।

भूद्वीपवर्षसरिदद्रिनभः समुद्र पातालदिङ्‌ नरकभागणलोकसंस्था।
गीता मया तव नृपाद्भुतमीश्वरस्य स्थूलं वपुः सकलजीवनिकायधाम॥

(५-२६-४०)

इति पंचमः स्कंधः समाप्तः

हरि ॐ तत्सत्

श्रीगणेशाय नमः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवत-रसामृत

षष्ठः स्कन्धः

३१- भवरोग की औषधि-नाम-जप

न तथा ह्यघवान् राजन् पूयेत तप आदिभिः।
यथा कृष्णार्पितप्राणस्तत्पूरुषनिषेवया॥

(६-१-१६)

परमात्मा श्रीकृष्ण जब अतिशय कृपा करते हैं, तब ही प्रभु के नाम में प्रीति होती है। प्रभु के नाम में प्रीति नहीं होती, तब तक पाप नहीं छूटता है। परमात्मा के नाम में प्रीति करने और परमात्मा के नाम के जप करने पर ही पाप छूटता है। पुण्य करना सरल है, पाप छोड़ना कठिन है। प्रायः सभी पाप करते हैं। पढ़ा-लिखा व्यक्ति भी पाप करता है, अनपढ़ भी पाप करता है, गरीब भी पाप करता है, श्रीमान् भी पाप करता है। मानव पाप छोड़ नहीं पाता है। और तो क्या कहूँ? भगवान् के दर्शन करने पर भी व्यक्ति पाप छोड़ नहीं सकता। रावण को रामचन्द्रजी के दर्शन हुए फिर भी रावण की बुद्धि सुधर नहीं सकी। वह रामजी के साथ युद्ध करने को तैयार हो गया। योग्य तो यह था कि रावण रामजी की शरण आ जाए, रामजी को वंदन करे। परन्तु रावण की बुद्धि राम-दर्शन के बाद भी न सुधर सकी। दुर्योधन को द्वारिकानाथ के दर्शन हुए थे। द्वारिकानाथ दुर्योधन को समझाने गये थे, उसके साथ मित्रता करने गये थे, पर दुर्योधन न सुधर सका। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि कई जीव भगवान् के दर्शन पाने पर भी सुधरते नहीं हैं।

रावण और दुर्योधन प्रभु के नाम के जप करते तो सुधर सकते थे। रावण और दुर्योधन तो मर गये पर इस कलियुग में उनके वंश बढ़ गये हैं। रावण के क्या दो-चार सींग थे? ब्राह्मण था वह, पर गणना राक्षसों में होती थी उसकी रावण-पढ़ा-लिखा था, ब्राह्मण था, पर उसकी आँख में काम था। जगत् के स्त्री-पुरुषों को वह काम-भाव से देखता था। इससे उसका जीवन नष्ट हुआ, उसका पतन हुआ।

सूतजी सावधान करते हैं कि आँखों में काम-भाव जो रखता है, वह रावण है। जगत् में किसी स्त्री को, किसी पुरुष को काम-भाव से न देखिये। आँखों में काम न आने पावे, इसका ध्यान रखिये। सभी को निष्काम भाव से-भगवद्-भाव से देखिए।

दुर्योधन मूर्ख न था, वह पढ़ा-लिखा था, पर उसकी नीयत बिगड़ गयी। वह जानता था कि आधा राज्य पांडवों का है, फिर भी वह देना नहीं चाहता था। परायी संपत्ति जो लेना चाहता है, वह दुर्योधन जैसा है। दुर्योधन कहता है कि मैं धर्म जानता हूँ पर धर्मानुकूल पवित्र जीवन जीने की मेरी इच्छा नहीं हो रही है। मैं अधर्म जानता हूँ पर पाप छोड़ने की मेरी इच्छा नहीं हो रही है। मुझे पाप करने में आनंद आता है। मेरे भीतर कोई देव बैठे हैं, जो यह सब कर रहे हैं। पाप के संस्कार पाप करवाते हैं, कोई देव पाप नहीं करवाते हैं। अनेक जन्मों के पाप के संस्कार बुद्धि में दृढ़ हुए हैं। पाप के ये संस्कार जागते हैं, तब बुद्धिमान भी मूर्ख बन जाते हैं। उनका ज्ञान नहीं टिकता है और वे पाप कर बैठते हैं। जिसे पाप करने में सुख का भाव होता है, वह दुर्योधन जैसा है।

षष्ठ स्कंध के प्रारंभ में परीक्षित राजा ने प्रश्न पूछा कि महाराज नरक की कथा सुनने के बाद मुझे डर लगने लगा है क्योंकि जाने-अनजाने जीव पाप करता है। कभी नरक में जाने का प्रसंग न आये, ऐसा उपाय बतलाइये।

शुकदेवजी महाराज राजा को समझाते हैं कि जिस दिन पाप हो जायें, उस दिन रात्रि में सोने से पहिले प्रभु को वंदन करके पाप कबूल कीजिए पाप करना साधारण अपराध है पर पाप को स्वीकार न करना बहुत बड़ा अपराध है। पाप स्वीकार न करने वाले को बहुत बड़ी सजा होती है। पाप को स्वीकार करना चाहिए। प्रत्येक पाप के लिये शास्त्रों में नियत प्रायश्चित है। विधिपूर्वक प्रायश्चित कीजिए। चोरी, व्यभिचार महापाप है। महापाप के प्रायश्चित के लिये गायमाता को जौ खिलाइये, जब वही जौ गोबर में निकलें तब उन्हें निकालकर उबालकर खाना चाहिये। धीरे-धीरे खाने के ग्रास कम करते जाइये। छह मास जप के साथ ऐसा तप करने पर प्रायश्चित होता है। प्रायश्चित करने से पाप का विनाश होता है राजा ने प्रश्न पूछा कि प्रायश्चित करने से पाप का विनाश होता है पर पाप करने की इच्छा तो मन में रह जाती है। प्रायश्चित से पाप की वासना का विनाश नहीं होता है। एक बार पाप हो गया, उसका प्रायश्चित किया। पुनः पाप करने की इच्छा होती है। ऐसा उपाय बताइये कि पाप करने की कभी इच्छा ही न हो। शुकदेवजी महाराज कहते हैं कि राजा! प्रभुनाम के जप करने वाले का ज्ञान टिकता है। जो ज्ञान को टिका सकता है, उसमें अज्ञान नहीं आता है। अज्ञान नहीं आता है तो वासना भी नहीं जागती है और वासना नहीं जागती तो पाप नहीं होता है। पाप का मूल है वासना। वासना का मूल है अज्ञान। अज्ञान का नाश ज्ञान

से होता है। ज्ञान को टिकाने के लिये परमात्मा के नाम से प्रेम करिये। परमात्मा के नाम से जो निरंतर प्रेम करता है, उसका ज्ञान टिकता है।

परमात्मा का निर्गुण-निराकार अथवा सगुण-साकार स्वरूप नहीं दिखाई देता है। निर्गुण-निराकार ईश्वर आँखों से नहीं दीख पड़ते हैं, बुद्धि से अनुभूत होते हैं। सगुण-साकार परमात्मा दीख पड़ते हैं पर तेजोमय होने के कारण उन्हें देखने की हमारी शक्ति नहीं है। परमात्मा का नाम स्वरूप दीख पड़ता है। सर्वव्यापक परमात्मा को वैष्णव नाम से प्रकट करते हैं। वैष्णव नाम का जहाँ-प्रेम भाव से कीर्तन करते हैं वहाँ कन्हैया जाता है। कन्हैया आता है पर चोरी-चोरी आता है। एक वैष्णव ने लाला से पूछा कि कई लोग आपके दर्शन की कामना करते हैं तो आप अपना स्वरूप क्यों छिपाते हैं? आप स्वरूप प्रकट कीजिए। लाला ने कहा कि मैं बहुत सुन्दर हूँ, इससे स्वरूप छिपाता हूँ। सोचता हूँ कि मुझे किसी की नजर न लग जाए! कन्हैया बहुत सुन्दर है। मानव आँख से पाप करता है। मानव की आँख बिगड़ती है। परमात्मा को भी नजर लग जाती है।

परमात्मा ने जगत् में अपना स्वरूप छिपाया है पर नाम प्रकट रखा है। परमात्मा का स्वरूप नहीं दीख पड़ता पर प्रभु का नाम दिखाई देता है। कदाचित् किसी को प्रभु का स्वरूप दीख पड़े पर वह प्रभु को पकड़ नहीं सकता। रूप हाथ में नहीं आता है। आप नाम को पकड़ सकते हैं। नाम छूटता नहीं है। कुछ भी हो, परमात्मा के नाम का जप करने वाले के साथ परमात्मा रहते हैं। वे उसे पाप करने से रोकते हैं। भगवान् से भी भगवान् के नाम में अधिक शक्ति है।

रामायण में वर्णन आता है कि राम-नाम से पत्थर तैर गये थे। पत्थर पर 'श्रीराम' तीन अक्षर लिखकर पत्थर उलटा कर दिया और पत्थर श्रीराम के नाम के आधार से तैर गया। रामजी के मन में विचार आया कि मेरे नाम से पत्थर तैर गये तो मेरे द्वारा फेंका गया पत्थर क्या नहीं तैर सकता? समुद्र-तट पर, जहाँ कोई नहीं होगा वहाँ जाकर परीक्षा करनी चाहिये। अगर मेरे फेंकने से पत्थर तैर जायेगा तो कहूँगा कि लिखने की मेहनत न कीजिए। मैं जिस पत्थर को स्पर्श करूँगा, वह तैरेगा। रामचन्द्रजी अकेले दूर समुद्र-तट पर पहुँचे। पीछे कोई नहीं है, यह देखा, परखा और फिर श्रीरामचन्द्रजी ने पत्थर उठाया।

श्रीहनुमानजी का एक नियम था। जब कोई भी कार्य करते श्रीरामचरण में नजर रखकर करते। आप भी ऐसी आदत डालिये। जिस देव की आप प्रेम से पूजा करते हैं, उनमें दृष्टि स्थिर रखिए। देव का स्वरूप दृष्टि से दूर न हो। देव को घर में रखने वाला, देव को सिंहासन पर रखने वाला वैष्णव तो साधारण वैष्णव है; सच्चा वैष्णव देव को दृष्टि में रखता है। अपने प्रभु को दृष्टि

में रखिये। आँख से प्रभु का स्वरूप दूर न हो, प्रभु में दृष्टि रखकर काम करिये। प्रभु को दृष्टि में रखकर बोलिये।

कई लोग ऐसे हैं कि घर का काम करते-करते दृष्टि तिजोरी पर रखते हैं, धन में रखते हैं। आप भगवान् में दृष्टि रखिये। भगवान् में दृष्टि रखने वाले को भगवान शक्ति देते हैं। बुद्धि देते हैं। परमात्मा जिसे शक्ति और बुद्धि देते हैं, उसकी हार कभी नहीं होती है। मानव ईश्वर से विमुख होकर व्यवहार काम करता है भगवान् को भूलता है। तब वह ठोकर खा जाता है। अपनी बुद्धि पर बहुत विश्वास न रखिये क्योंकि मानव की बुद्धि अल्प है, क्षुद्र है। परमात्मा की शक्ति प्राप्त करके काम कीजिये। आप जो काम करेंगे, वह सफल होगा। आपकी कभी हार नहीं होगी। हनुमान्जी महाराज की कभी हार नहीं हुई है। वे जहाँ गये, वहाँ उनकी जीत हुई है क्योंकि हनुमानजी का नियम था– श्रीरामचन्द्रजी को दृष्टि में रखकर काम करना। अकेले रामजी समुद्रतटं पर दूर तक गये है। हनुमानजी ने विचार किया कि अकेले प्रभु वहाँ क्या करते होंगे? किसी से कहा नहीं और अकेले गये हैं। हनुमानजी कूद पड़े और रामजी के पीछे आकर खड़े हो गए। रामचन्द्रजी सोच रहे हैं कि यहाँ कोई नहीं है, मैं अकेला ही हूँ। रामजी ने पत्थर उठाया और समुद्र में डाला। पत्थर डूब गया। रामचन्द्रजी को अच्छा नहीं लगा। सोचा कि मेरे हाथ से डाला हुआ पत्थर तैरा नहीं! यह तो अच्छा हुआ कि यहाँ देखने वाला कोई नहीं है, मैं अकेला ही हूँ। रामजी ने दूसरा पत्थर उठाया। जोर लगाकर समुद्र में डाला। वह भी डूब गया। रामजी को जंचा नहीं। सोचा कि अब एक बार अंतिम प्रयत्न करके देखूँ। रामचन्द्रजी ने तीसरी बार पत्थर उठाया और फिर जोर लगाकर समुद्र में डाला। वह भी डूब गया। तब रामचन्द्रजी को विश्वास हो गया। वे थोड़े नाराज भी हुए। मेरे नाम से पत्थर तैरते हैं पर मेरे हाथ से डाला पत्थर नहीं तैरता है। रामजी ने जहाँ पीछे देखा तो वहाँ हनुमानजी महाराज हाथ जोड़कर खड़े थे। रामजी ने पूछा कि हनुमान! तुम यहाँ कब से आये हो? तब हनुमानजी ने कहा–आपने पहिला पत्थर डाला, तब से मैं खड़ा हूँ। मैंने सब-कुछ देखा है।

कोई व्यक्ति जब गिर पड़ता है, तब उसे गिरने-पड़ने का उतना दुःख नहीं होता, वहाँ देखने वाले कितने हैं, उसका दुःख होता है। हनुमानजी ने देखा कि रामजी को यह अच्छा नहीं लगा है। यह तो वहाँ जाकर सभी वानरों को कह देगा कि उनके हाथ से डाला पत्थर भी तैरा नहीं है।

प्रभु नाराज हुए हैं, हनुमानजी महाराज मुखारविंद का दर्शन करते हैं। सोचते हैं कि आज मेरे स्वामी नाराज हुए हैं। स्वामी नाराज होते हैं तो मेरी सेवा किस काम की? वे आनंद में विराजमान हों तो ही सार्थक है। हनुमानजी ने कहा कि महारज! आप नाराज न होइए। जो हुआ

सो अच्छा ही है। उचित ही हुआ है। मैंने तो कथा में ऐसा सुना है कि जो मेरे राम की शरण में आता है, श्रीराम, कृपा करके जिसे अपनाते हैं, श्रीरामजी जिसे अपना मानकर हाथ में रखते हैं, वह तैरता है, पर रामजी जिसे फेंक देते हैं, जिसका त्याग करते हैं, वह तो डूबेगा ही। महाराज! जो हुआ सो उचित ही है। आप नाराज न होइए।

हनुमानजी ने ऐसा अर्थ किया तब रामचन्द्रजी बहुत प्रसन्न हो गये। हनुमानजी से कहा– हनुमान, तुम बहुत बुद्धिमान हो। मैं तो मान रहा था कि तुम मात्र बलवान हो, पर अब मुझे विश्वास हो गया कि तुम बहुत बुद्धिमान भी हो।

जगत् में बल और बुद्धि का विरोध-सा है। जो बहुत बुद्धिमान हैं, वे प्रायः दुर्बल होते हैं और जो बहुत बलवान हैं, उनकी बुद्धि मंद होती है पर हनुमानजी के सदृश कोई बलवान नहीं हुआ, न हनुमानजी के सदृश कोई बुद्धिमान हुआ है। रामचन्द्रजी ने हनुमानजी को पुरस्कार दिया। 'जितेन्द्रिय बुद्धिमतां वरिष्ठम्'–'मानव प्रायः बुद्धि का उपयोग धन के लिए करता है। पैसे तो वैश्या भी कमा लेती है पर बुद्धि का उपयोग पैसे के लिये करने वाला बुद्धिमान नहीं है।

परधन परमन हरन को, वेश्या बड़ी प्रवीण।
तुलसी सोई चतुरता, रामचरन लवलीन॥

बुद्धि का उपेयाग जो परमात्मा के लिये करता है, वही बुद्धिमान है। हनुमानजी को प्रभु ने पदवी दी तो हनुमानजी प्रसन्न हुए। हनुमानजी ने कहा–महाराज, यह तो आप नाराज हो गये थे, इससे आपको मनाने के लिए मैंने ऐसा अर्थ लिया। पर सच्चा अर्थ तो यह है कि आपके नाम में जो शक्ति है, महाराज, आप बुरा न मानिये–ऐसी शक्ति आप में भी नहीं है, रामनाम में जो शक्ति है, वह रामचन्द्रजी में भी नहीं है।

रामजी प्रत्यक्ष विराजमान थे, तब रामजी की शरण में जो आये उनका प्रभु ने उद्धार किया, पर आज जब रामजी प्रत्यक्ष विराजमान नहीं हैं, तब रामनाम बहुत से जीवों का उद्धार करता है, बहुतों की बुद्धि सुधारता है। रामनाम में बहुत शक्ति है। जगत् में जितने भी महापुरुष हुए, वे सभी परमात्मा के किसी भी नाम में तन्मय बने हैं, तब ही महान बने हैं। जब तक परमात्मा के नाम में तन्मय नहीं होते तब तक ब्रह्म सम्बन्ध नहीं होता है। सगाई के बाद विवाह होता है। जब तक सगाई नहीं होती है, तब तक विवाह नहीं होता है। सगाई का अर्थ है शब्द–सम्बन्ध। वाग्दान का अर्थ है शब्द का सम्बन्ध। परमात्मा से विवाह करना है। प्रभु के साथ शब्द–सम्बन्ध, नाम–सम्बन्ध जोड़ना ही पड़ेगा।

जगत् भगवान् के अधीन है, पर भगवान् नाम के अधीन हैं। जिस देव का नाम प्रेम से जपते हैं उस देव के दर्शन भले ही आपको न हों, पर देव आपके साथ ही रहते हैं। नाम प्रभु को प्रकट करता है। प्रभु के नाम में ऐसी दिव्य शक्ति है। जेब में पांच-दस हजार रुपये हों तो कई व्यक्तियों को प्रत्येक साँस के साथ रुपया ही आता है। जेब में रुपये हैं...रुपये हैं। आप पैसे का तो स्मरण रखते है। परमात्मा के स्मरण की आदत डालिये। परमात्मा के स्मरण के लिये परमात्मा से प्रीति कीजिये। जो प्रेम से परमात्मा के नाम का जप करता है, उसे पाप करने की इच्छा नहीं होती है। मन में जब पाप आने लगे तब प्रेम से बोलिये–

"नारायण नारायण नारायण नारायण नारायण नारायण"

आदिनारायण परमात्मा का ध्यान और कीर्तन जो करता है, उसका पाप छूटता है। आदिनारायण से विमुख बनने पर ही पाप होता है। परमात्मा के सम्मुख रहने वाला पाप नहीं कर सकता है। परमात्मा के नाम के जप जो प्रेम से करता है, परमात्मा का जो निरंतर अनुसंधान रखता है, उसकी बुद्धि में ज्ञान स्फुरण पाता है, उसका पाप छूटता है। तुलसीदास महाराज ने कहा है–

कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर, प्रिय लागहु मोहि राम।।

ऐसा हो तो वासना जागती ही नहीं और पाप करने की इच्छा ही नहीं होती है। दृष्टांत के बिना सिद्धांत बुद्धि में आता ही नहीं है; इससे अजामिल की कथा कही है।

शांति से सोचने पर ध्यान में आयेगा कि हम सब अजामिल जैसे हैं। यह जीव परमात्मा का अंश है, ब्रह्म का अंश ब्रह्म में मिल जाता है। प्रभु के साथ एक होने में ही लाभ है, वही योग्य है। यह जीव ईश्वर का अंश होने पर भी माया में मिल जाता है। प्राय: माया में सभी का मन फँसा रहता है। माया अर्थात् क्या? विधाता ने पाँच छह जगहों में माया को रखा है। भोजन में माया है। कई लोगों की ऐसी आदत होती है कि हर रोज अचार चाहिये। पापड़ के बिना काम चलता ही नहीं है। मानव का मन भोजन में फँसा रहता है। भोजन में माया है। काम-सुख में माया है। जीव अनेक बार काम-सुख भोगता है फिर भी उसका तिरस्कार नहीं कर पाता उसे घृणा नहीं होती, मन वहाँ फँसा रहता है। पैसे में माया है। लाख मिले, दो लाख मिल जाय पर ऐसी इच्छा नहीं होती कि अब मुझे पैसा भी न मिले। मन पैसे में फँसा रहता है। थोड़ी माया कपड़ों में रहती है। आप जिस घर में रहते हैं, उस स्थान में माया रहती है। अधिक तो क्या? कथा में जिस स्थान पर बैठते हैं, उस स्थान में थोड़ी माया रहती है। कई व्यक्तियों की ऐसी इच्छा रहती है कि मैं देर से आऊँ तो भी मेरी निश्चित जगह मुझे मिलनी चाहिए। ग्यारह-बारह दिनों के बाद कोई इधर बैठने

वाला नहीं होगा पर अभी यह स्थान मेरा है। जगह के प्रति माया होती है। पुस्तकों में भी माया रहती है। कई व्यक्तियों की ऐसी आदत होती है कि किसी के घर जाते हैं और अच्छी पुस्तक देख ली तो अपनी थैली में रख लेते हैं। सभी को जय श्री कृष्ण करते हैं और पुस्तक थैली में रख लेते हैं। शास्त्र में लिखा है कि पुस्तक की चोरी करने वाला अगले जन्म में गूंगा होता है। सुवर्ण की चोरी करने वाला अन्धा होता है। अन्न की चोरी से भिखारी होता है। विधाता ने छह जगहों में माया रखी है। माया बुरी नहीं है। माया अनेक बार भक्ति में साथ देती है पर मैं ईश्वर का अंश हूँ–ऐसा मन में रखकर विवेक से माया का उपयोग कीजिये। माया के दास न बनिये। अग्नि उपयोगी वस्तु है, परन्तु अग्नि का उपयोग विवेक से करते हैं। अग्नि के बिना व्यवहार नहीं होता। अग्नि को संड़ासी से पकड़ते हैं। जब-जब माया को छूने का प्रसंग आ जाय, तब-तब विवेक संड़ासी से माया को पकड़िये। आप परमात्मा के दास हैं, आप माया के दास नहीं हैं। जीव ईश्वर का दास होने के बदले माया का दास बनता है, तब माया उसे रुलाती है। जीव ब्रह्म का अंश है। ब्रह्म का अंश ब्रह्म में लीन हो, वही अच्छा है– योग्य है। जीव ब्राह्मण होने पर भी माया में फँस जाता है, तब वही अजामिल है।

जो जीव माया में मिल गया है वही है अजामिल। वह कुसंग में बिगड़ा है। एक बार अजामिल शिकार खेलने जंगल में गया। तभी कुछ साधु उसके घर आये। साधुओं को मालूम नहीं है कि यह पापी अजामिल का घर है। वैश्या ने देखा साधु अनजाने से आ गये हैं। वे मेरे घर आये हैं, मैं उनकी सेवा करूँगी, उसने खाना बनाने के लिए अनाज दिया। वैश्या का अनाज लेना शास्त्रों में मना है। संतों ने खाना बनाया। भगवान् को भोग लगाया। भोजन किया। बाद में पता लगा कि वैश्या का अन्न शरीर में गया है। सच्चे सन्त जिसके घर का खाते हैं, उसका कल्याण करते हैं। सन्तों को ममता हुई। सन्तों को जिस जीव के प्रति ममत्व हो जाता है, उस जीव का पाप छूटता है, उसे भक्ति का रंग लगता है। किसी साधु-सन्त से स्नेह कीजिये, जिससे उन्हें आप से ममता हो जाय। भक्ति करने की बहुतों की इच्छा होती है, पर मानव भक्ति नहीं कर सकता है। सन्त जिसे हृदय से आशीर्वाद देते हैं, उसे भजनानन्द मिलता है।

अजामिल घर आया। वैश्या के कहने से उसने सन्तों को वंदन किया। सन्त सोचने लगे– इस जीव का कल्याण कैसे हो? आज इसके घर का भोजन लिया है। इससे हम कहेंगे कि तुम भगवान् का ध्यान करो तो वह ध्यान नहीं करेगा। इससे हम कहेंगे कि प्रेम से प्रभु की पूजा करो तो वह पूजा नहीं करेगा। प्रेम से पूजा करना सरल नहीं है। बहुत कठिन है। यह पूजा नहीं करेगा, ध्यान नहीं करेगा। अब इस जीव का कल्याण कैसे हो? वैश्या सगर्भा थी। सन्तों ने सोचा कि

अजामिल की यह अन्तिम संतान हैं, अन्तिम सन्तान के प्रति माता-पिता को विशेष स्नेह होता है। इस पुत्र का नाम नारायण रखा जाय तो अजामिल 'नारायण, नारायण' बोलेगा। पुत्र के निमित्त से भी नारायण जप होगा। इसका थोड़ा पाप जलेगा। भगवान् इस जीव पर कृपा करे! सन्तों ने कहा कि आपके घर हमें भोजन मिला, पर दक्षिणा नहीं मिली है। थोड़ी दक्षिणा देंगे? अजामिल हँसने लगा। उसने कहा– महाराज, मुझे नहीं जानते हैं। पैसा माँग रहे हो। आपके पास जो है वह मैं लूट नहीं लेता हूँ, वही मेरी दक्षिणा मानिये। आप चलते बनिये यहाँ से। मैं किसी को मानता नहीं हूँ। मैं तो लोगों को मार डालता हूँ, लूट लेता हूँ। यह तो आपका अच्छा योग हुआ कि आपके पास जो है,उसे मैं लूटता नहीं हूँ। इसे ही दक्षिणा मानिये। मैं दक्षिणा नहीं दूँगा। सन्तों ने कहा– तुम्हारे घर पुत्र का जन्म हो तो उसका नाम नारायण रखना। यही हमारी दक्षिणा है। हमें और कुछ नहीं माँगना है।

अज़ामिल को आश्चर्य हुआ–महाराज! मेरे पुत्र का नाम नारायण रखने से आपको क्या मिलने वाला है? आपको क्या लाभ है? सन्तों ने कहा– भाई, हम नारायण के सेवक हैं। हमारे इष्ट देव नारायण हैं। हम तुम्हारे घर आये थे, इसकी स्मृति रहेगी।

भागवत की कथा सुनने के बाद आपके घर पुत्र का जन्म हो तो उसका नाम नारायण रखिये परन्तु आजकल पढ़े-लिखे, सुधारवादी लोगों को पुराने नाम पसन्द नहीं हैं। ये लोग ऐसा मानते हैं कि जो पुराना है वह सब निकम्मा है इससे इन्होंने सब नया खोज लिया है। हमारा पुराना धर्म बहुत श्रेष्ठ है। नया सब विवेक से ग्रहण लेना। अपना पुराना धर्म न छोड़ना। सनातन धर्म जैसा कोई धर्म नहीं हैं। आजकल लोगों को पुराने नाम तक पसन्द नहीं हैं। पुराने नाम निकाल कर नये नाम खोज लिये हैं। अशोक भाई, बसन्त भाई–ऐसा नाम रखते हैं। अशोक भाई की सूरत ऐसी होती है कि उसको देखते ही दूसरे को शोक होता है। इससे तो अच्छा है कि राम, कृष्ण, गोविन्द, वासुदेव–ऐसे नाम रखे जायें इससे बोलने और सुनने वाले का कल्याण होता है। पुत्र के नाम से माता-पिता की बुद्धि की, उसके स्वभाव की परीक्षा होती है। नाम ऐसा रखिये कि बोलने से सत्कर्म की कुछ प्रेरणा मिले।

संतों के दर्शन से अजामिल का हृदय द्रवित हुआ था, शुद्ध भी हुआ था। उसने कहा– नारायण नाम रखने में मुझे क्या हर्ज है? भगवान् की कृपा से अगर पुत्र का जन्म हो तो उसका नाम नारायण रखेंगे। संत चले गये। अजामिल के घर पुत्र का जन्म हुआ। संतों की आज्ञा के अनुसार उन्होंने बालक का नाम नारायण रखा। अजामिल सारा दिन नारायण के साथ व्यतीत करता है– नारायण, तुमने खाना खाया? नारायण, नारायण....कहता रहता है, गोद में नारायण को खिलाता है। अजामिल को नारायण... नारायण.....बोलने की आदत हो गयी।

नारायण सात-आठ वर्ष का हुआ। अजामिल को एक बार यमदूत पकड़ने आये। अजामिल ने बहुत पाप किये थे, इससे आयुष्य होने पर भी मर रहा था। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि आयुष्य होने पर भी जो मरता है, उसे अप-मृत्यु कहते हैं। मृत्यु के दो भेद हैं– महामृत्यु और अपमृत्यु। पूर्ण आयुष्य भोग कर मरना महामृत्यु है। आयुष्य होने पर भी मृत्यु होती है तो उसे अपमृत्यु कहते हैं। जो अति कामी है, जिसने अति पाप किये हैं, वह आयुष्य होने पर भी मरता है। अति पापी पूरा आयुष्य नहीं भोग पाता। अजामिल ने जीवन में बहुत पाप किये थे, इससे उसको आयुष्य के बारह वर्ष शेष होने पर भी यमदूत उसे पकड़ने आये थे। भयंकर यमदूतों को देखकर वह घबरा गया। उसे अपना पुत्र नारायण याद आया। पुत्र को बुलाने के लिये वह नारायण-नारायण पुकारने लगा। पुत्र खेलने गया था। वह पिता के पास न आ सका, पर बैकुण्ठ से भगवान् नारायण के पार्षद वहाँ दौड़कर आ पहुँचे।

यमदूतों से पार्षदों ने कहा–इस अजामिल को छोड़िये। यमदूत विष्णु दूतों को समझाते हैं–यमराज की आज्ञा से हम आये हैं, यह महापापी जीव है। इसका चरित्र हम जानते हैं, ब्राह्मण के घर इसका जन्म हुआ है, घर में वैश्या रखता है। बीस-इक्कीस वर्ष की अवस्था तक यह सेवा करता था, गायत्री-जप करता था। एक बार यह जंगल में समिधा लेने गया। वहाँ उसने शूद्र के साथ एक वैश्या को देखा। वह वैश्या को बार-बार देखने लगा। वह कामाँध–मोहाँध हो गया।

काम आँख में पहिले आता है, मन में बाद में आता है। मन को पवित्र रखना है तो सावधान रहिये। काम आँख में न आने पावे। आँखें बिगड़ती हैं, तब मन बिगड़ता है। मन के बाद वाणी बिगड़ती है। जिसकी वाणी बिगड़ती है, उसका व्यवहार बिगड़ता है, उसका जीवन बिगड़ता है। रावण की आँख बिगड़ी, उसका मन बिगड़ा, वाणी बिगड़ी–व्यवहार बिगड़ा। रावण का जीवन बिगड़ा। और तो क्या कहूँ? रावण का नाम भी बिगड़ा। आज हजारों वर्ष व्यतीत हो गये किसी ने अपने पुत्र का नाम रावण भाई रखा हो–ऐसा कहीं सुना नहीं है।

पाप का प्रारंभ आँख से होता है, भक्ति का प्रारंभ भी आँख से होता है। पाप से पतन होता है, भक्ति से जीवन सुधर जाता है।

शुकदेवजी महाराज राजा को सावधान करते हैं। अजामिल बाद में वैश्या के घर जाता था। माता-पिता को मारता था घर का धन वैश्या को देता था। विष्णु-दूतों को यमदूत उसकी कथा सुनाते हैं। महाराज यह तो हीन जाति की वैश्या है और यह ब्राह्मण है, चोरी करता है। इसने अनेक ब्रह्म-हत्याएँ की हैं। यमराज की आज्ञा से हम इसे पकड़ने आये हैं–'यत्र दण्डेन शुद्ध्यति'–हम इसको पकड़कर यमपुरी ले जायेंगे। इसे सजा होगी। हमारे यहाँ जरा भी अन्याय नहीं है।

विष्णु दूतों ने कहा—अजामिल ने पाप किये हैं, यह आप जानते हैं, पर अजामिल ने पाप का थोड़ा प्रायश्चित भी किया है, जो आप नहीं जानते हैं। अभी वह दो बार नारायण-नारायण बोला। उसके पाप का प्रायश्चित्त हुआ। यमदूतों ने कहा—इसने नारायण-नारायण कहा पर यह कोई बैकुण्ठ के नारायण का नाम तो नहीं लिया है। इसके घर नारायण नाम का पुत्र है। वह अपने पुत्र को—नारायण को बुलाता था। विष्णु दूतों ने कहा—

अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्।
संकीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः।। (६-२-१८)

पुत्र के निमित्त से भी नाम तो परमात्मा का ही उसके मुख से निकला। उसका थोड़ा पाप जल गया। बारह वर्षों का उसका आयुष्य शेष है। संभव है, अब वह सुधरेगा। नहि वस्तु शक्तिर्ज्ञानम पेक्षते—वस्तु में निहित शक्ति काम करती है, उसका ज्ञान हो या न भी हो। अनजान में भी पाँव अगर अग्नि पर पड़ता है तो अग्नि उसे जलाती ही है। तब इसने तो भगवान् का नाम लिया है, अनजाने में भी परमात्मा का नाम मुख से निकलता है तो लाभ ही है। जल्दी में खाया गया भोजन स्वाद नहीं देता पर भूख को तो तृप्त करता ही है। शांति से स्मरण के साथ प्रभु के नाम का जप उत्तम है, पर जब मन व्यग्र हो, तब प्रभु के नाम लेने से थोड़ा भी लाभ तो होता ही है।

रास्ते में चलते-चलते ठोकर लग जाय तो तब हाय! हाय! न करिये; हरि, हरि, श्रीराम, श्रीकृष्ण बोलिये। प्रेम से प्रभु का नाम लेने से, जप करने से दुःख का असर कम होता है। प्रायः लोग दुःख में बहुत हाय-हाय करते हैं। जो व्यक्ति बहुत हाय-हाय करता है, वह अंत में हाय-हाय करके ही जाता है। प्रभु की कथा सुनने के बाद हाय-हाय करना छोड़ दीजिए। हो सके तो नियम रखिये कि जो कुछ भी हो, मैं मन में संताप नहीं करूँगा, जी नहीं जलाऊँगा। मैं प्रभु के नाम के जप करूँगा। हरि—हरि कहने की आदत डालिये। कई लोग बहुत उदार होते हैं। खर्च करते हैं, तब हजार का खर्च कर देते हैं, पर हिसाब करने पर अगर दो सौ-पांच-सौ का हिसाब नहीं मिलता तो दो-चार दिन जी जलाते हैं। अरे! हिसाब न मिले तो क्या जी जलाना? मन को समझाइए कि अन्याय का धन घर में आया होगा, प्रभु ने इस गंदगी को बाहर निकालने की राह बना दी है। बहुत अच्छा हुआ। मुझे जी नहीं जलाना है। कई माताएँ ऐसी होती हैं कि घर में थोड़ा भी नुकसान होता है तो जी जलाती हैं। घर में काम करती हों और दूध में उफान आ जाय, दूध छलक जाय, अग्नि में गिरने लगे तो वे हाय-हाय करती हैं। हाय-हाय! ऊपर की सब मलाई गिर गयी! अरे! मलाई ही गयी है, तुम तो नहीं गयी हो? जी न जलाइए। कैसा भी प्रसंग आ जाय, परमात्मा का नाम न छोड़िए।

विष्णु दूतों ने कहा कि परमात्मा का नाम अजामिल के मुख से निकला है, उसका थोड़ा पाप जल गया है। उसे आप छोड़िये। यमदूत यमराज के पास गये हैं। यमराज भगवान् के नाम की महत्ता जानते हैं। यमराज ने यमदूत से कहा है–

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम्।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान्॥

(६-३-२९)

इस तरह विष्णु दूतों ने अजामिल को छुड़ाया है। अजामिल शय्या में पड़े-पड़े यह सब देख रहा है कि ये मुझे मारने आये थे आज मैं मरने वाला था, पर मैं नारायण-नारायण बोला, तो दो व्यक्ति मुझे छुड़ाने आ पहुँचे। मैं बच गया। अति पापी के जीवन में जब ऐसा कोई प्रसंग घटित हो जाता है, तब वह तुरन्त सुधर जाता है। अति पापी महान भगवद् भक्त बन जाता है। आज अजामिल को अपने पापों पर पछतावा हो रहा है कि ब्राह्मण होकर मैंने ऐसे पाप किये, धिक्कार है मुझे। वह रोने लगा। कई व्यक्ति जब पाप करते हैं, तब मन में दुःखी होते हैं, पर बाद में अपने मन को समझाते हैं कि पड़ोस के लोग तो बहुत पाप करते हैं उनसे मैं अच्छा हूँ। पाप को साधारण नहीं समझना चाहिए। साधारण पाप भी बहुत अनर्थ करता है। पाप करने के बाद हृदय से पश्चात्ताप होना चाहिए।

अजामिल को आज पश्चात्ताप हुआ है कि मैंने भूल की है। प्रभु की कृपा हो और इस बीमारी से ठीक हो जाऊँ तो मैं अपना जीवन प्रभु को अर्पण करूँगा। अब पाप नहीं करूँगा। अब कोई पाप-प्रकृति भी नहीं करूँगा। सारा दिन भक्ति ही करूँगा। अजामिल की ऐसी तीव्र भावना है। जीवन में सच्चे सन्तों की सेवा की थी, जो आज सफल हुई है। उसकी अपमृत्यु टल गई। आज उसका जीवन सुधर गया।

अजामिल स्वस्थ हो जाने पर घर में न रहा, घर छोड़कर गंगा-तट पर गया। जीर्ण मन्दिर में रहने लगा। अब सारा दिन 'ॐ नमो नारायण' महामन्त्र का जप करता है वह अब मौन रहता है। आँख उठाकर किसी की ओर देखता भी नहीं है। बहुत भूख लगने पर मधुकरी माँगने जाता है। मधुकरी में जो कुछ भी मिलता है, उसे गंगाजी में डुबाकर पवित्र करता है। जल देवता को स्वाद देता है और एक बार खाता है। भोजन बहुत सरस होता है, तब भूख से अधिक खाया जाता है। भोजन नीरस होने पर पेट में जितनी भूख होती है, उतना ही खाया जाता है। जिसका भोजन नीरस है, उसका जीवन सरस है। स्वाद और वाद छोड़ने वाला भक्ति कर सकता है। लौकिक स्वाद में जिसका मन फँसा है वह भक्ति नहीं कर पाता है। स्वाद छोड़िए, वाद छोड़िए, तो ही भक्ति बढ़ेगी।

कई लोगों की ऐसी आदत होती है कि अपनी ही बात को सच्चा सिद्ध करने पर वे तुल जाते हैं। वाद-विवाद नहीं करना चाहिए-ऐसा हमारे शास्त्रों में लिखा है। भूख और प्यास रोग है, अन्न और जल दवाई है। कड़वी दवा व्यक्ति कितनी खा सकता है? कड़वी दवा व्यक्ति उतनी ही खाता है, जितनी अनिवार्य है। मानव विवेक से दवा लेता है। भोजन भी विवेक से लीजिए। भूख के रोग को मारने के लिए भोजन रूपी औषध लीजिए। भीतर दृष्टि डालकर भोजन कीजिये। जीभ जो माँगती है वह जीभ को न दीजिये। पेट जो माँग रहा है, वह पेट को दीजिए। भोजन करना पुण्य है, जीभ को लाड़ करना पाप है। भजन और भोजन भीतर दृष्टि डालकर कीजिए। भोजन करते समय बाहर न देखिये। प्रभु के नाम का जप कर रहे हो, तब भीतर नारायण के दर्शन करते हुए जप करिए। भजन में भीतर दृष्टि रखिये। भोजन में भी भीतर दृष्टि रखिए।

कई बार भीतर से आवज आती है कि अब न खाइए, पर फिर भी हम सोचते हैं कि दस-पन्द्रह दिनों से पकोड़े नहीं खाये हैं। थोड़े और खा लूँ अभी! अजीर्ण हो जायेगा तो दो गोलियाँ खा लूँगा। ऐसा नहीं करना चाहिए। भोजन साधन है, साध्य नहीं है। इस शरीर से भगवान् की भक्ति होती है, इससे इस शरीर को कुछ न कुछ किराया देना पड़ता है। कई व्यक्ति सुबह उठकर यही सोचते हैं कि दाल बनाऊँ या कढ़ी बनाऊँ? क्या बनाऊँ? कई व्यक्ति सब्जी-भाजी का विचार करते हैं। एक किलो सब्जी लेनी हो तो भी सारा बाजार घूमते हैं। आधा घण्टा गँवाते हैं। भोजन में स्वाद न रखिये। भोजन को औषधि समझकर विवेक से भोजन कीजिए। सादा भोजन जीभ को सुधारता है, जीभ के सुधरने से भक्ति होती है। भक्ति में जीभ मुख्य है। बहुत बोलने वालों की जीभ बिगड़ती है। जो कम बोलते हैं उनकी जीभ सुधरती है। बहुत बोलने से शक्ति नष्ट होती है। जरूरत के अनुसार बोलिए। मौन रखने से जीभ सुधरती है। परमात्मा के नाम के जप करने से जीभ सुधरती है। जिसकी जीभ सुधर गई उसका जीवन सुधर गया। आँखें सुधरने से मन सुधरता है। जीभ सुधरने से जीवन सुधरता है। भगवान् के नाम के जप जीभ से होते हैं। शरीर घर है, जीभ देहली है और प्रभु का नाम दीपक है। घर में एक ही दीपक होने पर लोग उसे देहली पर रखते हैं। इससे भीतर भी प्रकाश होता है और बाहर भी प्रकाश होता है-

राम नाम मनिदीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर-बाहेरहुँ जो चाहसि उजियार॥

हरि नाम का दीप जीभ पर रखिये। जीभ से ही जप करने की आदत डालिये। कई लोग ऐसा समझते हैं कि मैं मन से जप करता हूँ, पर मन से तो दो-तीन मिनट ही जप होता है। बाद में मन छिटक जाता है। जिसने कई वर्षों तक जीभ से जप किये होंगे, वे ही धीरे-धीरे मन से जप

कर सकेंगे। जिनका मन मैला है जो मन से पाप करते हैं वे मन से जप नहीं कर पाते हैं। ऐसा जप अशक्य है। जीभ से जप कीजिए। जीभ को समझाइए कि तुम्हें श्रीखंड खाने की इच्छा होती है तो मैं बाजार से श्रीखंड ले आता हूँ और खिलाता हूँ, पर मैं तुम से रोज कहता हूँ कि 'श्रीराम-श्रीकृष्ण' जप करो तो तुम मेरी बात नहीं मान रही हो। अब मैं तुम्हें सजा दूँगा। हमारे जैसे साधारण व्यक्ति सजा पाने पर ही सुधरते हैं। आपके गाँव में नीम होगा। नीम के पत्ते ले आइए। बारह एक बजे जब भूख लगे तब, इन पत्तों का रस जीभ को पिलाइए। जीभ कहे कि 'यह क्या? तब कहिये कि तुम बहुत बातें करती हो, तुम्हें सजा दी है इसकी।' जीभ को सुधारिए।

अजामिल की जीभ सुधर गयी है। वह सादा भोजन करता है। 'ॐ नमो नारायण' महामन्त्र का निरन्तर जप करता है। 'अज' शब्द का अर्थ है—ईश्वर। गीताजी के चतुर्थ अध्याय में 'अज' शब्द का अर्थ ईश्वर किया है। अज अर्थात् ईश्वर और अजा अर्थात् माया। आज तक अजामिल माया में फँसा हुआ था। अब वह परमात्मा के नाम से प्रेम करता है। अजामिल की जीभ सुधरती है, आँख सुधरती है, जीवन सुधरता है। अब वह प्रभु के धाम में जाता है। अजामिल के लिए विमान आया है। अजामिल जगत् को वंदन करके सावधान करता है कि अति पापी को निराश होने की जरूरत नहीं है। प्रभु के द्वार सब के लिए खुले हैं। कैसा भी पापी हो, पाप का हृदय से पश्चात्ताप होना चाहिए। अजामिल ने दिखाया कि मैंने बहुत पाप किये हैं। ऐसा कोई बड़ा पाप नहीं है, जो मैंने बार-बार न किया हो, फिर भी आज विमान में बैठकर प्रभु के धाम में जा रहा हूँ। अजामिल आज परमात्मा के चरणों में लीन होता है।

३२– नारायण कवच

अजामिल कृतार्थ हुआ, इसकी कथा वर्णन की गई है, बाद में उत्पत्ति का थोड़ा क्रम समझाया गया है। दक्ष प्रजापति के घर हर्यश्व, शबलाश्व आदि अनेक बालकों का जन्म हुआ। नारदजी ने सभी को संन्यास दिया, इससे दक्ष प्रजापति को बहुत दुःख हुआ। तब ब्रह्माजी ने उसे आश्वासन देकर, साठ कन्याएँ दीं। दक्ष प्रजापति की इन अनेक कन्याओं के वंश का वर्णन किया गया है। प्रमुख कन्याएँ हैं—दिति और अदिति। अदिति के घर बारह सन्तानें हुई हैं—विवस्वान, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, शुक्र और ऊरुक्रम। एक-एक वंश का वर्णन किया है। त्वष्टा के घर विश्वरूप का जन्म हुआ है। विश्वरूप देवों का गुरु बना है। उसने देवों को नारायण कवच की विद्या दी थी। नारायण कवच के प्रताप से ही देवों ने राक्षसों का विनाश किया और स्वर्ग का राज्य पा लिया।

राजा ने प्रश्न किया है कि महाराज! यह नारायण कवच क्या है? मेरी सुनने की बहुत इच्छा है। शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं कि राजन्! श्रवण कीजिए। वीर पुरुष जब लड़ने जाते हैं, तब लोहे का बख्तर पहिन कर जाते हैं कवच अर्थात् बख्तर। यह मन्त्रात्मक कवच है। जिसे नारायण कवच धारण करने की इच्छा हो, वह पहिले स्नान करे फिर पवित्र आसन पर बैठकर पूर्व अथवा उत्तर दिशा की ओर मुख रखकर नारायण कवच का पाठ करे। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि दक्षिण दिशा अपवित्र है। पश्चिम दिशा अपवित्र नहीं है, पर पवित्र भी नहीं है। नारायण कवच के पाठ से पहिले अंगन्यास-करन्यास कीजिए। देव जैसा ही जो पवित्र है, उसे ही देव-पूजा का अधिकार है। पूजा में बैठने से पहिले शरीर के प्रत्येक अंग की शुद्धि करनी चाहिए। एक-एक अंग में परमात्मा की स्थापना करके नारायण कवच का पाठ करना चाहिए–

ॐ हरिर्विदध्यान्मम सर्वरक्षां न्यस्ताङ्घ्रिपद्मः पतगेन्द्रपृष्ठे।
दरारिचर्मासिगदेषुचाप पाशान् दधानोऽष्टगुणोऽष्टबाहुः।।

(६-८-१२)

जल में मत्स्य नारायण स्थल में वामनजी, प्रवास में राजाधिराज रामचन्द्र भगवान्, अरण्य में नरसिंह भगवान् मेरा रक्षण करें। नारायण कवच के अन्तिम श्लोक बहुत महत्त्व के हैं। जब भय लगता हो, तब उनका पाठ करना चाहिए–

तथा हि भगवानेव वस्तुतः सदसच्च यत्।
सत्येनानेन नः सर्वे यान्तु नाशमुपद्रवाः।।
यथैकात्म्यानुभावानां विकल्परहितः स्वयम्।
भूषणायुधलिंगाख्या धत्ते शक्तीः स्वमायया।।
ते नैव सत्यमानेन सर्वज्ञो भगवान् हरिः।
पातु सर्वैः स्वरूपैर्नः सदा सर्वत्र सर्वगः।।
विदिक्षु दिक्षूर्ध्वमधः समन्तादन्तर्बहिर्भगवान् नारसिंहः।
प्रहापयँल्लोकभयं स्वनेन स्वतेजसा ग्रस्तसमस्ततेजाः।।

(६-८-३१-/३२/३३/३४)

मैं जिन देव के नाम का जप करता हूँ, उसी अर्थ में वे वहाँ स्थित हैं। आकार भिन्न-भिन्न हैं, परन्तु तत्व एक ही है। आकार का जो बहुत चिंतन करते हैं, उनके मन में विकार आता है। सर्व आकारों में ईश्वर विराजमान हैं। अनेक अलंकारों में सुवर्ण तो एक ही होता है। अनेक में एक के दर्शन करना ही ज्ञान है। सर्व में एक ही परमात्मा के दर्शन करना ही भक्ति है। परमात्मा सर्व

शक्तिमान हैं, सर्व में विराजमान हैं। आकार की मुझे जरूरत नहीं है। आकार में निहित ईश्वर की मुझे जरूरत है। अलंकार का आकार मूल्यवान नहीं है, उनमें निहित सुवर्ण मूल्यवान है। मेरे प्रभु सर्व में विराजमान हैं। वह सिद्धान्त सत्य हो जाय तो किसी प्रकार का दुःख नहीं है, कोई दुःख नहीं दे सकता है।

विश्व के दो अर्थ हैं–विश्व अर्थात् जगत्, और विश्व अर्थात् विष्णु भगवान्। विश्व के प्रत्येक पदार्थ में जो विष्णु का स्वरूप देखते हैं, वे उसे विश्व रूप कहते हैं। विश्वरूप नारायण कवच देते हैं। नारायण कवच ब्रह्म-विद्या है। ब्रह्म-विद्या का उपदेश वे ही कर सकते हैं, जिनकी ब्रह्म-दृष्टि स्थिर हुई है। विश्वरूप की ब्रह्म-दृष्टि स्थिर थी। ब्रह्म-दृष्टि स्थिर न हो तो ब्रह्म-ज्ञान बह जाता है। ब्रह्मज्ञानी बहुत से हैं पर ब्रह्म-दृष्टि को स्थिर रखकर व्यवहार करने वाले थोड़े ही हैं। 'नारायण-कवच' के आधार से ही देवों ने राक्षसों का विनाश किया है– काम-राक्षस, क्रोध -राक्षस, का विनाश करके देवों ने स्वर्ग का राज्य प्राप्त कर लिया।

एक बार राक्षस विश्वरूप के पास आये और कहने लगे कि यज्ञ में हमें आहुति दीजिए। विश्वरूप के पास ब्रह्म-दृष्टि थी। विश्व की दृष्टि में कोई शत्रु नहीं है। कोई मित्र नहीं है। वे जगत् को ब्रह्मभाव से देखते हैं। वे मानते हैं कि सर्व में मेरे नारायण विराजमान हैं। मेरे भीतर चैतन्य रूप में जो परमात्मा है, वे ही सर्वत्र है। ये राक्षस क्या करेंगे? इन्हें किसी का भय नहीं है। विश्वरूप राक्षसों को भी यज्ञ में आहुति देने लगे। देवों को यह अच्छा नहीं लगा। इन्द्र राजा ने विश्वरूप का मस्तक काट डाला। त्वष्टा प्रजापति को बहुत दुःख हुआ कि मेरा पुत्र बहुत भोला है। अति सरल है। देवों ने अपना कार्य पूर्ण करके उसे मार डाला। अब मैं ऐसा यज्ञ करूँगा कि इन्द्र को मारने वाला पुत्र पैदा होगा। इन्द्र को मारने वाला पुत्र पैदा हो, ऐसी इच्छा से त्वष्टा प्रजापति ने यज्ञ प्रारम्भ किया।

भागवत में सकाम कर्म की निन्दा है। आप कोई भी कार्य करते समय अपने भगवान् को खुश करने की इच्छा से कार्य करिये। लोग मेरे लिये अच्छा बोलें, ऐसी भी इच्छा न रखिये। ऐसी इच्छा रखने वाले का मन अशांत रहता है। कई व्यक्ति परोपकार में शरीर को कष्ट देते हैं पर ऐसे व्यक्तियों के मन में यही इच्छा रहती है कि लोग मेरे लिए अच्छा कहें। कोई बुरा कहता है तो इन्हें बहुत दुःख होता है। कई माताएँ घर में काम करती हैं, पर ऐसी इच्छा रखती हैं कि लोग मेरी प्रशंसा करें। घर के लोग जब अच्छा नहीं बोलते, तब वे जी जलाती हैं कि मेरे भाग्य में यश नहीं हैं। मैंने इतना किया फिर भी मेरे लिये ऐसा कहते हैं। मेरी कद्र नहीं है! कोई आपकी कद्र करें,ऐसी इच्छा न रखिये। यह जीव ऐसा दुष्ट है कि यह ईश्वर की भी कद्र नहीं करता है तब यह जीव की कद्र किस तरह करेगा? मानव परमात्मा की कद्र कहाँ करता है? आपकी कद्र तो भगवान् करेंगे?

शुकदेवजी महाराज राजर्षि को सावधान करते हैं कि परमात्मा को प्रसन्न करने की भावना से सत्कर्म कीजिए। ऐसे सत्कर्म में थोड़ी भूल हो तो भगवान् क्षमा करते हैं। सकाम कर्म में थोड़ी भी भूल हो तो क्षमा नहीं है, सजा है। ऐसी भूल के परिणाम भी विपरीत आते हैं। इन्द्र को मारने वाला पुत्र हो, ऐसी इच्छा रखकर त्वष्टा यज्ञ करने लगे। आज यज्ञ के मन्त्र में थोड़ी भूल हुई। इससे इन्द्र के हाथों से मरने वाला पुत्र उत्पन्न हुआ। इन्द्र शत्रु विवर्धस्व बोलने के स्थान पर ईन्द्रशत्रू विवर्धस्व बोला गया। इन्द्र से द्वैष होने के कारण 'इ' को 'ई' गुरु किया और शत्रु का शत्रू 'उ' गुरु किया इससे इसका भावार्थ परिवर्तित हो गया। इन्द्र को मारने वाला के स्थान पर–इन्द्र के हाथों मरने वाला–ऐसा अर्थ हुआ। मन्त्र में भूल होने से अनर्थ हो जाता है। भार्या रक्षतु भैरवी के स्थान पर भार्या भक्षतु भैरवी बोला जाय तो क्या होगा?

यज्ञ–कुण्ड से एक भयंकर राक्षस बाहर आया। उसका नाम वृत्रासुर रखा। वृत्रासुर देवों को त्रस्त करने लगा। देवों ने परमात्मा की स्तुति की। प्रभु ने आज्ञा दी। उस आज्ञा के अनुसार दधीचि ऋषि की अस्थियों का वज्र बनाया और वज्र में परमात्मा ने अपना तेज डाला। उसी वज्र को हाथ में लेकर इन्द्र वृत्रासुर के साथ युद्ध करने गया। भयंकर युद्ध हुआ। इन्द्र के हाथ में वज्र था। वज्र में नारायण विराजमान थे। इन्द्र को भगवान् के दर्शन न हुए, पर वृत्रासुर को नारायण के दर्शन हुए। राक्षस था पर कृपापात्र दैवी जीव था। वृत्रासुर ने इन्द्र से कहा–इस युद्ध में जीत तुम्हारी होगी, मेरी हार होगी, पर मैं मान रहा हूँ कि भगवान् की मुझ पर विशिष्ट कृपा है–

त्रैवर्गिकायासविघातमस्मत्पतिर्विधत्ते पुरुषस्य शक्र।
ततोऽनुमेयो भगवत्प्रसादो यो दुर्लभोऽकिञ्चनगोचरोऽन्यैः॥

(६-११-२३)

जीत होने पर लोग मानते हैं कि भगवान् की मुझ पर कृपा है। जीव लौकिक सुख के लिए प्रत्यन करता है तो प्रभु को पसन्द नहीं है। लौकिक सुख तो जीव अनेक जन्मों से भोगता आ रहा है। आज तक उसे शांति नहीं मिली है। शरण में आये जीव को भगवान् अलौकिक आनन्द देते हैं। प्रभु के साथ लौकिक सुख का प्रयत्न सफल हो तो समझिये कि भगवान् की थोड़ी कृपा है। लौकिक सुख का प्रयत्न सफल न हो तो समझिये कि भगवान् की आप पर बहुत कृपा है। लौकिक बिगड़ता है तो मन लौकिक सुख से हट जाता है, लौकिक सुधरता है तो मन लौकिक में फँसा रहता है।

वृत्रासुर कहता है कि इन्द्र! तुम्हें स्वर्ग का राज्य मिलेगा, पर एक दिन तुम्हारा पतन होगा। मैं तो वहाँ जाने वाला हूँ, जहाँ जाने पर जीव कभी पुनः संसार में नहीं आता है। जहाँ जाने पर

कभी पतन नहीं होता है। मैं प्रभु के चरणों में जाने वाला हूँ। तुम्हें लौकिक सुख मिलेगा,मुझे मेरे प्रभु अलौकिक सुख देंगे। वृत्रासुर ने परमात्मा की सुन्दर स्तुति की है-

अहं हरे तव पादैकमूल दासानुदासो भवितास्मि भूयः।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः॥
न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठयं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे॥
अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥
ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः।
त्वन्माययाऽऽत्मात्मजदारगेहे-ष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात्॥

(६-११-२४/२५/२६/२७)

जब भक्ति समुचित रूप से होती है, तब अभिमान मरता है। वृत्रासुर मानता है कि प्रभु की सेवा के लिए मैं योग्य नहीं हूँ। भगवान् की सेवा करने वाले वैष्णवों का मैं नौकर बन जाऊँ। बड़ों का नियम होता है कि वे जिस घर में जाते हैं, वहाँ के नौकरों को बहुत प्रेम से देखते हैं। वृत्रासुर कहता है कि आपके लाड़ले भक्तों का मैं नौकर बन जाऊँ, तो कभी जब आप वहाँ जायेंगे तब आपकी प्रेमपूर्ण दृष्टि मुझ पर भी पड़ेगी। स्वर्ग का सुख मुझे तुच्छ लगता है। ब्रह्मलोक का राज्य मुझे नहीं चाहिये। एक बार कृपा दृष्टि से आप मेरी ओर देखिये। आपकी दृष्टि मुझ पर पड़ जाय तो मुझे और कुछ नहीं चाहिए। मेरी वाणी कृष्ण-कृष्ण कीर्तन करती रहे, मेरा मन आपके मंगलमय स्वरूप का ध्यान करता रहे। बछड़ा जिस तरह गाय माता से मिलने के लिए उत्कण्ठित रहता है, उसी तरह मैं आपके दर्शन के लिए उत्कण्ठित रहूँ। मेरे प्राण आपके लिए तड़पते रहें। मरे पापों के लिए मुझे पशु का जन्म मिले तो मुझे वैष्णव के घर की गाय बनाइएगा, जिससे मेरा दूध बालकृष्णलाल की सेवा में जाये, किसी पवित्र ब्राह्मण के पेट में जाये। मुझे किसी विलासी के पेट में नहीं जाना है। विलासी के पेट में जाने पर भोग-विलास में वह मेरा विनाश करेगा। आपके लाड़ले भक्तों का मुझे सत्संग मिले। आपके घर जो अनाज है, उसे भी ऐसी इच्छा रहती है कि मुझे किसी कामी अथवा विलासी के पेट में नहीं जाना है, किसी साधु-सन्त के पेट में जाना है। किसी ब्राह्मण के पेट में जाऊँ, जो परमात्मा का ध्यान करता हुआ, गायत्री का जप करता हुआ, मेरा पाचन करे। वृत्रासुर ऐसा सुन्दर बोला कि इन्द्र को भी आश्चर्य हुआ। एक वर्ष तक युद्ध चला। अंत में इन्द्र ने व्रज से वृत्रासुर का मस्तक काट डाला।

शुकदेवजी की बात सुनकर परीक्षित राजा को आश्चर्य हुआ। वृत्रासुर महान भगवद् भक्त है, वह राक्षस है, पर उसका भगवान् के प्रति कैसा प्रेम है। भगवान् की कृपा हो तो तुरन्त मुक्ति मिलती है, पर वे भक्ति तुरन्त नहीं देते हैं। भक्ति भगवान् को परतन्त्र बनाती है, अनन्य भक्तों की सेवा कभी भगवान् को भी करनी पड़ती है। भगवान् को भक्तों के अधीन रहना पड़ता है। इससे भगवान् अनन्य भक्ति तुरन्त नहीं देते हैं। वृत्रासुर तो राक्षस था, उसे अनन्य भक्ति कैसे मिली होगी? शुकदेवजी महाराज ने वृत्रासुर के पूर्वजन्म की थोड़ी कथा कही है–

पूर्व जन्म में वृत्रासुर चित्रकेतु नाम का राजा था। उसकी अनेक रानियाँ थीं, पर एक ही रानी के घर एक ही पुत्र था। सौतेली माता के मन में मत्सर जागा। उसने दूध में विष मिलाकर बालक को पिला दिया। बालक का मरण हो गया। एक ही पुत्र था, उसकी मृत्यु से राजा-रानी बहुत कलपने लगे। जिस सौतेली माता ने विष दिया था, वह भी दिखावा करने लगी। झूँठ-मूठ रोने लगी। उसी समय नारदजी अँगिरा ऋषि के साथ वहाँ आये। उन्होंने चित्रकेतु को समझाया कि अब रोने से क्या लाभ? जिसका मरण हुआ वह परमात्मा के चरणों में गया है, ऐसा मानना चाहिए। जिसका मरण हुआ, वह मृत्यु के बाद भी वापस नहीं आता है। आप अन्यों के लिये रोते हैं, पर अपने लिए क्यों नहीं रोते? अपने लिए भी थोड़ा रोइए। सोचिये कि आज तक मैंने प्रभु के लिए कुछ नहीं कियां, मेरा जीवन वृथा गया। अन्यों के लिए रोने से कुछ भी लाभ नहीं है। पुत्र चार प्रकार के होते हैं–शत्रु पुत्र, ऋणानुबंध पुत्र, उदासीन पुत्र, सेवक पुत्र। यह तो तुम्हारे पूर्व जन्म का शत्रु पुत्र बनकर आया था। वैर के प्रतिशोध के लिए शत्रु पुत्र बनकर आता है। कई बालक रात में बहुत रोते हैं। मां को जागरण करवाते हैं। कई माताएँ जब बहुत त्रस्त हो उठती हैं, तब कहती हैं कि मेरा बैरी आया है। बालक बहुत त्रस्त करता है और बड़ा होकर माता-पिता को बहुत त्रस्त करता है। राजा! शत्रु का मरण हुआ है, ऐसा सोचकर सन्तोष मान लो। तुम अपना मरण सुधारने का यत्न करो। यमुनाजी के तट पर चित्रकेतु राजा को नारदजी ले गये। उन्हें ७१ अक्षर का संकर्षण मन्त्र दिया। अनेक वर्षों तक यमुनाजी के तट पर उन्होंने इस मन्त्र के जप किये। उन्हें शेषनारायण के दर्शन हुए। चित्रकेतु ने शेषनारायण की स्तुति की। प्रभु ने उन्हें अपना पार्षद बनाया और विद्याधर लोक का राज्य दिया। विद्याधरों का राजा, शेषनारायण का पार्षद चित्रकेतु एक बार विमान में बैठकर घूमते-घूमते कैलास धाम में आ पहुँचा। वहाँ सिद्ध महात्माओं की बड़ी सभा का आयोजन था। सिद्धों के अखाड़े कैलास धाम में हैं। जन्मसिद्ध, मन्त्रसिद्ध तथा औषधसिद्ध–कैलास धाम में ऐसी दिव्य वनस्पति प्राप्त होती है कि यह वनस्पति जो एक बार खाता है तो बारह वर्षों तक भूख नहीं लगती, शक्ति का विनाश नहीं होता। कैलास में ऐसे औषधसिद्ध महात्मा हैं।

योगसिद्ध, ज्ञानसिद्धि–ऐसे सिद्ध महापुरुष कैलास में रहते हैं। सिद्धों के सद्गुरु सदाशिव हैं। कैलास में बड़ी सभा थी और उसके अध्यक्ष के स्थान पर भगवान् शंकर विराजमान थे। आज शिव-स्वरूप दिव्य था। गोद में पार्वतीजी थीं। आलिंगन देकर वे बैठे थे। आज इस तरह शंकर भगवान् विराजमान थे। उसका कारण था कि कामदेव शिवजी के साथ लड़ने के लिए आये थे। शिवजी ने कामदेव से कहा कि एक बार मैंने तुम्हें जलाकर भस्म कर दिया था। क्या तुम भूल गये? तुम्हारी स्त्री बहुत रोने लगी, तब मैंने तुम्हें भस्म में से सजीव किया। कामदेव ने कहा कि महाराज, मैं भूला नहीं हूँ। मुझे याद है कि आपने मुझे जलाकर भस्म कर दिया पर मेरे मन में ऐसा रह गया है कि आप समाधि में बैठे थें और मैं लड़ने आया था, वह मेरी भूल थी। जब शत्रु बेपरवाह हो तब उसके साथ युद्ध करना चाहिए। आप समाधि में अति सावधान थे, आपने आँख खोली और मैं भस्म हो गया। शिवजी ने कहा कि भाई तुम्हारी क्या इच्छा है? कामदेव ने कहा कि पार्वतीजी से आप दूर बैठते हैं। मेरी इच्छा है कि आप पार्वती को आलिंगन दीजिए, और मैं बाण चलाऊँ और तब भी आपके मन में जरा भी विकार न आने पाये तो मैं मानूँगा कि आप सच ही महादेव हैं और विकार आ गया, आप कामाधीन हो गये तो मैं महादेव। शिवजी ने कहा कि भाई, तुम्हारी ऐसी इच्छा है तो मैं ऐसा करता हूँ। पार्वतीजी को आलिंगन देकर शिवजी बैठे हैं। कामदेव बाण चलाते हैं।

भगवान् शंकर-पार्वती की कोई पूजा करे या स्मरण करे, तो उसे काम का स्पर्श नहीं होता है। भगवान् शंकर का काम क्या कर सकता है? जिनके मस्तक पर ज्ञानगंगा है, ऐसे शिवजी और पार्वतजी निर्विकार हैं। जो काम की मार नहीं खाता है, वह शिव है। कामदेव को विश्वास हो गया कि शंकर देव नहीं है, पर सर्व देवों के देव हैं। उन्हें परम आश्चर्य हुआ।

यह शिव-पार्वतीजी का निर्विकार रूप था, पर देखने वाले चित्रकेतु की आँखों में विकार था। भक्ति में ज्ञान-वैराग्य का साथ न हो तो भक्त भूल करता है। ज्ञान में भक्ति की जरूरत है, भक्ति में ज्ञान की जरूरत है। ज्ञान-भक्ति में वैराग्य की जरूरत है। चित्रकेतु भगवत्-भक्त था, पर उसकी भक्ति में ज्ञान-वैराग्य का साथ न था। वह शिव-स्वरूप को नहीं समझ सका। शिवजी के लिए चाहे जैसा कहने लगा। शिवजी पर जरा भी असर नहीं हुआ। शिवजी शान्त रहे। होठों में हँसने लगे पर माता पार्वतीजी से सहन नहीं हुआ। पार्वती ने शाप दिया कि तुम राक्षस हो जाओगे। जगत् में किसी भी स्त्री-पुरुष को काम भाव से देखने वाला राक्षस-सदृश हो जाता है। जगत् के किसी भी स्त्री-पुरुष को लौकिक भाव से देखने वाले के मन में बुरे चित्र आते हैं और ऐसे चित्र मन में गढ़ जाने से वह राक्षस हो जाता है। जगत् के सभी स्त्री-पुरुषों को लक्ष्मीनारायण की भावना

से देखिये। भगवान् के स्वरूप को हृदय में स्थिर करना ही भक्ति कहलाता है। संसार के चित्र जिसके मन में स्थिर हो जाते हैं, वह भक्ति किस तरह कर सकता है?

बाद में चित्रकेतु को पश्चात्ताप हुआ। माताजी को वंदन करके उसने क्षमा माँगी। वही चित्रकेतु वृत्रासुर हुआ। संसार के चित्र जिसके मन में आते हैं, उसकी वृत्ति बहिर्मुख होती है। मनोवृत्ति बहिर्मुख होने पर आनन्द चला जाता है। अंतर्मुख वृत्ति में आनन्द है। संसार के चित्रों को नष्ट करने के लिए लक्ष्मीनारायण की पूजा कीजिए। जगत् के सभी स्त्री-पुरुषों को लक्ष्मीनारायण के भाव से देखिये। जो सभी लक्ष्मीनारायण के भाव से देखते हैं, उनके मन में परमात्मा का स्वरूप स्थिर होता है। गलत चित्र नष्ट हो जाते हैं, वह कृतार्थ बनता है।

इसके बाद दिति के वंश का वर्णन किया गया है। दिति की दो सन्तानें हुई–हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु। हिरण्यकशिपु का प्रह्लाद हुआ। प्रह्लाद का विरोचन हुआ। विरोचन का बलि हुआ। बलि का बाणासुर हुआ। दिति की इच्छा थी कि इन्द्र को मारने वाला पुत्र हो। कश्यप ऋषि ने दिति को एक वर्ष के लिए पुँसवन व्रत दिया। इसके बाद इस पुँसवन व्रत की विधि का वर्णन दिया गया है। दिति से व्रत में थोड़ी भूल हुई, इससे इन्द्र को मारने वाले पुत्र का जन्म नहीं हुआ। ४९ मरुत गणों का जन्म हुआ। पुंसवन व्रत की कथा तथा मरुत गणों के जन्म की कथा करके, यह षष्ठ स्कन्ध परिपूर्ण किया गया है–

तुष्टाः प्रयच्छन्ति समस्तकामान् होमावसाने हुतभुक् श्रीर्हरिश्च।
राजन् महन्मरुतां जन्म पुण्यं दितेर्व्रतं चाभिहितं महत्ते॥

(६-१९-२८)

इति षष्ठः स्कन्धः समाप्तः

हरि ॐ तत्सत्

*

श्रीगणेशाय नमः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवत-रसामृत

सप्तम स्कन्धः

३३–अंगना-अंगना मध्य माधव

समः प्रियः सुहृद्ब्रह्मन् भूतानां भगवान् स्वयम्।
इन्द्रस्यार्थे कथं दैत्यानवधीद्विषमो यथा।। (७-१-१)

परमात्मा श्रीकृष्ण मथुरा में अथवा भगवान् श्री रामचन्द्रजी अयोध्या में प्रकट हों तो इससे हमें क्या लाभ? हमारे घर प्रभु पधारते हैं तो हमें लाभ होता है। मन्दिर में दीपक जलाने से मन्दिर में प्रकाश होता है। घर में दीपक जलाने से ही घर में उजाला होता है। प्रभु हमारे भीतर प्रकट हों, भीतर नारायण विराजमान हों, तो ही सार्थकता है। यह हृदय-सिंहासन भगवान् का है पर उस पर काम चढ़ बैठा है। काम मित्र नहीं, शत्रु है। काम स्त्री-पुरुष किसी को भी सुख नहीं देता है। काम प्रायः सभी को रुलाता है। काम शत्रु होने पर भी मित्र-सा लगता है। काम का तिरस्कार करके, धक्के मारकर बाहर निकालिये। हृदय-सिंहासन पर प्रभु को बैठाना है। अब नृसिंह भगवान् प्रकट होने वाले हैं। सातवें सर्ग में नृसिंह प्रभु की–प्रह्लाद की कथा अति मधुर है।

सप्तम स्कन्ध के प्रारम्भ में राजा ने प्रश्न पूछा–शुकदेवजी महाराज! आपने कथा में अनेक बार कहा है कि परमात्मा सर्व व्यापक है, सर्व में समभाव से विराजमान हैं, पर जगत् में समता नहीं दिखाई देती, विषमता ही दीख पड़ती है। ईश्वर सर्व में समभाव से विराजमान हैं तो यह विषमता कौन उत्पन्न करता है? विषमता से वैर जागता है, विरोध होता है। ईश्वर दोनों स्थनों में समभाव से विराजमान हैं तो बिल्ली चूहे को क्यों मारती है? झगड़ा कौन खड़ा करता है?

शुकदेवजी ने कहा कि राजन्, प्रश्न बहुत सुन्दर है। परमात्मा की समता भाव में है, क्रिया में नहीं है। सूर्यनारायण सभी को समान प्रकाश देते हैं। सूर्यनारायण की जो पूजा करता है, उसके घर में प्रकाश देते हैं, न पूजने वाले के घर में भी प्रकाश देते हैं। आस्तिक, नास्तिक, सज्जन, दुर्जन सभी को समान रूप से प्रकाश देते हैं। सूर्यनारायण के प्रकाश में कोई पुण्य करता है, कोई पाप करता है, पर सूर्य नारायण सभी को समान प्रकाश देते हैं। भगवान् की समता सूर्यनारायण-सी है।

वेदांत का सिद्धांत है कि ब्रह्म की क्रिया नहीं है और माया की सत्ता नहीं है। क्रिया व्याप्य को होती है। व्यापक जाता नहीं है, आता भी नहीं है। व्याप्य उसे कहते हैं, जो एक जगह है और दूसरी जगह नहीं है। व्यापक तो सभी जगह सर्वत्र है। यह शरीर व्याप्य है। यह शरीर मंडप में है, मंडप के बाहर नहीं है। भगवान् मंडप में भी हैं, मंडप के बाहर भी हैं। व्यापक की क्रिया नहीं है, क्रिया व्याप्य की होती है। जो सर्वकाल सर्व में है, उसकी कोई क्रिया नहीं है, वहाँ विषमता कहाँ से? भगवान् में विषमता नहीं आती है, विषमता माया लाती है। माया की सत्ता नहीं है, प्रभु के आधार पर माया क्रिया करती है। परमात्मा की सत्ता और माया की क्रिया–दोनों का मिश्रण है जगत्। भगवान् कुछ नहीं करते हैं, माया सब कुछ करती है, रात्री में दीपक के प्रकाश में मानव सब कुछ करता है, दीपक कुछ नहीं करता है, पर दीपक के बिना मानव कुछ नहीं कर पाता है। भगवान् की सत्ता से माया क्रिया करती है। क्रिया माया की है, पर माया की क्रिया का आरोप भगवान् पर होता है। वेदांत के ग्रन्थों में उसे अध्यारोप-अपवादन न्याय करहते हैं। लोग गाड़ी में बैठकर बम्बई जाते हैं। क्रिया गाड़ी की है पर गति की क्रिया का आरोप बम्बई पर होता है। इससे लोग कहते हैं कि बम्बई आ गयी। सच तो यह है कि गाड़ी आयी है–आ पहुँची है। बम्बई आयी भी नहीं है, गयी भी नहीं है। बम्बई तो स्थिर है। सर्व आधार-सर्व व्यापक आते भी नहीं हैं, जाते भी नहीं हैं, प्रभु के आधार से माया क्रिया करती है। निर्गुण, निराकार भगवान् निष्क्रिय हैं। उनकी कोई क्रिया है ही नहीं, तो विषमता कहाँ से होगी? कैसे होगी?

हाँ, सगुण-साकार भगवान् लीला करते हैं। वैष्णव आचार्य वर्णन करते हैं कि ठाकुरजी करते हैं उसका नाम है लीला और जो जीव करता है उसका नाम क्रिया है। क्रिया और लीला में बहुत भेद है। जहाँ स्वार्थ है, सुख भोगने की इच्छा है, और मैं कर रहा हूँ, ऐसा सूक्ष्म अभिमान है, वहाँ क्रिया है। जहाँ स्वार्थ नहीं है, अहंकार नहीं है, सुख भोगने की इच्छा नहीं है, वहाँ लीला है। श्रीकृष्ण रास रचाते हैं, गोपियों को आनन्द देने के लिए। उन्हें आनन्द की इच्छा नहीं है। गोपियों के साथ रास खेलने में क्या भगवान् को कुछ सुख मिलता है? क्या रास न खेलने से भगवान् दुःखी है? परमात्मा की किसी प्रकार के सुख भोगने की इच्छा नहीं है। परमात्मा आनन्दमय हैं, स्वयं आनन्द हैं। श्रीगंगा माता को प्यास नहीं लगती है। आनन्दमय परमात्मा की सुख भोगने की इच्छा नहीं होती है।

जीव को आनन्द का दान देने के लिए परमात्मा लीला करते हैं। श्रीकृष्ण करते हैं वह है लीला, जीव करता है वह है क्रिया। क्रिया बंधन लाती है, लीला बंधन से छुड़ाती है। भगवान् की लीला में आपको विषमता जैसी दीख पड़ती है, पर उसमें विषमता नहीं है, समता है–

भावा द्वैतं सदा कुर्यात् क्रियाद्वैतं न कर्हिचित्।

अद्वैत क्रिया में नहीं है, भावना में है। क्रिया में अधिकार के अनुसार विषमता करनी पड़ती है। क्रिया की विषमता, विषमता नहीं है । भाव में विषमता ही विषमता है।

हमारे आँगन में गाय माता आती है, तो हम घास खिलाते हैं और आँगन में गरीब आता है तो हम अन्न देते हैं। यह विषमता है कि समता है? गाय में भी नारायण हैं और गरीब में भी नाारायण हैं। गाय में विराजमान नारायण की सेवा घास से होती है और गरीब में विराजमान परमात्मा की सेवा अन्न से होती है। यह विषमता नहीं, समता है। दोनों में भाव समान है, भाव में समता ही समता है, क्रिया में अधिकार के अनुसार विषमता करनी ही पड़ती है। माता भी अपनी दो सन्तानों के साथ समान क्रिया नहीं करती है। बड़े बेटे को अधिक खाना देती है, छोटे बेटे को थोड़ा कम खाना देती है। माता का प्रेम दोनों के प्रति समान ही है।

भगवान् माता जैसे हैं। प्रभु की लीला में आपको विषमता जैसी दीख पड़ती है, पर वह विषमता नहीं, समता है। राजा का प्रश्न यह था कि राक्षस वृत्रासुर भगवद् भक्त था, फिर भी उसे क्यों मारा? भगवान् देवों के पक्ष में रहकर राक्षस को मारते हैं तो वह भगवान् की समता है कि विषमता? वृत्रासुर तो भगवद् भक्त था, फिर वृत्रासुर को प्रभु ने क्यों मारा?

शुकदेव जी महाराज वर्णन करते हैं कि वृत्रासुर को प्रभु ने मारा नहीं, तारा है। श्रीकृष्ण की मार में प्यार है। श्रीकृष्ण के क्रोध में प्रेम भरा है, भगवान् की प्रमुख दो शक्तियाँ हैं। निग्रह और अनुग्रह की शक्ति। अनुग्रह शक्ति से देवों का कल्याण करते हैं और निग्रह शक्ति से राक्षसों का कल्याण करते हैं। भगवान् की लीला में विषमता दीख पड़ती है पर वहाँ विषमता नहीं, समता है।

राजा! आप जैसा प्रश्न कर रहे हैं, वैसा ही प्रश्न एक बार आपके दादा धर्मराज ने राजसूय यज्ञ में नारदजी से पूछा था। राजसूय यज्ञ में हजारों ऋषियों ,साधुओं, महात्माओं का आगमन हुआ था। प्रश्न था कि प्रथम पूजा किसकी करनी है? यही प्रश्न उपस्थित हुआ था? सभी ने निर्णय दिया कि द्वारिकानाथ विराजमान हैं। प्रथम पूजा तो द्वारिकानाथ की ही होनी चाहिये। धर्मराज ने द्वारिकानाथ की पूजा की। सभी प्रसन्न हुए पर सभा में दो-चार ऐसे भी थे, जिन्हें यह पसन्द नहीं आया। शिशुपाल उठ खड़ा हुआ और सभा के समक्ष श्रीकृष्ण को गालियाँ देने लगा। जिस सभा में प्रथम पूजा का सम्मान मिला, उसी सभा में शिशुपाल गालियाँ दे रहा है, अपमान कर रहा है।

यह संसार ऐसा ही है। अब इस संसार में भगवान् पधारें तो कितने ही जीव भगवान् की भी निन्दा करें। ऐसी इच्छा नहीं रखनी चाहिए कि सब मेरे लिये अच्छा ही कहें, सभी मेरी प्रशंसा करें। आपका व्यवहार कैसा भी हो,पर कई जीव आपके लिये बुरा कहेंगे ही। यह जीव तो ऐसा

दुष्ट है कि भगवान् के लिये भी बुरा कहता है। परमात्मा निर्दोष हैं। जो भगवान् के लिये भी बुरा कहता है, उनके लिये भी कई लोग अच्छा नहीं कहते हैं, तो आपके लिये कैसे अच्छा कहेंगे? हमारे लिये कई लोग बुरा कहते हैं, तो अच्छा ही है। इसमें हमारा कल्याण है। जो सहन करता है वह खुशी होता है। आपके लिये कोई बुरा कहते हैं तो इससे आपका बाल भी बाँका नहीं होगा। आपका नुकसान नहीं होगा। आपके लिये जो बुरा कहते हैं, वे ही दुःख होंगे। निंदा सहन करना महान् पुण्य है, निंदा करना महान् पाप है।

शिशुपाल सभा में श्रीकृष्ण की निंदा करते हैं, चाहे जैसा भी बोलते हैं। भगवान् शांति से सुनते हैं। शिशुपाल ने एक सौ गालियाँ दी हैं। जहाँ मर्यादा पूर्ण हुई कि प्रभु ने सुदर्शन चक्र से उसका सिर काट डाला। शिशुपाल के शरीर से निकला हुआ दिव्य तेज श्रीकृष्ण के चरणों में लीन हुआ। सोचने लगे कि प्रभु की निन्दा करने वाले को तो दुर्गति मिलनी चाहिए, उसे सद्गति कैसे मिली?

धर्मराज ने नारदजी से प्रश्न पूछा। नारायण के स्मरण से नारदजी का हृदय द्रवित हुआ। नारदजी ने कहा कि मेरे भगवान् अति उदार हैं। मेरे श्रीकृष्ण अति प्रेमपूर्ण हैं। कन्हैया बहुत प्रेम करता है। किसी भी निमित्त के द्वारा जगत् भुलाया जाय और परमात्मा के दर्शन में, स्मरण में, तन्मयता आ जाय तो जीव का कल्याण होता है। इस जगत् में रहकर जगत् को भूल जाइए। परमात्मा के स्वरूप में तन्मय बनिये, तो ही कल्याण है। यह शिशुपाल वैर भाव से भी परमात्मा का स्मरण कर रहा था, चिंतन कर रहा था। हथौड़ा कदाचित पारसमणि को तोड़ दे पर पारसमणि तो हथौड़े को भी सुवर्ण बना ही देती है। परन्तु पारसमणि लोहे को पारसमणि नहीं बनाती है। हाँ, मन से श्रीकृष्ण का जो स्पर्श करते हैं, उन्हें श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण बना देते हैं–

तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत् (७-१-३१)

परमात्मा का तन से कोई स्पर्श नहीं कर सकता है। यह शरीर मल-मूत्र से भरा है। यह शरीर प्रभु से मिलने के योग्य नहीं है। परमात्मा से मन से मिलिये। मन से परमात्मा का स्पर्श करिये। किसी निमित्त के द्वारा इस जगत् को भूल जाइए और परमात्मा के दर्शन में, स्मरण में तन्मय बनिये।

शिशुपाल श्रीकृष्ण को शत्रु मानता है। मन मित्र से भी अधिक स्मरण शत्रु का करता है। शिशुपाल कोई साधारण जीव नहीं है, बैकुण्ठ धाम का पार्षद है। सनत्कुमार बैकुण्ठ धाम में दर्शन करने गये, तब जय-विजय ने प्रतिबन्ध किया था। इससे सनत्कुमारों ने जय-विजय को–राक्षस योनि में तीनजन्म लेने पड़ेंगे–ऐसा शाप दिया था। यही जय-विजय हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपु हुए। वे ही रावण-कुम्भकर्ण हुए और वे ही शिशपाल-दंतवक्त्र हुए।

वराहनारायण ने हिरण्याक्ष का उद्धार किया पर हिरण्यकशिपु जब प्रह्लादजी को मारने दौड़ा तब स्तम्भ में से नृसिंह स्वामी का प्राकट्य हुआ था। उन्होंने प्रह्लादजी का रक्षण किया। हिरण्यकशिपु का उद्धार किया।

धर्मराज ने प्रश्न पूछा—महाराज, प्रह्लादजी की कथा विस्तार से सुनने की बहुत इच्छा है। पिता पुत्र को मारने दौड़ा। प्रह्लादजी तो महान् भगवद् भक्त थे। शुकदेवजी महाराज परीक्षित को तथा नारदजी धर्मराज को कथा सुनाते हैं—

वराहनारायण ने हिरण्याक्ष का उद्धार किया, तब दिति को बहुत दुःख हुआ। उसका दूसरा पुत्र हिरण्यकशिपु उसे शान्त रहने के लिये कहता है। कहता है कि मैं ब्रह्माजी का तप करूँगा। वे मुझे अजर अमर होने का वरदान देंगे। तब हिरण्याक्ष को मारने वाले विष्णु की मैं खबर लूँगा। विष्णु के साथ मैंने वैर किया है, पर अभी कुछ नहीं कहना है। माता को समझा कर हिरण्यकशिपु मन्दराचल पर्वत पर तप करने चला गया। वहाँ वह ब्रह्माजी के मंत्र का जप करने लगा। अन्न-जल का उसने त्याग किया। हिलना-डुलना उसने छोड़ दिया।

बहुत उग्र तप उसने किया। कई वर्षों तक तपस्या की। हिरण्यकशिपु का उग्र तप देखकर ब्रह्माजी को भी आश्चर्य हुआ। ब्रह्माजी वरदान देने आये। कमंडल का जल हाथ में लिया और उसके ऊपर छिड़का। अग्निकुंड में से जैसे अग्नि बाहर आती है, हिरण्यकशिपु बाहर आया। कई वर्षों तक संयम रखा था। उसकी काया कंचन सी हो गयी थी। हिरण्यकशिपु ने अजर-अमर होने का वरदान माँगा। ब्रह्माजी ने कहा—जिसका जन्म हुआ उसे मरना तो पड़ेगा ही, मरने की कोई शर्त रख लो। हिरण्यकशिपु ने कहा—दिन में न मर पाऊँ, रात्रि में भी न मर सकूँ, भीतर न मर सकूँ, बाहर न मर सकूँ, पशु से न मर सकूँ, मानव भी न मार सके, ऐसा वरदान दीजिए।

शांति से सोचने पर ध्यान में आयेगा कि यह कौन बोल रहा है और क्या वरदान माँग रहा है। भागवत में समाधि भाव मुख्य है। दिति शब्द का अर्थ होता है भेद बुद्धि। जहाँ भेद होता है, वहाँ भय होता है। जंहाँ अभेद है वहाँ अभय है।

ज्ञानी पुरुष ऐसा मानते हैं कि मेरे भीतर जो परमात्मा विराजमान हैं, वे सर्व में हैं। वे जगत को अभिन्न भाव से देखते हैं। साधारण मानव भेद-भाव से देखता है। यह काला है, यह गौर है, यह जवान है, यह वृद्ध है, यह अच्छा है यह बुरा है। जहाँ भेद-भाव आता है वहाँ विकार आ जाता है, वहाँ राग-द्वेष आते हैं, वहाँ भय लगता है।

इस जगत् में क्या अच्छा और क्या बुरा, यह कहना कठिन है। आप छोटे थे, तब आपको खिलौने बहुत भाते थे। बच्चे के खिलौने कोई उठा लेगा तो बच्चा रोने लगेगा। बालक को खिलौनों

में सौंदर्य दीख पड़ता है। क्या आपको खिलौनों में सौंदर्य दीख पड़ता है? आज जो आपको अच्छा लगता है, कल अच्छा नहीं लगेगा। अपने मन को शुद्ध और शांत रखा है तो जगत् का विचार छोड़िये। जगत् जिसे अच्छा लगता है, उसका मन बिगड़ता है, जगत् को जो बुरा मानता है, उसका मन भी बिगड़ा है। जगत् बुरा नहीं है पर जगत में श्रीकृष्ण के सिवाय कुछ भी अच्छा नहीं है। जगत क्षण-क्षण में परिवर्तित है। अभी जो अच्छा है दो घंटों के बाद बिगड़ जायगा। परमात्मा का स्वरूप एक समान रहता है।

दिति शब्द का अर्थ है भेद-बुद्धि। दिति की दो संतानें हैं–हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु। जहाँ भेद-बुद्धि है, वहाँ ये दो बालक आते हैं–अहंता और ममता। हिरण्याक्ष ममता का स्वरूप है और हिरण्यकशिपु अहंता का है। ममता को मारना थोड़ा-सा सरल है, अहंता को–देहाभिमान को मारना बहुत कठिन है। देहाभिमान दिन को नहीं मरता, रात को नहीं मरता; मानव से नहीं मरता, पशु से नहीं मरता, भीतर नहीं मरता, बाहर नहीं मरता। देहाभिमान को मध्य में ही मारना है। जो शरीर है, वह मैं हूँ, मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ, मैं पत्नी हूँ, मैं पति हूँ–ऐसा समझने को देहाध्यास कहते हैं। आप पति नहीं, आप पत्नी भी नहीं। जब आपका जन्म हुआ तब क्या किसी के पति थे? जन्म से कोई पति नहीं है, कोई पत्नी नहीं है। पति-पत्नी का संबंध व्यवहार दृष्टि से सत्य है, तत्वदृष्टि से सोचने पर सत्य नहीं है। पत्नी की मृत्यु हो जाय तब जिन्दा रहने पर भी पति नहीं कहा जाता। पत्नी के होने पर ही वह पति है। पत्नी नहीं है तो पति कहाँ है? पति–पत्नी का संबंध सापेक्ष है। जन्म से सम्बन्ध नहीं है, मृत्यु के बाद भी नहीं रहता है। जीव, ईश्वर का अंश है। जीव ईश्वर का संबंध सच्चा है। मैं परमात्मा का हूँ–निरंतर ऐसा स्मरण रखिये।

देहाध्यास अनेक जन्मों से मन में घर करके बैठा है। जिसे याद आता है कि मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ, उसे काम मारता है। जो ऐसा समझ रहा है कि मैं पति हूँ,मैं पत्नी हूँ, उसे काम त्रस्त करता है। वह पाप कराता है, रुलाता है।

यह देहाध्यास मध्य में मरता है, वह भीतर नहीं मरता, बाहर नहीं मरता, उसे मध्य में ही मरना पड़ेगा। शांति से थोड़ा सोचने पर ध्यान में आयगा कि मन संकल्प के बिना नहीं रह सकता है। एक संकल्प पूरा होगा कि वह दूसरा संकल्प करेगा। दूसरे के बाद तीसरा संकल्प करेगा। दीये में जब तक तेल है, तब तक दीया जलता है। दीये में तेल के न रहने पर दीया शांत हो जाता है। मन संकल्प से ही जीता है, मन संकल्प–रहित होने पर भगवान् में मिल जाता है। प्रत्येक संकल्प की संधि की महत्ता को संभालिये। संकल्प की समाप्ति हुई कि दूसरा संकल्प शुरु होने वाला ही

है। एक की समाप्ति और दूसरे का प्रारंभ। उनके मध्य में, उनकी संधि में भगवान् को रखिये। ब्राह्मण संधि में संध्या करते हैं।
रात्रि की समाप्ति और दिन का प्रारंभ हुआ कि प्रात: संध्या करते हैं। ब्राह्मण तो समय की संधि संभालते हैं, जब कि संत-महात्मा प्रत्येक दो संकल्पों की संधि को संभालते हैं।

एक संकल्प की समाप्ति हुई, दूसरे संकल्प का प्रारम्भ होने वाला है, उनके मध्य में श्रीकृष्ण को रखिये। रासलीला में वर्णन आता है। दो गोपियों के मध्य में श्रीकृष्ण हैं। अंगना-अंगना मध्य माधव। एक संकल्प की समाप्ति और दूसरे संकल्प के प्रारम्भ के मध्य में जो परमात्मा को रखते हैं, परमात्मा का चिंतन करते हैं, उनका देहाध्यास मरता है। मैं पति हूँ, मैं पत्नी नहीं हूँ, मैं परमात्मा का अंश हूँ, मुझे परमात्मा के चरणों में जाना है—दो मनोवृत्तियों के मध्य में—संधि में इस प्रकार के आत्म-चिंतन करने की, परमात्मा का स्मरण करने की आदत डालिये। अनेक जन्मों का देहाध्यास ऐसा दृढ़ हो गया है कि साधारण ज्ञान से या भक्ति से वह मरेगा नहीं, निरन्तर भक्ति की आवश्यकता है। देहाभिमान शस्त्रों से नहीं मरता, निरन्तर भक्ति से मरता है।

हिरण्यकशिपु देहाध्यास है, वह सभी को रुलाता है। उसे भगवान् मध्य में—देहली पर मारते हैं। हिरण्यकशिपु ने कहा— दिन में न मरूँ, रात्रि में न मरूँ, भीतर न मरूँ, बाहर न मरूँ। ब्रह्माजी विचार में पड़ गये। उन्होंने नारायण का स्मरण किया और कहा कि ऐसा ही होगा। हिरण्यकशिपु को उन्होंने वरदान दिया। तप के प्रताप से हिरण्यकशिपु की शक्ति बहुत बढ़ गयी। शक्ति का उपयोग जो भोग-विलास के लिये करते हैं, वे राक्षस-से हो जाते हैं। शक्ति का उपयोग भक्ति के लिए कीजिए, परोपकार के लिए कीजिए, परमात्मा के लिये कीजिए। समय, सम्पत्ति और शक्ति का जो सदुपयोग करता है वह है देव तथा दुरुपयोग करता है वह है दैत्य। हिरण्यकशिपु की गणना राक्षसों में हुई, प्रह्लादजी की गणना देवों में हुई। बाप राक्षस पुत्र देव।

आप मन से निश्चय कीजिये कि आपको क्या होना है? देव होना है कि राक्षस। हिरण्यकशिपु ने सर्व राजाओं का पराभव किया, फिर वह स्वर्ग में गया। देवों से युद्ध करके, देवों को उसने पराजित किया और उनकी सम्पत्ति लेकर आ गया। पंजाब में मुलतान शहर है। वहाँ हिरण्यकशिपु ने राजधानी की स्थापना की। मुलतान शहर को पंजाब के लोग प्रह्लादपुरी कहते हैं। नृसिंह स्वामी का प्राकट्य पंजाब में हुआ। पंजाब के कुछ लोग अपने नाम के पीछे सिंह लगाते हैं। गुरुदत्तसिंह, गुलाबसिंह, भगतसिंह आदि पंजाब में नरसिंह प्रकट हुए इससे पंजाब के लोग सिंह जैसे वीर हुए। हमारे गुजरात के लोग अब बकरी जैसे होने लगे हैं। जरा भी शक्ति नहीं है उनमें। बाजार की चाट बहुत खाते हैं, ऊपर से चाय पीते हैं। शक्ति कहाँ से आयेगी? आप पंजाब में जाइए। आज भी

वहाँ चाय का प्रचार नहीं है। पंजाब के लोग कसरत करके दूध पीते हैं। पाव भर नहीं, एक दो लीटर पीते हैं। गुजरात में किसी युवक से कहिए कि दो लीटर दूध पीना है तो वह युवक कहेगा– अरे मुझे जुलाब हो जायगा। जो एक-दो लीटर दूध नहीं पचा सकता, वह देश की क्या सेवा करेगा? शक्ति से ही भक्ति होती है। शक्ति का विनाश न हो, इसकी सम्भाल रखिये।

हिरण्यकशिपु ने शक्ति का भोग-विलास में दुरुपयोग किया। हिरण्यकशिपु के राज्य में देव-ऋषि बहुत दुःखी हुए। उन्होंने परमात्मा की स्तुति की। प्रभु ने कहा– मेरे भक्त प्रह्लाद को जो त्रास देगा, मैं उसकी खबर लूँगा। तब तक धैर्य रखिये।

हिरण्यकशिपु के घर प्रह्लादजी का जन्म हुआ। प्रह्लादजी जन्म से ही महान् भगवद् भक्त थे। पूर्व जन्म के महायोगी भक्त थे। जहाँ भक्ति है, वहाँ धीरे-धीरे सभी सद्‌गुण आते हैं, जहाँ अभिमान हैं, वहाँ सभी दुर्गुण एकत्र होते हैं। जहाँ भक्ति है, वहाँ विनय है, विवेक है, उदारता है, समर्पण की भावना है। भक्ति सर्व सद्‌गुणों की माता है। प्रह्लादजी में सभी सद्‌गुण एकत्र हुए हैं। प्रह्लादजी सभी को आनन्द देते हैं। प्रह्लादजी निरन्तर भक्ति करते हैं पर प्रह्लादजी ने भक्ति को गुप्त रखा है।

भक्ति का विज्ञापन नहीं होता। अपने घर का धन आप छिपाकर रखते हैं, उसी तरह भक्ति अलौकिक धन है, उसे गुप्त रखिये। भक्ति जाहिर होती है तब भक्ति में बिघ्न आते हैं। भक्ति जगत् को दिखाने के लिये नहीं है।

जगत् को दिखाइये कि मैं संसार में फँसा हुआ साधारण जीव हूँ। बाहर से जगत् के साथ प्रेम करिये। भीतर से परमात्मा के साथ प्रेम करिये। भक्ति निरन्तर करिये, भक्ति में सन्तोष न मानिये।

न्यस्तक्रीडनको बालो जडवत्तन्मनस्तया।
कृष्णग्रहगृहीतात्मा न वेद जगदीदृशम्।। (७-४-३७)

प्रह्लादजी की भक्ति गुप्त है। किसी को मालूम नहीं है कि ये भक्ति कर रहे है। प्रह्लादजी निरन्तर नारायण का ध्यान करते हैं, नारायण का स्मरण करते हैं। नारायण के नाम का जप करते हैं। पाँच-छह वर्ष की उनकी उम्र है।

हिरण्यकशिपु ने दैत्यों के कुलगुरु शण्डामर्क को कहा कि इस बालक को राजनीति पढ़ाइए। शण्डामर्क प्रह्लादजी को घर ले गये। उन्हें पढ़ाने लगे। जिसे प्रभु के ध्यान में, स्मरण में, भक्ति में आनन्द आता है उसे संसार का सब कुछ तुच्छ लगता है। उसकी अच्छी पुस्तकें पढ़ने की भी इच्छा नहीं होती है। पुस्तक की वासना भक्ति में बिघ्न करने वाली है जिसे भीतर का आनन्द मिला है उसे अधिक पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। प्रह्लादजी की भी पढ़ने की इच्छा

नहीं होती है पर प्रभु के लाड़ले भक्तों का नियम है कि जब तक देह का होश है तब तक वे व्यवहार की मर्यादा नहीं तोड़ते हैं। किसी का अनादर न हो, यह वे देखते हैं। गुरुजी पढ़ा रहे हैं और मैं न पढ़ूँ तो गुरुजी का अपमान होगा– ऐसा सोचकर, गुरुजी को प्रसन्न रखने के लिए प्रह्लादजी पढ़ते हैं। जब वे पढ़ने बैठते, तब एक-एक अक्षर में उन्हें भगवान् का स्वरूप दीख पड़ता है। प्रह्लादजी की स्वरूप-आसक्ति दिव्य है।

भक्ति अर्थात् क्या? भगवान् के स्वरूप में आसक्ति को भक्ति कहते हैं। जिसे स्त्री में सौन्दर्य दीख पड़े, जिसे पुरुष में सौन्दर्य दीख पड़े, वह संसार की भक्ति करता है–वह भगवान् की भक्ति नहीं करता है। लौकिक रूप में आसक्ति ही माया है। लौकिक रूप में मन ललचाता है, तब पतन होता है। वही मन परमात्मा के सौन्दर्य में ललचाता है, तब नैया पार हो जाती है। जिसे ऐसा विश्वास हो गया है कि मेरे श्रीकृष्ण अति सुन्दर हैं, वही भक्ति कर सकता है। जिसकी दृष्टि दिव्य, उसकी सृष्टि दिव्य। इस सृष्टि को कोई नहीं सुधार सका है। आप दृष्टि को सुधारिये। अपने प्रभु को आँखों में रखिये। जहाँ दृष्टि जाती है, वहाँ भगवद्-स्वरूप को देखने की आदत डालिये।

प्रह्लाद की स्मरण–शक्ति अलौकिक है। गुरुजी पूछते हैं, उसका वे उत्तर देते हैं। गुरुजी को आश्चर्य होता है कि यह लड़का बहुत बुद्धिमान है, धीर गंभीर है, शांत है। गुरुजी छह मास के बाद प्रह्लादजी को हिरण्यकशिपु के दरबार में ले गये। प्रह्लादजी ने पिताजी को प्रणाम किया। पिता ने बालक को गोद में लिया और कहा–बेटा तुम्हें जो पाठ उत्तमोत्तम आता हो, वही कहो।

प्रह्लादजी ने सोचा कि गुरुजी ने जो विद्या सिखाई है, वह बहुत उत्तम नहीं है। गुरुजी ने तो राजनीति पढ़ायी है। शत्रु के साथ कैसे छल प्रपंच किया जाय यही पढ़ाया है। पिताजी मुझे उत्तम पाठ पढ़ने को कहते हैं। इसिलए मुझे उत्तम पाठ बोलना चाहिए प्रह्लादजी कहते हैं–

तत्साधु मन्येऽसुरवर्य देहिनां सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात्।
हित्वाऽऽत्मपातं गृहमन्धकूपं वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत॥ (७-५-५)

पिताजी! मेरे अनेक जन्म मुझे याद आते हैं। अनेक बार मैं राजा हुआ, अनेक जन्मों में रानी बना, अनेक बार मन्त्री हुआ, सिपाही हुआ। अनेक जन्मों के अनुभव से मुझे विश्वास हो गया है कि इस संसार में स्वार्थ के सिवा और कुछ नहीं है। मानव, मानव के साथ कहाँ प्रेम करता है? वह तो स्वार्थ के साथ प्रेम करता है। पति सुख देता है, इससे पत्नी प्रेम करती है। पत्नी से सुख मिलता है, इससे पति प्रेम करता है। पति, पत्नी के साथ प्रेम नहीं करता है। पर अपने स्वार्थ के साथ प्रेम करता है। पत्नी बहुत त्रास देती है तो पति पत्नी के साथ प्रेम नहीं कर सकता है। कभी ऐसा हो जाय कि पत्नी बीमार हो और पति पाँच-दस हजार खर्च करके उसकी सेवा करे, फिर

भी उसका स्वास्थ्य अच्छा न हो तो पति सोचता है कि इसका कुछ हो जाय तो अच्छा है। यह घर में जीवित है, तब तक दूसरा विवाह भी नहीं हो सकता। इसकी मृत्यु हो जाय तो मैं विवाह कर सकूँ। क्या पति, पत्नी के साथ प्रेम करता है? पति-पत्नी का प्रेम, पिता-पुत्र का प्रेम स्वार्थ से भरा है! पिताजी! जहाँ स्वार्थ है, वहाँ छल-प्रपंच है। जहाँ सुख भोगने की इच्छा होती है, वहाँ प्रपंच करना पड़ता है। कि यह तुम्हारा-यह मेरा! माता भी पुत्री के साथ ऐसा प्रपंच करती है, पिता भी पुत्र के साथ प्रपंच करता है। संसार का प्रेम स्वार्थ और छल-प्रपंच से भरा है। इस जीव के साथ निःस्वार्थ भाव से, निष्कपट भाव से प्रेम एक परमात्मा ही करते हैं। श्रीकृष्ण को कोई स्वार्थ नहीं है, फिर भी जीव के साथ वे प्रेम करते हैं। परमात्मा का प्रेम शुद्ध है, निःस्वार्थ है। मुझे तो ऐसा लगता है कि एकाँत में बैठकर नारायण का ध्यान करूँ, एकांत में प्रभु के नाम का जप करूँ। बोलने की इच्छा हो, तब लाला के साथ बात करूँ, जगत् के साथ अब बोलना नहीं है। खेलने की इच्छा हो तो ठाकुरजी के साथ खेलूँ। बालकृष्ण के साथ ही खेलता रहूँ। अब किसी स्त्री के साथ, किसी पुरुष के साथ खेलने की जरा भी इच्छा नहीं है। संसार का बहुत अनुभव कर लिया। अनेक जन्मों के अनुभव से निश्चय किया है कि अब मुझे परमात्मा के साथ ही खेलना है।

प्रह्लादजी तो बहुत सुन्दर बोले हैं, पर हिरण्यकशिपु को पसंद नहीं आया वह सोचने लगा कि यह क्या कहता है? मेरे शत्रु विष्णु की यह भक्ति करता है, यह मेरा शत्रु है इसे मार डालूँ। हिरण्यकशिपु ने बालक को गोद में से धकेल दिया। राक्षस मारने दौड़े। पाँच वर्ष का बालक निर्भय है। वह परमात्मा के नाम का निरंतर जप करता है। प्रह्लादजी को चारों ओर नारायण दीख पड़ते हैं। प्रह्लादजी की दृष्टि दिव्य थी। जिसे पीलिया का रोग होता है, उसे सब पीला ही दिखाई देता है। उसे दूसरा रंग नहीं दिखाई देता। एक रोग में जब ऐसी शक्ति है तब निरन्तर भक्ति करने वाले प्रह्लादजी को सर्व में नारायण दिखाई पड़ने लगे तो क्या आश्चर्य? प्रह्लादजी की ऐसी निष्ठा है। राक्षस मारने दौड़े पर प्रह्लादजी के चारों ओर नारायण दिखाई पड़े। वे प्रह्लादजी का बाल भी बाँका नहीं कर सके। प्रह्लादजी को मारने के बहुत यत्न किये परन्तु उन्हें कुछ भी सफलता नहीं मिली।

हिरण्यकशिपु को आश्चर्य हुआ कि यह बालक जादूगर लगता है। इसे अँधेरे में बंद कर दो। इसे अन्न-जल न देना, अन्न जल के बिना यह मर जायेगा। प्रह्लादजी को कैद में रखा। प्रह्लादजी जरा भी डरे नहीं हैं। उन्होंने सोचा कि अच्छा हुआ कुसंग गया। अब में शांति से अपने प्रभु का स्मरण कर सकूँगा।

स्वामी का एक नियम है। जगत् में एक भी जीव भूखा है, तब तक वे बैकुण्ठ में भोजन नहीं लेते हैं। उनका नाम विश्वंभर है। वे सभी का पालन करते हैं। सर्व को तृप्त करते हैं, बाद में स्वयं भोजन लेते हैं। परमात्मा ने लक्ष्मीजी से कहा कि मेरा पुत्र भूखा है। आज मुझे भोजन नहीं करना है। आज स्वामी ने खाने के लिए मनाकर दिया है। सुवर्ण की थाली में लक्ष्मी जी ने सुन्दर प्रसाद सजाकर पार्षद के हाथ भेजा है। पार्षद वही प्रसाद कारागृह में ले गया? पार्षद ने कहा– माता लक्ष्मी जी ने यह प्रसाद आपके लिये भेजा है। प्रह्लादजी को आनन्द हुआ। मेरी माता ने मेरे लिए प्रसाद भेजा है। मेरी बहुत देख-भाल करती हैं वे! प्रह्लादजी ने प्रसाद को वंदन करके, भगवान् का स्मरण करते हुए प्रसाद ग्रहण किया। भोजन में जो व्यक्ति प्रभु का स्मरण नहीं करते, उनका भोजन के बाद मन बिगड़ता है, उन्हें आलस्य आता है। भोजन में भी भक्ति करिये। भगवान् का नाम लेकर ग्रास ग्रहण करिये।

प्रह्लादजी के लिए वैकुण्ठ से भोजन आया था। उसमें से केसर-कस्तूरी की सुगंध आती थी। हिरण्यकशिपु के सैनिक कारागार में पहरा दे रहे थे। उनके मुँह में पानी आने लगा। उन्होंने हिरण्यकशिपु को समाचार भेजे–द्वार बन्द है, हम चौकसी पर हैं पर बालक भीतर कुछ खा रहा है। हिरण्यकशिपु क्रोध में दौड़ता हुआ आ पहुँचा। लात लगाकर उसने द्वार तोड़ दिये। भीतर जाकर प्रह्लाद से पूछा–तुम्हें कौन खाना देता है? प्रह्लादजी ने कहा–पिताजी! जब मैं माँ के पेट में था, तब क्या आप भोजन देते थे? यह कमरा बहुत बड़ा है। जिस प्रभु ने माता के गर्भ स्वरूप छोटे से कमरे में मेरा रक्षण किया, वही परमात्मा कारागृह में मेरा रक्षण करते हैं। हिरण्यकशिपु घबरा गया। उसने मारने के बहुत प्रयत्न किये पर यह मरता नहीं है। सोचने लगा कि यह बालक मुझे मारने के लिए ही आया है क्या? शण्डामर्क समझा रहा है यह तो बालक है, कुछ ही दिनों में भूल जायेगा। इसे वरुणपाश में बाध कर हम घर में ही रखेंगे। चार दिनों के बाद शुक्राचार्यजी आयेंगे तब वे जैसा कहेंगे वैसा करियेगा। प्रह्लादजी को वरुणपाश में बाधकर शण्डामर्क घर ले गये।

अनेक बालक वहाँ पढ़ रहे थे। एक दिन गुरुजी जब बाहर गये थे, तब बालक गेंद लेकर खेलने के लिए तैयार हुए। प्रह्लादजी ने कहा–आप सब इधर आइए, आज मैं आपको एक नया खेल सिखाऊँगा। सभी प्रह्लादजी के चारों ओर बैठ गये। प्रह्लादजी ने बालकों को भागवत धर्म का उपदेश दिया–

कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम्।। (७-६-१)

८३ अथवा ९९ अथवा ९९९ जन्मों के बाद यह शरीर मिला है। मानव-शरीर अति दुर्लभ है। यह शरीर भोग के लिये नहीं, भगवान् के लिये मिला है। मानवेत्तर पशु, पक्षी भोग भोगते हैं, मानव-शरीर के द्वारा ही भगवान् की भक्ति होती है। यह शरीर अति दुर्लभ है। आज से आप मेरे नारायण की भक्ति करिये। लौकिक सुख के लिए बहुत यत्न करने की जरूरत नहीं है। संसार के सभी सुख प्रारब्ध अधीन है। जिसके प्रारब्ध में सुख लिखा ही नहीं है, वह जंगलों में रहता है, पर दुःखी ही रहता है और हृदय को जलाता है। जिसके भाग्य में सुख लिखा है, वह जंगल में वृक्ष के नीचे भी सुख-शांति पाता है। अरे! दुःख के लिए कोई प्रयत्न नहीं करता है, फिर भी दुःख आकर खड़ा हो जाता है। बिना यत्न से जिस तरह दुःख आता है, उसी तरह बिना यत्न से सुख आता है। लौकिक सुख प्रारब्ध के अधीन है। परमात्मा प्रयत्न से मिलते हैं। मेरे प्रभु को पाने के लिए प्रयत्न कीजिये। आज से आप भक्ति कीजिये।

बालकों ने कहा—प्रह्लाद! अभी तो हमारी खाने-खेलने की उम्र है। वृद्धावस्था में पेंशन-निवृत्ति के बाद, 'राम-राम' करेंगे। अभी से भक्ति की क्या जरूरत?

प्रह्लादजी समझा रहे हैं कि आज आपका शरीर स्वस्थ है पर मन चंचल है, वृद्धावस्था में शरीर रोग का घर हो जायगा। शरीर अस्वस्थ होगा तो मन अधिक चंचल हो जायेगा। आज बाजी आपके हाथ है, बहुत भक्ति कीजिये। वृद्धावस्था में शरीर के बिगड़ने पर भगवान् की भक्ति ठीक से नहीं हो सकेगी।

बालकों ने कहा—प्रह्लाद! हम जवानी में भक्ति करें तो? प्रह्लादजी ने कहा—अभी आप छोटे हैं, इससे ऐसा कहते हैं। यौवन में मद आ जाता है। वह ऐसा समय है कि बड़े-बड़े बुद्धिमान हों, ज्ञानी हों कि अज्ञानी हों, कुछ न कुछ भूलकर बैठते हैं। बहुत पवित्रता से, बहुत सरलता से, जिसका यौवन व्यतीत हुआ हो, ऐसे महान् पुरुष बहुत कम हैं। जवानी में भक्ति नहीं होगी तो, सारा दिन जीव धन के पीछे पड़ जायेगा। थोड़ा सा समय मिलेगा तब सुख भोगने में लग जायेगा। बच्चों को, बेटी-बेटे को खिलाने में भी बहुत समय जायगा। बच्चे तोतले बोल बोलते हैं और उस मिठास में माता-पिता खो जाते हैं। उनके पीछे पागल हो जाते हैं। कहते हैं कि हमारा बेटा अब बोलने लगा। अरे बोल रहा है तो क्या बड़ी बात है? सारा जीवन बोलने ही वाला है।

जवानी में भक्ति नहीं होगी। आज से आप भक्ति के संस्कार दृढ़ कीजिये। तब वे ही जवानी में काम आयेंगे। जब हृदय कोमल होता है तब उत्तम संस्कार देने चाहिए। आज से आप भक्ति कीजिए। मैं आपकी ही कथा नहीं कहता हूँ। बड़े-बड़े पण्डित, विद्वान्, सारा दिन पैसे के

पीछे पड़ते हैं और रात्रि में कामाँध-मोहाँध बनते हैं। विद्या का उपयोग भोग के लिए करने वाला विद्वान् नहीं है। जो विद्या का उपयोग भगवान् के लिए करता है, वही विद्वान् है-

विद्वान्पीत्थं दनुजाः कुटुम्बं पुष्णन्स्वलोकाय न कल्पते वै।
यः स्वीयपारक्यविभिन्नभावस्तमः प्रपद्येत यथा विमूढः॥

(७-६-१६)

आप लोगों ने देखा है कि मुझे मारने के अनेक यत्न किये गये हैं पर क्या मेरा बाल भी बाँका हो सका है? मेरा रक्षण मेरे प्रभु करते हैं। इस जगत् को प्रसन्न करना अशक्य है, पर प्रभु को प्रसन्न करना अशक्य नहीं है। इस जगत् को कोई प्रसन्न नहीं कर सका है। आप जगत् के पीछे पड़ेंगे तो दुःखी होंगे, पर भगवान् के पीछे पड़ेंगे तो सुखी होंगे। भगवान् के पीछे पड़िये।

प्रह्लादजी बालकों को सावधान करते हैं कि प्रेम से प्रभु के नाम के कीर्तन करेंगे तो प्रभु प्रसन्न होंगे। आपको प्रभु के दर्शन होंगे। जिस दृष्टि से जगत् दीख पड़ता है, उस दृष्टि से प्रभु नहीं दिखाई देते। हाँ जिस दृष्टि के द्वारा स्वप्न दीखते हैं, उसी दृष्टि के द्वारा प्रभु दिखाई देते हैं। भीतर की दृष्टि खुलती है, तब परमात्मा के दर्शन होते हैं। ज्ञानी परमात्मा के दर्शन ज्ञान-चक्षु से करते हैं। आप बाहर की दृष्टि बंद करिये तो भीतरी दृष्टि खुल जायगी। प्रह्लादजी के कहने से सभी बालकों ने आँखें बन्द कर लीं प्रह्लादजी ने एक-एक को स्पर्श किया और सभी को तेज दीख पड़ा। प्रह्लादजी ने कहा-यह जो प्रकाश है, उसे ही ज्ञानी निर्गुण ब्रह्म कहते हैं। इस प्रकाश में दृष्टि रखिये और प्रेम से मेरे प्रभु के नाम का जप करिये। इस प्रकाश में से ही श्रीकृष्ण प्रकट होंगे। ताली बजा-बजाकर कीर्तन करिये। जगत् को भूलने के लिए ही ताली बजानी है। ताली नादब्रह्म है। ताली बजाकर कीर्तन करने पर आपको यह याद नहीं आयेगा कि इस गाँव का नाम क्या है। मैं कहाँ हूँ। मधुर नाद सुनने पर नाग डोल उठता है; उसे याद नहीं आता कि मुझ में विष है नाद ब्रह्म की उपासना करने वाला जगत् को भूलता है, जिसका संबंध जगत् से छूट जाता है, उसका ब्रह्म संबंध हो जाता है। नादब्रह्म और नामब्रह्म एक हो जायँ, वहाँ परब्रह्म प्रकट होते हैं। कइयों को ताली बजाने में शर्म लगती है। इससे प्रभु को बुरा लगता है, प्रभु नाराज होते हैं कि मैंने इसे दो हाथ दिये हैं, पर इसे मेरे भजन-कीर्तन में ताली बजाने में शर्म आती है। मेरी ही भूल है कि मैंने इसे दो हाथ दिये हैं। अगले जन्म में इसे एक भी हाथ नहीं दूँगा। दो पैर ही अधिक दूँगा। प्रेम से, ताली बजा-बजाकर कीर्तन कीजिये।

श्रीकृष्ण-कीर्तन करते-करते अति आनंद में आकर प्रह्लादजी नाचने लगे। श्रीराधा-कृष्ण के उन्हें दर्शन हुए। अति आनंद में जीव नाचता है। प्रह्लादजी के सत्संग का रंग लगा और सभी

बालक भी कीर्तन करते हुए नाचने लगे। बाहर से जब शण्डामर्क घर आये तो उन्होंने देखा कि सभी बालक कीर्तन में तन्मय हो गये हैं। गुरुजी को लगा कि प्रह्लाद बालकों को बिगाड़ रहा है। यह तो अभी नहीं सुधर सकेगा। दौड़कर वे वहाँ पहुँचे और प्रह्लादजी से कहने लगे कीर्तन बंद करिये, कीर्तन बंद करिये पर कौन सुन रहा है? कान खुले हैं मन श्रीकृष्ण-चरण में है। प्रह्लादजी को सुनाई नहीं देता। शण्डामर्क ने सोचा कि बालक के दो हाथ पकड़ लूँ। उसकी तालियाँ बंद होंगी तो कीर्तन भी बंद होगा। शण्डामर्क प्रह्लादजी के दोनों हाथ पकड़ने गये। प्रह्लादजी के रोम-रोम से श्रीकृष्ण-नाम का जप होता था। सारा श्रीअंग कृष्णमय था। प्रह्लादजी का स्पर्श हुआ कि शण्डामर्क को भी भक्ति का रंग लगा। शण्डामर्क 'हरे कृष्ण-हरे-कृष्ण' कीर्तन करते हुए तन्मय हो गये। सत्संग का यही महात्म्य है। सत्संग करने वाला संत बनता है।

हिरण्यकशिपु ने सोचा कि गुरुजी बालकों को किस तरह पढ़ाते हैं, यही मैं देखना चाहता हूँ। एक सिपाही को खबर लेने भेजा गया। उसने आकर देखा तो गुरुजी नाच रहे थे और सब बालक भी नाच रहे थे। सिपाही को आश्चर्य हुआ। उसने शण्डामर्क से कहा कि गुरुजी, गुरुजी, महाराजा देखने आ रहे हैं, पर कौन सुनता है? सिपाही ने गुरुजी के हाथ पकड़ कर बैठा देने का विचार किया पर जैसे ही हाथ पकड़ने लगा, उसे भी रंग लग गया।

सिपाही कीर्तन में तन्मय हुआ। हिरण्यकशिपु विचार करने लगा कि जो गया वह वापस क्यों नहीं आता है? उसने दूसरे सिपाही को भेजा। दूसरे ने देखा कि मेरा भाई तो नाच रहा है! उसे सावधान करने गया, और उसे भी रंग लग गया। वह भी नाचने लगा। करंट लगने पर बल्ब से प्रकाश निकलने लगता है। सद्गुरु सद्-शिष्य को शक्ति देते हैं।

प्रह्लादजी के सत्संग का यही माहात्म्य था। आज घर के सिपाही 'हरे कृष्ण' कीर्तन करके नाचते थे। हिरण्यकशिपु को आश्चर्य हुआ कि यह क्या है? जो जाता है, वापस ही नहीं आता है! क्रोध में वह दौड़ता पहुँचा, देखा कि घर के सभी सिपाही भी 'हरे कृष्ण' कीर्तन कर रहे हैं, आनंद से नाच रहे हैं, यह क्या? यह क्या? ये मेरे शत्रु का कीर्तन करते हैं! मुझ से यह कैसे सहन होगा? प्रह्लाद सभी को बिगाड़ रहा है। यह लड़का नहीं सुधरेगा। हिरण्यकशिपु ने क्रोध में आकर प्रह्लाद को उठा लिया-जिसको प्रह्लाद का स्पर्श हुआ भक्ति का रंग लगा पर हिरण्यकशिपु को स्पर्श होने पर भी रंग नहीं लगा। कंडम बल्व को चाहे कितना भी करंट लगे, प्रकाश नहीं निकलता। हिरण्यकशिपु बालक को उठाकर दरबार में ले आया और जमीन पर पटक दिया। धरती माता ने बालक को गोद में उठा लिया। बालक का बाल भी बाँका नहीं हुआ। बालक हाथ जोड़कर खड़ा रहा। हिरण्यकशिपु का क्रोध बढ़ गया। वह बोला कि तुम मेरी आज्ञा मानते नहीं हो और

झूठी विनय दिखा रहे हो? मैं तुम्हें मारूँगा। मैंने ब्रह्मादिक देवों का पराभव किया है। सभी देव मुझ से काँपते हैं और तुम निडर होकर खड़े हो! तुम्हें किसने ऐसा बल दिया है—

न केवलं मे भवतश्च राजन् स वै बलं बलिनां चापरेषाम्।
परेऽवरेऽमी स्थिरजंगमा ये ब्रह्मादयो येन वशं प्रणीताः॥

(७-८-८)

पिताजी जिनकी शक्ति के कारण आप बोल पाते हैं, उन्हीं की शक्ति मुझे मिली है। मेरे प्रभु आपको शक्ति देते हैं और आप बोल पाते हैं। मेरे रक्षक तो आपके भीतर भी बैठे हैं। पिताजी! बाहर का दिग्विजय किस काम का? जिसने मन जीता है, उसने जगत् जीत लिया है; जो मन से हार गया है, जगत् में उसकी सर्वत्र हार है।

दस्यून्पुरा षण्न विजित्य लुम्पतो मन्यन्त एके स्वजिता दिशो दश।
जितात्मनो ज्ञस्य समस्य देहिनां साधोः स्वमोहप्रभवाः कुतः परे॥

(७-८-११)

पिताजी! वीर तो वही है, जो काम पर विजय पा लेता है। जिसे क्रोध आता है, जो काम की मार खाता है, वह वीर नहीं है। जिसने मन जीता है, वही वीर है। पिताजी, वीर वही है जो भीतर के शत्रुओं को मारता है। बाहर के शत्रु को मारने वाला वीर नहीं है। जिसने मन को जीत लिया है, वही वीर है। पिताजी! आज मुझे दुःख होता है। आपके मुख पर मुझे मृत्यु की छाया दीख पड़ती है। समय आ गया है कि अब क्रोध न करिये। प्रेम से श्रीकृष्ण-कीर्तन करते हुए तन्मय बनिये। मरण मंगलमय होगा।

हिरण्यकशिपु को यह बोध पसंद नहीं आया। वह कहने लगा कि मेरे पुत्र होकर तुम मुझे समझा रहे हो? मैं तुम्हें मारूँगा। तुम्हारी रक्षा करने वाले तुम्हारे विष्णु कहाँ हैं? प्रह्लाद ने कहा—पिताजी वे सर्वत्र हैं। विविष्टि इति विष्णुः—वे सर्वव्यापक हैं। इससे ही उन्हें विष्णु कहते हैं। हिरण्यकशिपु बड़बड़ाने लगा कि तुम कहते हो कि विष्णु सर्वव्यापक हैं तो इस खंभे में क्यों नहीं दिखाई देते—

कस्मात्स्तम्भे न दृश्यते।

प्रह्लाद ने कहा—पिताजी, जिसकी आँखों में काम है, उसे भगवान् के दर्शन नहीं होते हैं। मुझे वे दिखाई देते हैं। वे खंभे के भीतर विराजमान हैं। जिसकी आँखें शुद्ध हैं, जिसका मन पवित्र है, उसे ही परमात्मा के दर्शन होते हैं।

हिरण्यकशिपु ने कहा–मैं व्यायामशाला में जाकर हजार मन की गदा ले आता हूँ। आज यह खंभा तोड़ डालता हूँ, भीतर विष्णु बैठा होगा तो उसे भी मार डालूँगा और बाद में तुम्हें मारने वाला हूँ। हिरण्यकशिपु क्रोध में दौड़ता हुआ गदा लेने गया। प्रह्लादजी का हृदय भगवद्भाव में द्रवित हुआ। कृष्ण-कृष्ण कीर्तन करता हुआ बालक दौड़ा। प्रह्लादजी का सत्त्वगुण और हिरण्यकशिपु का तमोगुण–दोनों का यह युद्ध है। सत्त्वगुण जब बढ़ता है, तब तमोगुण नष्ट होता है। सत्त्वगुण बढ़ता है, तब परमात्मा प्रकट होते हैं। बालक कृष्ण-कृष्ण कीर्तन करते हुए दौड़कर स्तंभ से भेंट करने लगा। भीतर-बाहर मेरे विष्णु बैठे हैं। अंतर्बहिश्च व्याप्य तर्स्वं नारायणः स्थितः। पर बालक है, थोड़ी-सी शंका हुई कि यह खंभा सघन है, भीतर जगह नहीं है। इसमें भगवान् किस तरह विराजमान होंगे। मैंने तो कहा कि इस खंभे में प्रभु हैं। बालक परमात्मा को मनाने लगा कि मेरा वचन सत्य कीजिए मेरे लिए खंभे में से प्रकट होइए। आज भगवान् स्तंभ में से प्रकट नहीं होंगे तो मेरे भगवान् को कौन सर्वव्यापक मानेंगे? प्रह्लादजी अपने स्वामी को मनाने लगे। दूध के एक-एक कण में–माखन होता है। दूध के अणु-परमाणु में–जिस तरह माखन है, उसी तरह जगत् के प्रत्येक पदार्थ में परमात्मा हैं। प्रह्लादजी के प्रेम के कारण आज वे प्रकट होने वाले हैं। स्तंभ में सूक्ष्म रूप से विराजमान प्रभु ने लीला की। बालक को आश्वासन देने के लिए भीतर विराजमान प्रभु ने लीला की। बालक को आश्वासन देने के लिए भीतर विराजमान परमात्मा ने सिंह-गर्जना की। बालक को आश्वासन दिया कि मैं भीतर बैठा हूँ। मैं तुम्हारा वचन सत्य सिद्ध करूँगा। सिंह-गर्जना सुनकर बालक को विश्वास हो गया कि भीतर नरसिंह स्वरूप में प्रभु विराजमान हैं। बालक आनंद में कीर्तन करके नाचने लगा।

संध्या का समय हो रहा था। हिरण्यकशिपु व्यायामशाला में जाकर हजार मन की गदा उठाकर क्रोध में कदम उठाते हुए, आ पहुँचा। बोला कि दिखा दो, कहाँ है तुम्हारा प्रभु? निडर होकर बालक ने कहा–पिताजी! इस स्तंभ में हैं। हिरण्यकशिपु ने अतिशय क्रोध में आकर स्तंभ पर जैसे ही प्रहार किया, स्तंभ फट गया और नरसिंह स्वामी का प्राकट्य हुआ। मुखारविंद सिंह के समान है, श्रीअंग मानव जैसा है। आँखें लाल हैं। दाढ़ें भयंकर दीख रही है। बार-बार मस्तक हिला-हिलाकर गुड-गुड-गुड गर्जना करते रहे, धरती काँपने लगी। यह क्या प्रलय हो रही है? देव घबराने लगे। हिरण्यकशिपु को विश्वास हो गया कि मेरा काल आ गया है। वह बहुत घबरा गया। प्रभु ने दोनों हाथ बढ़ाये और हिरण्यकशिपु को उठा लिया। बाहर से बहुत क्रोध में दीख पड़ते हैं, भीतर प्रेम भरा है। कैसे भी हो, मेरे प्रह्लाद के पिता हैं और इससे ही उसे गोद में लेकर पूछा कि बेटा, कह दे कि रात है या दिन है? मानव है कि पशु? भीतर है कि बाहर? शस्त्र है कि अस्त्र?

मैं तुम्हें नाखून से मारूँगा। घबराया हुआ हिरण्यकशिपु एक अक्षर भी न बोल सका। वज्र-नाखून के प्रहार से उसे प्रभु ने काट डाला। उसी समय देवों ने, गंधर्वों ने नरसिंह भगवान् की जय-जयकार के स्वर फैला दिये। हिरण्यकशिपु का उद्धार हुआ पर अभी नरसिंह भगवान् का क्रोध शाँत नहीं हो रहा है। मस्तक हिला-हिलाकर गुड्-गुड-गुड गर्जना कर रहे थे। ब्रह्माजी घबराये। ब्रह्माजी ने स्तुति की कि अब शाँत हो जाइए, शाँत हो जाइये। राक्षस मर गया है। अन्य देवों ने भी स्तुति की पर अब भी क्रोध शाँत नहीं हुआ है ब्रह्माजी ने प्रह्लादजी से कहा कि बेटा! तुम्हारे लिए भगवान् प्रकट हुए हैं, अब तुम ही उन्हें शाँत करो। सिंह का बालक सिंह से नहीं घबराता है। बालक ने हाथ जोड़कर वंदन करते हुए चरणों में प्रणाम किये। वह नरसिंह स्वामी के चरणों में गया। जब प्रह्लाद ने साष्टाँग प्रणाम किया, तब उसे देखते ही परमात्मा की आँखें आर्द्र हो आयीं। हृदय द्रवित हुआ। जो प्रभु हिरण्यकशिपु के लिए वज्र से भी कठोर थे, वह प्रह्लाद के लिए माखन से भी कोमल हुए।

बालक को उठाकर उन्होंने गोद में लिया। उसका सिर सूँघा। पीठ पर ममत्व से हाथ रखा। प्रभु वात्सल्य से संचित लाड़-दुलार दिखाने लगे। बेटा तुम बहुत कोमल हो। तुम्हारे पिता ने तुम्हें बहुत त्रास दिया? मेरा बेटा धीर-गम्भीर है। उसने बहुत दुःख सहन किया। बेटा! आज तुम्हारी कोमलता देखते हुए मुझे लगता है कि मैंने बहुत देर कर दी। इसलिए मैं तुमसे क्षमा चाहता हूँ। प्रह्लादजी की भक्ति ऐसी है कि आज भगवान् स्वयं क्षमा माँगते हैं। प्रह्लादजी ने प्रभु के चरणों में बार-बार वंदन करते हुए कहा—ऐसा न कहिये। आप मेरे स्वामी हैं मैं आपका सेवक हूँ। आपने सर्वकाल मेरी रक्षा की है। मैंने जरा भी दुःख नहीं सहन किया। मैं तो आपके स्मरण में—दर्शन में अति प्रसन्न रहा हूँ। बालक ऐसा मधुर बोला कि नरसिंह स्वामी अत्यन्त प्रसन्न हो गये। बालक को हृदय से लगाकर उन्होंने आलिंगन दिया। भक्त और भगवान् एक हुए, तब नरसिंह भगवान् का क्रोध शाँत हुआ।

बाल भक्त प्रह्लादजी के वचन सत्य सिद्ध करने के लिए और जगत् में सर्व स्थान पर हूँ, ऐसी अपनी सर्व-व्यापकता सिद्ध करने लिए स्तम्भ में से भगवान् प्रकट हुए। नरसिंह अवतार में प्रभु ने जगत् को बोध दिया है कि मैं सर्वत्र हूँ। परमात्मा सर्वकाल और सर्व स्थान पर विराजमान हैं, ऐसा जिसे अनुभव होता है वह पाप नहीं कर सकता है, पर ऐसी अनुभूति करने वाले बहुत कम लोग हैं।

साधारण मानव जब पाप करता है, तब ऐसा समझता है कि भगवान् बैकुण्ठ में विराजमान हैं, मन्दिर में विराजमान हैं। यहीं नहीं हैं। आप जहाँ हैं, वहाँ आपके भगवान् हैं। जगत् में ऐसा कोई

स्थान नहीं है, जहाँ परमात्मा विराजमान न हों। सर्वव्यापक परमात्मा सर्व में अति सूक्ष्म रूप से हैं। उन्हें हम आँख से नहीं देख पाते हैं, बुद्धि से उनका अनुभव किया जाता है। दूध के एक-एक कण में माखन है, पर दूध में माखन दिखाई नहीं देता। दूध पीने से माखन का स्वाद भी नहीं आता, दूध में हाथ डालने पर माखन हाथ में भी नहीं आता, पर दूध में माखन है, यह बात सत्य है, आँख को भले ही वह दीख न पड़े। बुद्धि से ही अनुभव किया जाता है। बुद्धि स्वीकार लेती है कि दूध के अणु-परमाणु में माखन है। जगत् के अणु-परमाणु में परमात्मा की सत्ता है। सर्वत्र परमात्मा को अनुभव करने वाले का व्यवहार शुद्ध होता है। जिसका व्यवहार शुद्ध है, उसे ही भक्ति में आनंद आता है।

लोग थोड़ी भक्ति करते हैं पर उन्हें भक्ति में आनन्द नहीं आता है, इससे वे भक्ति छोड़ देते हैं। अगर उन्हें भक्ति में आनन्द आने लगे तो वे भक्ति नहीं छोड़ पाते। भक्ति में आमन्द नहीं आता है। इसका भी एक ही कारण है। वे भक्ति करते हैं पर पाप छोड़ते नहीं हैं। उनका व्यवहार शुद्ध नहीं है। जिसका व्यवहार अति शुद्ध है, उसे भक्ति में आनन्द आता है। संत भक्ति और व्यवहार को भिन्न नहीं मानते हैं। संतों का प्रत्येक व्यवहार भक्तिमय होता है। संत रास्ते में चलते हुए भी भक्ति करते हैं। वे संसार के व्यवहार का कोई भी काम नहीं करते हैं। वे ईश्वर से विभक्त नहीं रहते। वे परमात्मा को साथ में रखकर कार्य करते हैं। सन्तों का प्रत्येक व्यवहार भक्तिमय बनता है। प्राचीन समय में जितने भी साधु-संत हुए वे सभी काम धंधा करते थे। वे किसी का मुफ्त का नहीं लेते थे। गोरा कुम्हार मिट्टी के बर्तन बनाते थे और बाजार में बेचने ले जाते थे। संत व्यापार भी करते थे। दुकान पर आये ग्राहक में भी उन्हें भगवान् दीख पड़ते हैं, परमात्मा के दर्शन होते हैं। वस्तुतः परमात्मा के दर्शन करके जो व्यापार करते हैं, उनका व्यापार भी भक्ति है।

कई दुकान में ठाकुरजी का स्वरूप मूर्ति रखते हैं, दीया जलाते हैं, अच्छा ही है। पर वे जब ग्राहक के साथ बात करते हैं तब समझ लेते हैं कि भगवान् बहरे हैं, आप जो बोलते हैं, भगवान् उसे सुनते हैं। आप जो कुछ करते हैं, भगवान् उसे देखते हैं। व्यापार को भक्तिमय बनाइए।

हमारे शास्त्रों में लिखा है कि वैश्य श्रेष्ठ हैं। वैश्य सर्व का पोषण करते हैं, इससे उन्हें श्रेष्ठ माना है। श्रेष्ठ शब्द का अपभ्रंश सेठ है। जगत् में जितनी भाषाएँ हैं, उन सभी की माता तो संस्कृत है, संस्कृत से ही सभी भाषाएँ निकली हैं। संस्कृत में जिसे श्रेष्ठ कहते हैं। गुजराती में जिसे शेठ कहती हैं, हिन्दी में उसे सेठ कहते हैं, वैश्य श्रेठ है। वे समाज का पोषण करते हैं। महाभारत में वर्णन आता है कि जाजलि ऋषि महातपस्वी ब्राह्मण थे। एक बार जाजलि ऋषि को अभिमान हुआ कि मैं बड़ा ज्ञानी हूँ, तपस्वी हूँ। उनके अभिमान को दूर करने के लिए प्रभु ने लीला की।

आकाशवाणी हुई कि महाराज, अभिमान न करिये। जनकपुरी में तुलाराम नाम का एक वैश्य है, वह महाज्ञानी है। आप उनका सत्संग करिये। पवित्र तपस्वी ब्राह्मण वैश्य के घर सत्संग करने गये। तुलाराम के साथ बातें करते हुए जाजलि ऋषि को विश्वास हो गया कि ये महाज्ञानी हैं। जाजलि ऋषि ने पूछा, आपका गुरु कौन है? यह सब ज्ञान किसने दिया? तुलाराम ने कहा कि महाराज, अभी तक मैंने किसी को गुरु नहीं किया है। ब्राह्मणों और साधुओं को मैं वंदन करता हूँ, गुरु मानता हूँ। पर मेरा जो धंधा है, वही मेरा गुरु है। मुझे जो ज्ञान मिला है, सब मेरे धंधे से ही मिला है। मैं कम नहीं देता, मैं अधिक भी नहीं देता। दिखाने का माल एक और देने का माल दूसरा–ऐसा मैं नहीं करता हूँ। मेरे प्रति लोगों के मन में विश्वास है। सत्यवादी हूँ। उचित मुनाफा लेता हूँ। तराजू को जिस तरह सरल सीधा–रखना चाहिए उसी तरह मैं मन और बुद्धि को सीधा-सरल रखता हूँ। कपट से मन टेढ़ा होता है। कपट करने वाले का मन अशांत रहता है। मैं व्यवहार में–व्यापार में जरा भी कपट नहीं करता हूँ। ग्राहक की सरलता का दुरुपयोग मैं नहीं करता हूँ। मेरी दुकान पर जो आते हैं, उन्हें मैं प्रभु का स्वरूप मानता हूँ। व्यवहार शुद्ध रखिये। व्यवहार उनका शुद्ध रहता है, जो सर्व में ईश्वर का दर्शन करते हैं। प्रत्येक व्यवहार को भक्तिमय बनाइए। ऐसा कोई व्यवसाय नहीं है, व्यापार धंधा नहीं है, जिसके साथ-साथ भक्ति न हो सके। रात्रि में शय्या में बैठकर जो लोग भक्ति नहीं करते हैं, उनके मन में पाप आता है, काम आता है। शय्या में पड़े-पड़े धीरे-धीरे मन भीतर आता जाता है,जगत् भुलाया जाता है। जगत् की विस्मृति ही जाग्रत अवस्था की समाप्ति है। जाग्रत अवस्था की समाप्ति और निद्रा के आरंभ की संधि में भगवान् को याद रखिये। दोनों की संधि बेला में ही भगवान् ने हिरण्यकशिपु को मारा है। परमात्मा का स्मरण करते हुए जिसे निद्रा आती है,उसकी निद्रा भी समाधि-सदृश होती है। जागने पर परमात्मा को याद करिये। निद्रा आने तक परमात्मा का स्मरण करने और निद्रा से जागने पर परमात्मा का स्मरण करने पर भगवान् मानते हैं कि इसने निद्रा में मेरा भजन किया है–

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं।
संचार स्तुपदोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो॥
पूजा ते विविधोपभोग रचना निद्रासमाधिस्थितिः।
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शंभो तवाराधनम्॥

घूमने जा रहे हैं, तब प्रभु का स्मरण करिये, तो प्रभु मानेंगे कि मेरी परिक्रमा कर रहा है। बातें करते हुए भी प्रभु को याद करके बोलिये तो प्रभु मानेंगे कि मेरी स्तुति कर रहा है। व्यवहार

और भक्ति भिन्न-भिन्न नहीं हैं। ईश्वर का अनुसंधान रखकर व्यवहार करने से व्यवहार भी भक्ति बनता है।

घंटे-दो-घंटे भक्ति करते हैं किन्तु आप सारा दिन भगवान् को भूल जाते हैं, तो यह भक्ति नहीं है। ईश्वर से विभक्त न होइए-तब ही भक्ति है। आपको जो पसन्द नहीं है, वह किसी को भी न दीजिए। पुत्री भूल करती है तो चलता है और पुत्रवधू भूल करती है तो नहीं चलता है। व्यवस्था के लिए उलाहना तो देना पड़ सकता है पर सब में ईश्वर है, यही याद रखकर उलाहना दीजिए और प्रेम से दीजिए। भगवान् ने जगत् से कहा है कि खंभे में भी मैं स्थित हूँ। जिसको पान-सुपारी खाने की आदत है, वे चाहे जहाँ थूकते हैं। कई लोग तो दीवार पर थूकते हैं। कई लोग खम्भे पर थूकते हैं-उन्हें पाप लगता है। दीवार में देव हैं। स्तंभ में नरसिंह भगवान् विराजमान हैं। व्यवहार को शुद्ध रखिये। भक्ति नहीं करते हैं, हर्ज नहीं, पर व्यवहार शुद्ध रखिये।

नरसिंह स्वामी जब स्तंभ से प्रकट हुए, तब गुरु गुरु गुरु ऐसी गर्जना हुई। किसी भी संत के चरण पकड़ कर रहिये। किसी महापुरुष को मन से गुरु मानकर उनकी सेवा करिये, उनका स्मरण करिये। सद्गुरु कृपा करते हैं, तब ही परमात्मा के दर्शन की दृष्टि देते हैं। संत हैं। संत सम्पत्ति देकर सुखी नहीं करते। किसी श्रीमान् की आप प्रशंसा करेंगे तो वे आपको दस-बीस हजार रुपये देंगे। संपत्ति से सुखी करने का काम संतों का नहीं है; संत स्वभाव को सुधारते हैं, मन शुद्ध करते हैं। परमात्मा के दर्शन की दृष्टि देकर सुखी करते हैं। संत परमात्मा के दर्शन के लिए दृष्टि देते हैं, तब ही, मन शुद्ध होता है। मानव मूर्ख नहीं है, पर मानव की बुद्धिमानी टिकती नहीं है। आपका मन सर्वकाल में शुद्ध और शांत रह सके, ऐसी इच्छा हो तब किसी महान् संत के अधीन रहिए। गुरु के बिना न रहिये। गुरु बनाने की बहुत जल्दी भी न कीजिये।

पानी पीना छानके और गुरु करना जान के। गुरु को ही अगर परमात्मा का साक्षात्कार नहीं हुआ होगा तो शिष्य को परमात्मा के दर्शन नहीं करा सकेंगे। कलियुग में कोई संत नहीं मिलता तो शंकराचार्यजी अथवा महाप्रभुजी को सद्गुरु मानकर कर मन से सेवा कीजिये।

शुकदेवजी सावधान करते हैं कि नरसिंह स्वामी की गोद में प्रह्लादजी विराजमान हैं। प्रह्लादजी अब नरसिंह स्वामी की स्तुति कर रहे हैं। आपको जब समय मिलता है, तब भगवान् की स्तुति करिए। संसार की निंदा-स्तुति करने वालों का और सुनने वालों का मन बिगड़ता है। एक की बहुत प्रशंसा और एक की निंदा से दूसरे की निंदा और अन्य की प्रशंसा हो जाती है। प्रशंसा सुनने पर मानव का अभिमान बहुत बढ़ जाता है। प्रत्येक जीवन में थोड़ा भी अभिमान होता है तो प्रशंसा सुनने पर वह बढ़ जाता है। स्तुति परमात्मा की कीजिए। आपको जब भी समय मिलता

है तब परमात्मा की स्तुति कीजिए। परमात्मा उदार हैं, अतिशय प्रेम करते हैं। भगवद् स्वरूप का वर्णन करिये आपका मन शुद्ध होगा। परमात्मा की स्तुति करने से अभिमान मर जाता है। दैन्य भाव आता है। स्तुति सुनने से परमात्मा को भी दया आ जाती है। तीन समयों पर स्तुति करने की जरूरत है—सुख के समय पर। जब आपको सुख मिलता है, भगवान् की स्तुति कीजिए। सुख में प्रभु को साथ में रखिये, आपके घर कभी दु:ख नहीं आयगा। भगवान् से कहिये कि मैं लायक नहीं हूँ फिर भी आपने मुझे बहुत धन भी दिया है। सुख में प्रभु का उपकार मानिये।

आपके जीवन में कोई दु:ख का प्रसंग आ जाय तो भी भगवान् का उपकार मानिये। दु:ख में भगवान् की स्तुति कीजिये। अपने मन को बार-बार समझाइए कि प्रभु ने मुझे सुधारने के लिए यह सजा दी है। हमारे जैसा साधारण मानव बहुत पुस्तकों को पढ़ने से नहीं सुधरता है। बहुत पुस्तकों के पढ़ने से अक्षर-ज्ञान बढ़ता है, शब्द-ज्ञान बढ़ता है। साधारण मानव मार पड़ने पर सुधरता है। मन को समझाइए कि प्रभु ने सुधारने के लिये सजा दी है। प्रभु ने मेरे पाप के प्रमाण में बहुत कम सजा दी है। मानव सजा करता है, तब बहुत निष्ठुर होकर करता हैं पर परमात्मा सजा करते हैं, तब बहुत दया रखते हैं। मानव के पाप पहाड़ जितने हों, मानव को पाप के प्रमाण में परमात्मा सजा दें तो कदाचित मानव को खाना भी न मिलता। मानव को मालूम नहीं है कि मैंने कितना पाप किया है। लोग पुण्य का हिसाब रखते हैं पर पाप का हिसाब नहीं रखते हैं, आपके हाथ से कोई अच्छा कार्य हो तो उसे भूल जाइए पर पाप को भूलिए नहीं। सत्कर्म श्रीकृष्ण को समर्पित कीजिये। 'अनेन कर्मणा परमेश्वर प्रीयताम न मम।' प्रत्येक सत्कर्म के बाद ऐसा संकल्प करना होता है। किसी को कम दिया हो तो मानव याद रखता है। आज तक जीभ के स्वाद के लिए और मौज में कितना खर्च किया, इसका हिसाब मनुष्य नहीं रखता है। मानव पाप को भूल जाता है, पुण्य को याद रखता है। मानव बहुत पाप करता है। महाभारत में वर्णन है कि धर्मराज एक बार थोड़ा सा झूठ बोले और इससे उन्हें नरक के दर्शन करने पड़े। हम तो आज तक कितने झूठ बोले हैं, क्या इसका हिसाब रखा है? पाप याद रखने से अभिमान नहीं बढ़ता है। पाप का स्मरण रखिये। पाप को साधारण न मानिये।

दु:ख में भगवान् का उपकार मानिये कि मैंने बहुत पाप किया है, पर प्रभु ने कृपा करके मुझे थोड़ी ही सजा दी है। प्राय: अति सुख में—सम्पत्ति में परमात्मा किसी को नहीं मिले हैं। अति दु:ख में—विपत्ति में ही परमात्मा के दर्शन हुए हैं। सुख में—जो साथ देता है, वह है जीव परन्तु दु:ख में—विपत्ति में जो साथ देता है, वह तो ईश्वर ही है। जिस जीव को भगवान् सजा देते हैं, गुप्त रूप से उसकी देखभाल भी करते हैं। जीव भले ही दु:ख में भगवान् को भूल जाय, भगवान्

उसे नहीं भूलते हैं। जिस मानव को प्रभु सजा देते हैं उसी के साथ प्रभु रहते भी हैं। आपके जीवन में कभी कोई दुःख का प्रसंग आ जाय तो घबराइये नहीं। दुःख पाप के विनाश के लिए ही आया है। दुःख आपको सावधान करने के लिये आया है। दुःख में मानव समझदार बनता है। प्रायः दुःख के बिना बुद्धिमानी नहीं आती है। दुःख में भगवान् का उपकार मानिये। दुःख में मन को शाँत रखकर प्रभु का स्मरण करिये। दुःख में प्रभु को स्मरण करने वाले के मन पर, भगवान् की स्तुति करने वाले पर दुःख का असर नहीं होता है।

शरीर के जिस हिस्से का आपरेशन होता है, उस पर डाक्टर दवा लगाते हैं। उस हिस्से को वे अचेतन करते हैं। फिर आपरेशन करते हैं। शस्त्र क्रिया करते हैं, उसे काटते हैं। मालूम ही नहीं पड़ता कि कोई हिस्सा कट रहा है। एक दवाई की जब ऐसी शक्ति है कि उससे अंग अचेतन हो जाता है और दुःख का पता नहीं लगता, तो परमात्मा की स्तुति से दुःख का असर कम लगने लगे तो क्या आश्चर्य? दुःख में भगवान् की स्तुति कीजिए, परमात्मा का उपकार मानिये। अति दुःख में परमात्मा को साथ रखिये। दुःख का असर आपके मन पर नहीं होगा। सुख में भक्ति करने वाला दुःखी नहीं होता है। दुःख में भगवान् की स्तुति करने वाले के मन पर दुःख का असर नहीं होता हैं–

सुखावसाने इदवमेव सारं, दुःखावसाने इदमेव ज्ञेयम्।
देहावसाने इदमेव जाप्यम्, गोविंद दामोदर माधवेति॥

देहावसान पर भी प्रभु की स्तुति कीजिए। दिन में तीन बार प्रभु की स्तुति करिये। भगवान् की स्तुति संस्कृत भाषा में ही करनी चाहिए– ऐसा नहीं है। भगवान् को सभी भाषाओं का ज्ञान है। अपनी भाषा में भगवान् की स्तुति कीजिए। अपने हृदय के भाव प्रकट कीजिये। भगवान् का वर्णन कीजिए कि आप अति उदार हैं, मुझे सुधारने के लिए थोड़ी सजा दी। आपके अनन्त उपकार हैं।

३५–प्रह्लाद-स्तुति

आज प्रह्लाद नरसिंह भगवान् की गोद में विराजमान हैं और तब परमात्मा की स्तुति करते हैं–

ब्रह्मादयः सुरगणा मुनयोऽथ सिद्धाः सत्त्वैकतानमतयो वचसां प्रवाहैः।
नाराधितुं पुरुगुणैरधुनापि पिप्रुः किं तोष्टुमर्हति स मे हरिरुग्रजातेः॥
मन्ये धनाभिजनरूपतपःश्रुतौजस्तेजः प्रभावबलपौरुषबुद्धियोगाः।
नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो भक्त्या तुतोष भगवान् गजयूथपाय॥

(७-९-८/९)

ब्रह्मादिक देव, विश्वामित्रादिक ऋषि हजारों वर्षों से तपश्चर्या करते हैं, पर उन्हें परमात्मा के दर्शन नहीं होते हैं। आज प्रभु ने बहुत कृपा की मुझे गोद में लिया। परमात्मा मेरे सिर पर अपना वरद् हस्त रखते हैं। आज मैं निर्भय हुआ हूँ। अब मुझे कोई चिंता नहीं है। आज मैं कृतार्थ हूँ। मुझे विश्वास हो गया कि ब्राह्मण के घर जन्म लेना पड़े, ऐसा नहीं है। यज्ञादिक सत्कर्म का अधिकार सर्व को नहीं है पर भक्ति का अधिकार सभी को है। इससे सभी वर्ग-जातियों में भक्त हुए हैं। भगवान् को प्रसन्न करने के लिए अधिक धन कमाने की भी जरूरत नहीं है। क्या अधिक धन कमाने और मन्दिर में बहुत सेवा करने से भगवान् प्रसन्न होते हैं? भक्ति में धन गौण है। कभी-कभी गरीब लोगों को दुःख होता है कि धनवान बहुत दान-पुण्य करते हैं पर हमसे नहीं हो पाता है। कोई धनवान एक सौ रुपये दे और कोई गरीब एक पैसा दे, भगवान् का मन दोनों के लिये समान है। धन से परमात्मा को प्रसन्न नहीं किया जाता है। प्राचीन समय में जितने भी भक्त हुए प्रायः सभी गरीब थे। भगवान् बहुत सम्पत्ति या बहुत शिक्षण से प्रसन्न नहीं होते हैं। बहुत पढ़ाई की, तो क्या भगवान् प्रसन्न होते हैं? बहुत पढ़े-लिखे से भगवान् दूर रहते हैं। बहुत पढ़े-लिखे प्रभु को भी प्रपंच से ठगते हैं। वे बोलने और लिखने में बहुत प्रवीण होते हैं। उन्हें एक शब्द के अनेक अर्थ आते हैं। वे कहते हैं कि उस समय मैंने ऐसा कहा था पर इसका अर्थ भिन्न था। बहुत पढ़े-लिखे पर विश्वास न रखिए। सब ऐसे नहीं होते हैं, पर अधिकतर ऐसे ही होते हैं। बहुत पढ़ा-लिखा भगवान् को प्रिय नहीं है। क्योंकि उसमें बहुत दोष आ जाते हैं। अधिक पढ़ा-लिखा तब ही नमस्कार करता है, जब चमत्कार दिखाई पड़ते हैं, चमत्कार के बिना वे नमस्कार नहीं करते हैं। महाराज! कुछ चमत्कार दिखा दें तो मैं उनको मानूँ! चमत्कार के बाद नमस्कार अभिमान को प्रकट करता है। चमत्कार के बिना नमस्कार मानवता है। अनपढ़ सभी को नमस्कार करते हैं। वे प्रभु को प्रिय हैं। वे ऐसा समझ रहे हैं कि मैं अनपढ़ हूँ, मैं मूर्ख हूँ। मुझे कुछ भी आता नहीं है। अनपढ़ चमत्कार के बिना नमस्कार करते हैं।

चमत्कार करने वाला सन्त नहीं है। संत कभी चमत्कार नहीं करते। चमत्कार तो जादूगर करते हैं। जिसको धन कमाना है, जिसकी ऐसी इच्छा है कि मेरी कीर्ति बढ़ जाय, मुझे प्रसिद्धि मिले, उसके पुण्य का नाश होता है। उसका अंतकाल बिगड़ता है। संतों के चरित्र में चमत्कार दीख पड़ते हैं, पर इसे भगवान् करते हैं, संत की ऐसी इच्छा नहीं होती है कि मुझे कोई अधिक मान दें, धन दें—

विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभपादारविंद विमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम्।
मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थप्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः॥

(७-९-१०)

बहुत पढ़े-लिखे तर्क-वितर्क करते हैं, चर्चा करते हैं। बहुत पढ़े-लिखों में अंधश्रद्धा नहीं होती है। वे शांति से सेवा-पूजा नहीं करते हैं। एक गाँव में हमें एक प्रोफेसर साहब मिले। वे कहते थे कि महाराज! आप कथा तो अच्छी करते हैं, पर आप कथा में कहते हैं कि ठाकुरजी को अर्पण किये बिना पानी भी न पीना, पर भगवान् कहीं पानी पीते हैं? भगवान् खाते भी नहीं हैं, भगवान् पीते भी नहीं हैं। यह अर्पण करने की बात और भोग लगाने की बात मैं नहीं मानता हूँ। यह तो नाटक है। भगवान् को भोग लगाने की जरूरत नहीं है। भगवान् आनन्दरूप हैं, निराकार हैं, अगर भोग लगाने के बाद भगवान् खाते हैं तो खाना कम होना चाहिए, पर खाना जरा भी कम नहीं होता है। इससे मैं मानता हूँ कि भगवान् खाते ही नहीं हैं। आपको सिद्ध करना पड़ेगा कि भगवान् खाते हैं।

व्यासनारायणजी ने इस सभी शंकाओं का निराकरण भागवत में किया है। फूल की चार-पाँच बार सुगन्ध लीजिए, इससे फूल हलका नहीं हो जाता। परमात्मा इसी तरह आपकी भोग लगाई हुई सामग्री से अपनी दिव्य शक्ति द्वारा रस खींच लेते हैं। परमात्मा रस-स्वरूप हैं, रसौ वै स:-साधारणं प्रेम में ठाकुरजी रस रूप में भोजन ग्रहण करते हैं। विशिष्ट प्रेम में परमात्मा प्रत्यक्ष भोजन लेते हैं। शबरी के बेर रामजी ने प्रत्यक्ष खाये थे।

अंध श्रद्धा रखकर जब तक भक्ति नहीं की जाती, भक्ति नहीं होती है। प्रारम्भ में अंध श्रद्धा रखनी ही पड़ेगी। बाद में बुद्धि से अनुभव होता है। बहुत तर्क-वितर्क न कीजिये। श्रद्धा रखकर भक्ति कीजिए। प्रेम से परमात्मा की सेवा कीजिए। सेवा और पूजा में अंतर है। जहाँ मंत्राधीन देव हैं, वहाँ पूजा है, जहाँ प्रेमाधीन परमात्मा हैं, वहाँ सेवा है। सेवा में प्रेम प्रमुख है, मंत्र गौण है। पूजा में मंत्र प्रमुख है, प्रेम गौण है। ब्राह्मण परमात्मा की पूजा करते हैं। वैष्णव परमात्मा की सेवा करते हैं। ब्राह्मण जो मंत्र बोलता है वही मंत्र का अधिष्ठाता देव उस मंत्र के अधीन होता है। पूजा में ब्राह्मण प्रभु को भोजन करवाते हैं-

प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा।
उदानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा, ब्रह्मणे स्वाहा॥

जैसे मन्त्र पूर्ण हुआ, ठाकुरजी को भोजन पूर्ण करना पड़ता है। ब्राह्मण तो तुरन्त ठाकुरजी को आज्ञा करते हैं-'हस्त प्रक्षालनं समर्पयामि।' अब हाथ धो डालिये। एक मिनट में वे प्रभु के हाथ धुला लेते हैं। भगवान् की अभी भोजन की इच्छा है तो भी ब्राह्मण के वचन को मान देते हैं, खाना बन्द करके हाथ धो डालते हैं।

आप खाना खाने बैठे हैं। आपके समक्ष थाल रखकर 'प्राणाय स्वाहा' मंत्र कह कर और फिर तुरन्त थाल उठाकर, एकदम कोई चला जाय तो आपकी दशा कैसी होगी? फोटो लेने योग्य

चेहरा हो जायगा! आप भोज करते हैं, तब दस-पन्द्रह मिनट तो लगते ही हैं। ठाकुरजी भी धीरे-धीरे भोजन करते हैं।

अपने शरीर से आप जैसा प्रेम करते हैं, उससे भी भगवद्-स्वरूप में हजार गुना प्रेम रखिये। यथा देहे तथा देवे यथा देवे तथा गुरो। भगवान् बहुत सुकोमल हैं। लोग सेवा-पूजा करते हैं, पर बहुत प्रेम से नहीं करते हैं। ठाकुरजी को पंचपात्र में पधराते हैं और कोई मित्र अगर मिलने आ जाय तो पन्द्रह-बीस मिनट बातें करते रहते हैं। ठाकुरजी बेचारे वहीं बैठे रहते हैं! सुबह-सुबह आपको अगर कोई तालाब में आधा घंटा बैठाकर रखे तो आपकी दशा क्या होगी? अरे, ऐसा करने से प्रभु को परिश्रम पड़ता है। सेवा इस तरह कीजिए कि भगवान् आनन्द से विराजमान रहें। आपका घर छोड़कर अन्य किसी स्थान पर जाने का उनका मन ही न हो। सेवा प्रेम से कीजिये, भावपूर्वक करिये। प्रत्येक जीव का धर्म है परमात्मा की सेवा करना। अनेक बार ऐसा होता है कि पत्नी घर में सेवा करती है और पति सन्तोष मानते हैं कि ये सब कुछ करती है। अरे,ये सब करती है, इससे आपको क्या मिलने वाला है? पत्नी भोजन करे तो पति को तृप्ति नहीं होती है। पत्नी सेवा करे तो इसका फल पति को नहीं मिलता है।

आजकल लोग पैसे अलग-अलग रखते हैं। इससे इन्कम टैक्स कम देना पड़ता है। घर में ठाकुरजी तो सभी के एक ही होते हैं। अपने प्रभु को अलग रखिये। यह मेरे ठाकुरजी हैं, इनकी सेवा के बिना मुझे पानी भी पीने की इच्छा नहीं होती है। मेरे प्रभु की सेवा कोई दूसरा करे यह मुझे पसन्द नहीं है। अपने प्रभु की सेवा मैं खुद ही करूँगा। आपके ठाकुरजी की पूजा कोई दूसरा करे और आपको खाना भावे तो समझना कि आपकी भक्ति झूठी है। आपके ठाकुरजी की सेवा-पूजा कोई दूसरा करता है तो आपको कैसे पसन्द आता है? किसी मानव में ममता रखना बहुत अच्छा नहीं है, भगवान् में ममता रखनी चाहिए। भगवान् मेरे हैं—ऐसा समझने वाला ही भक्ति कर सकता है। स्त्री मेरी है, और पुरुष मेरा है—ऐसा समझने वाला भक्ति कर सकता होगा?

मृत्यु की शय्या पर पड़े-पड़े सभी को बुद्धिमानी आती है। अब मेरा कोई नहीं है, अब मुझे अकेले ही जाना है। एक भगवान् ही मेरे हैं। सभी काल में ममता भगवान् में ही रखिये। सेवा आप स्वयं करिये। ठाकुरजी की सेवा कोई और करता है तो काम नहीं चल सकता—

नैवात्मनः प्रभुरयं निजलाभपूर्णो मानं जनादविदुषः करुणो वृणीते।
यद् यज्जनो भगवते बिदधीत मानं तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः॥

(७-९-११)

परमात्मा आनन्द-रूप हैं। उन्हें किसी चीज की इच्छा नहीं है। धरती को भूख नहीं लगती है, उसकी इच्छा नहीं है कि कोई मुझे एक दाना भी दे, पर धरती को कोई चार दाने भी देता है तो धरती उसे चार हजार गुना करके देती है। प्रेम से भगवान् को जो अर्पण करेंगे, भगवान् उसको स्वीकार करेंगे। परमात्मा के किसी भी स्वरूप को इष्टदेव मानकर प्रेम से भक्ति कीजिये, सेवा कीजिये। जिसका मन मूर्ति में स्थिर है, उसका मन ही स्थिर होता है। मूर्ति में मन स्थिर नहीं होता, तब तक मन शुद्ध नहीं होता और तब तक व्यापक परमात्मा का अनुभव भी नहीं होता है। प्रभु ने सम्पत्ति दी है तो प्रभु के लिए सिंहासन बनवाइए। प्रभु की भावपूर्वक सेवा कीजिए। सब कुछ भगवान् को अर्पण करके ही लेना चाहिए। आपका कल्याण होगा। घर के स्वामी तो श्रीकृष्ण हैं। घर में स्वामी बनकर न रहना, सेवक बनकर रहना। मानव तो कृतघ्नी है, कपट करता है। परमात्मा उदार हैं। भावपूर्वक उनकी सेवा करेंगे तो प्रभु उसे कभी नहीं भूलेंगे। थोड़ा करना पर प्रेम से करना, तो उसे प्रभु भूलेंगे नहीं, वे प्रसन्न होंगे। प्रभु ने कृपा करके सब दिया है। प्रभु का सब कुछ है और प्रभु को ही अर्पण करना है।

सेवा में बैठने से पहिले दस-पंद्रह मिनट आँखें बंद करके ध्यान कीजिए। जिसे याद आता है कि मैं पति हूँ, पिता हूँ, पुत्र हूँ, भाई हूँ—उसका ब्रह्म-संबंध नहीं होता है। ब्रह्म-संबंध करना है तो संसार के संबंध छोड़ने पड़ेंगे।

ध्यान के बिना सेवा-पूजा नहीं हो सकती है। ध्यान में ऐसी भावना रखिये कि बैकुण्ठ से लक्ष्मी नारायण मेरे घर पधारें। आप जिस स्वरूप की सेवा करते हैं, उस स्वरूप में भगवान् का प्रवेश होता है, ऐसी भावना रखिये। लोहे की शलाका अग्नि में डालने के बाद वह लोहा नहीं रहता, वरन् अग्नि हो जाता है। उसे कोई लोहा समझकर छूने जाता है तो क्या होता है? अग्नि की तरह वह उससे जल जायगा। अब वह लोहा नहीं है, अग्नि है। बाजार में दुकान में जब मूर्ति होती है, तब मूर्ति कही जाती है, परन्तु वेद-विधि से प्राण-प्रतिष्ठा के बाद वह मूर्ति नहीं है, वह साक्षात् प्रभु का स्वरूप है। पत्थर की मूर्ति हँसती नहीं है पर अगर आप प्रेम से सेवा करेंगे तो ठाकुरजी धीरे-धीरे हँसने लगेंगे, प्रसन्न होंगे। वैष्णव मूर्ति-पूजा नहीं करते, वे प्रत्यक्ष परमात्मा के स्वरूप की सेवा करते हैं। ऐसी भावना रखिये कि ये भगवान् हैं।

जो एकाग्र होकर ध्यान करता है, प्रेम से ध्यान करता है उसका संसार-संबंध छूट जाता है। हमारे शास्त्रों में ऐसा वर्णन है कि भगवान् का ध्यान करने से पहिले भगवान् के धाम का ध्यान कीजिए। आप रामजी का ध्यान कर रहे हैं, तो ऐसा ध्यान कीजिए कि अभी मैं श्रीधाम अयोध्या में बैठा हूँ। मैंने श्री सरयू-गंगा में स्नान किया। कनक भवन में श्री सीता रामजी विराजमान हैं। प्रभु

के धाम का ध्यान करेंगे तो आप अपने गाँव को, घर को भूल जायेंगे। श्रीकृष्ण भगवान् का ध्यान करते हैं तो ऐसा ध्यान कीजिए कि अभी मैं वृन्दावन में हूँ। आपके प्रभु जिस धाम में विराजमान हैं, उस धाम का चिंतन करना है। शंकर भगवान् की सेवा करते हैं तो ध्यान कीजिये की अभी मैं काशी में हूँ। मैंने गंगाजी में स्नान किया है। गंगाजी के जल का घड़ा भरकर मैं काशी-विश्वनाथ के मंदिर में गया हूँ।

भावना में बहुत शक्ति है। सेवा में क्रिया का बहुत महत्व नहीं है, भावना से ही भक्ति बढ़ती है। परमात्मा जहाँ विराजमान हैं, उस धाम का ध्यान कीजिए, बाद में भगवद्-स्वरूप का ध्यान कीजिए। भावपूर्वक प्रेम से सेवा कीजिए। ये साक्षात् भावना कीजिये। भगवान् हैं, ये भोजन कर रहे हैं। प्रेम से जो कुछ भी अर्पण करेंगे, भगवान् उसको स्वीकार करेंगे।

कई लोगों को तो ठाकुरजी के समक्ष बैठना भी नहीं आता है। कई व्यक्ति ठाकुरजी के समक्ष पाँव-पर-पाँव चढ़ाकर बैठते हैं, मंदिर में, कथा में, सेवा में, भगवान् के समक्ष पैर पर पैर चढ़ाकर बैठनें से पाप लगता है। इस तरह बैठना पद्मासन कहलाता है। पद्मासन वर्ज्य है। आपके घर कोई बड़े साहब आते हैं, तब आप जोर से नहीं बोलते हैं। कई व्यक्ति ठाकुरजी के समक्ष जोर-जोर से बोलते हैं। ऐसों को पाप लगता है। प्रभु के समक्ष उवासियाँ बहुत आती हैं। यह भी अच्छा नहीं हैं। प्रेम से सेवा कीजिए तो उबासी नहीं आयगी। ठाकुरजी की सेवा में बैठने के बाद अपानवायु न छूटे इसका ध्यान रखना चाहिए। रात्रि में मटर-चना बहुत खाने पर सुबह अपानवायु हो जाती है। वायु के बढ़ने से तन-मन दोनों बिगड़ते हैं। सादा भोजन कीजिए।

भावना कीजिये कि प्रभु मेरे स्वामी हैं। सेवा में दास्य-भाव हृदय को त्वरित ही द्रवित कर देता है। मानिये कि ठाकुरजी मालिक हैं, मैं उनका तुच्छ सेवक हूँ। अपने स्वामी की कृपा से मैं सुखी हूँ। मैं योग्य नहीं हूँ पर प्रभु ने कृपा करके मुझे सब कुछ दिया है। दास्य भाव दैन्य लाता है।

कई लोग सखा भाव या वात्सल्य भाव से सेवा करते हैं। यह भी अच्छा है पर दास्य भाव मन को तुरन्त शुद्ध करता है। दास्यभाव से सेवा कीजिए। धन के लोभ से जैसे लोग श्रीमान्तों की खुशामद करते हैं, उसी तरह एकान्त में प्रभु की खुशामद कीजिए। भगवान् को अनेक बार कहिये कि नाथ! आप भोजन कीजिए। आपके घर जब कोई बड़ा साहब आता है तब आप मनाते हैं कि साहब! थोड़ा तो खाना ही पड़ेगा। साहब के आगे चाय रखेंगे, तो साहब नहीं लेंगे। उनसे दो तीन बार कहना पड़ेगा। साहब अंधे नहीं हैं, उन्हें दीख पड़ता है कि चाय रखी है पर अभिमान में रहते हैं। सोचते हैं कि मुझसे कोई कहे तो बाद में चाय लूँ।

भगवान् तो सर्व से श्रेष्ठ हैं। परमात्मा को एक-दो बार नहीं अनेक बार कहना पड़ता है। लाला के पास कोई बैठे लाला को मनाये, लाला को बखान करे, तब कन्हैया थोड़ा-सा खाता है। लाला की ऐसी आदत है। मेरे पास बैठे, मेरा कीर्तन करे, मुझे समझाये, बाद में मैं खाऊँगा। आप लाला से प्रार्थना कीजिए। अनेक बार उसे मनाइए। कन्हैया सर्व से श्रेष्ठ है। बहुत मनाइए तो परमात्मा भोजन लेंगे।

नामदेव के चरित्र में कथा आती है– नामदेव महाराज जब पाँच वर्ष के थे, तब विट्ठलनाथजी की सेवा करते थे। नामदेव के घर विट्ठलजी की सेवा थी। पिताजी जब सेवा करते, तब बालक नामदेव पास में बैठकर देखते। एक बार ऐसा हुआ कि पिताजी को कहीं बाहर जाना पड़ा। उन्होंने बालक नामदेव को कहा–कल ठाकुरजी की सेवा तुम्हें करनी है। बालक ने पूछा–पिताजी। सेवा कैसे करनी है? पिताजी ने कहा–बेटा, घर में जो कुछ है उसके स्वामी ये विट्ठलनाथजी हैं। यह सब प्रभु ने हमें दिया है। मालिक की सेवा किये बिना खाना पाप है। बालक ने पूछा–पाप लग जाय तो ठाकुरजी मारते हैं, सजा करते हैं। बालक ने पूछा–पिताजी। आज तक मैंने ठाकुरजी की सेवा नहीं की है तो क्या ठाकुरजी मुझे मारेंगे? पिता ने कहा–ना बेटा, तुम्हें नहीं मारेंगे, वे बहुत उदार है। बहुत प्रेमपूर्ण हैं। जीव अपराध करता है, पर भगवान् भूल जाते हैं। बालक ने कहा–पिताजी,कल से मैं सेवा करूँगा पर सेवा किस तरह करनी है, सो मुझे बताइए। पिताजी ने कहा–बेटा! ठाकुरजी के जागने से पहले तुम्हारा स्नान हो जाना चाहिए। ठाकुरजी को शयन करवायी है, कल तुम ठाकुरजी को जगाना। प्रेम से ताली बजाकर 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे– पाँच-दस मिनट कीर्तन करते हुए, भगवान् को वंदन करते हुए, कहना कि नाथ, अब आप जागिये। मैंने सब तैयारी कर रखी है। आप सेवा में बैठने से पहिले सभी तैयारी करके रखिये, जिससे बीच में से उठने का प्रश्न ही उपस्थित न हो, बोलने का प्रसंग भी न आये। एक तुच्छ नौकर जिस प्रकार अपने मालिक को विवेक से जगाता है–ऐसा भाव रखिये। भावना रखिये कि भगवान् मेरे स्वामी हैं, भगवान् को जगाना है– तो इस प्रकार आपका प्रेम भी बढ़ेगा।

जब आपका हृदय प्रेम से पसीजेगा, आर्द्र होगा तब ठाकुरजी जागेंगे। बाद में उनको सिंहासन पर बैठाइए, आचमन करवाइए। जागने पर लाला को बहुत भूख लगती है। उसे माखन-मिसरी, गाय का दूध अर्पण कीजिए पर बेटा, हमारे घर माखन कहाँ है? बेटा, बंगलों में माखन अर्पण करना होता है। हमारे घर तो दही भी नहीं है। मेरा तो ऐसा नियम है कि शृंगार के बाद मैं ठाकुरजी को दूध का भोग अर्पण करता हूँ और उस समय हाथ जोड़कर कहता हूँ कि मंगला का और शृंगार का यह भोग है–ऐसा आप मान लीजिए। ये लोग बहुत गरीब हैं माखन कहाँ से लाते?

बाद में पुत्र को समझाते हैं कि बेटा ठाकुरजी के चरण पखारना। भगवान् के चरण तो कमल से भी कोमल होते हैं। मानव हाथ कठोर होते हैं। भगवान् को जरा भी श्रम न हो—इस तरह मांगलिक स्नान करवाना, भगवान् के श्रीअंग पर धीरे-धीरे हाथ लगाना। जब आप गर्म पानी से स्नान करते हैं, तब आप अपने ठाकुरजी को ठंडे जल से स्नान करवायें तो यह क्या उचित है? शंकर भगवान् की लीला तो सबसे अनोखी है।

शिवजी को तो हिमालय में भी गर्मी लगती है परन्तु बालकृष्णलाल की सेवा करने पर या श्रीरामजी की सेवा करने पर इतना ध्यान में रखिये कि वे अति कोमल हैं। सर्दी के दिनों में ठाकुरजी को गर्म पानी से स्नान करवाइए। बेटा! सेवा करते हुए भगवान् को वंदन करके कहना कि मेरी कोई गलती हो तो क्षमा कीजिये। मुझे कुछ आता नहीं है। मैं मूर्ख हूँ। मेरे दोष मुझे गुण-सदृश लगते हैं। मानव में बहुत दोष होते हैं पर मानव को अपने दोष गुण—सदृश दीखते हैं। प्रभु से अपने आप दीन भाव से कहिये कि मुझे कुछ आता नहीं है तो आपके प्रभु आपके हृदय में आयेंगे। जिस स्वरूप की आप सेवा करते हैं वह स्वरूप आपके हृदय में आयेगा और आपको प्रेरणा भी देगा और वे आपको समझायेंगे। ठाकुरजी जैसा समझायेंगे, ऐसा समझाना मानव को नहीं आता है। प्रभु को दया आती है। मीराबाई के चरित्र में आता है कि मीराबाई गोपाल के साथ बातें करती हैं। कई लोग ऐसा समझते हैं कि भगवान् कहाँ बोलते हैं। अरे, भगवान् नहीं बोलते तो आप भगवान् के साथ बोलिए। प्रभु को दया आयेगी और जीवन में कभी एक-दो शब्द बोलेंगे तो जीवन-नैया पार हो जायेगी। लाला की खुशामद कीजिए। लाला को मनाइये। भगवान् नहीं बोलते हैं तो भी आप भगवान् के साथ बोलिये। मीराबाई भगवान् के साथ बातें करती हैं। मीराबाई की सेवा में वीणा नाम की एक दासी रहती थी। दासी ने मीराबाई से पूछा कि आप किसके साथ बातें करती हैं? मीराबाई ने कहा—अपने गोपाल के साथ बातें करती हूँ। वीणा ने पूछा— वे तो बोलते नहीं हैं, आप क्यों बोलती हैं। मीरा ने बहुत सरस उत्तर दिया, कि वे मेरे साथ नहीं बोलते हैं। लायक नहीं हूँ न! इससे नहीं बोलते। मैं कहाँ लायक हूँ पर मुझे विश्वास है कि वे कभी तो बोलेंगे ही। दो वर्षों के बाद, बारह वर्षों के बाद भी बोलेंगे। मेरे जीवन के अंतिम दिन तो वे अवश्य बोलेंगे। वे मुझे लेने आयेंगे,ऐसी मेरी निष्ठा है। कभी किसी मानव से आशा न रखनी चाहिये, और कभी प्रभु की आशा न छोड़नी चाहिये। कोई मानव मुझे सुख देगा, ऐसी आशा न रखिये। जो मानव से आशा करता है, वह महादु:ख पाता है। भगवान् की आशा न छोड़िये।

वैष्णव आशा रखकर प्रभु सेवा स्मरण में तन्मय बनते हैं। वे आशा रखते हैं कि प्रभु बारह वर्ष बाद बोलेंगे, जीवन की अंतिम साँस के समय बोलेंगे। भगवान् एक बार दो शब्द बोलें तो

जीवन सफल हो जाय। अपने भाव प्रभु के समक्ष रखिये। भगवान् से कहिये कि मैं पापी हूँ, मेरा मन बहुत पाप करता है। मैं समझ रहा हूँ, पर अपने मन को सम्भाल नहीं पा रहा हूँ। मेरा मन बहुत बिगड़ गया है। आप प्रभु से ऐसा कहिये। प्रभु प्रेम से सुनते हैं।

पिता नामदेव को समझा रहे हैं कि बेटा! ठाकुरजी के साथ बातें करना। कहना कि आपको परिश्रम तो नहीं हो रहा है? मेरी कोई गलती हो तो मुझ से कहिये। प्रेम से प्रभु को स्नान कराना। बाद में प्रेमपूर्वक प्रभु का श्रृंगार करना। आप स्वयं नये-नये वस्त्र पहनते हैं, प्रभु को भी नये वस्त्र पहिनाइये। प्रभु ने आपको दिया हो तो प्रभु-सेवा में भगवद् भक्ति में लक्ष्मी का सदुपयोग कीजिए। जहाँ लक्ष्मी का उपयोग नारायण की सेवा में होता है। वहीं लक्ष्मी अखंड विराजमान है। श्रृंगार करने से प्रभु को लाभ नहीं है पर आपको लाभ है। प्रभु का स्वरूप तो ऐसा सुन्दर है बिना श्रृंगार के भी शोभायमान है। श्रृंगार से क्या प्रभु की शोभा बढ़ती है? अरे! श्रृंगार ही प्रभु से शोभित है। प्रभु तो बिना श्रृंगार के भी शोभित हैं।

रामायण में वर्णन है कि रामचन्द्रजी जब वन में गये थे, तब उन्होंने जरा भी श्रृंगार नहीं किया था। मोटे-खुदरे वल्कल पहिने थे। मस्तक पर जटायें थीं, पर रामचन्द्रजी ऐसे सुन्दर दीख रहे थे कि शूर्पणखा ने रामचन्द्रजी को देखते ही मन में इच्छा की कि राम मेरे पति हो जायँ! मैं राम से विवाह करना चाहती हूँ। शूर्पणखा तो राक्षसी थी। राक्षस-राक्षसी भी रामचन्द्रजी के दर्शन करके मुग्ध हो जाते थे। रामचन्द्रजी ने कहीं श्रृंगार किया था? श्रृंगार न करने पर भी भगवान् सुन्दर ही हैं। भगवान् को श्रृंगार की जरूरत ही नहीं है। भगवान् को श्रृंगार करने से भगवान् की शोभा नहीं बढ़ती है पर जो प्रेम से भगवान् का श्रृंगार करता है, उसका मन शुद्ध होता है। छोटा सा स्वरूप हो तो उनके श्रृंगार करते समय आपको आँखें और मन दोनों उसमें केन्द्रित करना पड़ता है, तब ही श्रृंगार हो सकता है। जितने समय तक आप भगवान् का श्रृंगार करेंगें, उतने समय तक आँखें और मन भगवान् में स्थिर रहेंगे। आप प्रेम से श्रृंगार करिये, आपका मन शुद्ध होगा।

ठाकुरजी का स्नान और फिर ठाकुरजी का श्रृंगार करना होता है। ठाकुरजी को श्रृंगार करके उनको दर्पण दिखाना होता है। दर्पण में दर्शन करते हुए भगवान् होंठों में मंद-मंद हँसने लगें तो समझना कि श्रृंगार समुचित हुआ है। श्रृंगार के बाद अगर प्रभु मंद मुस्कराने न लगें तो समझना कि आज ठीक से सेवा नहीं हो सकी है। जो वैष्णव प्रेम से प्रभु की सेवा करते हैं, उन्हें ऐसा अनुभव होता है कि आज ठाकुरजी आनन्द में हैं, आज बहुत प्रसन्न दीख रहे हैं!

कभी जब मानव पाप करता है, तब ठाकुरजी की सेवा करते समय ठाकुरजी उलाहना देते हैं-मेरे होकर ऐसा पाप करते हो? तुम छल क्यों करते हो? तुम्हारी सब चिन्ता मुझे है। मैं तुम्हारे

घर में बैठा हूँ। मानव पाप करता है, तब प्रभु को पसन्द नहीं आता है। तब ठाकुरजी प्रसन्न नहीं दीखते हैं। ठाकुरजी प्रसन्न रहें, ऐसा व्यवहार रखिये। नियम से सेवा करने वाले और श्रृंगार करने वाले के मन में सेवा-भाव जाग उठता है। दर्शन में उसे आनन्द आता है। पिताजी नामदेव को समझा रहे हैं कि बेटा! ठाकुरजी का श्रृंगार करना। उन्हें गोपीचन्दन बहुत प्रिय है, तिलक करना। चरणों में तुलसी जी समर्पण करना। श्रृंगार के बाद प्रभु को भूख लगती है। श्रृंगार के बाद प्रभु को भूख लगती है। श्रृंगार के बाद दूध अर्पण करना। उन्हें हाथ जोड़कर अनेक बार मनाना पड़ता है कि यह दूध आप पीजिये। तुम अनेक बार मनाओगे, तब ठाकुरजी दूध को स्वीकार करेंगे।

बालक नामदेव ने पूछा कि क्या भगवान् दूध पीते हैं? पिता ने कहा– क्यों नहीं? प्रेम से अर्पण कने पर वे अवश्य स्वीकारते हैं। बालक के मन में यह बात स्थित हो गयी कि भगवान् दूध पीते हैं। पिताजी ने आगे कहा, कि बेटा बाद में ठाकुरजी को प्रसन्न करने के लिये थोड़ा कीर्तन करना और उनकी स्तुति करना। घर में रसोई तैयार हो तो थाल सजाकर प्रभु को समर्पित करना। हाथ जोड़कर प्रार्थना करना कि मैं आपको क्या अर्पण करूँ? आपकी ही वस्तु मैं आपको अर्पण करता हूँ। आप इसको ग्रहण कीजिये। मैं दर्शन करूँगा। भगवान् जब भोजन ग्रहण कर लें, तब जल अर्पण करना, आरती भी विधि से करना। आरती का अर्थ भी समझने जैसा है। परमात्मा के मिलन के लिये, प्रभु-दर्शन के लिये हृदय आर्त हो जाय, तब आरती हो सकती है। मैं अपने प्रभु से बिछुड़ गया हूँ। मैं इतना बड़ा हो गया, फिर भी अभी तक मुझे अपने प्रभु के दर्शन नहीं हुए हैं। मैं अध म हूँ, पापी हूँ। मेरा भगवान् से वियोग हुआ है। भगवान् के वियोग में जिसे दुःख है, जिसका हृदय आर्त बना है, वही समुचित रूप से आरती कर सकता है।

आरती का क्रम है कि तीन बार चरण पर से आरती उतारिये, तीन बार वक्षः-स्थल के ऊपर से और तीन बार मुखारविन्द के ऊपर से आरती उतारिये। सात बार सर्वांग की आरती उतारिये। धीरे-धीरे आरती उतारिये। आरती के समय भगवान् के एक-एक श्रीअंग के दर्शन कीजिये। भगवान् के चरण कैसे हैं? भगवान् की अँगुलियाँ कैसी हैं? भगवान् के हाथ कैसे हैं? ठाकुरजी का श्रीअंग आनन्दमय है। भगवान् के श्रीअंग में आनन्द के सिवाय कुछ नहीं है। बेटा! इस तरह की आरती के बाद भगवान् को साष्टांग वन्दन करना और फिर क्षमा माँगना–

मंत्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर।
यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे॥

मुझे कुछ भी आता नहीं है। आप मान लीजिये कि मैं शरण में आया हूँ। आपका ही हूँ। ऐसा कहकर भगवान् का वन्दन कीजिये। मैं आपका हूँ, ऐसा कहकर वंदन करने पर प्रभु को कभी दया आती है।

पिताजी नामदेव से कहते हैं कि बेटा! भावपूर्वक सेवा करना। पिता बाहर चले गये। नामदेव ने निश्चय किया कि कल मैं सेवा करूँगा। आज तक मैंने सेवा नहीं की है। कल मैं मुँह अँधेरे जाग जाऊँगा। बालक को स्वप्न में विट्ठलनाथजी का स्वरूप दिखाई दिया। सारा दिन वह सोचता है कि कल मुझे सेवा करनी है। इससे उसे स्वप्न में प्रभु का स्वरूप दीख पड़ा । बालक प्रातः काल जाग पड़ा। उसने स्नान किया। ठाकुरजी की सेवा में वह आ पहुँचा। ठाकुरजी को जगाया। आज प्रभु होठों में मन्द-मन्द हँसते हैं। प्रभु को बालक बहुत प्रिय हैं। आपका ज्ञान बहुत बढ़ जाय, प्रभु आपको बहुत सी सम्पत्ति दें, तो भी ठाकुरजी की सेवा में अज्ञान बालक से बन जाइये। ज्ञान अच्छा है, ज्ञान का अभिमान बहुत बुरा है। सेवा-पूजा के समय अभिमान त्यागकर बैठिये। मैं भगवान् का साधारण बालक हूँ—ऐसा भाव रखिये। जिसका हृदय बालक-सा है, प्रभु उसको जल्दी स्वीकार करते हैं।

आज सेवा में नामदेव हैं, इससे प्रभु बहुत प्रसन्न हैं। मेरा पुत्र मेरी सेवा में आया है। उसका कितना प्रेम है! आज वह प्रातः काल में ही जाग गया है! मेरे प्रति उसके मन में कैसा भाव है! बालक ठाकुरजी को जगाता है। ठाकुरजी के चरण धीरे-धीरे पखारता है। प्रभु के चरणों को हाथ से सहलाते-सहलाते उसकी आँखें भर आयीं कि मेरे भगवान् के चरण कितने कोमल हैं। परमात्मा का स्पर्श करने पर शरीर में रोमाञ्च हो जाता है। नामदेव सेवा करते-करते भगवान् से पूछते हैं कि आपको कुछ त्रास तो नहीं हो रहा है? मुझे कुछ नहीं आता है। मैं मूर्ख हूँ, पर आपकी शरण में आया हूँ। मैं आपका दास हूँ। ठाकुरजी नामदेव की बात सुनते हैं कि कैसा मीठा बोल रहा है। ऐसा तो पढ़ा-लिखा भी नहीं बोल पाता! ठाकुरजी उसकी बातें सुनकर प्रसन्न होते हैं। ठाकुरजी को स्नान कराया। सुन्दर पीताम्बर पहनाया,शृंगार किया। ये बहुत गरीब वैष्णव है। हीरा-मोती कहाँ से लाये? ठाकुरजी को गुँजामाला अर्पण की, तुलसी माला अर्पण की। शृंगार बहुत सादा है। पर आज परमात्मा बहुत प्रसन्न हैं। बालक के हृदय का प्रेम उस मूर्ति में प्रविष्ट हो जाता है। प्रेम में ऐसी शक्ति है। प्रेम जड़ को चेतन बना देता है।

नामदेव को दर्शन में आनंद आ गया है। उसको याद आ गया, कि पिताजी ने कहा है कि भगवान् का शृंगार हो जाता है, तब भगवान् को भूख लग आती है। बालक ने भगवान् को दूध अर्पण किया। हाथ जोड़े और कहा कि 'आप मेरे स्वामी हैं, इस घर में जो कुछ है आपका ही है। कृपा करके आपने सब कुछ हमें दिया है। मैं आपकी शरण आया हूँ। इस दूध को प्रेम से लाया हूँ। आप इस दूध को पीजिये। मैं आँखें बंद करके कीर्तन कर रहा हूँ। तब तक आपको दूध पी लेना है।'

बालक आँखें बंद करके 'हरे कृष्ण...हरे कृष्ण'—कीर्तन करने लगा। उसने सोचा कि मैं कीर्तन करता हूँ तब तक आप सारा दूध प्रभु पी जायेंगे। भगवान् उसका कीर्तन सुनते हैं कि कैसा मधुर बोल रहा है! मुझसे कहता है कि 'आप दूध पी जाइये।' मुझे दूध मिल गया है। मेरा नामदेव प्रातः काल जागा है। उसे भूख लगी होगी। वह बालक है। वह यह सब कुछ पी जाय तो अच्छा। प्रभु दूध नहीं पीते हैं। पाँच मिनट बाद नामदेव ने आँखें खोलीं। कटोरे में दूध दीख रहा है। ठाकुरजी ने दूध नहीं पिया है। नामदेव ने कहा—आप क्यों दूध नहीं पीते हैं! मुझसे पिताजी कह रहे थे कि आपको बहुत मनाना पड़ता है, फिर आप दूध पी लेते हैं। पिताजी घर में नहीं है, क्या इसलिए आप दूध नहीं पीते हैं? वे तो आठ-दस दिन के बाद आयेंगे। मेरी भूल हुई हो तो मुझे क्षमा कर दीजिये। मेरे पिताजी कह रहे थे कि आप सब-कुछ भूल जाते हैं। मैं अपराधी हूँ, पापी हूँ, पर आप इसे भूल जाइये। आज तक मैंने आपकी सेवा नहीं की है पर आप अति उदार हैं। नाथ, कृपा कीजिये। इतना दूध आप पी जाइये। आपको भूख लग आयी होगी। इस दूधमें शक्कर कम है, इससे आपको पसंद नहीं है क्या? बालक को ऐसा लगा कि ठाकुरजी सिर हिला रहे हैं। शक्कर कम लग रही है, ऐसा सोचकर बालक घर में गया और दूसरी शक्कर ले आया। उसे दूध में डालकर प्रभु के समक्ष रखा। फिर प्रभु को समझाने लगा कि अब मीठा लग रहा है कि नहीं। आपको भाता है न! ऐसा कहकर पुनः कहने लगा कि मैं कीर्तन करता हूँ, इतने में आप दूध पी जाइये।

बालक आँखें बन्द रखकर प्रेम से हरे कृष्ण-हरे कृष्ण कीर्तन करने लगा। उसकी ऐसी भावना है कि 'मैं आँखें बन्द रखकर कीर्तन करूँ तो भगवान दूध पी लेंगे। प्रभु बालक का प्रेम देखकर प्रसन्न हो गये। पाँच मिनट के बाद जब नामदेव ने आँखें खोलीं और देखा तो कटोरी में दूध वैसा ही पड़ा था। बालक प्रभु को मनाता है कि आज आपको क्या हुआ है? आज आप क्यों बोलते नहीं? कुछ लेते भी नहीं। पिताजी देते हैं, तब लेते हैं। आज मैं सेवा करने बैठा हूँ, तब नहीं लेते हैं? आज तक मैंने आपकी सेवा नहीं की है, इससे नाराज हो गये क्या? आप नाराज न होइए। आप मेरे स्वामी हैं, मैं आपका सेवक हूँ। आप नाराज होंगे तो मेरा क्या होगा? मैं कहाँ जाऊँगा? मेरी गलती हुई है, क्षमा माँगता हूँ। मैं सच,सच कह रहा हूँ कि आप भूखे रहेंगे तो घर के सभी लोग भूखे रहेंगे। कोई पानी भी नहीं पियेगा। आप भूखे रहेंगे तो पिताजी घर आने पर मुझे मारेंगे। मुझसे वे कहकर गये हैं कि बराबर प्रेम से सेवा करना, प्रभु को परिश्रम न हो, प्रभु भूखे न रहें। कैसा भी हूँ, मैं आपका हूँ। मुझे कोई मारे तो आपसे देखा नहीं जायेगा।

भगवान् को नामदेव की बातें सुनकर आनन्द आ रहा है। ज्ञान से प्रायः अभिमान आता है। शुद्ध भक्ति में अभिमान मरता है। भक्त दैन्य भाव से भगवान् से कहता है—

नैतन्मनस्तव कथासु विकुण्ठनाथ सम्प्रीयते दुरितदुष्टमसाधु तीव्रम्।
कामातुरं हर्षशोकभयैषणार्तं तस्मिन्कथं तव गतिं विमृशामि दीनः॥

(७-९-३९)

भक्ति में दैन्य आता है। बालक सोच रहा है कि भगवान् मेरे हाथ से दूध नहीं ले रहे हैं। मैं अधम हूँ, पापी हूँ। बालक एक घंटे तक ठाकुरजी को मना रहा है। बाद में व्याकुल हुआ। बोला कि आप स्वामी हैं, मैं आपका दास हूँ। आप नाराज हैं तो मेरा जीवन वृथा है। अब मैं आपको अंतिम बार कह रहा हूँ कि अगर आप दूध नहीं लेंगे तो मैं सिर पटक कर मर जाऊँगा। मैं जीकर करूँ भी क्या और सचमुच बालक सिर पटकने लगा। अब परमात्मा से वह सहन नहीं हुआ। इसका कारण प्रेम है। निष्काम प्रेम परमात्मा को सकाम बनाता है। प्रभुने वह कटोरा उठाया है और एक हाथ नामदेव के मस्तक पर रखकर कहा—'मैं दूध पीता हूँ। नामदेव ने आँखें खोलकर देखा। भगवान् दूध पीने लगे। धीरे-धीरे भगवान् सब दूध पी जाने वाले थे। नामदेव ने याद दिलाया—अकेले न पी जाना। मेरे लिये प्रसाद रखना। मैं भूखा हूँ। पिताजी तो रोज मुझे प्रसाद देते थे। परमात्मा ने हँसकर नामदेव को दूध पिला दिया। सेवा, प्रेम से सफल होती है। शुद्ध भाव से, प्रेम से परमात्मा को मनाइये।

आप परमात्मा से जैसा प्रेम करेंगे, इससे हजार गुना प्रेम भगवान् आपके साथ करेंगे। वे अति उदार हैं। वे बहुत प्रेम करते हैं। प्रेम अन्योन्य है। प्रेम से, भावपूर्वक सेवा कीजिये। भगवान् के नाम जप करते हुए, भगवान् का स्मरण कीजिये। परमात्मा को प्रसन्न करने के लिये बहुत पढ़ने-लिखने की जरूरत नहीं है। बहुत धन कमाने की भी जरूरत नहीं है। जरूरत है प्रेम की—

तत् तेऽर्हत्तम नमः स्तुतिकर्मपूजाः कर्मस्मृतिश्चरणयोः श्रवणं कथायाम्।
संसेवया त्वयि विनेति षडंगया किं भक्तिं जनः परमहंसगतौ लभेत॥

(७-९-५०)

परमात्मा को प्रसन्न करने के लिये दो साधन हैं—सेवा और स्मरण। आनन्दमय परमात्मा आपका प्रेम देखकर बहुत प्रसन्न होंगे। आप प्रेम से जो समर्पित करेंगे, उसे अनन्त बनाकर आपको वे देंगे। प्रह्लादजी ने स्तुति तो बहुत बड़ी की है। यहाँ दो-चार श्लोकों का थोड़ा भावार्थ दिया है। प्रह्लादजी कहते हैं—

यदि रासीश मे कामान् वरांस्त्वं वरदर्षभ।
कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम्॥

इन्द्रियाणि मनः प्राण आत्मा धर्मो धृतिर्मतिः।
ह्रीः श्रीस्तेजः स्मृतिः सत्यं यस्य नश्यन्ति जन्मना॥

(७-१०-७/८)

भगवन्! किसी भी तरह के सुख भोगने की इच्छा हो तो मन चंचल हो जाता है, शक्ति का विनाश होता है, पाप शुरू होता है। भगवद्-इच्छा से किसी तरह का सुख मिले तो प्रभु का प्रसाद मानकर परमात्मा को स्मरण करते-करते प्रभु को साथ रखकर भोग लो तो कोई हर्ज नहीं है पर बहुत सावधान रहना। सावधान रहिये कि आपका मन किसी सुख को भोगने का विचार न करने लग जाय। किसी भी तरह का लौकिक सुख भोगने का संकल्प मन करे तो शक्ति का नाश होता है, पाप का आरंभ होता है तथा मन बिगड़ता है। प्रह्लादजी भगवान् से कहते हैं कि आप ऐसी कृपा कीजिये कि कभी किसी तरह के सुख को भोगने की मुझे इच्छा न हो।

नरसिंह स्वामी ने आज्ञा की है कि प्रह्लाद! कुछ वर्षों तक तुम्हें राज्य करना है। बाद में मैं तुम्हें अपने धाम में ले जाऊँगा।' नरसिंह स्वामी की आज्ञा से प्रह्लाद ने हिरण्यकशिपु के शरीर का अग्नि-संस्कार किया। श्राद्धादिक विधि की गयी। बाद में ब्रह्माजी ने प्रह्लाद को सिंहासन पर बैठाकर राज्याभिषेक किया। प्रह्लाद राजा हुए। नरसिंह स्वामी बहुत प्रसन्न हुए। प्रह्लादजी नरसिंह स्वामी के चरणों में वंदन करके कहने लगे—अब मुझे कुछ माँगने की इच्छा हो रही है। आप ऐसी कृपा कीजिये कि मेरे पिताजी को सद्गति मिले, वे आपकी बहुत निन्दा करते थे, आपके लाड़ले भक्तों को त्रस्त करते थे, फिर भी मैं चाहता हूँ कि मेरे पिता की दुर्गति न हो।

प्रभु ने स्मित हास्य करके कहा—तुम्हारे जैसे भगवद्भक्त जिस वंश में प्रकट हुए हों, तो वे वंश के अनेक पुरुषों को तार देते हैं। तुम्हारी भक्ति से तुम्हारे पिता को मुक्ति मिली है। पिता पुत्र को धन का वारिस बनाते हैं, पुत्र की भक्ति के, पुत्र के सत्कर्म के वारिस पिता होते हैं। पुत्र प्रह्लाद जैसा हो तो माता-पिता तर जाते हैं। दुर्योधन जैसा पापी पुत्र हो तो माता-पिता की दुर्गति होती है। पुत्र प्राप्त करने पर माता-पिता की जिम्मेदारी बढ़ जाती है। पुत्र के लिए बैंक में रुपये न रख सकें तो अपराध नहीं है, पर पुत्र को अच्छे संस्कार न दें तो अपराध है। पुत्र को प्रभु के मार्ग की ओर प्रेरित कीजिए। बाल्यावस्था में जब हृदय कोमल होता है तब संस्कार दीजियें। उसे सिखलाइए कि बेटा ठाकुरजी को अर्पण किये बिना खाने से पाप लगता है। कोमल हृदय में संस्कार तुरन्त दृढ़ होते हैं। जवानी में हृदय पत्थर के समान कठिन हो जाता है। उस समय उसे कितना ही समझाइए, वह मानता नहीं है। दुराचारी पुत्र माता-पिता की दुर्गति करते हैं।

एक वृक्ष पर एक कौआ रहता था। सायंकाल जब अँधेरा हुआ तब एक हँस-हँसिनी का जोड़ा घूमते हुए वहीं आ पहुँचा। उसने कौए से कहा कि अँधेरा हुआ है, हम यहाँ आज रात भर रहना चाहते हैं। कौए ने कहा कि अच्छा। हँस-हँसिनी वृक्ष पर रह गये। कौए की आँख बहुत बुरी होती है। आँख से जो पाप करते हैं वे दूसरे जन्म में कौआ होते हैं। हँसिनी को देखकर काग की नीयत बिगड़ गयी। सुबह जब हँस-हँसिनी जागे तब कौए ने हँसिनी को पकड़ कर रखा। हँस ने कहा कि आप यह क्या कह रहे हैं? कौए ने कहा–यह अब मेरी है। दोनों में झगड़ा हुआ। अदालत में केस चला। कौआ बड़ा ही चालाक था। उसने न्यायाधीश को रिश्वत दी, कहा कि कल अगर मेरे पक्ष में आप न्याय देंगे तो मैं आपको आपके मृत माता-पिता के पास ले जाऊँगा। काग को पितृ दूत मानते हैं, इससे मृत पितरों को वह देख सकता है। न्यायाधीश ललचा गये। उसने झूठा न्याय दिया कि यह हँसिनी हँस की नहीं, पर कौए की है। हँस बहुत दुःखी हुआ। न्यायाधीश ने कौए से कहा– मैंने तुम्हारी इच्छा के अनुसार न्याय दिया है अब मेरे माता-पिता मुझे दिखा दो। कौआ उसे कूड़े पर ले गया। वहाँ कई कीड़े पड़े थे। उनमें से एक को दिखाकर कहा– यह कीड़ा तुम्हारा पिता है। न्यायाधीश ने पूछा– क्यों मेरे पिता कीड़े हुए? कौए ने कहा– जिसका पुत्र न्यायासन पर बैठकर लोभ से झूठा न्याय देता है, उस पुत्र का पिता कीड़े के सिवाय क्या हो सकता है? तुम भी कीड़ा ही होने वाले हो। तुमने लोभ से झूठा न्याय दिया है। पुत्र अति पापी हो तो उसके पाप के कारण माता-पिता की दुर्गति होती है। प्रह्लाद से भगवद्भक्त पुत्र हों तो उनके माता-पिता को सद्गति प्राप्त होती है।

३६–अयं ब्रह्म

प्रह्लादजी की यह कथा राजसूय यज्ञ में नारदजी धर्मराज को सुनाते हैं। धर्मराज सिर पर हाथ रखकर उदास बैठे हैं। नारदजी को यह बात अच्छी न लगी। सन्त हृदय सरल होता है। नारदजी ने सरलता से पूछा– राजा, कथा में आनन्द नहीं आया? आज मेरी कुछ भूल हुई है क्या? धर्मराज ने कहा– नहीं, महाराज! आपकी कोई भूल नहीं है। आपने तो बहुत सुन्दर कथा सुनायी। मुझे कथा में तो आनन्द आया पर मैं तब से यह सोच रहा हूँ कि पाँच वर्ष के प्रह्लाद का प्रभु प्रेम कैसा! प्रभु में उनका कितना विश्वास! खम्भे में प्रभु बैठे हैं। उनके शब्द और वाणी को सत्य सिद्ध करने के लिये प्रभु प्रकट हुए। धन्य है पाँच वर्ष के प्रह्लाद को। मैं पचपन वर्ष का हुआ पर अभी एक बार भी मुझे प्रभु के दर्शन नहीं हुए। अन्तकाल में मेरी हालत क्या होगी? पाप करके कोई बहुत धन कमाता है। और बहुत सुख भोगता है। आज भले ही सुखभोग ले, पर अन्तकाल में कहाँ

जायेगा? मैंने भगवान् के लिए कुछ नहीं किया। जिस तरह कुत्ता रोटी के लिये भटकता है, उसी तरह मैं भी धन के लिए भटकता रहा। पशु को भूख लगती है, तब खाते हैं, मैंने जीभ को बहुत लाड़ करवाये। अपने जीवन के प्रति अब मुझे घृणा आती है। जो करना चाहिए, वह मैंने नहीं किया। मेरा जीवन वृथा व्यतीत हुआ–

शरीरं सुरूपं यथा वा कलत्रं यशश्चारुचिरं धनं मेरुतुल्यम्।
मनश्चेन्न लग्नं हरेरङ्घ्रिपद्मे ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम्?

युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में द्वारिकानाथ स्वयं विराजमान थे, पर भगवान ऐसी लीला करते हैं कि वे ईश्वर हैं, ऐसा कोई जान नहीं पाता। वे स्वरूप छिपाकर रखते थे। धर्मराज से कहते– बड़े भाई, ऐसा यज्ञ आप ही कर सकते हैं आपके यज्ञ में लाखों महात्मा, साधु, गरीब भोजन लेते हैं। धन्य हैं आप। ऐसा यज्ञ किसी ने नहीं किया और भविष्य में कोई नहीं कर सकेगा। इस यज्ञ में ब्राह्मणों को भोजन करवाने का पुण्य आपको मिलेगा, पर दोना उठने का कार्य मैं कर रहा हूँ, इससे मुझे भी थोड़ा पुण्य मिलेगा।

श्रीकृष्ण तुच्छ से तुच्छ कार्य करते थे। श्रीकृष्ण सर्व से श्रेष्ठ हैं, पर उनको जरा भी अभिमान नहीं है। उन्हें अभिमान का स्पर्श नहीं होता है। भगवान् ऐसी लीला करते कि मैं तुम्हारे मामा का लड़का हूँ। धर्मराज ऐसा मान रहे थे कि हम मामा-बुआ के भाई-भाई है। श्रीकृष्ण परमात्मा हैं, ऐसा धर्मराज भूल गये। भगवान् को गुप्त रहना पसन्द है। प्रभु को प्रकट होना अच्छा नहीं लगता और मनुष्य को जाहिर हुए बिना चैन नहीं आता। थोड़ा-सा अच्छा कार्य करने पर अखबार में जाहिर करता है। दो-चार बार जाहिर करेंगे कि हम विष्णुयाग करने वाले हैं। दर्शन का लाभ लीजिए। अरे! तुम्हें कभी दर्शन का लाभ हुआ है? तुम्हें दर्शन हुए हैं? तुम लोगों को लाभ देने वाले हो! मानव थोड़ा सा सत्कर्म करके बहुत दिखाता है। ऐसा सुन्दर विश्व प्रभु ने बनाया है, पर प्रभु ने कभी नहीं अपना नाम लिखा है? आज कल लोग दो मंजिल का बंगला बनाते हैं तो भी अपना नाम लिखवाते हैं–'मगन निवास।' अरे मगन भाई की अंतिम यात्रा निकलेगी कि नहीं? फिर 'मगन निवास' कहीं होगा? आप बंगला बनवाते हैं तो अपने ठाकुरजी का नाम लिखवाइए–'श्रीराम निवास', 'श्रीकृष्ण निवास'। आप अपना नाम न लिखवाइए। ठाकुरजी की कृपा से यह हुआ। आजकल लोगों को नाम और रूप का बहुत मोह है। किसी-किसी की ऐसी बुरी आदत होती है कि जहाँ भी देखा अपना नाम लिख दिया। अरे प्रभु का नाम लिखिए। मानव का नाम मिथ्या है। कई व्यक्ति अपने हाथ पर नाम लिखवा कर रखते हैं, 'डाहीबेन'। क्या

डाहीबेन को कोई चुरा कर ले जाने वाला है? हाथ पर नाम लिखवाने की क्या जरूरत है। मानव प्रत्येक वस्तुपर नाम लिखता है कि यह मेरा है,यह मैंने बनाया है।

सत्कर्म का विज्ञापन न कीजिए। कस्तूरी खुली रखने से उड़ जाती है। पुण्य का विज्ञापन पुण्य का विनाश करता है। श्रीकृष्ण भगवान् ने अपना स्वरूप छिपाकर रखा था। धर्मराज ने जब कहा कि मुझे एक बार भी परमात्मा के दर्शन नहीं हुए हैं, तब नारदजी ने धर्मराज से कहा कि आप यह क्या कह रहे हैं। आपके यज्ञ में आये हुए कई ऋषि ऐसे हैं, जो कहीं जाते नहीं हैं। वे आपके यज्ञ में आये हैं। कई बिना निमन्त्रण के आये हैं। वे सभी मिष्टान्न खाने के लिए नहीं आये हैं। उन्हें दक्षिणा का भी लोभ नहीं है, फिर भी आपके यज्ञ में आये हैं। आपके यज्ञ में भगवान् के दर्शन होंगे, इसी लोभ से आये हैं। आपके घर में भगवान् विराजमान हैं। युधिष्ठिर को आश्चर्य हुआ कि महाराज, मेरे घर में भगवान् कहाँ हैं? घर में भगवान् विराजमान हों पर नारदजी जैसे सद्‌गुरु कृपा करके दृष्टि देते हैं, तब ही वे दीख पड़ते हैं। जब तक सद्‌गुरु दृष्टि नहीं देते, तब तक परमात्मा के दर्शन नहीं हो सकते। नारदजी ने कहा कि अरे! सभा में ही विराजमान हैं, मानव-सदृश स्वरूप उन्होंने धारण किया है—

साक्षाद् गूढं परंब्रह्म मनुष्यलिंगम्

धर्मराज ने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। श्रीकृष्ण की ओर दृष्टि की। श्रीकृष्ण की ओर दृष्टि तो गई। पर सोचा कि ये ही भगवान् होंगे? जो दोना उठाते हैं,वे प्रभु कैसे हो सकते हैं! श्री कृष्ण की लीला ऐसी विचित्र है कि बड़े-बड़े मोहग्रस्त हो जाते हैं। धर्मराज की भी ऐसी स्थिति हुई। वे होश खो बैठे।

नारदजी द्वारिकानाथ के समक्ष कथा कह रहे थे। प्रभु के दर्शन करते-करते बोलते थे। भगवान् को विश्वास हो गया कि यह नारद अब मेरा विज्ञापन कर देगा। प्रभु ने नारद जी को इशारा करके मना किया। नारदजी ने कहा कि प्रभु आपको प्रगट होना पसन्द नहीं है पर आपके स्वरूप को प्रकट किये बिना मेरी मुक्ति नहीं है। धर्मराज तो समझ ही नहीं रहे हैं।

सभा में किसी महान् पुरुष की उँगली से परख करवाना, उस महान् पुरुष का अनादर करना है। नारदजी बहुत विवेकसे बोल रहे थे। मर्यादा के कारण उँगली से पहिचान नहीं कराते थे पर जब धर्मराज ने पुनः पूछा कि भगवान् कहाँ हैं, तब नारदजी ने मर्यादा छोड़कर द्वारिकाधीश की ओर उँगली से संकेत करके कहा—

स वा अयं ब्रह्म महद्विमृग्य कैवल्यनिर्वाणसुखानुभूतिः।
प्रियः सुहृद् वः खलु मातुलेय आत्मार्हणीयो विधिकृद् गुरुश्च॥

(७-१५-७६)

श्रीकृष्ण ही परमात्मा हैं, वे ही लक्ष्मी के पति हैं। वे अनन्त कोटि ब्रह्मांडों के नायक हैं। हम श्रीकृष्ण के दर्शन करने इस यज्ञ में आये हैं। नारदजी ने यह बात सभा में प्रकट की, तब प्रभु को संकोच हुआ। धरती की ओर दृष्टि करके प्रभु ने मस्तक हिलाया कि यह अनुचित है। मैं भगवान् नहीं हूँ। धर्मराज को शंका हुई कि नारदजी कहते हैं कि 'श्रीकृष्ण परमात्मा हैं, पर ये मना कर रहे हैं। अयोग्य को प्रभु के दर्शन नहीं होते हैं और कभी हो जायँ तो उसे दर्शन में विश्वास नहीं आता है। धर्मराज ने कहा कि ये तो मना कर रहे हैं। नारदजी ने कहा कि भले ही मना करते हैं। यह तो उनकी बचपन की आदत है, उन्हें स्वरूप छिपाने की आदत बचपन से है।

यशोदा जी के आँगन में बड़े-बड़े साधु, संन्यासी-महात्मा आते थे। यशोदा मैया जब भिक्षा देने जाती तब साधु हाथ जोड़कर कहते— माता, मैं भिक्षा लेने नहीं आया हूँ। चालीस वर्षों से मैं साधु हूँ, ध्यान कर रहा हूँ। पर माता, मैं क्या कहूँ। अभी एक बार भी मुझे प्रभु के दर्शन नहीं हुए हैं। मेरे पाप भी बहुत हैं। मैंने सुना है कि आपकी गोद में परमात्मा खेल रहे हैं। माता मुझे बालकृष्णलाल के दर्शन करवाइए। उन्हें भिक्षा नहीं चाहिए। वे बालकृष्णलाल के दर्शन करना चाहते हैं।

यशोदा मैया भीतर जाती हैं और बालकृष्ण को समझा ती हैं। बेटा! बाहर महाराज आये हैं, चलो, मैं तुम्हें ले जाऊँ, वे तुम्हें आशीर्वाद देंगे। कन्हैया मना करता है कि मुझे आशीर्वाद नहीं लेने हैं, तुम्हें चाहिए तो तुम बाहर जाकर उन्हें चरण वंदन कर लो, साधु महाराज की दाढ़ी बहुत बड़ी है, मुझे डर लगता है।

प्रभु तो सब कुछ जानते हैं। वे अंतर्यामी हैं। साधु हुए तो क्या हुआ? अभी हृदय निर्मल नहीं हुआ है। मन में से विकार वासना अभी तक नहीं निकली है। इससे प्रभु दर्शन देना नहीं चाहते हैं। इससे वे बारह आना नहीं चाहते हैं।

साधु चार छह घण्टे बाहर बैठे रहते हैं, पानी भी नहीं पीते हैं, कहते हैं— माता लाला के दर्शन करने हैं, लाला के दर्शन करवाइए। यशोदा माता को दया आती है, बेचारे, चार-चार घण्टों से हमारे आँगन में बैठे हैं! पर कन्हैया कैसा नटखट है। हर रोज खेलने जाता है और आज आँगन में साधु बैठे हैं, इससे बाहर भी नहीं निकलता है।

यशोदा माता को दुःख होता है। आँगन में साधु भूखा बैठा है। यशोदा माता लाला को जबर्दस्ती पकड़ कर ले जाती हैं। पर कन्हैया ऐसा है कि दर्शन देनें की इच्छा न होने के कारण बाहर आकर माता की साड़ी में मुँह छिपाकर, साधु को पीठ मात्र दिखा देता है। पीठ के दर्शन कीजिए। हठ करने से कभी दर्शन होते हैं। अरे लायक बनने से दर्शन होते हैं।

जब जीव योग्यता नहीं रखता, तब परमात्मा स्वरूप छिपाते हैं। धर्मराज से नारदजी कहते हैं- इनकी बचपन से ऐसी आदत है। स्वरूप छिपाते हैं, अरे! यही परमात्मा हैं।

न यस्य सक्षाद्भवपद्मजादिभी रूपं धिया वस्तुतयोपवर्णितम्।

मौनेन भक्त्योपशमेन पूजितः प्रसीदतामेष सः सात्वतां पतिः॥ (७-१५-७७)

नारदजीने जब गम्भीरता से कहा तब युधिष्ठिर को विश्वास हो गया और उन्होंने द्वारिकाधीश की जय कहकर, प्रभु के चरणों में वंदन किया।

प्रह्लाद चरित्र की समाप्ति के बाद धर्मराज को श्रीकृष्ण–परमात्मा के दर्शन हुए, उसकी कथा है। बाद में विशेष धर्म की–वर्णाश्रम की कथा सुनाई है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, गृहस्थ वानप्रस्थी, संन्यासी महात्माओं के धर्म का संक्षेप में वर्णन करके सप्तम स्कन्ध परिपूर्ण किया गया है।

इति सप्तमः स्कन्धः समाप्तः

हरि ॐ तत्सत्

श्रीमन्नारायण नारायण नारायण
श्रीमन्नारायण नारायण नारायण
लक्ष्मीनारायण नारायण नारायण
लक्ष्मीनारायण नारायण नारायण
ब्रदीनारायण नारायण नारायण
ब्रदीनारायण नारायण नारायण
प्रथम खण्ड समाप्त।

श्रीगणेशाय नमः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवत-रसामृत

अष्टम स्कन्धः

३७. गजेन्द्र मोक्ष

स्वायम्भुवस्येह गुरो वंशोऽयं विस्तराच्छ्रुतः।
यत्र विश्वसृजां सर्गो मनूनन्यान्वदस्व नः॥ (८-१-१)

परमात्मा श्रीकृष्ण अजन्मा हैं, अविनाशी हैं। अविनाशी अजन्मा परमात्मा का जन्म नहीं होता है, प्रभु का प्राकट्य होता है। प्रत्येक मन्वन्तर में भगवान् अवतार धारण करते हैं। अष्टम स्कन्ध में मन्वन्तर की कथा है। ब्रह्माजी के एक दिन में चौदह मनु राज्य करते हैं। प्रत्येक मनु के राज्य में भगवान् का विशिष्ट अवतार अवश्य होता है। हमारे शास्त्रों में वर्णन है–हमारे बारह लाख और बत्तीस हजार वर्ष होते हैं तब कलियुग परिपूर्ण होता है। बारह लाख छियानवे हजार वर्ष पूर्ण पर त्रेता युग पूर्ण होता है। हमारे सत्रह लाख अट्ठाईस हजार वर्ष पूर्ण होने पर सत्युग की समाप्ति होती है। इस तरह इन चार युगों की समाप्ति जब एक हजार बार होती है, तब ब्रह्माजी का एक दिन पूर्ण होता है।

इस तरह जब एक सौ वर्ष पूर्ण होते हैं, तब ब्रह्माजी का आयुष्य पूर्ण होता है। ब्रह्माजी के एक दिन में भगवान् के अनेक अवतार होते हैं। ब्रह्माजी के एक दिन में चौदह मन्वन्तर हैं। स्वायंभुव मन्वन्तर में भगवान् का यज्ञावतार कपिलावतार हुआ है। द्वितीय मन्वन्तर में भगवान् का विभु नामक अवतार हुआ है। तृतीय तामस मन्वन्तर में भगवान् का हरि नामक अवतार हुआ है। हरि अवतार में गजराज का प्रभु ने उद्धार किया। परीक्षित राजा ने प्रश्न पूछा; मेरी गजेन्द्र मोक्ष की कथा सुनने की इच्छा है।

शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं–त्रिकूट चल पर्वत पर एक अतिशय बलवान हाथी रहता था। वह जंगल का राजा था। उसके मस्तक से मद झरता था। उस मद की गन्ध से बाघ-सिंह आदि पशु घबराते रहते थे। वह अनेक हथिनियों का स्वामी था। एक बार बहुत ही गर्मी पड़ रही थी। तब हाथिनियों के साथ अपने बच्चों को लेकर वह सरोवर में जल क्रीड़ा करने लगा। उस

सरोवर में रहने वाला मगर वहाँ आ पहुँचा और उसने हाथी का पैर पकड़ लिया। मगर की पकड़ से पैर छुड़ाने के अनेक यत्न करने पर भी हाथी को सफलता न मिली। वस्तुतः जल में मगर का बल बहुत बढ़ जाता है क्योंकि हाथी तो थलचर प्राणी है। हथिनियाँ और बच्चे हाथी को छुड़ाने के बहुत यत्न करने लगे, परन्तु छुड़ा न सके। बलशाली मगर हाथी का पैर छोड़ता ही न था। बहुत दिनों तक गजग्राह-युद्ध चला। मगर हाथी को खींचकर भीतर पानी की ओर ले जाने लगा।

हथिनियों को विश्वास हो गया कि अब यह डूबकर मर जायगा और जी नहीं सकेगा। सब हथिनियाँ उसे छोड़कर चलीं गयीं। हाथी अकेला रह गया। बड़े परिवार का स्वामी था, पर कोई उसके साथ नहीं रहा। तब उसके चित्त में व बुद्धि में ज्ञान का स्फुरण हुआ। वह सोचने लगा कि मेरा कोई नहीं है। हाथी पशु है, पर फिर भी वह हाय-हाय नहीं करता था। वह तो 'हरि-हरि' करने लगा। मृत्यु की शय्या पर मानव 'हाय-हाय' बहुत करता है।

शांति से थोड़ा विचार करेंगे तो ध्यान में आयेगा कि जगत में एक भी घर ऐसा नहीं है, जिस घर में गजेन्द्र-मोक्ष की कथा न होती हो। सभी के घर में कथा होती है। गजराज जीवात्मा है, वह संसार सरोवर में परिवार के साथ सुख भोग रहा है। मनुष्य जिस घर में सुख भोग रहा है, वहीं उसका काल तो बैठा ही है। मानव गाफिल है और काल सावधान है। काल उसके पैर को पकड़ता है। पैर की शक्ति क्षीण हो जाती है और जब पैर की शक्ति क्षीण हो जाय तब समझना चाहिए कि मृत्यु निकट है।

काल पैर को पकड़ लेता है। अन्तकाल में जो सावधान रहता है, उसका मरण सुधरता है तथा जो गाफिल रहता है, उसका मरण बिगड़ता है। जब काल पैर को पकड़ता है तब घर के लोग यत्न करते हैं, पर यत्न सफल नहीं होते हैं। काल के काल परमात्मा सुदर्शन चक्र लेकर आते हैं,तब ही काल-मगर छोड़ता है। मगर काल का प्रतीक है। काल के काल भगवान् हैं। परमात्मा सुदर्शन-चक्र लेकर आयें तो ही बचा जा सकता है सर्व में श्रीकृष्ण-दर्शन ही सुदर्शन है। सुदर्शन-चक्र कालरूपी मगर को मार सकता है। काल जब पैर को पकड़ता है, तब घर के लोग प्रयत्न तो करेंगे, पर बहुत दिनों तक सेवा करनी पड़ेगी तो ऊब जायेंगे-सोचेंगे कि तीन वर्ष हुए, शय्या में पड़े हैं। अब प्रभु उनके सामने देखें तो अच्छा है। उनके सामने देखना-अर्थात् ये मर जायँ तो अच्छा है।

गजेन्द्र को ज्ञान हुआ। अगले जन्म में जिस महामन्त्र का जप कर रहा था, वही महामन्त्र इस जन्म में याद आ गया। अन्तकाल में अति दुःख आता है, तब जीव सब कुछ भूल जाता है। वह बहुत तड़पता है। किसी मन्त्र के साथ ऐसा प्रेम कीजिए कि सुख में, दुःख में उसे हम भूल न जायँ। यह यदि आ जाय। साधारण दुःख में भी जीव ईश्वर को भूल जाता है, तब अन्तकाल

में क्या स्थिति होगी? अन्तकाल में ईश्वर को भूल न जायँ, इसलिए निरन्तर जप करने की आदत डालिए। गजराज को महामन्त्र याद आ गया। पूर्व जन्म में कितने जप किये थे, इसका उल्लेख भागवत् में नहीं है। शुकदेवजी महाराज इतना ही बोले हैं–

जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम्।

जिसका संस्कार अति दृढ़ हो जाता है, वही अन्त समय में याद आता है। परमात्मा के नाम के साथ ऐसा प्रेम करिये कि अन्त समय उन्हीं का नाम याद आ जाय! जगत् परमात्मा के अधीन हैं। परमात्मा नाम के अधीन हैं। गजेन्द्र स्तोत्र जपता है।

मादृक्प्रपन्नपशुपाश विमोक्षणाय मुक्ताय भूरिकरुणाय नमोऽलयाय।
स्वांशेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीत प्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते।।

(८-३-१७)

काल के काल परमात्मा को मैं प्रणाम करता हूँ, मैं उनकी शरण हूँ। योगी-महात्मा जिनके मंगलमय स्वरूप को हृदय में स्थापित करके ध्यान करते हैं, मैं उन परमात्मा की शरण में हूँ। नाथ! ऐसी कृपा कीजिये। वहाँ मुझे ले चलिए, जहाँ कभी काल-मगर न आने पाये। जिस घर में काल आने वाला है, वहाँ कैसे शान्ति रह सकती है? जहाँ काम जाता है, वहाँ काल आता है। जहाँ काल की गति है, वहाँ भीति है। धीरे-धीरे संयम बढ़ाइए। निरन्तर भक्ति की आदत डालिए। काम का विनाश कर सकेंगे तो काल पर विजय पा सकेंगे। जहाँ निरन्तर भक्ति होती है, वहीं काल-मगर नहीं आ सकता है।

जीव जब आर्त भाव से प्रभु को पुकारता है, तब प्रभु आते हैं, दौड़ते हुए आते हैं। प्रभु के कान तक गजेन्द्र का आर्तनाद पहुँचा। भगवान् ने दौड़कर आते हुए सुदर्शन-चक्र से मगर को मार डाला। गजराज को उन्होंने सद्गति दी। इस गजेन्द्र मोक्ष का पाठ जो नित्य करते हैं, उनकी मृत्यु सुधरती है। भागवत में इस कथा के लिए तीन अध्याय हैं परन्तु प्रमुख श्लोक पैंतीस हैं। मगर हाथी के पैर पकड़ता है। हाथी परमात्मा की स्तुति करता है, भगवान् उसे छुड़ाते हैं, इतनी कथा तक पैंतीस श्लोक हैं। नित्य पैंतीस श्लोक का पाठ करने वाला व्यक्ति अपना मरण सुधारता है।

ठाकुरजी की सेवा करिए। भोग लगाइए। आरती करिये। भगवान् आनन्द में विराजमान हैं, उनके दर्शन करिये, और ऐसी भावना करिये कि आज मुझे काल मारने आया है। मेरा गला पकड़ रहा है। मैं व्याकुल हूँ। आर्त भाव से गजेन्द्र मोक्ष का पाठ कीजिये–

ये मां स्तुवन्त्यनेनांग प्रतिबुध्य निशात्यये।
तेषां प्राणात्यये चाहं दादामि विमलां मतिम्।। (८-४-२५)

गजेन्द्र मोक्ष का पाठ करने वाला कदाचित् अन्तकाल में प्रभु को भूल जाय, पर प्रभु उसे नहीं भूलते हैं। परमात्मा उसका स्मरण रखते हैं, उसका मरण सुधरता है।

चतुर्थ मन्वन्तर में गजराज के उद्धार के लिए प्रभु ने हरि का अवतार धारण किया। पंचम मन्वन्तर में रमा बैकुण्ठ बनाया, बैकुण्ठ का अवतार लिया। षष्ठ मन्वन्तर है चाक्षुष मन्वन्तर। चाक्षुष मन्वन्तर में समुद्र मंथन हुआ, तब प्रभु ने अनेक अवतार धारण किये। देवों को प्रभु ने युक्ति से अमृत पिलाया। राजा ने प्रश्न पूछा—महाराज! इस कथा को सुनने की मेरी इच्छा है।

३८. हरि और हर एक ही हैं

शुकदेवजी महाराज कथा कह रहे हैं—एक बार इन्द्रराजा को रास्ते में दुर्वासा ऋषि के दर्शन हुए। अपने कंठ से माला उतार कर ऋषि ने इन्द्रदेव को दी। अति संपत्ति में जीव भाव खो देता है। कभी कोई साधु-संत आपको फल दें या फूल दें तो उसे सिर पर चढ़ाइए। आपके पास से कुछ लेने की इच्छा से वे नहीं देते हैं, आपके कल्याण की भावना से वे देते हैं।

दुर्वासा ऋषि ने प्रेम से वह माला इन्द्र को अर्पण की थी पर इन्द्र राजा ने उसे ग्रहण नहीं किया। इन्द्रदेव ने वही माला हाथी के मस्तक पर फेंक दी। हाथी सूँड़ से माला को नीचे गिराकर पाँव तले कुचलने लगा। दुर्वासा ऋषि को यह समुचित नहीं लगा। संपत्ति में जो होश गवाँ बैठा है, वह दरिद्र होता है, तब होश में आता है। पुष्पमें लक्ष्मी का निवास है।

जिस घर में पुष्प पाँव तले कुचले जाते हैं, उस घर में लक्ष्मीजी विराजमान नहीं रहतीं। जिस घर में संध्या समय पर झगड़े होते हैं उस घर में लक्ष्मीजी विराजमान नहीं रहतीं। संध्या समय पर लक्ष्मी-नारायण घर आते हैं। जिस घर में भिखमंगे का अपमान होता है उस घर में लक्ष्मीजी विराजमान नहीं रहतीं। अगर आप भिखमंगों को कुछ नहीं दे पाते तो उसे हाथ जोड़कर कहिए—'जय श्रीकृष्ण'। कुछ लोग भिखमंगे को जली-कटी सुनाते हैं—'तुम मोटे तगड़े हट्टे-कट्टे हो तुम्हें मजदूरी करने में क्या होता है? मुफ्त में खाना है! अरे, वह क्या आपका खाकर हट्टा- कट्टा हुआ है? आँगन में आये भिखारी का अनादर न करो संध्या समय पर अगर सौभाग्यवती स्त्री सिर गूँध ने बैठ जाती है तो लक्ष्मीजी विराजमान नहीं रहतीं। सौभाग्यवती के बालों में लक्ष्मीजी का निवास है। जिस घर में सूर्यास्त और सूर्योदय के काल में भोजन करते हैं, उस घर में लक्ष्मी विराजमान नहीं होती हैं। दुर्वासा ऋषि ने इन्द्रराजा को शाप दिया—तुम्हें बहुत अभिमान है, तुम दरिद्र हो जाओगे। देव-दैत्यों का युद्ध हुआ। उस युद्ध में देवों की पराजय हुई। स्वर्ग राज्य राक्षसों को मिला! इन्द्र के पास से स्वर्ग का राज्य चला गया। देवगण दुःखी हुए। उन्होंने परमात्मा की स्तुति की। प्रभु

ने आज्ञा दी–तुम समुद्र-मंथन करो, उसमें से अमृत निकलेगा, अमृत मैं तुम्हें पिला दूँगा युक्ति करके। समुद्र-मंथन का कार्य बहुत बड़ा है तुम लोग अकेले नहीं कर सकोगे। दैत्यों की मदद लेलो। शत्रु को वंदन करके वश में कर लो। शत्रु तुम्हारे कार्य में बिना कारण बिघ्न खड़ा करेंगे। अपने शत्रु दैत्यों के साथ मैत्री कर लो। वंदन करने से मान देने से मधुर वाणी से वैर भाव का अंत आ जाता है, मैत्री सिद्ध होती है। दैत्य जो कुछ माँगें, उन्हें दे दीजिए।

देव-दैत्यों की मैत्री हुई। मंदराचल पर्वत की मथानी बनायी गयी, उसे समुद्र में डाल दिया, समुद्र में विविध औषधियाँ डालीं, और मथने लगे, उसी समय मंदराचल पर्वत समुद्र में डूबने लगा। सभी घबरा गये। तब कूर्म-नारायण भगवान् प्रकट हुए। उन्होंने अपनी पीठ पर मंदराचल पर्वत को धारण किया।

शांति से थोड़ा विचार करने पर ध्यान में आयेगा कि पंद्रह वर्ष पूर्ण हो जायें और सोलहवाँ वर्ष शुरु हो, तब से मन मंथन होता है। यह जीव यौवन में जब से प्रवेश करता है, तब से मंथन होता है। पूर्व जन्म में जिसने सुख भोगा है, उसके मन में सुख के संस्कार जागते हैं। धीरे-धीरे वासना जाग्रत होती है। समुद्र-मंथन विवेक से करना है। पंद्रह वर्ष पूर्ण हों कि सावधान हो जाइए। यौवन बहुत बुरा समय है। उसमें बड़े-बड़े होश गवाँ बैठे हैं। मानव मन से पाप करता है, तब भगवान् थोड़ी-सी क्षमा देते हैं पर तन से पाप होता है तो क्षमा नहीं मिलती है। जीवन नष्ट हो जाता है। यौवन काल के शुरु होने पर बहुत सावधान रहना पड़ता है। अपने मन को पर्वत की तरह स्थिर बनाइए। पर्वत बोलता नहीं, हिलता-डुलता नहीं है। इस मन को कूर्म नारायण की पीठ पर रखिए। मूर्ति और मन्त्र जिसका आधार है, उसका मन स्थिर रहता है। स्वरूप सेवा और नाम-सेवा का आधार मन को स्थिर रखता है। निराधार मन समुद्र में डूबता है। मन को मूर्ति में रखिये। मन को मंत्र में रखिये। मन्त्र से मन हट जाय तो मूर्ति में रखिये, मूर्ति से मन हटने लगे तो मन्त्र में ले जाइये। तीन-चार घण्टे तक नियम पूर्वक जो मन को मन्त्र में, मूर्ति में रखते हैं, उसे एक दिन अमृत प्राप्त होता है।

देव-दैत्य मंथन कर रहे थे, अमृत के लिए, पर निकला विष। भक्ति अमृत है, ज्ञान अमृत है। ज्ञान भक्ति-स्वरूप अमृत पान करना हो तो प्रथम विष मिलता है। जो व्यक्ति भगवान् की खोज करते हैं, भगवान् पहिले उस व्यक्ति की परीक्षा लेते हैं, कसौटी करते हैं, बाद कृपा करते हैं, जो भगवान् की खोज करते हैं, उनके जीवन में दुःख के प्रसंग ही विष-रूप हैं, विष हैं, दुःख-प्रसंग। प्रतिकूल परिस्थिति भी विष है। जगत् में ऐसे व्यक्ति की निंदा भी होगी। निन्दा भी विष है। कर्कश वाणी भी विष है। विष सहन करिये। सहन करने वाला सुखी होता है।

भगवान् शंकर की पूजा करने से बुद्धि में ज्ञान का स्फुरण होता है। ज्ञान-गंगा जिनके मस्तक में है वे विष सह सकते हैं। शिवजी के मस्तक पर गंगाजी हैं। देवों-दैत्यों ने भगवान् की स्तुति शुरू की। देवों ने कहा-यह विष हमें जलाता है।

तत्तस्य ते सदसतोः परतः परस्य नाञ्जःस्वरूपगमने प्रभवन्ति भूम्नः।
ब्रह्मादयः किमुत संस्तवने वयं तु तत्सर्गसर्गविषया अपि शक्तिमात्रम्।।

(८-७-३४)

शिवजी ने पार्वतीजी से कहा-ये सभी मुझ से विष पीने के लिए कहते हैं। पार्वतीजी ने कहा-परोपकार कीजिये, पर ऐसा परोपकार किस काम का जिसमें हमारा विनाश ही हो जाय? शिवजी ने कहा-मुझे जो हो सो भले ही हो, ये लोग तो सुखी होंगे?

प्राणैः स्वैः प्राणिनः पान्ति साधवः क्षणभंगुरैः।
बद्धवैरेषु भूतेषु मोहितेष्वात्ममायया।। (८-७-३९)

भगवान् शंकर वहाँ पधारे। राम-नाम का जप करते हुए शिवजी महाराज विष पी गये। शंकर दादा ने विष को पेट में नहीं उतारा, गले में रोक रखा। ज्ञानी महापुरुष हृदय में नारायण के दर्शन करते हुए, नामामृत से भगवान् की निरंतर पूजा करते हैं। शिवजी की भावना है-मेरे हृदय में नारायण हैं, मैं पेट में विष उतारना नहीं चाहता हूँ। जिनके पेट में विष है, वे भक्ति नहीं कर सकते हैं। शिवजी ने विष बाहर नहीं निकाला, पेट में भी नहीं उतारा। यही हमें बोध देता है कि विष को गले में रोक रखो। तब वह आपका कोई नुकसान नहीं करेगा। आपको कोई त्रास नहीं देगा। अगर आपका कोई नुकसान करे या आपको कोई त्रास दे और आपका उसे कटु वचन कहने का मन हो, तब उसे गले तक ही रोक रखिये। उन शब्दों को बाहर न निकालिये। आपके लिए कोई बुरा कहता है तो उसे सहन कीजिये। पर किसी को जरा भी दुःख हो, ऐसे शब्द न बोलिये। किसी को ताने मारने के लिए जीभ नहीं है, किसी की निन्दा करने के लिए जीभ नहीं है। विष बाहर न निकालिये, पेट में भी न उतारिये। पेट में विष रखने वाले का जीवन बिगड़ता है।

यस्मान्नो द्विजते लोको लोकोन्नो द्विजते च यः।

जो किसी का उद्वेग नहीं करता और किसी को उद्वेग न हो, यह देखता है उसे अमृत मिलता है। आँखों में वैर विष न रखिये, प्रेम रखिये। शिवजी महाराज ने विष को गले में रोक रखा, इससे उनका कंठ नीला हो गया। देव-गंधर्व शिवजी महाराज की जय-जयकार करने लगे।

शंकर भगवान् विष पी रहे थे, उसमें से थोड़ा विष नीचे गिर पड़ा। वह किसी के पेट में गया और किसी की आँख में पड़ा। किसी को अधिक मिलता है, कोई बहुत सुखी होता है, यह

देखकर कई व्यक्तियों की आँखों में जलन होती है, वे सोचते हैं कि कैसा बँगला बना लिया है। अरे! प्रभु ने तुम्हें क्या कम दिया है? किसी को सुखी देखकर प्रसन्न हो जाइए। शिवजी ने जगत् को ऐसा बोध दिया है? आँखों में प्रेम रखिये। पेट में प्रेम रखिये। जिसकी आँखों में, जिसके पेट में प्रेम है वही भक्ति करता है।

देव-दैत्य समुद्र-मंथन करने लगे। उसी समय समुद्र में से काम धेनु (गाय माता) प्रकट हुई, जिसे ब्राह्मणों को अर्पित किया गया। इसके बाद समुद्र में से उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा बाहर आया। दैत्यों को यह घोड़ा बहुत पसंद आया। दैत्यों ने माँग की कि यह घोड़ा हमें मिलना चाहिए। अतः राक्षसों को उच्चैःश्रवा घोड़ा दिया गया। मन को जो पर्वतसा स्थिर करते हैं, जो विष सहन करते हैं और भक्ति करते हैं, उनके पास यही घोड़ा आता है। 'उच्च' शब्द का अर्थ है कीर्ति। 'श्रव' का अर्थ है संपत्ति। कीर्ति और संपत्ति का ढेर लग जाता है परन्तु इस कीर्ति और इस संपत्ति में मन फँस जाय तो भक्ति-फल का अमृत नहीं मिलता है। राक्षसों ने वही उच्चैःश्रवा घोड़ा माँग लिया।

बाद में समुद्र में से ऐरावत नाम का हाथी निकला। हाथी देव-पक्ष में आया। जिसे हाथी मिलता है, उसे अमृत मिलता है। हाथी के शरीर को देखकर लगता है कि उसकी आँखें बहुत छोटी हैं। जिसकी सूक्ष्म दृष्टि है उसे अमृत मिलता है। जिसकी स्थूल दृष्टि है उसे अमृत नहीं मिलता है। स्थूल दृष्टि अर्थात् देह दृष्टि सूक्ष्म दृष्टि अर्थात् आत्म दृष्टि। भक्तिरूपी अमृत पान करता हो तो सूक्ष्म दृष्टि न रखिये। इस शरीर को जो देखता है, शरीर बहुत अच्छा है, ऐसा जो समझ रहा है, वह ठीक तरह से भक्ति नहीं कर सकेगा। आत्मा के लिए शरीर की शक्ति है, शोभा है। शरीर में प्राण नहीं रहेगा, तब कोई शरीर को घर में रखने के लिए तैयार नहीं होगा। जो आत्म दृष्टि को साध्य करता है, उसे अमृत मिलता है। जिसकी देह-दृष्टि है, उसका मन बिगड़ता है। हाथी सूक्ष्म दृष्टि का प्रतीक है। हाथी के बाद कौस्तुभ मणि निकली, जो नारायण को समर्पित की गयी। इसके बाद पारिजात कल्पवृक्ष और इसके बाद अप्सराएँ निकलीं। समुद्र में से श्री महालक्ष्मी .....साक्षात् महालक्ष्मीजी प्रकट हुईं। महालक्ष्मी को सुवर्ण के सिंहासन पर बैठाकर ब्राह्मणों ने वेदमंत्रों के साथ अभिषेक किया–

हिरण्यवर्णा हरिणीं सुवर्णरजतस्त्रजान्।
चन्द्रां हिरण्यमयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह॥

सखियों ने माताजी का सुन्दर शृंगार किया है। सबकी ऐसी इच्छा हुई कि यह लक्ष्मी मुझे मिलें तो अच्छा! लक्ष्मी ने कहा कि स्वयंवर में मैं योग्य पति को विजयमाला अर्पित करूँगी।

एक ओर देव बैठे हैं, दूसरी ओर राक्षस बैठे हैं। ऋषि-मुनियों ने भी आज सभा में बैठना स्वीकार किया है। सखियाँ स्वयंवर के लिए लक्ष्मीजी को सभी जगह ले जाने लगीं। महान् तपस्वी के पास गयीं। तपश्चर्या और भक्ति का साथ न हो तो तपस्वी क्रोधी बन जाते हैं। ऐसे तपस्वी का पतन होता है। ज्ञान और तप में भक्ति का साथ होता है तभी क्रोध पर विजय पायी जाती है। भक्ति में–प्रेम में जिसका हृदय द्रवित रहता है वह सभी में भगवान् का दर्शन करता है। वह कभी क्रोध नहीं करता है। लक्ष्मी जी ने सखी से कहा–यह तपस्वी है पर इसके तप में भक्ति का साथ नहीं है। ये बहुत क्रोध करते हैं, तुम आगे बढ़ो। जो क्रोध करते हैं, वे लक्ष्मी को नहीं पा सकते, क्रोधी के पास लक्ष्मीजी नहीं विराजमान होती हैं।

आगे देव विराजमान थे। सखियों ने परिचय दिया। लक्ष्मीजी ने ना कह दी–देव बहुत कामी होते हैं। आगे परशुराम भगवान् विराजमान थे। सखियों ने परिचय दिया–ये कामी नहीं हैं, क्रोधी भी नहीं हैं, महान् वीर हैं। लक्ष्मीजी ने कहा–सभी अच्छा है पर.....पर 'जब 'पर' आ जाय, तब समझना कि ये उपयुक्त नहीं है.....' यह निष्ठुर दीख पड़ते हैं। क्षत्रियों के छोटे-छोटे बच्चों की हिंसा करते रहे हैं। जहाँ दया नहीं है, वहाँ लक्ष्मीजी नहीं विराजती हैं। लक्ष्मीजी आगे-आगे चलीं। आगे मार्कण्डेय ऋषि विराजमान थे। सखियाँ समझाने लगीं–यह कामी भी नहीं हैं, क्रोधी भी नहीं हैं, निष्ठुर भी नहीं हैं। प्रलयकाल तक इनका आयुष्य है। महान् ज्ञानी हैं। विचार करिये। मार्कण्डेय ऋषि सभा में आँखें बन्द करके बैठे थे। सोच रहे थे–लक्ष्मीजी से भी मेरे नारायण अति सुंदर हैं। अकेले लक्ष्मीजी को देखने वालों को नारायण के दर्शन नहीं होते हैं। संत अकेले लक्ष्मीजी को नहीं देखते, पर लक्ष्मीजी के साथ नारायण का दर्शन करते हैं। आज अकेले लक्ष्मीजी आयीं हैं इससे मार्कण्डेय ऋषि ने आँखें बन्द कर लीं हैं। लक्ष्मीजी खड़ी रहीं पर मार्कण्डेय ने आँखें न खोलीं। उन्होंने कहा–माताजी! आप बहुत सुन्दर हैं, पर सच-सच बता दूँ, आपसे भी मेरे नारायण सुन्दर हैं। नारायण के दर्शन से मैं कभी तृप्त नहीं होता हूँ। लक्ष्मी जी ने सखी से कहा–ये तो आँखें खोलने के लिए भी तैयार नहीं हैं तुम आगे चलो। जैसे ये आगे बढ़ीं, भगवान् शंकर विराजमान थे। सखियाँ समझाने लगीं–ये देवों के देव हैं। इन्होंने काम को भस्म कर दिया है। बहुत सरल हैं। कभी क्रोध करते ही नहीं हैं। सिर पर गंगाजी विराजमान हैं। लक्ष्मीजी ने कहा–सब कुछ अच्छा है पर वेश-भूषा अच्छी नहीं है। बाघम्बर पहिना है। हाथ में गले में साँप दीख रहे हैं। तुम आगे बढ़ो।

लक्ष्मीजी आगे चल रही हैं। भगवान् शंकर के पास शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज नारायण विराजमान हैं। लक्ष्मीजी दर्शन करती हैं। सर्वसद्गुण सम्पन्न हैं, एक भी दोष नहीं है।

आधी आँख खुली है, आधी बन्द है। लक्ष्मीजी को विश्वास आ गया कि ये ही नारायण हैं। लक्ष्मीजी ने भगवान् नारायण को विजयमाला अर्पण की। देवों-गन्धर्वों ने लक्ष्मी-नारायण की जय-जयकार कर दी।

लक्ष्मीजी ने जब माला अर्पण की तब भगवान् चारों ओर देखने लगे। लक्ष्मी जब आपके घर आयें तब आप भी चारों ओर दृष्टि रखिये–मेरी गली में किसके पास कपड़ा नहीं है? ऐसा कौन है जो भीख नहीं माँग सकता पर आज की मँहगाई में दो बार खाना नहीं खाता है? किसी को पता भी न चले और आप उसके घर जाकर सहायता दे आइए। जो चारों ओर देखता है; लक्ष्मीजी का सदुपयोग करता है लक्ष्मीजी उसके घर अखण्ड रूप से विराजमान होती हैं। कई लोग ऐसे भी हैं कि उनके घर लक्ष्मी के आने के बाद उन्हें दूसरा कुछ नहीं दीख पड़ता, सिवाय इसके कि मेरी पत्नी, मेरा पुत्र, मेरी पुत्री–लक्ष्मी आज है कल नहीं होगी। लक्ष्मी का सदुपयोग कीजिये।

देव-दैत्यों ने पुनः समुद्र-मंथन किया, तब उसमें से धन्वन्तरि नारायण का प्राकट्य हुआ। अमृत का घट लेकर धन्वन्तरि नारायण बाहर आये। दैत्यों ने दौड़कर घड़ा ले लिया। देव बहुत दुःखी हुए सोचने लगे कि ये तो हमें अमृत की बूँद भी नहीं देंगे। प्रभु ने आश्वासन दिया। जिसके हाथ में अमृत-घट आया वह कहने लगा–पहिले मैं पिऊँगा। एक बलवान राक्षस ने कहा–हमने मेहनत की है, घट नीचे रख दे अन्यथा मारा मारी हो जायगी। जिसके घर में झगड़े होते हैं उसके घर में किसी को भक्ति का अमृत नहीं मिलता है। घर में प्रेम से रहिये। घर में जरा भी झगड़ा न करिये। घर के एक-एक जीव में भगवान् की भावना रखिये। दैत्य झगड़ने लगे। उसी समय भगवान् ने लीला की। भगवान् मोहिनी नारायण रूप में प्रकट हुए। आज पीताम्बर पहिनकर नहीं आये हैं। ऐसा सुन्दर स्वरूप था कि सभी दैत्य अमृत को भूल गये और मोहिनी नारायण को टकटकी लगाकर देखने लगे। दौड़कर मोहिनी नारायण से पूछने लगे–आपका घर कहाँ है? आपके माता-पिता कौन हैं? आपका विवाह हो गया कि अभी होने वाला है? यह सब पूछने की क्या आवश्यकता थी? पर मोह हो जाने पर विवेक बह जाता है। मोह हो जाने पर ज्ञान नहीं टिकता है। दैत्य अमृत भूल गये।

संसार के विषयों में माया ने मोहिनी छिपा रखी है। जिसका मन मोहिनी में फँस जाता है उसे अमृत नहीं मिलता है। श्रीकृष्ण के सौन्दर्य में जब आँख और मन फँस जाते हैं, तब अमृत मिलता है। मोहिनी नारायण मन में मुस्कराते हुए धीरे-धीरे कहते हैं–आप मेरे घर के विषय में पूछ रहे हैं? मेरा घर नहीं है। जो पुरुष मेरे लिए रोता है, जो मुझे सोलह आने प्रेम करता है, उसके घर मैं जाती हूँ। जिसके हाथ में अमृत का घड़ा था, उस दैत्य को मोहिनी नारायण देखने लगे और

होठों में हँसने लगे। दैत्य तो उन्हें देख पागल-सा हो गया। मुझे देखकर हँसते हैं। इसे मुझ पर अधिक प्रेम आ रहा है। उसने कहा–बहुत मेहनत से यह अमृत पाया है, इसे मैं आपको देता हूँ। प्रभु ने घड़ा हाथ में लिया और पूछा–इसमें क्या है? दैत्यों ने कहा–इसमें अमृत है, इसके लिये हमारे मध्य झगड़ा हुआ है। आप परोसिये तो कोई झगड़ा नहीं करेगा। सभी मोह में थे। आँख से इशारा किया है। एक ओर देव बैठ गये और दूसरी ओर दैत्य बैठ गये।

मोहिनी नारायण हाथ में अमृत-घट लेकर परोसने लगे। उनके मुख पर ऐसी मोहनी थी कि सभी पागल-से हो गये। दैत्यों के मंडल में आकर उन्होंने कहा–यह घड़ा आप लोगों ने मुझे दिया है, इसलिये आपका भला सोचना मेरा धर्म है, आपका कल्याण करना मेरा फर्ज है। प्रभु ने विचार किया कि दैत्यों को अमृत न मिले, इसी में दैत्यों का कल्याण है। अमृत मिलेगा तो बहुत नखरे करेंगे, इसमें इन्हीं का अकल्याण होगा। मोहिनी नारायण ने दैत्यों से कहा–मेरी इच्छा ऐसी है कि आपको अमृत दूँ, पर देव टकटकी लगाकर देख रहे हैं, इससे मुझे ऐसा लगता है कि घड़े के ऊपर जो पानी जैसा अमृत है वह उन्हें दे दूँ। उनकी नजर लगा अमृत आपको पचेगा नहीं। उनकी नजर अच्छी नहीं है। अतः ऊपर का अमृत देवों को पिला दूँ और नीचे जो शुद्ध रहेगा वह आपको दूँ। दैत्यों ने कहा–स्वीकार्य है। मूर्खों को अक्ल नहीं है कि अमृत में पानी और शुद्ध अमृत–जैसे भेद नहीं होते। मोहिनी में मन फँसा है, पागल से हो रहे हैं। मोहिनी नारायण अमृत दे रहे हैं देवों को और देख रहे हैं राक्षसों को। सभी दैत्य बातें करने लगे कि हमें तो शुद्ध माल मिलने वाला है। सभी धैर्य रखकर बैठे रहे। दैत्यों के मंडल में राहु नाम का एक दैत्य था। वह चतुर था, उसे प्रपंच का शक हुआ। इससे वह देव का स्वरूप धारण करके, सूर्य-चन्द्र के बीच में जाकर बैठ गया। उसका देवों की पंक्ति में (पंगत में) जाकर बैठना प्रभु को अच्छा नहीं लगा। पंगत में विषमता लाना अच्छा नहीं लगा। वे जानते थे कि वह देव नहीं है, राक्षस है। देव-पंगत में बैठने के कारण राहु को भी अमृत दिया गया। राहु अमृत पीने लगा। सूर्य-चन्द्र आँखों से इशारा करने लगे। प्रभु ने सुदर्शन चक्र से राहु का सिर काट डाला परन्तु वह अमृत पी चुका था, इससे मरा नहीं। उसका सिर और धड़ अमर हो गये।

शुकदेव जी महाराज वर्णन करते हैं–राजन्! इन्द्र को अमृत दिया तब राहु न आया। अश्विनी कुमार को अमृत दिया तब भी राहु न आया। राहु तो सूर्य-चन्द्र को अमृत मिले, तब ही आता है। सूर्य, बुद्धि के स्वामी देव हैं। चन्द्र मन के स्वामी देव हैं। बुद्धि और मन भक्ति रस में निमग्न हो जाते हैं, तभी राहु आता है। आँख से कोई भक्ति करे, शरीर से भक्ति करे, उसे राहु त्रस्त नहीं करता। मन से जो भक्ति करता है उसे विषय-स्वरूप राहु त्रस्त करता है। उसका सिर काट दिया

गया है पर वह मरा नहीं है, अजर-अमर है। विषय-राहु मरता नहीं है। वह कब सिर निकालकर खड़ा होगा, कहा नहीं जा सकता। आपको कभी ऐसा लगे कि मैं भक्ति करता हूँ, ज्ञानी हूँ, मेरे मन में क्रोध नहीं है, काम नहीं है तो आपका यह सोचना गलत है। ये सभी विकार भीतर बैठे हैं। मानव जब तक सावधान होकर भक्ति करता है, तब तक ये विकार नहीं दीख पड़ते हैं। मानव जरा भी गाफ़िल हुआ कि भीतर के विकार बाहर आ जाते हैं। जीवन की अन्तिम साँसों तक मन पर विश्वास न रखिये। मन कब गड्ढे में गिरा देगा, इसका पता नहीं है। महापुरुष मन पर विश्वास नहीं रखते हैं। मन पर भक्ति का अंकुश रखते हैं। निरन्तर भक्ति करने की आदत डालिये।

मोहिनी नारायण ने सब अमृत देवों को पिला दिया और रीता घड़ा दैत्यों के समक्ष ला पटका। चतुर्भुज नारायण प्रकट हुए। दैत्यों को आश्चर्य हुआ—दगा, दगा, दगा! यह विष्णु साड़ी पहिन कर आया, हम उसे पहचान न सके, उसने प्रपंच किया। देव-दैत्यों का युद्ध हुआ। अमृत के कारण देवों की शक्ति बढ़ी हुई थी, सो दैत्य हार गये। दैत्यों पर बहुत मार पड़ी। देवों को स्वर्ग का राज्य मिला। मृत्यु पाने वाले दैत्यों को शुक्राचार्य ने संजीवनी मंत्र के प्रताप से पुनः जीवित कर दिया।

एक बार नारदजी कैलास धाम में गये। उन्होंने शंकर भगवान् से पूछा—आपको मोहिनी नारायण के दर्शन हुए शिवजी ने कहा—ना! मुझे नहीं हुए—नारदजी ने प्रशंसा करते हुए कहा—ऐसा सुन्दर स्वरूप था कि सभी देव—ऋषि भी पागल हो गये थे। शिवजी ने कहा—ऐसा है तो मैं वहाँ जाऊँगा नारायण मेरे लिए पुनः मोहिनी होंगे। पार्वतीजी ने कहा कि मुझे भी दर्शन करने हैं।

शंकर पार्वती मोहिनी स्वरूप के दर्शन करने कैलास से बैकुण्ठ धाम में आये। प्रभु ने स्वागत किया। पूछा—कैसे पधारना हुआ? शिवजी ने कहा—आपके दर्शन करने आये हैं। प्रभु ने कहा—आप मेरे हृदय में हैं, मैं आपके हृदय में हूँ। आपको इधर आने की जरूरत कहाँ है? शिवजी ने कहा—आप मेरे हृदय में हैं, पर वह तो पीताम्बरधारी नारायण रूप में हैं। मैंने सुना है कि आपने साड़ी पहिनी थी और तब बहुत ही नखरे आपने दिखाये। वह नारायण मैंने देखे नहीं हैं। प्रभु ने कहा—मैं साड़ी पहिन कर आऊँ, नखरे भी करूँ और तब आप नाचने लग गये तो? शंकर दादा ने कहा—मैं नाचने लगूँ तो आप भी नाचने लग जाइयेगा। हम दोनों नाचेंगे। आनंद आ जायगा। भगवान् नारायण बहुत वर्षों तक बैकुण्ठ में निद्रा में थे। जागने पर उन्हें इच्छा हुई कि आलस्य आ रहा है। मैं नाचने लगूँ तो आलस्य भाग जायगा। पर किसके आगे नाचूँ? कोई नाचने वाला आ जाय तो नाच सकेंगी न। हरि और हर की यह दिव्य लीला है। नाटक का पर्दा जिस तरह उठता है, उसी

तरह एक सुन्दर बाग दिखाई दिया। मोहिनी नारायण का दिव्य स्वरूप प्रकट हुआ। बाग में एक अति सुन्दर युवती गेंद से खेल रही थी। शिवजी ने देखा। ये ज्ञानी पुरुषों का एक नियम है कि वे जो काम करते हैं उसमें ऐसे तन्मय हो जाते हैं कि और सब भूल जाते हैं।

मोहिनी के दर्शन करते हुए शिवजी ऐसे तन्मय हो गये कि यह भी भूल गये कि साथ में पार्वतीजी भी आयी हैं। आप मन्दिर में दर्शन करने जाते हैं, वहाँ कौन आता है, कौन जाता है— यह न देखिये। कई लोग सारे गाँव की बातों को जानने के लिये मन्दिर जाते हैं। मन्दिर में घर की बातें न सुनिये। मन्दिर में बधिर हो जाइये अंधे हो जाइये। निश्चय कीजिये कि मुझे किसी पुरुष पर दृष्टि नहीं डालनी है, न किसी स्त्री की ओर दृष्टिपात करना है। मैं तो परमात्मा पर दृष्टि डालने आया हूँ। शिवजी महाराज परमात्मा के दर्शन में तन्मय हो गये। दर्शन में थोड़ा द्वैत भी रहता है। यह जीव ईश्वर से थोड़ा भी भिन्न होता है, तब पूर्ण आनंद नहीं आता है। पूर्ण आनंद अद्वैत में है। जीव, ईश्वर से थोड़ा भी दूर होता है तो काल उसे मारता है। शिवजी को तो अद्वैत प्रिय है— अपने नारायण से मैं एक हो जाऊँ। शंकर भगवान् दौड़ते हुए गये और मोहिनी नारायण को आलिंगन दिया। हरि-हर-दो से एक हो गये।

दक्षिण भारत में हरि-हर क्षेत्र है। हुबली से वहाँ जा सकते हैं। वहाँ ठाकुरजी का आधा अंग नारायण का है, आधा अंग शिवजी का है। आधा श्रीअंग श्याम है, आधा श्रीअंग गौर है। दो हाथों में शंख, चक्र हैं, दो हाथों में त्रिशूल, माला है। एक ओर पीताम्बर है, एक ओर बाघम्बर है। एक ओर सुवर्ण मुकुट है, एक ओर जटा मुकुट है।

इस अध्याय में भगवान् ने शिवजी की स्तुति की है।

दिष्ट्या त्वं विबुधश्रेष्ठ स्वां निष्ठामात्मना स्थितः।
यन्मे स्त्रीरूपया स्वैरं मोहितोऽप्यंग मायया॥
को नु मेऽतितरेन्मायां विषक्तस्त्वदृते पुमान्।
तांस्तान्विसृजतीं भावान्दुस्तरामकृतात्मभिः॥

(८-१२-३८/३९)

स्वां निष्ठामात्मना स्थितः—आप अपने स्वरूप में स्थिर हैं। मेरी माया आपका क्या कर सकती है? —पर यह सब सुनकर शिवजी अभिमान में नहीं आये। दोनों हाथ जोड़कर उन्होंने नारायण भगवान् की स्तुति की—आपको जो हृदय में रखता है, उसे माया त्रस्त नहीं कर सकती है। हरि-शरण, हरि-स्मरण जो निरंतर करते हैं, माया उन्हें त्रस्त नहीं कर सकती है।

शिवजी महाराज पार्वतीजी के साथ कैलास में लौट आये। वहाँ पार्वतीजी को और सप्त-ऋषियों को शिवजी ने उपदेश दिया है–

अपि व्यपश्यस्त्वभजस्य मायां परस्य पुंसः परदेवतायाः।
अहं कलानामृषभो विमुह्ये ययावशोऽन्ये किमुतास्वतन्त्राः॥

(८-१२-४३)

मन पर विश्वास न रखिये। माया में बहुत बल है। माया गड्डे में डाल देती है। बड़े-बड़े भुलावे में आ गये हैं। यह संसार भयंकर है। संसार में जो आता है, माया उसे मारती है। माया किसी को भी नहीं छोड़ती है। जो निरंतर भक्ति करता है, प्रतिक्षण जो सावधान रहता है, वह माया की मार नहीं खाता है।

३९. भिक्षु नारायण

षष्ठ मन्वन्तर में समुद्र-मंथन हुआ है। सप्तम मन्वन्तर में कश्यप ऋषि के घर श्रीवामनजी महाराज प्रकट हुए हैं। आठवें मन्वन्तर से चौदहवें मन्वन्तर तक भविष्य में जो-जो अवतार होने वाले हैं, उन अवतारों की कथा बहुत संक्षेप में वर्णन की गई है।

परीक्षित राजा ने प्रश्न किया–

बलेः पदत्रयं भूमेः कस्माद्धरिरयाचत।
भूत्वेश्वरः कृपणवल्लब्धार्थोऽपि बबन्ध तम्॥ (८-१५-१)

वामनजी की कथा सुनने की बहुत इच्छा है। लक्ष्मीपति जो नारायण हैं, वे भिक्षा माँगने गये थे, ऐसा सुना है, उसका क्या कारण था? वामनजी का प्राकट्य किस तरह हुआ?

शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं–राजन्! श्रवण करिये। दैत्यों ने शुक्राचार्य जी की बहुत सेवा की। शुक्राचार्य जी प्रसन्न हुए। उन्होंने दैत्यों के राजा बलि के हाथ से विश्वजित नाम का यज्ञ करवाया। पूर्णाहुति के समय पर अग्निकुण्ड से सोने का बना रथ बाहर आया। बलि राजा को उस रथ में बैठा कर, शुक्राचार्यजी ने अपना ब्रह्म तेज उसे दिया। बलि राजा से उन्होंने कहा–आप जहाँ जायेंगे, आपकी विजय होगी। बलि महाराज स्वर्ग में युद्ध करने के लिये गये। बलि राजा की विजय हुई, दोनों की पराजय हुई। जिसको शुक्राचार्यजी का तेज मिलता है, उसकी जीत ही होती है। इस शरीर का राजा शुक्र है। शक्ति को ही शुक्र कहते हैं, शक्ति का नाश सर्वनाश है। शुक्राचार्यजी की सेवा का अर्थ है प्रत्येक इन्द्रिय का संयम। संयम से शक्ति का संग्रह होता है। जो शक्ति का संग्रह करता है वह बलि होता है। शक्ति के संग्रह में अति सुख है। शक्ति के

विनाश में अति दुःख है। जो शुक्र की सेवा करता है उसका बल बढ़ता है। बलि राजा को इन्द्रासन पर बैठाकर शुक्राचार्यजी ने उसका राज्याभिषेक किया।

शुक्राचार्यजी ने बलि को समझाया—आप अश्वमेध यज्ञ करेंगे तो आप सदैव के लिए इन्द्र हो जायेंगे। शुक्राचार्यजी बलि राजा को नर्मदा के तट पर ले आये। नर्मदा नदी के तट पर बृहस्पति तीर्थ में बलि महाराज अश्वमेध यज्ञ करने लगे।

इस ओर देवों के हाथ से स्वर्ग का राज्य चला गया, इससे माता अदिति को बहुत दुःख हुआ। उन्होंने कश्यप ऋषि की बहुत सेवा की। प्रसन्न कश्यप ऋषि ने कहा—देवि! आप वरदान माँगिये। अदिति ने कहा—मेरे शत्रुओं का नाश हो जाय मेरी सन्तान को स्वर्ग का राज्य मिले, ऐसी कृपा करिये। कश्यप ऋषि अदिति को समझाते हैं—आपके शत्रु दैत्य अब बहुत बलवान हो गये हैं। जिसके सिर पर शक्ति का छत्र है, जिसने संयम का बख्तर पहना है जो सर्व प्रकार के पापों को छोड़कर पवित्र जीवन जी रहा है, उसे तो युद्ध में परमात्मा भी नहीं मार सकते हैं। जो पाप करते हैं, उन्हें ही परमात्मा मारते हैं। अरे! भगवान् तो किसी को भी नहीं मारते, पाप ही मारता है। आपके शत्रु दैत्यों ने पाप छोड़ दिया है। वे बहुत पवित्र जीवन जी रहे हैं। युद्ध में उन्हें कोई नहीं मार सकता है, परन्तु युक्ति से मैं तुम्हारा काम कर दूँगा। शत्रु का मरण नहीं होगा, हमारे बालकों को राज्य प्राप्त हो जायगा। आप बारह दिनों का पयोव्रत करिये आपके घर भगवान् नारायण पुत्र स्वरूप में प्रकट होंगे। फाल्गुन मास में यह व्रत किया जाता है। सिर्फ दूध पीकर यह व्रत करना होता है। माघ कृष्ण अमावस्या के दिन जाने-अनजाने में जो कोई पाप हो गया हो तो उसके विनाश के लिए देह-शुद्धि प्रायश्चित करिये। फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा से द्वादशी तक बारह दिनों तक सिर्फ दूध लेकर रहना है। व्रत के लिए सोलह मंत्र हैं। लक्ष्मीनारायण की स्थापना के करिए। षोडशोपचार से पूजा करिये। पूजा के बाद यज्ञ करिये। दिन में तीन बार स्नान करिये। अग्नि प्रकट करके 'ॐ नमो नारायण स्वाहा' मन्त्र से पायस की आहुतियाँ दीजिये। त्रिकाल लक्ष्मीनारायण की पूजा कीजिये। कश्यप ऋषि अदिति को पयोव्रत की विधि समझाते हैं—किसी जीव की हिंसा नहीं करनी चाहिए। किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिये। रजस्वला स्त्री के साथ बोलना नहीं चाहिये। हर रोज दो ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। फल भी नहीं खाना है। सिर्फ दूध पीकर यह व्रत करना होता है। लक्ष्मीनारायण का स्मरण करते हुए रात्रि में पवित्र आसन पर सोना है। बारह दिनों तक यह पयोव्रत करें और त्रयोदशी का दिन उद्यापन का है। उद्यापन के दिन यथाशक्ति गायों का दान कीजिये।

फाल्गुन मास आ गया। अदिति ने कश्यप ऋषि से कहा—मैं अकेली व्रत नहीं करूँगी, आप भी साथ दीजिए। पति-पत्नी एक विचार से सेवा-स्मरण करते हैं तब भगवान् शीघ्र कृपा करते हैं। पति-पत्नी का लक्ष्य एक होना चाहिए। एक को धन चाहिये और एक के मन में परमात्मा के दर्शन की इच्छा है तो घर में ऐसा मतभेद होने पर, लक्ष्य भेद होने पर शाँति नहीं मिलती है।

परमात्मा श्रीकृष्ण अतिशय कृपा करते हैं, तब ही घर में सत्संग देते हैं। बाहर का सत्संग साधारण कृपा का लक्षण है, परन्तु घर में जिसको सत्संग मिला हो, वह परमात्मा की अतिशय कृपा का पात्र है। सत्संग ही बड़ा तीर्थ है। जिसे घर में सत्संग मिला हो, उसे बाहर तीर्थ में जाने की जरूरत नहीं है। गृहस्थाश्रम भक्ति में बाधक नहीं किन्तु साधक है। गृहस्थाश्रम में पति-पत्नी एकान्त में बैठकर ध्यान करें, सत्संग करें, किसी पवित्र ग्रंथ का पठन करें। पति-पत्नी का पवित्र सम्बंध परमात्मा के लिये है। गृहस्थाश्रम, विलास के लिये नहीं है। पर काम को एक ही स्थान पर संकुचित करके काम के विनाश के लिये है।

हमारे शास्त्रों में संन्यास का माहात्म्य बहुत गाया गया है। परमात्मा के लिए संसार के सर्व सुख का जो न्यास अर्थात् त्याग करता है वह है संन्यासी। संन्यासी महात्मा नारायण का स्वरूप है। वे सर्व से श्रेष्ठ हैं पर अनेक बार संन्यास के मठ में भगवान् का अवतार नहीं हुआ है। भगवान् के सभी अवतार गृहस्थ के घर हुए हैं। साधु-संन्यासी महापुरुष ब्रह्म-चिंतन करते हुए ब्रह्म रूप हुए हैं, पर गृहस्थाश्रम में ऐसी शक्ति है कि पति-पत्नी सावधान रहें, धीरे-धीरे संयम बढ़ाते जायें, भक्तिमय जीवन व्यतीत करें तो परमात्मा को अपना बालक बना सकते हैं। संन्यासी महापुरुष तो ब्रह्म रूप हो जाते हैं, पर गृहस्थाश्रम में ऐसी शक्ति है कि गृहस्थ परमात्मा का पिता हो सकता है।

आज भी पुरुष का जीवन कश्यप ऋषि जैसा हो और स्त्री अदिति बन सके तो भगवान् पुत्र स्वरूप में प्रकट होने के लिए तैयार होते हैं। थोड़ा विचार कीजिये, भगवान् के अवतार का अर्थ क्या है? जहाँ भगवान् नहीं हैं, वहाँ भगवान् आकर खड़े हो जाते हैं? जगत् में ऐसी कोई जगह नहीं है, जहाँ परमात्मा विराजमान नहीं हैं। सर्वव्यापक परमात्मा सर्व में व्याप्त हैं। सर्वव्यापक परमात्मा माया के आवरण से ढँके हुए रहते हैं। लकड़ी के एक-एक अणु में अग्नि है। अगर बहुत ठंड पड़ रही हो और कोई लकड़ी का स्पर्श करे तो लकड़ी में रमी हुई अग्नि गर्मी नहीं देती है, परन्तु लकड़ी में अग्नि है—यह बात भी सत्य है। जब लकड़ी की अग्नि का उपयोग करना होता है, तब लकड़ी पर अग्नि रखनी पड़ती है। बाहर की अग्नि और भीतर की अग्नि जब एक हो जाती है, तब ही ज्योति प्रकट होती है। आपके भीतर भगवान् हैं, ईश्वर भीतर होने पर भी जीव दुःखी है, अज्ञानी है। भीतर जो परमात्मा हैं, वे लकड़ी में छिपी हुई अग्नि के समान गुप्त हैं। वे

नारायण आपका दु:ख दूर नहीं कर रहे हैं। वे दीपक की तरह हैं। दीपक निर्लेप है। दीपक कहता है कि आप पाप करिये या पुण्य करिये, हँसिये या रोइये, मैं तो प्रकाश दूँगा ही।

अन्तर्यामी नारायण प्रकाशमय हैं। वे मन, बुद्धि, इन्द्रिय को प्रकाश देते हैं, शक्ति देते हैं, भीतर का चेतन देते हैं। वे किसी को सुख नहीं देते हैं, वे किसी का दु:ख भी दूर नहीं करते हैं। घर में ठाकुरजी का स्वरूप विराजमान कीजिये। भगवान् का सुन्दर शृंगार करिये। परमात्मा के सौंदर्य में आँख, कान, नाक फँस जाय तो जीवन नैया पार हो जाय। अपने मन को बार-बार समझाइए कि कोई स्त्री सुन्दर नहीं है, कोई पुरुष सुन्दर नहीं है। परमात्मा श्रीकृष्ण अति सुन्दर हैं। घर में भगवान् का स्वरूप स्थापित करके नन्दलाला का शृंगार कीजिये। भगवान् के दर्शन में कभी मन को परितृप्त न मानिये। कभी न अघाइये। बार-बार दर्शन करिये। दर्शन से तृप्त हो जाय, वह वैष्णव नहीं है। भगवान् के दर्शन करते-करते प्रभु के नाम का जप करिये। घर में आप जिस स्वरूप की पूजा करते हैं, उसे अर्चा-स्वरूप कहते हैं। भगवान् के इस स्वरूप को आँखों के द्वारा भीतर उतारिये। बाहर से भगवान् जब भीतर आते हैं, तभी माया का पर्दा दूर होता है। सर्वव्यापक परमात्मा-स्वरूप चैतन्य प्रकाशमय हैं। माया के आवरण से आच्छादित हैं। ब्रह्माकार-वृत्ति विशिष्ट चैतन्य इस माया के पर्दे को दूर करता है। स्वरूप-चैतन्य कुछ नहीं कर सकता है। अंतर्यामी नारायण और अर्चा-स्वामी नारायण जब एक हो जाते हैं, तब माया का पर्दा दूर हो जाता है। तब भीतर के नारायण का साक्षात्कार होता है।

अदिति बने बिना माया का पर्दा दूर नहीं होता है। अदिति अर्थात् ब्रह्माकार वृत्ति। अदिति और कश्यप ऋषि ने बारह दिनों का पयोव्रत किया है। सारा दिन दूध पीकर नारायण का ध्यान, नारायण की पूजा, नारायण का स्मरण उन्होंने किया है।

व्रत किसलिए करते हैं? व्रत का लक्ष्य क्या है? व्रत का लक्ष्य यही है कि जगत् को भुलाया जाय, और परमात्मा के दर्शन में स्मरण में तन्मयता आ जाय। कई व्यक्ति ऐसा समझते हैं कि व्रत में साबूदाना और आलू बहुत खा सकते हैं, दाल-भात नहीं खाना है। वस्तुत: साबूदाना खाने मात्र से व्रत परिपूर्ण नहीं होता है। व्रत का लक्ष्य है, विषयाकार वृत्ति का विनाश। मन विषयों का चिंतन करता है। मन विषयाकार बनता है। वही मन श्रीकृष्णाकार बन जाय-इसके लिये व्रत करते हैं। कई लोग उपवास करते हैं, पर भगवान् का स्मरण नहीं करते हैं, उदास बैठे रहते हैं। कोई जब पूछता है-आज आप उदास कैसे दीख रहे हैं? तो वे कहेंगे-आज मैंने दाल-भात नहीं खाया है, इससे अशक्ति लग रही है। अशक्ति हो और भगवान् को भुलाया जाय तो उपवास का विशेष

महत्व नहीं है। उप अर्थात् समीप और 'वास' अर्थात् रहना। मन से परमात्मा के समीप रहना, प्रभु के चरण में, प्रभु के नाम में रहना–उपवास है। फलाहार से उपवास नहीं होता है। फलाहार करके परमात्मा का ध्यान-स्मरण करने से उपवास होता है। जगत् को भूलने के लिए उपवास है, व्रत है। परमात्मा के दर्शन में स्मरण में तन्मय होने के लिये व्रत है। कश्यप और अदिति पति-पत्नी की वृत्ति नारायणाकार बन गई है। जो वस्तु जैसी है उसका ज्ञान तब होता है, जब तदाकार मन हो जाता है। तदाकार मन होने पर ही उसका ज्ञान होता है। यह पुष्प है। मुझे पुष्प का ज्ञान तब होगा जब मेरा मन पुष्पाकार हो जायगा। मन किसी अन्य वस्तु में है तो समक्ष पड़ा हुआ पुष्प भी नहीं दीख पड़ेगा। जो चीज है, जैसी है, तदाकार मन नहीं होगा, तब तक उसका ज्ञान नहीं होगा।

परमात्मा ने सभी के मन में थोड़ी विषमता दी है। किसी को कुछ अधिक दिया है, किसी को कम दिया है पर परमात्मा ने मन सभी को समान दिया है। मन पाप करने के लिए नहीं दिया है। मन खराब विचारों के लिए भी नहीं दिया है। मन पवित्र विचारों के लिए दिया है, परमात्मा का ध्यान करने के लिए दिया है। मन विषयों का चिंतन करने से विषयाकार बनता है, नारायण चिंतन करने पर नारायणाकार बनता है। श्रीकृष्ण द्वारिका में विराजमान हैं, पर गोपियों का मन श्रीकृष्ण में तदाकार होने से श्रीकृष्णाकार होने से उन्हें गोकुल में भी श्रीकृष्ण दीख पड़ते थे।

बारह दिनों का व्रत पूर्ण करके त्रयोदशी के दिन उद्यापन के बाद रात्रि में प्रसाद ग्रहण करके माता अदिति जब सोयी हुई थीं, तब स्वप्न में चतुर्भुज नारायण भगवान् के दर्शन हुए। मन की परीक्षा जाग्रत अवस्था में नहीं होती है, स्वप्न में होती है। आपको स्वप्न में क्या दीख पड़ता है? स्वप्न में आपको जो याद आता है, मन उसी में फँसा हुआ होता है। स्वप्न में नारायण का स्वरूप दिखाई दे, नारायण के नाम का जप हो, सेवा हो, तो समझिए कि मुझे भक्ति का थोड़ा रंग लगा है। अदिति स्वप्न में भगवान् के दर्शन करती हैं और स्वप्न में ही वे प्रभु की स्तुति करती हैं–

यज्ञेश यज्ञपुरुषाच्युत तीर्थपाद तीर्थश्रवः श्रवणमंगलनामधेय।
आपन्नलोकवृजिनोपशमोदयाद्य शं नः कृधीश भगवन्नसि दीननाथः॥

(८-१७-८)

यज्ञपति आप हैं लक्ष्मी के स्वामी आप हैं। जगत् के पिता आप हैं। 'पति' शब्द का अर्थ है जो काल से रक्षण करता है, जो काल से बचा सकता है, वह ही सच्चा पति है।

जीवमात्र के सच्चे पति तो परमात्मा नारायण हैं। अदिति को प्रभु ने आज्ञा दी–मेरे, संपूर्ण रूप के दर्शन करिये। मेरे स्वरूप को भीतर उतारिये। निरंतर मेरे इस स्वरूप का ध्यान करिये।

आपके घर थोड़े दिनों के बाद मैं पुत्र के रूप में आने वाला हूँ, प्रकट होने वाला हूँ। मेरे दर्शन हुए हैं, इस बात को मन में रखिये, किसी से भी न कहिये।

आपको भी भक्ति में आनंद आ सकता है। कदाचित् कृपा करके भगवान् आपको दर्शन दें, तो किसी से न कहिये। इस बात को आप प्रकट करेंगे तो भगवान् कभी दर्शन नहीं देंगे। अदिति को आज्ञा करके भगवान् अंतर्धान हो गये।

अदिति के पेट में गर्भ रहा है। माता के मुख पर अति तेज दीख रहा है। माताजी के उदर में विराजमान परमात्मा की देव-गंधर्व स्तुति करते हैं। अब भगवान् प्रकट होने वाले हैं। मध्याह्न काल में कश्यप ऋषि मध्याह्न संध्या करने गये हैं। अकेली अदिति माता आश्रम में विराजमान हैं। परमात्मा के दर्शन के लिये प्राण तड़प रहे हैं। कब प्रकट होंगे? वैष्णव जब भगवान् के दर्शन के लिये आतुर होते हैं, तब अवतार होता है। आतुरता के बिना अवतार नहीं होता है। परम पवित्र समय प्राप्त हुआ है। दसों दिशाएँ प्रसन्न हैं। मंद, सुगंध, शीतल हवा चलने लगी। आसमान में देव दुँदभी बजाने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं। आज अग्निहोत्री ब्राह्मणों के घर में अग्निकुण्ड में विराजमान अग्निदेव बाहर आये! ब्राह्मणों को बहुत ही आनंद हुआ। आज भगवान् पधारने वाले हैं। परम पवित्र भाद्र मास, शुक्ल पक्ष तथा द्वादशी तिथि-जिसे महापुरुष वामन द्वादशी कहते हैं, मध्याह्न काल में अभिजित मुहूर्त में माता अदिति के सम्मुख चतुर्भुज स्वरूप नारायण प्रकट हुए। देवों ने पुष्पवृष्टि की। कश्यप ऋषि को पता चला कि मेरे घर भगवान् पधारे हैं। संध्यादिक नित्य कर्म उन्होंने पूर्ण किया है। दर्शन की आतुरता से वे दौड़ने लगे। पैरों में पादुकाएँ पहिनी हैं। हाथ में कमंडल है। कश्यप ऋषि दौड़ रहे हैं। घर में प्रवेश करते ही देखते हैं कि चारों ओर प्रकाश फैला हुआ है। उस प्रकाश में शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज नारायण के दर्शन उन्हें हुए अतिशय आनंद की अनुभूति हुई। सोचने लगे-गायत्री मंत्र के जप करते हुए इस स्वरूप का मैं ध्यान करता हूँ। मेरे इष्टदेव आज मेरे घर प्रकट हुए हैं। अतिशय आनंद हुआ। भगवान् का उन्होंने जय-जयकार किया। माता पिता को स्वरूप का बोध प्रभु ने कराया। चतुर्भुज स्वरूप अंतर्धान हो गया। दो हाथोंवाले वटुक ब्रह्मचारी श्रीवामनजी महाराज की जय-

यत् तद् वपुर्भाति विभूषणायुधै-रव्यक्तचिद् व्यक्तमधारयद्धरिः।
बभूव तेनैव स वामनो वटुः संपश्यतोर्दिव्यगतिर्यथा नटः॥

(८-१८-१२)

बटुक ब्रह्मचारी श्रीवामन महाराज के दर्शन के लिये ब्रह्मादिक देव भी वहाँ आये हैं। ब्रह्माजी ने कश्यप ऋषि को धन्यवाद दिये-आज आपका गृहस्थाश्रम सफल हुआ। आज आप

जगत-पिता के पिता हैं। यह बालक कोई साधारण बालक नहीं है, आदि नारायण परमात्मा आपके घर पुत्र रूप में प्रकट हुये हैं। ब्रह्मादि देव वामनजी महाराज की पूजा करते हैं, आरती उतारते हैं। नारायणाकार–श्रीकृष्णाकार मनोवृत्ति ही अदिति है, कश्यप और अदिति आदिनारायण परमात्मा के ध्यान में ऐसे तन्मय हुए कि माया का पर्दा अब दूर होने ही वाला है। भगवान् प्रकट होने वाले ही हैं।

वामनजी की बाल-लीला नहीं है। सात वर्ष का बाल स्वरूप उन्होंने प्रकट किया है। ब्राह्मण का पुत्र सात वर्ष का हो, तब उसे जनेऊ धारण कराना चाहिये। माता-पिता ने जो जन्म दिया है, उसे पवित्र नहीं माना गया है। जब ब्राह्मण को जनेऊ धारण कराया जाता है, तब उसका ब्रह्म-संबंध होता है। जनेऊ के मन्त्र ही ऐसे हैं। जनेऊ के मिलने पर माता-पिता बदल जाते हैं, नया जन्म होता है। पिता पुत्र से कहते हैं–आज से तुम मेरे पुत्र नहीं हो, आज से तुम सूर्यनारायण के पुत्र हो। मैं तुम्हें सूर्यनारायण को समर्पित करता हूँ। अब सूर्य नारायण तुम्हारे पिता हैं, और ब्रह्मविद्या-स्वरूपा गायत्री माता तुम्हारी माता हैं।

जनेऊ वेदों की दी हुई छाप है। जनेऊ बाजार से ले आयें और जेब में रखें, इसका कोई अर्थ नहीं है। ब्राह्मण घर में जनेऊ बनाते हैं, छियानवे बार उसे लपेटना पड़ता है। वेदों के छियानवे हजार मंत्रों के अधिकार जनेऊ धारण करने वाले को मिलते हैं।

हमारे शास्त्रों में ऐसा वर्णन है–प्रत्येक जीवात्मा का शरीर उसकी उँगली से नापने पर चौरासी अँगुल का होता है। देवों का स्वरूप छियानवे अँगुलवाला होता है। जो समुचित रीति से जनेऊ पहनता है, वह देव जैसा होता है। ब्रह्माजी जनेऊ बनाते हैं। जनेऊ के धागे को विष्णु भगवान् त्रिगुणित करते हैं। उसमें श्रीशंकर भगवान् गाँठ लगाते हैं। जनेऊ का अभिमंत्र होता है गायत्री से। जनेऊ के एक-एक धागे में एक-एक देव की स्थापना है। जनेऊ में अगर कोई चाबी लगाता है तो फिर उसमें देव नहीं रहते सभी उठकर चले जाते हैं। जनेऊ में चाबी लगाना पाप है।

कश्यप ऋषि वामनजी को जनेऊ धारण कराने की बात सोचते हैं। साक्षात् सूर्यनारायण ने पधारकर वामनजी को एकांत में गायत्री मंत्र की दीक्षा दी है। दीक्षा दी, इससे वे देव हुए। दीक्षा में ऐसी शक्ति है। गायत्री मंत्र का उपदेश दिया है। मंत्र को गुप्त रखिये। मंत्र के विज्ञापन से मंत्र की शक्ति का विनाश होता है। नाम की धुन होती है; मंत्र की धुन नहीं होती है। मंत्र एकांत में, पवित्र अवस्था में जपने का होता है। वामनजी अब ब्रह्मचारी हुए। ब्रह्माजी वामनजी को कमंडल अर्पण करते हैं। धरतीमाता ब्रह्मचारी को बैठने के लिए। मृगचर्म का आसन देती हैं। अदितिमाता लँगोट देती हैं। साक्षात् माता पार्वतीजी भिक्षा देती हैं।

अगर छह-सात वर्ष का बालक लँगोट पहन ले, सँध्या-गायत्री करे और भिक्षा माँगने जाय तो वह वामनजी जैसा ही दीखता है। आज कल तो बारहवें, पन्द्रहवें वर्ष में जनेऊ कराते हैं। कई लोग तो विवाह के आगे के दिन इसकी खटपट कर लेते हैं। बृहस्पति वामनजी को ब्रह्मचारी-धर्म समझाते हैं—बेटा! आज से तुम ब्रह्मचारी हुए। त्रिकाल संध्या करना। अगर ब्राह्मण तीन बार समुचित रूप से संध्या करता है तो उसकी चिंता सूर्यनारायण को होती है। मनु महाराज ने ब्राह्मण के धर्म को समझाया है। ब्राह्मण वेदाध्ययन करें, अग्निहोत्र करें, पर यह सब न कर पायें तो तीन बार संध्या अवश्य करें। मनु महाराज को लगा कि कलियुग में यह सब नहीं हो सकेगा, इसलिए केवल संध्या करने का आग्रह किया है।

संध्या के समान श्रेष्ठ कोई सत्कर्म नहीं है। संध्या में भक्ति है। संध्या में ज्ञान है। ब्राह्मण संध्या का अर्थ समझकर तीन बार अवश्य संध्या करें। ब्रह्मविद्या स्वरूपा गायत्री माता का हृदय में आह्वान है—माता! आप मेरे हृदय में विराजिये। मेरे हृदय में बसी हुई विकार-वासना का नाश कीजिए। संध्या में प्रायश्चित भी होता है। संध्या में सूर्य को अर्ध्यदान देते हैं। ध्यान के साथ जप भी हैं। संध्या में ज्ञान, भक्ति और कर्म तीनों का समन्वय है।

रात्रि में कोई पाप हुआ हो तो प्रातः संध्या समुचित रूप से करने पर पाप का विनाश होता है। दिन में कोई पाप हुआ हो तो साँध्य-संध्या समुचित रूप से करने पर दिन के पाप का विनाश होता है। अन्न-जल में कोई पाप आया हो तो मध्याह्न संध्या के किये बिना ब्राह्मण को खाने का अधिकार नहीं है। ब्राह्मण के सिर पर बहुत जिम्मेवारी है।

संध्या न करने वालों को सूर्य भगवान् शाप देते हैं। तब उनकी बुद्धि भ्रष्ट होती है। ब्राह्मण मन्दिर में दर्शन के लिए नहीं जाता तो प्रभु को बुरा नहीं लगता, पर ब्राह्मण अगर संध्या नहीं करता तो भगवान् को बहुत बुरा लगता है। जो संध्या नहीं करते वे अतिशय अपवित्र हैं, उनके हाथ का पानी भी नहीं पीना चाहिए। जब से ब्राह्मणों के मन में संध्या के प्रति श्रद्धा कम हुई है, तब से उनका पतन हुआ है।

बृहस्पतिजी वामनजी को समझा रहे हैं—बेटा! त्रिकाल संध्या करना। आज से तुम ब्रह्मचारी हुए हो। किसी भी स्त्री का स्पर्श न करना। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि स्त्री, साधु, संन्यासी और ब्रह्मचारी को दूर से प्रणाम कर लें, स्पर्श न करें। शास्त्रों में तो लिखा है कि ब्रह्मचारी, साधु संन्यासी किसी लकड़ी की बनी गुड़िया का भी स्पर्श न करें—

न स्पृशेत् दारवीमपि

दाखी अर्थात् लकड़ी की बनी गुड़िया। बहुत भीड़-भाड़ में, अनजाने में किसी स्त्री का स्पर्श हो जाय तो भगवान् क्षमा करते हैं, पर जान कर किये गये स्पर्श के लिए क्षमा नहीं है, सजा है। वृहस्पतिजी कह रहे हैं—बेटा! सावधान रहना, किसी भी स्त्री के साथ एकान्त में न रहना। इन्द्रियाँ बहुत बलवान होती हैं। किसी स्त्री के साथ बोलने का प्रसंग आ जाय, तो उसमें मातृभाव रखना। जहाँ तक सम्भव हो, स्त्री के चरणों में दृष्टि रखना—

बलवानिन्द्रियगामः विद्वांसमपि कर्षति।

स्त्री के मुख में और बालों में काम का निवास है। स्त्री-शरीर अग्नि के समान है और पुरुष घी के भरे घड़े के समान है। अग्नि के पास घी को रखने से घी पिघलता है। बड़े-बड़े भुलावे में आ गये हैं।

एक साधु महाराज कहते थे कि हमारे देश में जब से सह-शिक्षण शुरू हुआ है, तब से दशा बिगड़ने लगी है। लड़के-लड़कियाँ साथ में पढ़कर संयम नहीं रख सकते। एक बार मन बिगड़ जाय फिर तुरन्त शुद्ध नहीं होता है। सनातन धर्म का जितना पालन करेंगे, मन उतना ही शुद्ध और शाँत होगा। धर्म की मर्यादा की जितनी उपेक्षा करेंगे, उतना ही मनं बिगड़ेगा।

माया में बहुत बल है। साधारण ज्ञान का, भक्ति का माया पर असर नहीं होता। माया परवाह नहीं करती। इसलिये बहुत सावधान रहने की जरूरत है। रामायण में वर्णन है—वनवास में चौदह वर्षों तक सीता-रामजी की सेवा में लक्ष्मण जी रहे। एक बार रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण की परीक्षा ली—लक्ष्मण! यह तुम्हारी भाभी के कंगन हैं। तुमने देखें हैं न? लक्ष्मण ने इन्कार कर दिया। बोले—मैंने कंगन नहीं देखे हैं। लक्ष्मण! यह तुम्हारी भाभी का चन्द्रहार है। लक्ष्मणजी ने कहा—मैंने कभी देखा ही नहीं। रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण से पूछा—लक्ष्मण! तुमने कुछ भी नहीं देखा? लक्ष्मण ने कहा—मैं अपनी भाभी के चरणों में प्रणाम करता हूँ और तब मैंने चरणों में पहिने नुपूर देखे हैं, दूसरा कुछ भी नहीं देखा है। इन्द्रियजित राजा इन्द्र से भी बड़ा है, श्रेष्ठ है। रामचन्द्रजी उठकर खड़े हो गये और लक्ष्मण को गले लगा लिया। लक्ष्मण इन्द्रजित हैं। लक्ष्मण सावधान हैं। माया मारती है पर गाफ़िल को मारती है। प्रतिक्षण सावधान होकर परमात्मा की भक्ति करने वाले को माया नहीं मारती है। लक्ष्मण जी प्रतिक्षण सावधान हैं रामायण में रामचन्द्रजी ने ऐसा कहा है— रावण को मारना सरल है पर इन्द्रजित को मारना दुष्कर है। इन्द्रजित मरा तो समझना रावण भी मरेगा। इन्द्रजित मोह है। मोह मरेगा तब काम भी मरेगा। मोह को मारना बहुत कठिन है इन्द्रियजित ही इन्द्रजित को—मोह को मार सकता है।

बृहस्पतिजी ब्रह्मचारी के धर्म समझाते हैं– बेटा! ब्रह्मचारी हो। आज से घर में भोजन नहीं करना। मधुकरी माँगनी है, उसमें जो कुछ मिले वह सब गुरु को अर्पण करना है। गुरुजी जो दें वही खाना है। राजसी, तामसी खाना खाने वाले के शरीर में गर्मी उत्पन्न होती है। वही ब्रह्मचर्य का भंग करवाती है। दूध-भात, दूध-रोटी ऐसा सादा भोजन करना है।

वामनजी महाराज ब्रह्मचर्य धर्म का पालन कर रहे हैं। संध्या कर रहे हैं, भिक्षा माँग रहे हैं। गुरुदेव को वे भिक्षा अर्पण करते हैं। गुरुजी ने कहा–बेटा! मेरा परिवार बहुत बड़ा है, तुम थोड़ी भिक्षा लाये हो। मुझे अधिक भिक्षा की जरूरत है। वामनजी ने कहा–मुझे कोई बड़े यजमान का परिचय दीजिए तो मैं अधिक भिक्षा ले आऊँ। गुरुजी ने कहा–अरे! बड़े यजमान तो बलि महाराज हैं। वे नर्मदा-तट पर यज्ञ कर रहे हैं, तुम वहाँ जाओ। वामनजी पधार रहे हैं। श्रीसीतामाता का जहाँ जन्म हुआ है, वहीं जनकपुरी जाते हुए रास्ते में सिद्धाश्रम आता है। वहीं बिहार में वामनजी महाराज प्रकट हुए और पधारे हमारे गुजरात में नर्मदा-तट पर भृगु कच्छ तीर्थ में, जिसे लोग भरुच कहते हैं।

वामनजी महाराज धीरे-धीरे चलते हैं पैर में पादुकाएँ हैं, हाथ में कमंडल है, लँगोट पहिना है। वही भाग्यवान् है, जिसका लँगोट शुद्ध है–

वेदान्तवाक्येषु सदा रमन्तो भिक्षान्नमात्रेण च तुष्टिमन्तः।
अशोकवन्तः करुणैकवन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः॥
देहाभिमानं परिहृत्य दूरा दात्मानमात्मन्यवलोकयन्तः।
अहर्निशं ब्रह्माणि ये रमन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः॥

जो व्यक्ति परमात्मा के स्वरूप में रम जाता है, जो भगवान् के नाम में रम गया है, वह भाग्यवान है। शरीर के साथ रमण करने में सुख है–ऐसा मानने वाला भाग्यहीन है। शरीर के साथ तो पशु-पक्षी भी रमण करते हैं। वामनजी महाराज के पास लँगोट के सिवाय कोई वस्त्र नहीं है। मुख पर ब्रह्मतेज है, वही ब्रह्मतेज ललाट में है, आँखों में है। जिसके दर्शन से सत्कर्म की प्रेरणा मिलती है, जिसके दर्शन से मन शुद्ध होता है, जिसके दर्शन से भगवान् याद आते हैं, उसे ब्रह्म तेज कहते हैं। शीतकाल में कई लोग पाक खाते हैं। इससे उन लोगों का तेज बढ़ता है। वह तेज अलग है। ब्रह्मतेज इससे भिन्न है। वामनजी महाराज को जो लोग रास्ते मिलते हैं, वे दर्शन करते हैं, साष्टांग वन्दन करते हैं। परिचय के बिना ही जब प्रणाम करने की भावना जागती है तो समझना कि वहाँ ब्रह्मतेज है।

अनेक प्रदेशों को पवित्र करते हुए वामनजी नर्मदा-तट पर आ पहुँचे। बड़ा मंडप बँधा हुआ है। यज्ञ मंडप में विराजमान भार्गव ब्राह्मण वेदमंत्र बोल रहे हैं, अग्नि में आहुति दे रहे हैं।

तं नर्मदायास्तट उत्तरे बलेर्य ऋत्विजस्ते भृगुकच्छसंज्ञके।
प्रवर्तयन्तो भृगवः क्रतूत्तमं व्यचक्षतारादुदितं यथा रविम्॥

(८-१८-२१)

चारों ओर प्रकाश छा गया है। ब्राह्मणों को आश्चर्य हुआ। क्या सूर्यनारायण नीचे उतर आये हैं? यह कौन आ रहा है? न, न, यह तो लँगोट पहिने हुए हैं, हाथ में कमंडल है, यह तो कोई ब्रह्मचारी आ रहा है।

वामनजी यज्ञ मंडप में पधारे। जैसे ही वामनजी महाराज पधारे सभी खड़े हो गये आनंद प्रसारित हुआ है। ब्राह्मणों में ब्रह्मतेज को मान दिया जाता है, धन को वहाँ मान नहीं है। क्षत्रियों में बल को मान है, वैश्यों में धन को मान है। शूद्रों में अवस्था को मान प्राप्त है। ब्राह्मणों की दिवाली श्रावण मास में पूर्णिमा के दिन है। क्षत्रियों की दिवाली विजयादशमी के दिन है। वैश्यों की दिवाली लक्ष्मीपूजन के दिन और शूद्रों की दीवाली होली के दिन है।

वामनजी महाराज सात वर्ष के हैं। अन्य ऋषि वयोवृद्ध हैं फिर भी सब खड़े हो गये हैं और श्री वामनजी महाराज की जय, वामनजी महाराज की जय–ऐसा जय-जयकार हुआ। राजा बलि के कानों तक आवाज पहुँची। वे दौड़ते हुए आये हैं। वामनजी के दर्शन से आनन्द हुआ। सात वर्ष की बालमूर्ति हैं। श्रीअंग मेघ-सा श्याम है। पाँवों में पादुकाएँ हैं, हाथ में कमंडल है। लँगोट के सिवा अन्य कोई वस्त्र नहीं पहिना है। ब्रह्मतेज दृष्टिगत हो रहा है। यह कोई साधारण संत नहीं हैं। स्वागतम् स्वागतम् पधारिये पधारिये।

वामनजी महाराज को सुन्दर आसन दिया गया है। राजा बलि ने विंध्यावली रानी को आदेश दिया कि ब्रह्मचारी महाराज की पूजा करनी है। आप तुरन्त तैयारी कीजिए। चंदन, श्रीफल, फूलों की माला, पंचामृत–पूजा की सभी सामग्री प्रस्तुत की गयी है। सुवर्ण की झारी में नर्मदा का पवित्र जल लाया गया है। विंध्यावली रानी के साथ अनेक स्त्रियाँ भी ब्रह्मचारी को देखने आयी हैं। स्त्रियों को वामनजी के दर्शन से अतिशय आनंद हुआ है। वे बातें कर रही हैं–इस बालक की माता ने बहुत पुण्य किया होगा। कैसा तेजस्वी दीख रहा है। ऐसा सुन्दर बालक जिस माता की गोद में खेल रहा हो, उसे कैसा आनन्द होता होगा। विंध्यावली रानी वामनजी के चरणों पर जल डालती हैं। बलि महाराज चरणों को हाथों में लेकर पखार रहे हैं। चरण अति कोमल हैं। तलवे लाल-लाल हैं। चरणों में स्वस्तिक का चिह्न है। कमल का चिह्न है। चरणों के नाखून रत्न जैसे हैं। चरणों की सेवा करते हुए बलिराजा को नाखून में अपना मुख दिखाई पड़ा। चरण का तीर्थ, बलि राजा ने मुख में डाला, मस्तक पर रखा। जिसके चरण पखारे जाते हैं, उसका पुण्य नष्ट होता है और जो

चरण पखारता है, उसको पुण्य मिलता है। बलिराजा वामनजी की पूजा करते हैं। उस समय पर सब ब्राह्मण वेदमंत्र बोलते हैं। बलि राजा बार-बार वंदन करते हैं और कहते हैं—महाराज! आपके माता-पिता को मैं वंदन करता हूँ, धन्यवाद देता हूँ। जिनके घर आपका जन्म हुआ, वे आपके माता-पिता बहुत पुण्यशाली होंगे मैंने बहुत से ब्राह्मण देखे हैं, बहुतों की पूजा की है पर आप जैसा ब्राह्मण नहीं देखा है। ब्रह्मतेज से ही विधाता ने आपको बनाया है—

स्वागतं ते नमस्तुभ्यं ब्रह्मन्किं करवाम ते।
ब्रह्मर्षीणां तपःसाक्षान्मन्ये त्वाऽऽर्य वपुर्धरम्।। (८-१८-२८)

आपके दर्शन से मुझे बहुत आनन्द हुआ। आज आपके चरणों का तीर्थ मुझे मिला है। मेरे सभी पाप जल गये। मैं आज पवित्र हुआ। मेरे पितृ आज प्रसन्न हुए होंगे। आज आपकी पूजा का सौभाग्य मुझे मिला। मेरा ऐसा मन है कि अपना सम्पूर्ण राज्य आपको अर्पण कर दूँ।

यद् यद् वटो वाञ्छसि तत्प्रतीच्छ मे त्वामर्थिनं विप्रसुतानुतर्कये।
गां काञ्चनं गुणवद् धाम मृष्टं तथान्नपेयमुत वा विप्रकन्याम्।
ग्रामान् समृद्धांस्तुरगान् गजान् वा रथांस्तथार्हत्तम सम्प्रतीच्छ।।
(८-१८-३२)

जहाँ प्रेम जागता है, वहाँ कुछ भी लेने की इच्छा नहीं होती है, समर्पण की भावना जागती है। वामनजी महाराज कहते हैं—तुम्हारा सब कुछ लेने के लिये ही मैं वामन होकर आया हूँ।

राजा बलि ने कहा—महाराज! गायों का, सुवर्ण का, भूमि का, लक्ष्मी का सभी का दान मैं करता हूँ। आपका विवाह का मन हो तो मैं कन्यादान करने के लिए भी तैयार हूँ। ऐसा जामाता कहाँ मिलेगा? आप जरा भी संकोच न करिये जो माँगेंगे वही दूँगा।

किसी के घर माँगने जाना है तो उसके घर जाकर उसका बखान कीजिये, फिर माँगिये। उसकी प्रशंसा करिये उसके माता-पिता की प्रशंसा करिये। चीनी से भी प्रशंसा मधुर होती है। वामनजी महाराज जगत् को इसका ज्ञान कराते हैं। वामनजी महाराज ने बलिराजा को कहा—राजा! धन्य है। प्रह्लादजी के वंश में तुम्हारा जन्म हुआ है। तुम्हारे दादा प्रह्लादजी अनन्य प्रभु-भक्त थे। पाँच वर्ष के प्रह्लादजी का वचन सत्य करने के लिये स्तंभ से नरसिंह भगवान् प्रकट हुए थे। आपके पिता विरोचन महाराज अति उदार थे। मैंने सुना है कि विरोचन महाराज ने ब्राह्मण को अपने आयुष्य का दान दिया था। आपके परदादा हिरण्यकशिपु तो महान वीर थे। ब्रह्मादिक देवों को उन्होंने पराजित किया था। मुझे ऐसा दीख रहा है कि परदादा हिरण्यकशिपु की शक्ति, दादा प्रह्लादजी की भक्ति और पिता विरोचन की उदारता—सभी गुण आप में सोलह आने उत्तर आये हैं। आप अति उदार

हैं, महान भक्त हैं। बलिराजा को आश्चर्य हुआ–यह कैसा बोल रहा है? है तो सात-आठ वर्ष का बालक और मेरे दादा, परदादा की बातें कर रहा है। बहुश्रुत ब्राह्मण है। बलि राजा ने कहा–महाराज! माँगिये, जो माँगोगे मैं दूँगा। वामनजी बोले–राजा मैं संतोषी ब्राह्मण हूँ। मैं कुछ अधिक लेने नहीं आया हूँ। अपने पैरों से नापकर तीन कदम पृथ्वी का दान लेने के लिए मैं आया हूँ। इतना दो। तुम्हारा कल्याण होगा।

बलि राजा ने सुना। उनको बहुत आश्चर्य हुआ मन में सोचा–अभी छोटी अवस्था के हैं, बुद्धि कच्ची है। महाराज पढ़े हैं पर व्यवहार-ज्ञान नहीं है। माँगना नहीं आया। वामनजी से उन्होंने कहा–आपने बहुत कम माँगा। आप अभी छोटे हैं, बड़े होंगे, विवाह होगा। विवाह के बाद परिवार के पोषण की जिम्मेवारी सिर पर आयेगी। आपके सदृश तपस्वी ब्राह्मण को पैसा माँगने की प्रवृत्ति करनी पड़ेगी तो पंसद नहीं आयेगी। आज आप ऐसा कुछ माँग लीजिए कि जिससे परिवार का अच्छी तरह लालन पालन होता रहे, और आप सारा दिन सेवा करते रह सकें, गायत्री-जप कर सकें। अपना परिचय मैं आपको कैसे दूँ? आत्म-परिचय से पुण्य का नाश होता है, आयुष्य कम होता है। आपका परिचय भले ही कोई दें, आप न दीजिए। अपने मुख से आत्म परिचय न दीजिए। बलि राजा ने कहा–आज मुझे अनिवार्य परिस्थिति के कारण कहना पड़ रहा है, कि इस संसार में मेरी ऐसी प्रसिद्ध है कि जिस ब्राह्मण की मैं पूजा करता हूँ, उसको दान देता हूँ, वह फिर कभी किसी से दान लेने नहीं जाता है। आज आप मेरे घर दान लेने आये हैं। तीन कदम पृथ्वी से क्या होगा? यह बहुत कम है। पुन: आप किसी अन्य के घर दान लेने जायेंगे तो मुझे दु:ख होगा। आपके दर्शन से ही मैं समझ गया कि आप लोभी नहीं, संतोषी हैं, पर यह तो बहुत ही कम है, अभी कुछ और माँगिये।

वामनजी ने यह सुनकर स्मित हास्य किया। वे बोले–राजा, आप तो सब देने के लिये तैयार हैं, पर लेने के लिये मुझे सोचना चाहिए न? अति संग्रह के लिए अगर ब्राह्मण दान लेता है तो यजमान का पाप उसके सिर पर आता है। जिसकी जितनी आवश्यकता है, उतना ही वह ले तो पाप नहीं लगता है। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि क्षत्रिय और वैश्य लोभ करते हैं तो ठीक है पर ब्राह्मण लोभ न करें। ब्राह्मण-साधु अगर लोभ करते हैं तो यह बात प्रभु को पसंद नहीं आती है। साधु-ब्राह्मण के जीवन में पूर्ण संतोष होना चाहिये। मैं संतोषी ब्राह्मण हूँ। अधिक लेकर क्या करूँगा? आज तक मैं किसी के घर दान लेने नहीं गया हूँ पर लाचारी से आपके घर आया हूँ। एक गृहस्थ के घर के आँगन में मैं बैठा था गायत्री संध्या के लिए। मैं गायत्री जप कर रहा था। घर के स्वामी गृहस्थ बाहर से आये, मुझसे कहने लगे–इधर मेरे आँगन में क्यों बैठे हो? आप कौन

हो? मैंने कहा–मैं ब्रह्मचारी हूँ, संध्या कर रहा हूँ। संध्या पूर्ण होने के साथ ही उठकर चला जाऊँगा। गृहस्थ ने कहा–मैं आपको जानता नहीं हूँ। आज कल कई चोर–लफँगे दिन में देख जाते हैं और रात में वे चोरी करने आते हैं। तुम यहाँ से उठ जाओ। संध्या में विक्षेप हुआ तब मुझे बहुत दुःख हुआ। मेरी अपनी जगह नहीं थी इसलिए ऐसा हुआ, ऐसा विक्षेप पड़ा। मेरी अपनी जगह हो तो मैं सारा दिन संध्या कर सकूँ, गायत्री कर पाऊँ। मुझे वहाँ से कोई उठा भी नहीं सकता। अधिक लेकर मैं क्या करूँ? मुझे जब भूख लगती है तब मैं मधुकरी माँगने जाता हूँ। ब्रह्मचारी हूँ। मधुकरी में जो कुछ मिलता है, उससे संतोष मानता हूँ। मुझे अधिक नहीं लेना है। इस जगत् में जितने भी सुख के साधन हैं, संपत्ति हैं, वह एक मनुष्य को दे दी जाय, किन्तु उसको संतोष न हो, विवेक न हो तो उसे शांति नहीं मिलती है। लाभ से लोभ बढ़ता है। बड़े-बड़े राजा लोभ के कारण पाप करते थे, ऐसा मैंने सुना है। मुझे लोभ नहीं करना है मैं ब्राह्मण हूँ।

बलि राजा को थोड़ा गुमान था कि मैं अति उदार हूँ। बहुत दान देता हूँ। वामनजी ने कहा–राजा, तुम्हारे जैसा दान देने वाला जगत् में नहीं है, पर याद रखना कि मेरे जैसा भी दान लेने वाला भी इस जगत् में नहीं है। तुम तो सब कुछ देने के लिये तैयार हो पर मैं अधिक लेना नहीं चाहता हूँ।

बलि राजा को आश्चर्य हुआ। जगत् में पाप बहुत बढ़ गये हैं, पर ऐसे संतोषी, तपस्वी ब्राह्मण भी हैं, इससे ही यह धरती टिक रही है। बलि राजा को आनंद हुआ। उन्होंने कहा–आज तो आपकी इच्छा के अनुसार तीन कदम पृथ्वी का दान दे रहा हूँ–पर मुझे संतोष नहीं हो रहा है। आपको पुनः कभी किसी वस्तु की जरूरत पड़ जाय तो मुझे सेवा का अवसर दीजिएगा। इस घर में जो कुछ है, आपका ही है। वामनजी ने कहा–राजा! आज तीन पग पृथ्वी का दान दो, बाद की बात बाद में करेंगे।

बलि राजा दान का संकल्प करने के लिएं तैयार हुए। शुक्राचार्य यज्ञ-मंडप में विराजमान थे। टकटकी लगाकर, अपलक वामनजी के दर्शन कर रहे थे–सोचने लगे कि यह कौन होगा? शुक्राचार्य महान् ज्ञानी, तपस्वी ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण थे। वे सोचते हैं–यह कोई साधारण ब्राह्मण नहीं है, परन्तु परमात्मा स्वयं हैं। उन्होंने बलिराजा से कहा–

एष वैरोचने साक्षाद् भगवान्विष्णुरव्ययः।
कश्यपाददितेर्जातो देवानां कार्यसाधकः॥ (८-१९-३०)

राजन्! दान देने की त्वरा न कीजिए। इस ब्रह्मचारी के कदम कैसे हैं, यह तुम नहीं जानते हो। यह जैसा दीख रहा है, वैसा नहीं है। देवों के कार्य को सिद्ध करने के लिए आदिनारायण

परमात्मा कश्यप ऋषि के घर पुत्र रूप में अवतरित हुए हैं। ये साक्षात् परमात्मा हैं। तुम्हारा सारा राज्य इनके दो कदमों में समाविष्ट हो जायगा। तीसरे कदम की जगह ही नहीं रहेगी।

दान देने का मुख्य अधिकार गृहस्थ को दिया गया है। साधु अधिक इकट्ठा न करें और दान लेने की इच्छा न करें। साधु-संन्यासी , ब्रह्मचारी कोई भी आँगन में आ जायँ, तो उनका स्वागत करना गृहस्थ का धर्म है। कर्म से जो कुछ भी धन आता है, उसका पंचमांश धर्म के लिए रखिये। सौ रुपये आते हैं तो बीस रुपये दान के लिए अलग रखिये। धन की शुद्धि दान से होती है। तन की शुद्धि स्नान से होती है और मन की शुद्धि परमात्मा के ध्यान से होती है। बहुत दान करने से मन की शुद्धि नहीं होती है। संसार का ध्यान करने से मन बिगड़ गया है। परमात्मा का ध्यान करने से, परमात्मा के मंगलमय स्वरूप का ध्यान करने से बिगड़ा हुआ मन शुद्ध होता है। दान देने से धन की शुद्धि होती है। प्रत्येक धंधे में पाप होते हैं। जिसका धन शुद्ध नहीं है, उसका व्यवहार शुद्ध नहीं हो सकता है। भागवत में आज्ञा दी गयी है कि गृहस्थ अपनी आय का पाँचवाँ हिस्सा धर्म के लिए रखे किन्तु कलियुग में मँहगाई के कारण, मनु महाराज ने (जिनको इसका ध्यान था–पहिचान थी, कि पाँचमाँश धर्मादा में देने से लोगों को त्रास होगा) दशमाँश देने को कहा। सौ रुपये घर में आते हैं तो दश रुपये धर्म में देना चाहिए। परोपकार में, भगवत् सेवा में अपने हाथों से इसका सदुपयोग कीजिए। अपने हाथ से जितना व्यय करेंगे उतना साथ में जायगा। बैंक में रखा साथ में नहीं जायगा, परन्तु दान भी विवेक से दीजिए। अति दान भी अच्छा नहीं है। शुक्राचार्य बलिराजा को समझाते हैं–

धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च।
पञ्चधा विभजन्वित्तमिहामुत्र च मोदते॥ (८-१९-३७)

धन का एक भाग धर्म के लिए रखना चाहिए। धन का एक भाग मौज के लिए व्यय करना क्षंम्य है। भागवत में 'कामाय' शब्द है। मौज शौक में खर्च करिये परन्तु अधिक व्यय न कीजिए। कई लोगों का धन फैशन के लिए ही खर्च हो जाता है तथा कई लोगों का धन व्यसन में व्यय हो जाता है। धन का दुरुपयोग विष के समान है। मौज-शौक में थोड़ा खर्च कीजिए। धन का एक भाग कीर्ति के लिए भी व्यय कीजिए। बारह वर्षों के बाद काल परिवर्तित होता है। आज जितना न आता है, इतना नहीं आयगा। ध्यान रखिए। कि वृद्धावस्था में सन्तानों के पास माँगने का समय न आये। वृद्धावस्था में धन होगा तो सन्तति सेवा करेगी। पास में धन नहीं होता तो घर में दुर्दशा होती है।

एक वृद्ध अन्तकाल पास में हैं–ऐसा सोच कर अपना सब कुछ लड़कों के सुपुर्द कर देता है। बाद में वह तो ठीक हो गया, परन्तु पास में धन न होने के कारण दुःखी हुआ। लड़कों से

धन माँगना पड़ा। अच्छे कामों में धन खर्च करने की उसे जरूरत थी परन्तु लड़कों ने ना कह दी। वृद्ध दुःखी हुआ। उसका एक परम मित्र था। मित्र ने सलाह दी–प्रभु ने भजन करने के लिए तुम्हारा आयुष्य बढ़ाया है। मैं तुम्हें एक युक्ति बतलाता हूँ एक लकड़ी की पेटी मेरे पास है। उसमें पत्थर भर कर घर ले जाओ। लड़कों से कहना कि गुप्त धन रखा था, वह आ गया है। अब मैं गंगा-तट पर जाकर रहूँगा।

वृद्ध ने उसी तरह बातें बनाकर ढोंग रचाया। लड़कों से कहा–पेटी आ गई-पेटी आ गई। अब मुझे गंगा-तट पर जाना है। लड़कों ने सोचा कि इसमें दस-पन्द्रह हजार तक की रकम तो होगी ही। वृद्ध बाहर जायगा तो धन खर्च कर देगा। वृद्ध घर में रहेगा तो पेटी भी घर में रहेगी। सब उसके पैरों में गिर पड़े। घर में रहने का आग्रह करने लगे। बड़े लड़के की बहू वृद्ध को समझा-बुझाकर पेटी अपने साथ ले गई। लड़का और बहू अब हर रोज वृद्ध को पैसा देते हैं खर्च के लिए। रोज उनकी सेवा करते हैं। एक दिन बहू ने पूछा–बापू यह सन्दूक किसे देंगे? वृद्ध ने कहा–मेरी अंतकाल की सेवा तुम कर रही हो इससे तुम्हें ही देना है।

सुर नर मुनि सब कै यह रीती, स्वारथ लागि करैं सब प्रीति।

वृद्ध का आदर-सम्मान बढ़ गया। उसकी बहुत सेवा-चाकरी की गई। एक दिन वृद्ध की मृत्यु हो गई बहुत दान दिया गया। सब व्यवहार पूरा हो गया। सगे-स्नेही सब अपने घर चले गये। पेटी खोल कर देखी गयी तो भीतर पड़े हुए पत्थर मिले। संतान माता-पिता की सेवा करेगी–ऐसी आशा रखने का यह युग नहीं है। विवाह होने के साथ लड़कों की बुद्धि बिगड़ जाती है। कई तो माता-पिता को अनाथाश्रम में भर्ती कर आते हैं। इसलिए भविष्य की सोचकर थोड़ा संग्रह कीजिये।

शुक्राचार्य बलि राजा को समझाते हैं–हाथ में आये धन का विवेक से उपयोग कीजिए। ऐसा दान न कीजिए कि दान देने के बाद घर के लोग दुःखी हो जायँ। दान विवेक से देना है। इस ब्रह्मचारी को तुम तीन कदमों तक की धरती का दान दोगे तो तुम्हारे लिये बैठने की जगह न रहेगी। बलि राजा ने कहा–महाराज! एक बार मैंने वाणी से जो दान दिया, अब तो जल छोड़ना ही बाकी है। अब न दूँगा तो मुझे झूठ बोलने का पाप लगेगा। असत्य के समान कोई पाप नहीं है। शुक्राचार्य समझाते हैं–

स्त्रीषु नर्मविवाहे च वृत्त्यर्थे प्राणसंकटे।
गोब्राह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम्।। (८-१९-४३)

अति दुःख में–विपत्ति में झूठ बोलना चलता है। यह शुकदेवजी नहीं बोल रहे हैं। दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य की वाणी है। वे बोलते हैं। अति दुःख में, थोड़ा झूठ बोलने में हर्ज नहीं है।

ऐसे वचन निन्दनीय नहीं है। प्राण संकट में हों, गायों के लिए, ब्राह्मणों के लिए, किसी के विवाह के निश्चित करने में सहायक हो, तो ऐसा झूठ बोलने में हर्ज नहीं है। आपको कोई पूछने लगे कि–कन्या कैसी है? आप जानते हैं कि कन्या शलिग्राम भगवान् जैसी है, पर आप एकदम सच कह दें कि काली है, तो लड़के वाले न कर देंगे। वहाँ विवेक से कहना जरूरी है। किसी का विवाह हो रहा हो तो थोड़ा झूठ बोलना क्षम्य है।

शुक्राचार्य बलिराजा को समझा रहे हैं–यह तो तुम्हारे लिए प्राण-संकट आया है। तुम इन्कार कर दो और अगर तुम दान देना चाहते हो तो अपने कदम से नापकर दान देना। यह ब्रह्मचारी धरती को नापेगा तो अनर्थ करेगा। बलि राजा वंदन करके कहते हैं–आपने मुझे सुन्दर बोध किया है पर मैं क्या करूँ? मैं वैष्णव हूँ। प्रह्लादजी के वंश का हूँ। वैष्णवों का ऐसा नियम है कि ठाकुरजी की सेवा के बाद ठाकुरजी के चरणों में तुलसीजी अर्पण करते हैं और भगवान् की प्रार्थना करते हैं–आज से मैं आपका हुआ। मेरा शरीर इन्द्रियाँ प्राण, धन सर्वस्व आपको अर्पण करता हूँ। मैं शरण में आया हूँ। मैं आपका हूँ कृष्णः तवास्मि–वैष्णव गले में तुलसी की कंठी पहिनते हैं। उनकी ऐसी भावना रहती है कि अब यह शरीर श्रीकृष्ण को अर्पण हुआ है। अब यह शरीर भोग के लिये नहीं, भगवान् के लिए है।

बलिराजा कहते हैं–मैं प्रह्लादजी के वंश का हूँ। अभी तक मैं मानता था कि यह कोई ब्राह्मण का लड़का है। आपने आज कहा कि ये तो परमात्मा पधारे हैं। अब तो मैं अपना सर्वस्व अर्पण करूँगा। भले ही, मैं दरिद्री हो जाऊँ। ऐसा सुयोग फिर से नहीं मिलेगा। संपत्ति को सन्मार्ग में उपयोग करने से बड़ी विपत्ति आये तो भी उस विपत्ति में मन शांत रहता है। मैंने संपत्ति का दुरुपयोग नहीं किया है। परमात्मा को सर्वस्व अर्पण करने के बाद मैं दरिद्री हो जाऊँगा तो जगत् में मेरी कीर्ति रहेगी। आप बतायें कि दान देने वाला बड़ा कि दान लेने वाला बड़ा?

अरे, दान देने वाला बड़ा है। जिनका विवाह हो रहा है वे वर राजा बहुत अकड़ कर चलते हैं। वे सोचते हैं कि मैं वरराजा हूँ, इसलिए बहुत बुद्धिमान हूँ। मेरी सवारी निकलेगी, सब मेरी पूजा करेंगे, किन्तु वरराजा में अक्ल नहीं है। वह नहीं जानता कि भिखारी और वरराजा समान हैं। भिखारी रोते-रोते भीख माँगता है। वर राजा हँसते, हुए बाजे ढोल बजा-बजाकर भीख माँगने आते हैं, तुच्छ तो जामाता है। कन्या का दान देने वाला पिता तो बहुत बड़ा है। कन्यादान महान् पुण्य है। दान देने वाले का हाथ ऊँचा रहता है। दान लेने वाले का हाथ नीचा रहता है। बलि राजा ने कहा–लोग मेरी प्रशंसा करेंगे। कुछ भी हो, मैं इस ब्राह्मण को तीन कदम की धरती का दान दूँगा। गुरुजी आप संकल्प कराइए। शुक्रचार्यजी ने मनाकर दिया वे बोले कि मुझे दीख रहा है कि तुम्हारा राज्य

जायगा। जिसमें यजमान का कल्याण नहीं है, जो यजमान का कल्याण-सूचक नहीं है, वैसा संकल्प मैं नहीं करा सकता हूँ। यजमान के हित का जो विचार करता है, वह पुरोहित कहाता है।

जब शुक्राचार्य ने मना कर दिया, तब वामनजी ने कहा-राजा! मैं सब कुछ पढ़-लिख कर आया हूँ। मुझे संकल्प करवाना आता है। वामनजी संकल्प करवाते हुए तिथि व नक्षत्रों का उच्चारण करते हैं। दान लेने वाले में महाविष्णु के दर्शन करने होते हैं। भगवान् इस स्वरूप में लेने आये हैं। महाविष्णु स्वरूप ब्राह्मणाय-ऐसा वामन जी बोलते हैं। उन्होंने बलि राजा से कहा-राजन्, झारी में से थोड़ा जल मेरे हाथ में डालियें। राजा ने झारी को टेढ़ी किया पर जल बाहर नहीं निकल रहा था। शुक्राचार्य झारी के भीतर जाकर बैठ गये थे। वामनजी मंहाराज समझ गये। उन्होंने दर्भ की एक तीली भीतर डाली कि शुक्राचार्य की एक आँख फूट गई। शुक्राचार्य जी ने सोचा कि अधिक बिघ्न डालूँगा। तो मुझे ये अन्धा कर देंगे।

मानव सजा देता है, तब निष्ठुर होकर देता है, किन्तु जब भगवान् सजा देते हैं, तब दया रखकर देते हैं। वामनजी ने शुक्राचार्यजी की दोनों आँखें नहीं फोड़ीं, एक ही फोड़ी है। रामायण में जयंत की कथा आती है। जयंत का अपराध अक्षम्य था। फिर भी श्रीरामचन्द्रजी ने जयंत की एक ही आँख फोड़ी है। वामनजी महाराज शुक्राचार्यजी की एक आँख फोड़कर सावधान करते हैं-आप ब्रह्मज्ञानी हैं, तपस्वी हैं, पर दो आँखों से जगत् को देखते हैं, इससे आपका ज्ञान बह जाता है। ज्ञान को टिकाये रखना है तो एक ही आँख से जगत् को देखिये। दोनों आँखों से जगत् को देखना ही तो विषमता है। एक आँख से जगत् को देखना ही समता है। सभी को एक ही आँख से देखिये। आप जिस देव की पूजा करते हैं, जिस देव के नाम का जप करते हैं, वही देव सभी में विराजमान हैं, ऐसा सद्भाव रखकर सभी को एक ही आँख से देखिये। आँख में विषमता आती है तो ज्ञान बह जाता है।

शुक्राचार्यजी झारी में से निकल आये। दान संकल्प परिपूर्ण हुआ। 'परमात्मनः प्रियताम् न मम' फिर वामनजी ने स्वरूप का विस्तार किया-

तद् वामनं रूपमवर्धताद्भुतं हरेरनन्तस्य गुणत्रयात्मकम्।
भूःखं दिशो द्यौर्विवराः पयोधय-स्तिर्यङ्नृदेवा ऋषयो यदासत॥

(८-२०-२१)

हजार हाथ हैं। वामनजी के चरण धरती में हैं, पर उनका मस्तक ब्रह्मलोक में गया है। वामनजी के श्रीअंग में सभी देव-ऋषी दीख पड़ते हैं।

वामनजी ने सारा जगत् व्याप्त कर लिया है। जगत् में व्याप्त होकर जगत् के बाहर वामनजी दस-अँगुल विराजमान हैं। वेदों में वर्णन आता है कि परमात्मा जगत् में सभी जगह हैं और जगत् के बाहर दस अँगुल हैं। भागवत के दूसरे स्कंध में वर्णन है—

सर्वं पुरुष एवेदं भूतं भव्यं भवच्च यत्।
तेनेदमावृतं विश्वं वितस्तिमधितिष्ठति॥ (२-६-१५)

दस उँगलियों से वंदन होता है। वेद परमात्मा का वंदन करते हुए थक जाते हैं। भगवान् को बार-बार वंदन कीजिए। दो-तीन मिनट हों कि ठाकुरजी के दर्शन करके, वंदन कीजिए। परमात्मा का स्मरण कीजिए। वे जैसे हैं, वैसे आपको दिखाई देंगे।

विशाल वामनजी का दिव्य स्वरूप है। एक ही कदम में पृथ्वी आ गई है, दूसरा कदम उठाया, जिसे वह ब्रह्मलोक तक ले गये हैं। ब्रह्माजी वामनजी के चरण की पूजा करते हैं। दो ही कदमों में बलिराजा का समग्र राज्य आ गया है। तीसरे कदम को रखने की जगह नहीं है, तब उन्होंने बलिराजा से कहा—राजन्! तीन कदम पृथ्वी के दान का संकल्प किया है। संकल्प के अनुसार जो दान नहीं देते, उनकी दुर्गति होती है। ब्राह्मण से कपट करते हो? अरे! बलिराजा कपट कर रहे हैं कि वामनजी कपट कर रहे हैं? दान का संकल्प किया, तब छः वर्ष का बाल स्वरूप था और धरती नापते हैं तब विराट् स्वरूप प्रकट किया है। वामनजी ने कहा—राजा! अभी मेरा एक कदम बाकी है। बलिराजा थोड़े घबराये। बलि बंधन में आ गये हैं। प्रभु ने सेवकों को आज्ञा दी—बलि को बाँध लो। बलि महाराज ने ऐसा कहा था कि दान लेने वाला तुच्छ है, देने वाला बड़ा है। बलि में थोड़ा अभिमान था कि मैं बड़ा हूँ। उन्होंने परमात्मा को धन दिया, मन दिया पर अभिमान न दिया, तन न दिया। अभी तक कदम बाकी है। बलिराजा को बाँधने के लिए परमात्मा जब तैयार हुए तब विन्ध्यावली रानी आयीं। उन्होंने परमात्मा की बार-बार वंदन करके स्तुति की—

क्रीडार्थमात्मन इदं त्रिजगत् कृतं ते स्वाम्यं तु तत्र कुधियोऽपर ईश कुर्युः।
कुर्तः प्रभोस्तव किमस्यत आवहन्ति त्यक्तह्रियस्त्वदवरोपितकर्तृवादाः॥
(८-२२-२०)

यह संसार आपकी लीला-भूमि है। आप स्वामी हैं। कोई भी मानव स्वामी नहीं हो सकता। जीव तो तन का भी स्वामी नहीं है, तो धन का, घर का स्वामी कैसे हो सकता है? स्वामी तो परमात्मा हैं, यह मानव स्वामी नहीं है। वह तो केवल मुनीम है। उसे प्रबन्ध करने का काम दिया गया है। अज्ञान से ही जीव ऐसा समझता है कि मैं ही स्वामी हूँ। घर में सेवक बनकर रहना। घर में स्वामी बनकर रहने वाला दुःखी होता है। आपके घर के स्वामी प्रभु हैं। प्रभु को स्वामी मानिये,

तो समग्र चिंता प्रभु को होगी। विन्ध्यावली ने कहा—आपको कौन दान दे सकता है? मेरे पतिदेव के बोलने में गलती हुई है। हमने आपको कोई दान नहीं दिया है। जो कुछ था, आपके चरणों में अर्पण किया है, आपका ही आपको अर्पण किया है। उनको बोलना नहीं आया, मैं क्षमा माँगती हूँ। मेरे पतिदेव को न बाँधियेगा।

बलिराजा घबरा गये थे। विन्ध्यावली ने उन्हें धीरज बँधाया और समझाया—आपके राज्य में इनके दो कदम समाविष्ट हो गये। अभी शरीर शेष है। पति के शरीर पर पत्नी का अधिकार होता है। पत्नी की अनुज्ञा के बिना पति अपना शरीर नहीं दे सकता। पति-पत्नी मिलकर दिव्य तत्त्व बनता है।

विन्ध्यावली रानी ने कहा—भगवान् के चरणों में आप वंदन कीजिये। दाहिने चरण में आप वंदन कीजिये। बाँये चरण में मैं वंदन करती हूँ। किसी भी सत्कर्म की समाप्ति वंदन से होती है। बलिराजा को सूक्ष्म अभिमान है, अकड़े खड़े हैं। दान देने के बाद अहम् बढ़ जाता है। दान देने के बाद दीनता आती है। हृदय सरल बनता है और अभिमान मरता है, तब ही दान सार्थक होता है। दान देने के बाद अगर अभिमान बढ़ता है, तो दान भी पतन लाता है।

बलि जीवात्मा है, श्रीवामनजी महाराज परमात्मा हैं। यह जीव जब बलवान बनता है, तब परमात्मा आँगन में आते हैं। बलवान अर्थात् पहलवान नहीं। जिसका प्रेम-बल बढ़ा है वही बलवान है। द्रव्य-बल, बुद्धि-बल, ज्ञान-बल, शरीर-बल सबकी जब हार होती है तब प्रेम-बल की विजय होती है। जो प्रेम-बल बढ़ाता है, जो परमात्मा की सेवा कीजिए। शरीर में जो शक्ति है, उसे शुक्र कहते हैं। शक्ति की जो सेवा करत है, शक्ति का संग्रह करता है, जो प्रत्येक इंद्रिय से संयम रखता है, उसका प्रेमबल बढ़ता है। मानव की आँखों में बहुत शक्ति है, परन्तु मानव चाहे किसी से आँख मिलाता है। उसकी एक-एक इन्द्रिय में दिव्य शक्ति है। शक्ति का दुरुपयोग बड़ा पाप है, शक्ति का सदुपयोग ही पुण्य है। जो शुक्राचार्य की सेवा करता है, प्रत्येक इन्द्रिय का संयम रखता है, वह ही परमात्मा से प्रेम कर सकता है। प्रेमबल जब बढ़ता है, तब परमात्मा वामन बनकर आते हैं।

वामन शब्द का अर्थ होता है ठिगना! यह जीव जब ईश्वर के साथ अतिशय प्रेम करता है, तब वे चार कदम नहीं माँगते हैं, दो कदम भी नहीं माँगते हैं, किन्तु तीन कदम माँगते हैं। तन, मन और धन—ये तीन कदम हैं। प्रभु की सेवा में शरीर को कष्ट दीजिये। शरीर को बहुत सुख न दीजिए। शरीर से बहुत लाड़ न कीजिये। भगवद् सेवा में—परोपकार में शरीर को कष्ट दीजिए। तन से सेवा कीजिये, मन से सेवा कीजिए। कई लोग धन से सेवा करते हैं पर तन से सेवा नहीं करते हैं। सिर्फ धन से सेवा करने वाले का अभिमान बढ़ता है। तन से सेवा करने से अभिमान मरता

है। हां, धन से सेवा करने पर धन के प्रति ममत्व घटता है। लक्ष्मी मेरी नहीं है, लक्ष्मी नारायण की है, तब ऐसा भाव आता है। लक्ष्मी मेरी है—ऐसा समझने वाले पर मार पड़ती है। लक्ष्मी नारायण की है, ऐसा भाव रखने पर लक्ष्मीजी कभी जीव को नारायण की गोद में बैठा भी देती हैं। प्रभु ने धन दिया है तो धन से सेवा कीजिये। भगवद् सेवा में परोपकार में, इसका सदुपयोग कीजिये।

परमात्मा की सेवा मन से कीजिये। मन से सेवा करने पर सेवा में थकान नहीं होगी। प्रेम से भावपूर्वक सेवा कीजिये। कोई भी काम प्रेम से करने से थकान नहीं होती है। मन में ऐसी शक्ति होती है। कई लोग सेवा-पूजा के बाद कहते हैं—अब मैं ऊब गया हूँ! थक गया हूँ! सेवा करने पर थकने वाला सेवा नहीं करता वह तो ढोंग करता है। प्रेम से प्रभु-नाम के जप करते-करते भावपूर्वक सेवा करने से थकान नहीं होती। भगवान् आपको ऐसी सेवा करने की शक्ति प्रदान करेंगे। परमात्मा तन, धन और मन—तीनों चीजें माँगते हैं। ईश्वर को जीव देता है पर थोड़ा अपने लिए रख कर देता है। बलि राजा ने धन दिया, मन दिया पर तन नहीं दिया। जब बलि राजा तन अर्पण करते हैं, तब वे वस्तुत देहाभिमान अर्पित करते हैं। समर्पण करने पर मैंने दिया है—यह भूल जाइए। आप जब कभी अच्छा कार्य करते हैं, तब अन्त में संकल्प करना पड़ता है। परमात्मनः प्रियताम् न मम। कहकर जल छोड़ना पड़ता है। इसका अर्थ है—मैंने कुछ भी किया नहीं है। सत्कर्म करने पर, दान देने पर जिसे याद रहता है कि मैंने दिया है—उसका दान कृष्णार्पण नहीं हुआ है। जो कृष्णार्पण नहीं हुआ है। जो कृष्णार्पण करता है उसे याद ही नहीं आता कि मैंने दिया है।

आप जब किसी को भी दान देते हैं, तब श्रीकृष्ण स्मरण करते हुए ऐसी भावना रखिये—मेरे बालकृष्णलाल देते हैं। यह सब लाला का है। आप जब देते हैं, तब लेने वाले में परमात्मा का दर्शन करके दीजिये। आप जब देते हैं, तब परमात्मा श्रीकृष्ण देते हैं, ऐसी भावना से दीजिये। यों आपको दान का हजार गुना फल प्राप्त होगा। दान लेने वाले भी भगवान्, दान देने वाले भी भगवान्—मैं तो हाथ जोड़कर खड़ा हूँ—ऐसे सद्भाव से दीजिये।

बलि में सूक्ष्म अभिमान था और इसी अभिमान के कारण वे अकड़कर खड़े थे। बलि नम्र नहीं होते हैं, तभी प्रभु को वे प्रिय नहीं लगते। विन्ध्यावली रानी कहती हैं—ये साक्षात् परमात्मा है। आप प्रणाम करिये। प्रभु से कहिये कि एक कदम बाकी है, उसे मेरे सिर पर रखिये। दसवें स्कन्ध में एक पद है, गोपियाँ भगवान् को मनाती हैं और कहती हैं—

करसरोरुहं कान्त कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम्। (१०-३१-५)

अपना हाथ मेरे सिर पर रखिये। मस्तक में बुद्धि है और बुद्धि में काम बैठा है। वही श्रीकृष्ण मिलन में बिघ्न लाने वाला है। जप-तप के द्वारा शरीर से काम निकल जाता है। इन्द्रियों

में से वह निकलता है, पर बुद्धि में सुप्त रहता है। बुद्धि में बैठा हुआ काम दूसरे जन्म में जाग उठता है। सद्‌गुरुदेव कृपा करके मस्तक पर हाथ रखते हैं, तब बुद्धिगत काम का विनाश होता है। मानव साधन करता है किन्तु सद्‌गुरु की कृपा होती है, तब ही बुद्धि से काम निकलता है। बुद्धि में बैठा काम पुनर्जन्म का कारण बनता है।

विन्ध्यावली के सत्संग से बलि राजा का अभिमान उतर गया। बलि को होश आया। तब बलि महाराज सद्‌भाव से भगवान् के चरणों में वंदन करते हैं और कहते हैं—मैं तो मात्र वंदन करता हूँ। मैंने कुछ भी नहीं दिया है। इस जगत् में जो कुछ है, उसके मालिक आप हैं। आपको कौन दान दे सकता है? मुझ से भूल हुई है। एक क़दम बाकी है उसे आप मेरे मस्तक पर रखिए।

भगवान्, वामनजी के मस्तक पर चरण रखते हैं। बलि बहुत भाग्यवान हैं। देव-गंधर्व बलि को धन्यवाद देते हैं। परमात्मा के चरण इसके मस्तक पर आये। दैन्य आता है, तब प्रभु प्रसन्न होते हैं। बलि महाराज अब दीन बने हैं। परमात्मा का हृदय आर्द्र हुआ। परमात्मा ने बलि राजा से कहा—स्वर्ग का राज्य मैंने देवों को दिया है। पाताल का राज्य मैं तुम्हें देता हूँ। तुम पाताल पर राज्य करो। तुमने सर्वस्व अर्पण क़िया है। मैं तुम्हें क्या दूँ? आज से मैं तुम्हारे द्वार पर पहरा दूँगा।

४०– लक्ष्मी से भेंट

बलिराजा पाताल में गये। तन, मन धन से सेवा-स्मरण करते हुए जो तन्मय बनता है, भगवान् उसके घर पहरा देते हैं। इन्द्रियाँ शरीररूपी घर के दरवाजे जैसी हैं। आँख में श्रीकृष्ण, काम में श्रीकृष्ण, मुख में श्रीकृष्ण, मन में श्रीकृष्ण—प्रत्येक इन्द्रिय में प्रभु को पधराइये। आप जिस इन्द्रिय से प्रभु-भक्ति नहीं करेंगे, उस इन्द्रिय से जाने-अनजाने पाप होता रहेगा।

वक्ता जब कथा करता है, तब श्रीकृष्ण का स्मरण करते हुए बोलता है। श्रोता ज़ब कथा सुनते हैं तब भगवान् में दृष्टि रखकर, भगवान् में कान रखकर भगवान् में मन रखकर कथा श्रवण करते हैं। कथा में कई लोग कान से भक्ति करते हैं, पर आँख से नहीं करते। चारों ओर देखते हैं। आँखे भक्ति नहीं करेंगी तो चंचल होंगी, पाप क़रेंगी। प्रत्येक इन्द्रिय से भक्ति करने की आदत डालिये।

तन, मन और धन से जो सेवा-स्मरण करते हैं, तन्मय बनते हैं, उनकी एक-एक इन्द्रिय के द्वार पर भगवान् विराजमान रहते हैं जहाँ परमात्मा विराजमान हैं, वहाँ काम नहीं आता है। मानव जिस इन्द्रिय से भक्ति नहीं करता है, उस इन्द्रिय से काम भीतर प्रविष्ट हो जाता है और उस इन्द्रिय द्वारा पाप होता है। काम बहुत बलवान् है। काम जीव को ठगता है, मारता है, इससे उसे मार कहते हैं।

बलि महाराज एक-एक द्वार में प्रभु चतुर्भुज नारायण के दर्शन करते हैं। जहाँ वे दृष्टि डालते हैं, वहाँ भगवान् का स्वरूप देखते हैं। कान श्रीकृष्ण कथा सुनते हैं। मन में परमात्मा का स्वरूप स्थिर हुआ है। एक-एक इन्द्रिय के द्वार में प्रभु विराजमान हैं, बलिराजा को स्वर्ग से भी अधिक पाताल में आनंद आ रहा है। सब प्रसन्न हैं, देवों को स्वर्ग का राज्य मिला, इससे प्रसन्न हैं। पर एक माता महालक्ष्मीजी वहाँ नाराज हैं। बैकुण्ठ में माताजी अकेली विराजमान हैं। माता की प्रसन्नता नहीं हैं। उनका मन नहीं लग रहा है। एक दिन उन्होंने नारदजी से पूछा—नारद! तुम कुछ जानते हो। भगवान् कहाँ विराजमान हैं? नारदजी ने हाथ जोड़कर कर कहा—बलिराजा के घर दान लेने गये थे और बंधन में आ गये हैं। मैंने ऐसा सुना है कि बलिराजा के द्वार पर हाथ में लकड़ी लेकर सिपाही के समान खड़े रहते हैं और पहरा देते हैं। लक्ष्मीजी ने पूछा घर कब पधारेंगे? नारदजी ने कहा—बलिराजा जब अनुमति देंगे, तब ही प्रभु पधारेंगे। परमात्मा बलि राजा के अधीन हुए हैं।

माता महालक्ष्मीजी ने लीला की। ब्राह्मण-पत्नी का रूप उन्होंने धारण किया। बहुत सादा शृंगार किया और बलिराजा के दरबार में आयीं। जहाँ नारायण विराजमान रहते हैं, वहाँ बिना निमंत्रण लक्ष्मीजी पधारती हैं।

आजकल बहुत से लोग धन के पीछे पागल हैं। लक्ष्मीजी महान् पतिव्रता हैं। अकेली किसी के घर नहीं जाती हैं और जाती भी हैं तो उल्लू पर बैठकर जाती हैं और रुलाती हैं। जिसके घर पर लक्ष्मीजी, नारायण के साथ पधारती हैं, उसे बहुत शांति देती हैं। माताजी से कहिये—माता! आप अकेली नहीं पर नारायण के साथ पधारिये। जो नारायण को पाते हैं, लक्ष्मीजी उनके घर गरुड़ पर बैठकर बिना निमंत्रण के पधारती हैं। लक्ष्मीजी जिसके घर गरुड़ पर बैठकर जाती हैं, उसे बहुत शांति मिलती है।

बलि महाराज लक्ष्मीजी को नहीं पहिचान सके परन्तु बलिराजा ने बहुत विनय से पूछा—आप कौन हैं? क्यों आयी हैं? लक्ष्मीजी ने कहा—मैं ब्राह्मण की पत्नी हूँ। मेरे माता-पिता नहीं हैं, भाई भी नहीं है। पीहर में जाने की इच्छा होती है, तब कहाँ जाऊँ? मैंने सुना है कि बलि राजा की कोई बहिन नहीं है। मैं तुम्हारी धर्म की बहिन होने के लिए आयी हूँ। तुम मेरे धर्म के भाई हो जाओ न! माताजी ने शृंगार नहीं किया था, पर उनका तेज कहाँ छिप सकता था? बलि राजा ने सोचा—ये लक्ष्मी जैसी दीख रही हैं। ये कौन होंगी? बलि राजा ने लक्ष्मीजी को प्रणाम किया और कहा—आज से मैं आपका छोटा भाई हुआ। आप मेरी बड़ी बहिन हैं। यह तुम्हारा पीहर हुआ। इस घर में जो कुछ है, तुम्हारा है। जरा भी संकोच न रखियेगा।

बलि महाराज के घर साक्षात् लक्ष्मीजी पधारी हैं। जब से लक्ष्मीजी पधारी हैं, सारा गाँव सुखी हो गया है। गाँव में कोई दीन-हीन नहीं रहा। कोई रोगी नहीं रहा। किसी ने झगड़ा नहीं किया। बलि महाराज को आश्चर्य हुआ। सोचने लगे-ये बड़ी बहन जबसे आई हैं, तब से मैं सुखी हुआ। ये यहीं रह जायँ तो अच्छा है। सब सुख में हैं, आनन्द में हैं पर माताजी का मन नहीं लग रहा है। सोचती हैं कि स्वामी हाथ में लकड़ी लेकर सिपाही जैसे खड़े रहते हैं। यह माताजी से सहन नहीं होता। ये बन्धन में हैं। कोई अवसर आ जाय तो मैं इनको बन्धन से छुड़ा लूँ।

सावन की पूर्णिमा का दिन आ गया। लक्ष्मीजी ने बलि राजा से कहा-भाई! आज रक्षाबन्धन है। मैं तुम्हारे लिये सुन्दर राखी लायी हूँ। बलि राजा बहुत भाग्यवान् हैं। जगन्माता महालक्ष्मी उनके हाथ में राखी बाँधती हैं। बलि राजा को आनन्द हुआ। अब तो मुझे काल का भी भय नहीं है। मैं निर्भय हूँ। बलि राजा ने लक्ष्मीजी के चरणों में बार-बार वंदन करके कहा-बड़ी बहिन! आप जब से आयी हैं, सारा गाँव सुख में रहता है। आज आपने मेरे हाथ में राखी बाँधी है। मेरा धर्म है कि आपको कुछ देना चाहिये। आपके घर में क्या है, क्या नहीं है, मैं नहीं जानता पर मेरी बहुत इच्छा है कि जो आपके घर न हो वह माँग लीजिये।

लक्ष्मीजी ने कहा-मेरे घर में सब कुछ है पर एक नहीं। बलि राजा ने कहा-जो नहीं है, वही माँग लीजिये। आज मुझे देना ही है। बहिन जब राखी बाँधती है, तब खाली हाथ नहीं लौटती है। लक्ष्मीजी ने कहा-भाई, तुम्हारे द्वार पर जो पहरा दे रहा है, उसे तुम सदैव के लिये स्वतन्त्र कर दो। बलि राजा ने पूछा-बहिन, मेरे द्वार पर पहरा देने वाले तुम्हारे कुछ लगते हैं क्या?

चतुर्भुज स्वरूप धारण करके लक्ष्मीनारायण साक्षात् प्रकट हुए। लक्ष्मीनारायण के दर्शन करते हुए बलि राजा को अत्यन्त आनन्द हुआ। उन्होंने लक्ष्मीनारायण की पूजा की। बलि के बंधन से छुड़ाकर परमात्मा के साथ लक्ष्मीजी बैकुण्ठ गयीं-

क्रियमाणे कर्मणीदं दैवे पित्र्येऽथ मानुषे।
यत्र यत्रानुकीर्त्येत तत् तेषां सुकृतं विदुः॥ (८-२३-३१)

परम पवित्र वामन चरित्र की यह कथा वक्ता-श्रोता के पापों को जलाने वाली है। पितृ तिथि के दिन वामन-चरित्र की कथा सुनने पर पितरों को सद्गति प्राप्त होती है।

तेंतीसवें अध्याय में वामन चरित्र की समाप्ति की गई है। चौबीसवाँ अध्याय अष्टम स्कन्ध का अन्तिम अध्याय है। इस अध्याय में मत्स्यनारायण की कथा कही है।

दक्षिण भारत में कृतमाला नदी के तट पर सत्यव्रत मनु ध्यान कर रहे हैं। मानव सत्कर्म करता है तो लक्ष्मी प्राप्त होती है और लक्ष्मी पति भी आते हैं। एक सत्कर्म पूर्ण हो जाय तब दूसरा

सत्कर्म कीजिये। दूसरा पूर्ण हो जाय तो तीसरा शुरू कीजिये। सत्कर्म में सन्तोष न मानिये। उसका निरन्तर लोभ ही रखिये। जो सत्कर्म के साथ स्नेह करता है, सारा दिन सत्कर्म करता है, उसके हाथ में भगवान् आते हैं। सत्यव्रत मनु के हाथ में मत्स्यनारायण पधारे हैं। मनु महाराज को मत्स्य संहिता का उन्होंने उपदेश दिया है। प्रलयकाल में सर्वत्र विनाश हुआ; तब भी मनु का विनाश नहीं हुआ। सत्य के साथ स्नेह करने वाले का विनाश नहीं होता। वह अमर बनता है। उसे काल नहीं मार सकता। संक्षेप में मत्स्यनारायण की कथा सुनाकर अष्टम स्कन्ध परिपूर्ण करते हैं–

प्रलयपयसि धातुः सुप्तशक्तेर्मुखेभ्यः श्रुतिगणमपनीतं प्रत्युपादत्त हत्वा।
दितिजमकथयद् यो ब्रह्म सत्यव्रतानां तमहमखिलहेतुं जिह्ममीनं नतोऽस्मि॥

(८-२४-६१)

इति अष्टमः स्कन्धः समाप्तः

हरि ॐ तत्सत्।

श्रीगणेशाय नमः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवत-रसामृत

नवम स्कन्धः

४१- सूर्य वंश राजा अम्बरीष

मन्वन्तराणि सर्वाणि त्वयोक्तानि श्रुतानि मे।
वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य हरेस्तत्र कृतानि च॥ (९-१-१).

परमात्मा श्रीकृष्ण को सनातन धर्म अतिशय प्रिय है। धर्म की मर्यादा में जो रहता है, वही बड़ा है। धर्म की मर्यादा का भंग करने वाला निम्न है। भागवत में श्रीराम-कथा इसलिये कही गयी है। श्रीराम मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं। जो श्रोता प्रभु की मर्यादा का यथोचित पालन करते हैं, वे श्रीकृष्ण का रहस्य समझ सकते हैं।

श्रीराम पहले आते हैं, श्रीकृष्ण बाद में आते हैं। रामायण में श्रीकृष्ण की कथा नहीं आती है, पर भागवत में राम की कथा अनेक बार आती है। जब तक श्रीराम नहीं पधारते, तब तक श्रीकृष्ण भी नहीं पधारते हैं।

नवम सर्ग में दो प्रकरण हैं—सूर्यवंश और चन्द्रवंश। सूर्यवंश में राजाधिराज श्रीराम प्रकट हुए, चंद्रवंश में श्रीकृष्ण का प्राकट्य हुआ है। रामजी की सब लीलाएँ सरल हैं, श्रीकृष्ण की लीलाएँ रहस्यमयी हैं। वे जन्म से ही लौकिक हैं। श्रीकृष्ण मथुरा के कारागृह में प्रकट हुए, रामजी महाराज दशरथ महाराज के राजमहल में प्रकट हुए हैं। श्रीकृष्ण रात्रि में बारह बजे प्रकट हुए। रामजी महाराज दिन में बारह बजे प्रकट हुए, जिससे किसी को कष्ट न हो। एक वैष्णव ने लाला से पूछा आप रात्रि के बारह बजे के बाद प्रकट हो कर आते हैं, इससे सारी रात जागना पड़ता है। आप दिन में क्यों नहीं आते हैं? लाला ने कहा—रामजी तो राजाधिराज हैं। राजाधिराज दिन में पधारते हैं। श्रीराम की बारात निकलती है, प्रजा को उनके दर्शन होते हैं। मैं राजा नहीं हूँ; मैं तो माखन चोर हूँ, इससे रात्रि में बारह बजे के बाद आता हूँ। चोर तो रात में ही आते हैं न? श्रीराम की मर्यादा का पालन करना बहुत कठिन है। श्रीकृष्णलीला का रहस्य समझना बहुत कठिन है। रामजी की लीला अनुकरणीय है। भागवत में रामलीला इसलिये है कि भागवत की कथा कहने

वाला वक्ता और सुनने वाले श्रोता रामजी की मर्यादा का समुचित पालन करें, व्यवहार भी रामजी जैसा ही रखें श्रीकृष्ण भगवान् की भक्ति करने वालों का जीवन रामजी जैसा होना चाहिए। श्रीकृष्ण की सभी लीलाएँ अनुकरणीय नहीं हैं। कुछ लीलाएँ अनुकरणीय हैं, कुछ चिंतनीय हैं। श्रीकृष्ण जो कर रहे हैं, उसको नहीं, पर श्रीकृष्ण जो कहें वही करना चाहिये।

श्रीकृष्ण माखन–चोरी करते थे, और हम भी करें तो? कीजिए, तो। सब मालूम पड़ जायगा। श्रीकृष्ण चोरी करते थे, ऐसा शुकदेवजी महाराज ने कहा ही नहीं है। शुकदेवजी महाराज बहुत विवेक से कथा करते हैं–गोकुल की गोपियाँ कहती हैं कि कन्हैया माखन–चोर हैं। मैं नहीं कहता हूँ। जो जगत् के स्वामी हैं, जो सर्वश्रेष्ठ हैं वे माखन–चोरी करते थे, ऐसा मैं कैसे कहूँ? गोपियाँ तो प्रेम की मूर्ति हैं। गोपी लाला को माखन–चोर कह सकती हैं। प्रेम में गाली कभी बुरी नहीं लगती हैं। गोपियाँ भले ही माखन–चोर कहकर बुलायें; हमारे जैसे साधारण व्यक्ति लाला को माखन चोर कह दें, तो लाला को कैसे पसंद आये? वह तो तुरंत कह देगा–मैं चोर नहीं हूँ, तुम चोर हो, तुम्हारा बाप चोर है। यह सब माल कैसे इकट्ठा किया है, मैं जानता हूँ।

श्रीकृष्ण ने चोरी करने से पहले पूतना का विष पी लिया था और बाद में चोरी की थी। जिसको श्रीकृष्ण का अनुकरण करना हो वह पहिले श्रीगणेश पूतना–चरित्र से करे तो कोई हर्ज नहीं है हमें। श्रीकृष्णलीला का प्रारंभ पूतना–चरित्र से हुआ है। श्रीकृष्ण विष पी गये। श्रीकृष्ण देव नहीं पर देवों के देव हैं, परमात्मा हैं। अभी कोई आ कर कह दें कि कथा के इस मंडप में नाग आया है तो क्या आप कथा में बैठेंगे? बालकृष्णलाल तो खेल–खेल में काली नाग का दमन करते हैं। श्रीकृष्ण परमात्मा हैं। श्रीकृष्ण जो करते थे, उसे न कीजिये। ऐसा कोई देव नहीं कर सकता है। श्रीकृष्ण वृन्दावन में रास लीला करते हैं, पर उसका भी नियम है। छह–सात वर्ष के बालक को ही रासलीला में रखते हैं। यह अति दिव्य, निर्दोष लीला है। रासलीला के दर्शन कीजिये और सुनिये पर रासलीला करियेगा नहीं। रासलीला का चिंतन कीजिये। मध्य में राधा–माधव हैं। एक–एक गोपी के पास श्रीकृष्ण का स्वरूप है। प्रेम से वे खेल रहे हैं। रासलीला के अनुकरण की अनुमति नहीं है। श्रीकृष्ण की सब लीलाऐं अनुकरणीय नहीं हैं। रामचन्द्रजी की प्रत्येक लीला अनुकरणीय है। रामजी महाराज जैसा आप कीजिये। श्रीराम परमात्मा हैं, पर रामजी की प्रत्येक लीला समाज को धर्म का शिक्षण देने के लिये ही है।

श्रीराम सनातन धर्म की मूर्ति हैं। श्रीराम मर्यादा के अवतार हैं, श्रीकृष्ण प्रेमावतार हैं। भगवान् शंकर करुणावतार हैं।

कर्पूर-गौरं करुणावतारं संसार सारं भुजगेन्द्रहारं-शिवजी करुणा का स्वरूप हैं; श्रीकृष्ण प्रेम-स्वरूप हैं। श्रीराम मर्यादा-स्वरूप हैं। भागवत की कथा के वक्ता और श्रोताओं को मर्यादा में रहना चाहिये। राम की मर्यादा का समुचित पालन करें तो मन शुद्ध हो जायगा और तभी रास का रहस्य समझ में आ सकेगा।

कुछ लोगों को रासलीला में शंका होती है। मानव जब अल्प बुद्धि से रासलीला पर विचार करने लगता है, तब उसमें कुभाव आता है। रासलीला निर्दोष लीला है। गंगा तट पर यह कथा कही गई है। कथा कहने वाले शुकदेवजी महाराज हैं। उनकी कमर में रस्सी तक नहीं तो लंगोटी कहाँ से होगी? वे नग्न दिगम्बर हैं। यह पुरुष हैं और यह स्त्री हैं-ऐसा भेदभाव जिनकी दृष्टि में नहीं है, जिनके मन में नहीं है। जिन्हें सारा जगत ब्रह्म रूप दीखता है। वे ही महान् पुरुष यह कथा कहते हैं। रासलीला में काम-सुख का निरूपण होता तो शुकदेव जी कथा कह ही नहीं पाते। शुकदेवजी पूर्ण निष्काम हैं, निर्विकार हैं। तीन-चार वर्ष का बालक शृंगार की बात सुनकर भी समझता नहीं है, बोल भी नहीं सकता है। वह निर्विकार होता। शुकदेवजी भी पूर्ण निष्काम होने से काम सुख का निरूपण नहीं कर सकते हैं। रासलीला में जीव ईश्वर के मिलन का वर्णन करते हैं। परीक्षित कथा सुनने बैठे हैं। एक-दो दिन में जिनकी मृत्यु होने वाली है और जो कथा के प्रमुख श्रोता हैं, वे ही परीक्षित यदि रासलीला में काम सुख का निरूपण होता तो सुनते ही नहीं। जिसकी मृत्यु नजदीक हो, उसे शृंगार की बातें नहीं भाती हैं। श्रोता ऐसा है कि थोड़े ही समय में जिसकी मृत्यु होने वाली है और वक्ता परम हँस शिरोमणि हैं। रासलीला में जिसे काम की गन्ध आती हैं, उसकी बुद्धि कलुषित है, उसने सत्संग नहीं किया है।

श्रीकृष्ण की रासलीला अति दिव्य है, मधुर है, निष्काम है। रामचन्द्रजी की मर्यादा का पालन करने वाला ही श्रीकृष्णलीला का महत्व समझ सकता है।

एक भाई ने मुझ से कहा कि-महाराज! आप कहते हैं कि रासलीला निर्दोष है; पर रासलीला में तो वर्णन आता है कि भगवान् गोपियों को बांहों में भरकर आलिंगन देते हैं। भगवान् आलिंगन देते हैं-इसका अर्थ यह है कि भगवान् में विकार आ गया है? अरे! श्रीकृष्ण का स्मरण करने वाले को कभी काम स्पर्श नहीं होता तो स्वयं श्रीकृष्ण को किस तरह होगा? सूर्य के पास अंधकार जा ही नहीं सकता। श्रीकृष्ण गोपियों को आलिंगन देते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि श्रीकृष्ण में विकार है। श्रीकृष्ण में विकार नहीं है। यह निर्विकार विशुद्ध लीला है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि पिता, पुत्री को आलिंगन देता है। अट्ठारह-बीस वर्ष की कन्या है। उसका विवाह हुआ है। जब कन्या ससुराल जा रही है, तब विदा के समय पिता रोने

लगता है। कन्या घर छोड़कर जा रही है। माता-पिता को उसे छोड़ने का अति दुःख हो रहा है। कन्या पिता को वंदन करती है, उसी समय पिता कन्या को उठाकर गले लगा लेते हैं। कन्या के मन में विकार नहीं है, पिता के मन में भी विकार नहीं है, रास की क्रिया तो लौकिक-सी है। पर पिता कन्या का मिलन जितना निर्मल है, उससे, हजार गुना, सहस्र गुना शुद्ध-निर्मल मिलन गोपी और श्रीकृष्ण का है। इस मिलन में जरा भी विकार नहीं है। रासलीला में यह रहस्य है। यह दिव्य लीला है। किन्तु श्रीकृष्ण-लीला का यह रहस्य समझना बहुत कठिन है।

रामचन्द्रजी की मर्यादा का जो पालन करता है, वह रावण-काम को मार सकता है। रावण-काम को जो मार सकता है, रासलीला का महत्व उसी की समझ में आता है। इससे भागवत में मुख्य कथा श्रीकृष्ण की होने पर भी रामचरित्र पहिले आता है। इसे इसलिये दिया गया है कि भागवत को कहने वाला वक्ता और श्रोता सनातन धर्म की मर्यादा भंग न करें। धर्म की मर्यादा का भंग करने वाला बड़ा ज्ञानी हो या बड़ा योगी हो, वह भगवान् को प्रिय नहीं लगता। वह श्रीकृष्ण लीला का महत्व भी नहीं समझ सकता है।

सूर्यवंश में श्रीरामचन्द्रजी प्रकट हुए हैं। राजा ने प्रश्न पूछा कि महाराज इस सूर्यवंश की कथा सुनने की मुझे बहुत इच्छा है। शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं-राजन् इस वंश की कथा अनेक दिनों तक कहता रहूँ तो भी इसका अंत नहीं आयेगा। समयानुसार इसे मैं संक्षेप में कहूँगा।

आदिनारायण परमात्मा की नाभि में से कमल प्रकट हुआ। उस कमल में से ब्रह्माजी प्रकट हुए। ब्रह्माजी के पुत्र मरीचि हुए। मरीचि के पुत्र कश्यप हुए। कश्यप के पुत्र विवस्वान सूर्य हुए। सूर्य के घर वैवस्वत मनु महाराज का प्राकट्य हुआ। वैवस्वत मनु के वंश में इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूष, पृषध्र, नरिष्यन्त नभग और कवि-ऐसे बालक पैदा हुए। एक-एक के वंश का वर्णन हुआ है। मनु महाराज के बड़े पुत्र जो इक्ष्वाकु हैं, उनके वंश में रघुनाथजी प्रकट होने वाले हैं।

मनु महाराज के दूसरे पुत्र राजकुमार पृषध्र के द्वारा अनजाने में गाय की हिंसा हुई। उसका वंश न बढ़ सका। मनु महाराज का दूसरा पुत्र नभग हुआ। नभग के घर नाभाग का जन्म हुआ। नाभाग के घर भक्तराज अम्बरीष महाराज प्रकट हुए-

नाभागादम्बरीषोऽभून्महाभागवतः कृती।
नास्पृशद् ब्रह्मशापोऽपि यं प्रतिहतः क्वचित्॥ (९-४-१३)

अम्बरीष राजा की कथा शुकदेवजी ने बहुत प्रेम से की है। शुकदेवजी महाराज संन्यासी महात्माओं के आचार्य हैं। शुकदेवजी महाराज भगवान् श्रीशंकराचार्य स्वामी के परमगुरु हैं। श्रीशंकर स्वामी के गुरु हैं गोविंद भगवद्पाद, गोविंद भगवान् के गुरु हैं गौड़पाद, और गौड़पाद शुकदेवजी

महाराज के शिष्य हैं। ब्रह्मविद्या की परम्परा इस तरह, चलती आ रही है। शुकदेवजी विद्या के आचार्य हैं, परमहंस शिरोमणि हैं। कथा राजा-रानी की कर रहे हैं। शुकदेवजी को राजा-रानी की कथा करने से क्या लाभ? विरक्त साधु, विलासी गृहस्थ के घर की बात भी नहीं सुनना चाहते हैं। विलासी गृहस्थ के घर की बातें सुनने पर भी मन बिगड़ने की संभावना रहती है। विलासी जन से साधु दूर ही रहते हैं। विलासी के घर में संतों को दुर्गन्ध आती है।

भागवत में किसी राजा की कथा नहीं है और किसी रानी की कथा भी नहीं है। भागवत के प्रत्येक अध्याय के अंत में लिखा है-

पारहंस्यां संहितायाम्

भागवत में परमहंस की कथा है। अम्बरीष महाराज राजमहल में परमहंस का जीवन व्यतीत करते हैं। परमहंस हैं, इसलिये भगवे वस्त्र पहिने हैं, ऐसा कुछ नहीं है। वे भक्ति के रंग में रंग गये हैं। राजमहल में सन्यासी के समान जीवन व्यतीत करते हैं। काँकरोली में जो द्वारकानाथ विराजमान हैं, वे अम्बरीष राजा के ठाकुरजी हैं। अम्बरीष राजा की प्रभु में निष्ठा है। स्त्री और संपत्ति भक्ति के साधन हैं, भोग के साधन नहीं हैं। अकेला पुरुष या अकेली स्त्री समुचति भक्ति नहीं कर सकते हैं। पुरुष को स्त्री की जरूरत है और स्त्री को पुरुष की जरूरत है। पति-पत्नी का पवित्र संबंध परमात्मा के लिये है।

अम्बरीष राजा के महल में रानियाँ सेवा में लीन हैं, पर राजा की आँखों में विकार नहीं है। राजा-रानी द्वारकानाथ की सेवा बहुत प्रेम से भाव-पूर्वक करते हैं। द्वारकानाथ स्वामी हैं, मैं सेवक हूँ-ऐसी उनकी निष्ठा है। मंदिर में बुहारी भी स्वयं लगाते हैं-

स वै मनः कृष्ण पदारविन्दयोर्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने।
करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये॥

(९-४-१८)

भगवान् आपको संपत्ति दें तो आप अपने काम के लिये भले ही नौकर रखिये, पर ठाकुरजी की सेवा के लिये नौकर न रखिये। ठाकुरजी की सेवा आप स्वयं कीजिये। अनन्य भाव से अम्बरीष महाराज द्वारकानाथ की सेवा करते हैं।

कई लोग ऐसा समझते हैं कि यह सब मैंने प्राप्त किया है। मैं अधिक सुख क्यों न भोग लूँ? आपको प्रभु जो देते हैं, वह आपके लिये ही देते हैं? जिसे प्रभु अधिक देते हैं, उससे प्रभु ऐसी आशा करते हैं कि यह मेरे बालकों की सेवा करे। संपत्ति भोग के लिये नहीं है, सेवा के लिये है, भक्ति के लिये है। ग्रन्थों में वर्णन है कि अम्बरीष महाराज के ठाकुरजी बावन मन काली मिर्चों

का भोजन करते थे। बावन मन मिर्चों के उपयोग से कितने मन खाद्य पदार्थ बनते होंगे? राजा सरस-सरस सामग्री बनवाते हैं, द्वारकानाथ को भोजन करवाते हैं और प्रभु का प्रसाद गरीबों, ब्राह्मणों, साधुओं को दान में बांट देते हैं अम्बरीष राजा संपत्ति का सदुपयोग करते हैं।

अम्बरीष महाराज निर्जला एकादशी का व्रत करते हैं। आप भले ही निर्जला एकादशी न करें, दूध पीकर व्रत कीजिए, फल खाकर व्रत कीजिये। एकादशी के दिन दो-तीन बार भूख लग जाये तो दो-तीन बार दूध पीजिये। दूध और फल के आधार पर एकादशी करने वाले को एकादशी का फ़ल मिलता है। कढ़ी-भात खाने वाले को फल नहीं मिलता है। कढ़ी या दाल-भात खाने वाले को पाप लगता है।

कुछ लोग एकादशी के आने पर यह समझते हैं कि दिवाली आ गयी है। एकादशी के दिन संयम रखकर भक्ति करनी चाहिये। एकादशी का व्रत तीन दिनों का है दशमी के दिन एक बार सादा, सात्विक भोजन करना चाहिये। एकादशी के दिन सुयोग्य रूप से व्रत करने के लिये रात्रि में जागरण करना चाहिये। द्वादशी के दिन भी एक ही बार भोजन करना चाहिये इन तीनों दिनों का तप ऐसा है कि इसकी शक्ति से आप ग्यारह-बारह दिनों तक पाप से दूर रह सकेंगे। एकादशी के समान श्रेष्ठ कोई भी व्रत नहीं हैं। बारह मास एकादशी का व्रत कीजिये। जिसे एकादशी का व्रत नहीं करना है, उसे भागवत की कथा भी नहीं सुननी चाहिये, क्योंकि कथा सुनने के बाद भी व्रत नहीं करते हैं, तो बहुत पाप लगता है।

हमारे शास्त्रों में लिखा है कि एकादशी के दिन अन्न दान महान पाप है। एकादशी के दिन अन्न का दान नहीं देना चाहिए। अन्न खाने वाले और अन्न खिलाने वाले दोनों को पाप लगता है। अन्न में सभी प्रकार के पाप आकर बसते हैं। व्यभिचार का पाप, ब्रह्म-हत्या का पाप, चोरी का पाप-सभी एकादशी के दिन अन्न में आते हैं। जो खाता है और जो खिलाता है, उसके सिर पर पाप जाता है। एकादशी के दिन आपके घर मेहमान आयें और ऐसा कहें कि मैं एकादशी का व्रत नहीं करता हूँ तो आप हाथ जोड़कर, मेहमान से कहिये-आप मेरे घर आये हैं तो एकादशी करनी ही पड़ेगी। कदाचित् उसे बुरा लगे तो भले ही लगे, दूसरी बार वह आपके घर नहीं आयेंगे।

कई लोग चातुर्मास की एकादशी करते हैं पर उनकी नीयत बिगड़ती है। वे कहते हैं-हम चारों महीने की एकादशी करते हैं तो क्या भगवान् पर उपकार करते हो? बारह महीनों की एकादशी कीजिये। पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय और ग्यारहवाँ मन-इन्हीं से सारा दिन भक्ति कीजिये। एकादशी के दिन हो सके तो अन्य प्रवृत्तियाँ छोड़िये। थोड़ी प्रवृत्तियाँ कीजिये। एकादशी

की रात्रि में 'श्रीकृष्ण-कृष्ण प्रभु का जप कीजिये। प्रभु के जप करते हुए कम से कम दो घंटे का जागरण कीजिये।

आप पंढरपुर गये होंगे। पंढरपुर में विट्ठलनाथजी महाराज एकादशी की रात में जागरण करते हैं। ठाकुरजी की शयन होती ही नहीं है। तुकाराम महाराज, एकनाथ महाराज श्री विट्ठलनाथजी के सम्मुख खड़े रहकर सारी रात कथा कहते हैं। ठाकुरजी सुनते हैं। प्रभु को ऐसी आदत हो गई है कि वे एकादशी की सारी रात जागते हैं। रात में भगवान् के नाम के जप करते हुए जागिये। आपके पाप जल जायेंगे। प्रभु आप पर बहुत कृपा करेंगे।

अम्बरीष राजा निर्जला एकादशी का व्रत करते हैं। शुकदेवजी महाराज इससे प्रसन्न होकर अम्बरीष राजा की कथा बहुत प्रेम से कहते हैं। कोई गरीब व्यक्ति निर्जला एकादशी का व्रत करे तो इसमें विशेष आश्चर्य नहीं, पर राजमहल में सब-कुछ होने पर भी अम्बरीष राजा एकादशी का निर्जल व्रत करते हैं। शुकदेवजी इससे इन्हें बहुत चाहते हैं। कार्तिक शुक्ल पक्ष द्वादशी का दिन है। द्वारिकानाथ के सम्मुख सुन्दर सामग्री रखी है। अम्बरीष महाराज द्वारिकानाथ के नाम का जप करते हुए भावना से भोजन ले रहे हैं। आंखें उनकी बंद हैं।

उसी समय वहाँ दुर्वासा ऋषि पधारते हैं। अम्बरीष राजा स्वागत करते हैं और कहते हैं— महाराज आपने बहुत कृपा की। भोग की अब तैयारी हो रही है। प्रसाद लेकर पारण कीजिये। दुर्वासा ऋषि ने कहा—अपनी मध्याह्न संध्या करने से पहिले, मैं कुछ भी नहीं खाता हूँ।

अम्बरीष राजा ने कहा—महाराज! मेरा ऐसा नियम है कि त्रयोदशी शुरू होने से पहिले द्वादशी का पारण करना है। आप संध्या करके तुरन्त ही पधारिये। दुर्वासा ऋषि ने निमन्त्रण स्वीकार किया। श्रीयमुनाजी में स्नान करके वे मध्याह्न संध्या करने बैठे। संध्या में गायत्री के जप में ऐसे तन्मय हुए कि समय का ध्यान ही न रहा। दुर्वासा ऋषि ने जानबूझ कर विलम्ब नहीं किया है। किन्तु अम्बरीष राजा घबरा गये हैं। सोचते हैं कि अब द्वादशी पूर्ण होती है। व्रत के नियमानुसार त्रयोदशी से पहले मुझे पारण करना है। पारण करता हूँ तो ब्राह्मण का अपमान है, नहीं करता हूँ तो व्रत का भंग होता है! एक ब्राह्मण ने सलाह दी—आप ठाकुरजी को अर्पण करके थोड़ा जल पी लीजिये। निर्जल व्रत का पारण जल से कीजिये। ब्राह्मण का अपमान भी नहीं होगा। अम्बरीष राजा ने जल से पारण कर लिया और फिर शान्ति से दुर्वासा की राह देखने लगे।

जब सूर्यनारायण मस्तक तक आ पहुँचे, तब दुर्वासा ऋषि को ख्याल आया कि बहुत देर हो गयी है। मैंने राजा के व्रत का भंग करवाया है। संध्यादिक नित्यकर्म परिपूर्ण करके दुर्वासा ऋषि विचार करते-करते चलते हैं—शायद राजा ने पारण कर लिया होगा। न, न मेरे जैसे ब्राह्मण को

निमंत्रण देकर कैसे पारण कर लेंगे? सोचते-सोचते वे आ पहुँचे। अम्बरीष राजा खड़े हो गये स्मित करके ऋषि का उन्होंने स्वागत किया।

दुर्वासा ऋषि ने अनुमान किया–व्रत का भंग हो तो राजा हँस नहीं सकते। राजा तो प्रसन्न दीख रहे हैं, मुझे लग रहा है कि राजा ने पारण कर लिया है। दुर्वासा का अनुमान गलत नहीं था। राजा ने पारण किया तो था पर जल से ही किया था। दुर्वासा को लगा कि राजा ने भोजन किया होगा। उन्होंने राजा से कहा–तुमने मुझे निमंत्रण दिया और फिर भोजन क्यों कर लिया? तुम्हें भक्ति का अभिमान हो गया है क्या? अम्बरीष राजा ने हाथ जोड़कर कहा–महाराज! मैंने आपका अपमान नहीं किया है। मैंने भोजन नहीं किया है, जल ही पी लिया है। पर जिसे क्रोध आ गया हो, वह दूसरे की बात तक नहीं सुन पाता। दुर्वासा ऋषि ने मस्तक से एक केश निकालकर वहाँ पटका, तुरन्त एक भयंकर राक्षसी उत्पन्न हो गयी। उस कृत्या राक्षसी से ऋषि ने कहा–इस अम्बरीष को मार डाल।

जैसे ही कृत्या अम्बरीष राजा को मारने दौड़ी, वैसे ही सुदर्शन चक्र ने आकर कृत्या को जलाकर भस्म कर दिया। अम्बरीष राजा नहीं जानते थे कि सुदर्शन चक्र चारों ओर से उनका रक्षण कर रहा है। आप जिस देव की प्रेम से पूजा करते हैं, जिसके नाम का जप करते हैं,वे देव भले ही दिखाई न पड़े पर वे आपके साथ ही रहते हैं। वे गुप्त रूप से आपका रक्षण करते हैं। कृत्या को जलाकर भस्म कर देने के बाद सुदर्शन चक्र दुर्वासा के पीछे दौड़ा। सुदर्शन चक्र का तेज दुर्वासा ऋषि से सहन न हुआ। दुर्वासाजी घबराते हुए, दौड़ते-दौड़ते बैकुण्ठ में पहुँचे।

भगवान् ने कहा–पधारिये, पधारिये। दुर्वासा ने कहा– क्या पधारिये? आपका चक्र मेरे पीछे पड़ा है। भगवान् ने कहा–चक्र मेरा नहीं है, चक्र तो अम्बरीष का है।

वैष्णव अपना सर्वस्व मुझे अर्पण करते हैं और इससे मैं अपना सर्वस्व वैष्णवों को देता हूँ। पतिव्रता स्त्री पति की अनन्य भाव से सेवा करके जिस तरह पति को वश में करती हैं, उसी तरह वैष्णव मेरी निरंतर सेवा और स्मरण करके मुझे परतंत्र बना देते हैं।

तपो विद्या च विप्राणां निःश्रेयसकरे उभे।
ते एव दुर्विनीतस्य कल्पेते कर्तुरन्यथा।। (९-४-७०)

महाराज! तप और विद्या, विनय से सुशोभित होती है। विनय का साथ न हो तो विद्या विनाश कर देती है। किसी को निम्न समझने के लिये विद्या नहीं है। परमात्मा के दर्शन करने के लिये ज्ञान है। राजा ने आपका अपमान नहीं किया है। आपने बिना कारण क्रोध किया है। आपका अपराध है। दुर्वासा ऋषि ने कहा–अपराध हुआ है, तो मैं क्षमा माँगता हूँ। परमात्मा ने कहा–मुझ

से क्षमा माँगने से क्या लाभ? जिसका अपराध किया है, उससे क्षमा माँगिये। दुर्वासा ऋषि अम्बरीष के चरणों में वंदन करने दौड़ पड़े। भगवान् के लाड़ले भक्त कभी भी सनातन धर्म की मर्यादा नहीं तोड़ते हैं। अम्बरीष ने कहा—आप वंदन कर रहे हैं, यह उचित नहीं है। अम्बरीष राजा ने सुदर्शन चक्र की प्रार्थना की। सुदर्शन चक्र का वेग शांत हुआ। अम्बरीष राजा ने दुर्वासा को प्रेम से भोजन करवाया। दुर्वासा ऋषि ने राजा को बहुत-बहुत आशीर्वाद दिये।

भक्ति में दुर्वासना बिघ्न लाती हैं। लोग मुझे मान दें, लोग मेरी बात मानें, मैं सुख भोग लूँ—ये सब दुर्वासनाएँ हैं।

आप सब को मान देने की इच्छा रखिये। मान पान की इच्छा न रखिये। सुख भोगने की इच्छा न रखिये। जिसको सुख भोगने की इच्छा रहती है उसका मन अशांत रहता है। जो दूसरे को सुख देने की इच्छा रखता है, उसकी भक्ति बढ़ती है। भक्ति में दुर्वासना बिघ्न लाती है। सद्वासना भक्ति को पुष्ट करती है। दुर्वासना से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध के कारण मानव कर्कश वाणी का प्रयोग करता है। कर्कश वाणी ही कृत्या है। भक्ति माता है, ज्ञान-वैराग्य बालक हैं। भक्ति करने से ज्ञान का प्रस्फुटन होता है। जहाँ शुद्ध भक्ति होती है, वहीं सुदर्शन चक्र का—ज्ञान-चक्र का पहरा रहता है। भक्त की कोई प्रत्यक्ष निंदा करे या अप्रत्यक्ष निंदा करे, सच्ची निंदा करे या झूठी निंदा करे, जिस भक्त को भक्ति का आनन्द मिला है, उस पर निंदा का असर नहीं होता है। शब्द आकाश में जाते हैं। शब्द आकाश का धर्म है। वह आपको चिपटता नहीं है। आप तो आत्मा हैं। कर्कशवाणी सहन करने वाला बहुत सुखी होता है। कर्कशवाणी बोलने वाला बहुत दुःखी होता है। दुर्वासा ऋषि कर्कशवाणी बोले हैं, इसलिये वे ही दुःखी हुए हैं।

अम्बरीष राजा के तीन पुत्र हैं—विरूप, केतुमन् और शंभु। अम्बरीष राजा के वंश में अनेक राजा हो गये हैं। बाद में मनु महाराज के बड़े पुत्र इक्ष्वाकु के वंश का वर्णन किया गया है।

इक्ष्वाकु के वंश में श्रीरघुनाथजी का प्राकट्य होने वाला है। इक्ष्वाकु राजा के विकुक्षि, दंडक, निमि इत्यादि अनेक पुत्र हुए थे। इस वंश में ककुस्थ शाबस्त, नाम का राजा हो गया। ककुस्थ के वंश में अनेना, पृथु, विश्वरंधि, चंद्र, युवनाश्व, वृहदश्व, धन्धुमार दृढाश्व, हर्यश्वर, निकुम्भ, वर्हणाश्व, सेनजित, त्रसदस्य और मान्धाता हुए। उनके बाद अम्बरीष यौवनाश्व, हारीत, पुरुकुत्स, अनरण्य, हर्यश्व और सत्यव्रत हुए। सत्यव्रत का दूसरा नाम था त्रिशंकु। त्रिशंकु के पुत्र हरिश्चन्द्र, हरिश्चन्द्र के रोहित हुए। उसके हरित, चम्प, विजय भरुक, वृक, बाहुक और बाहुक के पुत्र सगर राजा हुए।

सगर राजा ने अश्वमेध यज्ञ किया। सगर राजा के यज्ञ का घोड़ा इन्द्रदेव उठाकर पाताल में ले गये और कपिल नारायण के आश्रम में रखा। सगर राजा के पुत्र उस घोड़े को खोजने के लिये निकले। कपिलदेव के आश्रम में वह घोड़ा मिला, इससे वे कपिल नारायण को चोर समझकर मारने दौड़े। कपिल नारायण ने आँखें खोलीं कि वे सब जलकर भस्म हो गये। सगर राजा ने पुत्र असमंजस के पुत्र, अपने पौत्र अंशुमान को आज्ञा की। अंशुमान घोड़े को खोजने के लिये निकला। उसने कपिल नारायण के आश्रम में घोड़ा देखा। तब उसने कपिल नारायण की स्तुति की। कपिलदेव ने कहा—आपके पिताजी जलकर भस्म हो गये हैं। श्रीगंगा मैया पधारें तब ही उनका उद्धार होगा। अंशुमान घोड़े को लेकर दादा के यज्ञ में गया। यज्ञ परिपूर्ण हुआ। अंशुमान ने श्रीगंगामैया को पधारने के लिये तपश्चर्या की पर श्रीगंगामैया के दर्शन उसको नहीं हुए। अंशुमान का पुत्र दिलीप हुआ। उसने भी तपश्चर्या की, पर श्रीगंगामैया के दर्शन न हुए। दिलीप का पुत्र भगीरथ हुआ। भगीरथ ने तपश्चर्या की और वह फलीभूत हुई। तीन-तीन पीढ़ियों का तप इकट्ठा हुआ, तब श्रीगंगामैया के दर्शन हुये। गंगाजी ने कहा—मेरी गति धरती से सहन नहीं होगी। धरती रसातल में डूब जायेगी। कोई मुझे मध्य में ही धारण कर ले तो मैं उतर सकूँगी।

भगीरथ राजा ने शंकर भगवान् की प्रार्थना की। शिवजी महाराज प्रसन्न हुये। गंगोत्री में शंकर, कमर पर हाथ रखकर खड़े हैं। गंगोत्री अति दिव्य, पवित्र भूमि है। आकाश—मार्ग से श्रीगंगाजी पधार रही हैं। शिवजी महाराज ने जटाओं का ऐसा जाल बिछा दिया कि गंगाजी जटाओं में चक्कर काटती रहीं उन्हें बाहर निकलने का रास्ता ही न मिला! भगीरथ राजा ने शिवजी से कहा—गंगाजी को पधराइए। शंकर दादा ने कहा— भले ही मस्तक पर रहें। बहुत गर्मी हो रही है। शीतलता मिलेगी।

भगीरथ राजा ने कहा—महाराज! आपकी शीतलता के लिये यह सब मेहनत नहीं की है, मुझे अपने पितरों का उद्धार करना है। तब शिवजी ने गंगाजी को बाहर निकलने का रास्ता दिया। अनेक देशों को पवित्र करते हुए श्रीगंगा माता पाताल में पधारीं। सगर राजा के पुत्र जहाँ भस्म बनकर मिट्टी के रूप में पड़े थे वहीं श्रीगंगाजी का स्पर्श हुआ। उसी समय मिट्टी से दिव्य पुरुष बाहर आये। उन्होंने बार-बार श्रीगंगा माता की वंदना की। .....श्रीगंगा माता की जय—गंगाजी का जय-जयकार हुआ। मृत्यु के बाद उनके शरीर की मिट्टी को गंगाजी का स्पर्श हुआ, सगर राजा के सभी बालकों को सद्गति मिल गयी। मृत्यु से पहिले जो गंगाजी में स्नान करते हैं, गंगाजी की पूजा करते हैं, उन्हें मृत्यु के बाद सद्गति मिलती है तो क्या आश्चर्य? स्नान सत्कर्म के लिये है।

और कुछ भी न हो तो घर में स्नान करते हुए, मन से गंगा मैया का वंदन कीजिए और गंगा-गंगा शब्द बोलिये। आपके घर श्रीगंगा मैया पधारेंगी, आपको गंगा-स्नान का फल मिलेगा।

आज कल सभ्य बने लोग गंगा-गंगा नहीं बोलते। कई लोग तो सिनेमा के गीत गाते-गाते स्नान करते हैं और ऐसा समझते हैं कि हम बहुत सुधर गये हैं। वे सुधरे हैं या बिगड़े हैं, यह तो प्रभु ही जानते हैं। सनातन धर्म की मर्यादा में रहने पर ही जीवन सुधरता है। जीवन संयम से सुधरता है, सदाचार से सुधरता है। स्वेच्छाचार से वह बिगड़ता है। आप सब ऋषियों के बालक हैं। आपका जन्म किसी ऋषि के वंश में हुआ है। आप सनातन धर्म की मर्यादा का पालन कीजिये। भगीरथ राजा गंगाजी को ले आये हैं, इससे गंगाजी को भागीरथी गंगा भी कहते हैं। शिवजी महाराज ने गंगाजी को मस्तक में धारण किया है, इससे शिवजी का नाम गंगाधर पड़ा है। आप भी गंगाधर बनिये। ज्ञान-गंगा को सिर पर धारण कीजिये।

शिवजी के समक्ष अनेक बार भूत-प्रेत नाचते हैं, पर शिवजी की शांति का भंग नहीं होता है। वे श्मशान में भी अति शांत रहते हैं, अति आनन्द में रहते हैं। सत्यम् शिवम् सुन्दरम्। ज्ञान गंगा को सिर पर रखने वाला जीव शिव-स्वरूप होता है, कृतार्थ होता है, गंगाजी के माहात्म्य का वर्णन कौन कर सकता है?

भगीरथ राजा का वंश बढ़ा। आगे चलकर श्रुत, नाभ, सिन्धुद्विप और अयुतायु इस वंश में हुए। इस वंश में ऋतु वर्ण नाम का राजा हुआ है। उसका पुत्र सर्वकाम, सर्वकाम का पुत्र सुदास और उसका पुत्र कल्माषांघ्रि। कल्माषांघ्रि राजा के वंश में अश्मक नाम का राजा हुआ। अश्मक का मूलक और उसका पुत्र नारी कवच हुआ। इस वंश में दशरथ ऐडविज और विश्वसह राजा हुए। विश्वसह के बाद खट्वाँग राजा हुए। खट्वाँग राजा को मृत्यु की खबर पहिले से ही हो गयी थी। राजा सावधान हो गये और आदिनारायण का ध्यान करते हुए कृतार्थ हुए—

खट्वांगद् दीर्घबाहुश्च रघुस्तस्मात् पृथुश्रवाः।
अजस्ततो महाराजस्तस्माद् दशरथोऽभवत्॥ (९-१०-१)

खट्वाँग राजा के वंश में दिलीप राजा हुए। दिलीप राजा ने गाय माता की बहुत सेवा की। एक गोमाता की रक्षा के लिये दिलीप राजा ने सिंह को अपने शरीर का भाग दिया था। उन्होंने सिंह से कहा कि मुझे मारकर तुम खा जाओ, पर इस गाय को छोड़ दो। राजा दिलीप को गोमाता ने आशीर्वाद दिये थे।

दिलीप राजा के पुत्र का नाम रघु। रघु महाज्ञानी, महान वीर, अति उदार राजा था। रघु राजा ने एक बार सर्वदक्षिण नामका यज्ञ किया था। इस यज्ञ में उसने अपने पहने हुए वस्त्रों के सिवाय

सर्वस्व का दान दे दिया था। रघु राजा की कीर्ति बहुत बढ़ी और सूर्यवंश नाम के स्थान पर इस वंश को रघुवंश नाम मिला।

४२. भगवान् रघुनाथजी का प्राकट्य

रघु राजा का पुत्र अज हुआ। अज राजा का विवाह इन्दुमती रानी के साथ हुआ। उनके घर जो बालक हुआ, उसका नाम था दशरथ। चक्रवर्ती सार्वभौम राजा श्रीदशरथजी अयोध्या में राज्य करते थे। उनकी तीन प्रधान रानियाँ थीं, पर पुत्र-संतति नहीं थी। राजा ने वसिष्ठ ऋषि की प्रार्थना की। वशिष्ठ ऋषि ने राजा द्वारा पुत्र-कामेष्टि यज्ञ करवाया। पूर्णाहुति के समय पर अग्निकुंड से अग्नि नारायण हाथ में सुवर्ण पात्र में प्रसाद लेकर आये।

अग्नि ने दशरथ राजा से कहा—आपके घर चार बालक होंगे। वे आपको अति सुख देंगे। वे आपका यश बढ़ायेंगे। यही प्रसादी पायस है। अग्निनारायण ने दशरथ राजा को प्रसादी-पायस दिया। राजा को आनन्द हुआ। उन्होंने प्रसाद मस्तक पर चढ़ाया। राजा ने वसिष्ठ ऋषि से पूछा— महाराज! आपकी कृपा से यह प्रसाद मिला है। इस प्रसाद का क्या करूँ?

वशिष्ठ ऋषि ने कहा—राजन्, कौशल्या आपकी धर्म-पत्नी हैं। प्रसाद में प्रमुख अधिकार उनका है। उनको प्रसाद दो। कैकेयी और सुमित्रा की भी प्रसाद लेने की इच्छा थी। कैकेयी और सुमित्रा धर्मपत्नी नहीं थीं, वे भोग-पत्नियाँ थीं। अन्त में वसिष्ठ ऋषि ने विचार करके कहा— पहिले आधा प्रसाद कौशल्या को दो और आधे प्रसाद के दो भाग करके एक भाग कैकेयी को और एक भाग सुमित्रा को दो।

कैकेयी को बाद में प्रसाद मिला, इससे वह मन में नाराज हुई। उसे क्रोध आया। कैकेयी को अभिमान था कि मैं सुन्दर हूँ, राजा मेरे अधीन हैं। जहाँ अभिमान होता है वहाँ धीरे-धीरे सभी दोष आते हैं, दुर्गुण आते हैं। सौंदर्य का अभिमान, सम्पत्ति का अभिमान, विद्या का अभिमान पतन लाता है। कैकेयी क्रोध में अनाप-शनाप बोलने लगी। उसने महाराज का भी अपमान किया। पतिदेव का अनादर करे, वह कैकेयी है। क्रोध में जो पति का तिरस्कार करे, कर्कश वाणी से जो पतिदेव को दुःखी करे, उस स्त्री के पुण्य का नाश होता है। स्त्री पति में परमात्मा की भावना रखें। कैकेयी को पतिदेव में परमात्मा के दर्शन नहीं होते थे। कैकेयी ने दशरथ राजा से कहा—आपने मुझे बाजार से खरीदकर नहीं लिया है। मुझे तो प्रसाद चाहिये। उसी समय एक चील उड़कर आयी और कैकेयी के हाथ में से प्रसाद उठाकर उड़ गयी। अंजन पर्वत पर अंजनी माता पंचाक्षर शिवमंत्र का जप कर रहीं थीं। उनकी कामना थी कि भगवान् शंकर जैसा पुत्र मुझे हो। महान् ज्ञानी, महान् वीर

पुत्र मुझे हो। शिवजी की प्रेरणा से चील ने वह प्रसाद कैकेयी के हाथ से उठाया और अंजनी माता के हाथ में दिया। माताजी की आँखें बन्द थीं–शिवजी ने ही मुझे यह प्रसाद दिया है, ऐसा समझकर कर अंजनी माता प्रसाद खा गयीं। प्रसाद खाने पर उनके पेट में गर्भ रहा।

नव मास परिपूर्ण हुए। परम पवित्र चैत्र मास, शुक्ल पक्ष पूर्णिमा तिथि थी। ठीक सूर्योदय के समय पर श्री हनुमानजी का जन्म हुआ। श्रीहनुमानजी महाराज की जय। श्रीहनुमानजी का प्राकट्य हुआ। वे जन्म से ही बलवान थे। जन्म के समय पर सूर्य का उदय हुआ था। उन्होंने उस सूर्य को लाल फल समझा। उन्हें बहुत भूख लग आयी थी। इससे जन्म होते ही हनुमानजी एक बड़ी छलाँग लगाकर, सूर्य को फल समझकर खाने दौड़े। चारों ओर हाहाकार हो गया। इन्द्र ने क्रोध करके हनुमानजी पर वज्र फेंका। इससे ही उनका दाहिना जबड़ा (हनु) टूट गया। तब से उन्हें हनुमान कहने लगे। पुत्र को घायल देखकर पवनदेव को क्रोध आ गया। उन्होंने तीनों लोकों में आना-जाना बन्द कर दिया। सभी देव घबरा गये। पवनदेव को प्रसन्न करने के लिये ब्रह्माजी ने वरदान दिया–यह, तुम्हारा पुत्र युद्ध में किसी शस्त्र-अस्त्र से अच्छा होगा। हनुमानजी की लीला दिव्य है।

इस ओर चील ज़ब प्रसाद उठाकर ले गयी, तब कैकेयी को बहुत दुःख हुआ। वह रोने लगी। कौशल्या जी को दया आ गयी। प्रसाद में से थोड़ा भाग उन्होंने दिया। सुमित्रा ने भी थोड़ा भाग कैकेयी को दिया। प्रसाद खाने से तीनों रानियाँ सगर्भा हुईं। श्रीरामचन्द्र जी माता के पेट से बाहर नहीं आये हैं, वे तो बाहर से प्रकट हुए हैं। कौशल्याजी को भ्रांति है कि पेट में गर्भ है। भगवान् माता के पेट से बाहर नहीं आये हैं। श्रीराम-कृष्ण का जन्म दिव्य है। भगवान् ने गीता जी में कहा है–

जन्म कर्म च दिव्यम्।

वंसिष्ठ ऋषि ने राजा से कहा–सगर्भा स्त्री की इच्छा परिपूर्ण करना पति का धर्म है। रानियों को प्रसन्न कीजिये। रानियाँ जो माँगें वह दीजिये। दशरथ महाराज ने सुमित्रा जी से पूछा–महारानी! आपकी क्या इच्छा है? सुमित्रा जी ने कहा–मेरे लिये यह स्वतन्त्र महल है, मुझे इसमें रहना पसन्द नहीं है। मुझे अब अलग नहीं रहना है। मेरी ऐसी इच्छा हो रही है कि मैं कौशल्या जी की सेवा करूँ, तो ही मेरा कल्याण होगा। मुझे कौशल्याजी के पास उनके महल में उनकी सेवा में रखिये।

वशिष्ठ ऋषि ने यह सुनकर कहा–राजन्! भविष्य बहुत सुन्दर है। इनके पेट में कोई महापुरुष होगा। नहीं तो किसका सौतकी सेवा करने का मन होता है? यह कितना सुन्दर कह रहीं हैं।

कौशल्याजी के हृदय में परमात्मा पधारे हैं। माताजी की बोलने की भी इच्छा नहीं होती है। सारा दिन ध्यान करती हैं। दशरथ महाराज जब पधारते हैं, तब वे ध्यान में हैं। दाहिनी जंघा पर बाँया पैर है और बायीं जंघा पर दाहिना पैर है। बाल उनके खुले हैं। दृष्टि नाक की नोंक पर स्थिर है। नाक की नोंक पर दृष्टि रखने वाले की दृष्टि स्थिर होती है। मन स्थिर होता है। कौशल्याजी ध्यान करते हुए, तन्मय हुई हैं। दशरथ राजा पधारे हैं पर उन्हें ध्यान नहीं है। दशरथ राजा ने पूछा—महारानी! आपकी क्या इच्छा है? गुरुदेव की आज्ञा से मैं आया हूँ। कौशल्याजी ध्यान में ऐसी तन्मय थीं कि उन्होंने राजा की बात सुनी तक नहीं। दासी ने सावधान करके कहा, तब उनका ध्यान टूटा। जब दशरथ राजा ने पुनः पूछा तब उन्हें मालूम पड़ा। कौशल्या जी ने कहा—मैं अति आनन्द में हूँ। मेरी कोई इच्छा नहीं है। जीव जब सुख भोगने की इच्छा रखता है, तब से दुःखी होता रहा है। सुख भोगने की इच्छा ही महादुःख है। कौशल्या जी ने कहा—आनन्दमय श्रीराम मेरे हृदय में हैं—

तीर्त्वा मोहार्णव हत्वा कामक्रोधादिराक्षसान्।
शान्तिसीता समायुक्त आत्मारामो विराजते।।

अब बोलने की इच्छा नहीं होती है। मेरी कोई सुख भोगने की इच्छा नहीं है। मुझे ध्यान करना है। वसिष्ठ ऋषि ने जब यह सुना, तब कहा—राजन्! यह तो वेदान्त के सभी सिद्धान्त कह रही हैं, भविष्य बहुत सुन्दर है।

माता कौशल्या के हृदय में विराजमान परमात्मा की देव-गंधर्व स्तुति करते हैं। अब श्रीराम अयोध्या में प्रकट होने वाले हैं। अयोध्या शब्द का अर्थ विचारणीय है। युद्धः न भवति इति अयोध्या। जहाँ युद्ध नहीं है, उस स्थान को अयोध्या कहते हैं।

हम सब अयोध्या में जाकर रहने लगें तो वहाँ पर बहुत भीड़ हो जायगी। वहाँ के साधु-संतों को त्रास पहुँचेगा। प्रभु ने आपको घर दिया है, घर को ही अयोध्या बनाइये। तीर्थ में रहना अच्छा है, पर परमात्मा ने जो घर दिया है, उसे तीर्थ बनाइये तो अधिक अच्छा है। घर में प्रेम से रहिये, जरा भी झगड़ा न कीजिये। जहाँ युद्ध नहीं है, जहाँ शुद्ध प्रेम है, वहाँ अयोध्या है। जो सरयू के तट पर रहते हैं, भक्ति के तट पर रहते हैं, उनका शरीर अयोध्या जैसा होता है। सरयूजी का तट अर्थात् भक्ति का तट। भक्ति न छोड़िये। भक्ति के तट पर रहिये।

दशरथ महाराज जितेन्द्रिय हैं, तपस्वी हैं। पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय, दस इन्द्रियों को जो नियंत्रण में रखता है, उसका रथ सीधा चलता है। परमात्मा उनके घर पधारे हैं। प्रभु के प्राकट्य का समय हुआ है। चैत्रमास, शुक्लपक्ष, अष्टमी तिथि, रात्रि के समय पर दशरथ राजा निद्राधीन

थे। तब उन्हें एक सुन्दर स्वप्न दीखा। दशरथ राजा ने स्वप्न में देखा कि बड़े-बड़े साधु-महात्मा उनके आँगन में आये हैं और सब उन्हें आशीर्वाद दे रहे हैं। कह रहे हैं कि जागिये, आपके भाग्य का उदय हुआ है। दशरथ राजा ने स्वप्न में देखा कि उन्होंने स्वयं सरयू नदी में स्नान किया। भगवान् की सेवा की। दशरथ राजा के घर में लक्ष्मीनारायण की सेवा थी। राजा ने स्वप्न में सेवा की । ब्रह्मा गण वेदमंत्र बोल रहे थे। दशरथ महाराज ने दूध, दही पंचामृत से ठाकुरजी का अभिषेक किया। स्वप्न में राजा ने नारायण का शृंगार किया। भगवान् को तिलक किया। पुष्प की माला अर्पण की। भोग समर्पित किया, आरती की।

अपने स्वप्न में जब आप भगवान् की समुचित सेवा करें, तब समझ लीजिये कि अब आपके भाग्य का उदय होगा। दशरथ राजा स्वप्न में नारायण की आरती कर रहे थे। दर्शन में उन्हें बहुत आनंद आया। ठाकुरजी मंद-मंद हँस रहे थे। आज ठाकुरजी बहुत प्रसन्न दीख रहे थे। ऐसा लग रहा था कि अभी बोलेंगे। और उसी समय दशरथ राजा ने देखा कि ठाकुरजी के श्रीअंग से दिव्य प्रकाश निकला और कौशल्याजी के पेट में गया। दशरथ राजा ने स्वप्न में देखा कि परमात्मा ने कौशल्याजी के पेट में प्रवेश किया है। दशरथ राजा जागे। आज की सुबह कितनी मधुर है। आज का स्वप्न कितना सुन्दर था! राजा, वसिष्ठजी के आश्रम में गये। ब्रह्ममुहूर्त में वसिष्ठ ऋषि ध्यान में बैठे थे। दशरथ राजा ने प्रणाम किया और कहा—क्षमा चाहता हूँ। आपके ध्यान में विक्षेप करने चला आया। आज मुझे एक स्वप्न दिखाई दिया है। राजा ने स्वप्न का पूरा वर्णन सुनाया।

वसिष्ठ ऋषि ने स्वप्न सुनकर कहा—राजन्! स्वप्न बहुत सुन्दर है। मुझे लगता है कि आपके घर पुत्र का जन्म होगा और पुत्र भी ऐसा होगा, जैसा किसी के घर नहीं हुआ है और कभी होगा भी नहीं। मुझे लगता है कि परमात्मा पुत्र-स्वरूप में आने वाले हैं। इसका सूचक ही यह स्वप्न है।

दशरथ राजा को आनन्द हुआ। उन्होंने विचार किया कि मेरे गुरुदेव जो कहते हैं वह सच्च ही होता है। राजा की आँखें हर्ष से गीली हो गईं। राजा ने दोनों हाथ जोड़े और पूछा—प्रभु कब पधारेंगे। वसिष्ठजी ने कहा—कब पधारेंगे? यह मैं कैसे कह सकता हूँ? जगत् काल के आधीन है और काल रामजी का नौकर है। श्रीराम काल के भी काल हैं। वे राजाधिराज हैं। उनकी जब इच्छा होगी, कृपा करके पधारेंगे। पर राजा ब्रह्म मुहूर्त का स्वप्न है, इसलिए चौबीस घण्टों में फल मिलेगा। स्वप्न की बात मुझ से कह दी तो भले ही कह दी, पर अब किसी से न कहियेगा। अब स्नान करके जप कीजिए। थोड़े ही समय में आनन्द की वार्ता सुनेंगे।

गुरुदेव की आज्ञा हुई। रामनवमी का प्रातः काल पूर्ण हुआ। आज सुवर्ण का सूर्य उदित हुआ है। कौशल्या माता सुबह से ध्यान में तन्मय हुई हैं। कौशल्या माता ने नौकरों, दासियों को

आज्ञा दी—आप सब बाहर जाइए। मुझे एकान्त में ध्यान करना है। जब तक मैं न बुलाऊँ किसी को भीतर नहीं आना है। सब बाहर गये। अकेली कौशल्या माता ध्यान में तन्मय हुई हैं। आज विरक्त साधु, संन्यासी, महात्मा, महापुरुष सभी अयोध्या में पधारे हैं। सभी ने सरयूजी में स्नान किया है। सब सीताराम-सीताराम कीर्तन करने लगे। श्रीराम दर्शन के लिए उनके प्राण तड़पने लगे। अनेक वैष्णव दर्शन के लिये उत्कण्ठित होते हैं, तभी प्रभु का अवतार होता है।

भगवान् शंकर कैलाश धाम छोड़कर अयोध्या में पधारे हैं। वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण किया है। चार वेद शिवजी के चार शिष्य बनकर आये हैं। भगवान् शंकर के इष्टदेव बालक श्रीराम हैं। शिवजी को बालस्वरूप बहुत प्रिय है। शिवजी बालक राम का ध्यान करते थे। श्रीराम श्रीराम नाम का जप करते थे। शिवजी महाराज अयोध्या की गलियों में घूम रहे थे। श्रीराम दर्शन के लिये उनके प्राण तड़प रहे थे। शिवजी सोच रहे थे कि कौशल्याजी के महल में मैं जाऊँगा। कौशल्याजी को राम कहते हैं—मेरा नाम सदाशिव जोशी है। ज्योतिष शास्त्र में प्रवीण हूँ।

परम पवित्र समय प्राप्त हुआ है। दशों दिशाएँ प्रसन्न हैं। मन्द, सुगन्ध, शीतल हवा चल रही है। देवगण आसमान में तडिंग-डिंग, तडिंग-डिंग दुंदुभि बजाने लगे हैं। साधुओं का मन आज शाँत है। अग्निहोत्री ब्राह्मणों के घर में अग्निकुण्ड में विराजमान अग्निदेव भी कुण्ड से बाहर आये। वे भी श्रीराम के दर्शन के लिए तड़प रहे थे।

चैत्र मास, शुक्ल पक्ष, परिपूर्ण नौमी तिथि पुनर्वसु नक्षत्र का सुयोग है। मध्याह्नकाल में माता कौशल्या के सम्मुख चतुर्भुज स्वरूप में प्रकट हुए—

भए प्रकट कृपाला, दीनदयाला कौशल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मनहारी अद्भुत रूप विचारी।।
लोचन अभिरामा तनु घनश्यामा निज आयुध भुजचारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला शोभा सिंधु खरारी।।

जय-जयकार हो गया। चारों ओर प्रकाश फैल गया और प्रकाश में कौशल्या माता को चतुर्भुज नारायण के दर्शन हुए। चतुर्भुज का अर्थ है—चारों ओर से अपने भक्तों के दर्शन करने वाले। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—किसी भी वर्ग के हों। रामजी की सेवा करें, श्रीराम नाम के जप करें तो उनके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थ परमात्मा करते हैं।

चतुर्भुज स्वरूप के दर्शन करते हुए कौशल्या माता को बहुत आनन्द हुआ— सोचने लगीं कि कैसा सुन्दर दिव्य स्वरूप है! मेरे लिए प्रकट हुए हैं। कौशल्याजी ने प्रार्थना की है—

दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि विधि करौं अनंता।
कीजे सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा।।

स्वरूप बहुत सुन्दर है। पर लोगों को आशंका होगी कि ऐसा बड़ा और चार हाथों वाला पुत्र कैसे हुआ? आप दो हाथों वाले बनिये, आप बालक बनिये।

कीजे सिसुलीला अति प्रिय सीला यह सुख परम अनूपा।

आपको मैं गोद में खिलाऊँ। आपको दूध पिलाऊँ आप माँ–माँ कहकर पुकारें–ऐसी बाल-लीला आप कीजिए। माताजी को स्वरूप का बोध कराकर, चतुर्भुज स्वरूप अंतर्ध्यान हुआ और दो हाथों वाले बालक श्रीराम का प्राकट्य हुआ–

विप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुन गो पार।।

कौशल्या माता को अति आनंद हुआ है। उन्होंने बालक को गोद में उठा लिया है। बालक राम का श्रीअंग मेघ-सा श्याम है, माखन से भी कोमल है। रामजी की आँखें कमल-सदृश विशाल हैं। रेशम से मुलायम बाल हैं। मेरे राम को नजर न लग जाय–ऐसा सोचकर नारायण-नारायण-नारायण स्मरण करते हुए माता आरती उतारती हैं।

एक दासी को मालूम हुआ कि कुछ गड़बड़ जैसा लगता है। वह दौड़ते-दौड़ते आ पहुँची। चारों और प्रकाश है और प्रकाश में कौशल्याजी की गोद में सोये रामजी के दर्शन हुए उसे। भीतर जाने के लिये निकली कि दासी को ऐसा लगा कि वह आनंद सरोवर में प्रविष्ट हो रही है। इसके रोम-रोम से आनंद प्रकट हुआ। श्रीराम के दर्शन से दिव्य आनंद प्रकट हुआ। दासी ने हाथ जोड़े। उसकी पलकें हिल रहीं थी। दासी अपलक देखती ही रही। कौशल्या माता ने देखा कि एक दासी आयी है। माता के गले में नवरत्न-जड़ित हार था माता ने हार उतारकर दासी को पुरस्कार रूप में दिया। दासी को दर्शन में ऐसा आनंद आ रहा था कि उसकी हार लेने की इच्छा ही नहीं होती थी। कौशल्याजी ने आग्रह किया–आप सभी के आशीर्वाद से बालक हुआ है। आज तो यह भेंट लेनी ही पड़ेगी।

दासी ने हाथ जोड़े और कहा–माता! यह तो उसके गले में ही शोभित होता है। मैं हार लेने नहीं आयी हूँ। पर आज तो मैं जो माँगूँ, आपको देना होगा। कौशल्याजी ने कहा–तुम माँग लो। तुम जो माँगोगी मैं दूँगी। दासी ने कहा–माँ, मैं हार लेने नहीं आयी हूँ। मैं राम लेने आयी हूँ। लाला को दो मिनट मेरी गोद में दीजिये। कौशल्या माँ ने दासी को पास में बैठाकर, उसकी गोद में राम को अर्पित किया। हजारों वर्षों से यह जीव ईश्वर से बिछुड़ गया है। आज दासी का

ब्रह्म-सम्बन्ध हुआ दासी ने बालक राम को हृदय से लगा लिया। जीव-ईश्वर एक हुए दासी की समाधि लग गई। अति आनंद हुआ। एक दासी दौड़ते-दौड़ते राजा दशरथ के पास पहुँची और कहा—बधाई है, बधाई है....... पुत्र हुआ पुत्र हुआ। दशरथ राजा ने सुना उन्हें याद आया कि गुरुजी ने कहा था—चौबीस घन्टों में आनंद के समाचार मिलेंगे। दशरथ राजा ने पूछा—बालक कैसा है? दासी ने हाथ जोड़े कहा—बालक कैसा है? कोई वर्णन नहीं कर सकता वे अनिर्वचनीय है अति सुन्दर है। हमारे घर में विराजमान ठाकुरजी जैसा दिखाई देता है। ठाकुरजी-सी उसकी आँखें हैं। श्रीअंग मेघ-सा श्याम है। वे कैसे हैं? गिरा अनयन, नयन बिनु बानी। श्रीराम के स्वरूप वर्णन वेद भी नहीं कर सके हैं। दासी क्या कहेगी?

सेवक राजा को सरयूजी के तट पर ले गये। दशरथ राजा ने सरयूजी को वंदन किया और फिर स्नान किया आज वृद्धावस्था में पुत्र-जन्म के निमित्त स्नान करने का सुयोग आ गया। सेवक राजा का शृंगार करने लगे। आज तक दशरथ राजा ने कभी शृंगार नहीं किया था। घर में पुत्र के बिना राजा बहुत दुःखी रहते थे। उनका ऐसा नियम था कि घर पर आने वाले साधु, ब्राह्मण या गरीब को आसन पर बैठाकर सुन्दर भोजन देते थे। सुन्दर वस्त्र आभूषण देते थे। वे औरों के शृंगार करते थे। दशरथ राजा बहुत प्रेममय थे। बहुत उदार थे। कभी तो घर के दास को आसन पर बैठाकर वस्त्र आभूषण देते थे, उसका सम्मान करते थे। इस से ही उन्हें सब के आशीर्वाद मिले थे। जिसे सबों के आशीर्वाद मिलते हैं, उसके घर सर्वेश्वर पधारते हैं। आज सब सेवक आग्रह करने लगे—आज आपको शृंगार करना पड़ेगा। आज आप इन्कार करें तो वह अच्छा नहीं है। आज हम बहुत बड़ा उत्सव करने वाले हैं।

सारी अयोध्या नगरी को सुशोभित किया गया। दशरथ राजा का शृंगार किया गया उन्हें सुवर्ण के आसन पर बिठाया गया। वशिष्ठादिक ऋषि वहाँ आये। गणपति महाराज की पूजा की गई। पुण्याह—वाचन हुआ। नांदी श्राद्ध में पितरों की पूजा की गई। दशरथ राजा ने गरीबों को, ब्राह्मणों को बहुत दान दिया। इतना दान दिया कि दान लेने वाला कोई रहा ही नहीं।

सुवर्ण कटोरी में शहद रखा गया वशिष्ठ ऋषि ने वेद मंत्र का पठन कर मधु को अभिमंत्रित किया ऋग्वेद, यजुर्वेद के मंत्र बोलते हैं—बालक का आयुष्य बढ़े, बालक का बल, बालक का तेज बढ़े। शहद को अभिमंत्रित करके दशरथ राजा के हाथ में दिया गया, राजा को उन्होंने समझाया—आपको अब भीतर जाना है। अपनी अनामिका उँगली को शहद में डुबाकर बालक को शहद चटाइये।

गुरुदेव की आज्ञा हुई। इससे हांथ में शहद की कटोरी लेकर, दशरथ राजा श्रीराम के दर्शन करने जाने लगे। आज कौशल्याजी के महल में बहुत भीड़ हुई है, जो भीतर जाता है, वह श्रीराम

के दर्शन में ऐसा तन्मय होता है कि उसे बाहर निकलने की इच्छा ही नहीं होती है। हर रोज तो जब दशरथ राजा पधारते, तब दासियाँ घूँघट निकालकर एक ओर खड़ी हो जाती थीं, पर आज तो दासियाँ घूँघट भी नहीं निकाल रही हैं। आज दासों की 'हटिये, हटिये' की आवाज तक कोई नहीं सुनता है। राम-दर्शन का ऐसा आनन्द है कि सब देह का होश भुला बैठे हैं और तब घूँघट की बात ही कैसे याद आ सकती है? दशरथ राजा ने दासों से कहा कि आप 'हटिये-हटिये' न कहिये, किसी का अपमान न कीजिए। ये सब आनन्द में तन्मय हुए हैं।

दशरथ महाराज बहुत भोले हैं। आज घर में ऐसी भीड़ जमा हो रही है कि घर के स्वामी भीतर नहीं जा पा रहे हैं। घर का स्वामी बाहर खड़ा है। रामजन्म-महोत्सव में सभी को आनन्द है। अकेला चन्द्रमा नाराज है। रामजी के पास आकर वह रोने लगा। रामजी ने पूछा—भाई, तुम क्यों रो रहे हो? चन्द्रमा ने कहा—महाराज, इन सूर्य को आप समझाइए। बारह घंटों से एक ही स्थान पर ये स्थिर हैं। आज का दिन बहुत बड़ा हो गया। सूर्यनारायण स्थिर होकर खड़े रहे। आज सूर्यनारायण अति आनन्द में हैं। मेरे वंश में परमात्मा पधारे हैं। चन्द्रमा को लग रहा है कि यह सूर्य जब अस्त हों, तब मैं बाहर आऊँ। सूर्य मुझे आने नहीं देता। चन्द्र रोने लगा। रामजी को दया आ गयी। उन्होंने कहा—मेरा जन्म भले ही सूर्यवंश में हुआ, पर कोई मुझे 'रामसूर्य'—नहीं कहेगा। मैं तुम्हारा नाम धारण करता हूँ। लोग मुझे रामचन्द्र ही कहेंगे परन्तु फिर भी चन्द्र को सन्तोष न हुआ। तब रामचन्द्रजी ने चन्द्रमा को आश्वासन दिया—इस अवतार में मैंने सूर्य को लाभ दिया है पर अब कृष्णावतार में रात में बारह बजे आऊँगा और तुम्हें लाभ दूँगा।

बालकृष्ण लाल जब प्रकट हुए तब सारा जगत् प्रगाढ़ निद्रा में था। ज़गत् में दो जीव जाग रहे थे—वसुदेव और देवकी। आसमान में चन्द्रमा जाग रहा था। जागने वाले को परमात्मा मिलते हैं, सोये हुए को संसार मिलता है। सावधान होकर जो निरंतर भक्ति करता है, वह ही जागता है। जो गाफिल रहता है, वह सोया हुआ है।

दशरथ महाराज की रामजी को देखने की उत्कण्ठा बढ़ रही है। लोग बातें कर रहे हैं और वे सुन रहे हैं। ऐसा पुत्र हो सकता है क्या? यह तो परमात्मा पधारे हैं—ऐसा लगता है। दशरथ राजा सुनते हैं। सोचते हैं कि मेरे राम को लोग परमात्मा कहते हैं। लोग भले ही परमात्मा कहें, पर वह तो मेरा बालक है। मैं उसका पिता हूँ। ये सब पराये हैं परन्तु सबने राम के दर्शन कर लिये हैं। मैंने अभी तक उसके दर्शन नहीं किये हैं। मैं कैसे कहूँ कि मुझे भीतर जाना है। लोग समझकर रास्ता दें तो अच्छा है। दशरथ राजा के हृदय में प्रेम बहुत उत्कट हो रहा है। आँखों से वही बहने लगा है। श्रीराम-दर्शन के लिये उनके प्राण तड़प रहे हैं।

दशरथ महाराज के भाव वशिष्ठजी समझ गये। वशिष्ठजी ने कहा—राजन्! आप मेरे पीछे-पीछे आइए। राजदरबार, राजमहल में वशिष्ठ ऋषि का बहुत आदर मान था। वशिष्ठजी जब पधारते, तब सब हाथ जोड़कर खड़े हो जाते। वशिष्ठजी के पीछे-पीछे राजा दशरथ महाराज आते हैं। श्रीराम-दर्शन करने वे जाते हैं।

कौशल्याजी की गोद में सर्वांग-सुन्दर बालक श्रीराम के दर्शन करते ही महाराज दशरथ को अति आनन्द हुआ। श्रीराम और दशरथ की आँखें मिली हैं और तब बालक राम होंठों में हँसने लगे। दशरथ महाराज को अति आनन्द हुआ। इतने लोग आये पर हँसता न था। मुझे देखकर हँसने लगा। मुझे पहिचान रहा है। मैं उसका पिता हूँ। यह बालक मेरा है। दशरथ जी ने वशिष्ठ ऋषि से कहा—मैं शहद चटा रहा हूँ। आप कोई मंत्र-पाठ कीजिये।

श्रीराम के दर्शन में वशिष्ठजी की समाधि लग गयी है। ब्रह्मनिष्ठ तपस्वी ब्राह्मण हैं। उन्हें देह का भान नहीं है। कोई मंत्र याद नहीं आ रहा है। वशिष्ठजी ने कहा—मुझे कोई मन्त्र याद नहीं आ रहा है। मंत्र क्या मुझे अपना नाम भी याद नहीं आ रहा है। राम-दर्शन से मैं अपने को ही भूल गया हूँ कि मैं कौन हूँ?

ब्रह्म-साक्षात्कार में वेद भुलाया जाता है—'तत्र वेदाः अवेदाः भवन्ति'—वशिष्ठ ऋषि की समाधि लग गयी है। वे अपने नाम को भूल गये हैं। लौकिक नाम-रूप की पूर्ण विस्मृति होती है, तब ब्रह्म-दर्शन होता है। वशिष्ठ ऋषि ब्रह्म दर्शन में लीन हैं। अन्य ब्राह्मण मन्त्र बोलते हैं। दशरथ महाराज शहद चटा रहे हैं।

अयोध्या की स्त्रियाँ बहुत भाग्यवान हैं। वे भीतर जाती हैं। कौशल्या माता को बार-बार वंदन करती हैं और मनाती हैं—माँ! मेरी गोद में लाला को दो मिनट के लिये दीजिये। मैं राम को लेने आयी हूँ। कौशल्या माता अति उदार हैं। एक-एक की गोद में बालक राम को देती हैं। पुरुष भी वहाँ आये हैं, परन्तु सिपाहियों का पहरा है। पुरुष वहाँ नहीं जा पाते हैं। पुरुषों को बहुत दुःख हुआ। हम स्त्रियाँ होते तो हमें भीतर जाने का लाभ मिलता।

दशरथ राजा के पास सब ने जाकर कहा—हम बहुत आशा लेकर आये हैं। आज हमें निराश न कीजिये। कौशल्या माता की गोद में बालक राम के दर्शन हमें करने हैं। कौशल्या माता हमारी माँ हैं। हमें भीतर प्रवेश मिलना चाहिये। प्रजा दशरथ राजा को प्राण से भी प्रिय हैं। दशरथ राजा ने बाहर दृष्टिपात किया। आँगन में बहुत से लोग हैं। बहुत भीड़ है। दशरथ राजा सोच रहे हैं कि इतने सारे लोग हैं, भीतर कैसे आ सकेंगे? बाहर भी कैसे निकल सकेंगे? उन्होंने सोचकर कौशल्याजी से कहा—महारानी! मेरी इच्छा है कि आप अब आँगन में आकर बैठिये। बालक राम को गोद में

लेकर बैठेंगी तों सब दर्शन कर सकेंगे। ये सब मेरे राम को आशीर्वाद देने आये हैं। आशीर्वाद से बालक सुखी होगा। आज किसी को भी नाराज नहीं करना है।

कौशल्या माता आँगन में आकर बैठी हैं। बालक राम गोद में हैं। अयोध्या की प्रजा बहुत भाग्यशाली है। वह श्रीराम-दर्शन कर रही है। श्रीराम-दर्शन में सभी को ऐसा आनन्द आ गया कि किसी को भूख नहीं लग रही है, न किसी को प्यास लगती है। उत्सव के दिन परमात्मा के दर्शन करते हुए भूख-प्यास भुलाई जाय तो उत्सव सफल है। जगत् को भूलने के लिये उत्सव है। आज अयोध्या की प्रजा उत्सव मना रही है। श्रीराम के दर्शन करके अयोध्या की प्रजा कृत्यकृत्य हो रही है।

४३– मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीराम

श्रीराम के बिना आराम नहीं मिलता है। जगत् में जिन महापुरुषों को शांति मिली है, उन सभी महापुरुषों ने श्री सीतारामजी के दर्शन किये हैं। श्रीरामजी की अनन्य भाव से उन्होंने सेवा की है। श्रीराम-दर्शन के लिये जो प्रयत्न नहीं करता है, वह स्वयं अपनी हिंसा करता है। वाल्मीकि ऋषि ने उसे आत्म-हत्यारा कहा है। श्रीराम-दर्शन के लिये जो प्रयत्न नहीं कर रहा है, उसे अन्तकाल में बहुत पछतावा होता है। श्रीरामदर्शन के लिये साधना कीजिए। श्री सीतारामजी की प्रेम से सेवा कीजिये। श्रीराम-सेवा सभी के लिये अनिवार्य है।

ज्ञान-मार्ग या योग-मार्ग—आपका कोई भी मार्ग हो, आप चाहे किसी भी सम्प्रदाय में दीक्षा ग्रहण करें पर श्री सीता-रामजी की सेवा के बिना किसी का भी मन शुद्ध नहीं होता है। राम-सेवा से जीवन सफल होता है। रामजी को पुष्प की माला समर्पित कीजिए, भोग चढ़ाइये, आरती कीजिये। यह तो रामजी की साधारण सेवा है। रामजी की उत्तम सेवा तो है कि आप रामजी जैसा जीवन व्यतीत कीजिये। रामजी की मर्यादा का पालन कीजिये। श्रीराम-चरित्र अनुकरणीय है। पुरुष का जीवन रामजी के जीवन-सा होना चाहिये। स्त्री का जीवन सीताजी के जीवन-सा होना चाहिये। श्रीसीताजी ने स्त्री धर्म समझाया है, श्रीरामचन्द्रजी ने पुरुष का धर्म समझाया है। श्रीरामचन्द्रजी धर्म की मूर्ति हैं। श्रीराम-सेवा सभी के लिये अति आवश्यक है। श्रीकृष्ण भगवान् की भक्ति करने वाला वैष्णव श्रीराम-सेवा नहीं करेगा तो उसे कृष्ण-दर्शन नहीं होंगे। शंकर भगवान् की सेवा करने वाला श्रीराम सेवा नहीं करेगा तो उसकी भक्ति सफल नहीं होगी। शिवजी महाराज जो कर रहे हैं, वह आप न कीजिये, पर श्रीरामजी जो कर रहे हैं, वह आप कीजिये। शिवजी महाराज तो श्मशान में विराजमान हैं। गले में मुण्डमाला पहिनते हैं। शिवजी विष पी जाते हैं। जो शिवजी करते हैं, वह कोई भी नहीं कर सकता है। शिवजी का चरित्र अनुकरणीय नहीं है। रामजी की प्रत्येक

लीला अनुकरणीय है। व्यवहार रामजी-सा रखिये। श्रीरामचन्द्रजी में सभी सद्गुण एकत्र हुए हैं। सर्व सद्गुणों के भंडार श्रीरामजी हैं। श्रीरामचन्द्रजी की मातृ-पितृ भक्ति रामजी का भ्रातृ-प्रेम, रामचन्द्रजी का सदाचार, श्रीरामजी की सरलता, रामजी का धैर्य, रामजी का गाँभीर्य, रामजी का एक पत्नीव्रत रामजी की उदारता–ये सभी दिव्य सद्गुण आपको और कहीं भी एक ही जगह पर देखने को नहीं मिलते हैं।

वाल्मीकि ऋषि रामायण में रामजी का वर्णन करने लगे, तब रामजी के लिये उपमा खोजने पर उन्हें कोई देव या ऋषि उपमा के योग्य नहीं मिल सका। वाल्मीकि थक गये। उन्होंने लिखा है–रामजी को किसकी उपमा दूँ? श्रीरामजी तो राम-से ही हैं।

रामजी जैसी मातृ-पितृ भक्ति जगत् में अन्यत्र नहीं हैं रामजी का नियम था कि माता-पिता की आज्ञा सिर पर धारण करना तथा उनके समक्ष कभी विपरीत वाणी न कहना। आजकल तो पढ़ने-लिखने के बाद एक शिक्षित भाई को माता-पिता की सेवा करने में भी संकोच होता है। माता-पिता की सेवा न करने वाला बालक प्रभु को प्रिय नहीं लगता है। जो माता-पिता की भी सेवा नहीं करता है, वह भगवान् की भक्ति क्या करेगा? कोई कभी अपने पिता से कहता है– बँगला मेरे नाम पर करना, इससे आपके बाद उपाधि न हो। पिता की मिल्कियत लेनी है पर पिता की सेवा नहीं करनी है। माता-पिता की सेवा महापुण्य है। आप भगवान् की भक्ति अधिक न कर सकें तो चल सकता है, पर आप अपने माता-पिता की बहुत सेवा कीजिए। आप पर प्रभु कृपा करेंगे। रामजी ने कभी माता-पिता के समक्ष कुछ भी कहा नहीं है। रामजी ने कभी भी कैकेयी से नहीं पूछा कि मुझे क्यों बनवास के लिये भेज रही हैं? आजकल के लड़कों को माता-पिता के अधीन रहना पसंद नहीं है। स्वेच्छाचार बहुत बढ़ गया है। लोग स्वतंत्रता की बहुत बातें करते हैं परन्तु सच्चा स्वतंत्र तो वही है, जो जितेन्द्रिय है। स्वेच्छाचार से पतन होता हैं। सदाचार परमात्मा के चरणों तक ले जाता है। सदाचार अर्थात् शास्त्र सम्मत आचार। क्या करना क्या न करना– स्वयं निर्णय न लीजिए, किसी संत से पूछिये, शास्त्रों में पढ़िये।

हित का शासन जो करता है, वह शास्त्र है। शास्ति इति शास्त्रः। निःस्वार्थ ऋषियों ने इन शास्त्रों की रचना की है। ऋषियों ने बहुत सोचकर शास्त्र रचे हैं। शास्त्रों में श्रद्धा रखिये।

तस्माच्छस्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य व्यवस्थितौ

रामजी की मातृ-पितृ-भक्ति अनन्य है। रामजी का बंधु-प्रेम आलौकिक है। बंधु-प्रेम का आदर्श प्रभु ने जगत् को दिखाया है। आप अपने भाई के साथ प्रेम कीजिये। भाई के साथ कपट न कीजिए। आपके भाग्य का धन किसी को नहीं मिलने वाला है और अन्यों के भाग्य का धन

आपके हाथ नहीं आने वाला है। धन प्रारब्ध के अनुसार मिलता है। लोग धन के लिये छल-कपट करते हैं। भाई से प्रपंच करते हैं। आजकल तो अपने भाई से बैर रखने वाले अनेक दीख पड़ते हैं और कुछ तो अपने साढू से प्रेम करते हैं। दूसरे के प्रति प्रेम-भाव रखते हैं पर अपने भाई के लिये त्याग नहीं करते हैं।

आप अपने भाई से प्रेम कीजिए। रामजी का बंधु-प्रेम कैसा अलौकिक है। कैकेयी ने कहा कि मैंने भरतजी को राज्य दिया है। यह सुनकर राम बहुत प्रसन्न हुए। कैकेयी माता को वंदन करके कहने लगे—माँ! मेरे मन में जो इच्छा थी, उसी के अनुसार आपने वरदान माँग लिया है। मेरे मन में बहुत इच्छा थी कि मेरा भरत राजा हो, मुझे राजा होने की इच्छा नहीं है। अपने भरत को राजा देखने की इच्छा है। मेरे भाई का सुख ही मेरा सुख है। मेरे भाई की जीत मेरी जीत है, मेरे भाई की हार ही मेरी हार है।

जैसा प्रेम रामजी के मन में है, वैसा ही भरतजी के मन में भी है। लक्ष्मणजी के मन में भी है। राम वन में जाने के लिये निकले तब लक्ष्मण कैसे घर में रह सकते थे? लक्ष्मणजी घर में न रह सके। लक्ष्मणजी की धर्मपत्नी घर में हैं, माता-पिता घर में हैं। लक्ष्मणजी का राज्य में हिस्सा है पर लक्ष्मणजी को तो रामजी चाहिए। अन्य किसी की चाहना नहीं है। खेल में भी रामजी ने कभी छोटे भाई लक्ष्मणजी को नाराज नहीं होने दिया है। राम का प्रेम ही ऐसा था कि राम के बिना लक्ष्मण नहीं रह सकते। रामजी के पीछे-पीछे लक्ष्मणजी भी वन में गये हैं।

रामायण की कथा में आता है कि लंका के युद्ध में मेघनाद ने लक्ष्मणजी पर शक्ति का प्रहार किया है। लक्ष्मणजी को मूर्छा आ गई है। रामजी लक्ष्मणजी का मस्तक गोद में रखकर बैठे हैं। लक्ष्मण के सिर पर हाथ रखकर सहलाते-सहलाते रोते हैं। जगत् में बहुत खोज करने पर सीताजी के समान स्त्री कदाचित मिल सकती है पर मेरे लक्ष्मण जैसा भाई कभी नहीं मिलेगा। ऐसा भाई कभी हुआ नहीं, न कभी होगा। मुझे जरा भी कष्ट हो तो मेरा भाई सह नहीं सकता। मेरे भाई का मेरे प्रति अतिशय प्रेम है। भाई! आज तुम क्यों बोल नहीं रहे हो? क्यों नाराज हो? सुषेन वैद्य ने आकर कहा—सूर्योदय से पहिले संजीवनी वनस्पति ले आइए तो ही लक्ष्मण जीवित रह सकेंगे। सूर्योदय के बाद शायद ये न जी सकें। जल्दी जाइए और वनस्पति ले आइए। तब रामचन्द्रजी ने कहा—जहाँ मेरा भाई जायगा, मैं भी जाऊँगा, मुझे अयोध्या की जरूरत नहीं है। मुझे सीताजी की भी जरूरत नहीं है। मुझे मेरा लक्ष्मण चाहिये मैं अपने भाई के पीछे-पीछे जाऊँगा। उसने मेरे लिए सब कुछ छोड़ दिया। इसका कैसा प्रेम है।

आप अपने भाई से प्रेम कीजिए, आपका भाई भी आपसे प्रेम करेगा। आप कभी अपने भाई से प्रपंच करेंगे तो वह भी प्रपंच करेगा। आपके शरीर में जो परमात्मा हैं वे ही उसके शरीर में भी हैं। देह सबके भिन्न-भिन्न है। देह में देव तो एक ही हैं। आप भाई से कपट करेंगे तो कभी भाई को भी कपट करने की इच्छा होगी।

रामचन्द्रजी का बंधु-प्रेम अलौकिक है। जैसा प्रेम रामजी का है वैसा ही प्रेम भरतजी का है। भरतजी ने चौदह वर्षों तक उपवास किये हैं– वे सोचते हैं कि श्रीराम वन में कंदमूल खाते हैं और मैं अनाज खाऊँ? भरतजी का ऐसा नियम था कि कोई साधु आये, कोई ब्राह्मण आये, गरीब आये, उसे प्रेम से मिठाई खिलाते थे, पर श्रीराम-वियोग में भरतजी ने स्वयं चौदह वर्षों तक अनाज नहीं खाया है। भरतजी की निष्ठा है–श्रीसीता-राम जब घर आ जायेंगे, जब मेरे राम भोजन करेंगे, तब मैं दर्शन करूँगा और बाद में मैं प्रसाद पाऊँगा।

संत ऐसा वर्णन करते हैं कि श्रीरामजी की तपस्या से भी भरतजी की तपस्या अधिक है। वन में तप करना सरल है पर राजमहल में तप करना कठिन है। भरतजी राजमहल में तप कर रहे हैं। रामजी वन में तप कर रहे हैं। वहाँ श्रीसीताजी रामजी की सेवा में हैं, लक्ष्मणजी भी हैं। रामायण में ऐसा वर्णन आता है कि भरतजी ने राम-वनवास के चौदह वर्षों में पत्नी की सेवा नहीं ली है। उन्होंने विचारा है मैं राम का सेवक हूँ मुझे किसी की सेवा नहीं लेनी है। वन में श्रीराम दर्भ की शय्या पर सोते हैं राजमहल में भरतजी धरती पर ही सोते हैं। कैसा बंधु-प्रेम है। आप अपने भाई से प्रेम कीजिये। भाई से कपट न कीजिये। पाप और पारा एक-न-एक दिन बाहर आता ही है, पारा कभी छिप नहीं सकता, पाप भी छिपाया नहीं जा सकता। भाई के साथ कपट करेंगे तो आज नहीं, तो दो वर्ष के बाद, दस वर्ष के बाद प्रकट होगा ही।

लोग मंदिर में जाते हैं कथा सुनते हैं, पर भाई से कपट करते हैं। एक भाई ने एक बार कहा–महाराज आप कथा बहुत अच्छी करते हैं। मुझे एक ऐसा मंत्र दीजिये कि कोर्ट में मेरी जीत हो जाय। मैंने पूछा–भाई! आपने किस पर दावा किया है? उसने कहा–अपने भाई पर दावा किया है। उनसे मुझे कहना पड़ा कि आपकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है। आपने अपने भाई पर दावा किया है? बड़ा भाई राम-सा होगा तो छोटा लक्ष्मण-सा हो जायगा, पर अगर बड़ा भाई रावण सा होगा तो छोटा कुम्भकर्ण-सा हो जायगा।

प्रेम और मान कभी न माँगना। प्रेम और मान सभी को देना। आप शुद्ध भाव से भाई से प्रेम करेंगे तो आपका भाई आपके साथ अवश्य प्रेम करेगा। श्रीरामचन्द्रजी का बन्धु-प्रेम अनन्य था।

श्रीरामजी का संयम अलौकिक है। रामचन्द्रजी प्रत्येक इन्द्रिय पर संयम रखते हैं। संयम से बहुत सुख मिलता है, सम्पत्ति से थोड़ा सुख मिलता है जिनके जीवन में संयम है, वही भक्ति कर सकता है, उसका ही ज्ञान स्थिर रहता है, संयम के बिना ज्ञान टिकता नहीं है। घट में छिद्र हो तो छिद्र वाला घट कभी भरा हुआ नहीं रहेगा। जिस घड़े में पानी भरना है उसकी बहुत देखभाल की जाती है। कहीं उसमें छिद्र न पड़ जाय। शरीर एक घड़ा है इसमें नौ छिद्र हैं। आँखों से, कानों से, जीभ से ज्ञान बाहर बह सकता है। संयम से ज्ञान टिकता है। संयम से ही भक्ति होती है। जिसके जीवन में संयम है, वह अति सुखी है।

रामचन्द्रजी का संयम अद्भुत है। रामायण में लिखा है कि श्रीराम आँखें उठाकर किसी स्त्री की ओर देखते ही नहीं–

रामचन्द्रः परान्दारान् चक्षुणा नाभि वीक्ष्यते।

कभी किसी स्त्री पर दृष्टि पड़ जाये तो रामचन्द्रजी मातृ-भाव से देखते हैं, स्त्री-भाव से नहीं देखते हैं। प्रत्येक स्त्री में मातृभाव रखने वाला भगवान् को बहुत प्रिय लगता है। जगत् के स्त्री-पुरुषों को काम-भाव से देखने वाला प्रभु को प्रिय नहीं लगता है। उसकी भक्ति सफल नहीं होती है। रामचन्द्रजी प्रत्येक स्त्री में मातृभाव रखते हैं। रामजी के सद्गुणों का वर्णन कौन कर सकता है? श्रीरामजी अति सरल हैं। श्रीकृष्ण भगवान् भी सरल हैं, पर श्रीकृष्ण सज्जन के साथ सरल हैं, दुर्जन के साथ सरल नहीं हैं। श्रीराम सज्जन-दुर्जन, सभी के साथ सरल हैं। प्रभु के घर सुदामादेव आये हैं, जान कर द्वारिकानाथ दौड़ कर पहुँचे। सुदामा को आलिंगन दिया। सिंहासन पर बैठाया। उनके चरण पखारे। श्रीकृष्ण ने सुदामादेव की पूजा की। श्रीकृष्ण को ब्राह्मण बहुत प्रिय हैं। सुदामा सच्चा ब्राह्मण था। सुदामा सरल था। श्रीकृष्ण सुदामा के साथ सरल हैं। महाभारत में वर्णन है–द्रोणाचार्य को मारने के लिए श्रीकृष्ण कपट करते हैं। सुदामा भी ब्राह्मण, द्रोणाचार्य भी ब्राह्मण। द्रोणाचार्य कोई साधारण ब्राह्मण नहीं हैं। उन्हें चार वेदों और छह शास्त्रों का ज्ञान है, परिपूर्ण ज्ञान है। द्रोणाचार्य ब्रह्म तेजस्वी हैं, फिर कृष्ण को प्रिय नहीं लगते। बहुत पढ़े हैं पर धर्म छोड़ते हैं? बहुत पढ़ा व्यक्ति धर्म छोड़ देता है वह प्रभु को प्रिय नहीं लगता है। प्रभु उसे बहुत सजा देते हैं। बड़ा वह है जो धर्म की मर्यादा में रहता है। इतना बड़ा समुद्र है, पर वह मर्यादा में ही रहता है। चन्द्र-सूर्य परमात्मा की मर्यादा में रहते हैं। एक मानव ही ऐसा दुष्ट है कि जब उसे अधिक धन, मान मिलता है, तब धर्म की मर्यादा को वह तोड़ देता है। स्वेच्छाचारी जीवन व्यतीत करने लगता है। द्रोणाचार्य महान् वीर हैं; ज्ञानी हैं, पर उन्होंने धर्म छोड़ा, इससे वे प्रभु को प्रिय नहीं लगते हैं।

युद्ध करना ब्राह्मण का धर्म नहीं है। ब्राह्मण कभी युद्ध नहीं करता है। कदाचित कभी युद्ध करना भी पड़े तो भी धर्म की रक्षा के लिये, अधर्म के विनाश के लिए ही वह करेगा। द्रोणाचार्य जानते थे कि दुर्योधन दुष्ट है, फिर भी वे अधर्म के पक्ष में रहकर युद्ध करते हैं। द्रोणाचार्य जानंबूझ कर पाप करते हैं और इससे सुदामा के चरणों की पूजा करने वाले कृष्ण द्रोणाचार्य से कपट करते हैं।

महाभारत में वर्णन आता है। द्रोणाचार्य ने बहुत प्रहार किये हैं। प्रभु ने सोचा कि यह बूढ़ा जीता रहेगा तो अनर्थ करेगा। इससे अब इसे मारना है। द्रोणाचार्य ऐसे तपस्वी थे, ऐसे शक्तिशाली थे कि वे अपनी इच्छा से ही मर सकते थे, उन्हें कोई मार नहीं सकता था। वे इच्छा-मरणींय थे। इससे प्रभु ने कपट किया। अस्वत्थामा नाम का हाथी था। उस हाथी को भीमसेन ने मार डाला। द्रोणाचार्य के पुत्र का नाम भी अश्वत्थामा था। प्रभु ने कहा—महाराज! आप लड़ रहे हैं पर आपके अश्वत्थामा की मृत्यु हुई है। द्रोणाचार्य ने यह सुना। बहुत दुःखी हुए। एक ही पुत्र था। वे सोचने लगे—अगर पुत्र ही मर गया तो फिर मुझे लड़ने की क्या जरूरत है? अब मुझे जीना नहीं है। पर द्रोणाचार्य ने फिर सोचा—शायद ये कृष्ण झूठ बोल रहे हों, और अगर ये झूठ बोलें तो उन्हें पूछने वाला भी कोई नहीं है। शास्त्र की मर्यादा जीव के लिए है, ईश्वर के लिये नहीं है। द्रोणाचार्य को आशंका हुई। वे जानते थे कि कुछ भी हो जाय पर धर्मराज झूठ नहीं बोलेंगे। धर्मराज मुझसे कहेंगे कि अश्वत्थामा मर गया तो मैं प्राण छोड़ूँगा।

श्रीकृष्ण को पता लगा कि द्रोणाचार्य धर्मराज से पूछने जा रहे हैं। प्रभु ने धर्मराज से कहा—द्रोणाचार्य जब पूछने आ जाय, तब कहना कि अश्वत्थामा मर गया है। धर्मराज धर्म की मूर्ति हैं। धर्मराज ने कहा—महाराज! मैं जान रहा हूँ कि अश्वत्थामा नाम का हाथी मरा है, मानव नहीं मरा है। मुझे झूठ बोलने का पाप लगेगा। प्रभु ने कहा—सजा देना मेरे हाथ में है, मैं बाद में देख लूँगा, आपको सजा नहीं होगी। मैं कह रहा हूँ, ऐसा कहिये। धर्मराज ने हाथ जोड़े—आप ईश्वर हैं, पर मैं जीव हूँ। मेरे गुरुदेव ने मुझे आज्ञा दी है कि सत्यं वद, धर्मं चर। मैं असत्य नहीं बोलूँगा।

श्रीकृष्ण उसी समय धर्मराज को सत्य का अर्थ समझा रहे हैं—अरे! सत्य का अर्थ आप नहीं जान रहे हैं। सबके प्रति सद्भाव रखकर समाज के कल्याण के लिए विवेक से बोलना सत्य है—

सत्यं भूतहितं प्रोक्तम्

दुर्योधन का राज्य अधर्म का राज्य है। अधर्म के राज्य में प्रजा दुःखी है। श्रीकृष्ण कपट करते हैं पर श्रीकृष्ण का कोई स्वार्थ नहीं है। श्रीकृष्ण समाज को सुखी करने के लिए कपट करते हैं। धर्मराज ने शंका की—आपने मुझे कहा कि सर्व में सद्भाव रखना चाहिये। तो सर्व में द्रोणाचार्य

भी आ जाते हैं कि नहीं? श्रीकृष्ण ने कहा–सर्व में द्रोणाचार्य आ गये, मैं द्रोणाचार्य में सद्भाव ही रखता हूँ, पर वे ब्राह्मण होकर युद्ध कर रहे हैं, पाप कर रहे हैं। वे जब सुनेंगे कि अश्वत्थामा मारा गया, तब युद्ध छोड़ेंगे, इससे पाप छूटेगा और वे सुखी होंगे। आज भले ही उन्हें दुःख हो रहा हो। धर्मराज ने सोचा कि श्रीकृष्ण सच ही कहते हैं। झूठ बोलने में भी द्रोणाचार्य के प्रति सद्भाव ही है। धर्मराज से द्रोणाचार्य पूछते हैं कि क्या अश्वत्थामा मरा है? धर्मराज कहते हैं कि हाँ! अश्वत्थामा मारा गया है? पर धर्मराज को थोड़ी शंका होने लगी कि मुझे पाप तो नहीं होगा। इससे बाद में कहते हैं, 'नरो वा कुञ्जरो वा।' उसी समय प्रभु ने शंख बजाया। द्रोणाचार्य 'नरो वा कुञ्जरो वा' सुन न सके। परमात्मा को जो करना है वही होता है।

श्रीकृष्ण सज्जन के साथ सज्जन–सरल हैं, पर दुर्जन के साथ सरल नहीं हैं। दुर्योधन को कपट करके उन्होंने मारा है। दुष्ट जिन्दा रहता है तो अनेकों को रुलाता है। उसे कपट से मारने में दोष नहीं है। श्रीकृष्ण की राजनीति है और रामजी की धर्मनीति है। राजनीति कहती है कि अति पापी को मारिये, अति पापी जिन्दा रहता है तो अनेक को मारता है, अनेक को दुःखी करता है। अति पापी की हिंसा, हिंसा नहीं है, अहिंसा ही है। श्रीकृष्ण सज्जन के साथ सरल हैं। श्रीराम सरल–दुर्जन सभी के साथ सरल हैं। रामायण में वर्णन आता है कि श्रीराम रावण के साथ भी सरल हैं। रावण की भी स्वीकृति है। रावण का बख्तर फट गया है, रावण बहुत घायल हुआ है, उसका रथ छिन्न–भिन्न हो गया है। तब श्री रामचन्द्रजी ने रावण से कहा कि आज तुम बहुत थक गये हो। अब आराम करो, भोजन करो, अब कल युद्ध करेंगे।

राजनीति कहती है कि शत्रु घायल है तब शत्रु को मार डालिये। कपट करके भी उसे मारिये, पर रामजी की धर्मनीति है।

रामजी ने जब यह कहा, तब रामजी के कथन से रावण का हृदय द्रवित हुआ। उसकी आँखें गीली हो आयीं, उसके मन में ऐसी इच्छा हुई अभी दौड़कर रामजी के चरणों में मस्तक रख दूँ। राम कैसे सरल हैं। लोग रामजी की प्रशंसा जितनी करते हैं बहुत कम है। रावण को प्रतीति हुई कि राम बहुत सरल हैं। रामजी की सरलता का वर्णन कौन कर सकता है?

रामायण में अनेक स्थान पर रामजी की सरलता का निरूपण हुआ है। प्रभु तरुतर, कपि डार पर–रामजी वृक्ष के नीचे बैठते हैं और बंदर वृक्ष के ऊपर बैठते हैं। कानून तो ऐसा है कि मालिक ऊपर बैठते हैं और दास नीचे बैठते हैं, पर ये सब दास–सेवक ऐसे हैं कि ऊपर चढ़कर बैठते हैं। वृक्ष पर शांति से बैठते तो ठीक था पर ये तो वृक्ष पर कूदते हैं, खेलते हैं, फिर भी रामजी को नाराजगी नहीं होती! राम बहुत सरल हैं। जो अति सरल हैं, वे किसी के दोष नहीं देखते हैं।

रामायण में केवट-प्रसंग बहुत सुन्दर है। रामजी वन में जा रहे थे तब, यह केवट रामजी के चरण पखारता है। रामजी को नाव में बैठता है। राम लक्ष्मण जानकी को नाव में बैठाकर गंगा पार करवाता है। श्रीसीताजी गंगा पार करके आती हैं। नाव से उतरकर रामजी गंगा-तट पर खड़े हैं। केवट को खाली हाथ लौटाना रामजी को दुःखी कर देता है। केवट को विदा करते हुए रामजी को बहुत संकोच होता है। कभी किसी ने थोड़ी भी सेवा की हो तो रामजी भूलते नहीं हैं। आज रामजी के पास धन नहीं है। तपस्वी बनकर रामजी आये हैं। स्वामी की दृष्टि धरती पर है। उन्हें बहुत संकोच हो रहा है। सोचते हैं कि इस गरीब को मैं कुछ नहीं दे पा रहा हूँ। इसने मेरी बहुत सेवा की है। तभी केवट दौड़कर आ पहुँचा। श्रीसीताजी के चरणों में बह बार-बार वंदन करता है। प्रभु की आँखें भर आयी हैं। एक पैसा भी इसे दिया नहीं। इसने बहुत सेवा की। बहुत बार प्रणाम कर रहा है।

श्री सीताजी समझ गयीं। सीताजी की उँगली में एक सुन्दर अँगूठी थी। माताजी ने अँगूठी उतारकर रामजी के हाथ में दे दी। आप जरा भी संकोच न रखिये। यह अँगूठी इसे दे दीजिये। श्रीरामजी अँगूठी केवट को देने लगे। तब केवट ने इन्कार कर दिया-महाराज मैं गरीब हूँ पर मेरा ऐसा नियम है कि कोई गरीब, साधु-सन्त, तपस्वी आ जायें तो मैं उतराई नहीं लेता हूँ। केवट ने अनेक वर्षों तक ऐसी सेवा की थी। इससे ही श्रीरामजी उसकी नाव में बैठे थे।

उसने श्रीरामजी से कहा-मैं आप से कुछ नहीं ले सकता। श्रीरामजी समझाने लगे-यह उतराई नहीं है। मैं प्रेम से प्रसाद दे रहा हूँ। श्री रामजी जानते हैं कि यह गरीब है। छोटी सी कुटी में रहता है। बहुत गरीब है। रामजी कहने लगे-प्रसाद तो लेना ही चाहिये। केवट बार-बार रामजी को वंदन करता है। हाथ जोड़कर कहता है-मैं छोटे मुँह की बड़ी बात कह दूँ, तो क्षमा कीजियेगा। बात यह है कि आज का दिन प्रसाद लेने का नहीं है। आज आप मेरे स्वामी नंगे पाँवों चलते हैं। आज मैं प्रसाद नहीं लूँगा। मेरी ऐसी भावना है कि चौदह वर्षों का वनवास सुख से पूर्ण करके आप जब लौटें, तब मुझे पुनः सेवा का लाभ दीजियेगा। आप श्रीसीताजी के साथ सुवर्ण सिंहासन पर विराजमान हों, आपका राज्याभिषेक हो और मैं आपके दर्शन करूँ। उस समय आपको जो उचित लगे वह दीजिये। आप राजाधिराज होकर मुझे जो प्रसाद देंगे, मैं लूँगा, आज कुछ नहीं लूँगा। श्रीसीताजी की आँखों में प्रेमाश्रु आये। विचारने लगीं कि यह केवट अनपढ़ है, गरीब है पर इसका हृदय गंगाजल के समान शुद्ध है, इसकी कैसी सुन्दर भावना है!

रामायण में एक कथा है। रावण को मारकर रामजी, श्रीसीताजी, श्रीलक्ष्मणजी और वानर सेना के साथ पुष्पक विमान से, लंका से निकले और अयोध्या पहुँचे। श्रीसीता रामजी जिस दिन अयोध्या पहुँचे, वह था बैशाख शुक्ल पंचमी का दिन। लोग बहुत प्रसन्न हुए। सभी ने आग्रह किया

कि अब तुरन्त राज्याभिषेक होना चाहिये। इससे बैशाख शुक्ल सप्तमी के दिन श्रीसीता-रामजी का राज्याभिषेक हुआ। बहुत बड़ा दरबार हुआ। अनेक देशों के राजा आये, देव आये। रामजी को भेंट समर्पित की गई। जय-जयकार हुआ। बहुत भीड़ है। सुवर्ण-सिंहासन पर रामजी विराजमान हैं और चारों ओर देख रहे हैं। सीताजी ने पूछा-क्या आप किसी को खोज रहे हैं? किसे खोज रहे हैं? तब रामचन्द्रजी ने कहा ये सब मेरे दर्शन के लिये आये हैं पर मुझे जिसके दर्शन की इच्छा है वह कहीं दिखाई नहीं दे रहा है। श्रीसीताजी को आश्चर्य हुआ। ऐसा कौन है कि जिसके दर्शन की इच्छा प्रभु को हो रही है? ऐसा कौन भाग्यशाली है कि जिसे देखने की इच्छा प्रभु को हो रही है?

रामचन्द्रजी ने कहा-तुम्हें याद है कि जिस केवट ने हमें गंगा पार करवायी थी, उसने कहा था कि राज्याभिषेक के बाद मुझे प्रसाद देना। वही केवट नहीं आया है। श्रीराम केवट की सेवा को नहीं भूले हैं। राज्याभिषेक के बाद प्रभु ने सब का सम्मान किया है। शृंगवेरपुर के राजा गुहक को उन्होंने बुलाया और कहा कि तुम्हारे गाँव में मैं आया था, तब जिस केवट ने मुझे गंगा पार करवायी थी, उस केवट के लिये प्रसाद ले कर जाना। रामजी ने केवट के लिये अनेक आभूषण वस्त्र भेजे हैं।

दुःख में किसी ने थोड़ा पानी भी दिया हो तो उसे न भूलना। किसी का उपकार न भूलना और किसी का अपकार मन में न रखना। थोड़ी भी किसी ने सेवा की हो तो याद रखना। परमात्मा आपको संपत्ति दें, तब उपकार का बदला विवेक से चुका देना। हृदय रामजी जैसा सरल रखना।

आप भले ही साधु न बन सकें, आप सरल बनिये। जिसका हृदय सरल है, वह साधु है भले ही वह बँगले में रहता हो। जिसका हृदय सरल है, उसके हृदय में भगवान् का प्रवेश होता है। छल-कपट न कीजिये। कपट से हृदय टेढ़ा हो जाता है। कपट करने वाला मूर्ख होता है। कपट से बहुत नुकसान होता है। भले ही थोड़ा भौतिक लाभ मिलता हो, शांति नहीं मिलती है। परिवेश से साधु होना सरल है, हृदय से साधु होना कठिन है। दूसरे का काम कर देने वाला साधु है। दूसरे के कार्य को सिद्ध करने के लिए प्राण का भी त्याग करता है वह साधु है।

श्रीराम अति सरल हैं, इससे राम-राज्य में प्रजा अति सुखी है। राम-राज्य में प्रजा को जैसा सुख मिला, वैसा स्वर्ग के देवों को भी नहीं मिला।

श्रीराम धर्म की मूर्ति हैं। रामायण में वर्णन है कि रामजी की प्रजा को कालदेव भी वंदन करता है और जिसे मरने की इच्छा है, उसे ही काल पकड़ सकता है। श्रीराम-राज्य में प्रजा अति सुखी है, पर सीता-रामजी को अति दुःख सहना पड़ा है। जो अति सरल है, उसे लोग बहुत त्रस्त करते हैं, इससे ही कृष्णावतार में भगवान् जरा टेढ़े हो गये हैं। श्रीकृष्ण सरल के साथ सरल हैं पर

कोई टेढ़ा होता है तो प्रभु भी टेढ़े हो जाते हैं। सरलता के कारण ही सीताजी को बहुत सहना पड़ा है। श्रीसीताजी सगर्भा हैं। आज उनकी वन में घूमने की इच्छा होती है। सुबह एक दूत आया और रामजी से कहने लगा—मैंने नगर चर्चा सुनते हुए रात्रि में अयोध्या के लोगों को आपकी निंदा करते हुए सुना। श्रीसीताजी रावण के घर में बहुत दिन रहकर आयीं हैं, और आप सीताजी को घर रखते हैं, इससे लोगों को आपके बारे में शंका हो रही है। रामचन्द्रजी ने यह सब सुना किन्तु उन्हें अच्छा न लगा।

रामचन्द्रजी ने राजधर्म को महत्व दिया है तथा पतिधर्म को गौण माना है। राजा का सिंहासन रानी को खुश करने के लिए नहीं है। राजा का पद तो प्रजा को प्रसन्न रखने के लिए है। श्रीरामजी जानते हैं कि सीताजी पवित्र हैं, महान पतिव्रता हैं और उन पर लगाया हुआ कलंक झूठा है पर लोगों को शंका हो रही है। वे चाहे जैसा बोल रहे हैं। जो व्यक्ति जैसा है, वह वैसे ही भाव से अन्य को देखता है। जो लोभी है, उसे दूसरा लोभी ही लगता है। जो कामी है, वह अन्य को काम-भाव से ही देखता है। ऐसे ही लोग श्रीसीताजी के लिए शंका करते हैं। श्रीसीताजी के स्मरण मात्र से हमारा हृदय पवित्र हो जाता है। एक अधम जीव था, वह माताजी के लिए चाहे जैसा बोला। उचित तो यह है कि जिसने माताजी की निंदा की है, उसे फाँसी की सजा देनी चाहिए थी। लंका-युद्ध के बाद सीताजी ने अग्नि में प्रवेश किया था। उसी समय सभी देव-ऋषि मुनियों ने कहा था कि यह महान पतिव्रता हैं। अब वह मूर्ख न जाने कैसा बोला! पर श्रीराम अति सरल हैं। उन्होंने उस आदमी को सज़ा न दी। प्रभु ने सोचा कि हम दोनों इस दुःख को सहन करेंगे। मुझ पर यह कलंक लगा है। अब मैं सीताजी का त्याग करूँगा तब ही कलंक दूर होगा। प्रभु ने ऐसा निश्चय किया। लक्ष्मणजी को उन्होंने बुलाया। और कहा—भाई! मेरा एक काम तुम्हें करना होगा। अयोध्या के लोग चाहे जैसा बोल रहे हैं। मैंने तुम्हारी भाभी का त्याग किया है। उसे रथ में बैठाकर, दूर जंगल में छोड़कर, तुम वापस आ जाना। श्रीलक्ष्मणजी का श्रीसीताजी के प्रति मातृ-भाव था। श्रीसीताजी मेरी माता हैं। वह व्यक्ति मेरी माता के लिए ऐसा कहता है? मैं उसे मारूँगा, उसे सजा दूँगा। श्रीराम लक्ष्मण का हाथ पकड़कर, उन्हें पास बैठाते हैं, कहते हैं, लक्ष्मण! तुम किसे सजा दोगे? अयोध्या के बहुत-से लोग ऐसा कहते हैं। प्रजा को प्रसन्न रखने के लिये मैंने यह तय किया है। लक्ष्मणजी ने हाथ जोड़े और कहा—'यह काम मुझ से नहीं होगा। श्रीसीताजी को अकेली छोड़कर, मैं वापस आ जाऊँ। मुझसे यह नहीं हो सकेगा, आप किसी और से कहिये।' रामजी ने कहा—लक्ष्मण तुम्हारे सिवाय यह काम कोई नहीं कर सकेगा। तुम्हें ही यह करना पड़ेगा। बहुत सोचकर मैंने यह निर्णय लिया है। यह मेरी आज्ञा है। अब कुछ न बोलना। सेवा-धर्म बहुत कठिन

है। सेवक कहलाना सरल है, सेवा करना अति कठिन है। देव की सेवा करना कठिन है। ज्ञानी होना सरल है, योगी होना सरल है किन्तु सेवक होना अति कठिन है। सेवक वही हो सकता है जो मन को मारता है। सेवक के पास अपना मन नहीं है। उसके लिए तो स्वामी का मन ही अपना मन है। स्वामी की इच्छा ही उसकी इच्छा है।

लक्ष्मणजी की इच्छा नहीं है। फिर भी उन्हें यह काम करा पड़ रहा है। रामचन्द्रजी ने सीताजी से कुछ भी नहीं कहा है। लक्ष्मणजी सीताजी को रथ में बैठाकर ले जाते हैं। प्रभु की आज्ञा थी कि रास्ते में कुछ न कहना। वन में पहुँचकर ही बताना। सीताजी तो ऐसा समझ रही हैं कि उनकी वन में घूमने की इच्छा के कारण ही रामजी ने उन्हें वन में घूमने के लिए भेजा है। रास्ते में अपशकुन हो रहे थे। घनघोर जंगल में पहुँचकर सीताजी रथ में से नीचे उतरीं। उसी समय लक्ष्मणजी छोटे बालक की तरह रोने लगे। वे महान वीर हैं, फिर भी रो रहे हैं! सीताजी अनजान हैं, इससे पूछती हैं—भाई! तुम्हें क्या हुआ? तुम क्यों रो रहे हो? लक्ष्मणजी साष्टांग प्रणाम करके कहने लगे—माँ! मैं यह काम नहीं करना चाहता था, पर मुझे करना पड़ा। मैं सेवक जो हूँ। अयोध्या के लोग चाहे जैसा बोलते हैं, इससे प्रभु ने आपका त्याग किया है। लक्ष्मण की बात सुनकर सीताजी व्याकुल हो गयीं, पर उन्होंने धैर्य धारण करके कहा—लक्ष्मण! अपने प्रति उनके प्रेम को मैं जानती हूँ। वे कभी मेरा त्याग नहीं कर सकते, पर प्रजा को प्रसन्न करने के लिये प्रभु ने यह लीला की है। राजा का पद प्रजा को प्रसन्न रखने के लिये है। वे जो कुछ करते हैं, उचित ही होता है। लक्ष्मण! उन्होंने मेरा त्याग किया, इसकी चिंता नहीं है पर मुझे उनकी चिंता है। उनकी सेवा अब कौन करेगा? वे किसी स्त्री का स्पर्श नहीं करते न दृष्टि उठाकर किसी स्त्री को देखते हैं। लक्ष्मण! आज तक मैंने किसी से नहीं कहा पर आज तुम्हें कह रही हूँ कि रात्रि में जब तक मैं उनके चरणों की सेवा नहीं करती, तब तक उन्हें नींद नहीं आती। अब उन्हें सुख की नींद नहीं मिलेगी। लक्ष्मण! मेरे वियोग में वे बहुत दुःखी रहेंगे। आप मेरी चिंता न कीजिये, आप अपने बड़े भाई की देखभाल करना। आप उनकी सेवा कीजियेगा। एक क्षण भी उनको छोड़ना नहीं। लक्ष्मण, श्रीराम-वियोग जैसा कोई दुःख नहीं है, पर मैं सहन कर लूँगी। मुझे आत्महत्या नहीं करनी है। आप जानते हैं कि मैं सगर्भा हूँ। सूर्यवंश का पवित्र तेज मेरे पेट में है। मैं बालक को बड़ा करूँगी। मुझे दुःख यह हो रहा है कि इस वन में कोई साधु-संत जब पूछेंगे कि आपके पति ने आपका त्याग क्यों किया? तब मैं क्या उत्तर दूँगी? ऐसा कहकर सीताजी विलाप करने लगीं। लक्ष्मण बुद्धिमान हैं। वे सीताजी को धैर्य बँधाने लगे—'माँ, पास में वाल्मीकि ऋषि का आश्रम है। वे आपके पिता के मित्र हैं, माता! यह आपका सेवक पुनः आपके दर्शन करने आयेगा। अब मुझे आज्ञा दीजिये।

सीताजी को वंदन करके लक्ष्मणजी लौट गये। सीताजी बहुत व्याकुल हो गयीं। उनकी यह दशा देखकर जंगल के पशु-पक्षी भी रोने लगे। सीताजी के दर्शन से पशु-पक्षियों के हृदय में भी उनके प्रति प्रेम उमड़ रहा था, इससे वे भी प्रेमाकुल होकर रोने लगे।

वाल्मीकि ऋषि ने सुना कि कोई स्त्री रो रही है। वे दौड़कर वहाँ पहुँचे। उन्होंने सीताजी को पहिचान लिया। वे समझाने लगे—बेटी! मैं सब कुछ जानता हूँ। तुम मेरी पुत्री हो। मैं तुम्हारे पिता का मित्र हूँ। सीताजी को समझाकर वाल्मीकिजी उन्हें अपने आश्रम में ले आये।

श्रीराम चक्रवर्ती सार्वभौम राजा हैं। श्रीराम के दोनों पुत्रों का जन्म एक ऋषि के आश्रम में हुआ है। लव-कुश को वाल्मीकि ऋषि, रामायण पढ़ा रहे हैं। भागवत की रचना गंगा तट पर हुई है और रामायण की रचना तमसा नदी के तट पर हुई है। वाल्मीकिजी का आश्रम तमसा नदी के तट पर है। लव-कुश रामायण की कथा बहुत सुन्दर कहते हैं। दोनों सात वर्ष के हैं।

समाज दोनों पक्षों में बोलता है। रामचन्द्रजी का सीता-त्याग कई लोगों को पसन्द है, कइयों को नापसन्द भी है। राम-राज्य में सभी आनन्द में हैं। लोगों को अति सुख मिला है, पर सीता-रामजी के सुख का विचार किसी को नहीं है। अकेले राम राजमहल में रहते हैं, अकेली सीताजी वाल्मीकि के आश्रम में रहती हैं, पर रामजी के पास जाकर कोई नहीं कहता कि माता सीता को बुला लीजिये, नहीं तो मैं अन्न त्याग करूँगा, मैं प्राण त्याग दूँगा।

एक ब्राह्मण का हृदय व्याकुल हुआ है। वे आज दरबार में बहुत विलम्ब से आये हैं। राजसभा में वशिष्ठजी को बहुत सम्मान दिया जाता है। वशिष्ठजी पधारे हैं। सब खड़े होकर उन्हें सम्मान देते हैं। रामचन्द्रजी ने वशिष्ठजी की पूजा की। वशिष्ठजी तपस्वी, ब्रह्मनिष्ठ महा ज्ञानी ब्राह्मण हैं। गुरुदेव के चरणों में वंदन करके रामजी पूछते हैं—आपको क्या हो रहा है? आपका स्वास्थ्य तो अच्छा है न? आपको आज सभा में आने में विलम्ब कैसे हुआ? वशिष्ठजी ने पूछा—सीताजी कहाँ हैं? वे महान् पतिव्रता हैं। सीताजी के स्मरण मात्र से इस ब्राह्मण की आँखों में आँसू आ गये, वे बोले—आप दोनों सिंहासन पर विराजमान हों और मैं दर्शन करूँ, यही आकांक्षा है। अन्य कोई इच्छा नहीं है। रामजी ने गुरुजी के चरण पकड़ लिये और कहा—आपके आशीर्वाद से सब अच्छा ही होगा। जो कुछ किया है, बहुत सोच-विचार के बाद किया है। गुरुजी, इस विषय में अब मुझे आप कुछ न कहियेगा।

रामचन्द्रजी को यज्ञ करना है। राजा को यज्ञ करना ही चाहिये। यज्ञ प्रजा के कल्याण का साधन है। वशिष्ठजी ने रामचन्द्रजी से कहा—अकेला पुरुष यज्ञ नहीं कर सकता, अकेली स्त्री भी यज्ञ नहीं कर सकती। पति-पत्नी के साथ में बैठेंगे तो ही यज्ञ होगा। सीताजी को बुलाइये। प्रभु

ने हाथ जोड़कर इन्कार कर दिया बोले–यह नहीं हो सकेगा। तब एक भूदेव ने कहा–राजा तो अनेक विवाह कर सकता है। आप किसी राजकन्या से विवाह कर लीजिये। रामचन्द्रजी ने हाथ जोड़े कहा–यह आप क्या कह रहे हैं? जगत् की प्रत्येक स्त्री मेरी माता है। रामचन्द्रजी का एक पत्नीव्रत है।

एक-पत्नीव्रत का हमारे शास्त्रों में बहुत महत्व है। देव, अग्नि और ब्राह्मण–इन तीनों की साक्षी में जिस पुरुष के साथ, जिस स्त्री के साथ विवाह किया गया हो, उसके साथ जो काम-भाव रखता है और अन्य सर्व स्त्री-पुरुष को जो भगवद्भाव से देखता है, वह गृहस्थ होने पर भी साधु है। रामजी का एक-पत्नीव्रत परिपूर्ण है।

दशरथ महाराज चाहे अनेक रानियों से विवाह करें, पर रामजी ने कभी ऐसा नहीं कहा है कि मेरे पिता ने बहुपत्नीत्व का आचरण करके भूल की है, पर रामजी ने बहुत विवेक से पिताजी की भूल सुधार ली है। बुजुर्गों का जो आचरण पवित्र होता है, उसका ही अनुकरण होता है। बुजुर्ग अगर कोई भूल करते हों तो पुत्र को उस भूल का अनुकरण नहीं करना चाहिए।

चार वेदों और छह शास्त्रों का अध्ययन करके विद्या परिपूर्ण करके, जब विद्यार्थी घर जाने के लिए तैयार होता है। जब गुरुदेव को वंदन करके वह कहता है–अब मुझे अन्तिम उपदेश दीजिये। गुरुदेव कहते हैं–बेटा, अब घर जाकर तुम विवाह करोगे। विवाह के बाद यह न भूलना कि तुम्हारी माता भगवान् हैं, तुम्हारे पिता परमात्मा हैं, तुम्हारे आचार्य परमात्मा हैं। मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव। पहिला क्रमाँक माता का है, दूसरा क्रम पिता का है और गुरुजी तीसरे क्रम पर आते हैं। गुरु कहते हैं–बेटा! बारह वर्षों तक तुम मेरे आश्रम में रहे हो, मेरी कई भूलें तुमने देखी होंगी। जीव मात्र भूल करता ही है, निर्दोष तो एक परमात्मा हैं। बेटा! मैंने जो भूलें की हैं, वैसी भूलें न करना। मेरे पवित्र आचरण का ही अनुकरण करना। गुरुजी को तम्बाकू का व्यसन हो तो चेला कहेगा कि हम भी तम्बाकू खायेंगे। तो यह उचित नहीं है। अरे, गुरुजी भले ही खायें, गुरुजी बड़े हैं। बड़े जो कहते हैं। वह कीजिये। बड़े जो कर रहे हैं, वह न कीजिये। गुरु की कोई भूल हो, गुरु व्यसनी हों तो शिष्य को वैसी भूल न करनी चाहिए, ऐसी गुरुजी की आज्ञा होती है। रामचन्द्रजी मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, मर्यादा का परिपूर्ण पालन करते हैं।

रामचन्द्रजी का एक-पत्नीव्रत है। यज्ञ करने के लिये भी रामजी दूसरा विवाह करने के लिए तैयार नहीं है। तब वशिष्ठजी ने निर्णय दिया–आप दूसरा विवाह करना नहीं चाहते, आप सीताजी को भी नहीं बुलाते हैं, तो आपको यज्ञ करने का अधिकार नहीं है। रामजी ने युक्ति की। सीताजी की सुवर्ण-प्रतिमा बनवाई और उसे शृंगार करवाकर तैयार किया। उस सुवर्ण प्रतिमा को साथ में बैठाकर रामचन्द्रजी यज्ञ करने बैठे।

वाल्मीकि ऋषि को यज्ञ का निमंत्रण मिला है। वाल्मीकि लव-कुश-दोनों शिष्यों के साथ अयोध्या में आये हैं। लव-कुश सात वर्ष के बालक हैं। रामायण की कथा बहुत सुन्दर शैली में कहते हैं। बड़े-बड़े ऋषि इस कथा को सुनकर डोल उठते हैं। सोचते हैं कि बालक कैसा बोलते हैं! रामजी ने बात सुनी-वाल्मीकि ऋषि के दो शिष्य आये हैं। रामायण की कथा बहुत सुन्दर कहते हैं। रामजी ने उन्हें सभा में बुलाया। ऋषियों ने कहा कि यज्ञ पूर्ण होने पर सभारंभ में कथा हो, ऐसी हमारी इच्छा है। हम कथा सुनना चाहते हैं। रामायण की प्रथम कथा, रामजी के दो बालक, रामजी के सम्मुख राम-दरबार में कर रहे हैं। अयोध्या की प्रजा सुन रही है। बड़े-बड़े ऋषि लव-कुश की कथा सुनने बैठे हैं।

रामजी के दरबार में लव-कुश ने चौबीस दिनों तक कथा की है। हर रोज बीस-बीस सर्गों की कथा करते हैं। श्रीराम कथा सुनने बैठे हैं। श्रीसीता-वियोग में रामचन्द्रजी श्रीसीताजी का चरित्र सुनते हैं। लव-कुश जब कथा का प्रारंभ करते हैं तब कहते हैं-हम एक महान पतिव्रता स्त्री की कथा कह रहे हैं। श्रीराम कथा सुनते हैं। अयोध्या के लोग कथा सुनते हैं। जो वयोवृद्ध थे वे लव-कुश को अपलक देख रहे हैं-वे सोचते हैं कि ये कैसे दीख रहे हैं! राम-लक्ष्मण जब छोटे थे, तब ऐसे ही दीखते थे! ये किसके बालक होंगे?

वक्ता से भी श्रोता का आसन ऊँचा न होना चाहिये। जब लव-कुश कथा करते तब श्रीराम सिंहासन छोड़कर नीचे बैठते थे। मर्यादा-पुरुषोत्तम की प्रत्येक लीला में मर्यादा है। रामजी ने लक्ष्मण से कहा-लक्ष्मण! इन दोनों को देखकर मुझे तृप्ति नहीं होती। मुझे ऐसा लगता है कि इन्हें सारा दिन देखता ही रहूँ। इन बालकों को देखकर मेरे हृदय से प्रेम प्रस्फुटित हो रहा है। ऐसी इच्छा होती है कि इन्हें हृदय से लगा लूँ। मेरा हृदय द्रवित हो रहा है। लक्ष्मण! मुझे इनका सम्मान करना है।

रामजी ने लव-कुश के लिये वस्त्राभूषण मँगाये हैं, तब लव-कुश ने कहा-हमारे गुरुदेव की आज्ञा है कि जब कथा कर रहे हों, तब कुछ न लेना। हम जंगल में रहते हैं। कंद-मूल खाते हैं। हम कभी अनाज भी नहीं खाते। सात वर्ष के वे बालक कहते हैं-हम अनाज भी नहीं खाते। तब प्रभु ने दृष्टि झुका ली। बालक कहने लगे-हम वन में तपश्चर्या करते हैं। ये वस्त्र-आभूषण हमारे काम के नहीं हैं।

रामचन्द्रजी ने कहा-लक्ष्मण! ये बालक कैसा बोल रहे हैं? मुझे इनका परिचय लेना है। इन बालकों की माता कौन होंगी? पिता कौन होंगे? लक्ष्मण! इन्हें बुरा न लगे, तुम विवेक से इनसे पूछ लो।

लक्ष्मणजी ने हाथ जोड़े हैं और बालकों से पूछ रहे हैं–आपकी कथा से रामचन्द्रजी को बहुत आनंद हुआ है। वे आपका परिचय चाहते हैं। आप कौन हैं? तब लव-कुश ने कहा–हम वाल्मीकि ऋषि के शिष्य हैं। लक्ष्मणजी ने कहा–आप वाल्मीकि ऋषि के शिष्य हैं, यह तो राजा राम भी जानते हैं, पर उनकी यह जानने की इच्छा है कि आपके माता-पिता कौन हैं?

लक्ष्मणजी ने जब सभा में प्रश्न पूछा, तब बालकों ने कहा–सनातन धर्म की मर्यादा है। जिसने घर छोड़ दिया, उससे घर का परिचय न पूछना चाहिये, गुरुदेव का परिचय पूछना चाहिये। साधु को, सन्यासी को, ब्रह्मचारी को घर का स्मरण कराने वाले को पाप लगता है। राजा राम सनातन धर्म की मर्यादा जानते हैं, फिर भी ऐसा प्रश्न क्यों पूछ रहे हैं। हमारे माता-पिता चाहे जो हों, राजा राम को यह जानने की क्या आवश्यकता है?

लव-कुश ने दरबार में राज्याभिषेक तक की रामायण की कथा की है। रामचन्द्रजी ने कहा–राज्याभिषेक के बाद की कथा जानने की बहुत इच्छा है। तब लव-कुश ने मना किया। कहा कि हमारे गुरुदेव की आज्ञा है, राज्याभिषेक तक की ही रामायण की कथा की जाय। राज्याभिषेक के बाद का राम-चरित्र सभा में वर्णन करने जैसा नहीं है। रामचन्द्रजी ने फिर दृष्टि नीचे झुकाली–विचारने लगे कि ये बालक सच ही कह रहे हैं।

लव-कुश वाल्मीकि ऋषि के साथ आश्रम में वापस आ गये। श्रीसीतामाता को वे साष्टाँग वंदन करते हैं। श्रीसीताजी ने बालकों को हृदय से लगा लिया। बालक कहते हैं–माँ! हम गुरुदेव के साथ यज्ञ में गये थे। वहाँ एक बड़े राजा थे। उनका नाम है राजा राम। वे यज्ञ कर रहे थे।

यह सुनकर श्रीसीताजी की आँखों में आँसू आ गये। श्रीसीताजी सोच रही हैं–पत्नी के बिना यज्ञ तो हो नहीं सकता। मैं यहाँ हूँ, यज्ञ किस तरह करते होंगे? माता को थोड़ी शंका हुई। प्रभु ने किसी राजकन्या से विवाह किया होगा। पत्नी के बिना यज्ञ हो ही नहीं सकता। उन्होंने यज्ञ किया अर्थात् उनकी दूसरी पत्नी है। मन में विचार आया–सीताजी रोने लगीं, इन्हें देखकर बालक भी रोने लगे। माँ! तुम्हें क्या हो रहा है? तुम क्यों रो रही हो? माता! तुम रोना नहीं, तुम रो रही हो, इससे हमें बहुत दुःख हो रहा है।

लव-कुश सीताजी को समझाने लगे–माँ, जब राजा राम यज्ञ कर रहे थे तब, उन्होंने साथ में सुवर्ण की एक प्रतिमा साथ में रखी थी। माँ! वह प्रतिमा तुम्हारे जैसी ही थी। हमें ऐसा लगा कि हमारी माता ही राजा राम के साथ बैठी हैं। माँ! राजा राम तुम्हारी प्रतिमा को क्यों साथ रखते हैं? सीताजी ने सोचा कि मेरी सुवर्ण-प्रतिमा बनाकर उन्होंने साथ में रखी है और यज्ञ कर रहे हैं। तब उन्हें विश्वास हो गया कि प्रभु ने दूसरा विवाह नहीं किया है। रामचन्द्रजी ने सीताजी का त्याग

नहीं किया है। राजा ने रानी का त्याग किया है। प्रजा को प्रसन्न रखने के लिये राजा ने रानी का त्याग किया है। सीताजी तो रामजी के साथ ही विराजमान हैं। श्रीराम, सीता के बिना रह ही नहीं सकते। श्रीसीताजी रामजी के बिना नहीं रह सकतीं। श्रीसीता रामजी का नित्य संयोग है।

श्रीराम चरित्र दिव्य है, श्रीसीताजी का चरित्र अति दिव्य है। वाल्मीकिजी ने ऐसा कहा है कि रामायण सीताजी का चरित्र है। रामायण में से सीताजी का पात्रत्व निकाल लीजिए, तो उसमें विशेष राम रहेंगे नहीं। श्रीसीताजी के कारण ही रामजी की शोभा है।

४४– जगत्-माँ श्रीसीताजी

स्त्री धर्म कैसा हो, यह बात श्रीसीताजी ने दिखाई है। स्त्री बहुत योग्य हो तो वह पति तथा पिता दोनों के कुलों को तार देती है। पुरुष लायक हो तो एक ही कुल को तार देता है। कई लोग पुत्र-जन्म होता है तो बहुत प्रसन्न होते हैं। मिठाई बाँटते हैं, पर पुत्री का जन्म हो तो मुँह बिगाड़ते हैं। अरे, पुत्री क्या बुरी है? उसे अच्छे संस्कार दीजिये। धर्म का शिक्षण दीजिये। वह योग्य बनेगी तो दो कुलों को तार देगी। श्रीसीताजी ने स्त्री-धर्म समझाया है। सीताजी महान् पतिव्रता है।

रामायण में वर्णन है—श्रीसीताजी की खोज में हनुमानजी समुद्र लाँघकर लंका पहुँचे। अशोकवन में सीताजी से मिले। बाद में जब हनुमानजी लौटने लगे तब श्रीसीताजी रोने लगीं। हनुमानजी ने कहा—माँ! आप रोइये नहीं, आपकी इच्छा हो तो आप मेरे कंधे पर बैठ जाइए, मैं अभी आपको रामजी के पास पहुँचाये देता हूँ।

तब सीताजी ने कहा—यह सच है कि तुम मेरे पुत्र के समान हो। मैं तुम्हारे कंधे पर बैठूँ तो जरा भी दोष नहीं है। तुम जितेन्द्रिय हो। बालब्रह्मचारी हो, पवित्र हो। पर मेरा स्त्री-धर्म मुझे मनाकर रहा है। अभी तक मैंने किसी पुरुष का स्पर्श नहीं किया है। रावण अपहरण करके मुझे उठाकर ले आया, तब मेरा कुछ बस न चला। मैंने कभी किसी पुरुष का स्पर्श नहीं किया है। बेटा! मैं तुम्हारा स्पर्श करूँ तो धर्म की मर्यादा टूटेगी। अब तो रामजी इधर आयें, रावण को मारकर, मुझे ले जायँ तो ही रामजी की कीर्ति बढ़ेगी।

स्त्री जान-बूझकर पुरुष का स्पर्श न करे। स्त्री के लिये पुरुष का स्पर्श वर्ज्य है। परपुरुष से स्त्री का पावित्र्य नष्ट होता है। साधु को, ब्राह्मण को स्त्री दूर से प्रणाम करे। स्त्री-धर्म की यह मर्यादा है। श्रीसीताजी के समान महान् पतिव्रता स्त्री कोई नहीं है। श्रीसीताजी वन में कभी जोर

से नहीं बोली हैं। रामायण में लिखा है कि रामजी को क्रोध आया है, पर सीताजी को कभी क्रोध नहीं आया है। वे बहुत मधुर बोलती हैं।

लंका युद्ध के बाद जब हनुमानजी राक्षसियों को मारने के लिये तैयार हुए तब सीताजी ने मना किया–किसी राक्षसी को न मारना। चरित्र संतों का भूषण है। उपकार का बदला उपकार से देने वाला संत है। हनुमानजी ने कहा–माँ, इन राक्षसियों ने आपको बहुत त्रास दिया है। मैंने स्वयं देखा है। तब माता सीता ने कहा–बेटा! वह तो रावण के कहने से उन्होंने त्रास दिया। तुम किसी राक्षसी को न मारना। मुझे इन पर बहुत दया आती है।

श्रीहनुमानजी ने सीतामाता का जय-जयकार किया–माँ, ऐसी दया तो रामजी में भी नहीं है। रामजी को राक्षसों पर दया नहीं आयी है; सीतामाता को आई है। श्रीसीताजी जगन्माता है। रामजी की माता कौशल्या हैं; सीताजी की कोई माता नहीं हैं। वे तो धरती से बाहर आई हैं और धरती में ही समा गई हैं! नैमिषारण्य में जानकी कुण्ड है। वहाँ साधु रहते हैं। वे कहते हैं–माताजी यहाँ धरती में लीन हो गई हैं।

रामजी ने अंतिम यज्ञ नैमिषारण्य में किया। यज्ञ में वाल्मीकिजी पधारे। उनकी इच्छा थी कि इस बार रामजी को समझाऊँगा कि वे सीताजी को स्वीकार करें।

ऋषि-समाज में वाल्मीकिजी ने प्रकट किया कि सीताजी निर्दोष हैं। सीताजी महान् पतिव्रता हैं। सीताजी पतिव्रता न हों तो मेरी हजार वर्ष की तपश्चर्या व्यर्थ है। ऋषि ने आवेश में आकर अयोध्या की प्रजा को बहुत खरी-खोटी सुनाई और क्रोध में रामजी को भी उलाहना दिया। रामजी ने सिंहासन से उठकर, दौड़कर ऋषि के चरण पकड़ लिये और कहा–मेरा दोष नहीं है। कलंक दूर करने के लिये ही मैंने सीताजी का त्याग किया है। अयोध्या की प्रजा को विश्वास हो जाय तो मैं सीता को स्वीकार करूँगा।

वाल्मीकिजी आश्रम में लौट आये हैं और रामदरबार में चलने के लिये सीताजी को समझाते हैं। सीताजी व्याकुल हुईं पर धैर्य धारण करके उन्होंने कहा–अपने पति की आज्ञा पालन करना मेरा धर्म है, मैं चलूँगी।

वाल्मीकिजी रामचन्द्रजी के पास आये और सीताजी को दरबार में लाने का दिन निश्चित हुआ। उस दिन बहुत बड़ा मेला लग गया। वाल्मीकिजी सीताजी को लेकर आ पहुँचे। माँ ने दोनों हाथ जोड़े थे। माँ जगत् को वंदन कर रहीं थीं। श्रीसीताजी राम-वियोग में अनाज नहीं खाती थीं, इससे उनका शरीर दुर्बल हो गया था। उन्हें देखकर लोग बहुत दुःखी हुए। पीछे-पीछे लव-कुश चल रहे थे। श्रीसीताजी का सुन्दर भाषण हुआ। वे बोलीं मन, कर्म, वचन से मैंने सुयोग्य रूप से

पतिव्रत-धर्म का पालन किया है। मैंने परपुरुष का कभी स्मरण नहीं किया है। अपने त्याग के बाद भी रामजी के प्रति मुझ में कभी कुभाव नहीं आया। यह सत्य हो तो, हे धरती माता तुम मुझे बुला लो। उसी समय बड़ा धमाका हुआ। धरती फटी और एक सुवर्ण-सिंहासन बाहर आ गया स्वर आये—माता, यह जगत् आपके रहने के लिये उपयुक्त नहीं है। लोगों को परख करना नहीं आता आप भीतर पधारिये।—सुवर्ण सिंहासन में बैठकर सीताजी अदृश्य हो गयीं। सीताजी का चरित्र दिव्य है। सीताजी ने जगत् को स्त्री-धर्म दिखाया है।

श्रीसीता-राम की लीला अति दिव्य है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की मर्यादा को तोड़ने वाले की भक्ति छिन्न-भिन्न होगी। उसका ज्ञान बह जायगा। भक्ति और ज्ञान का रक्षण धर्म की मर्यादा से होता है। जब तक देह भान है, तब तक धर्म की मर्यादा को न छोड़ना। सनातन धर्म को जानने के लिए बार-बार श्रीराम-सीता के दर्शन कीजिये। रामायण का बार-बार पठन कीजिये।

कई लोग शृंगार के उपन्यास पढ़ते हैं और व्यर्थ में समय बिगाड़ते हैं, जीवन बिगाड़ते हैं। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि शृंगार के वर्णन वाली पुस्तकों को न पढ़िये। बुरे शब्दों का प्रभाव मन पर पड़ता है। आपको जब समय मिले तब रामायण का पठन कीजिये। छोटी-बड़ी ढैया आने पर शनि महाराज एक-एक को सजा देते हैं। कई लोग ऐसा कहते हैं कि मुझे शनि परेशान कर रहा है! अरे, शनि क्या परेशान करेगा, तुम्हारे पाप तुम्हें—परेशान कर रहें हैं। शनि महाराज तो शिव स्वरूप हैं। शनि महाराज किये—गये पापों की सजा देते हैं। उनका न कोई मित्र है और न कोई शत्रु है। शनि महाराज बिना कारण किसी को भी परेशान नहीं करते हैं।

ढैया के समय में जो व्यक्ति रामायण का पाठ हनुमानजी को सुनाता है, उस पर उस ढैया का असर कम होता हैं।

श्रीसीताजी जब स्वधाम में पधारीं, तब हनुमानजी ने कहा—मुझे नहीं चलना है। जगत् में जब तक राम नाम है, जगत् में जब-तक राम कथा है, तब तक मुझे रहना है। हनुमान महाराज कृपा करके आज भी प्रत्यक्ष विराजमान हैं। जब भी समय हो, दिया जलाकर हनुमानजी के सम्मुख रामायण का पाठ कीजिये। इससे बुद्धि पवित्र होती है।

४५— भागवत और रामायण—परमात्मा के नाम-स्वरूप

परमात्मा श्रीकृष्ण का नाम-स्वरूप यह भागवत है। परमात्मा ने इस जगत् में स्वरूप छिपाया है पर प्रभु ने जगत् में नाम प्रकट रखा है। परमात्मा का स्वरूप नहीं दिखाई देता, प्रभु का नाम दिखाई देता है। नाम के साथ प्रीति करने वाले का पाप छूटता है। रामायण से प्रीति कीजिये।

रामायण के सातों काण्ड मानव की उन्नति के सात सोपान हैं। तुलसीदासजी ने एक-एक काण्ड को 'सोपान' ऐसा नाम दिया है। प्रथम सोपान, द्वितीय सोपान। एक-एक सीढ़ी चढ़ते हुए परमात्मा तक पहुँचना है। रामायण का प्रथम काण्ड है बाल काण्ड। आप हृदय से बालक जैसे बनिये। आपका ज्ञान बढ़े, परमात्मा आपको बहुत दें, धन दें, मान दें, पर हृदय से बालक जैसे बनिये। जिसका हृदय बालक-सा शुद्ध होता है, प्रभु के दरबार में उसे प्रवेश मिलता है। मन, वाणी और क्रिया–बालक में एक-सी होती हैं। बालक के मन में जैसा होता है, वैसा वह बोलता है और वैसा ही व्यवहार करता है। बालक को कपट करना नहीं आता है। बालक का मन शुद्ध होता है। बालक को देखने वाले का मन भी शुद्ध होता है। बड़े-बड़े साधु-महात्मा ज्ञान का अभिमान छोड़कर, अज्ञानी बालक से होकर भक्ति करते हैं। ज्ञान अच्छा है पर ज्ञान का अभिमान बुरा है। ज्ञान का अभिमान छोड़कर सन्त बालक से बनते हैं। बालकाण्ड हमें बोध देता है–प्रपंच छोड़िये, दंभ छोड़िये, बालक-सदृश बनिये। जिसका मन बालक-सा है, उसका तन अयोध्या-सा बनता है।

बालकाण्ड के बाद अयोध्या काण्ड है। जीवन थोड़ा है, छोटा है। छोटे से जीवन में युद्ध न कीजिये। जहाँ युद्ध है, वहाँ भगवान् नहीं है। जहाँ युद्ध नहीं है वहाँ अयोध्या है। कलह रहित काया अयोध्या है। अयोध्या शुद्ध प्रेम-भूमि है। अपने घर को अयोध्या बनाइये। छोटे-से जीवन में वैर न कीजिये। मन से ऐसा निश्चय कीजिए कि इस जगत् में मेरा कोई शत्रु नहीं है। किसी ने मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ा है। किसी ने मुझे जरा भी दुःख नहीं दिया है। कोई किसी को सुख नहीं दे सकता, दुःख भी नहीं दे सकता। अपने कर्म के फल सब भोगते हैं। मुझे दुःख देने वाला मेरा पाप है। जगत् में एक भी जीव के लिये कुभाव रखने वाला अशांत रहता है। पापी का तिरस्कार न कीजिये। पाप करने वाला पापी जीव दया का पात्र है। उसकी कुछ भूल होगी। उसे कुसंग लगा होगा। अयोध्या बोध दे रही है–वैर न कीजिये।

अयोध्या काण्ड के बाद आता है अरण्य काण्ड। थोड़े दिन भी वन में रहकर भक्ति करेंगे तो वासना का विनाश कर सकेंगे। घर में रहकर वासना का विनाश असम्भव सा है। गृहस्थ का घर भोगभूमि है। गृहस्थ के घर में काम के परमाणु घूमते हैं और वे मनुष्य का मन बिगाड़ते हैं। बारह मासों में अधिक नहीं तो दो मास घर छोड़कर तीर्थ में रहिये। सादा भोजन लेकर भक्ति कीजिये। सरकार भी छुट्टियाँ देती है पर छुट्टी पाने पर कई व्यक्तियों की नीयत बिगड़ जाती है। वे ऐसा सोचते हैं कि छुट्टी का अर्थ है, बहुत खाना, बहुत आराम करना। बहुत खाने वाला और बहुत आराम करने वाला कुम्भकर्ण का भाई है। आपको जब छुट्टियाँ मिलें, तब गंगा-तट पर, नर्मदा-तट पर जाकर उस सात्विक भूमि पर परमात्मा के जप कीजिये। विष्णु सहस्रनाम का पाठ

कीजिये। एक विष्णु यज्ञ करना हो तो दस हजार रुपये खर्च करने पड़ते हैं। कोई गरीब ब्राह्मण वैष्णव नर्वदा तट पर बैठकर शांति से विष्णु सहस्रनाम के बारह सौ पाठ करे, एक ब्राह्मण को भोजन कराये तो उसे विष्णुयज्ञ का फल मिलता है।

थोड़े दिनों के लिए भी घर छोड़िये। पवित्र तीर्थ में रहकर सत्कर्म कीजिये। कई लोग तीर्थ में पहुँचते हैं तो वहाँ भी अखबार माँगते हैं। अरे! तुम अखबार ही पढ़ना चाहते हो, तो घर छोड़कर तीर्थ में क्यों आये हो? तीर्थ में भगवान् के लिए जाना होता है। वहाँ सारा दिन भक्ति करनी है। भक्ति करते हुए, थक गये हों तो सो जाइए, पर अन्य काम न कीजिये। ऐसी निष्ठा रखिए कि यह समय तो भगवान् के लिये ही रखा है। सर्दी के मौसम में लोग विशेष पकवान-मेवा खाते हैं। सोचते हैं कि इस ऋतु में खाने से सारा साल शक्ति रहती है। बारह मास में से एक मास सादा भोजन लेकर, तीर्थ में रहकर, सारा दिन भक्ति करने से, दस-ग्यारह मास पाप से बचने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। जगत् के सभी महापुरुषों ने वन में रहकर भक्ति की है। तब वे अधिक महान् बने हैं। अरण्य काण्ड बोध देता है कि वासना का विनाश कीजिये। विलासी व्यक्ति से दूर रहिये। विलासी का संग मन को बिगाड़ता है। विरक्त साधुओं के संग रहकर, निरन्तर भक्ति कीजिये।

अरण्य काण्ड के बाद आता है किष्किन्धा काण्ड। किष्किन्धा काण्ड में श्रीराम-सुग्रीव की मैत्री की कथा है। सुग्रीव जीवात्मा है, श्रीराम परमात्मा है। परमात्मा के साथ मैत्री कीजिये। जगत् के साथ वैर न रखिये, पर किसी मानव के प्रति अधिक प्रेम न रखिये। वैर रखने से मन बिगड़ता है और किसी मानव से अधिक प्रेम करने से भी मन बिगड़ता है। प्रेम करने योग्य एक परमात्मा ही हैं। परमात्मा जीव के सच्चे मित्र हैं।

सुग्रीव को जब हनुमानजी का बल मिलता है, तब वे राम से मैत्री करते हैं। हनुमानजी का बल न मिलता तो सुग्रीव रामजी से मैत्री न करते। हनुमानजी का बल अर्थात् ब्रह्मचर्य का बल। काम की मैत्री छोड़िये तो राम की मैत्री होगी। काम शत्रु है पर मित्र सा लगता है, काम सबको रुलाता है। काम शब्द पर थोड़ा विचार कीजिये। क+आम–मिलकर काम हुआ। 'आम' शब्द का अर्थ है कच्चा। कच्चा सुख ही काम है और सच्चा सुख राम है। राम के साथ मैत्री करनी है तो काम की मैत्री छोड़िये।

जीव, ईश्वर से मैत्री कर ले तो जीवन सुखी हो जाय। किष्किन्धा काण्ड के बाद सुन्दर काण्ड आता है। इस काण्ड में हनुमानजी की कथा है। जिसका जीवन भक्तिमय है, उसका ही जीवन सुखी है, सुन्दर है। राम-सेवा ही हनुमानजी का जीवन है। श्रीराम-नाम ही हनुमानजी का भोजन है। श्रीहनुमानजी रामनाम के जप के बिना रह नहीं सकते। जो जीवन परमात्मा की सेवा के

लिये, स्मरण के लिये, परोपकार के लिये है, वह जीवन ही सच्चा है। परिवार के पोषण की बुद्धि तो कौआ भी रखता है। कौए में एक सद्‌गुण हैं, वह कभी अकेला नहीं खाता है। पत्तल पड़ी हों तो वह अपने भाइयों को बुलाता है। सुन्दर काण्ड में हनुमानजी की दिव्य लीला का वर्णन है।

सुन्दरकाण्ड के बाद है लंका काण्ड। लंका काण्ड में राक्षसों का विनाश किया गया है। जो रुलाता है, वह राक्षस है। काम-राक्षस, लोभ-राक्षस, क्रोध-राक्षस—ये सब राक्षस हैं। जो परमात्मा से प्रेम करता है, वह राक्षसों को मार सकता है। कई लोग ऐसा मानते हैं कि काम-क्रोध मन के विकार हैं। विकार के नष्ट होने के बाद मैं भक्ति कर सकूँगा। यह भूल है। अंतिम सांस तक विकार रहते हैं। भक्ति करेंगे तो धीरे-धीरे विकार नष्ट होंगे। भक्ति में ऐसी शक्ति है कि वह विकारों को नष्ट कर सकती है।

लंकाकाण्ड के बाद उत्तरकांण्ड आता है। जो काम, क्रोध इत्यादि राक्षसों को मार सकता है, उसका उत्तर जीवन मंगलमय होता है। तुलसीदास महाराज का उत्तरकाण्ड अति मधुर है। सर्व शास्त्रों का—सारतत्व इसमें है। उत्तरकाण्ड में काकभुशुंडिजी और गुरुजी महाराज की कथा आती है। ज्ञान और भक्ति का समन्वय इसमें है। इस तरह यहाँ रामायण के सात-काण्डों का थोड़ा भावार्थ समझाया गया है। रामायण अति दिव्य ग्रंथ है। जिस घर में रामायण का पाठ होता है, वहाँ झगड़ा नहीं होता है। बड़ा भाई रामायण का पाठ करता है तो छोटा भाई भी रामायण का पाठ करता है। रामायण का ऐसा दिव्य इतिहास है। राजनैतिक इतिहास पढ़ने से राग-द्वेष बढ़ते हैं। राजनैतिक इतिहास में देश के लिये मरने वालों की प्रशंसा की जाती है। देश के लिये मरने वाले देश की सेवा करते हैं—यह ठीक है, पर देश के लिये अच्छा जीवन व्यतीत करना उत्तम सेवा है। किस तरह जीवन व्यतीत करना है। यह रामायण सिखाती है। भाई कैसा होना चाहिये—रामायण बतलाती है। पुत्र कैसा होना चाहिये रामायण से यह सीखिये।

रामायण का प्रत्येक पात्र अलौकिक है। राम सा पुत्र हुआ नहीं है और दशरथ के समान पिता नहीं हुए हैं। दशरथ महाराज जब तक जीवित रहे, राम-दर्शन करके ही जीवित रहे। रामजी वन में पधारे तब दशरथजी, जी न सके। अंतिम साँस तक श्रीराम-श्रीराम रटते रहे। रामजी का सरल स्वभाव, रामजी के सद्‌गुण दशरथ महाराज को याद आते रहे सोचते रहे कि मैंने कहा था राज्याभिषेक करूँगा, पर मैंने उसे वन में भेज दिया। मेरे राम को जरा भी बुरा न लगा। वह मेरे पाँवों पड़ा और कहने लगा—पिताजी! धैर्य रखिये। आप तो धर्म-धुरन्धर हैं। विपत्ति के समय पर महापुरुष प्राण देकर भी धर्म का पालन करते हैं। पिताजी! आपके आशीर्वाद से वन में मेरा कल्याण होगा। दशरथ महाराज को मृत्यु-शय्या पर सब याद आ रहा है। उन्होंने अंतिम साँस तक

रामजी का स्मरण किया। दशरथ महाराज कौशल्याजी से बार-बार कहते हैं—जहाँ मेरा राम है, वहाँ मुझे ले जाओ। मैंने राम को ठीक से देखा तक नहीं—अंतिम सांस तक श्रीराम-श्रीराम जप करते हुए दशरथ महाराज ने प्राण छोड़ दिये। राम जैसा पुत्र नहीं हुआ, दशरथ जैसे पिता नहीं हुए। कौशल्या जैसी माता नहीं हुई। कैकेयी की दृष्टि में विषमता रही होगी पर कौशल्याजी के लिए चारों पुत्र समान हैं। भरत-लक्ष्मण से भाई भी नहीं हुए हैं। जगत्-जननी जानकीजी-सी पतिव्रता नहीं हुई हैं। हनुमानजी-सा बलवान् सेवक नहीं हुआ है। वशिष्ठजी-से सद्गुरु नहीं हुए हैं। रामायण का प्रत्येक पात्र अलौकिक है।

आप रामायण का पाठ कीजिये। रामायण हनुमानजी को सुनाइए। आपका पाप जल जायगा। आपका मन पवित्र होगा। राक्षस भी रामायण का पाठ करते हैं। उन्हें राम-चरित्र बहुत प्रिय है। राक्षसों को राम बहुत प्रिय हैं। घर के लोग प्रशंसा करें, या मित्र-मित्र की प्रशंसा करे तो ठीक है; पर शत्रु भी प्रशंसा करे तो वहाँ सच है। रामजी की प्रशंसा शत्रु भी करते हैं। रावण भी रामजी की प्रशंसा करता था। रामायण में कथा है—लक्ष्मण-इन्द्रजित का भयंकर युद्ध हुआ। लक्ष्मणजी इन्द्रजित का हाथ काटते हैं, और बाद में मस्तक काटते हैं। इन्द्रजित का हाथ उसके आँगन में गिरता है। इन्द्रजित की धर्मपत्नी सुलोचना अति सुन्दर है महान् पतिव्रता है। पतिदेव का हाथ देखकर उसकी आँखों में आँसू आते हैं। उसने हाथ जोड़ कर कहा—मैंने किसी भी पुरुष का स्मरण किया हो, मैंने सुयोग्य रूप से पतिव्रता-धर्म का पालन किया हो, तो यह हाथ मुझे लिखकर कह दे कि क्या हुआ है? हाथ लिखता है—लक्ष्मणजी के साथ युद्ध करते हुए मेरा मरण हुआ हैं, मैं तुम्हारी राह देख रहा हूँ, तुम तुरन्त आ जाओ। सुलोचना पढ़ती है और निश्चय कर लेती है—मेरे पतिदेव बुला रहे हैं, अब इस संसार में मुझे नहीं रहना है। सती-धर्म का पालन करते हुए मैं अग्नि में प्रवेश करूँगी।

सुलोचना रावण को वंदन करने आती है। पुत्र-वियोग में रावण शोक-मग्न है। महान वीर पुत्र की मृत्यु से उसे बहुत दुःख हुआ है पुत्र वधू को देखकर उसकी आँखों में आँसू आते हैं। सुलोचना सती-धर्म से अग्नि में प्रविष्ट होने के लिये तैयार हुई है। वह रावण से कहती है—मुझे आज्ञा दीजिये। तब रावण ने रोते-रोते कहा—बेटा! तुमने जो निश्चय किया है, वह उचित ही है पर मेरी बहुत इच्छा है कि अग्नि में प्रविष्ट होने से पहिले तुम एक बार श्रीराम के दर्शन कर लो। राम-दर्शन से जीवन-मरण मंगलमय होता है। यह कौन बोल रहा है? यह रावण बोल रहा है। कब बोलता है? जब उसके युवा पुत्र ने मृत्यु का वरण किया है!

सुलोचना ने रोते-रोते कहा—मैं अति सुन्दर हूँ। आप मुझे शत्रु के घर भेज रहे हैं। अगर कुछ अनर्थ हुआ तो? रावण कहता है—कभी अनर्थ हो ही नहीं सकता। रावण के मन में राम के प्रति

कितना विश्वास है! अति सुन्दर पुत्र-वधू को रामजी के पास भेजते हुए वह कहता है—श्रीराम तुम्हें माता के समान मान देंगे। जहाँ जितेन्द्रिय लक्ष्मणजी मंत्री हैं, जहाँ बाल ब्रह्मचारी श्रीहनुमानजी महाराज विराजमान हैं, वहाँ, राम-दरबार में तुम पर अन्याय नहीं होगा। रामजी के दरबार में अन्याय नहीं हुआ है। रावण राम दरबार में एक-एक की प्रशंसा करता है।

सुलोचना रामजी के पास जाती है। रामचन्द्रजी उसे बहुत मान देते हैं। श्रीराम उसकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं—यह महान् पतिव्रता नारी है। श्रीरामजी ने कहा—यह इन्द्रजित और लक्ष्मण का युद्ध न था। यह दो पतिव्रता स्त्रियों का युद्ध था। लक्ष्मण की धर्मपत्नी उर्मिला अयोध्या में पतिव्रता धर्म का यथोचित पालन करती है। यहाँ सुलोचना महान् पतिव्रता है।

सुग्रीव ने इस अवसर पर शंका की है आप इनकी बहुत प्रशंसा कर रहे हैं। आप कहते हैं कि यह महान् पतिव्रता हैं—तो फिर इनके पति का मरण क्यों हुआ? पत्नी के पुण्य से पति का आयुष्य बढ़ता है। पत्नी के पुण्य से पति सुखी होता है। पत्नी के भाग्य से लक्ष्मी आती है। इन्द्रजित का मरण क्यों हुआ? प्रभु ने कहा—सुलोचना के पति को काल भी नहीं मार सकता था पर यह तो उर्मिला और सुलोचना का युद्ध था। उर्मिला का बल बढ़ा और सुलोचना का बल कम हुआ। इसका एक ही कारण है। सुलोचना के पति परस्त्री में काम भाव रखने वाले रावण के पक्ष में थे और उर्मिला के पति लक्ष्मण परस्त्री में मातृभाव रखने वाले के पक्ष में रहे हैं और इससे उर्मिला की जीत हुई और सुलोचना की हार हुई।

इन्द्रजित का मस्तक सुलोचना को दिया गया है। पतिदेव का मस्तक देखकर सुलोचना रोने लगी। रामचन्द्रजी व्याकुल हुए! सुलोचना से उन्होंने कहा—बेटा! तुम रो रही हो। इससे मुझे दुःख हो रहा है। तुम रोना नहीं! तुम मेरी पुत्री हो। तुम कहो तो मैं तुम्हारे पति को जीवित कर दूँ और एक हजार वर्ष का आयुष्य दे दूँ! आप दोनों सुख से लंका का राज्य सँभालना मैं अभी यहाँ से वापस चला जाता हूँ। तुम्हारा रोना मुझ से सहन नहीं होता है। सुलोचना को आश्चर्य हुआ है। लोग रामजी की बहुत कम प्रशंसा कर रहे हैं। सुलोचना ने हाथ जोड़कर कहा—आप इन्हें जीवित करेंगे तो कदाचित् वे मुझे उलाहना देंगे। वे महान वीर थे। वीरगति प्राप्त हुई है, इससे जीवित होकर वे शायद ऐसा ही कहें कि तुमने यह क्या किया? इस से तो यही अच्छा है कि मैं उनके पीछे जाऊँ। मेरे पतिदेव मुझे बुला रहे हैं। रामजी को वंदन करके सुलोचना ने अग्नि में प्रवेश किया। राक्षसों को भी श्रीराम प्रिय लगते हैं। राक्षस भी रामजी की प्रशंसा करते हैं। राक्षस भी रामायण का पाठ करते हैं। रामायण के प्रधान आचार्य भगवान् शंकर हैं। रामायण के एक सौ करोड़ श्लोक हैं। एक बार ऐसा हुआ कि शिवजी के दरबार में देव आये ऋषि आये और राक्षस भी आये। सब शंकर

भगवान् से कहने लगे–महाराज! आपने रामायण बनायी है। वह हमें दीजिये। हम रामायण का पाठ करेंगे। अपना जीवन सुधारेंगे। सौ करोड़ श्लोक हैं, लेने वाले तीन हैं। शिवजी ने तीनों को श्लोक बाँट दिये। एक-एक के हिस्से में ३३ करोड़, ३३ लाख, ३३ हजार, ३३३ श्लोक आ सके। कुल ९९ करोड़, ९९ लाख, ९९ हजार, नौ सौ निन्यानवे श्लोक हुए। एक श्लोक बचा। तब तीनों झगड़ने लगे–यह श्लोक हमें दीजिये, हमें दीजिये। शंकर दादा को झगड़ा जरा भी पसन्द नहीं है। शिव अति शांत हैं, ऐसा भागवत में वर्णन है।

अति शांति ही शिव का स्वरूप है। शिव शांति रखें तो क्या आश्चर्य है? शिवजी के दरबार में जो भी आते हैं–पशु-पक्षी आदि सभी वैर भूलकर शांति से बैठते हैं। शिवजी का दरबार दिव्य है। शिवजी के दरबार में गणपति महाराज विराजमान हैं। गणपति महाराज का वाहन है चूहा। शिवजी के कंठ में है सर्प। चूहे और सर्प का जन्म-जन्म का वैर है। चूहा देखकर सर्प दौड़कर उसे पकड़कर मार डालता है पर भगवान् शंकर के दरबार में आने के बाद सर्प वैर भूल जाता है, वह हिंसा ही नहीं करता है। वह चूहे के साथ प्रेम से खेलता है। माता पार्वतीजी का वाहन है सिंह। आद्या शक्ति जगदम्बा सिंह वाहिनी हैं। देवी भागवत में माताजी के सिद्ध पीठों की कथा आती है। भारत में इक्यावन सिद्ध पीठ हैं। काशी में विशालाक्षी, कोचीन में कामाक्षी, मदुरा में मीनाक्षी आदि। माताजी के सिद्ध पीठों में सिंह की स्थापना होती है। आद्या-शक्ति जगदम्बा को सिंह बहुत प्रिय हैं। सिंह बहुत हिंसा करता है और वह क्रोधी भी है पर सिंह में एक बड़ा सद्गुण है। सिंह वर्ष में एक ही बार काम-सुख भोगता है। तीन सौ उनसठ दिन वह संयम रखता है। सिंह संयम की मूर्ति है। आद्या-शक्ति जगदम्बा सिंह पर बैठती हैं। माताजी का वाहन है सिंह और भगवान् शंकर का वाहन है नन्दीकेश्वर। सिंह और बैल का वैर-भाव जन्म-जन्म सिद्ध है। शिवजी के दरबार में आने के बाद सिंह वैर को भूलता है। भगवान् नारायण के दरबार में सभी शत्रु ही इकट्ठे हुए हैं। आदिनारायण परमात्मा का वाहन गरुड़ और भगवान् की शैय्या है शेष। गरुड़ और सर्प का भी जन्म-सिद्ध वैर है। पुराणों में कथा है कि गरुड़ और गरुड़जी की माता को सर्पों ने बहुत परेशान किया था पर नारायण के सम्मुख आने पर वे वैर भाव भूलते हैं। पर यह मानव कैसा है क्या आप जानते हैं? कई लोग मन्दिर में जाकर भी पक्ष खड़ा करते हैं। मन्दिर में सबको प्रेम से देखिये।

रामायण के एक श्लोक के लिये तीनों झगड़ने लगे। तब शंकर दादा ने कहा–झगड़ा न कीजिये। एक श्लोक मैं तीनों को बाँट दूँगा। श्लोक के अक्षर आप लोगों में बाँट दूँगा। श्लोक के अक्षर बत्तीस थे। प्रत्येक के हिस्से में दस-दस अक्षर आये और दो अक्षर बचे। इन दो अक्षरों के लिये भी ये तीन झगड़ने लगे तब शंकरदादा ने कहा–झगड़ा न कीजिये। ये दो अक्षर मैं किसी को

देना नहीं चाहता। ये तो मेरे कंठ में ही रहेंगे। ये दो अक्षर हैं–राम। सर्व वेदों का सार राम–नाम में है। राम–नाम अति मधुर है, अति श्रेष्ठ है। राम नाम की महत्ता का बहुत वर्णन हुआ है।

कई संत ऐसा मानते हैं, राम–कृष्ण एक ही हैं। राम–कृष्ण में भेद नहीं है। कई लोग ऐसा दुराग्रह रखते हैं कि रामजी में दो कलाएँ कम हैं। श्रीकृष्ण में सोलह कलाएँ परिपूर्ण हैं पर ऐसा भागवत में व्यासजी ने लिखा नहीं है। व्यास महर्षि ने तो भागवत में एक बार नहीं अनेक बार वर्णन किया है कि राम परिपूर्ण हैं। रामजी में दो कलाएँ कम हैं, ऐसा कहने वाला बहुत साहसी है। श्रीराम परिपूर्ण ब्रह्म–परमात्मा हैं। श्रीराम–श्रीकृष्ण एक ही हैं, फिर भी संतों ने ऐसा वर्णन किया है कि नाम में राम नाम अति–मधुर है और लीला में कृष्ण–लीला अति मधुर है। कृष्ण–लीला सर्व को आनन्द देने वाली है।

शंकर भगवान् रामनाम कंठ में धारण करते हैं। वे श्मशान में विराजमान हैं। विष पीने का प्रसंग आता है, सम्मुख भूत–प्रेत नाचते हैं, पर शिवजी की शांति जरा भी भंग नहीं होती है। वे अति आनंद में अति शांत हैं। सारा दिन राम–नाम कंठ में रखते हैं, इससे विष भी अमृत बन जाता है। आपके जीवन में भी विष पीने का अवसर आयगा। आपका कोई मित्र आपको दगा देगा, आपके साथ विश्वासघात करेगा, तो वह आपको विष के समान लगेगा। जिससे आप बहुत आशा करेंगे कि यह मेरा काम करेगा, मेरी मदद करेगा, मेरे लिए अच्छा बोलेगा, वही साधारण कारण से आपका शत्रु हो जायगा। आपको वह विष जैसा लगेगा। संसार में आने वाले को कभी–न–कभी, एकाध बार तो विष पीना ही पड़ता है। आपका पुत्र आपकी बात न मानेगा तो आपको विष–सा लगेगा।

अरे! कई लोग ऐसे हैं कि इनकी इच्छा के अनुसार कभी खाना नहीं बनता तो उन्हें विष–सा लगता है। प्रतिकूल परिस्थिति विष है। दुःख विष है। जीवन में जब विष पीने का प्रसंग आ जाय, तब राम नामामृत का पान कीजिये। रामनाम का जप कीजिये। विष अमृत हो जायगा। दुःख भूल जायगा। लड़का कहना नहीं मानता तो जी न जलाइए। श्रीराम–श्रीराम का जप कीजिये। बहुत प्रेम से बोलिये। राम नाम में ऐसी शक्ति है कि विष का–दुःख का असर नहीं होता। श्रीराम, श्रीराम बहुत प्रेम से बोलिये तो पंद्रह मिनट के बाद तालु में से अमृत प्रस्फुटित होने लगेगा। पंद्रह मिनट जो राम नाम का जप करता है, उसे अमृत मिलता है। राम नाम अमृत से भी मधुर है। रामायण सर्व वेदों का सार है। रामायण के तो सौ करोड़ श्लोक हैं। यहाँ तो राम–कथा का वर्णन संक्षेप में ही है। दशरथ महाराज के यहाँ चार पुत्रों का जन्म हुआ। दशरथ महाराज के हृदय में आनंद ही आनंद है।

तस्यापि भगवानेष साक्षाद् ब्रह्ममयो हरिः।
अंशांशेन चतुर्धागात् पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः।
रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्ना इति संज्ञया॥ (९-१०-२)

राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न–चारों भाई धीरे-धीरे बड़े हो रहे हैं। रामजी की बाल-लीला भी मर्यादा में है। रामजी इस तरह खेलते हैं कि लक्ष्मण की जीत हो और अपनी हार हो। रामजी ने खेल में भी भाई को नाराज नहीं किया है। रामजी बहुत सरल हैं। वे स्वयं हार जाते हैं और दूसरे को विजयी बनाते हैं।

रामजी कौशल्या माता से कहते हैं–माँ! मेरा लक्ष्मण छोटा है पर बहुत प्रवीण है हम खेल रहे थे, तब मेरी हार हुई और मेरे लक्ष्मण की जीत हुई। लक्ष्मणजी की आँखें गीली हो गयीं। लक्ष्मणजी कौशल्याजी माँ से कहने लगे–माँ! बड़े भाई का मुझ पर बहुत प्रेम है, वे जानबूझकर हार जाते हैं। अयोध्या के लोगों का मन भी तृप्त नहीं होता। वे राम-लक्ष्मण के दर्शन करते ही रहना चाहते हैं। वे रामजी से कहते हैं–आप हमारे घर पधारिये, हमारी बहुत इच्छा है। तब रामचन्द्रजी कहते हैं–मैं स्वतंत्र नहीं हूँ। मैं अपने माता-पिता की आज्ञा में हूँ; आप कौशल्या माता से पूछिये। मेरी माता आज्ञा दें तो मैं आपके घर आ सकूँगा। लोग कौशल्या माता को वन्दन करते हैं और मनाते हैं–माता! आप कहेंगी तब ही रामजी हमारे घर पधारेंगे। कौशल्याजी आज्ञा देती हैं तो ही रामचन्द्रजी जाते हैं। किसी के घर जाते हैं तो शांति से बैठे रहते हैं। रामजी बहुत सरल हैं।

परन्तु बालकृष्ण नहीं कहते थे कि आप यशोदा माता से पूछिये और माता मुझे आज्ञा देगी तो ही मैं आपके घर आ सकूँगा। कन्हैया कहता है कि मुझे कौन आज्ञा देगा? मैं ही घर का स्वामी हूँ। इससे मैं सबको एकत्र करके जाता हूँ। एक गोपी की बहुत दिनों की भावना थी कि कन्हैया उसके घर आय। वह सोचती है कि कन्हैया सबके घर जाता है पर मेरे घर नहीं आता। मेरे कुछ पाप होंगे। उसे दिन मैं भूख नहीं लगती रात्रि में नींद नहीं आती। वह निरंतर श्रीकृष्ण-स्मरण करती रहती है। गोपी की बहुत भावना है इससे एक बार लाला ने विनोद किया। जब गोपी यमुना में से पानी लेने गयी तब बाल कृष्णलाल उसके घर गये। लाला ने घर में प्रवेश किया। माखन की मटकी उतार ली और धीरे-धीरे माखन खाने लगे। सिर पर पानी का घड़ा लेकर जब गोपी घर आयी तो देखा कि रसोई घर खुला है और कन्हैया वहाँ बैठा है! बहुत प्रसन्न हो गयी। मेरी बहुत भावना थी कि मैं वहाँ जाऊँगी तो कन्हैया लजायेगा और माखन नहीं खायगा। कन्हैया खाये और मैं देखूँ–ऐसी मेरी इच्छा है। गोपी द्वार के पीछे खड़ी रही। कन्हैया माखन खा रहा है और चारों ओर देख रहा है–सोचता है कि यहाँ कोई आ तो नहीं रहा! कन्हैया ने देखा कि गोपी आ गयी है और द्वार

के पीछे खड़ी है। तब वह थोड़ा घबराया। गोपी को विश्वास हो गया कि कन्हैया भाग जायगा। उसने एकदम भीतर आकर लाला को बाँह से पकड़ लिया। कन्हैया गोपी को मनाने लगा–आज तुम मुझे छोड़ दो। अब मैं कभी तुम्हारे घर नहीं आऊँगा। मैं तुम्हारे भाई की कसम खाकर कहता हूँ। गोपी नाराज हो गयी। बोली कि तुम मेरे भाई की कसम क्यों खाते हो? गोपी भीतर से प्रसन्न है। उसके हृदय में प्रेम भरा है। बाहर से क्रोध दिखाकर नाटक कर रही है। तुम्हें चोरी करने की आदत पड़ गयी है। मैंने खुद देखा है। तुम मेरे घर में क्यों आये? लाला ने कहा–मैं यहाँ से जा रहा था। मुझे ऐसा लगा कि यह मेरा ही घर है, इससे मैं इधर चला आया। सुनकर गोपी प्रसन्न हो गयी–सोचने लगी कि कन्हैया मेरे घर को अपना घर मान रहा है, मुझे स्वीकार रहा है। गोपी ने लाला से कहा–कन्हैया यह घर तुम्हारा है, पर तुम्हें मटकी में हाथ डालने की क्या जरूरत पड़ी? लाला ने कहा–माखन में चीटियाँ चढ़ रही थीं, इन्हें निकालने के लिये ही मैंने हाथ डाला और तुम आ गयीं। गोपी ने कहा–लाला, तुम तो मुझे बनाने लगे। पाँच वर्ष के भी अभी तुम नहीं हो और ऐसा झूठ बोल रहे हो? तुम चींटी निकाल रहे थे कि माखन खा रहे थे? तुम झूठ बोल रहे हो। तुम्हारे होठों पर माखन लगा है। लाला ने कहा–मैं चींटी निकाल रहा था कि मेरे होंठ पर दो-मक्खियां आकर बैठ गयीं, मक्खियों को उड़ाने लगा कि होठों पर माखन लग गया।

कन्हैया जैसा बोल रहा है, वैसा बोलना किसी को नहीं आ सकता। कन्हैया ठुम-ठुम करता हुआ चलता है। वैसा चलना भी किसी को नहीं आता है। लाला के सभी काम बहुत मधुर हैं, मंगलमय हैं। गोपी ने कहा–आज यह कुछ भी नहीं चलेगा। मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगी। आज मैं तुम्हें बाँधूँगी।

गोपी ने लाला को खंभे के पास खड़ा किया और लाला को बाँधने लगी। गोपी ज़ानती थी कि यह बालक बहुत चंचल है, इससे उसने डोरी को खींचकर बाँध दिया। स्वामी का श्रीअंग माखन से भी कोमल है। गोपी ने डोरी को खींचकर बाँधा है। लाला की आँखों में आँसू आ गये। गोपी ने यह देखा। उससे सहन नहीं हुआ। वह लाला से पूछने लगी–बेटा क्या तुम्हें कष्ट हो रहा है? लाला ने कहा–हाँ! तुम डोरी को खींचकर बाँधती हो इससे मेरा पेट दुःख रहा है। मैं यहाँ से कहीं भी नहीं जाने वाला हूँ। तुम डोरी को जरा ढीला कर दो। गोपी को दया आ गयी। उसके हृदय में प्रेम है। लाला को त्रस्त तो नहीं करना है। गोपी ने डोरी को ढीला कर दिया। लाला को बाँध कर गोपी घर-घर कहने गयी। यही गोपी ने गलती कर दी। वह कहती फिरती थी–अरी सखी, मैंने लाला को बाँधा है। माखन चोर को मैंने बाँधकर रखा है। वह मेरे घर में है। ध्यान रखें, आप भी लाला को बाँध लें तो किसी से न कहें कि मैंने बाँधा है। आप बहुत भक्ति कीजिए पर भक्ति का विज्ञापन न कीजिए। जगत् से कहिये कि मैं तो संसार में फँसा साधारण जीव हूँ बाहर से जगत्

के साथ प्रेम रखिये। भीतर से श्रीकृष्ण के साथ प्रेम कीजिए। अनेक बार ज़ीव भीतर से रुपयों के साथ प्रेम करता है। काम-सुख से प्रेम करता है, बाहर से भगवान् के साथ प्रेम करता है।

गोपी सभी से कहने गई। इतने में बाल कृष्णलाल उस डोरी से बाहर निकले। सूक्ष्म रूप साधारण करके वे बाहर निकल गये। बाद में लाला ने गोपी को अँगूठा दिखा दिया। कहने लगा-लो, पकड़ो। मैं जा रहा हूँ। गोपी को आश्चर्य हुआ कि लाला, कैसे निकल गया! लाला ने कहा-निकल गया कैसे? तुम्हें बाँधना आता ही कहाँ है? दो बच्चों की माता हो गयी पर तुम्हें अक्ल नहीं आयी। तुम्हें मैं बाँधना सिखा सकता हूँ। गोपी ने पूछा-लाला, तुम्हें बाँधना आता है? लाला ने कहा-हाँ मेरी माँ ने मुझे सब कुछ सिखाया है। गोपी की लाला के साथ खेलने की इच्छा तो थी ही उसने लाला से पूछा-लाला, किस तरह बाँधना चाहिये, तुम मुझे बताओ। तब एक स्तंभ के पास गोपी खड़ी हो गयी। उसे बालकृष्णलाल का स्पर्श हुआ। बड़े-बड़े योगी मन से परमात्मा का स्पर्श करते हैं। गोपी भाग्यशाली है कि प्रत्यक्ष श्रीकृष्ण का स्पर्श हुआ। गोपी के शरीर में रोमांच हुआ। गोपी को अति आनंद हुआ। वह लाला के मुखारविंद के दर्शन में तन्मय हो गयी विचारने लगी कि लाला की आँखें कैसी सुन्दर हैं। लाला के बाल कैसे हैं! देखते-देखते लाला ने डोरी को खींच कर ऐसी दो गाँठ लगा दीं कि गोपी को पता तक न चला। बाद में उसे बोध हुआ। उसने कहा-तुम तो मुझे बना रहे थे। मुझे तो तुम ने सचमुच ही बाँध दिया। अब मुझे छोड़ दो।

लाला ने कहा-मेरी माँ ने बाँधना ही सिखाया है। छोड़ना नहीं सिखाया है। कन्हैया कभी छोड़ नहीं सकता। वह तुरन्त नहीं पकड़ता है, पर एक बार पकड़कर, छोड़ता नहीं है। परमात्मा को छोड़ना नहीं आता है। जीव को छोड़ना आता है। यह जीव दुष्ट है। जब तक स्वार्थ है, तब तक स्नेह सम्बन्ध रखता है और स्नेह-सम्बन्ध जब स्वार्थ नहीं रहता है तब तोड़ देता है। अरे! रास्ते में मिल जाय तो जय श्रीकृष्ण भी नहीं कहता है और सामने तक नहीं देखता है। जीव दुष्ट है, अभिमानी है। स्वार्थ न रहने पर सम्बन्ध तोड़ देता है। कन्हैया एक बार जिसे अपना लेता है, उसे कभी भी नहीं छोड़ता है। गोपी लाला को समझाने लगी-कन्हैया! मेरी सास कथा में गई है, घर का काम अभी बाकी है। सासजी घर आकर मुझ से क्या-क्या कहेंगी? लाला ने कहा-सासजी घर आकर बहुत अच्छी तरह से तुम्हारी पूजा करेंगी। तुम एक-एक घर कहने गईं कि मैंने लाला को बाँध दिया है? गोपी ने कहा-लाला! मुझ से भूल हो गयी।

श्रीकृष्ण लीला में प्रेम भरा है। रामजी की प्रत्येक लीला में मर्यादा है। जो धर्म की मर्यादा में रहता है उसके मन में ही प्रभु-प्रेम जगता है। इससे भागवत में मर्यादा-पुरुषोत्तम की कथा पहिले आती है और प्रेम-पुरुषोत्तम की कथा बाद में आती है।

धीरे-धीरे रामचन्द्रजी बड़े हो रहे हैं। श्रीराम सोलह साल के हुए, तब उन्हें गुरु वशिष्ठजी ने योगवशिष्ठ का उपदेश दिया। योगवाशिष्ठ ग्रन्थ कठिन ग्रंथ है किन्तु उसका प्रथम प्रकरण यानी वैराग्य प्रकरण अति सुन्दर है। उसे एक बार नहीं; पाँच-दस बार पढ़िये। संसार का सुख जीव को मधुर लगता है पर इससे उसका मन बिगड़ा रहता है। वैराग्य का प्रचार हो तो जगत् के बहुत से झगड़ों के अंत आ सकते हैं। सच्चा सुख संसार में नहीं है, परमात्मा में है—ऐसा समझने वाला झगड़ा नहीं करता है।

रामजी के मन में राजमहल में रहते हुए भी वैराग्य जागता है। गीताजी के प्रथम अध्याय का नाम है—अर्जुन विषाद योग। अर्जुन को वैराग्य नहीं है, विषाद इस बात का है कि अपने भाइयों के साथ मैं युद्ध करने को तैयार हुआ हूँ! गीताजी में प्रभु ने अर्जुन को ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया है। किन्तु फिर कहा है कि तुम युद्ध करो, निष्काम भाव से अपना कर्त्तव्य पूर्ण करो। रामजी को राजमहल में वैराग्य होता है। राजमहल में सभी प्रकार का सुख है। सब तरह की अनुकूलता है पर रामजी सोचते हैं कि यह सब सुख झूठा है। भौतिक सुख भोगते हुए मैंने जीवन गँवाया है। सच्चा सुख इस राजमहल में कहाँ है? धन में कितना दुःख है, स्त्री शरीर, पुरुष शरीर कितना खराब है तथा यौवन में कितने दोष हैं। रामचन्द्रजी एक-एक अध्याय में इन सबका वर्णन करते हैं। रामजी को विश्वास हो गया है कि संसार का सुख कच्चा है। झूठे सुख के पीछे मैंने जीवन गँवाया है, मैंने भूल की है।

राम उदास होकर बैठे रहते हैं तब वशिष्ठजी ने उन्हें योगवाशिष्ठ का उपेदश किया है। रामचन्द्रजी से कहा है कि राजमहल छोड़कर आप जंगल में जायेंगे तो वहाँ भी कुटिया की जरूरत पड़ेगी। आप सभी कपड़े फेंक दें तो भी आपको लंगोट की जरूरत तो होगी ही। प्रारब्ध के अनुसार ज्ञानी पुरुष सुख-दुःख भोगते हैं। ज्ञान में, भक्ति में, कभी कोई विघ्न नहीं आता। उसमें हमारी ममता विघ्न लाती है। उचित तो यही है कि मानव अपनी ममता परमात्मा में रखें। भगवान् में ममता रखकर विवेक से व्यवहार करें।

वशिष्ठजी रामचन्द्रजी को अनेक दृष्टान्त देकर समझाते हैं, अपने कर्तव्य का पालन कीजिये। ममता भगवान् में ही रखिये। मानव में ममता रखने वाला दुःखी होता है। किसी मानव को अपना समझने वाला दुःखी होता है। भगवान् मेरे हैं, मैं परमात्मा का अंश हूँ। प्रभु के चरणों में जाने वाला हूँ—इस तरह भगवान् में ममता रखकर विवेक से कर्तव्य-पालन कीजिये। प्रारब्ध भोगकर इसका विनाश करना है। प्रारंब्ध भोगते हुए सावधान रहना है। नया प्रारब्ध उत्पन्न न हो। किसी भी मानव के साथ वैर करने से नया प्रारब्ध उत्पन्न होता है। किसी मानव के साथ प्रेम करने

से भी नया प्रारब्ध उत्पन्न होता है। ज्ञानी बहुत सावधान रहते हैं। जो प्रारब्ध लेकर आया हूँ, उसे भोगकर पूर्ण करना है। मुझ से नया पाप न हो, नया प्रारब्ध खड़ा न हो। इस प्रकार ममता परमात्मा के स्वरूप में रखकर कर्तव्य पूर्ण करना है। वशिष्ठजी ने रामचन्द्रजी को आत्म-स्वरूप का वर्णन करके समझाया है। इसके श्रवण से रामचन्द्रजी की समाधि लग गई। वशिष्ठजी समाधि से रामचन्द्रजी को जाग्रत करते हैं और कहते हैं–अपना अवतार कार्य पूर्ण कीजिए। आपको राक्षसों का विनाश करना है।

४६– जगन्मित्र और जगदीश

श्रीराम की कुमारावस्था चल रही है। उस समय विश्वामित्र ऋषि अपने आश्रम में यज्ञ कर रहे थे। यज्ञ में राक्षस विघ्न डाल रहे थे। विश्वामित्र ने सोचा कि राम-लक्ष्मण प्रकट हुए हैं। मैं अयोध्या जाऊँगा। अपने आश्रम में सारा दिन उनका दर्शन करूँगा। यज्ञ के रक्षण का एक अच्छा निमित्त है। विश्वामित्रजी अयोध्याजी में आये। सरयू-गंगा को वंदन करके स्नान किया। आप किसी तीर्थ में जायें तो तीर्थ देव को प्रणाम करके स्नान कीजिए। कई लोग घूमते-घूमते नर्वदाजी के तट पर जाते हैं, परन्तु ठण्डी हवा चल रही हो तो नर्वदाजी में स्नान नहीं करते हैं। तीर्थ में जाकर तीर्थदेव को वंदन न करना, स्नान न करना– अच्छा नहीं है। ऐसे लोगों को पाप लगता है। तीर्थ में कुल्ले करने से बहुत पाप लगता है। तीर्थ में साबुन लगाकर स्नान नहीं करना चाहिए। साबुन लगाने से पाप लगता है। तीर्थ पानी नहीं है। सरयूजी के माहात्म्य का कौन वर्णन कर सकता है?

कोटि कल्प काशी बसे, मथुरा कल्प हजार।
एक निमिष सरयू बसे तुलइ न तुलसीदास॥

भगवान् आपको अनुकूलता दें, तो आप अयोध्याजी में एक-दो मास जाकर रहिये। अयोध्या अति दिव्य भूमि है। वहाँ झगड़ा नहीं है। आज भी इसका अनुभव होता है। अयोध्या के संत अति शांत हैं। विरक्त साधु वहाँ विराजमान हैं। सरयूजी का नाम रामगंगा है। वहाँ घाट के नाम भी दिव्य हैं। जैसे स्वर्गद्वार घाट, रामघाट, ऋणगोचर घाट। किसी का ऋण जाने-अनजाने बाकी रह गया हो तो ऋणगोचर घाट पर स्नान करना चाहिये। वहाँ सीताराम विराजमान हैं। उनके दर्शन करें, एकाध गरीब को भोजन करायें और हाथ जोड़कर खड़े रहें तो ऋण से मुक्ति मिलती है। अयोध्याजी के एक-एक घाट पर स्नान करने का माहात्म्य है। कभी आप अयोध्याजी जायें तो याद रखकर रामघाट पर स्नान कीजियेगा। रामघाट आज अयोध्या से तीन-चार मील की दूरी पर है। अब वहाँ घाट नहीं हैं, रेत है। सरयूजी वहाँ विराजमान हैं। वहाँ पहले घाट था। श्रीसीताजी वहाँ स्नान करती थीं।

रामघाट ऐसी दिव्य भूमि है कि वहाँ सरयूजी में स्नान करके, रेत में बैठने से हृदय द्रवित हो जाता है। उस भूमि का मन पर बहुत असर होता है। चाहे कैसा भी नास्तिक क्यों न हो, सरयूजी में स्नानकर, (रामघाट पर स्नान कर) वहाँ के तट की रेत में बैठने पर उसका हृदय आर्द्र होता ही है। वहाँ परमात्मा का निवास है, ऐसा लगता है। वहाँ बैठकर ध्यान तथा जप करने से तन्मयता प्राप्त होती है, आनंद आता है। ऐसा लगता है कि मानो सीतारामजी यहाँ विराजमान हैं।

विश्वामित्रजी सरयू नदी में स्नान करके राजा दशरथ के राज-दरबार में आते हैं। दशरथ राजा को पता चला और वे उठकर खड़े हो गये। ऋषि का उन्होंने स्वागत किया बोले आपने बहुत कृपा की, आज आपके दर्शन हुए, बहुत आनंद हुआ। मेरे दादा महाराज रघु ने पुण्य किया था, इससे आप जैसे संत के दर्शन हुए। मैं आपकी क्या सेवा करूँ? विश्वामित्रजी ने कहा–राजन्! मेरे यज्ञ में राक्षस बहुत विघ्न डालते हैं, इससे रक्षक के रूप में राम-लक्ष्मण की माँग करने आया हूँ। रामजी की माँग की बात सुनकर दशरथ राजा का हृदय भर आया। पर धैर्य धारण करके राजा ने कहा–गुरुजी आपने उचित माँग नहीं की है। वृद्धावस्था में आप सबके आशीर्वाद से मेरे चार पुत्र हुए। चारों मुझे बहुत प्रिय हैं पर गुरुजी, आपसे क्या कहूँ? मेरा राम मुझे प्राणों से भी प्रिय है। मेरे राम को मेरी दृष्टि से दूर न कीजिये। मैं आपसे सच-सच कहता हूँ। कदाचित् जल के बिना मीन जीवित रह जाये, पर राम के बिना दशरथ नहीं जी सकेगा। अपने राम को देखने से मेरी दृष्टि की तृप्ति नहीं होती। पाँच-दस मिनट भी उसके बिना, मैं नहीं रह सकता। मुझे व्याकुलता होती है। गुरुजी! राम मेरा पुत्र है। इससे ही मुझे प्रिय है, ऐसा नहीं है। राम शत्रु को भी प्रिय लगता है। मेरे राम में सभी सद्‌गुण हैं। वह तीनों माताओं की सेवा करता है। छोटे भाइयों की देखभाल करता है। मेरा राम जितेन्द्रिय है। वह आँख उठाकर किसी स्त्री की ओर देखता तक नहीं है। वह बहुत भोला है, बहुत सरल है। राम-सा पुत्र कभी हुआ नहीं, न कभी होगा। गुरुजी! मैं सब कुछ दे सकता हूँ पर राम को नहीं दे सकता। मेरा जीवन राम के अधीन है। यदि राम न दिखाई देगा, तो मेरे प्राण-पखेरू उड़ जायेंगे। दशरथ राजा बोले हैं, वैसा ही हुआ है। दशरथ राजा का रामचन्द्रजी में अलौकिक प्रेम था। विश्वामित्रजी ने स्मित करके वशिष्ठजी की ओर आँख से इशारा किया और कहा कि राजा को समझाइए।

महाराज दशरथ चक्रवर्ती सार्वभौम राजा हैं, पर वे मानते हैं कि मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। मैं अपने गुरुदेव के आधीन हूँ। दशरथ राजा को यदि कोई कार्य करना हो तो वे वशिष्ठ ऋषि से पूछते हैं। वशिष्ठजी राजा को एकांत में ले गये और समझाने लगे–कल राम की जन्म-कुण्डली मेरे हाथ में आ गई उसे देखकर मुझे विश्वास हो गया कि इस वर्ष में किसी अति सुन्दर राजकन्या के साथ

राम का विवाह होने वाला है। विश्वामित्रजी राम के विवाह के लिये आये हैं। दशरथ राजा प्रसन्न हो गये। बोले गुरुजी, मेरे राम के विवाह के लिये आये हैं, तो मैं राम को कल क्या आज ही भेजने के लिये तैयार हूँ। अब राम बड़ा हो गया। गुरुजी! मेरी वृद्धावस्था है। मुझे राम के विवाह के दर्शन करने हैं।

वशिष्ठजी ने कहा—आप दिन में तीन बार शंकर भगवान् की पूजा करते हैं। भगवान् शंकर सब मंगल करेंगे। दशरथ महाराज ने राम-लक्ष्मण को सभा में बुलाया। राम-लक्ष्मण पिता के चरणों में वंदन कर, हाथ जोड़कर खड़े रहे। श्रीराम विनय की मूर्ति हैं। पुत्र पिता को विनय से वंदन करता है। उनकी आज्ञा का पालन करे तो पिता का हृदय आर्द्र होता ही है और ऐसे में हृदय से आशीर्वाद निकलते हैं। ऐसे आशीर्वाद हर रोज नहीं मिलते। एकाध बार ही ऐसा प्रसंग आता है।

रामचन्द्रजी हाथ जोड़कर खड़े हैं, कहते हैं—पिताजी, मुझे आज्ञा दीजिये। मैं आपकी क्या सेवा करूँ? तब दशरथ राजा कहते हैं—गुरुजी के यज्ञ का रक्षण करना है। कर सकोगे? रामचन्द्रजी ने कहा—हाँ! पिताजी, जो कहेंगे वही करूँगा। राम-लक्ष्मण कौशल्या माता को वंदन करने आये हैं। रामजी बहुत कम बोलते हैं। लक्ष्मणजी ने सारी कथा सुनायी है और कहा—माता! आपके आशीर्वाद लेने के लिये आये हैं। कौशल्या माता ने विचार किया—मेरे राम यौवन में प्रविष्ट हो रहे हैं, अभी उन्हें सत्संग की बहुत जरूरत है। बाल्यावस्था में सत्संग न हो तो कोई चिन्ता नहीं है। उस समय माता-पिता का छत्र सिर पर रहता है। माता-पिता समझाकर पाप करने से रोकते हैं। वृद्धावस्था में शरीर दुर्बल होता है और वृद्ध को अक्ल आती है। वृद्धावस्था में मानव सादा, सात्विक जीवन व्यतीत करता है। यौवनकाल ऐसा बुरा है कि इस में मानव होश गंवा देता है। जवानी में ही सत्संग की जरूरत होती है। यौवन में जितेन्द्रिय तपस्वी संतों का सत्संग जो करता है, उसका जीवन बहुत पवित्रता से बीत जाता है। विश्वामित्रजी तपस्वी हैं, जितेन्द्रिय हैं। राम को उनका सत्संग मिले तो अच्छा है। कौशल्या माता ने कहा—आपके पिता की जो आज्ञा है, वही हमारी आज्ञा है। पिताजी प्रसन्न हों, ऐसा ही कीजिये। कौशल्याजी विश्वामित्रजी को प्रणाम करती हैं और कहती हैं—गुरुजी! मेरे राम-लक्ष्मण को आप ले जाते हैं। मेरा लक्ष्मण छोटा है और मेरा राम बहुत संकोची है। उसे भूख लगती है तो मुझे भी कभी नहीं कहता कि मुझे भूख लगी है।

राम लक्ष्मण जब प्रातःकाल कौशल्या माता को प्रणाम करने आते हैं, तब कौशल्या माता राम-लक्ष्मण को माखन-मिसरी खिलाती हैं। कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि कौशल्याजी लक्ष्मीनारायण की सेवा में ऐसी तन्मय हो जाती हैं कि उन्हें माखन-मिसरी देना भूल जाती हैं। राम वंदन करते हैं। दस मिनट बैठते हैं। माता माखन खिलाती हैं तो खाते हैं, अन्यथा उठ जाते हैं।

संध्या के समय पर कौशल्याजी को याद आता है कि कटोरी में माखन तो पड़ा रहा। मेरा राम आया पर कुछ बोला नहीं। मेरा राम भूखा ही रहा बहुत लजीला है। कौशल्याजी विश्वामित्रजी से कहती हैं–मेरे राम जैसा कोई पुत्र नहीं होगा। गुरुजी! राम माँगेगा नहीं। आप याद रखकर राम-लक्ष्मण को माखन-मिसरी खिलाइयेगा। उनकी माखन मिसरी खाने की आदत है। श्रीराम को-श्रीकृष्ण को माखन-मिसरी बहुत पसंद है। बालकृष्ण लाल तो हाथ में ही माखन-मिसरी रखते हैं। कन्हैया हमें बोध देता है–आप माखन से मृदु और मधुर बनिये तो मैं आपको हाथ में रखूँगा। जिनके जीवन में मिठास है, वे प्रभु को प्रिय हैं। जिनके जीवन में कटुता है वे भले ही भक्ति करें, पर प्रभु को उनकी भक्ति भी नहीं भाती है। जीवन में संयम से मिठास आती है। जीवन में सभी को सम्मान देने से मिठास आती है। सभी को सम्मान दीजिये। कभी किसी का अपमान न कीजिये। विश्वामित्रजी ने कौशल्याजी से कहा कि माँ! आप जरा भी चिन्ता न कीजिये आश्रम में बहुत गायें हैं, वहाँ बहुत माखन होता है। मैं याद रखकर राम-लक्ष्मण को माखन खिलाऊँगा।

माता-पिता को वंदन करके राम-लक्ष्मण गुरुदेव विश्वामित्र के पीछे-पीछे चले हैं। विश्वामित्र शब्द का अर्थ होता है जगन्मित्र। पाणिनी ऋषि ने विश्वामित्र शब्द के लिये व्याकरण में एक सूत्र लिखा है–विश्वं मित्रं यस्य सः विश्वामित्रः। जो जगत् का मित्र है, उसे विश्वामित्र कहते हैं। जगन्मित्र के पीछे-पीछे जगदीश चलते हैं। राम परब्रह्म हैं। लक्ष्मण शब्द ब्रह्म हैं। शब्द-ब्रह्म परब्रह्म के साथ ही रहता है। जिसका कोई शत्रु नहीं है, जिसकी सबके साथ मैत्री है, परमात्मा स्वयं जिसके पीछे-पीछे चलते हैं, वही विश्वामित्र हैं। सर्व के साथ मैत्री करना शक्य नहीं है, अशक्य सा है परन्तु किसी के साथ वैर न करना ही सर्व के साथ मैत्री करने जैसा है।

विश्वामित्रजी के आश्रम में जाते हुए रास्ते में ताडका राक्षसी मिली है। विश्वामित्रजी ने रामचन्द्रजी से कहा–आप इसे मारिये। रामचन्द्रजी ने कहा–यह स्त्री शरीर है। कैसे मारूँ? स्त्री को मारा नहीं जाता। जिस घर में स्त्री को मारा जाता है, उस घर में दारिद्रय आता है। स्त्री बहुत से अपराध करे तो भी पुरुष को उसे मारना नहीं चाहिये। स्त्री, अपराध करे तो पुरुष उसके साथ बोलना छोड़ दे। एक भी अक्षर न बोले। वह स्वयं समझ जायगी। स्त्री को मारा नहीं जाता।

विश्वामित्र समझा रहे हैं–यह स्त्री-शरीर है पर राक्षसी है। अनेक लोगों को त्रस्त करती है। ऐसे एक को मारने से सब सुखी होते हों तो वह स्त्री हो या पुरुष उसे मारने में पाप नहीं है। इस राक्षसी के कारण सारा देश दुःखी है। रामचन्द्रजी ने ताडका को वाण मारकर उसका उद्धार ही किया। विश्वामित्रजी के आश्रम में राम-लक्ष्मण पधारे हैं। श्रीराम-लक्ष्मण के दर्शन करते ही ऋषि कुमारों में प्रेम जाग्रत होता है। उन्हें परमानंद मिलता है। विश्वामित्रजी ने यज्ञ का प्रारंभ किया

है। यज्ञ-मंडप के द्वार पर राम-लक्ष्मण पहरा दे रहे हैं। रामचन्द्रजी पीताम्बर पहिनते हैं। लक्ष्मणजी हरा वस्त्र पहिनते हैं। लक्ष्मणजी गौर वर्ण के हैं। श्रीराम श्याम हैं। धनुष-बाण सजा हुआ है। वक्षःस्थल विशाल है। भाल-प्रदेश भव्य है। नेत्र दिव्य हैं। आजानुबाहु हैं। हाथ घुटनों का स्पर्श करते हैं। यह महायोगी, महान् भाग्यवान् के लक्षण हैं। श्रीराम आजानुबाहु हैं।

एक वैष्णव ने रामचन्द्रजी से पूछा था कि महाराज आपके हाथ बहुत लम्बे हैं। इतने लम्बे हाथ क्यों रखे हैं? तब रामचन्द्रजी ने कहा—मेरे भक्त जब दर्शन करने आते हैं, तब उन्हें मिलने की बहुत इच्छा होती है। मेरा कोई भक्त मोटा-तगड़ा हो तो उसे आलिंगन में लेने में सुविधा हो, इसलिए हाथ लम्बे रखे हैं। रामजी बहुत सरल हैं। वे बन्दरों से मिले हैं। वे भालुओं से मिले हैं। रामजी प्रेम से बन्दरों से मिलते हैं। वे बन्दर रामजी की क्या सहायता करेंगे? वे तो पशु हैं पर रामजी सबसे प्रेम से मिलते हैं। एक मानव ही अभागा है। उसकी ऐसी इच्छा नहीं होती कि मुझे रामजी के दर्शन करने हैं, रामजी से मिलना है। जब आप किसी मानव से मिलते हैं, तब आपको प्रसन्नता होती है, फिर जब आप परमात्मा से मिलेंगे तब आपको कितना आनन्द होगा! आप ऐसी इच्छा रखिये कि मुझे भगवान् से मिलना है।

विश्वामित्र जी यज्ञ करते हैं। आहुति अग्नि में देते हैं, पर उनकी दृष्टि राम-लक्ष्मण में स्थिर है। आप कोई भी कार्य कीजिये, जब हर एक काम में आपको प्रभु दिखाई दें, प्रभु की याद आती रहे, तब मानिये कि काम सफल हुआ है। सत्कर्म करते समय भी भगवान् के दर्शन करने हैं। इसका अर्थ यही है कि मैं यह कार्य नहीं कर रहा, पर मेरे प्रभु कर रहे हैं। भगवान् को भुलाया जाय तो सत्कर्म करने से अभिमान आ जाता है।

धनुष-बाण से सज करके प्रभु खड़े हैं। मारीच और सुबाहु राक्षस यज्ञ में विघ्न डालने के लिए आते हैं। मारीच को रामजी के दर्शन हुए। मारीच का स्वभाव सुधरा उसका हृदय आर्द्र हुआ। मारीच सोचने लगा कि इस ब्राह्मण का कोई स्वार्थ नहीं है। देश के लिये, समाज के कल्याण के लिये ब्राह्मण यज्ञ करते हैं। यज्ञ में मुझे सेवा देनी है। मारीच राक्षस था फिर भी रामचन्द्रजी के एक बार दर्शन करके वह सुधर गया।

कुछ लोग हर रोज मन्दिर में दर्शन करने जाते हैं पर उनका स्वभाव नहीं सुधरता है। बहुत प्रेम से प्रभु से दर्शन करने से प्रभु के सद्गुण प्राप्त होते हैं। भगवान् के दर्शन करने पर भी स्वभाव न सुधर सके तो समझिये कि मारीच राक्षस से भी अधम राक्षस मैं हूँ। मारीच यज्ञ में विघ्न डालने आया था, फिर भी उसे यज्ञ में सेवा करने की इच्छा हुई। यज्ञ-मंडप के उस द्वार को छोड़कर मारीच दूसरे द्वार पर गया। वहाँ भी राम-लक्ष्मण प्रहरी थे। चारों द्वारों पर राम-लक्ष्मण दिखाई पड़े।

मारीच को आश्चर्य हुआ—ये बालक बहुत सुन्दर दीख रहे हैं। विश्वामित्र इन बालकों को कहाँ से लाये होंगे? ये बालक बहुत सुन्दर दीख रहे हैं। ऐसे कोई बालक जगत् में न होंगे। इन्हें देखकर ही प्रेम जाग उठता हैं, युद्ध करने की इच्छा ही नहीं होती है। मन में ऐसा आता है कि इन्हें सिंहासन पर बैठाकर आरती उतार लूँ। रामदर्शन करते हुए मारीच में ऐसा प्रेम जाग उठता है। छह दिन और छह रात्रि तक राम-लक्ष्मण ने जागरण किया और विश्वामित्रजी के यज्ञ का रक्षण किया। यज्ञ जब परिपूर्ण हो गया तब विश्वामित्रजी को बहुत आनन्द हुआ। उन्होंने राम-लक्ष्मण को आशीर्वाद दिया। राम-लक्ष्मण विश्वामित्रजी के आश्रम में रहने लगे। एक दिन जनकपुरी से सीताजी के स्वयंवर की निमन्त्रण-पत्रिका आ पहुँची।

विश्वामित्रजी ने रामचन्द्रजी से पूछा—आप दोनों जनकपुरी चलेंगे? रामचन्द्रजी ने कहा—गुरुजी! आप जहाँ जायेंगे, वहीं हम आपके साथ चलेंगे। हमारे माता-पिता की आज्ञा है कि गुरुजी की सेवा करना। रामचन्द्रजी को लेकर विश्वामित्रजी जनकपुरी पहुँचे। उनके साथ अनेक ऋषि भी हैं। रास्ते में अहिल्याजी का आश्रम आता है। गौतम ऋषि के शाप से अहिल्याजी पत्थर की शिला बन गयी हैं। विश्वामित्रजी ने रामचन्द्रजी को आज्ञा दी—इस शिला का चरण से स्पर्श कीजिये? रामजी पूछ रहे हैं—इस पत्थर में क्या है? गुरुजी ने कहा—यह ऋषि-पत्नी अहिल्या है। आपके चरणों के स्पर्श से इसका उद्धार होगा।

रामचन्द्रजी ने कहा—गुरुजी! मेरा ऐसा नियम है कि मैं किसी स्त्री का स्पर्श नहीं करता हूँ। रामायण में वर्णन है—सीताजी ने कहा है कि मैंने आज तक किसी पुरुष का स्पर्श नहीं किया है। श्रीसीताजी किसी पुरुष का स्पर्श नहीं करती हैं, श्रीरामचन्द्रजी किसी स्त्री का स्पर्श नहीं करते हैं। स्पर्श से अनेक दोष होते हैं। रामचन्द्रजी ने कहा—मैं स्त्री को वंदन करूँगा पर स्पर्श नहीं करूँगा। विश्वामित्रजी ने कहा—आप वंदन करें, इससे इसका उद्धार नहीं होगा। आप चरण से स्पर्श करें तो ही इसका उद्धार होगा। रामचन्द्रजी ने कहा—गुरुजी! किसी स्त्री का स्पर्श करूँगा तो मुझे पाप लगेगा। राम परमात्मा हैं, ऐसा बोल रहे हैं। कहते हैं कि मैं किसी स्त्री का स्पर्श करूँगा तो मुझे पाप लगेगा। आजकल लोगों को पाप का जरा भी डर नहीं लगता है। पाप का डर रखिये। जो पाप का डर रखता है, जो पाप छोड़ता है वह निर्भय बन जाता है। पाप करने वाला भयाकुल रहता है।

रामजी की किसी भी लीला में मर्यादा का भंग नहीं होता है। रामचन्द्रजी जहाँ खड़े थे, वहाँ उस समय हवा चलने लगी और हवा के साथ राम-चरण की रज उड़कर शिला पर पड़ी। चरण का स्पर्श नहीं है पर राम चरण-रज का स्पर्श है। प्रत्यक्ष रामजी को स्पर्श करने की जरूरत ही नहीं। राम-चरण-रज में ऐसी शक्ति है। मानव की बुद्धि काम सुख के चिन्तन से शिला के समान

जड़ हो जाती है। इससे सेवा में भक्ति से हृदय द्रवित नहीं होता है। बुद्धि काम-सुख का चिंतन न करने लगे, इसके बारे में सावधान रहिये। काम-सुख के चिंतन से बुद्धि बिगड़ती है। काम सुख के चिंतन से बिगड़ी हुई बुद्धि भगवद्-चरण के स्पर्श से सुधरती है, निर्मल हो जाती है।

अहिल्याजी का उद्धार हुआ है। अहिल्याजी ने परमात्मा की स्तुति की-मुझे मुनि ने शाप दिया सो अच्छा ही हुआ इससे ही मुझे आज आपके चरणों की रज का स्पर्श प्राप्त हुआ। अहिल्याजी का उद्धार करके राम-लक्ष्मण विश्वामित्रजी के साथ जनकपुरी आ पहुँचे।

नगर के बाहर आम्र-कुंज था। वहाँ उन्होंने निवास किया। जनक महाराज को मालूम हुआ, वे दौड़ते आ पहुँचे, विश्वामित्रजी की उन्होंने पूजा की और कुशल समाचार पूछा। वहाँ राम-लक्ष्मण विराजमान थे। जनक महाराज ने अपलक देखते हुए, राम-लक्ष्मण के दर्शन किये और पूछा-

कहहु नाथ सुन्दर दोउ बालक। मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक॥

महाराज ये कौन हैं? ऋषि-कुमार हैं कि राजकुमार हैं? इन्हें देखकर ही प्रेम जागता है। विश्वामित्रजी ने जनक राजा से कहा- आप महान ज्ञानी हैं, आप ही परीक्षा कीजिए कि ये कौन होंगे? तब जनक राजा ने कहा कि महाराज, मुझे ऐसा लगता है कि वेद जिन्हें नेति नेति कहते हैं, भगवान् शंकर जिस स्वरूप को हृदय में रखकर ध्यान करते हैं, वे ही परमपिता परमात्मा ये हैं। विश्वामित्र पूछने लगे कि राम परमपिता परमात्मा हैं, ऐसा आप से किसने कहा? जनक राजा ने कहा- मुझे से किसी ने नहीं कहा। मेरा पवित्र मन मुझ से कहता है। मेरा मन पाप नहीं कर सकता है। मैं संसार में रहता हूँ पर मेरा मन संसार में नहीं है। मेरा मन कभी संसार का चिंतन नहीं करता है; मैं निरंतर परमात्मा का ध्यान करता हूँ।

दो आँखों के मध्य ललाट में एक ज्योति है। आप आँखें बंद करके ललाट में दृष्टि जमाइयेगा तो वहाँ प्रकाश दिखाई देगा। ज्ञानी इस प्रकाश को देखकर निरंतर इसका ध्यान करते हैं- मैं स्त्री नहीं हूँ, मैं पुरुष नहीं हूँ, मैं शरीर से अलग हूँ, मैं परमात्मा का अंश हूँ। मैं प्रकाशमय हूँ। ज्ञानी पुरुष इस प्रकार ब्रह्मचिंतन करते हैं। जनक राजा ने कहा- आज तक मैं निराकार ज्योति का ध्यान करता था। राम के दर्शन के बाद मेरा मन ऐसा कहता है कि मैं राम का ध्यान करूँ। राम परमात्मा न होते तो मेरा ध्यान खींच ही न सकते।

ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय वेष धरि की सोई आवा॥
सहज बिराग रूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥

मुझे संसार का सौंदर्य तुच्छ लगता है। राम मेरे मन का आकर्षण करते हैं। मेरे मन का आकर्षण वे ही कर सकते हैं, जो ईश्वर है।

शकुन्तला नाटक में दुष्यंत–शकुन्तला की कथा है–दुष्यंत राजा शिकार खेलते-खेलते कण्व ऋषि के आश्रम में आ पहुँचे। मध्याह्न-काल में कण्व ऋषि मध्याह्न-संध्या करने के लिये गंगा-तट पर गये थे। शकुन्तला आश्रम में थी। उसने दुष्यंत का स्वागत किया। दुष्यंत ने शकुन्तला से पूछा–तुम किसकी पुत्री हो? शकुन्तला ने कहा–मैं कण्व ऋषि की पुत्री हूँ। दुष्यन्त ने कहा–तुम ऋषि-पुत्री नहीं हो। शकुन्तला ने कहा–आप कैसे कह सकते हैं? दुष्यन्त ने कहा–मैंने मन से भी कभी पाप नहीं किया है। मेरा मन पवित्र है। मेरा ऐसा मन आज तुम्हें देखकर चंचल हो रहा है, इससे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम मेरी ही जाति की क्षत्रिय–कन्या हो। अगर तुम ब्राह्मण की कन्या होंती तो तुम्हें देखकर मेरा मन कभी चंचल नहीं होता। शकुन्तला सहमत हुई। उसने कहा–आप कहते हैं, यह सच है। मैं क्षत्रिय-कन्या हूँ पर ब्राह्मण के घर में बड़ी हुई हूँ।

जनक राजा ने कहा–रांम मेरे मन का आकर्षण कर रहे हैं, इससे वे ईश्वर ही होने चाहिये। ईश्वर के बिना अन्य कोई मेरे मन को आकर्षित नहीं कर सकता।

रामजी ने विश्वामित्र को इशारा किया–मेरा विज्ञापन न कीजिये। मुझे प्रकट नहीं होना है। विश्वामित्र ने रहस्य छुपाया। बोले नहीं, ऐसा कुछ नहीं है ये तो दोनों, दशरथ राजा के पुत्र हैं। मेरे यज्ञ की रक्षा करने आये हैं।

जनक राजा ने कहा–महाराज, मुझे तो ऐसा लगता है कि ये किसी के पुत्र नहीं हैं। ये तो सभी के पिता हैं। ये परमात्मा हैं। इसकी मुझे प्रतीति हुई है।

जनक राजा ने राजमहल में पधारने का बहुत आग्रह किया परन्तु रामजी को आम्र-कुंज बहुत अच्छा लगता है। इससे उन्होंने वहीं निवास रखा। जनक राजा ने सब व्यवस्था कर दी है। रामायण में लिखा है–संध्या-समय पर श्रीराम-लक्ष्मण संध्या करते हैं। संध्या के समान श्रेष्ठ कोई सत्कर्म नहीं है। भागवत के दशम स्कंध में लिखा है–द्वारिकानाथ श्रीकृष्ण संध्या कर रहे हैं। जैसा भागवत में लिखा है, वैसा आज भी द्वारिका में है। आप कभी द्वारिका में जायें तो याद रखकर उस स्थान का दर्शन कीजियेगा। द्वारिकानाथ संध्या कर रहे हैं। ठाकुरजी के शृंगार के बाद भगवान् के सम्मुख सुवर्ण का कलश, सुवर्ण की आचमनी आदि सामग्री पधराई जाती है–उसमें ऐसी भावना है कि द्वारिकानाथ संध्या करने बैठे हैं।

श्रीराम-कृष्ण परमात्मा हैं फिर भी संध्या करते हैं। राम-लक्ष्मण का रात्रि में विश्वामित्रजी के साथ सत्संग हुआ। बाद में विश्वामित्रजी ने शयन की। इसके बाद राम-लक्ष्मण गुरुजी की चरण-सेवा करने लगे। गुरुदेव ने हृदय से आशीर्वाद दिये विश्वामित्रजी को नींद आ गयी, तब रामचन्द्रजी उठकर चले–अब सेवा करेंगे तो कदाचित् गुरुजी की निद्रा में विक्षेप होगा। रामजी ने

भी तब शयन की। लक्ष्मणजी रामजी की चरण-सेवा करने लगे। रामायण में लिखा है कि छोटा भाई बड़े भाई की सेवा कर रहा है। जगत में आज ऐसा कुछ भी नहीं है। सोने में लक्ष्मणजी की बारी अंतिम है, पर जागने मे उनका क्रम प्रथम है।

नौकर का धर्म है मालिक के सो जाने के बाद सोना और मालिक के जागने से पहले जागना। पतिव्रता स्त्री का धर्म है पतिदेव के सोने के बाद सो जाना और पतिदेव के जागने से पहिले जाग जाना। ऐसा नहीं कि आज रात्रि में बारह बजे तक जागरण हुआ है तो आज आप पहिले उठिये। आज मुझे आराम करना है! कई स्त्रियाँ तो पति को हुक्म भी देती हैं! जिस स्त्री को पति में परमात्मा नहीं दिखाई देते, उसे किसी जगह भगवान् के दर्शन नहीं होते।

लक्ष्मणजी पहिले जाग गये, बाद में रामचन्द्रजी जागे और अंत में विश्वामित्रजी जागे। विश्वामित्रजी स्नान करके शालिग्राम भगवान् की सेवा करने बैठे। राम-लक्ष्मण से कहा-पास में एक बगीची है, वहाँ जाकर पुष्प और तुलसी ले आइए। राम-लक्ष्मण बगीची में पुष्प-तुलसी लेने गये। मर्यादा-पुरुषोत्तम की प्रत्येक लीला में मर्यादा है। वे सोचते हैं कि माली की अनुमति के बिना पुष्प लूँगा तो मुझे चोरी का पाप लगेगा। रामजी ने माली को, चाचा, कहकर संबोधित किया। माली को आश्चर्य हुआ। पीछे देखा तो राम-लक्ष्मण खड़े थे। वह तुरन्त दौड़कर के आ पहुँचा और रामजी के चरणों में साष्टांग वंदन किया। उसने हाथ जोड़कर कहा-मैं आपका दास हूँ। मुझे 'चाचा' कहकर न पुकारिये। प्रभु ने स्मित हास्य किया और कहा-आप उम्र में बड़े हैं। मेरे पिता के समान हैं। जब राम ऐसा कहते हैं, तब माली की आँखों में आँसू आ जाते हैं वह सोचता है कि कहाँ दशरथ महाराज और कहाँ मैं? श्रीराम मुझे पिता के समान मानते हैं! नौकरों के प्रति श्रीराम का ऐसा ही व्यवहार था। श्रीराम जब वन में गये तब घर के नौकर बहुत रोने लगे। श्रीराम सभी को प्राण से भी प्रिय लगते थे।

माली ने कहा-आप यहाँ विराजिये। मैं पुष्प-तुलसी लाता हूँ। रामजी ने कहा-आप पुष्प-तुलसी लायेंगे तो आपकी सेवा होगी। मुझे तो गुरुजी की सेवा करनी है। सेवा में चतुराई न कीजिए। सेवा स्वयं कीजिये। कई लोग ऐसे हैं कि सब कुछ दूसरों के द्वारा करवा लेते हैं और स्वयं ऐसा दिखाते हैं कि मैं करके लाया हूँ। अरे! भगवान् सभी को देख रहे हैं। चतुराई न कीजिए। रामचन्द्रजी स्वयं पुष्प-तुलसी लेने गये। रामचन्द्रजी ने तुलसी को वंदन किया।

तुलसी वृक्ष नहीं है। हमारे सनातन धर्म में तीन-चार तत्व बहुत श्रेष्ठ हैं। गाय-माता पशु नहीं है। गंगाजी, यमुनाजी, नर्वदाजी पानी नहीं हैं। तुलसीजी वृक्ष नहीं हैं। तुलसीजी का विवाह भगवान् के साथ हुआ है। तुलसीजी, राधाजी का अंश हैं। तुलसी को नाखून से तोड़ने में पाप

लगता है। तुलसीजी परमात्मा की दिव्य शक्ति हैं। हमारे शास्त्रों में ऐसा लिखा है कि द्वादशी के दिन तुलसी को न तोड़िये। वैष्णव द्वादशी के लिए, एकादशी के दिन तुलसीजी तोड़कर अलग रख लेते हैं। सूर्य अस्त होने के बाद तुलसीजी रास खेलने जाती है।

रामचन्द्रजी फूल-तुलसीजी चुन रहे थे, उसी समय वहाँ श्रीसीताजी सखियों के साथ पधारीं। श्रीसीताजी का ऐसा नियम था कि घर में तुलसी पूजा करना और मंदिर में अम्बाजी की पूजा करना। जो स्त्री नियम से तुलसी की पूजा करती है, पार्वतीमाता की पूजा करती है, उस स्त्री को अखण्ड सौभाग्य और सुपुत्र की प्राप्ति होती है। सीताजी को रामजी के दर्शन से अति आनंद हुआ। रामजी पुष्प-तुलसी लेकर आये और गुरुजी को अर्पण करते हुए कहने लगे—गुरुजी! हम जिस बाग में फूल-तुलसी लेने गये उस बाग में वह राजकन्या भी आयी थी, जिसका स्वयंवर है और वह हमें देख रही थी। रामजी अति सरल हैं। प्रपञ्च-कपट का नाम तक नहीं जानते हैं। गुरुजी से उन्होंने सब कह दिया। विश्वामित्रजी ने कहा—बेटा, मैं जानता हूँ, राजकन्या वहाँ हर रोज पूजा के लिये जाती हैं, इससे ही मैंने तुम्हें भेजा था। सीताजी को भी मालूम हो जाय कि हमारा राम कितना सुन्दर है! विश्वामित्रजी ने रामजी को आशीर्वाद दिया। सीताजी ने अम्बाजी की पूजा की। माताजी ने सीताजी को आशीर्वाद दिया।

स्वयंवर के लिये जनक राजा की आज्ञा को बड़ा मण्डप तैयार किया गया था। उसमें एक बड़ा रंगमंच तैयार किया गया था। तीन सौ वीर बहुत मेहनत से वहाँ शिव-धनुष ले आये। देश-विदेश के राजा वहाँ आये थे। समय के अनुसार शतानन्द ऋषि विश्वामित्रजी को लेने पहुँचे। राम-लक्ष्मण के साथ विश्वामित्रजी स्वयंवर के मंडप में पधारे। रामजी के दर्शन में सभी तन्मय हुए। जिसके मन में जैसा भाव था, वैसे दर्शन सभी को मिले। सभा मंडप में जो ऋषि बैठे थे, रामजी के दर्शन से उनके मन में ऐसा लगा कि सुबह हम गायत्री मंत्र के जप करते हुए जिन तेजोमय परमात्मा नारायण का ध्यान करते हैं, वही नारायण राम हैं। राजाओं को ऐसा लगा कि राम बड़े राजा हैं, बलवान हैं। स्त्रियों को रामजी कामदेव के समान लगें।

जनक राजा ने स्वागत किया और मंत्रीजी से कहा— आप खड़े होकर भाषण कीजिए और कहिये कि यह भगवान् शंकर का धनुष है। इक्कीसवीं बार पृथ्वी को क्षत्रिय-विहीन करके परशुरामजी ने इसे हमारे घर में रखा है। यह वही भयंकर धनुष है। हजार वीर बहुत मेहनत करके ही इसे उंठा सकते हैं। मेरी पुत्री जब तीन वर्ष की थी तब इस धनुष का घोड़ा बनाकर इससे खेलती थी। इससे उसी समय मैंने प्रतिज्ञा की थी कि जो वीर पुरुष इस धनुष को उठायेगा, उसे आधा राज्य दे दूँगा और राजकन्या भी दूँगा। मन्त्रीजी ने खड़े होकर भाषण देना प्रारम्भ किया। उस

समय वहाँ आकाश मार्ग से रावण जा रहा था। बड़ा मंडप देखकर उसने नौकरों से पूछा–इतना बड़ा मंडप किसने बाँधा है? नौकरों ने कहा–सुना है कि जनकपुरी में जानकीजी का स्वयंवर है, वहाँ सभी राजा आये हैं। रावण ने पूछा–हमारे घर निमन्त्रण नहीं आया है? नौकर ने कहा–नहीं, हमारे घर निमन्त्रण नहीं आया है। रावण को निमन्त्रण नहीं आया है। रावण को निमन्त्रण नहीं मिला था पर वह ऐसा मूर्ख था कि बिना निमन्त्रण के मंडप में पहुँचा और जनक राजा से कहने लगा–क्या मैं राजा नहीं हूँ? तुमने सभी राजाओं को निमन्त्रण भेजा है, मुझे क्यों नहीं भेजा? तुमने मेरा अपमान किया है, इससे मैं युद्ध करने आया हूँ।

राजा जनक घबराये। पुत्री के विवाह के समय यह पाप कहाँ से आ गया? यह तो लड़ने की बात कर रहा है। जनक राजा ने हाथ जोड़कर कहा–आप तो बड़े वीर हैं। मैंने मन्त्री जी से कहा था सभी को निमन्त्रण भेजना। आपको निमन्त्रण न मिला हो तो भूल मेरी नहीं, मन्त्री जी की है। मन्त्री की भूल है और मैं क्षमा माँग रहा हूँ। मैं बहुत वृद्ध हुआ हूँ! आप जवान हैं, वीर हैं, मेरे साथ युद्ध करेंगे तो शोभास्पद नहीं होगा।

रावण ने कहा–अपने मंत्री को बुलाओ। मन्त्रीजी थर-थर काँपने लगे। सोचने लगे कि यह एक चपत लगायेगा, तो चेहरा विकृत कर देगा। यह बड़ा मूर्ख है। रावण मंत्रीजी को धमकाने लगा–मूर्ख तुम्हें इतना मालूम नहीं है? मेरा नाम सुना है कि नहीं? मुझे निमन्त्रण पत्रिका नहीं भेजी? मन्त्रीजी ने हाथ जोड़कर कहा–पत्रिका लिखने का काम मेरा है पर घर-घर पहुँचाने का काम मेरा नहीं है, वह तो सिपाही का काम है। आपके घर पत्रिका न पहुँची हो तो इसमें दोष मेरा नहीं, सिपाही का है। मैं क्षमा माँगता हूँ, भूल मेरी नहीं, भूल सिपाही की है। रावण ने कहा–तो अब अपने सिपाही को बुलाओ। मन्त्री ने एक बुद्धिमान सिपाही को बुलाया। सिपाही घबरा गया पर मन्त्रीजी जानते थे कि सिपाही बुद्धिमान है। वह रावण को उल्लू बनायेगा। सिपाही को रावण ने धमकाया–मूर्ख, तुम में कुछ अक्ल है कि नहीं? मन्त्रीजी कह रहे हैं कि उन्होंने निमन्त्रण तो लिखा है, तुमने पहुँचाया क्यों नहीं? सिपाही ने कहा–मैं तो पत्रिका देकर आया हूँ, आपको नहीं मिली है क्या? रावण ने पूछा–तुमने किसे पत्रिका दी थी? सिपाही ने कहा–सुबह जब मैं निकला तब समुद्र तट पर पहुँचा। वहाँ बहुत से लोग आपकी प्रशंसा कर रहे थे। कह रहे थे कि रावण महाराज ने इंद्रिकादिक देवों को पराभव किया है, इससे सभी देव दास भाव से रावण महाराज की लंका में सेवा करते हैं। समुद्र तट पर जाकर मैंने सोचा कि इस समुद्र को पार करके कैसे पहुँच सकूँगा? मैंने सोचा कि जब सब देव रावण के दास हैं तो समुद्र भी दास होगा ही। मैंने समुद्र को पत्रिका दी और कहा कि इस पत्रिका को रावण महाराज तक प्रहुँचा देना। समुद्र में पत्रिका डालकर

मैं वापस आ गया। अगर समुद्र ने आपको पत्रिका नहीं दी है तो इसमें मेरा क्या दोष? इसमें समुद्र का दोष है, आप समुद्र से लड़िये।

रावण को क्रोध आ गया–अरे! तुम कैसा बोल रहे हो? मेरा अपमान करेगा तो मैं तुम्हारी मौत का कारण बनूँगा। उतने समय में जनक राजा ने एक सुन्दर सिंहासन मँगाकर रख दिया। रावण को दिखाकर कहा–यह सिंहासन आपके लिये ही है। पत्रिका की बात में कुछ घोटाला हुआ है, पर अब आप इस सिंहासन पर विराजिये। रावण सिंहासन को देखकर शांत हुआ। रावण बहुत अभिमानी है। अकड़ में चलकर सिंहासन पर बैठ गया। राजा से कहा–हे जनक! अब अपनी कन्या को बाहर बुलाओ। वह आकर मुझे विजयमाला पहिनाये।

जनक राजा ने कहा–हमारा ऐसा नियम है कि जब तक धनुष भंग नहीं होगा, तब तक राजकन्या बाहर नहीं आयेगी। रावण अभिमान में कहने लगा। इस धनुष में क्या है? आप मुझे जानते नहीं हैं। आपको क्या यह मालूम नहीं है कि यह शंकर-पार्वती के साथ सारा कैलास पर्वत इस रावण ने उठा लिया था। तो मात्र धनुष है। एक धक्का मारने पर टूट जायगा। रावण ऐसा अभिमानी और ऐसा मूर्ख है कि अपने आप अपनी प्रशंसा करता है। आत्म प्रशंसा मृत्यु है। आत्म प्रशंसा से शक्ति का, पुण्य का, आयुष्य का विनाश होता है।

रावण एक हाथ से धनुष उठाने लगा। माता पार्वती ने अपने तीन सौ शिवगणों को आज्ञा दी थी कि रावण की फजीहत करना। रावण का अभिमान बहुत बढ़ गया है। वह चाहे जैसा बोलता है। तीन सौ शिव-गण धनुष पर चढ़ गये। ये शिवगण किसी को दिखाई न देते थे। रावण जैसे ही एक हाथ से धनुष उठाने लगा, धनुष हिला तक नहीं। रावण ने दूसरा, तीसरा हाथ लगाया पर वह हिला तक नहीं। रावण के बीस हाथ थे। उसने उन्नीस हाथों से धनुष उठाया। अभिमानी था, चारों ओर देखने लगा। उसने सोचा कि लोग सब मूर्ख हैं मेरी जय-जयकार नहीं करते। वह ऐसा मूर्ख कि स्वयं अपनी जय-जयकार करने लगा। किसी ने साथ नहीं दिया। रावण ने सबको बहुत त्रास दिया था। सबको दुःखी करने वाले की जय कौन कहेगा? उसी समय शिवगणों ने जोर से धनुष दबाया। धनुष रावण की छाती पर पड़ा। रावण रुधिर उगलने लगा। रावण चीखने लगा–मर गया, मर गया, बचाओ कोई बचाओ। सब हँसने लगे। रावण की बदनामी से सब प्रसन्न हो गये। जनक राजा ने आज्ञा की–क्या देख रहे हो, ब्राह्मण का लड़का है, इसकी छाती पर से धनुष हटा लो। एक हजार वीर पुरुषों ने एकत्र होकर रावण की छाती पर पड़ा धनुष खींच लिया। रावण वहाँ से भाग निकला। रावण की इस स्थिति को देखकर वहाँ एकत्र राजाओं का हौसला टूट गया। वे सोचने लगे–रावण तो चलकर घर भी पहुँच जायगा, पर हम धनुष उठाने जायेंगे तो हम

चलकर क्या जायेंगे। चार व्यक्ति उठाकर श्मशान में ही हमें ले जायेंगे। यह हमारा काम नहीं है। सभा के सब लोग चुप बैठे रहे। सारी सभा स्तब्ध थी। उसी समय विश्वामित्रजी ने रामचन्द्रजी को आज्ञा दी–

उठहु राम भंजहु भव चापा। मेटहु तात जनक परितापा॥

राम! तुम उठो। गुरुदेव की आज्ञा हुई। रामजी ने उठकर गुरुदेव को वंदन किया। गुरुजी ने आशीर्वाद दिया। रामजी के चलने में मर्यादा, बोलने में मर्यादा, पुरुषोत्तम की प्रत्येक लीला में मर्यादा थी। रामजी धीरे-धीरे चल रहे थे। रामजी ने शिव धनुष को वंदन किया भगवान् शंकर का धनुष था। रामजी ने सुना। शिवजी को भी आश्चर्य हुआ– राम मेरे धनुष को भी वंदन करते हैं। वे तो परमात्मा हैं, मुझे कितना मान देते हैं। वंदन कर के रामजी ने जब धनुष उठाया तब बिजली की चमक के समान धनुष चमक उठा। सबकी आँखें चौंधिया गईं। प्रभु ने बाँये हाथ से इसे झुकाया........ कड़, कड़, कड़, कड़ शब्द हुआ। धनुष के दो टुकड़े हो गये।

यो लोकवीरसमितौ धनुरैशमुग्रं सीतास्वयंवरगृहे त्रिशतोपनीतम्।
आदाय बालगजलील इवेक्षुयष्टिं सज्जीकृतं नृप विकृष्य बभञ्ज मध्ये॥

(९-१०-६)

लोगों को आश्चर्य हुआ! धनुष भंग होने पर विश्वामित्रजी ने जनक राजा से कहा– जानकीजी को बुलाइए। वे पधारकर मेरे राम को विजयमाला पहिना दें। जनक राजा की आज्ञा हुई। श्रीजानकीजी पधारीं। वे साक्षात् महालक्ष्मी थीं। उनके अलौकिक शृंगार का वर्णन कौन कर सकता है? हाथों में विजयमाला थी। पाँच सखियाँ दायीं ओर थीं, पाँच सखियाँ बाँयी ओर थीं। सखियाँ मंगल-गीत गा रही थीं। श्रीजानकीजी धीरे-धीरे चल रही थीं। रामचन्द्रजी ने देखा कि राजकन्या विजयमाला पहिनाने आ रही हैं। रामजी सोच रहे थे कि गुरुजी ने धनुष-भंग की आज्ञा दी। मैंने धनुष-भंग किया पर अपने माता-पिता की आज्ञा के बिना मुझे विवाह नहीं करना है। मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। मैं माता-पिता के अधीन हूँ। सीताजी सुन्दर हैं, तो क्या हुआ? अपनी माता की आज्ञा के बिना मुझे विवाह नहीं करना है। रामजी सुधारवादी नहीं हैं। आजकल लोग माता-पिता को पूछते नहीं तक नहीं। परिणामतः दुःखी होते हैं।

श्रीसीताजी पधारीं। श्रीसीताजी जरा नाटे कद की थीं। उन्होंने हाथ ऊँचे किये। हाथ में काँच की चूड़ियाँ थीं। उसमें रामजी का प्रतिबिम्ब दीख पड़ा। सीताजी ने जरा सा घूँघट निकाला हुआ था। इससे वे प्रत्यक्ष रामजी के दर्शन नहीं कर पाती थीं। उन्होंने रामजी का प्रतिबिंब देखा। रामजी का प्रतिबिंब कितना सुन्दर था! करोड़ों सूर्य जैसे श्रीराम तेजोमय थे! करोड़ों कामदेवों से अधिक

सुन्दर श्रीराम थे! करोड़ों चन्द्रों से अधिक शीतल श्रीराम थे! रामजी के मुखारविंद का वर्णन कौन कर सकता है? अति सुन्दर श्रीरामजी के दर्शन से श्रीसीताजी की समाधि लग गई। विश्वामित्रजी ने देखा कि श्रीसीताजी ने हाथ ऊँचे बढ़ाये हैं पर मेरा राम अभी तक मस्तक क्यों नहीं झुकाता है? विश्वामित्रजी दौड़कर आये। उन्होंने राम के कान में कहा—राम! जब मैं अयोध्या आया था, तब कौशल्याजी से बातें हुई थीं। तुम्हारे माता-पिता बहुत प्रसन्न होंगे। कौशल्याजी की बहुत इच्छा है कि उनके राम का विवाह हो। गुरुजी! राम का विवाह हो, ऐसी माताजी की इच्छा है पर इसी कन्या से विवाह हो, ऐसी इच्छा है—श्रीरामजी ने पूछा। विश्वामित्र ने कहा— हाँ! बेटा! दशरथ राजा और कौशल्या माता ने श्रीसीताजी की बहुत-सी प्रशंसा सुनी है। उन दोनों की तीव्र इच्छा है कि श्रीसीताजी उनकी पुत्रवधू हों। राम! तुम्हारे माता-पिता बहुत प्रसन्न होंगे।

रामचन्द्रजी ने कहा—गुरुजी! हम दोनों भाई आपकी सेवा के लिए आये हैं। मुझे लगता है कि आपका, लक्ष्मण से, अधिक प्रेम मुझ पर है। आप मुझ अकेले का विवाह कर रहे हैं,लक्ष्मण का विवाह नहीं कर रहे हैं! रामजी का बन्धु-प्रेम कैसा है! इतनी सुन्दर राजकन्या विजयमाला पहिनाने आती है, तब रामजी को लक्ष्मण याद आते हैं।

विश्वामित्रजी ने रामजी को समझाया—राम! सीताजी की एक छोटी बहिन है, उसका नाम उर्मिला है। वह भी बहुत सुन्दर है। मैं जनक राजा से कहूँगा कि मेरे लक्ष्मण का विवाह भी यहीं कीजिये। विश्वामित्रजी की बात सुनकर रामजी ने सिर झुकाया। जैसे ही राम का सिर झुका, कि सखियों ने संकेत करके सीताजी को समझाया। श्रीसीताजी ने रामजी को विजयमाला अर्पण की—

सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससि हि सभीत देत जयमाला।।
गावहिं छवि अवलोकि सहेली। सिय जयमाल राम उर मेली।।

सुवर्ण-सिंहासन में श्रीरामचन्द्रजी के साथ सीताजी विराजमान हैं। जनकपुरी की प्रजा बहुत भाग्यशाली है। लोग श्रीसीता-रामजी के दर्शन करते हैं। वे बातें करते हैं— यह सीताजी हैं,ये जनक राजा की पुत्री नहीं है। ये तो धरती से बाहर आयीं हैं। ये महालक्ष्मी हैं।

जानकीजी सभी की माता हैं। जगत्-माता हैं। राम आदिनारायण परमात्मा हैं। हमने प्रत्यक्ष लक्ष्मीनारायण के दर्शन किये हैं।

परमात्मा के दर्शन में सभी तन्मय हुए हैं। दर्शन से किसी की तृप्ति नहीं हो रही है। बाल राम की आनन्द-कथा यहाँ परिपूर्ण होती है।

शुक्ल पक्ष, पंचमी तिथि, गुरुवार और गोधूलि के मुहूर्त्त में श्री सीतारामजी का विवाह हुआ। लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न सभी के विवाह भी यहीं हुए। बहुत उत्साह से विवाह महोत्सव

मनाया गया–

जित्वानुरूप गुण शील वयोऽङ्गरूपां सीताभिधां श्रियमुरस्यभिलब्धमानाम्।
मार्गे व्रजन् भृगुपतेर्व्यनयत् प्ररूढं दर्पं महीमकृत यस्त्रिराजवीजाम्॥

(९-१०-७)

सब ने आनन्द से अयोध्या की ओर प्रयाण किया। रास्ते में रामजी ने भगवान् परशुराम का तेज हर लिया। सुख रूप होकर सभी अयोध्या में प्रविष्ट हुए। दशरथ राजा के सुख का अन्त नहीं है। उनके चार वीर, सुशील, राजपुत्र हैं। श्रीसीताजी-सी पुत्रवधू हैं। पृथ्वी का राज्य हाथ में है। दशरथ महाराज ने कहा कि मैं अति सुख में हूँ। अति सुख अच्छा नहीं है। जीवन में एकाध दुःख तो होना ही चाहिए। दुःख से ही बुद्धि आती है। अति सुख में जीव भान भूलता है। अति मान प्राप्त हो तो भी अच्छा नहीं है। जिसे बहुत मान मिलता है, उसका पतन होता है। अति मान, अति धन, अति सुख पाना अच्छा नहीं है।

सन्त ऐसा वर्णन करते हैं कि दशरथ महाराज के सुख को काल की नजर लग गई। काल से उनका सुख सहन न हुआ। अयोध्या काण्ड में दशरथ महाराज के दुःख का वर्णन हुआ। मंथरा के कुसंग से कैकेयी की बुद्धि भ्रष्ट हुई। आपके जीवन में सुख-दुःख का, मान-अपमान का कैसा भी प्रसंग आये पर सत्कर्म न छोड़िये, सत्संग न छोड़िये। चाहे कुछ भी हो प्रेम से परमात्मा की सेवा कीजिये, पूजा कीजिये। अच्छे लोगों का संग रखिये। अच्छा वह है, जिसे पाप का डर है, जो परमात्मा से प्रेम करता है तथा जिसका जीवन भक्तिमय है। कैकेयी ने कुसंग किया, इससे उसका जीवन बिगड़ा। कैकेयी की रामजी के प्रति बहुत प्रीति थी, पर मंथरा का कुसंग हुआ, इससे बुद्धि बिगड़ी। सत्संग से तुरन्त लाभ नहीं होता, पर कुसंग से तुरन्त नुकसान होता है, तुरन्त जीवन बिगड़ता है।

मंथरा के कुसंग में पड़कर कैकेयी ने दशरथ महाराज से दो वरदान माँगे–भरत को राजसिंहासन और राम को वनवास। श्रीराम-लक्ष्मण-जानकी वनवास पधारे–

यः सत्यपाशपरिवीतपितुर्निदेशं स्त्रैणस्य चापि शिरसा जगृहे सभार्यः।
राज्यं श्रियं प्रणयिनः सुहृदो निवासं त्यक्त्वा ययौ वनमसूनिव मुक्तसङ्गः॥

(९-१०-८)

अयोध्या की प्रजा बहुत दुःखी हुई। वन में जाते हुए रामजी के पीछे लोग दौड़े। रामजी ने सबको समझाया पर कोई मानता न था। लोगों ने कहा–जहाँ राम वहाँ अयोध्या। हम रामजी के साथ चौदह वर्ष वन में रहेंगे।

प्रभु ने लीला की। तमसा नदी के तट पर रात्रि में जब सब सो रहे थे, तब योगमाया का आवरण आ गया। सब गहरी नींद में थे। तब सबको भुलावा देकर श्रीरामजी लक्ष्मण-जानकी के साथ गंगा पार कर गये।

घनघोर जंगल में श्रीराम, सीता और लक्ष्मण नंगे पाँवों आगे-आगे चलते थे। आगे रामजी, बीच में सीताजी तथा पीछे लक्ष्मणजी चल रहे थे। छोटी-सी पगडंडी थी। दोनों ओर कंटीली झाड़ियाँ थीं। लक्ष्मणजी पीछे चलते तब उनके लिये पैर रखने की जगह न रहती थी। एक ओर सीताजी के चरण चिह्न दीख पड़ते, तो दूसरी ओर श्रीराम के चरण चिह्न थे। लक्ष्मणजी कहाँ पैर रखें? श्रीराम-सीताजी के चरण-चिह्न जहाँ दीखते, वहीं लक्ष्मणजी मन से वंदन करते हैं—श्रीराम सीताजी के चरण-चिह्नों पर मेरा पैर न पड़ जाय! चलने में भी मर्यादा है। लक्ष्मणजी कंटीली झाड़ियों में चल रहे हैं। राम ने देखा और कहा—लक्ष्मण! तुम सबसे आगे चलो, पीछे-पीछे तुम्हारी भाभी चलेगी। आप दोनों की रक्षा करते हुए मैं सबसे पीछे चलूँगा। भगवान् की एक आदत है। वे भक्त के पीछे-पीछे चलते हैं। रामचन्द्रजी चित्रकूट में पधारे। वहाँ के ऋषियों को अतिशय आनन्द हुआ।

इस ओर दशरथ महाराज व्याकुल हुए हैं। अंतिम साँस तक रामजी का स्मरण करते रहे। सोचते थे कि मेरा राम बहुत सरल है। विनय का विवेक कैसा है इसको मुझे वंदन करके कहने लगा—पिताजी, धीरज रखिये! अहा! कैसा बोल रहा था! रामजी के एक-एक सद्‌गुण को याद करके दशरथ महाराज रोने लगे—श्रीराम, श्रीराम—कहते-कहते उन्होंने प्राण छोड़ दिये। भरतजी को ननीहाल से बुलाया गया भरतजी आये। श्राद्धादिक विधि की गयी। सबकी इच्छा थी कि भरतजी का राज्याभिषेक हो, पर भरतजी ने इन्कार कर दिया। कैकेयी का पुत्र कैकेयी से अनुपम है। भरतजी ने कह दिया—इस सूर्यवंश के सिंहासन पर बैठने की मेरी योग्यता नहीं है। इस सिंहासन पर तो श्रीराम और श्रीसीताजी विराजेंगे।

भरतजी के प्रेम की कथा का वर्णन कौन कर सकता है? भरतजी जब प्रेम से श्रीसीताराम, श्रीसीताराम बोलते तब चारों ओर से प्रेम प्रस्फुटित होता। भरतजी के दर्शन से भी प्रेम जाग उठता। भरतजी के दर्शन से पशु-पक्षी की समाधि लग जाती। चित्रकूट में राम-भरत का मिलन हुआ। चित्रकूट के पत्थर तक द्रवित हुए। भरतजी को प्रभु ने आज्ञा दी, चरण पादुकाएँ दीं। भरतजी इन्हें लेकर अयोध्या लौटे। अनेक ऋषियों को कृतार्थ करते श्रीरामचन्द्रजी गोदावरी के तट पर पंचवटी में पधारे।

लक्ष्मणजी को राम-सीता का सुन्दर बोध प्रभु ने दिया। लक्ष्मणजी ने शूर्पणखा के नाक-कान काटे। रामचन्द्रजी ने खरदूषण आदि असंख्य राक्षसों का संहार किया—

रक्षःस्वसुर्व्यकृत रूपमशुद्धबुद्धेस्तस्याः खरत्रिशिरदूषणमुख्यबन्धून्।
जघ्ने चतुर्दशसंहस्त्रमपारणीय कोदण्डपाणिरटमान उवास कृच्छ्रम्॥

(९-१०-९)

रावण को मालूम हुआ। उसने कपट किया मारीच की अनिच्छा होने पर भी उसके द्वारा कंचनमृग का स्वरूप धारण करवाया। प्रभु ने लीला की। छाया सीताजी में मृग का मोह उत्पन्न हुआ। मृग के पीछे रामजी गये। उसी समय श्रीसीताजी की छाया को रावण हरण करके ले गया। श्रीसीताजी के तीन स्वरूप हैं—सत्वमय, राजसी और तामसी। श्रीसीताजी का अति शुद्ध सत्वमय स्वरूप रामजी के साथ ही रहता है। श्रीसीता रामजी का नित्य संयोग है। शक्ति और शक्तिमान एक ही है, साथ ही रहते हैं। सीताजी रामजी से अलग रह ही नहीं सकतीं। श्रीरामजी सीताजी को छोड़ ही नहीं सकते। लीला करनी थी, इससे श्रीसीताजी का राजसी स्वरूप अग्नि में समा गया और तामसी छाया-स्वरूप रावण ले गया—

सीताकथाश्रवणदीपितहृच्छयेन सृष्टं विलोक्य नृपते दशकन्धरेण।
जघ्नेऽद्‌भुतैणवपुषाऽऽश्रमतोऽपकृष्टो मारीचमाशु विशिखेन यथा कमुग्रः॥
रक्षोऽधमेन वृकवद् विपिनेऽसमक्षं वैदेहराजदुहितर्यपयापितायाम्।
भ्राता बने कृपणवत् प्रियया वियुक्तः स्त्रीसंगिनां गतिमिति प्रथयंश्चचार॥

(९-१०-१०/११)

श्रीराम-लक्ष्मण सीताजी को खोजने निकले हैं। शबरीजी के आश्रम में श्रीराम लक्ष्मण पधारे हैं। शबरीजी को प्रभु ने सद्‌गति दी। सुग्रीव के साथ मैत्री की। बाली को मारा। किष्किन्धा का राज्य सुग्रीव को दिया। वानर-सेना एकत्र की। चारों दिशाओं में वानर भेजे। दक्षिण दिशा में अंगद, नल, नील, जामवंत, हनुमानजी को जाने की आज्ञा दी। रामचन्द्रजी जान रहे थे कि उनका काम तो हनुमानजी करने वाले हैं। हनुमानजी को सीताजी को देने के लिये संदेश दिया। हनुमानजी ने वंदन करके कहा—लंका में तो अनेक देव-गंधर्व-कन्याएँ हैं, अप्सराएँ हैं, अनेक स्त्रियाँ हैं। श्रीसीताजी को पहिचान सकूँ ऐसा कोई लक्षण कहिये। श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—श्रीसीताजी गौरवर्ण की हैं। उनके बाल बहुत सुन्दर हैं।

हनुमानजी ने कहा—महाराज मैं कभी इस शरीर का चिंतन नहीं करता हूँ। गौरवर्ण है, सुन्दर बाल हैं—यह सब मेरे ध्यान में नहीं रहता है। मैं ब्रह्मचारी हूँ। जो व्यक्ति मन का चिंतन करता है, उसका मन बिगड़ता है। शरीर सुन्दर है—इस कल्पना से ही काम उत्पन्न होता है। इस शरीर का चिंतन न कीजिए। मल-मूत्र से भरा यह शरीर ध्यान करने योग्य नहीं हैं। हनुमानजी ने कहा—मैं

ध्यान में रख सकूँ, ऐसा कोई लक्षण बतलाइए। तब रामचन्द्रजी ने कहा—मेरे वियोग में वह निरंतर मेरा ध्यान कर रही हैं। मेरे नाम के जप कर रही हैं। श्रीसीताजी जिस घर में होंगी, उस घर की दीवारों से भी श्रीराम-श्रीराम ऐसी ध्वनि निकलती होगी। श्रीसीताजी वन में हों, वृक्ष तले हों, तो वृक्षों में से रामनाम की ध्वनि निकलती होगी।

हनुमानजी ने यही लक्षण ध्यान में रखा। समुद्र लाँघकर हनुमानजी ने लंका में प्रवेश किया। श्रीसीताजी जिस वृक्ष के नीचे बैठी थीं, उस वृक्ष से 'श्रीराम-श्रीराम' ऐसी ध्वनि निकलती थी। ध्वनि प्रतिध्वनि उत्पन्न करती है। माताजी सारा दिन जप करती हैं। श्रीराम-वियोग में रामजी का ध्यान और रामनाम निरन्तर जप करते हुए वे तन्मय हुई हैं। हनुमानजी को सीतामाता के दर्शन हुए। हनुमानजी ने प्रभु का संदेश दिया। बाद में लंका जलाकर हनुमानजी वापस गये। तब रास्ते में ब्रह्माजी मिले। ब्रह्माजी ने हनुमानजी को एक पत्र लिखकर दिया। ब्रह्माजी ने सोचा कि हनुमानजी ने लंका में बड़े-बड़े पराक्रम किये हैं, उसका वर्णन रामजी से कौन करेगा? हनुमानजी स्वयं तो नहीं कहेंगे। हनुमानजी तो इतना ही कहेंगे कि माताजी को वंदन करके, संदेश कहकर मैं वापस आया हूँ। इससे ब्रह्माजी ने हनुमानजी की अलौकिक शक्ति का, हनुमानजी की दिव्य बुद्धि का वर्णन पत्र में किया। कई काम हनुमानजी ने बुद्धि से किये, कई काम शक्ति से किये। रामजी ने पत्र पढ़ा। रामजी को आनन्द हुआ। हनुमानजी को उन्होंने आलिंगन दिया। वानर-सेना एकत्र की गयी। प्रभु ने भाषण दिया। तब हनुमानजी ने मंगलाचरण किया।

जय जय राजा राम की, जय लक्ष्मण बलवान।
जय कपीश सुग्रीव की, कहत चले हनुमान॥

हनुमानजी ने जो गर्जना की, उसे राक्षसों ने सुना। वे सभी घबरा गये। वे सोचने लगे—वह बन्दर, जो एक बार लंका जलाकर वापस गया था, पुनः आ गया है। आगे चलकर रामनाम से पत्थर भी तैर गये। सेतुबंध रचाया गया,रामेश्वर की स्थापना की गई। वानर-सेना के साथ श्रीरामजी ने समुद्र पारकर, लंका में प्रवेश किया। भयंकर युद्ध हुआ। रामजी के दर्शन करते हुए, राक्षस मरे। प्रभु ने सभी को सद्बुद्धि दी। रावण का प्रभु ने उद्धार किया। राम-लक्ष्मण जानकी, वानर सेना के साथ पुष्पक-विमान में बैठकर श्रीअयोध्या पधारे। अयोध्यापुरी सजायी गयी। सब दर्शन के लिये, मिलने के लिये आतुर थे। श्रीराम एक ही समय में अपने अनेक स्वरूप प्रकट करके सब से एक ही समय मिले। सभी को उन्होंने आनन्द दिया। श्रीसीता-रामजी को सुवर्ण की चौकी पर बैठाकर, ब्राह्मणों ने वेदमंत्र के पाठन से, चारों समुद्र के जल से तथा अनेक तीर्थजल से तीर्थाभिषेक किया। शृंगार किया गया। गुरुजनों ने आशीर्वाद दिये। श्रीसीताजी के साथ श्रीरामजी सुवर्ण-सिंहासन पर विराजमान हुए।

श्रीसीता-रामजी सुवर्ण-सिंहासन में विराजमान हैं। अयोध्या की भाग्यशाली प्रजा श्रीसीता-रामजी के दर्शन करके तृप्त ही नहीं हो रही है। राम-राज्य में प्रजा बहुत सुखी हुई। रामराज्य में कोई दरिद्र नहीं था, कोई भिखारी न था। किसी के घर झगड़ा न था। रामराज्य में कोई स्त्री विधवा न थीं। कोई मूर्ख न था। सब ज्ञानी थे। सबके घर सत्संग था। रामराज्म में माता-पिता के रहते हुए किसी बालक की मृत्यु नहीं होती थी। रामराज्य में सभी ब्राह्मण अग्निहोत्री थे। रामराज्य में सभी एकादशी का व्रत करते थे। रामराज्य में कारागृह खाली ही रहते थे। न कोई चोरी करता था, न कैद में जाता था। कोई भी अन्याय का, अधर्म का धन नहीं लेता था। रामराज्य में सभी सुखी हुए-

नाधिव्याधिजराग्लानिदुःखशोकभयक्लमाः।
मृत्युश्चानिच्छतां नासीद् रामे राजन्यधोक्षजे॥

(९/१०/५४)

रामराज्य में किसी को आधि-व्याधि न थीं। शरीर के रोग को व्याधि कहते हैं। मन के रोग को आधि कहते हैं। राम-राज्य में वैद्य का व्यवसाय नहीं चलता था। वे सब बेकार बैठे रहते थे। हाँ! अब उनका धंधा बहुत चल रहा है। उनकी उन्नति हो रही है! रामराज्य में किसी को रोग नहीं होते थे। मानव, धर्म की मर्यादा का पालन करता रहे, संयम-सदाचार से भक्तिमय जीवन व्यतीत करे तो रोग नहीं होते। रोग, पाप का फल है। मानव, जब धर्म छोड़ता है, संयम-सदाचार छोड़ता है, तब शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं।

रामायण का एक-एक अक्षर वक्ता-श्रोता के पाप को जलाने वाला है। श्रीरामजी के गुण अनंत हैं। श्रीरामजी की लीलाएँ अनंत हैं। अनंत की कथा का अंत ही नहीं है।

नेदं यशो रघुपतेः सुरयाञ्चयाऽऽत्त-लीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः।
रक्षोवधोजलधिबन्धनमस्त्रपूगैः किं तस्य शत्रुहनने कपयः सहायाः॥
यस्यामलं नृपसदःसु यशोऽधुनापि गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम्।
तं नाकपालवसुपालकिरीटजुष्ट-पादाम्बुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये॥

(९-११-२०/२१)

श्रीरामचन्द्रजी की दो संतानें -लव और कुश हुईं। कुश का वंश बढ़ा। इस वंश में निष, मरु, सुदर्शन, नाभ इत्यादि अनेक राजा हुए। इस सूर्य वंश में अन्तिम राजा हुआ, सुमित्र।

इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्रान्तो भविष्यति।
यतस्तं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ॥ (९-१२-१६)

भागवत में लिखा है कि सुमित्र राजा तक ही यह वंश रहेगा। बाद में इस वंश का विनाश होगा। सूर्यवंश प्रकरण परिपूर्ण हुआ। अब यहाँ चन्द्रवंश की कथा का प्रारंभ है। जिस चन्द्रवंश में भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट होने वाले हैं, उसी चन्द्रवंश की यह कथा है।

आदिनारायण परमात्मा की नाभि में से कमल उत्पन्न हुआ। कमल में से ब्रह्माजी प्रकट हुए। ब्रह्माजी के पुत्र अत्रि हुए। अत्रि ऋषि का पुत्र चन्द्र हुआ, चन्द्र का पुत्र बुध। बुध का पुत्र पुरुरवा। पुरुरवा का विवाह उर्वशी के साथ हुआ। इस वंश में आयु, श्रुतायु, विजय, जय, रय—ऐसे अनेक बालक हुए। विजय के वंश में भीम हुआ। भीम राजा के वंश में जघ्नु, नाम का राजा हुआ। जघ्नु के वंश में गाधि हुआ। गाधि राजा की कन्या सत्यवती का विवाह ऋचीक ऋषि के साथ हुआ। उनके घर यमदग्नि हुए। यमदग्नि के घर परशुराम भगवान् प्रकट हुए।

परशुरामजी ने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय-विहीन कर दिया। उनकी थोड़ी कथा, इसमें प्रसंग वर्णित है। पुरुरवा के पुत्र आयु के वंश में नहुष राजा हुए। नहुष राजा के वंश में यति, ययाति, संयाति, आयति, वियति और कृति नाम की छह संतानें हुईं। ययाति महाराज की दो रानियाँ थीं—देवयानी और शर्मिष्ठा। देवयानी के यदु और तुर्वसु नाम के बालक हुए। शर्मिष्ठा के प्रहभु, अनु और पुरु ऐसे तीन बालक हुए। भागवत में एक-एक के वंश का वर्णन है। पुरु सबसे छोटा था पर उसने माता-पिता की बहुत सेवा की। इससे पुरु को सिंहासन पर बैठाया गया। सुधु, ऋतेयु, सुमति, रैभ्य ऐसे अनेक राजा हुए। इस वंश में दुष्यन्त राजा हुए। दुष्यन्त का पुत्र भरत हुआ। भरत राजा के वंश में संकृति नाम का राजा हुआ। संकृति राजा के वंश में रंतिदेव हुआ। इस वंश में देवाति, शंतनु आदि हुए। शंतनु महाराज का विवाह गंगाजी के साथ हुआ। उनके पुत्र का नाम देवव्रत था। एक पुत्र अर्पण करके गंगाजी बैकुण्ठ में गयीं। शंतनु राजा की दूसरा विवाह करने की इच्छा हुई। मत्स्यराज की कन्या सत्यवती बहुत सुन्दर थी। उसकी उन्होंने माँग की। मत्स्यराज ने कहा—आप दूसरा विवाह करना चाहते हैं? घर में जो पुत्र है, उन्हें राज्य का एक पैसा भी नहीं देंगे, ऐसी प्रतिज्ञा कीजिए, तो अपनी कन्या आपको दूँ।

शंतनु राजा विचार में पड़ गये। घर में जो पुत्र था वह बहुत योग्य था। सोचने लगे कि उसे एक पैसा भी न दूँ, तो अन्याय होगा। विवाह रुक गया। देवव्रत को मालूम हुआ कि मेरे कारण पिताजी दुःखी हो रहे हैं। देवव्रत मत्स्यराज के घर गया और बोला—आपकी पुत्री मेरी सौतेली माता होगी। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि राज्य का एक पैसा भी न लूँगा और अपने सौतेले भाई की सेवा करूँगा।

मत्स्यराज ने कहा—आप राज्य के लिए लड़ाई न करें पर आपके पुत्र करें तो? देवव्रत ने कहा—मैं आज से संसार-सुख के त्याग की प्रतिज्ञा लेता हूँ। मैं आज से ब्रह्मचर्य-पालन का प्रण लेता हूँ।

देवव्रत ने पिता के लिए संसार-सुख और संपत्ति-सुख का त्याग किया। विधाता ने इन दो वस्तुओं में ऐसी माया रखी है कि प्रायः लोग इनमें फँसे रहते हैं। जीव अनेक बार काम सुख भोगता है पर फिर भी मन में उसके प्रति घृणा नहीं आती है। मन इसमें फँसा रहता है। धन में मन रहता है। मन से जो काम-त्याग करता है, मन से जो धन-त्याग करता है, देव उसका जय-जयकार करते हैं। जिनके मन में काम नहीं है, वे महान तपस्वी हैं। मंन से काम का त्याग महान् तप है। देवों ने पुष्पवृष्टि की। देवव्रत का जय-जयकार किया। ऐसी भीष्म प्रतिज्ञा करने वाले को भीष्माचार्य का नाम दिया गया।

सत्यवती के साथ शान्तनु राजा का दूसरा विवाह हुआ। उनके दो पुत्र हुए। चित्रांगद और विचित्रवीर्य। इस वंश में धृतराष्ट्र, विदुर और पांडु हुए। पांडु के पाँच पांडव हुए। पांडवों में अर्जुन श्रेष्ठ हैं। अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु हुआ और हे राजन्! अभिमन्यु के पुत्र, तुम हो। परीक्षित राजा तक इस वंश की कथा सुनायी गयी है।

परीक्षित राजा ने कहा—महराज! हमारा वंश कितना आगे चलेगा? इसकी कथा कहिये। शुकदेवजी महाराज ने कथा कही। तब वह भविष्यकाल की थी, हमारे लिए आज वह कथा भूतकाल की है।

शुकदेवजी ने कहा—तुम्हारा पुत्र जनमेजय सर्पों के साथ वैर करेगा। जनमेजय राजा ने बड़ा सर्प सत्र किया है। जनमेजय राजा को ऐसा दुराग्रह था कि मेरे पिता को सर्पदंश हुआ, इससे मैं उस सर्पवंश का नाश करूँगा। जगत् में कोई सर्प न रहेगा। उसने मंत्रों के द्वारा सर्पों का आकर्षण करके उन्हें अग्नि में होम कर दिया। लाखों सर्प जलकर भस्म हो गये पर तक्षक नाग अग्नि में नहीं पड़ा। जनमेजय राजा ने ब्राह्मणों से कहा कि मेरे पिता को दंश देने वाले तक्षक को आप अग्नि में डालिए। ब्राह्मणों ने कहा कि तक्षक इन्द्र की शरण में है। जनमेजय ने कहा—महाराज! आपके पास ऐसा कोई मंत्र है कि जिससे इन्द्र के तक्षक को भी अग्नि में होम कर सकें? मंत्रों में दिव्य शक्ति रहती है। ब्राह्मण मंत्रों की शक्ति का दुरुपयोग करने लगे। वे इन्द्र के साथ तक्षक को भी होम ने को भी तैयार हो गये। उस समय आस्तिक नाम का ब्राह्मण राजा जनमेजय को समझाता है—आप यह क्या कर रहे हैं? आपके पिता को सद्गति प्राप्त हुई है। मरण का कुछ निमित्त होता है। आप इस तरह सर्पों से वैर करते हैं, यह उचित नहीं है। सर्पवंश का रक्षण कीजिए। आस्तिक की सलाह से सर्पसत्र रुक गया। आस्तिक ब्राह्मण ने सर्पवंश का रक्षण किया। इससे आस्तिक का नाम सुनते ही सर्प शांत हो जाते हैं, सर्प जब क्रोध में हो, तब आप 'आस्तिक-आस्तिक' बोलेंगे

तो उसका क्रोध शांत हो जायगा। परमात्मा की सृष्टि चमत्कारों से पूर्ण है। सर्प आँख से देखते हैं, आँख से ही सुनते हैं, सर्प के कान नहीं होते। इससे संस्कृत में सर्प को चक्षु श्रवण कहते हैं।

इस जनमेजय के वंश में शत्रुसेन, उग्रसेन, भीमसेन– ऐसे अनेक राजा होंगे।

क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ।
अथ मागधराजानो भवितारो वदामि ते॥ (९-२२-४५)

पांडवों के वंश में अंतिम राजा क्षेमक होगा। क्षेमक राजा तक ही यह वंश रहेगा। बाद में इस वंश का विनाश होगा।

नवम स्कंध की समाप्ति में पुरुरवा के बड़े पुत्र यदु के वंश का वर्णन है, जिस यदुवंश में भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट होने वाले हैं।

यत्रावतीर्णो भगवान् परमात्मा नराकृतिः।
यदोः सहस्त्रजित् क्रोष्टा नलो रिपुरिति श्रुताः॥ (९-२३-२०)

यदु राजा के वंश में सहस्त्रजित, क्रोष्टा, रिपु, सत्रजित, कृतवीर्य, कार्तवीर्य– ऐसे अनेक राजा हुए। कार्तवीर्य राजा गुरु दत्तात्रेय के अनन्य भक्त थे। श्रीदत्तात्रेय स्वामी की कृपा से उनहें सर्व तरह की सिद्धियाँ प्राप्त थीं। कार्तवीर्य राजा महान योगी थे। कार्तवीर्य राजा के वंश में जयध्वज इत्यादि राजा हुए। अंधक राजा के दो पुत्र देवक और उग्रसेन हुए। देवक राजा के वंश में सात कन्यायें हुई। शान्तिदेवा, उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, अहदेवा, कृतदेवा और देवकी। वसुदेव के साथ देवकी का विवाह हुआ। देवकी के भाई उग्रसेन के नौ बालक हुए, जिसमें कंस सबसे बड़ा था। इसके बाद सातों कन्याओं के वंश का वर्णन है।

समाप्ति में देवकीजी के वंश का वर्णन है। शुकदेवजी महाराज कहते हैं–देवकीजी के आठ सन्तानें हुईं, परन्तु छः सन्तानों को कंस ने मार डाला। सातवें बलरामजी हैं और आठवें मेरे इष्टदेव परमात्मा श्रीकृष्ण हैं। जब-जब धर्म का विनाश होता है, अधर्म बढ़ता है तब परमात्मा प्रकट होते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण को सनातन धर्म अतिशय प्रिय है। धर्म की पराजय प्रभु को पसन्द नहीं है।

यदा यदेह धर्मस्य क्षयो वृद्धिश्च पाप्मनः।
तदा तु भगवानीश आत्मानं सृजते हरिः॥

(९-२४-५६)

धर्म की रक्षा के लिए परमात्मा अवतार धारण करते हैं। मेरे भगवान् का प्राकट्य मथुरा के कारागृह में हुआ है। वहाँ से वे गोकुल पधारे हैं। लगभग ग्यारह वर्षों तक उन्होंने गोकुल में लीलाएँ कीं। ब्रजवासियों को परमानन्द का दान दिया। कंसादिक राक्षसों का विनाश किया। मथुरानाथ हुए।

श्रीकृष्ण द्वारिकाधीश हुए। अनेक रानियों के साथ विवाह किया। गृहस्थ धर्म का आदर्श जगत् को भगवान् श्रीकृष्ण दिखाते हैं।

यस्याननं मकरकुण्डलचारुकर्ण-भ्राजत्कपोलसुभगं सविलासहासम्।
नित्योत्सवं न ततृपुर्दृशिभिः पिबन्त्यो नार्यो नराश्च मुदिताः कुपिता निमेश्च॥
जातो गतः पितृगृहाद् व्रजमेधिताथों हत्वा रिपून् सुतशतानि कृतोरुदारः।
उत्पाद्य तुषु पुरुषः क्रतुभिः समीजे आत्मानमात्मनिगमं प्रथयञ्जनेषु॥

(९-२४-६५,६६)

श्रीकृष्ण सोलह हजार रानियों के पति हैं, पर किसी जीव में आसक्त नहीं हैं। श्रीकृष्ण में वैराग्य परिपूर्ण है। घर के लोगों से शुद्ध भाव से प्रेम कीजिए। घर में कोई दुःखी न हो, इस बात का ध्यान रखिये परन्तु अत्यधिक ध्यान में रखिये कि आनंद किसी स्त्री के पास नहीं है, आनंद किसी पुरुष के पास भी नहीं है। आनंदमय तो परमात्मा हैं। कोई स्त्री या पुरुष मुझे आनंद देंगे– ऐसी आशा न रखिये। श्रीकृष्ण सभी रानियों को प्रसन्न रखते हैं पर भीतर से परिपूर्ण वैराग्यमय हैं। सोलह हजार रानियों को ऐसा लगता है कि मुझसे उनका विशेष प्रेम है। बाहर से घर के लोगों के प्रति प्रेम-भाव दिखाइए। भीतर से तो परमात्मा के प्रति ही प्रेम रखिये। पति-पत्नी प्रेम रखें पर आसक्त न बनें। यह शरीर मल-मूत्र से भरा है। शरीर प्रेम के योग्य नहीं है। प्रेम के योग्य तो परमात्मा ही हैं। शुकदेवजी महाराज राजर्षि को सावधान करते हैं। प्रभु ने गृहस्थ धर्म का आदर्श जगत् को दिखलाया है–

पृथ्व्याः स वै गुरुभरं क्षपयन् कुरूणामन्तः समुत्थकलिना युधि भूपचम्वः।
दृष्ट्या विधूय विजये जयमुद्विघोष्य प्रोच्योद्धवाय च परं समगात् स्वधाम॥

(९-२४-६७)

कौरव-पाण्डवों के युद्ध के निमित्त से प्रभु ने पृथ्वी का भार उतारा। पश्चात् अर्जुन और उद्धव को तत्त्व ज्ञान का उपदेश देकर भगवान् श्रीकृष्ण गोलोक-धाम में पधारे।

इति नवम् स्कंधः समाप्तः

हरि ॐ तत्सत्

श्रीगणेशाय नमः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवत-रसामृत

दशम स्कन्धः

४८- श्रीकृष्ण कथा गंगा

परमात्मा श्रीकृष्ण रसमय हैं। अति मधुर रस ही परमात्मा श्रीकृष्ण का स्वरूप है। संसार नीरस है, परमात्मा रसमय हैं। कई लोग ऐसा मानते हैं कि बँगला कितना सुन्दर बनवाया है! क्या बँगला सुन्दर है? एक सौ चार डिग्री बुखार आने पर बँगला अच्छा लगता है क्या? बुखार आने पर बँगला फीका लगता है। साधारण मानव अज्ञान से ऐसा समझता कि संसार रसमय है, संसार सरस है। वस्तुतः संसार नहीं है, रसमय तो परमात्मा श्रीकृष्ण ही हैं। श्रीकृष्ण प्रेम-रस के स्वरूप हैं।

इस संसार में जितने रस हैं, उन सभी को भोगने के बाद मानव नीरस बनता है। आप जिस रस का उपभोग नहीं करते हैं वह ही आपको मीठा लगता है पर रस को भोगने के बाद उस रस में से मन विरक्त हो जाता है। संसार के सभी रस ऐसे ही हैं। उन्हें भोगने के बाद मन नीरस बनता है। यही प्रेम रस ऐसा मधुर है कि इस रस को भोगने के बाद जीव रसमय बनता है! संसार के सभी रसों में भोज्य और भोक्ता दो हैं, द्वैत हैं। प्रेम-रस ऐसा मधुर है कि इस रस का उपभोग करने वाला भोक्ता मिट जाता है और वह रस-रूप बन जाता है।

संसार के जितने रस हैं, उन सभी में मिठास कम है, कड़वाहट अधिक है। इस से संसार के रसों को भोगने के बाद उनसे अरुचि होती है। वे सभी रस तुच्छ लगते हैं। मन उनसे विरक्त हो जाता है। संसार के सभी रसों में कड़वाहट अधिक है।

इस जीव की किसी न किसी रस में रुचि होती है। कइयों को हास्य रस बहुत पसंद है। वे ऐसा समझते हैं कि महाराज कथा में बहुत हँसते हैं, और हँसाते हैं, इससे आनंद आता है। अरे, कथा हँसने के लिए है क्या? कथा मनोरंजन का साधन नहीं है। कथा सुनने के बाद थोड़ा सा दुःख होना चाहिए। मानव सोचे कि आज तक मेरा जीवन कैसा व्यर्थ गया। मैंने परमात्मा के लिए कुछ भी नहीं किया! कथा में हास्य रस तुच्छ माना गया है। जो व्यक्ति कथा में बहुत हँसता है, उसका मन खराब होता है। बहुत हँसना अच्छा नहीं है। शास्त्रों में लिखा है कि जो बहुत हँसता है वह

रोने की तैयारी में है। हास्यरस में मिठास कम है कड़वाहट अधिक है। कइयों को वीर रस अधिक भाता है। मार-धाड़ की कथा आती है, इससे उन्हें आनंद आता है। वीर रस में भी मिठास कम है, कड़वाहट अधिक है। कइयों को शृंगार रस प्रिय है। वे शृंगार रस में मिठास पाते हैं। प्रारंभ में उस में मिठास महसूस होती है, पर शरीर के दुर्बल होने पर उसमें मिठास नहीं लगती है। विवाह के बाद घर में सब कुछ अनुकूल हो तो पति-पत्नी को स्वर्ग सा सुख लगता है परन्तु दो-चार बालक हो ज़ाने के बाद शरीर दुर्बल होता है। शरीर के बिगड़ जाने के बाद लगता है कि वह स्वर्ग का सुख न था, वह तो शरीर का भोग था। मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी, माया ने मुझे फँसा कर रखा था। मुझे असली सुख नहीं मिला है!

संसार के रसों में बहुत कम मिठास है, कड़वाहट अधिक है। यह प्रेम रस ऐसा मधुर है। इस रस में अपूर्व मधुरता है, मिठास है! इसमें कड़वाहट नहीं है। कलियुग के लोगों ने प्रेम शब्द का बहुत अनर्थ किया है। वे उसे विकृत रूप दे रहे हैं। लोग मोह को प्रेम समझते हैं। मोह और प्रेम का आकार थोड़ा समान है, पर प्रकार में बहुत भिन्नता है। सुख भोगने की इच्छा को मोह कहते हैं। मोह भोग माँगता है, प्रेम भोग देता है। गुलाब के फूल को देखकर ऐसा मन हो कि इसे तोड़कर, इसकी सुगंध लूँ तो वह मोह है, पर गुलाब को देखकर ऐसी भावना हो कि इसे प्रभु के चरणों में अर्पण कर दूँ, तो वह प्रेम कहा जायगा। मोह में सुख भोगने की भावना है; प्रेम में त्यांग है। शरीर बिगड़ जाय, रोगी हो जाय, तो मोह नहीं रहता है, पर शरीर के बिगड़ जाने पर भी प्रेम का विनाश नहीं होता है। मोह मर जाता है, प्रेम अविनाशी है। मोह में मिलन की बहुत उत्कण्ठा व जल्दी रहती है, प्रेम में धैर्य रहता है। मोह संयोग में पुष्ट होता है, प्रेम वियोग में भी पुष्ट होता है। मोह देह का धैर्य रहता है। मोह संयोग में पुष्ट होता है, प्रेम वियोग में भी पुष्ट होता है। मोह देह का धर्म है, प्रेम परमात्मा का दिव्य स्वरूप है।

श्रीकृष्ण प्रेमरस के स्वरूप है। कृष्ण-कथा जो बार-बार सुनते हैं, प्रेम से 'श्रीकृष्ण-श्रीकृष्ण' कीर्तन करते हुए जो तन्मय होते हैं, उनके मन को भगवान् धीरे-धीरे अपनी ओर खींच लेते हैं। श्रीकृष्ण की आकर्षण-शक्ति अलौकिक है। भगवान् मन का आकर्षण करके प्रेम-रस का दान करते हैं। इस रस का अनुभव करने वाला रसमय बनता है। भोग्य और भोक्ता-ऐसा द्वैत भाव नहीं रहता है। वह आत्मा के साथ एकरूप हो जाता है। अलौकिक प्रेम-रस की कथा का अब दशम स्कंध में प्रारम्भ होने वाला है।

दशम स्कंध की लीला अति मधुर है। शुकदेवजी महाराज ने सब कुछ छोड़ दिया है किन्तु वे कृष्ण कथा नहीं छोड़ते है। उन्हें लँगोट की भी जरूरत नहीं है। वे पूर्ण निर्विकार हैं, निर्वसन हैं।

यह पुरुष है–वह स्त्री है–ऐसा भेद उनके मन में नहीं है। उन्हें सारा जगत ब्रह्मरूप दीखता है। कई योगी, ज्ञानी पुरुष आँखें बन्द करके बैठते हैं, तो उन्हें ज्योति दीख पड़ती है, परमात्मा दीख पड़ते हैं; पर आँखें खोल दें तो उन्हें जगत दिखाई देता है। आँखें बन्द करने पर जिन्हें परमात्मा दिखाई देते हैं, पर आँखें खोलने पर जिन्हें जगत दिखाई पड़ता है, उनका ज्ञान कच्चा है। खुली आँखों से, प्राणायाम किये बिना, जिन्हें परमात्मा दीख पड़ते हैं, जगत नहीं दिखाई देता, उनका ज्ञान सच्चा है। शुकदेवजी महाराज को खुली आँखों से भी जगत नहीं दिखाई देता, परमात्मा दीख पड़ते है।

महापुरुषों ने समाधि के दो भेद माने हैं–जड़ और चेतन। दोनों समाधियों को उन्होंने नाम दिया है–जड़ समाधि और चेतन समाधि। जड़ समाधि में योगी मन को जबर्दस्ती, पकड़कर, ब्रह्मरंध्र में ले जाते हैं, और समाधि लगाते हैं। मन को जबर्दस्ती पकड़ना अच्छा नहीं है। महाभारत में पराशर महर्षि की कथा आती है। पराशर ऋषि ब्रह्मचिंतन कर रहे थे। वे मन को जबर्दस्ती पकड़कर बैठे थे। उन्होंने साठ हजार वर्षों तक समाधि लगाई थी। पर एक बार ऐसा हुआ कि साठ हजार वर्षों के बाद वे एक नाव में बैठे। एक साधारण कन्या नाव चला रही थी। उसे देखकर ऋषि के मन में, आँखों में पाप आया। आँखें खोलने पर, प्राणायाम छोड़ने पर, मन शांत रहना चाहिए। मन को जबर्दस्ती पकड़ने वाले को मन कभी गर्त में गिराता है। मन दगा दे देता है। मन को प्रेम से समझाकर प्रभु के मार्ग पर ले जाइए। आप सब गुरु हैं, मन आपका शिष्य है। अन्य को कभी समझाने के झंझट में न पड़िए। जब कभी हो सके, अपने मन को, शांति से समझाइए। आप मन को समझायेंगे तो मन सुधर सकेगा। आपका मन अन्य किसी को नहीं दीख पड़ता है। व्यवहार में लोग कहते हैं–मेरा मन बिगड़ा है। बिगड़ा जिसको दीख पड़ता है, वह आप हैं। आप तन नहीं, मन नहीं पर आप बिगड़े मन को सुधारने वाले चेतन आत्मा हैं। अपने मन को आप ही सुधार सकेंगे।

मन को बार-बार समझाइए कि संसार के विषयों में विष है। विष खाने वाला एक ही बार में मर जाता है, पर वासना तो ऐसा विष है जो अनेक बार मारती है। वासना भयंकर विष है। वह इस जन्म में मारती है और दूसरे जन्म में भी मारती है। ज्ञान और भक्ति को इतना बढ़ाइये कि वासना का विनाश हो जाय। वासना का विष अगर मन में रह जाता है तो वह दूसरा जन्म भी बिगाड़ता है। समझाने से मन धीरे-धीरे सुधरता है। कल्पना कीजिए कि एक समय का आपका मित्र आपका शत्रु हुआ और फिर वह आपका मित्र हुआ। एक दिन ऐसा मित्र आपके घर आ पहुँचा और कहने लगा कि ये पाँच लड्डू हैं। यह प्रसाद है, इसे तुम खाओ। वह प्रसाद देकर चला गया। आपको बहुत भूख लगी और आप लड्डू खाने के लिए तैयार हो गये। उसी समय आपका एक मित्र आया, और कहने लगा कि ये लड्डू तुम न खाना। मुझे आशंका है, कि शायद इनमें

विष हो! जब मालूम पड़ता है कि ये लड्डू विष हैं तब मन उनमें से हट जाता है। संसार के विषयों का हाल भी ऐसा ही है। विषयों में वासना का विष है। उसके द्वारा थोड़े समय तक सुखों का भास होता है, पर बाद में वे रुलाते हैं। मन को बार-बार समझाकर प्रभु के मार्ग पर ले जाइए। मन के ऊपर जबर्दस्ती न कीजिए। समाधि जड़ न होनी चाहिए, चेतन होनी चाहिए।

समाधि सहज होनी चाहिए। गोपियों की सहज समाधि है और इसीसे शुकदेवजी महाराज गोपियों की कथा कहते हैं। शुकदेवजी महाराज संन्यासी महात्माओं के आचार्य हैं, पर गोपियों की प्रशंसा कर रहे हैं। कई गोपियाँ तो विवाहित हैं। गोपियों का वस्त्र–संन्यास नहीं है, गोपियों का प्रेम–संन्यास है। कपड़े भगवे रँगवाकर संन्यास लेना ठीक है, पर सच्चा संन्यास तो यह है कि मन भक्ति के रंग से रँगा जाय। वस्त्र संन्यास से प्रेम–संन्यास श्रेष्ठ है। गोपियों ने घर नहीं छोड़ा है, पर गोपियों के मन में घर नहीं है।

गोपियों के मन में श्रीकृष्ण का स्वरूप स्थिर है। गोपियों की सहज समाधि है। गोपियाँ नाक नहीं पकड़ती हैं, वे प्राणायाम भी नहीं करती हैं। योगियों की सहज समाधि में इन्द्रियों के साथ झगड़ा है। श्रीकृष्ण-लीला में इन्द्रियों को, समाधि को सहज मार्ग पर ले जाना है।

गोपियों की अनायास समाधि लग जाती है। श्रीकृष्ण-कथा में ऐसी ही शक्ति है। वक्ता विवेक से, भगवान् का स्मरण करते हुए कथा करे, तो वक्ता को याद नहीं रहता कि इस गाँव का नाम क्या है? कौन से गाँव में मैं बैठा हूँ? मैं कौन हूँ? कहाँ हूँ? श्रोता शांति से कथा सुनते रहें तो वे भी जगत को भूल जाते हैं। कृष्ण-कथा में ऐसी शक्ति है कि यह कथा अनायास जगत को भुलवा देती है।

जगत् में रहकर, जगत् को भूलना है। सच्चा आनंद जगत् में नहीं है। जगत् भुलाया जाता है, तब आनंद प्रकट होता है। संसार सुख-दुःख से भरा हुआ है। जहाँ सुख है, वहाँ दुःख है। आनंद सुख-दुःख से परे है। आनंद जगत् में नहीं है, जगत् को भूल जाने में है। कृष्ण-लीला में ऐसी दिव्य शक्ति है कि इससे परमात्मा के दर्शन में तन्मयता आती है, दिव्य आनंद प्रकट होता है। इससे शुकदेवजी महाराज कृष्ण-कथा कर रहे है। शुकदेवजी को कोई स्वार्थ नहीं है। शुकदेवजी महाराज को कृष्ण कथा करने से क्या लाभ? जो आनंद उन्हें समाधि में मिलता है वही आनंद उन्हें कृष्ण-कथा द्वारा मिलता है। यह कथा इतनी मधुर है कि वह अनायास जगत् की विस्मृति करवाती है। कृष्ण-कथा योगियों को आनंद देती है और भोगी जीव को भी आनंद देती है। श्रीकृष्ण के समान कोई महान् योगी नहीं हुआ है। श्रीकृष्ण के समान भोगी भी नहीं हुआ है। योगी, भोगी होने का यत्न करता है तो उसका पतन होता है; और भोगी तो योगी हो ही नहीं सकता है। वह तो रोगी

हो जायगा। योग और भोग एक-दूसरे के विपरीत हैं पर श्रीकृष्ण में दोनों का समन्वय है। श्रीकृष्ण में ये दोनों परिपूर्ण दीख पड़ते हैं, इससे श्रीकृष्ण देव नहीं, परमात्मा हैं।

द्वारिका में श्रीकृष्ण हररोज छप्पन भोग आरोगते हैं। बेट द्वारिका में आप गये होंगे। वहाँ तो अनगिनत भोग लगते हैं। सत्यभामाजी भोग ले आती हैं, जांबवतीजी के घर से भोग आता है। राधाजी लाती हैं, लक्ष्मीजी लाती हैं। वैष्णव लाते हैं। जो कुछ जितना आता है, भगवान् हर रोज आरोगते है। इतना सब कुछ आरोगने पर भी प्रभु को अजीर्ण नहीं होता है।

छप्पन भोग का प्रसाद आप दो-तीन दिन लेंगे तो आपकी स्थिति क्या होगी? अंतिम यात्रा ही निकलेगी। श्रीकृष्ण महाभोगी हैं, श्रीकृष्ण महायोगी हैं। सोलह हजार रानियों के वे स्वामी हैं फिर भी उन्हें काम का स्पर्श नहीं होता है। इससे ही श्रीकृष्ण का नाम अच्युत है। श्रीकृष्ण महायोगी भी हैं। उन्हें वृद्धावस्था नहीं आती है। श्रीकृष्ण-लीला में योगियों को आनंद आता है, भोगियों को भी आनन्द आता है। श्रीकृष्ण-कथा ऐसी मधुर है कि गृहस्थ को भी इसमें आनंद आता है, संन्यासी को भी आनंद आता है। श्रीकृष्ण-कथा में बालक को भी आनंद आता है, स्त्रियों को आनंद आता है। वृद्धों को भी आनंद मिलता है। यह कथा ऐसी दिव्य है कि वह सभी को आनंद देती है। नास्तिक भी इस कथा को सुनकर आस्तिक हो जाता है। इस कथा के श्रवण से प्रभु के प्रति प्रेम हो जाता है। आप जितनी शांति से इस कथा को सुनेंगे, उतना अधिक आनंद पायेंगे। आपको कभी ऐसा महसूस होगा कि अभी मैं गोकुल में हूँ, वृन्दावन में हूँ। आप अनायास जगत् को भूल जायेंगे। जगत् को भूलने के लिए योगी नाक पकड़ते हैं, प्राणायाम करते हैं, आँखें बंद करके बैठते हैं, फिर भी जगत् को भूलना असंभव हो जाता है। श्रीकृष्ण-कथा से अनायास जगत् भुलाया जाता है। जगत् की विस्मृति होती है। अलौकिक आनंद प्रकट होता है। श्रीकृष्ण-लीला निरोध-लीला है। जगत् की विस्मृति के साथ परमात्मा के चरणों में तन्मयता होने को ही निरोध कहते है। श्रीकृष्ण लीला के श्रवण-चिंतन से आनंद प्रकट होता है। मानव को मरने से पहिले ही मुक्ति का आनंद मिलता है। सर्व को आनंद देनेवाली यह लीला है।

शुकदेवजी महाराज ने यह लीला-कथा भी उसी तरह की है। परीक्षित राजा श्रवण करते हुए जगत को भूल जाते हैं। देह का बोध उनके द्वारा भुलाया जाता है, फिर तक्षक नाग के काटने की बात ही कहाँ रहती है? तक्षक नाग डँसने आये तो भी क्या? तक्षक नाग आत्मा को नहीं डँसेगा, शरीर को डँसनेवाला है। परमात्मा में तन्मय होकर, देह-बोध भूलने पर ही, मृत्यु से पहिले मुक्ति मिलती है। बाद में, तक्षक नाग काट ले तो भी क्या? बंधन मन को है, मृत्यु तन को है। आत्मा को बंधन

नहीं है। आत्मा की मृत्यु भी नहीं है। राजा को मृत्यु से पहिले ही मुक्ति मिल जाय, ऐसी कथा शुकदेवजी कहते हैं। परीक्षित राजा को शुकदेवजी की कथा में बहुत आनंद आता है।

दशम स्कंध के प्रारंभ में राजा ने शुकदेवजी महाराज से प्रश्न पूछा है– आपने सूर्यवंश की, चन्द्रवंश की कथा सुनायी पर कृष्ण कथा में आपने बहुत संक्षेप किया। विस्तार से कृष्ण-कथा सुनने की मेरी इच्छा है।

शुकदेवजी ने राजा से कहा कि पाँच-छह दिन हो गये हैं। अभी तुमने कुछ खाया-पिया नहीं है। तुम जलपान कर लो, बाद में मैं कथा सुनाऊँगा। परीक्षित ने कहा–

नैषातिदुःसहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते।
पिबन्तं त्वन्मुखाम्भोजच्युतं हरिकथामृतम्॥ (१०-१-१३)

महाराज! इस कथा में ऐसा आनंद आ रहा है कि मुझे भूख नहीं लगती है, पानी पीने की इच्छा भी नहीं होती है। भागवत में ऐसा लिखा है कि भक्ति रस में, प्रेम रस में मन जब निमग्न हो जाता है। तब धीरे-धीरे भूख-प्यास कम हो जाती है। जिन्हें भक्ति का आनंद मिलता है, भीतर से जिन्हें भक्ति का रंग लगा है, उनकी भूख कम हो जाती है, उन्हें प्यास नहीं लगती है। श्रीकृष्ण-कथा में राजा का प्रेम देखकर शुकदेवजी महाराज बहुत प्रसन्न हुए–

एवं निशम्य भृगुनन्दन साधुवादं वैयासकिः स भगवानथ विष्णुरातम्।
प्रत्यर्च्य कृष्णचरितं कलिकल्मषघ्नं व्याहर्तुमारभत भागवतप्रधानः॥
(१०-१-१४)

राजन, धन्य है। बहुत शांति से, बहुत प्रेम से तुम यह कथा सुन रहे हो। श्रीकृष्ण भगवान् को प्रणाम करके शुकदेवजी कहते हैं कि रामजी की कथा बहुत सरल थी; राम-लीला का वर्णन मैंने किया पर, हे प्रभु, आपकी लीलाएँ बहुत विलक्षण है। अब आप मेरे हृदय में विराजमान होकर अपनी कथा कीजिए। मैं आपके दर्शन करूँगा, स्मरण करूँगा, आपके चरणों में वंदन करूँगा। दशम स्कंध की कथा में, मैं कथा कर रहा हूँ–यह बात शुकदेवजी महाराज भूल गये हैं। जिस वक्ता को यह याद रहता है कि मैं पंडित हूँ, शास्त्री हूँ, पढ़ा-लिखा हूँ। मैं लोगों को उपदेश कर रहा हूँ, उसकी कथा में प्रभु जल्दी से नहीं आते हैं। वक्ता श्रीकृष्ण-कथा में श्रीकृष्ण-दर्शन स्मरण में जब यह भूल जाता है कि मैं कथा कर रहा हूँ–तब उसके मुख के द्वारा प्रभु कथा करते हैं।

दशम स्कंध की कथा में शुकदेवजी के हृदय में श्रीकृष्ण का स्वरूप स्थिर हो गया है। शुकदेवजी की समाधि लग गयी है। दशम स्कंध की कथा करने वाले श्रीकृष्ण हैं। शुकदेवजी तो सुन रहे हैं। श्रीकृष्ण-कथा-गंगा प्रकट हुई। उस दिन से भागीरथी गंगा का माहात्म्य कम हुआ है।

भागीरथी गंगा में स्नान करना अच्छा है। तीर्थों में स्नान करने से पाप जलते हैं, पर मन शुद्ध नहीं होता है। कई लोग चारों धामों की यात्रा करके आते हैं, पर उनका स्वभाव जरा भी नहीं सुधरता है। उनका मन शुद्ध नहीं होता है। श्रीकृष्ण-कथा-गंगा में जो समुचित रूप से गोता लगाता है, उसके मन का मैल धीरे-धीरे धुल जाता है। कृष्ण-कथा-गंगा में जो स्नान करते हैं, उनका स्वभाव सुधरता है, उन्हें भक्ति का रंग लगता है। कृष्ण-कथा-गंगा सभी का कल्याण करने वाली है।

४९- प्रभु-प्राकट्य

शुकदेवजी कहते हैं कि अनेक देशों में दुष्ट राजा हुए जैसे—कंस, जरासंध, शल्य, शिशुपाल, दंतवक्र आदि प्रत्येक देश में पापी राजा उत्पन्न हुए हैं। ये पापी राजा लोगों को बहुत त्रस्त करते थे। कंस ऐसा दुष्ट था कि वह अपने पिता को भी मारता था। जो अपने पिता को मारता है, वह क्या न करेगा? प्रजा बहुत दुःखी रहती थी। अधिक आबादी से धरती को भार नहीं लगता, किन्तु अधिक पाप के कारण धरती को भार लगता है। पाप बहुत बढ़ गया। धरती माता अकुलाने लगीं। वे गायमाता का स्वरूप धारण करके ब्रह्मलोक में गयीं। ब्रह्मादिक देव धरती माता को लेकर क्षीर-समुद्र के तट पर पहुँचे—

तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम्।
पुरुषं पुरुषसूक्तेन उपतस्थे समाहितः॥ (१०-१-२०)

आदिनारायण परमात्मा की उन्होंने स्तुति की, प्रार्थना की। प्रार्थना में बहुत शक्ति होती है। जिसने भोजन किया है उसे पाँच-छह घण्टे भूख नहीं लगती है। जिसने प्रेम से प्रार्थना की है वह पाँच-छह घण्टे पाप नहीं कर सकता। कई लोग मंदिर में भक्ति करते हैं, पर मंदिर से बाहर आने के बाद पाप शुरू कर देते हैं। उचित रूप से भक्ति करने पर भक्ति का असर पाँच-छह घंटे तो रहता ही है। प्रार्थना प्रेम से कीजिए। प्रभु के दर्शन करते हुए प्रार्थना कीजिए। ऐसी निष्ठा रखकर प्रार्थना कीजिए कि प्रभु यहाँ विराजमान हैं और वे मेरी प्रार्थना सुन रहे हैं। प्रार्थना करते समय जगत् को छोड़ दीजिए। जिसे याद रहता है कि मैं पति हूँ, पत्नी हूँ, पिता हूँ, पुत्र हूँ, वह प्रार्थना मं तन्मय कैसे हो सकता है? जगत् का सम्बन्ध छोड़कर, प्रभु में तन्मय होकर प्रार्थना कीजिए।

सभी देव, ऋषि परमात्मा की प्रार्थना करते हैं, स्तुति करते हैं, पर प्रार्थना में सिर्फ ब्रह्माजी ही तन्मय हुए हैं। परमात्मा की दिव्य वाणी सिर्फ ब्रह्माजी ही सुन सके। प्रभु ने ब्रह्माजी से कहा—अब मैं तुरन्त प्रकट होने वाला हूँ। मेरा प्राकट्य मथुरा में कारागृह में होगा। वहाँ से मैं गोकुल जाऊँगा। ग्यारह वर्ष तक वहाँ लीला करूँगा। मेरी सेवा के लिए तुम सब मथुरा-गोकुल में अवतार

धारण करो। ब्रह्माजी ने देवों को समझाया—अब परमात्मा प्रकट होने वाले हैं। आप चिंता न कीजिए। परमात्मा का चिंतन कीजिए।

इस ओर मथुरा में वसुदेवजी का विवाह देवकीजी से हुआ। विवाह के बाद घर जाने के लिए वसुदेव-देवकी रथ में बैठे। कंस रथ का सारथी होकर बैठा। रथ निकलने की तैयारी में ही था कि देवों ने सोचा—वसुदेवजी महान् वैष्णव हैं। कंस वसुदेवजी के साथ वैर कर ले और उन्हें त्रस्त करे तो भगवान् जल्दी प्रकट होंगे। पापी के दुःखी होने पर परमात्मा को जल्दी दया नहीं आती है पर भगवान् के लाड़ले भक्तों को जब कोई अकारण त्रास देता है तो भगवान् सहन नहीं कर सकते। ऐसा सोचकर देवों ने आकाशवाणी से कहा—

अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हन्ता यां वहसेऽबुध॥ (१०-१-३४)

मूर्ख, तुम्हें अक्ल नहीं है। जिस देवकी को तुम पहुँचाने जाते हो, उस देवकी की आठवीं सन्तान तुम्हारा काल है। कंस ने आकाशवाणी सुनी। कंस को क्रोध आ गया। इस देवकी को ही मार डालूँ तो उसे गर्भ कहाँ से रहेगा। चोटी पकड़कर देवकी को मारने के लिये कंस तैयार हो गया। तब वसुदेवजी कंस को समझाने लगे—यह आप क्या कर रहे हैं? अरे, जिसका जन्म हुआ है, उसे मरना तो पड़ता ही है। मरण का निवारण असंभव है। महापुरुष मरण सुधारने का यत्न करते हैं। वासना से मरण बिगड़ता है। वैर से मरण बिगड़ता है। अपने मन को बारंबार समझाकर वासना का विनाश कीजिए। किसी के साथ अनबन हो जाय तो उसके घर जाकर 'जय श्रीकृष्ण' कर आइये। वैर-भाव रखकर मरना नहीं चाहिए।

वसुदेवजी राजा कंस से कहते हैं—देवकी को मारने से तुम अमर नहीं हो जाओगे। उसे तुम न मारो। कंस राजा ने कहा—अपना ज्ञान अपने पास रखिये। मैं आपका शिष्य नहीं हूँ। कंस जब माना नहीं तब वसुदेवजी ने कंस से कहा—इस देवकी के द्वारा तो तुम्हारा मरण है न? कंस ने कहा—'न, देवकी द्वारा मरण नहीं है, पर उसके आठवें गर्भ से मरण है। वसुदेव ने कहा—मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि देवकीजी के जितने बालक होंगे, तुम्हें दूँगा। तुम देवकीजी को मारना नहीं। देवकीजी को तुम मारोगे तो तुम्हारी अपकीर्ति होगी। जिसकी जगत् में बहुत अपकीर्ति है, वह जीवित होने पर भी मृत है। जिसको अधिक क्रोध आता है, वह जीवित होने पर भी मृत है। जो स्वयं के लिए ही जीता है, वह जीवित होने पर भी मृत है।

कंस राजा ने सोचा। उसको यह विचार उचित लगा। उसने सोचा—बहिन को मारूँगा तो मेरी अपकीर्ति होगी, मैं तो बालकों को मारूँगा। इस तरह वसुदेवजी कंस को वचन देकर, कंस के त्रास से देवकीजी को बचाकर घर ले आये।

कई दिनों के बाद देवकीजी को गर्भ रहा। बालक का जन्म हुआ। बालक बहुत सुन्दर था। वसुदेवजी को स्मरण हुआ। सोचने लगे कि मैंने कंस राजा को वचन दिया है। वे भीतर गये। उन्होंने बालक को उठाया। देवकीजी रोने लगीं—मेरा भाई काल-सा है। मेरे बालक को मार डालेगा। वसुदेवजी ने कहा—मैंने वचन दिया है। मैं पाप करना नहीं चाहता। वसुदेवजी को पाप से बहुत डर लगता था। किसी मानव का डर न रखिये, पाप का डर रखिये। जो पाप का डर रखता है, पवित्र जीवन व्यतीत करता है, उसके घर परमात्मा पधारते हैं।

वसुदेवजी बालक को कंस के दरबार में ले गये। कंस के समक्ष बालक को उन्होंने रखा। बालक को देखकर कंस का हृदय आर्द्र हुआ। यह तो दो-तीन दिन का बालक दिखाई देता है। वसुदेव के घर बालक का जन्म हुआ, उससे मैं अनजान था। धन्य हैं वसुदेवजी कि मुझे दिये हुए वचन को सत्य करने के लिये बालक को लेकर आ गये हैं।

वसुदेवजी के सत्संग से कंस की बुद्धि सुधरी। मुझे पाप नहीं करना है। आकाशवाणी ने तो कहा है कि आठवाँ गर्भ ही मेरा काल है। यह तो प्रथम पुत्र है। इसे मारने से मुझे क्या मिलेगा? कंस राजा ने वसुदेवजी से कहा—इस बालक को आप घर ले जाइए। सात बालक घर में रखिये, इससे मुझे कोई हर्ज नहीं है। आठवाँ बालक मुझे दे दीजियेगा। वसुदेवजी प्रसन्न हुए। बालक को उठाकर घर पहुँचे। देवकीजी को आनंद हुआ। सात संतानें तो जी सकेंगी। इस ओर नारदजी को चिन्ता हुई। कंस मामा की बुद्धि सुधरेगी तो वह जल्दी नहीं मरेगा। अगर वह अधिक पाप करे तो ही अधिक जल्दी मरेगा। नारदजी जहाँ जाते हैं, कलह जगाते हैं। पर नारदजी के कलह में समाज कल्याण का भाव रहता है। नारायण-नारायण करते हुए नारदजी कंस राजा के घर पहुँचे। कंस राजा ने स्वागत किया। नारदजी से पूछा—महाराज! कहाँ से पधारे? नारदजी ने कहा—भाई! मैं तो स्वर्ग में गया था देवों की गोपनीय सभा थी। ये सब गोपनीय बातें तुम्हें कह दूँ, तो वह उचित नहीं हैं,पर तुम विशेष प्रिय हो, इससे मैं कहने आया हूँ। तुम्हारे प्रति मुझे बहुत प्रेम है। सब देव तुम्हारे पीछे पड़े हैं। तुम्हें मारने का प्रयत्न कर रहे हैं। तुम भोले हो। तुम्हें शत्रु पर भी दया आती है। शत्रु को साधारण न समझना चाहिए।

ऋण, शत्रु, पाप और रोग—चारों को साधारण न मानिये। साधारण ऋण अनर्थ करता है। साधारण रोग कभी बहुत त्रस्त करता है। कई लोग जब पाप करते हैं, तब मन में होता है कि यह अच्छा नहीं है पर बाद में मन को समझाते हैं अरे! ठीक तो है, व्यवहार में थोड़ा पाप करना ही पड़ता है। पड़ोस के लोग तो बहुत पाप करते हैं। उनसे मैं समझदार हूँ। इस प्रकार मानव पाप को साधारण समझता है। साधारण पाप भी बहुत अनर्थ करता है। शत्रु भी साधारण न समझना चाहिए। नारदजी ने कंस से कहा—शत्रु पर भी मुझे दया आती है। आकाशवाणी ने तुम्हें कहा कि आठवाँ

गर्भ तुम्हारा काल है। देवों की भाषा गूढ़ार्थ से पूर्ण होती है। ये पाँच उँगलियाँ हैं। अनामिका से गिनती करने से अँगूठा पाँचवा आता है और अँगूठे से गिनती करने पर अनामिका पाँचवीं आती है। आठवाँ पुत्र जो होने वाला है, उसे अगर हम प्रथम गिन लें तो आज का पुत्र प्रथम माना जायगा कि नहीं? अरे, कोई भी आठवाँ हो सकता है। यह तो गिनती करने वाले की इच्छा पर रहता है।

कंस राजा ने पूछा—तो क्या महाराज! प्रत्येक बालक को मार डालें? नारदजी बोलने में चतुर थे। कहने लगे—भाई! ऐसा मैं नहीं कह रहा हूँ मैं तो तुम्हें सावधान करने आया हूँ। शत्रु के प्रति दया रखना उचित नहीं है। वैसे तुम्हें जैसा उचित लगे वैसा करो। अब मेरा समय हो गया है। मुझे संध्या करने के लिए जाना है और इस प्रकार नारदजी 'नारायण-नारायण' कहते हुए चल पड़े।

कंस विचार में पड़ गया कि संत कभी ऐसा नहीं कहते कि बालक को तू मार दे, पर उनके कहने का यही भाव था बहुत स्नेह-भाव के कारण कहने आये थे। कंसराजा ने वसुदेव-देवकी को बुलाया। माता-पिता के समक्ष ही बालक की उसने हिंसा की। वसुदेव-देवकी को कैद में डाल दिया। उनकी संपत्ति का विनाश हुआ। बिना अपराध हाथ-पैरों में बेड़ियाँ डाली गयीं।

शाँति से थोड़ा सोचिये। भगवान् के जो माता-पिता हैं, उन्होंने कितना दुःख सहन किया है। वसुदेव-देवकी अति दुःख में भी मन को शाँत रखते थे। भगवान् की भक्ति करते थे। सुख में परमात्मा की कृपा समझने वाला साधारण वैष्णव है। दुःख में भी जो परमात्मा की अति कृपा समझता है, वह सच्चा वैष्णव है।

श्रीकृष्ण आनन्दमय हैं। आनन्द उसे मिलता है, जो सुख-दुःख से परे है। संसार सुख-दुःख से भरा हुआ है। संसार में जितना सुख है, उतना ही दुःख है। सुख-दुःख भाई हैं। वे साथ ही रहते हैं। संसार का किसी तरह का सुख पाँच मिनट से अधिक नहीं रहता है। आपको सुख मिल जाय तो मन को समझाइये कि यह सच्चा सुख नहीं है। यह झूठा सुख है। सुख को दुःख मानकर भक्ति कीजिये। सुख मिलने पर सोचिये कि प्रभु ने मुझे सच्चा सुख नहीं दिया है, अभी तक मेरा मन शुद्ध नहीं है। मेरे मन में अभी वासना-विकार भरे हुए हैं। सुख मिलने पर प्रसन्न न होना और आपके जीवन में कभी दुःख का प्रसंग आ जाय तो भी घबराना नहीं। दुःख को सुख मानना। दुःख आने पर मन को समझाना कि प्रभु ने मुझे यह सजा दी है। पुस्तकों के पढ़ने से मानव का शब्द-ज्ञान बढ़ता है, पर मानव की समझदारी नहीं बढ़ती है। समझदारी दुःख में आती है। दुःख में भीतर से ज्ञान स्फुटित होता है। दुःख में विश्वास हो जाता है कि संसार स्वार्थपूर्ण है। भगवान् के सिवाय मेरा कोई नहीं है। दुःख को सुख मानकर भक्ति कीजिए। हृदय को जलाइए नहीं। जो व्यक्ति दुःख को सुख समझ सकता है, वह भक्ति कर सकता है। जो सुख को दुःख स्वरूप मानता है, उसे

आनन्द मिलता है। सुख का विरोधमूलक शब्द दुःख है। लाभ का विलोम है हानि शब्द। मान का विरोधमूलक है अपमान पर आनन्द का विरोधमूलक कोई शब्द नहीं है। श्रीकृष्ण आनन्द स्वरूप हैं। आनन्द पाना हो तो सुख-दुःख से परे हो जाइए। सुख में और दुःख में मन को शाँत रखिये।

वसुदेव-देवकी कारागृह में अति दुःख में थे पर अतिशय दुःख में भी वे मन को शाँत रखते थे। दुःख को सुख मानते थे। पति-पत्नी ऐसा मानते थे कि प्रभु ने हमें कैद में रखकर अच्छा ही किया है। प्रभु की कृपा हुई। इस कारागृह में कोई प्रवृत्ति नहीं है। यहाँ निरन्तर भक्ति हो सकती है। घर में रहते तो समुचित भक्ति न हो पाती। वसुदवे-देवकीजी भगवान् का उपकार मानते थे। दुःख को सुख मानकर जो भक्ति करते हैं, उन्हें आनंद मिलता है। आनन्द ही श्रीकृष्ण हैं। छह संतानों की कंस ने हत्या की। देवकीजी को सातवाँ गर्भ रहा है। जिसमें बलदेवजी पधारे हैं। प्रभु ने-बलरामजी से कहा-बड़े भाई! आप आगे जाइये बाद में मैं आऊँगा। बलरामजी महाराज शब्दब्रह्म का स्वरूप हैं। योगमाया को परमात्मा ने आज्ञा की-मेरे दो काम करो। देवकीजी के पेट में जो सातवाँ गर्भ है, वहाँ से उठाकर नन्दबाबा के गोकुल में रोहिणीजी के पेट में रखकर आओ और दूसरा यह है कि यशोदाजी के घर कन्या के रूप में जन्म लो। मैं कारागृह में प्रकट होऊँगा। मेरे पिता वसुदेव मुझे गोकुल ले आयेंगे और तुम्हें लेकर मथुरा लौटेंगे। कंस तुम्हें मारने का यत्न करेगा पर उसके हाथ से तुम छिटक जाना। जगत् में तुम्हारी अनेक स्वरूप में पूजा होगी।

भगवान् जगत में आते हैं, तब भगवान् को भी माया की जरूरत पड़ती है। जीव माया का दास होकर जगत् में आता है। परमात्मा माया को दासी बनाकर आते हैं। व्यवहार में माया के बिना कोई कार्य नहीं होता है। संसार मायामय है। संसार के व्यवहार में माया का उपयोग कीजिए पर माया के गुलाम न बनिये। आप सब वैष्णव है, परमात्मा के प्यारे हैं। अपने स्वरूप को याद रखिये कि मैं भगवान् का अंश हूँ। मैं माया का दास नहीं हूँ, मैं श्रीकृष्ण का दास हूँ। जो माया के अधीन बनता है, माया उसे रुलाती है। जो विवेक से माया का उपयोग करते हैं, उन्हें माया भक्ति में भी आनंद देती है। माया प्रारम्भ में मनोहर लगती है, पर जीव के माया के अधीन होने पर माया राक्षसी हो जाती है। माया इसे मारती है। माया का उपयोग करते हुए अपने लक्ष्य को न भूलिये। मुझे भगवान् के चरणों में जाना है-जो इस लक्ष्य को भूलता है, वह चौरासी लाख योनियों के चक्कर में भटकता रहता है।

प्रभु की आज्ञा के अनुसार योगमाया ने देवकीजी के पेट में से सातवाँ गर्भ उठाकर रोहिणीजी के पेट में रख दिया-

गर्भसंकर्षणात् तं वै प्राहुः संकर्षणं भुवि।
रामेति लोकरमणाद् बलं बलवदुच्छ्रयात्॥ (१०-२-१३)

रोहिणीजी ने बलभद्र को जन्म दिया। बलभद्रजी ने निश्चय किया कि जब श्रीकृष्ण प्रकट होंगे, श्रीकृष्ण के दर्शन होंगे, तब श्रीकृष्ण के स्वरूप को हृदय में उतारूँगा। भगवान् का स्वरूप हृदय में स्थिर करूँगा, बाद में जगत् को दृष्टि दूँगा। दृष्टि देते हुए, सोच लीजिए किसे दे रहा हूँ? किस भाव से दे रहा हूँ? दृष्टि चाहे जिसे न दीजिए। आप जिसे दृष्टि देंगे, मन भी उसे देना पड़ता है। जिसे दृष्टि देंगे वह दृष्टि के द्वारा भीतर आ जायेगा।

यशोदा माता को चिन्ता होने लगी—इस बालक को किसी की नजर लग गयी है क्या? आँख खोलता नहीं है! उन्होंने शाण्डिल्य मुनि की धर्म पत्नी पूर्णमासी को बुलाया। कहा कि आप बालक की नजर उतारिये। बालक आँख नहीं खोल रहा है? पूर्णमासी आयी हैं। वे बालक को देखकर कहने लगीं, कि बालक आँख बंद करके किसी का ध्यान कर रहा है। इसके हाथ-पैर के लक्षण बहुत सुन्दर दीख रहे हैं। इस बालक के चरण बहुत उत्तम है, शुभ हैं। मुझे ऐसा लगता है कि अब थोड़े ही दिनों में तुम्हारे घर पुत्र होगा। यशोदामाता ने हाथ जोड़े—आज तक बहुत प्रयत्न किये, पर सफलता न मिली। अब मेरी उम्र पचपन वर्ष की हुई। अब पुत्र क्या होगा मैंने तो मान लिया है कि जितने भी लड़के इस गाँव में हैं सब मेरे पुत्र से हैं। अब पुत्र हो, ऐसी मुझे आशा नहीं हैं।

पूर्णमासी समझा रही हैं—यह पुत्र बहुत उत्तम सकुन लेकर आया है। इसके चरणों के शुभ लक्षण से ही पता लगता है कि तुम्हारे घर पुत्र होना ही चाहिये। सारा गाँव नंद-यशोदा को आशीर्वाद देता है। छोटा-सा गोकुल गाँव है। नंदबाबा के प्रति सबका प्रेमभाव है। नंदबाबा सभी को चाहते हैं। वे विचारते रहते हैं कि मेरे गाँव में कोई भूखा न रहे, कोई नग्न न रहे, किसी के घर झगड़ा न हो। नंदबाबा सभी का बहुत ध्यान रखते हैं। जो सभी को आनंद देते हैं, वह हैं नंद। इससे सारा गाँव नंदबाबा को आशीर्वाद देता है—आपके घर पुत्र हो! जिसको सभी का आशीर्वाद मिलता है, उसके घर सर्वेश्वर पधारते हैं।

यशोदा शब्द का अर्थ है—जो सभी को यश देती है। किसी को अपयश न दीजिए। अगर कोई काम बिगड़ता है तो अपने पाप के कारण बिगड़ता है। कोई मानव हमारा कुछ भी नहीं बिगाड़ता है। जो कुछ बिगड़ता है वह मेरे पाप के कारण और जो कुछ सुधरता है आपके आशीर्वाद के कारण—ऐसा कहने वाले, दूसरे को यश देने वाले प्रभु को बहुत प्रिय लगते हैं। दूसरे को अपयश देनें वाला प्रभु को भाता नहीं है। अगर कोई कार्य अच्छा हो तो सभी को वंदन कीजिए और कहना

कि आपके आशीर्वाद से हुआ है। कोई कार्य बिगड़ जाये तो कहना कि–मेरा पाप है जो कार्य बिगड़ गया।

यशोदा माता बहुत भोली हैं। भोले व्यक्ति की गोद में ही भगवान् खेलते हैं। कपटी के घर वे नहीं जाते हैं। ये व्रजवासी बहुत सरल हैं। पाप करके धन कमाने की अक्ल इनमें नहीं है। वे रोटी-सब्जी में आनंद पाते हैं, संतोष मनाते हैं। जीवन बहुत सादा है। लाला को गोकुल भा गया है। वहाँ वे प्रकट हुए। मथुरा में भी सच्चा आनंद तो व्रजवासियों को ही प्रभु ने दिया है।

यशोदा मैया सभी को यश देती हैं, नंदबाबा सभी कों आनंद देते हैं। उनके घर परमात्मा प्रकट होने वाले हैं। सारा गोकुल गाँव नंद-यशोदा को आशीर्वाद देता है–आपके घर पुत्र हो! व्रजवासियों के कुलगुरु हैं शाडिल्य ऋषि। शाडिल्य ऋषि से व्रजवासियों ने कहा–नंद बाबा के घर पुत्र हो, ऐसा आप कुछ कीजिए। शाण्डिल्य ऋषि ने कहा–आप सब मुझे आज कहते हैं, परन्तु मैं तो बारह वर्षों से उनके लिये संतान-गोपाल का नित्य जप करता हूँ। मैं इसका पुण्य नंदबाबा को देता हूँ। नंदबाबा के जन्माक्षर में पुत्र-योग तो है ही, पर मंगल के कारण रुकावट है। व्रजवासियों ने कहा–महाराज आप हमें आज्ञा दीजिए, हम भी कुछ करेंगे। शाण्डिल्य ऋषि ने कहा–सारा गोकुल एकादशी का निर्जल व्रत करे और इसका पुण्य नंदबाबा को दे तो जल्दी बालक हो, ऐसे योग हैं। भाद्रपद शुक्ल छठी के दिन दाऊजी महाराज प्रकट हुए। भाद्रपद शुक्ल एकादशी का व्रत सारा गोकुल कर रहा है। बालक भी निर्जल व्रत करने लगे। नंदबाबा को यह उचित नहीं लगता है। नंदबाबा पूछते हैं–बेटा! तुम आठ वर्ष के हो, तुम्हें फलाहार नहीं करना है? बालक उत्तर देता है–बाबा, आपके घर पुत्र हो, इसलिये मैं व्रत कर रहा हूँ। छोटे बालक कभी जब बोलते हैं, तब वह सत्य हो जाता है। ये व्रजवासी बहुत भोले हैं। गायों की सेवा करते हैं। घर आये गरीब की सेवा करते हैं। एकादशी का व्रत करते हैं। 'नारायण-नारायण'......कीर्तन करते हुए भगवान् को मनाते हैं कि नंदबाबा के घर पुत्र हो। तेंतीस एकादशी के बाद श्रीकृष्ण प्रकट हुए हैं। सभी को ऐसा लगता है कि हमने व्रत किया, इससे पुत्र हुआ है। कन्हैया हमारा है।

बालकृष्ण लाल प्रकट हुए, तब सारा गोकुल गाँव आनंद से नाच उठा है। विधवा, सधवा, गरीब, श्रीमंत, बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष–सब श्रीबालकृष्ण लाल को देखकर नाचने लगे हैं। सभी के हृदय में प्रेम जागा है। सभी को ऐसा लगता है कि कन्हैया मेरा ही पुत्र है। यशोदाजी सभी को वंदन करती हैं और कहती हैं कि आपके आशीर्वाद से ही पुत्र हुआ है। मैं तो नाम के लिये ही माता हूँ।

देवकीजी को आँठवाँ गर्भ रहा तब यशोदा माता भी सगर्भा हुईं। देवकीजी के मुख पर तेज है। कंस को विश्वास हो गया– मेरा काल इसके पेट में आ गया है। उसने सेवकों से कहा– अब मेरा काल आने वाला है, आप सब सावधान रहियेगा।

वसुदेव-देवकीजी परमात्मा के ध्यान में तन्मय हुए हैं। आजतक देवकीजी को कंस का डर लग रहा था। अब जब परमात्मा हृदय में आये हैं, तब देवकीजी निर्भय हो गयी हैं। वे ध्यान कर रही हैं। माता देवकी के गर्भ में विराजमान परमात्मा की स्तुतिं देव-गन्धर्व करते हैं–

सत्त्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्त्ये।
सत्त्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः॥
स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन् भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदः।
भवत्पदाम्भोरुहनावमत्र ते निधाय याताः सदनुग्रहो भवान्॥
येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः॥

(१०-२-२६/३१/३२)

आप परम सत्य-स्वरूप हैं। हमें दिया हुआ वरदान सत्य करने के लिये अब आप जल्दी ही प्रकट होने वाले हैं। आपके चरणों का स्पर्श अब धरती को होगा।

बड़े-बड़े ज्ञानी पुरुष आपके सेवा-स्मरण से इस संसार सागर को तैर जाते हैं। जो ज्ञान का अभिमान रखते हैं, जो श्रीकृष्ण के सेवा-स्मरण को गौण मानते हैं, ऐसे ज्ञानी पुरुषों का पतन हमने अपनी आँखों से देखा है। ज्ञान बढ़ने पर कई व्यक्ति भक्ति को गौण मानते हैं। वे भूल करते हैं। ज्ञान भक्ति से परिपूर्ण होता है। भक्ति-रहित ज्ञान नीरस है। ज्ञानी होना बहुत कठिन नहीं है। प्रभु प्रेमी होना कठिन है। कइयों में ज्ञान होता है पर प्रभु के साथ वे प्रेम नहीं करते हैं। ऐसा ज्ञान किस काम का? कई ज्ञानी ऐसे होते हैं कि जब कोई उनकी निंदा करता है तो उन्हें बहुत दुःख होता है। मान-अपमान, स्तुति-निंदा जिन्हें दुःख देते हैं, उनका ज्ञान कच्चा है। उनका जगत् के प्रति प्रेम है। वे परमात्मा से प्रेम नहीं करते हैं।

यह जीव जगत् के साथ बहुत प्रेम करता है। इससे भगवान् माया के पर्दे में रहते हैं। जहाँ कम प्रेम है वहाँ जीव भी अपना स्वरूप छिपाता है। अतिशय प्रेम है वहाँ जीव अपना स्वरूप प्रकट करता है। यह जीव जब परमात्मा के प्रति अतिशय प्रेम करता है, तब माया का पर्दा फाड़ कर परमात्मा प्रकट होते हैं। ज्ञानी को प्रभु-प्रेमी होना ही चाहिये।

शृण्वन् गृणन् संस्मरयंश्च चिन्तयन् नामानि रूपाणि च मंगलानि ते।
क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयोराविष्टचेता न भवाय कल्पते।।

(१०-२-३७)

परमात्मा के साथ अतिशय प्रेम करने पर जन्म-मरण का आवागमन टलता है। देव परमात्मा की स्तुति करते हैं। उन्होंने देवकीजी को आश्वासन दिया है—माता, अब चिंता न करना। अब परमात्मा प्रकट होने वाले हैं। परमात्मा के प्राकट्य का समय हुआ है। अन्तःकरण अतिशय शुद्ध हो तो भगवान् का अवतार भीतर भी होता है। आज श्रीकृष्ण भीतर नहीं बाहर प्रकट होने वाले हैं। इसके बाद आठ श्लोकों में अष्टधा प्रकृति की शुद्धि दिखलायी है—

अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः।
यर्ह्येवाजनजन्मर्क्षं शान्तर्क्षग्रहतारकम्।। (१०-३-१)

काल सर्व का भक्षण करता है, इससे लोग काल को क्रूर मानते हैं। आज काल कोमल हुआ है। श्रीकृष्ण काल के मालिक हैं। पर आज वे काल की मर्यादा में आते हैं। काल प्रसन्न हुआ। मेरे मालिक मुझे कितना मान देते हैं! वे मेरे स्वामी हैं, पर आज से वे मेरी मर्यादा में रहेंगे। परम पवित्र समय हुआ है। दसों दिशाएँ प्रसन्न हुई हैं। एक-एक दिशा के एक-एक स्वामी देव हैं और इनको कंस राजा ने कैद में डाल रखा है। दसों दिशाएँ प्रसन्न हैं कि बालकृष्णलाल अब प्रकट होंगे, और कंस को मारेंगे। तब हमारे पति घर आयेंगे।

शीतल मन्द, सुगंध हवा चलने लगी है। रामावतार में वायुदेव को सेवा का लाभ मिला है। वहाँ वायु पुत्र हनुमानजी ने सेवा की ही थी। श्रीकृष्णलीला में तो प्रत्यक्ष वायुदेव पधारने वाले हैं। वायु ने सोचा कि श्रीकृष्ण गायों को लेकर वृंदावन में पधारेंगे उन्हें गर्मी का जरा भी परिश्रम न होने दूँगा। वायुदेव को आनंद है। अब मेरा ब्रह्मस्पर्श होगा, अब मैं श्रीकृष्ण का स्पर्श करूँगा।

आज संतों को अति आनंद है। उनका मन अति प्रसन्न है। आज परमात्मा प्रकट होने वाले हैं। ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि मन ही संसार है। मन नहीं है तो संसार नहीं है। मन को मारिये। ज्ञान-मार्ग में मन के साथ झगड़ा करना पड़ता है, भक्ति मार्ग में झगड़ा नहीं है। मन को सुमन बनाकर, प्रभु-मार्ग में ले जाना है। वैष्णवों को मन मारने की जरूरत नहीं है। उनका ऐसा निश्चय है कि मन को परमात्मा की लीला में ले जायेंगे, प्रभु-चरणों में ले जायेंगे।

आसमान के मेघ गर्जना करने लगे हैं। बहुत प्रसन्न हैं। उन्होंने सुना था कि परमात्मा समुद्र में विराजमान हैं। समुद्र में विराजमान नारायण के दर्शन करने की उनकी इच्छा है। उन्होंने समुद्र के पास जाकर कहा—आपके भीतर नारायण हैं, उनके दर्शन करवाइए। समुद्रदेव ने कहा—नारायण

के दर्शन सुलभ नहीं हैं, दुर्लभ हैं। मेरा नमकीन पानी ले जाओ, और मधुर बनाकर जगत् को दो। समाज की निःस्वार्थ भाव से सेवा करो। शुद्ध होकर आओ।

मेघ नमकीन पानी पी जाते हैं और मधुर बनाकर समाज को देते हैं। मेघ महान संत हैं। संत उसे कहते हैं, जो दुःख सहन करके दूसरों को सुख देते हैं। स्वयं सुख भोग ले और दूसरों को सुख दे, वे संत नहीं, सज्जन हैं। संत तो दूसरों के लिये दुःख सहन करते हैं।

आज लाला को मेघ का रंग बहुत भाया है। संतों का स्वरूप परमात्मा को बहुत प्रिय है। आज श्रीकृष्ण मेघ-श्याम प्रकट होने वाले हैं। श्रीअंग, मेघ-सा श्याम है। आज मेघ बहुत प्रसन्न हैं—सोचते हैं कि लाला के हम विशेष मित्र हैं। लाला का और हमारा रंग समान है।

अग्निहोत्री ब्राह्मणों के कुंड से अग्निदेव कूदकर बाहर आये हैं। रामावतार में प्रत्यक्ष सेवा नहीं हो सकी है। श्रीकृष्ण अग्नि पी जाने वाले हैं। इससे अग्नि को बहुत आनंद आ रहा है। आज धरती बहुत प्रसन्न है। बैंकुठ से परमात्मा आज पृथ्वी पर पधारने वाले हैं। बैंकुठ में श्रीदेवी मुख्य हैं, लक्ष्मीजी का प्राधान्य है, आज परमात्मा लक्ष्मीदेवी को छोड़कर भूदेवी से मिलने आने वाले हैं। धरती को आज बहुत आनंद है। रात्रि के समय कमल नहीं खिलते हैं, पर आज कमल-स्वामी परमात्मा प्रकट होने वाले हैं, इससे रात्रि में कमल खिल उठे हैं!

सारा जगत् प्रगाढ़ निद्रा में है। उस समय दो जीव जाग रहे हैं—वसुदेव और देवकी। सोने वाले को संसार मिलता है, जागने वाले को परमात्मा मिलते हैं। जो काम की मार खाता है, जो काम के आधीन है, वह सोया है, जिसने काम पर विजय पा ली है वह जाग्रत है। श्रीकृष्ण-दर्शन के लिये वसुदेव-देवकी के प्राण तड़फ रहे हैं। संपत्ति का नाश हुआ है। संतति का भी नाश हुआ है। बिना अपराध पैरों में बेड़ियाँ है, फिर भी मन को शांत रखकर दोनों भक्ति कर रहे हैं—प्रार्थना कर रहे हैं कि प्रभु एक बार दर्शन दीजिए, नाथ कृपा कीजिए। वैष्णव दर्शन के लिये जब अति आतुर उत्कंठित होते हैं, तब परमात्मा का अवतरण होता है।

मध्य रात्रि का समय हुआ है। परम पवित्र भादों मास कृष्ण पक्ष अष्टमी तिथि, रोहिणी नक्षत्र का सुयोग, मध्य रात्रि में देवकीजी के सम्मुख चतुर्भुज स्वरूप श्रीकृष्ण-कन्हैया प्रकट हुए—

तमद्भुतं बालकम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शंखगदार्युदायुधम्।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभि कौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम्॥
महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डलत्विषा परिष्वक्तसहस्रकुन्तलम्।
उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणादिभिर्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत॥

(१०-३-९/१०)

चारों ओर प्रकाश प्रसारित हुआ है और उस प्रकाश से शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज नारायण के दर्शन हुए हैं। अंग मेघ-सा श्याम है। प्रभु ने पीताम्बर पहिना है। आँखें कमल-सी सुन्दर हैं। उनमें प्रेम परिपूर्ण है। वसुदेव-देवकी को चतुर्भुज नारायण के प्रत्यक्ष दर्शन पाकर अतिशय आनंद हुआ है। वसुदेव-देवकी परमात्मा की स्तुति करते हैं। देवकीजी ने कहा—मुझे कंस राजा से डर लगता है। प्रभु ने स्वरूप का बोध करवाया और कहा—इस स्वरूप को आँखों में उतारिये। बराबर ध्यान कीजिये। ग्यारह वर्ष के बाद मैं आऊँगा। अभी मुझे गोकुल में लीला करनी है। मुझे तुरंत गोकुल पहुँचा दीजिए।

वसुदेव-देवकी को प्रभु ने ध्यान करने की आज्ञा दी है। परमात्मा के माता-पिता को भी ध्यान करने की आवश्यकता है। इसके बाद चतुर्भुज स्वरूप को अंतर्ध्यान करके, दो हाथों वाला बाल-स्वरूप प्रकट किया है। देवकी माता ने उन्हें गोद में लिया है। माता देवकी, लाला को हृदय का प्रेम-रस अर्पित करती हैं। वसुदेव जल्दी करते हैं। टोकरी में एक गद्दी रखी है और उसमें बालकृष्ण को उन्होंने सुला दिया है। वसुदेवजी को शंका हुई कि ये सब दरवाजे बंद हैं। हाथ-पैरों में बेड़ियाँ हैं। मैं गोकुल कैसे जाऊँगा?

देवकीजी ने कहा—यह बालक कोई साधारण नहीं है, अद्भुत है। आप लाला को सिर पर रखिये। वसुदेवजी बालकृष्णलाल को सिर पर पधराते हैं कि तुरन्त हाथ-पैरों की हथकड़ियाँ-बेड़ियाँ टूट गयीं। परमात्मा को घर में पधराइए, सिंहासन पर पधराइए, वह अच्छा ही है। बाहर दर्शन करके उसी स्वरूप के दर्शन भीतर कीजिए। भीतर जो परमात्मा के दर्शन करते हैं, उन्हें परमात्मा का वियोग नहीं होता है। बाहर दर्शन करने वालों को भगवान् का वियोग होता है।

लाला को सिर पर पधराने के साथ ही कारागृह के द्वार भी खुल गये हैं। परमात्मा को सिर पर धारण करने से भव के बंधन टूट जाते हैं और मोक्ष के द्वार खुल जाते हैं। वसुदेवजी बालकृष्ण को सिर पर पधराकर बाहर आते हैं। मध्य रात्रि का समय है। योगमाया का ऐसा आवरण है कि सभी को प्रगाढ़ निद्रा लग गयी है। कंस के सभी सेवक सोये हैं। गाढ़ निद्रा में हैं। झरझर-झरझर बरसात बरस रही है।

बलरामजी को पता चला। वे शेष-स्वरूप धारण कर दौड़ते आये हैं। फनों से छत्र बनाकर सिर पर धारणकर दिया है कि जिससे लाला को त्रास न हो। अभी तक यशोदा माता को दर्शन नहीं हुए हैं। किसी गोपी को भी दर्शन नहीं हुए हैं। प्रथम दर्शन श्रीयमुनाजी को हुआ है। वे प्रसन्न हैं कि मेरे प्राणनाथ प्रकट हुए हैं। यमुनाजी को अति आनंद है। प्राणनाथ के चरण-स्पर्श की इच्छा से यमुनाजी का जल बढ़ने लगा। वसुदेवजी के गले तक जल आ गया है। मध्यरात्रि का समय है।

अब वसुदेवजी घबरा गये यह सोचकर की लाला को त्रास होगा।

बालकृष्णलाल समझ गये कि यमुनाजी मिलना चाहती हैं। लाला ने टोकरी में से चरण बाहर निकाले। यमुनाजी ने प्रत्यक्ष चरण-स्पर्श किया और चरणों पर कमल की भेंट समर्पित की। बालकृष्ण की जय, परमात्मा का जय-जयकार सभी ने किया है। आसमान के देव-ऋषि देखते हैं। देव-ऋषि यमुनाजी के चरणों में बारंबार वंदन करते हैं। देव-ऋषि यमुनाजी का जय-जयकार करने लगे। अति आनंद में यमुनाजी स्तब्ध हुई हैं। धीरे-धीरे जल कम होने लगा। वसुदेवजी गोकुल आ पहुँचे हैं। नंदबाबा के राजमहल में उन्होंने प्रवेश किया है। योगमाया का आवरण ऐसा है कि सभी को प्रगाढ़ निद्रा आ गयी है। यशोदाजी भी निद्रा में हैं। योगमाया का जन्म हुआ है पर यशोदामाता को इतना मालूम हुआ कि कुछ अवतरित हुआ। लड़का या लड़की कुछ होश नहीं रहा है। वसुदेवजी भीतर पहुँचे हैं। बालकृष्णलाल को यशोदामाता की शय्या में उन्होंने पधराया है और योगमाया को टोकरी में रखा है। वसुदेवजी लाला को बार-बार प्रेम से निहारते हैं—अब ग्यारह वर्ष के बाद मुझे मिलेंगे। मेरे पाप कैसे हैं। परमात्मा अन्य को दे रहा हूँ और माया को ले जाता हूँ। पसंद हो या न हो, परमात्मा की आज्ञा-पालन में ही जीव का कल्याण है। योगमाया को टोकरी में रखकर वसुदेवजी दौड़ते हुए मथुरा पहुँचे हैं। जैसे ही कारागृह में प्रविष्ट हुए, द्वार बंद हो गये। योगमाया भीतर आती हैं, तब द्वार बंद हो जाते हैं। वसुदेवजी के हाथ-पैरों में बेड़ियाँ लग जाती है। ब्रह्म-संबंध टिकता नहीं है तो, माया के साथ संबंध होने पर पुनः बेड़ियाँ आती हैं। ब्रह्म-संबंध करना कठिन नहीं है, पर उसे सर्वकाल टिकाकर रखना कठिन है। योगमाया रोती है। कंस के सेवक जाग गये, दौड़कर जाकर कंस को उन्होंने खबर दी। वह क्रोध में दौड़कर आ पहुँचा है। देवकीजी घबरा गयीं। उन्होंने कहा—मेरी अनेक संतानों की तुमने हत्या की। यह तो कन्या है। अब संतति की आशा नहीं है। कन्या की हत्या न करना। तुम्हें कन्यादान का पुण्य मिलेगा। कंस न माना। उसने कन्या के पैर पकड़े हैं। उसने यह भी न देखा कि यह लड़की है या लड़का है? उसे लगा कि यह ही मेरा काल है। यह मेरा काल है! जैसे ही पत्थर के साथ उसे पटकने गया, योगमाया उसके हाथ से छिटक गयीं। कंस के सिर पर योगमाया ने लात लगा दी और आसमान में उड़ गयीं। अष्टभुजा भद्रकाली माता की जय।

भद्रकाली माता अंतरिक्ष में प्रकट हुई हैं। कंस से उन्होंने कहा—मूर्ख! तुम्हें अक्ल नहीं है। बालकों की हिंसा कर रहा है। तेरे काल का जन्म तो कब से हो गया है। कंस ने देखा कि यह तो कोई महान् देवी थी। मुझसे कहा कि मेरे काल का जन्म हो गया है। आकाशवाणी ने कहा था कि देवकी का आठवाँ गर्भ मेरा काल है। जमाना बदल गया, अब तो आकाशवाणी भी झूठ होती

है। कंस घबरा गया। उसने वसुदेव-देवकी को वंदन किया। मैंने तुम्हारे बालकों को नहीं, अपने ही बालकों को मारा है। मैं क्षमा माँग रहा हूँ। आकाशवाणी ने मुझे झूठ कहा था। आपके बालकों का आयुष्य कम होगा, इससे मेरी बुद्धि बिगड़ गई। आत्मा की कभी मृत्यु नहीं है। आप अब आत्म स्वरूप पर विचार कीजिए। वसुदेव-देवकी को कारागृह से मुक्त करके कंस अपने घर गया।

५०– नंद-महोत्सव

अब नंद-महोत्सव की कथा आती है। बहुत आनंद देने वाली यह कथा अति मधुर है। जन्माष्टमी के दिन रात्री में बारह बजे तक नंदबाबा ने जागरण किया। यशोदाजी के प्रसव का समय हुआ है। ब्रजवासी वहाँ आये हैं। सब अधीर भाव से प्रतीक्षा कर रहे हैं कि आनन्द की वार्ता कब आयेगी? नंदबाबा के कुलगुरु शाण्डिल्य ऋषि को परमात्मा की प्रेरणा हुई। उन्होंने नंदबाबा से कहा– अभी इस समय जागने की जरूरत नहीं है। बाबा, आप सो जाइए। आप जाग रहे हैं, इससे सभी जाग रहे हैं। सुबह आनंद की वार्ता सुनेंगे। नंदबाबा जैसे ही शय्या में पड़े कि योगमाया का आवरण हो गया। सभी को प्रगाढ़ निद्रा आ गयी। वसुदेवजी जब बालकृष्णलाल को गोकुल में ले आये, कन्हैया जब नंदबाबा के घर आये, तब नंदबाबा शय्या में सोये हुए थे। नंदबाबा को एक सुन्दर स्वप्न दीख पड़ा। नंदबाबा ने स्वप्न में देखा कि मैं गायों की पूजा कर रहा हूँ। मेरे घर बड़े-बड़े ऋषि महात्मा आये हैं। सब मुझे आशीर्वाद दे रहे हैं। यशोदा की गोद में अति सुन्दर बालक खेल रहा है। नंदजी निद्रा से जागे। शय्या में बैठकर सोचने लगे–रात्रि में बारह बजे तक मैं पुत्र का चिन्तन कर रहा था, इससे स्वप्न में मुझे बालक दिखाई दिया। स्वप्न में मैंने जैसा बालक यशोदाजी की गोद में देखा, वैसा जगत् में कहीं नहीं होगा। नंदबाबा के घर में नारायण की पूजा थी। नंदबाबा सोचते हैं कि मेरे नारायण से भी वह बालक सुन्दर था! नारायण से अधिक सुन्दर कौन हो सकता है? आज का स्वप्न सरस है। मैंने स्वप्न में गाय की सेवा-पूजा की है। गायों का दान दिया है। जागने के बाद नंद गौशाला में गये। घर में अनेक दास-दासियाँ हैं, पर नंदबाबा गायों की सेवा स्वयं कर रहे हैं। गायों की सेवा करते हुए नंदबाबा स्वप्न का स्मरण कर रहे हैं। यशोदाजी की गोद में बालकृष्ण के दर्शन की याद आती है कैसा सुन्दर बालक था! परम आश्चर्य हुआ है। नंदबाबा सोच रहे हैं कि अगर नारायण की कृपा हो, तो ही ऐसा सुन्दर पुत्र हो। अगर ऐसा पुत्र हो तो मेरे घर की शोभा बढ़ जायगी। मैंने साधुओं के मुँह से सुना है कि जो गायों की सेवा करता है, उसके वंश का नाश नहीं होता है। मैंने गायों की सेवा की है। गायें मुझे बहुत प्यारी हैं। परमात्मा! कृपा कीजिए। मेरे लिये नहीं, पर गायों के लिये मुझे एक पुत्र दीजिए।

लाला ने खेल किया। बालकृष्णलाल घुटनों के बल रेंगते हुए गौशाला में आये हैं। जो बालक स्वप्न में देखा था, वही आज गौशाला में भी दीख पड़ा। नंदबाबा को लगा कि मैं जाग रहा हूँ या स्वप्न देख रहा हूँ। कन्हैया सिर हिलाता है। मानो कह रहा हो कि बाबा! गायों की चिन्ता न कीजिए, मैं गायों की सेवा करने ही आया हूँ। अति आनंद में नंदबाबा की समाधि लग गयी है। शरीर स्तब्ध हो गया है। याद नहीं आ रहा कि जाग रहा हूँ कि सो रहा हूँ।

यशोदा माता के समक्ष अतिशय प्रकाश फैल गया। बालकृष्णलाल की सुन्दरता देखकर यशोदाजी को अति आनन्द हुआ। यशोदाजी और लाला की आँखें चार हुईं।

नंदबाबा की सुनंदा बहिन थीं वे जाग गईं। देखा, तो प्रकाश फैला है। भाभी की गोद में अत्यंत सुन्दर बालक है। सुनंदा दौड़कर गौशाला में पहुँची। एक ओर नंदबाबा बालकृष्णलाल के दर्शन में तन्मय हैं, दूसरी ओर उसी समय सुनंदा दौड़कर पहुँची और कहा—भैया, भैया। लाला भयौ है।

नंदजी पूछते हैं—बालक कैसा है?

सुनंदा कहती है—हमारे घर ठाकुरजी हैं न। हमारे नारायण-सा ही यह पुत्र है!

व्रजवासी नंदजी को यमुना-तट पर ले गये हैं। स्नान करवाया है शृंगार करवाया है। नंदबाबा को पटड़े पर बैठाकर गणपति महाराज की पूजा करवायी है। पुण्याहवाचन हुआ है। श्राद्ध में पितरों की पूजा होती है।

नंदबाबा प्रत्येक ब्राह्मण को वंदन करते हैं। कहते हैं— इस वृद्धावस्था में मुझे पुत्र हुआ है। लाला को आशीर्वाद दीजिए। मैं आपको क्या दूँ? घर में जो कुछ है, सब आपका ही है।

नंदबाबा ने अन्नदान, वस्त्रदान, सुवर्णदान और गायों का दान दिया है। कई ऋषि गायों के रूप में थे। कई वर्षों तक तप किया पर मन में से काम गया नहीं, ब्रह्म-संबंध न हुआ, इससे गाय बनकर आये हैं, जिससे कि उनका ब्रह्म-संबंध हो सके। गायें भी उत्साह में आ गयी हैं। दो लाख गायों का बाबा ने दान दिया है। नंदबाबा अति उदार हैं। सभी को बहुत दान दिया है। आज तो लक्ष्मीपति ने बैकुण्ठ छोड़कर व्रज को प्रिय माना है।

शुकदेवजी महाराज कथा नहीं कर रहे मानो दर्शन करते हुए बोल रहे हैं—

गोप्यः सुमृष्टमणिकुण्डलनिष्ककण्ठ्यश्चित्राम्बराः पथि शिखाच्युतमाल्यवर्षाः।
नन्दालयं सवलया व्रजतीर्विरेजुर्व्यालोलकुण्डलपयोधरहारशोभाः॥

(१०-५-११)

गोपियों की दर्शन की बहुत उत्कंठा थी। वे दौड़ती हुई आ जाती हैं। उन्होंने शृंगार किया है। वे लाला को भेंट देने के लिए अधीर हो रहीं हैं। ऐसा लगता है मानो नवधा भक्ति भगवान्

के लिए दौड़कर आ जाती है। आज गोपी दौड़ रही हैं। उनकी आँखों को वाणी मिली है। आँखें मुखर हो रही हैं। मानो कह रही हैं कि सच्चा आनन्द तो हमें मिलने वाला है। हम भाग्यवान हैं। श्रीकृष्ण-दर्शन का आनंद हमें मिलेगा। इतने में कान मुखर हुए कि लाला के आगमन की बधाई तो हमने सुनी है। लाला के प्राकट्य की कथा हमने ही तुम्हें सुनाई है। सच्चा आनंद तो हमें मिल रहा है! और आगे भी हमें ही मिलने वाला है। कन्हैया जब बाँसुरी बजायेगा तो हम ही सुनेंगे। अब संसार-व्यवहार की बातें नहीं सुननी हैं, इतने में हाथ कहने लगे–तुमको तो सुनने और दर्शन का आनंद मिलेगा पर सच्चा आनंद तो हमें मिलेगा। हम लाला को उठाकर गोद में लेंगे। बालकृष्णलाल के मुख में माखन-मिसरी देंगे। श्रीबालकृष्णलाल की सेवा में हम जा रहे हैं। हम भाग्यशाली हैं। इतने में पैर बोलने लगे–आप सब को उठाकर हम ले जा रहे हैं। हम भाग्यवान हैं। अपने अनेक जन्म हमें याद आ रहे हैं। पूर्वजन्म में हम पैसों के लिये भटकते थे। कामांध होकर स्त्रियों के पीछे-पीछे चलते थे। आज धन के लिये नहीं, काम के लिये नहीं, आज हम परमात्मा के लिये दौड़ते हैं। यह हमारा अंतिम जन्म है। अब हमें संसार में जन्म नहीं लेना है। इतने में हृदय कहने लगा–सच्चा आनंद तो मुझे मिलेगा मैं लाला को उठाकर स्वयं से लगा लूँगा। मैं श्रीकृष्ण को आलिंगन दूँगा। मैं श्रीकृष्ण से एक हो जाऊँगा। अब किसी स्त्री से मिलने की इच्छा नहीं है। इस संसार में बहुत अनुभव ले लिया। अब परमात्मा से मिलना है। मैं भाग्यशाली हूँ।

गोपियाँ दौड़कर जाती हैं। यशोदामाता की गोद में विराजमान बालकृष्णलालको विवेक से, स्नेहवश वस्त्राभूषणों की भेंट देती हैं। प्रथम दर्शन से ही प्रभु ने सभी का मन अपनी ओर खींच लिया है। कई गोपियाँ बहुत गरीब हैं। वे लाला के लिये वस्त्र-आभूषण कहाँ से लायें? उनके घर में कुछ नहीं है पर उनकी ऐसी भावना है कि आज खाली हाथ न जाना चाहिये। घर में दही की मटकी है। वे मटकी उठाकर ले आयी हैं। यशोदा माता की गोद में सर्वांग-सुन्दर बालकृष्णलाल के दर्शन से उन्हें अति आनंद हुआ है। वे दही लायी हैं, लाला को भेंट करने, पर अति आनंद में होश ही न रहा और उसी दही से सखी को नहलाने लगीं।

यशोदाजी ने आज्ञा दी है कि प्रत्येक गोपी का सम्मान करना है। एक-एक को पटडे पर बैठाकर पूजा करनी है। निर्धन गोपी को चाँदी की थाली दी है। गोपी थाली लेकर जाती है। रास्ते मे एक सखी मिलती है, पूछती है–तुम्हें क्या दिया? गोपी ने कहा–माँ ने मुझे यह चाँदी की थाली दी है। तुम्हें क्या दिया? उत्तर मिला कि मेरे गले में देखो। मुझे यह चंद्रहार दिया है। तुम माँगों तो तुम्हें भी चंद्रहार देंगी।

गोपी दौड़कर वापस आयी है—माँ, मुझे चाँदी की थाली दी, पर सखी को चंद्रहार दिया। मुझे भी चंद्रहार दीजिए। आज मुझे बहुत आनंद हो रहा है। आपके लाला को देखकर मन में ऐसा होता है कि बहुत नाचूँ। यशोदाजी ने चंद्रहार देने की आज्ञा की, पर सारा दिन घर को लुटाया था, इससे चंद्रहार मिल नहीं रहा था। माँ के गले में नव-रत्न हार था। माँ ने उतारकर वही हार गोपी को पहिना दिया। इतना दे रही हैं, पर यशोदामाता के मन में अभिमान नहीं है। यशोदाजी बारंबार वंदन कर रही हैं। गोपी लाला का जय-जयकार करती हुई दौड़ती है। रास्ते में दूसरी सखी मिलती है। वह पूछती है कि तुम्हें क्या दिया? गोपी ने कहा—माता ने मुझे अपने गले से उतारकर यह नवरत्न हार पहिना दिया। अरे! वह हार तो माँ मुझे भी दे रही थीं पर मैंने लेने के लिए मनाकर दिया। पहिली गोपी ने पूछा कि तब तुमने क्या लिया? उत्तर मिला मैंने तो माँ से कहा कि बालकृष्णलाल मेरी गोद में दीजिए। मैं तो लाला को लेने आयी हूँ। अरे, तुम कैसी मूर्ख हो। वहाँ जाकर हार ले आयीं। यशोदाजी तो एक-एक को कन्हैया गोद में देती हैं।

गोपी पुनः वापस गयी और वही हार माता के गले में पहिना दिया। बोली माँ! मेरी भूल हुई यह हार तो आपके गले में ही शोभा देता है। माँ, आज मैं जो माँगूँ वह आप दें। यशोदाजी ने कहा—माँग लो, तुम जो माँगोगी, वह मैं दूँगी। गोपी ने कहा—माँ! आप ना नहीं कहोगी न! माँ, दो मिनट के लिये लाला को मेरी गोद में दीजिए। मैं लाला को लेने आयी हूँ।

यशोदाजी ने हाथ जोड़े और कहा— आपके आशीर्वाद से पुत्र हुआ है। आपका ही पुत्र है। यशोदा माता गोपी को पास बैठाकर उसकी गोद में बालकृष्णलाल देती हैं। हजारों वर्षों से जीव ईश्वर से बिछुड़ गया था। वह आज मिला है। जीव और परमात्मा का मिलन हुआ है। अति आनंद हुआ है। गोपी लाला को प्यार कर रही है। बारंबार निहारती है। अति आनंद में देह का होश गवाँ दिया है। कहती है—आज तक नंद-यशोदा हमें आनंद देते थे, आज परमानंद उनके घर आया है। लक्ष्मी हाथ में आती है तो जीव नाचता है। आज गोपी के हाथ में लक्ष्मीपति आये हैं। अति आनंद में गोपी नाचती हैं—नंद घर आनंद भयौ, जय कन्हैयालाल की।

तत आरभ्य नन्दस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान्।
हरेर्निवासात्मगुणै रमाक्रीडमभून्नृप॥

(१०-५-१८)

परमात्मा श्रीकृष्ण परमानंद के स्वरूप हैं। निराकार आनन्द ही नराकार श्रीकृष्ण-स्वरूप में प्रकट हुए हैं। निराकार आँखों को दिखता नहीं है। जिसका कोई आकार नहीं है, वही निराकार है, उसके साथ प्रेम कैसे हो। निराकार का बुद्धि से अनुभव किया जाता है पर निराकार के साथ कोई

प्रेम नहीं कर सकता है। प्रेम तो साकार के साथ ही हो सकता है। साकार श्रीकृष्ण परिपूर्ण प्रेम हैं, परिपूर्ण आनंद हैं।

कई महापुरुष ऐसा मानते हैं कि ईश्वर में आनंद है। ईश्वर में आनंद है–ऐसा जो मानते हैं वे सिद्धांत-दृष्टि से ईश्वर और आनंद दो तत्वों को अलग कर देते हैं। व्यास नारायण का सिद्धांत है कि आनंद ही परमात्मा है। आनंद, परमात्मा ब्रह्म, श्रीकृष्ण सब एक के ही नाम हैं। तत्व एक है, नाम अनेक हैं। भगवान् के श्रीअंग में आनंद के सिवाय और कुछ नहीं है। आप भगवान् के दर्शन कर रहे हैं, तब आपको ऐसा लगेगा कि मेरे शरीर में जैसे हाथ-पैर हैं वैसे ही प्रभु के भी हैं। अरे, हमारे शरीर में और प्रभु के स्वरूप में बहुत भेद है। हमारे में रुधिर, मांस, हड्डियाँ हैं। भगवान् के श्रीअंग में रुधिर नहीं है, मांस नहीं है, मल-मूत्र नहीं है, हड्डियाँ नहीं हैं। केवल आनंद ही भरा है। स्वर्ण का टुकड़ा था तब सोना था। जब उसमें से मूर्ति बनायी गयी तब भी वह सोना ही रहा। मूर्ति के हाथों में, पैरों में सुवर्ण के बिना और कुछ नहीं है। सोने की मूर्ति जिस तरह सोने की ही होती है, उसी तरह श्रीकृष्ण में आनन्द के बिना और कुछ नहीं है। भगवान् का श्रीअंग आनन्दमय है। संसार में आनन्द नहीं है। आनन्द परमात्मा का स्वरूप है। संसार सुख और दुःख से भरा है। संसार में दो बड़े दुःख हैं। संसार में वियोग का दुःख बड़ा है। संयोग वियोग के लिये ही होता है। जिसका संयोग सुख देता है, उसका वियोग दुःख देता है। जिसके संयोग से सुख होता है, उसके वियोग से अति दुःख भी होता है। जो एकबार परमात्मा से मिलते हैं, उन्हें परमात्मा का वियोग कभी नहीं होता है। संसार में दूसरा बड़ा दुःख जन्म-मरण का है। जिसका जन्म है, उसका मरण भी है परन्तु परमात्मा है, उसका जन्म-मरण का आवागमन टल जाता है। संसार के साथ प्रेम करने वालों को सुख मिलता है और दुःख भी भोगना पड़ता है। श्रीकृष्ण से प्रेम करने वाले को आनन्द ही मिलता है। मानव को आनन्द की भूख है। आनन्द परमात्मा का स्वरूप है। श्रीकृष्ण में आनन्द के सिवाय और कुछ नहीं हैं।

अलौकिक सिद्धांत समझने के लिये लौकिक दृष्टाँत देना पड़ता है। चीनी के खिलौने में चीनी ही होती है। चीनी के बिना उनमें कुछ नहीं होता है। एक भाई को रात्रि में बारह बजे तक नींद नहीं आती है। शय्या में पड़े हैं। वे सोच रहे हैं कि आज नींद क्यों नहीं आती है? बहुत सोचने के बाद पता चला कि आज रात्रि में गर्म पानी नहीं मिला है। उनकी रात्रि में चाय पीने की बुरी आदत होगी। याद आने पर रात्रि में चाय की तैयारी की। पानी गर्म करने रखा, पर योग ऐसा हुआ कि चीनी ही खत्म थी। चीनी के बिना चाय कैसे हो? चाय न मिले तो नींद कैसे आये? अब चीनी कहाँ से आये? रात्रि के बारह बजे हैं। उन्हें याद आ गया कि बच्चों के लिये चीनी के खिलौने

लाया था वे कहीं पड़े होंगे। वे खिलौने खोजने लगे। रात्रि में बारह बजे हाथ में माला लेकर कभी जप करने तो बैठे नहीं हैं पर अब चाय के बिना बेचैन हो रहे हैं। कइयों को खाना न मिले तो चल सकता है पर चाय न मिले तो न चले! कइयों के प्राण चाय के अधीन होते हैं। अरे! जिसके प्राण चाय के अधीन हैं, उसके प्राण शरीर में रहकर क्या कर सकेंगे? व्यसन जैसा कोई पाप नहीं है। भाई रात्रि में चीनी खोजने लगे। बहुत तपश्चर्या के बाद सफलता मिली है। खिलौने मिल गये। चीनी के हाथी को हाथ में लिया उसके दो पैर तोड़कर चाय में डाल दिये। हाथी के पैर डाल दिये कि चीनी डाल दी? चीनी के खिलौने आपको चीनी ही दीख पड़ते हैं। अभी तक बालक को समझा रहे थे—यह तुम्हारा हाथी है, यह घोड़ा है। वे अगर हाथी और घोड़ा होते तो खिलौने के डिब्बे में नहीं रह सकते थे। चीनी का खिलौना चीनी ही है, हाथी नहीं है।

भगवान् श्रीकृष्ण के श्रीअंग में मात्र आनन्द ही है। भगवान् के नाम में आनन्द हैं। भगवान् का सारा स्वरूप अलौकिक, अप्राकृत, दिव्य है। भगवान् के नख के दर्शन पाने से भी जगत् भुलाया जा सकता है और उससे आनन्द मिलता है। आनन्द जगत् में नहीं है, जगत् को भुलाने में है। जगत् जब भुलाया जाता है और परमात्मा के स्वरूप में तन्मयता होती है, तब आनन्द मिलता है।

श्रीकृष्ण आनन्दमय हैं। वे नंदबाबा के घर प्रकट हुए हैं। 'नंद' शब्द का अर्थ होता है, जो दूसरे को आनन्द देता है। दूसरे को सुख देने वाले को नन्द कहते हैं। मधुर वाणी, विनय, सरल स्वभाव, उदारता आदि सद्गुणों से सभी को जो आनन्द देते हैं, उन्हें नन्द कहते हैं। सर्व को जो आनन्द देता है, उसे सर्व का आशीर्वाद मिलता है। आप दूसरों को जो देंगे, वही आपको मिलेगा। आप अन्य को सुख देंगे तो आपके घर कभी दुःख नहीं आयेगा। मानव का जन्म दूसरों को सुख देने के लिए है। दूसरे को सुखी करने की इच्छा रखने वाला कभी दुःखी नहीं होता है। 'मैं सुख भोगूँगा'—ऐसी इच्छा रखने वाला कभी सुखी नहीं होता है। आपको जो पसन्द है, वह दूसरे को दीजिए। आपको जो पसन्द नहीं है, वह आप अपने लिये ही रख लीजिये। आपको जो पसन्द है, वह भगवान् को देंगे तो आप भगवान् के प्रिय होंगे।

आप किसी भी मानव का अपमान करेंगे तो जगत् में आपका अपमान होगा। आप किसी भी मानव के साथ कपट करेंगे तो आपसे कपट करने वाला जगत् में उत्पन्न होगा। यह संसार कर्मभूमि है। जैसे कर्म करेंगे, वैसे फल भोगेंगे। करेले के बीज बोने वाले को आम नहीं मिलते हैं। यह संसार भावमय है। आप लोगों के लिये जैसा भाव रखेंगे, वैसा भाव जगत् आपके लिये रखेगा।

केदारनाथ जाते हुए रास्ते में गुप्तकाशी से एक रास्ता ऊखीमठ जाता है। वाणासुर की कन्या उषादेवी का वहां राजमहल था। इससे उस स्थान को ऊखीमठ कहते हैं। सर्दी के दिनों में केदारनाथ

भगवान् की भोगमूर्ति को ऊखीमठ में प्रतिष्ठित करते हैं। केदारनाथ के मन्दिर में बहुत बर्फ गिरती है। इससे उन दिनों वहाँ कोई नहीं रह सकता है। ऊखीमठ में तीन-चार पहाड़ एकत्र हुए हैं। आप जो कुछ भी बोलते हैं, वे सभी शब्द प्रतिध्वनि के रूप में वहाँ सुनाई देते हैं। एक बार 'गंगे हर' आप बोलेंगे तो तीन-चार बार 'गंगे हर' की प्रतिध्वनि आती है। कदाचित् कोई वहाँ बोले कि 'तुम्हारा सत्यानाश हो' तो प्रतिध्वनि भी ऐसी ही होगी। जैसी ध्वनि वैसी प्रतिध्वनि।

जो सर्व में सद्भाव रखता है, सर्व उसमें सद्भाव रखते हैं। नन्दबाबा सर्व के प्रति प्रेम रखते हैं। परमात्मा के चरणों में जाने के लिए दो मार्ग हैं—ज्ञान मार्ग और भक्ति मार्ग, प्रेम-मार्ग। परिपूर्ण वैराग्य होना है, तब ही ज्ञान मार्ग में सफलता मिलती है। महापुरुष सर्व को झूठ समझकर सर्व का त्याग करते हैं। ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि इस शरीर में मैं रहता हूँ, पर शरीर से मैं भिन्न हूँ। देह का सुख मेरा सुख नहीं है। लकड़ी को काटने से क्या लकड़ी में रहने वाली अग्नि को काटा जा सकता है? लकड़ी में अग्नि है पर लकड़ी को काटने में अग्नि काटी नहीं जा सकती। यह शरीर लकड़ी है। मैं लकड़ी नहीं हूँ, मैं अग्नि हूँ। मैं परमात्मा का अंश हूँ। मुझे कोई काट नहीं सकता है। मुझे कोई दुःख नहीं दे सकता है। मैं आनन्दमय हूँ। ज्ञानी पुरुष शरीर में होने पर भी शरीर से भिन्न रहते हैं। सर्व को त्याग करते हैं। सर्व का अर्थात् देह का भी मन से त्याग करते हैं। ज्ञानी पुरुष मरण से पहिले शरीर से आत्मा को अलग कर लेते हैं। ज्ञान मार्ग में परिपूर्ण त्याग है। पूर्ण वैराग हो, तो ज्ञान-मार्ग में सिद्धि मिलती है। वैराग्य-पात्र में ही ज्ञान टिकता है। सर्व का त्याग बहुत सरल नहीं है, बहुत कठिन है।

भगवान् शंकर ज्ञान स्वरूप है। प्रायः वे शहर से दूर श्मशान में विराजमान होते हैं। शिवजी महाराज सर्व का त्याग करते हैं। शिवजी कहते हैं कि जगत् को जो चाहिये, वह मुझे नहीं चाहिये। शिवजी का स्वरूप अति दिव्य है। उनके सिर पर ज्ञान-गंगा है। शिवजी आनन्दमय हैं। शंकर भगवान् कहते हैं कि आनन्द बाहर नहीं है। जड़ वस्तुओं में आनन्द नहीं है। जड़ वस्तुओं का त्याग कीजिए। चैतन्य के साथ प्रेम कीजिए। शिवजी महाराज ने सभी का त्याग किया है। अधिक तो क्या कहूँ? द्वारिकानाथ ने बहुत कहा तब शंकर भगवान् ने पार्वतीजी के साथ विवाह किया। विवाह के बाद पार्वती माता से उन्होंने कहा कि आप उस ओर बैठिये, मैं इस ओर बैठता हूँ, जब कि राधा-कृष्ण एक साथ विराजते हैं। श्रीसीता-रामजी भी साथ ही विराजते हैं। श्रीलक्ष्मी-नारायण भी एक साथ विराजते हैं। ब्रह्मा-गायत्री भी साथ विराजते हैं। परन्तु भगवान् शंकर के मन्दिर में एक ओर पार्वती माता हैं और दूसरी ओर भगवान् शंकर हैं। शिव-पार्वती एक साथ विराजमान हों—ऐसे दर्शन मन्दिर में बहुत कम होते हैं। वेदान्त में अन्वयव्यतिरेक की भाषा आती है। शिवजी व्यतिरेक

का स्वरूप समझाते हैं। श्रीकृष्ण अन्वय दिखाते हैं। शिवजी कहते हैं कि प्रकृति का त्याग करो। श्रीकृष्ण कहते हैं—प्रकृति का उपयोग करो, पर उसके दास न बनो। दोनों का लक्ष्य एक ही है। मार्ग थोड़ा भिन्न है। शिवजी ज्ञान रूप हैं। वे सर्व से अलग रहते हैं, वे पार्वतीजी से भी दूर रहते हैं। वे प्रकृति का त्याग करते हैं। श्रीकृष्ण सब के साथ प्रेम करते हैं। ज्ञान मार्ग में सर्व का त्याग है। भक्ति-मार्ग में सर्व को प्रभु का स्वरूप समझकर सर्व के साथ प्रेम करना है। वैष्णव सर्व को प्रभु का स्वरूप समझकर, किसी तरह की अपेक्षा के बिना सर्व के साथ प्रेम करते हैं।

ज्ञान-मार्ग कठिन है, भक्ति-मार्ग भी सरल नहीं है। सर्व का त्याग करना कठिन है पर सर्व को प्रभु का स्वरूप समझकर सर्व के साथ प्रेम करना भी सरल नहीं है। कई लोग ऐसा मानते हैं कि भक्ति-मार्ग सरल है। भगवान् को पुष्प-माला अर्पण करना, भोग लगाना, आरती करना और प्रसाद खाना—इससे कहीं भक्ति होती है क्या? भोग लगाना, आरती करना भक्ति का एक अंग है पर इससे भक्ति परिपूर्ण नहीं होती है। भक्ति अर्थात् प्रेम। प्रेम करना है तो सभी के साथ प्रेम कीजिए। अपने को गाली देने वाले के साथ भी प्रेम कीजिए। आपको जो कष्ट देता है, जो त्रास देता है, उसमें भी भगवान् हैं। ऐसा समझकर उससे भी प्रेम कीजिए। भक्ति-मार्ग में प्रेम प्रमुख है। श्रीकृष्ण प्रेम-स्वरूप हैं। श्रीकृष्ण सर्व के साथ प्रेम करते हैं। श्रीकृष्ण विष देने वाली पूतना के साथ भी प्रेम करते हैं। शिशुपाल सभा में सौ गालियाँ देता है पर श्रीकृष्ण उसे, सद्गति देते हैं। भीष्माचार्य ने श्रीकृष्ण को युद्ध में अनेक बाण मारे हैं, पर भीष्म की बाण-शय्या के समय श्रीकृष्ण उन्हें मिलने जाते हैं। श्रीकृष्ण बाण मारने वाले भीष्म से भी प्रेम करते हैं। एक बार भृगुऋषि देवों की परीक्षा करने गए। भगवान् नारायण शेष-शय्या में सोये हुए थे। लक्ष्मीजी सेवा कर रही थीं। भृगुऋषि को क्रोध आ गया। सोचने लगे कि ये तो सारा दिन सोते ही रहते हैं? उन्होंने नारायण की छाती पर लात लगायी। नारायण जागे। प्रभु ने भृगुऋषि से कहा—आपके कोमल चरणों को आघात लगा होगा। लाइए, आपकी सेवा करूँ! प्रभु ने भृगुलांछन-चिह्न छाती में धारण कर लिया। लक्ष्मीजी ने कहा—इस ब्राह्मण को सजा दीजिये। पर प्रभु ने तो भृगुऋषि की सेवा करनी शुरू कर दी। लक्ष्मीजी नाराज हो गयीं। लक्ष्मीजी ने प्रभु से कहा—विद्या बढ़ती है और साथ में अभिमान भी बढ़ता है तो विद्या-तप का विनाश हो जाता है। इसलिये इन्हें सजा दीजिए, पर प्रभु ने इन्कार किया। इससे लक्ष्मीजी बैकुण्ठ छोड़कर कोल्हापुर जाकर रहीं। वहाँ वे अकेली हैं; नारायण साथ में नहीं हैं। कोल्हापुर में उनका स्वरूप उग्र है। आँखें बहुत बड़ी हैं। तब से उन्होंने निश्चय किया कि ब्राह्मण बहुत अभिमानी होते हैं। अब मुझे ब्राह्मणों के घर नहीं जाना है। तब

से ब्राह्मण के घर लक्ष्मीजी नहीं जाती हैं, पर भगवान् ब्राह्मण को मान देते हैं। नारायण तो छाती पर लात मारने वाले ब्राह्मण से भी प्रेम करते हैं।

वेदांत में ज्ञान से अभेद सिद्ध किया गया है। वेदांती कहते हैं कि जो भेद दीख पड़ता है, वह माया के कारण, अज्ञान से दीख पड़ता है। एक परमात्मा ही सत्य है। आसमान में चन्द्र एक ही है, पर आँखें मूंद कर देखने से दो चन्द्र दिखाई देंगे। अद्वैतंपरमार्थक: एक ही ब्रह्मतत्व सत्य है माया से भले ही भेद दीख पड़ता हो पर भेद वास्तविक नहीं हैं, एक तत्व है। वैष्णव-सिद्धांत में प्रारम्भ में दो तत्व हैं। भक्त और भगवान् अलग हैं, पर जब अतिशय प्रेम बढ़ता है तब दो मिलकर एक हो जाते हैं। भक्ति से, प्रेम-भेद का विनाश होता है।

भक्तिमार्ग में आगे बढ़ना हो तो जो दिखाई देता है, उसे प्रभु का स्वरूप मान कर प्रेम कीजिए। सभी को सुख देना संभव नहीं है। किसी को भी दुःख न हो, इसका ख्याल रखिये। जगत् में एक जीव की आह भी ज्ञान-भक्ति में विक्षेप पहुँचाती है। कई लोग प्रेम करते हैं और मन में इच्छा रखते हैं, कि कभी यह व्यक्ति काम में आयगा! अपेक्षा रखकर किया गया प्रेम मन को अशांत करता है। अपेक्षा ईश्वर की रखिये। किसी मानव की अपेक्षा न रखिये। अपेक्षा से अशान्ति का जन्म होता है। प्रेम कीजिए पर निरपेक्ष भाव से प्रेम कीजिए। नंदबाबा सर्व के साथ निरपेक्ष प्रेम करते हैं, इससे परमानंद उनके घर आया है। गोपियाँ कहती हैं कि नंद घर आनन्द भयौ है। गोकुल में नंद-महोत्सव होता है। आप नंदमहोत्सव हर रोज़ अपने घर में कीजिए। सारा दिन आनन्द में व्यतीत होगा। भगवान् आपको अनुकूलता देते हैं तो वृन्दावन में जाकर दो-तीन मास रहिये। आज भी वहाँ अनेक भजनानंदी महात्मा रहते हैं। प्रत्येक तीर्थ में भगवान् एकाध संत को रखते हैं। तीर्थ की शोभा संतों के कारण है। वृन्दावन प्रेमभूमि है। संतों के मन में आपके प्रति स्नेह हो, ऐसा स्नेह संतों से कीजिए। संतों का आचरण जीवन में उतारिये। संत सदैव साधना करते हैं। वृन्दावन में कई वैष्णव हर रोज नंद-महोत्सव करते हैं। गरीब वैष्णव सुपारी में गणपति की स्थापना करते हैं। श्रीमंत सुवर्ण-मूर्ति बनवाते हैं, पर सेवा का फल दोनों को समान मिलता है। गणपति महाराज तो भाव देखते हैं। प्रेम से पूजा करने वालों का कल्याण करते हैं फिर चाहे हम सुपारी में प्रस्थापन करें या सुवर्ण की मूर्ति में स्थापन करें। भक्ति में धन गौण है, मन ही मुख्य है। उत्सव में भी धन गौण है, मन ही प्रमुख है।

ब्रह्ममुहूर्त में नंदबाबा को स्वप्न में यशोदा की गोद में बालकृष्णलाल दीख पड़े, तब से नंद-महोत्सव प्रारंभ होता है। ब्रह्म-मुहूर्त का समय अतिशय पवित्र है। कोई साधु-संत चार बजे के बाद शय्या में नहीं सोते हैं। वे बालकृष्णलाल का ध्यान करते हैं, जप करते हैं, साधन करते हैं।

लोग अच्छे ग्रंथ पढ़ते हैं, कथा सुनते हैं पर साधना नहीं करते हैं। कथा कीजिए, करवाइए, सुनिये– यह तो अच्छा है पर कथा सुनने के बाद साधना करना चाहिये। ब्राह्ममुहूर्त साधना-काल है। उस समय ध्यान कीजिये। जिस स्वरूप से जिसका प्रेम है, उस स्वरूप का ध्यान करते हुए, तन्मय हो जाय, तो उसका कल्याण होता है। वंदन-पूजन सर्व का कीजिए पर ध्यान किसी एक का ही कीजिये। पतिव्रता स्त्री सेवा तो सभी की करती है, पर उसका ध्यान तो पतिदेव में ही रहता है। जीव के पति परमात्मा हैं। परमात्मा का ध्यान कीजिये।

प्रातःकाल का समय बहुत पवित्र होता है। रात्रि में जल्दी सो जाइए। सुबह चार बजे उठ जाइए। सुबह जो शय्या में लेटता है, उसके पुण्य का नाश होता है। ब्राह्ममुहूर्त में प्रायः निद्रा नहीं आती है, तंद्रा रहती है। तंद्रा का त्याग कीजिए। किसी भी मानव का मुख देखने से पहिले भक्ति कीजिए। ध्यान से पहले ठाकुरजी की मानसी सेवा कीजिए। मानसी सेवा अतिशय श्रेष्ठ है। इसमें एक पैसे का भी खर्च नहीं है। इस में शरीर को भी कष्ट नहीं है।

एक कंजूस बनिया गुसाईंजी के पास गया। उसने कहा–एक पैसे का भी खर्च न हो, ऐसी सेवा बतलाइये। गुसाईंजी ने कहा–तुम मन से सेवा करो। अपने इष्टदेव बालकृष्ण की सेवा करो। पैसे का भी खर्च न करना। सुबह चार बजे उठ जाना। भावना करना–मैं गंगाजी-यमुनाजी में स्नान करता हूँ। मन से प्रणाम करके गंगा जल में स्नान करना। फिर ठाकुरजी के लिये पवित्र गंगाजल लेकर आना। फिर ऐसी भावना करना कि शय्या में बालकृष्णलाल सोये हैं, रेशमी, सुन्दर बाल कपोल पर हैं। कन्हैया बहुत सुन्दर दीख रहा है। मैं अपने लाला को जगा रहा हूँ। हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण-कृष्ण हरे हरे–प्रेम से ताली दे-देकर कीर्तन करना। कीर्तन करते हुए जब हृदय आर्द्र होगा, तब ठाकुरजी जागेंगे। फिर सुवर्ण-सिंहासन में मखमल की सुन्दर गद्दी पर उनको प्रतिष्ठित करना।

मन से ही सेवा करनी है। इससे कंजूस क्यों बना जाय? इसके बाद मन से लाला को गाय का दूध अर्पण करना। लाला को भैंस का दूध-माखन पसंद नहीं है। भैंस के दूध माखन बुद्धि को जड़ बनाते हैं। मन से ही भाव करना कि चाँदी के कटोरे में माखन-मिसरी लाला को अर्पण करता हूँ। बालकृष्णलाल अपने सखाओं को इसमें से देते हैं। तुम हर रोज ऐसा भाव करोगे तो कभी तुम्हें ऐसी अनुभूति होगी कि परमात्मा तुम्हें भी माखन खाने के लिये बुला रहे हैं। मानसी सेवा करने वाले के मन में नये-नये भाव जाग्रत होते हैं। फिर मन से लाला के श्रीअंग पर तेल लगाकर गर्म जल से मांगलिक स्नान करवाना। धीरे-धीरे लाला के चरणों को पखारना। लाला का श्रीअंग बहुत कोमल है। लाला को जरा भी कष्ट न हो, यह देखना। बाद में पीतांबर पहिनाना, सुन्दर शृंगार करना, तिलक करना, चरणों में तुलसी जी अर्पण करना, भोग लगाना और आरती करना।

दर्शन और मिलन के लिए जब हृदय आर्त होता है, तब उसे आरती कहते हैं। परमात्मा के वियोग का जिसके मन में दुःख है, वह ही भक्ति करता है। उसका ही हृदय आर्त बनता है। तीन बार चरण ऊपर से आरती उतारिये। तीन बार जंघा के पास आरती उतारिये। तीन बार वक्षःस्थल पर से और तीन बार मुखारविंद पर से आरती उतारिये। सात बार समग्र श्रीअंग पर से उतारिये। साष्टांग प्रणाम कजिए। मानसी सेवा में मन की धारा खंडित न होनी चाहिए। अन्य लौकिक विचार न आने चाहिए। नहीं तो सेवा का भंग होता है। मन को भगवद्-स्वरूप में लीन रखिये। सेवा में जितना समय लेते हैं, उतने समय तक आँखें और मन भगवान् में लीन रहे—ऐसी तन्मयता से मानसी सेवा हो तो बहुत आनंद आता है।

सेवा पूर्ण होने के बाद भगवान् को वंदन करके प्रार्थना कीजिए—आप मेरे हृदय में विराजिये। मेरे हाथ से सत्कर्म करवाइए। कोई भी सत्कर्म बारह वर्ष तक करने से उसका फल मिलता है। भक्ति का नियम जीवन के अंतकाल तक रखिये। मन को बहुत स्वच्छन्द न बनने दीजिए। मन को नियम में रखिये।

बनिया हर रोज सुबह चार बजे उठकर, आज्ञा के अनुसार मानसी सेवा करने लगा। बनिये ने बारह वर्षों तक मानसी सेवा की। प्रत्यक्ष ठाकुरजी आरोग रहे हैं—ऐसे दर्शन होने लगे। उसे बहुत आनंद आने लगा। एक बार ठाकुरजी की सेवा करते हुए, मन से दूध ले आया, गर्म किया, दूध में शक्कर डाली—वह अधिक पड़ गयी। उसकी प्रकृति कंजूसी की थी। सेवा में तन्मयता तो हुई पर दूध में अधिक शक्कर पड़ गयी है—ऐसा सोचकर दूध में पड़ी हुई अधिक शक्कर निकाल लूँ, तो दूसरे दिन उपयोग में आ सकेगी—वह शक्कर निकालने को तत्पर हुआ। वहाँ दूध नहीं है, शक्कर नहीं है, कुछ नहीं है। पर मानसी सेवा में तन्मय होने से उसे सब कुछ दीख रहा था। गोपाल को मजाक करने का मन हुआ। लाला ने सोचा इस आदमी जैसा रत्न मैंने इस संसार में नहीं देखा। मानसी सेवा कर रहा है, एक पैसे का भी खर्च नहीं कर रहा है, फिर भी अधिक शक्कर पड़ी है तो निकालने जा रहा है। बालकृष्णलाल घुटनों के बल चलकर आ पहुँचे और उसका हाथ पकड़ लिया। अरे! अधिक शक्कर पड़ गई तो इसमें तेरे बाप का क्या जाता है? तुम तो मानसी सेवा कर रहे हो। एक पैसे का भी खर्च नहीं है। श्रीकृष्ण का स्पर्श हुआ। वह सच्चा वैष्णव बन गया। महान भगवद्-भक्त हो गया।

मानव-शरीर साधन करने के लिये है। छह मास नियम से ब्रह्म मूहूर्त में उठकर लाला की मानसी सेवा करने पर उसका फल अवश्य मिलता है। मन के संकल्प-विकल्प कम हो जाते हैं। जिस दिन आपकी अंतरात्मा कहने लगे कि तुम्हारा मन शुद्ध हुआ है, तब आप सच्चे वैष्णव होंगे।

बालकृष्णलाल की सेवा करते हुए, आँखों से प्रेमाश्रु निकलते हैं, तब मन शुद्ध होता है। प्रातःकाल परमात्मा की ध्यान-सेवा में जो तन्मय होता है, उसे भक्ति रस का आनंद मिलता है। उसके मन पर संसार के सुख-दुःख का प्रभाव नहीं पड़ता है। प्रारब्ध के अनुसार सुख-दुःख आते ही हैं पर भक्त के मन पर इनका असर नहीं होता है हमारे जीवन में कोई विशेष दुःख नहीं आता है। संतों के जीवन में अनेक दुःख आते हैं। अनेक जंन्म के पाप उनके एक ही जन्म में परमात्मा जला देते हैं। नरसिंह मेहता का युवक पुत्र मर गया पर वे 'राधे-गोविंद' रटते रहते, मन को अशांत होने नहीं देते। एक दवा में ऐसी शक्ति है कि शरीर के अंग को सुन्न कर देती है, इससे शल्य-क्रिया के समय पीड़ा नहीं होती है। जब एक दवा में ऐसी शक्ति है तो भक्ति-रस में कितनी शक्ति होगी? उस रस में निमग्न होने पर संसार के दुःखों का असर मन पर नहीं होता। तुकारामजी के जीवन में दुःख के अनेक प्रसंग आये। कई दुष्ट दीपावली के दिन उनके पास गये और कहने लगे—आज तो गधे पर बैठाकर आपकी शोभा-यात्रा निकालनी है। संत गधे पर बैठ गये। उन लोगों ने संत का बहुत अनादर किया, पर तुकारामजी की शांति का भंग नहीं हुआ। उनकी पत्नी को बहुत दुःख हुआ। वह रोने लगी। तुकाराम के चरित्र में बहुत चमत्कार हैं, पर वे तो परमात्मा ने दिखाये हैं। तुकाराम महाराज ने तो जीवन में एक ही बार चमत्कार दिखाया है। तुकारामजी ने पत्नी से कहा—यह गधा नहीं है, मेरे प्रभु ने मुझे गरुड़ पर बैठाया है। सब को गधा दीख पड़ता है, पर उनकी पत्नी को गरुड़ दीख पड़ा। चाहे कैसा भी दुःखद प्रसंग क्यों न हो, भक्तों का मन शांत रहता है क्योंकि उनका मन भक्ति-रस में निमग्न रहता है। सुख-दुःख मन के धर्म हैं, उनका स्पर्श आत्मा को नहीं होता है। आप तन नहीं है, आप मन भी नहीं हैं। आप तो मन के साक्षी हैं, चैतन्य आत्मा हैं। जिसे भक्ति का आनंद मिला है, उसे सुख मिलता है, तो उसे सुख तुच्छ लगता है, दुःख भी तुच्छ लगता है। मन पर सुख-दुःख का प्रभाव न हो—ऐसी इच्छा है तो प्रातः काल ब्रह्ममुहूर्त में नंदमहोत्सव कीजिए।

५१– जोगी-लीला

शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं कि राजन्! नन्दमहोत्सव भादों कृष्ण नौमी के दिन हुआ है। उस समय तो भगवान् शंकर समाधि में थे। जब वे जागृत हुए तब मालूम हुआ कि बालकृष्णलाल प्रकट हुए हैं। इससे शिवजी महाराज ने भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए जाने का विचार किया। भगवान् शंकर के दो गण शृंगी और भृंगी ने भी कहा कि महाराज, हमें भी साथ ले चलिये। हमें भी दर्शन करने हैं। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि जब आप सब सत्संग करते हैं, कथा-कीर्तन करते हैं,

तब अनेक वैष्णव एकत्र हों तो अच्छा है, पर जब आप ध्यान करते हैं, सेवा करते हैं, दर्शन करते हैं, तब किसी व्यक्ति के साथ अच्छा नहीं है। यह सब आप अकेले ही कीजिए। प्रत्येक व्यक्ति के संस्कार भिन्न-भिन्न होते हैं, इससे ऐसा साथ-संग भक्ति में कुछ अंशों में विक्षेप लाता है।

दर्शन करने जाते हैं, तो अकेले ही जाइये। कोई साथ में होगा तो बहुत बातें होंगी। दर्शन करने जाते हैं तब मौन रखकर जाइए। भगवान् के नाम का जप करते हुए जाइए। दर्शन करने जा रहे हैं तब अंधे, बहरे, गूंगे होकर जाइए। मैं भगवान् के मुख के दर्शन करने के लिये जा रहा हूँ, किसी मानव का मुख मुझे नहीं देखना है, किसी मानव की बातें नहीं सुननी हैं, किसी से बातें नहीं करनी हैं।

भगवान् के जप करते हुए जो रास्ते में चलते हैं, उन्हें यज्ञ का फल मिलता है। शिवजी ने सोचा कि मैं अकेला ही जाऊँगा। ये साथ में होंगे तो बातें करेंगे। शिवजी ने उन्हें मना किया। शृंगी-भृंगी ने हाथ जोड़ कर कहा—महाराज! हमें साथ ले चलिये, हम आपके ध्यान में विक्षेप नहीं डालेंगे। आप साथ नहीं ले चलेंगे तो हम पीछे से आयेंगे, और वहाँ सबसे—प्रत्येक के घर कहते जायेंगे कि ये साधु महाराज नहीं हैं, ये तो शंकर भगवान् हैं। तब आपका नाटक खुल जायेगा।

शिवजी ने कहा—चलिये मेरे साथ, पर रास्ते में बातें नहीं करनी है। किसी की ओर दृष्टि भी नहीं डालनी है। घर छोड़कर मन्दिर जाने का अर्थ यह है कि मैं प्रभु को ही दृष्टि दूँगा। कई लोग मन्दिर में दर्शन करने जाते हैं तो पूछते हैं—कल आप दिखायी नहीं दिये! अरे, कल क्या इनका मुख देखने तुम गये थे? वह नहीं आया तो तुम्हें कैसा मालूम हुआ? दर्शन करने जाते हैं तब सावधान होकर जाइए।

शिवजी ने साधु का स्वाँग सजाया है। शृंगी-भृंगी दोनों शिष्य बने हैं। श्रीकृष्ण गोविंद हरे मुरारे। हे नाथ नारायण वासुदेव—कीर्तन करते हुए चलते हैं। श्रीयशोदा माता के द्वार पर आकर खड़े हो गये हैं। 'अलख निरंजन' पुकार की है। जो ब्रह्म अलक्षित था, अति दुर्लभ था, आँख से दिखाई नहीं देता था, वह आज सर्व-सुलभ है। आज प्रत्यक्ष परमात्मा प्रकट हुए हैं। शिवजी इस साकार ब्रह्म के दर्शन के लिये आये हैं। यशोदामाता को पता चला कि कोई साधु द्वार पर भिक्षा लेने के लिये खड़े हैं। दासी को आज्ञा दी। इससे दासी थाली में फल लेकर बाहर आयी है। शिवजी की आँखें ब्रह्मानंद में मस्त थीं। साधु की परीक्षा कपड़ों से नहीं होती है, जाति से भी नहीं होती है, आँखों से होती है। संतों की आँखें भगवान् में स्थिर होती है। संत भगवान् को आँखों से दूर नहीं होने देते हैं। संतों का नियम होता है कि दो-तीन मिनट के अन्तर पर वे भगवान् के दर्शन करते

हैं। संत परमात्मा को आँखों में रखते हैं। दासी ने हाथ जोड़े और कहा—महाराज! यशोदामाता ने आपको भिक्षा दी है। इसको स्वीकार कीजिये और हमारे लाला को आशीर्वाद दीजिए।

शिवजी ने आँखें न खोलीं और कहा—मैं भिक्षा के लिए साधु नहीं हुआ हूँ। मैं बालकृष्णलाल के दर्शन के लिए साधु हुआ हूँ। मेरे गुरु ने मुझसे कहा है कि गोकुल में यशोदाजी के घर परमात्मा प्रकट हुए हैं। इससे मैं दर्शन करने आया हूँ। मुझे लाला के दर्शन करने हैं।

कई लोग घर छोड़कर साधु हो जाते हैं, पर बाद में उनको यह याद नहीं रहता कि मैं क्यों साधु हुआ हूँ। शिवजी कहते हैं कि श्रीकृष्ण-दर्शन के लिए मैं साधु हुआ हूँ। मुझे लाला के दर्शन करने हैं। दासी ने भीतर जाकर यशोदामाता को बात बतायी, यशोदाजी को आश्चर्य हुआ। यशोदाजी ने खिड़की से देखा कि बाहर साधु खड़े हैं। बाघाम्बर पहिना है, गले में सर्प है, भव्य जटा हैं, हाथ में त्रिशूल है। ऐसा दिव्य शिवस्वरूप था कि यशोदामाता ने सोचा—यह शंकर भगवान् तो नहीं हैं? ऐसा साधु तो कभी नहीं देखा। बारम्बार प्रणाम करके यशोदामाता ने कहा—महाराज! आप कोई महान् पुरुष लगते हैं। हम आपको पहिचान नहीं पा रहे हैं। क्या भिक्षा कम लग रही है? आप माँगिये तो मैं आपको कमण्डल दूँ, कम्बल दूँ। जो माँगेंगे वह दूँगी, पर मैं लाला को बाहर नहीं लाऊँगी। अनेक मनौतियाँ मानी हैं, तब वृद्धावस्था में यह पुत्र हुआ है। मुझे प्राणों से भी प्रिय है। आपके गले में सर्प है। लाला उसे देखकर डर जायगा। बालक अति कोमल है।

शिवजी ने कहा—माँ! लाला को डर नहीं लगेगा। तुम्हारा कन्हैया कौन है, वह मैं जानता हूँ। मेरे गुरु ने मुझसे कहा है कि 'वह काल को काल, देव-देवन को, शिव को धन और सर्वस्व संतन को' है। तुम्हारा कन्हैया देव का देव है, वह काल का भी काल है। वह मुझे देखकर बहुत प्रसन्न होगा, वह मुझे पहिचानता है।

यशोदामाता ने कहा—महाराज! यह आप क्या कह रहे हैं? मैं पचपन वर्ष की हुई और आपको नहीं पहिचान रही हूँ, तो मेरा पुत्र कैसे पहिचान लेगा? शिवजी ने कहा—माँ! आप मुझे नहीं पहिचान रही हैं पर कन्हैया मुझे पहिचान रहा है। वह मुझे देखकर प्रसन्न होगा।

यशोदाजी ने कहा—महाराज! आप ऐसा हठ कर रहे हैं, यह उचित नहीं है। शिवजी ने कहा—माँ, लाला के दर्शन के बिना मुझे पानी तक नहीं पीना है। मैं आपके आँगन में अब बारह वर्ष की समाधि लगा रहा हूँ। यशोदामाता घबरा गयीं। यशोदाजी को यह उचित न लगा शिवजी महाराज बैठे हैं। आप नंदगाँव में गये होंगे। वहाँ आशेश्वर महादेव का मंदिर है। श्रीकृष्ण-दर्शन की आशा से शिवजी बैठे हैं। इससे इस का नाम आशेश्वर है। आँखें बंद रखकर बालकृष्णलाल का वे ध्यान करते हैं। ध्यान चेतन का करेंगे तो ही लाभ है, जड़ वस्तु के ध्यान से लाभ नहीं है। जड़

वस्तु के ध्यान से बुद्धि जड़ होती है, मन बिगड़ता है। ध्यान चेतन का कीजिए। आप जहाँ हैं, वहीं भगवान् प्रकट होंगे। किसी व्यक्ति को प्यास लग जाय, तब वह पानी का ध्यान करेगा तो क्या पानी पास आ जायेगा? पानी आपके पास नहीं आ सकता, आपको पानी के पास जाना पड़ेगा। चेतन सर्वव्यापक है। इससे जहाँ बैठकर आप चेतन का ध्यान करेंगे, वहाँ श्रीकृष्ण प्रकट होंगे। शिवजी महाराज ध्यान करते हुए तन्मय हुए और तब बालकृष्णलाल उनके हृदय में पधारे हैं।

यशोदामाता का कन्हैया रोने लगा है। यशोदामाता कन्हैया को दूध पिलाने लगीं, पर लाला ने दूध पीने से इन्कार कर दिया। माता ने लाला को खिलौने दिये, पर लाला ने फेंक दिये। लाला को बाहर जाना है। माता नहीं ले जा रही है। भगवान् के दर्शन के लिये तड़पते हैं, उसी तरह भगवान् भी भक्त को देखने के लिए उत्कंठित होते हैं। भक्त को देखकर भगवान् को आनन्द होता है। लाला को शिवजी के दर्शन की इच्छा हुई है।

गोपियों को मालूम हुआ। वे दौड़ती आयी हैं। वे लाला को मना रही हैं—बेटा! तुम्हें क्या हो रहा है? गोपियाँ व्याकुल हुई हैं। आज कन्हैया क्यों रो रहा है? तीन-चार दिन से तो जरा भी रोया नहीं है। आज लाला को क्या हो रहा है? एक गोपी ने कहा—माँ, मैं जब आ रही थी तब आँगन में बैठे हुए साधु महाराज के होंठ हिल रहे थे। इससे माता मुझे लगता है कि आँगन में बैठे हुए साधु ने लाला पर कोई मंत्र तो नहीं किया होगा? बाद में नजर उतारने के लिए शाण्डिल्य ऋषि को बुलाया गया। शाण्डिल्य ऋषि समझ गये हैं। उन्होंने कहा—माँ आँगन में जो ऋषि बैठे हुए हैं, उनका लाला से जन्म-जन्म का संबंध है। साधु महराज आँगन में भूखे बैठे हैं, यह अच्छा नहीं है। माँ, उन्हें दर्शन करवाइए।

यशोदामाता ने लाला का सुन्दर शृंगार किया। पीला वस्त्र पहिनाया है। गले में बाघ के नाखून को सुवर्ण में जड़ित करके पहना दिया है। बालक के गले में बाघ के नाखून होते हैं तो नजर नहीं लगती है। यशोदाजी ने दासी से कहा—लाला को लेकर मैं आ रही हूँ, तुम साधु महाराज से कहो कि एक-दो मिनट दर्शन कीजिए और फिर यहाँ से पधारिये। एकटक न देखिएगा। एकटक देखने पर लाला को कुछ हो जाय तो? सब कहते हैं कि कन्हैया बहुत सुन्दर है, कन्हैया बहुत सुन्दर है—इससे मुझे घबराहट होती है कहीं किसी की नजर न लग जाय!

आप वृन्दावन गये होंगे। वृन्दावन में भगवान् के असंख्य स्वरूप हैं। पंद्रह-बीस दिन रहेंगे तब ही सभी के दर्शन हो सकेंगे। वृन्दावन में भगवान् के अनेक स्वरूप भक्तों के लिये प्रकट हुए हैं। प्रत्येक स्वरूप के साथ एक इतिहास-कथा है। वृन्दावन के प्रधान ठाकुर हैं बाँके-बिहारीलाल। बाँके-बिहारीलाल का स्वरूप ऐसा सुन्दर है कि उसका वर्णन करना संभव नहीं है। वह अवर्णनीय

है। ठाकुरजी की आँखें अति दिव्य हैं। मुखारविंद अलौकिक है। उनके दर्शन से तृप्ति ही नहीं होती है। ऐसा लगता है कि भगवान् अभी कुछ बोलेंगे। अभी कृपा करेंगे। उस मंदिर का ऐसा नियम है कि तीन-चार मिनट हों कि दर्शन दर्शन बंद कर दिये जाते हैं एकटक किसी को देखने नहीं देते हैं। वहाँ के गोस्वामी से कहा कि महाराज! आप शांति से दर्शन करने दीजिए न। यह पर्दा क्यों लाते हैं? उन्होंने कहा—महाराज! इन ठाकुरजी को लोगों की नजर लग जाती है। अति सुन्दर बाल-स्वरूप है, इससे भगवान् को भी नजर लगती है। यह बाल-स्वरूप है, अपलक देखने से नजर लगती है। इससे पर्दा लाते हैं। जीव ईश्वर का दर्शम करता है तब माया का पर्दा बीच में आता ही है। वह माया शांति से दर्शन करने नहीं देती।

यशोदाजी ने दासी से कहा—तुम महाराज से कह देना। दासी ने बाहर आकर शिवजी से कहा—महाराज! पधारिये। यशोदामाता आपको बुला रही हैं। शिवजी महाराज, पधारे हैं। यशोदामाता बालकृष्णलाल को लेकर बाहर आती हैं। कोई भी बालक सुन्दर दीखता है क्योंकि बालक में विकार नहीं है, वासना नहीं है। विकार-वासना जगने से सौंदर्य नष्ट हो जाता है। विकार-वासना के न होने तक सौंदर्य रहता है। बालक का मन शुद्ध होता है। उसकी आँखों में विकार नहीं होता है, पाप नहीं रहता है। इससे वह सुन्दर लगता है। जब तक विकार-वासना नहीं होती, तब तक वह परमात्मा का स्वरूप है और जब परमात्मा बालक बनते हैं, तब क्या कहना? लाला का बालस्वरूप दिव्य है। श्रीकृष्ण और शिवजी की आँखें जब चार हुईं तब शिवजी को अति आनन्द, हुआ। श्रीअंग में रोमांच हुआ। आँखें गीली हो गईं।

शिवजी ने लाला का जय जयकार किया। शिवजी की दृष्टि पड़ी कि बालकृष्णलाल धीरे-धीरे हँसने लगे। यशोदामाता को आश्चर्य हुआ। साधु महाराज की आँखें बहुत पवित्र हैं। इनकी दृष्टि पड़ने पर बालक हँसने लगा है। घर में बहुत रो रहा था अब माता को विश्वास आ गया। उन्होंने शिवजी को भीतर बुलाया।

नंदगाँव में नंदबाबा का राजमहल है। नंदगाँव में श्रीकृष्ण-बलराम की बालभाव की सेवा है। बालस्वरूप है। अति सुन्दर है। राजमहल के भीतर शिवजी महाराज हैं। एक स्वरूप बाहर है। उन्हें आशेश्वर महादेव कहते हैं। यशोदामाता ने शिवजी को भीतर बुलाया। वहाँ वही दूसरा स्वरूप भी है। उनका नाम है नंदीश्वर महादेव। माता शिवजी को भीतर बुलाकर बारंबार वंदन करती हैं—महाराज! आप आये सो बहुत अच्छा हुआ। वृद्धावस्था में पुत्र जन्म हुआ है, इससे मुझें बहुत चिंता होती है कि लाला को किसी की नजर न लग जाय। महाराज क्या आप नजर न लगने का मंत्र जानते हैं? यह जल्दी मोटा हो जाय, ऐसा कोई मंत्र दीजिए।

शिवजी को बालकृष्णलाल के दर्शन से आनंद हुआ है पर दर्शन में थोड़ा द्वैतभाव भी है। जहाँ भेद है वहां पूर्ण आनंद नहीं है। शिवजी को तो कृष्ण से एक होना है। उनमें अद्वैतभाव है। इससे शिवजी ने यशोदामाता से कहा—माँ, मेरे गुरु ने मुझे एक मंत्र दिया है पर मंत्र को लाला के कान में कहना पड़ेगा। वह आपकी गोद में है तो मैं उसके कान में मंत्र कैसे कह सकूँगा? यशोदामाता समझ गयीं। इससे उन्होंने लाला को शिवजी की गोद में दे दिया। शिवजी ने जैसे ही बालकृष्णलाल को गोद में लिया कि उनकी समाधि लग गयी। माँ से कहा—मैंने लाला को आशीर्वाद दिये हैं। कोई राक्षस आये या राक्षसी आये, लाला का बाल भी बाँका नहीं होगा। माँ! आप जरा भी चिंता न कीजिए। यह बड़ा राजा होगा। यह सुवर्ण की नगरी बनायेगा। इस बालक की कीर्ति सारे, जगत में फैलेगी, अखंड रहेगी। यह सभी को सुखी करेगा। माँ, यह बालक सोलह हजार रानियों का पति होगा। यशोदा माता ने कहा कि महाराज, यह आप क्या कह रहे हैं? सोलह हजार स्त्रियों का पति होगा? शिवजी ने कहा—माँ, मेरे मुख में से ऐसा क्यों निकला यह मुझे मालूम नहीं है पर यह सत्य ही होगा। यह सोलह हजार रानियों का पति होगा।

यशोदाजी ने कहा—महाराज! एक-दो विवाह हों तो ठीक है। कई स्त्रियाँ बहुत बुरी होती हैं। ये सब लाला को त्रास देंगी? शिवजी ने कहा—माता, मैंने इसे आशीर्वाद दिये हैं, यह सभी को वश में रखेगा। रानियाँ लाला की सेवा करेंगी। यह बहुत वीर होगा। सभी की देखभाल रखेगा, सभी को सुख देगा।

महाराज! हम दोनों की वृद्धावस्था है। आप कहते हैं कि बड़ा राजा होगा! तो क्या हमारे देखते हुए राजा होगा कि हमारी मृत्यु के बाद राजा होगा? शिवजी ने हाथ जोड़े—माँ, यह आप क्या कह रही हैं। आप इसे बड़ा राजा देखेंगी।

यशोदामाता वंदन करती हैं। शिवजी आशीर्वाद देते हैं—अखंड सौभाग्यवती भव। यशोदामाता ने शिवजी से कहा—महाराज! आप सदैव के लिये यहाँ रहिये। आपकी सब व्यवस्था मैं करूँगी। जब जब कन्हैया रोयेगा, मैं आपको बुला लूँगी। आपकी आँखें दिव्य हैं। सारा नंद गाँव शिवलिंगाकार बन गया है। आज भी है। कभी वहाँ जाकर दर्शन कीजिए। तो प्रतीति होगी। नंदगांव पहाड़ पर है और नीचे से दर्शन करने पर ऐसा लगता है कि भगवान् शंकर बैठे हैं।

यशोदा माता ने वस्त्राभूषण मँगाये हैं। शिवजी ने कहा कि माँ, यह आप क्या कह रही हैं इस जगत में जो कुछ है मेरा ही है। मैंने ही लोगों को दिया है। माँ, मेरा नाम विश्वनाथ है। मुझे कुछ नहीं चाहिये। यशोदा माता ने बहुत आग्रह किया तब शिवजी ने कहा—माँ, जब-जब मैं आऊँ, तब-तब इस बालक को दो मिनट के लिये मेरी गोद में दीजियेगा। और क्या माँगू? यशोदाजी ने

कहा—यह बालक आपका ही है। लाला को आशीर्वाद दीजिए। पर महाराज आप कुछ भी न लेंगे? आप मेरा कुछ स्वीकारिये। यशोदामाता की आँखों में आँसू आ गये।

शिवजी ने कहा—माँ! मुझे कुछ नहीं चाहिये। थोड़े फल दीजिए। मैं फलाहार करूँगा। शिवजी ने और कुछ न लिया। फलों को स्वीकार किया। यशोदा माँ को आनंद हुआ। शिवजी को उन्होंने बार-बार वंदन किये।

श्रावण शुक्ल द्वादशी के दिन जोगी लीला हुई। शिवजी योगीश्वर हैं और श्रीकृष्ण योगेश्वर हैं। श्रीकृष्ण प्रवृत्ति-धर्म समझाते हैं। योगीश्वर शिव जगत् को निवृत्ति-धर्म समझाते हैं। निवृत्ति लेकर भक्ति करने का आदर्श शिवजी दिखाते हैं। प्रवृत्ति में सावधान रहकर, किस तरह परमात्मा का स्मरण करना चाहिये—यह श्रीकृष्ण दिखाते हैं। सनातन धर्म के ये दो अंग हैं। तत्त्व से हरि-हर दोनों एक ही हैं।

५२– वासना-विनाश

गोपान् गोकुलरक्षायां निरूप्य मथुरां गतः।
नन्दः कंसस्य वार्षिक्यं करं दातुं कुरूद्वह॥ (१०-५-१९)

श्रावण कृष्ण द्वादशी के दिन यह लीला हुई और त्रयोदशी के दिन नन्दबाबा मथुरा में कंस को राज्य का महसूल देने गये। कंस बड़ा राजा था। प्रतिवर्ष नन्दबाबा कंस को महसूल देते थे। महसूल देने का समय हो गया है। नन्दबाबा ने व्रजवासियों से कहा कि अब मुझे मथुरा जाना है, आप लाला की देखभाल करना। प्रत्येक द्वार पर दो-दो व्रजवासियों को प्रहरी के रूप में उन्होंने रखा है जिससे कि कोई भीतर न जा पाये।

जो जगत् की रक्षा करते हैं उनकी रक्षा कौन करेगा? श्रीकृष्ण ने जगत् को एक आदर्श दिखाया है। भगवान् को घर में रखना बहुत कठिन नहीं है, पर ठाकुरजी को घर में प्रतिष्ठित करके उनकी देखभाल करना कठिन है। हृदय-गोकुल में बालकृष्णलाल को प्रतिष्ठित करने के बाद उन्हें संभाल कर रखना। जो जगत् के साथ बहुत प्रेम करते हैं, बालकृष्णलाल उनके भीतर—उनके हृदय में नहीं बिराजते हैं। परमात्मा को हृदय में प्रतिष्ठित करने के बाद संसार के किसी भी लौकिक सुख का संकल्प करना उचित नहीं है, ऐसा होने पर भगवान् हृदय में विराजमान नहीं होंगे। कंस और श्रीकृष्ण एक ही स्थान पर नहीं रह सकते हैं। अंधकार और प्रकाश एक ही स्थान पर नहीं रह सकते हैं। प्रभु को घर में प्रतिष्ठित करने के बाद बहुत सावधान रहना। आपके मन में संसार के किसी सुख का संकल्प न आ जाय। जब कोई लौकिक सुख भोगने का विचार करता है, तब

पाप शुरू हो जाता है और तब शक्ति का विनाश होता है। तब भगवान् अंतर्धान हो जाते हैं। भगवत्कृपा से जब सुख मिल जाय, तब प्रभु को साथ में रखकर सुख का उपभोग कीजिए। सुख को प्रभु का प्रसाद मानिये और सुख भोगने के लिए प्रभु को साथ रखिये। श्रीकृष्ण को साथ रखकर जब जीव सुख भोगता है, तब मन-बुद्धि बिगड़ती नहीं है। जीव जब ईश्वर से विमुख होकर सुख भोगने लगता है, तब मन बिगड़ता है।

नन्दबाबा कंस राजा के दरबार में गये। वार्षिक महसूल वे देते हैं। वहाँ सुवर्ण की थाली में रखकर उन्होंने पाँच हीरों की भेंट दी। एक-एक हीरा लाख-लाख रुपये का है। नन्दबाबा के घर लक्ष्मीजी पधारी हैं। लक्ष्मीजी को बैकुण्ठ से व्रज प्रिय लगता है।

वैकुण्ठ में ऐश्वर्य है। ऐश्वर्य है तो वहाँ पर्दा भी है। जहाँ प्रेम है वहाँ पर्दा नहीं है। व्रजभूमि प्रेमभूमि है। लक्ष्मीजी को वैकुण्ठ से भी व्रज प्रिय लगता है। लक्ष्मीजी नन्दबाबा के घर में विराजमान हैं। नन्दबाबाब ने कंस राजा को ऐसी मूल्यवान भेंट दी है।

कंस को आश्चर्य हुआ। कहने लगा कि इतनी बड़ी भेंट क्यों दे रहे हो? नन्दजी ने कहा– आपके आशीर्वाद से वृद्धावस्था में मेरे घर बालक का जन्म हुआ है। कंस भेंट पाकर खुश हुआ। कहने लगा–बाबा! मुझे बहुत आनन्द हुआ। इस अवस्था में आपके घर बालक का जन्म हुआ। आपके बालक को आशीर्वाद देता हूँ। आपका बालक सुखी हो, और उसका शत्रु जलकर भस्म हो जाय! श्रीकृष्ण प्रकट हुए, तब देवों, महात्माओं और ऋषियों ने जय-जयकार किया तो क्या आश्चर्य है जब कि लाला को शत्रु कंस राजा ने भी आशीर्वाद दिये–

वसुदेव उपश्रुत्य भ्रातरं नन्दमागतम्।
ज्ञात्वा दत्तकरं राज्ञे ययौ तदवमोचनम्॥ (१०-५-२०)

श्रीकृष्ण के प्रकट होने के बाद नन्द-वसुदेवजी का प्रथम मिलन होता है। नन्दबाबा ने वसुदेवजी से कुशल समाचार पूछे हैं। आपसे किसी की मुलाकात हो, तब अपनी सुख-संपत्ति, मान-बड़ाई की बातें न कीजिए। आप उससे पूछिये कि उसे क्या तकलीफ है, क्या दुःख है? कई व्यक्तियों की ऐसी आदत होती है कि कोई भी मिल जाय तो वे अपनी कथा कहने लगेंगे अथवा कोई घर आ जाता है तब अपना मान-पत्र दिखलाते हैं। कहते हैं कि देखिये, लोगों ने हमें ऐसा मान-पत्र दिया है। मेरा सम्मान किया गया है! अरे! तुम अपनी ही कथा कहोगे? अपनी ही कथा न कहिये। मिलने वाले को क्या दुःख है, पहिले यह पूछिये। दुःखी को आश्वासन देना महान् पुण्य है। नन्दबाबा ने वसुदेवजी से नहीं कहा कि मेरे घर पुत्र-जन्म हुआ। नन्दजी ने तो वसुदेवजी से दुःख की बातें पूछ ली हैं। कहने लगे कि मुझे बहुत दुःख होता है। यह कंस आपको त्रस्त कर

रहा है। मैंने सुना था कि आपके घर कन्या का जन्म हुआ था और कंस जब उसे मारने दौड़ा तो वह उड़ गयी! भगवान् कंस को देख रहे हैं! कभी उसे सजा करेंगे। वसुदेवजी ने हाथ जोड़े और कहा—बाबा! मैं किसी को दोष नहीं दे रहा हूँ। मैंने पाप किया है, इससे कंस मेरे बालकों को मार रहा है। मेरा कुछ पाप होगा। इसमें कंस राजा का कोई दोष नहीं है। मेरे बालक तो मर गये पर मैंने सुना है कि आपके घर लाला का जन्म हुआ है। उसे मैं अपना ही पुत्र मानता हूँ। नन्दबाबा भोले हैं। वसुदेवजी से कहते हैं कि कन्हैया आपका ही पुत्र है।

वसुदेवजी ने कहा—बाबा, मैं मथुरा में रहता हूँ, मुझे आपके लाला की बहुत चिंता होती है। समय बहुत प्रतिकूल है। अब आप बाहर घूम रहे हैं। यह अच्छा नहीं है। कंस ने ब्राह्मणों को बुलाकर पूछा कि मेरा काल कहाँ है? ब्राह्मणों ने कहा कि आपका काल गोकुल-वृन्दावन में है और अभी वह बालक है। कंस ने पूतना को भेजकर दस दिनों में वहाँ के सभी बालकों को मार डालने की आज्ञा की है। वसुदेवजी यह बात जान रहे थे, इससे वे नन्दजी से जल्दी से घर जाने का आग्रह कर रहे थे। नन्दजी ने कहा—आज बाजार में जाना है। लाला के लिए खिलौने खरीदने हैं। कल जाऊँगा।

आप जब बाहर जाते हो, तब अपने ठाकुरजी को साथ लेकर जाइए। ठाकुरजी की सेवा-पूजा के बिना आपको चैन नहीं मिलेगा। किसी कारण से ठाकुरजी को नहीं ले जा सकते हैं तो उस दिन मानसिक पूजा कीजिए और घर जाते समय ठाकुरजी के लिए कोई सुन्दर वस्तु लेते जाइए। परमात्मा प्रसन्न हों, ऐसा कीजिए। कई लोग बाहर से आते हैं तब बच्चों के लिये मिठाई ले आते हैं। कई लोग अपनी स्त्री को प्रसन्न करने के लिये साड़ी ले आते हैं। अरे, कोई स्त्री प्रसन्न हो, पुरुष प्रसन्न हो, तो वे आपको क्या देंगे? स्त्री के पास, पुरुष के पास क्या है? घर के लोग दुःखी न हों, इसका ध्यान रखना चाहिए, पर कोई स्त्री, कोई पुरुष बहुत प्रसन्न हों, ऐसी इच्छा न रखनी चाहिए। मानव ऐसा दुष्ट है कि वह प्रसन्न भी होता है और नाराज भी होता है। एक दिन प्रशंसा करेगा, दूसरे दिन निंदा करेगा। कभी कम मिलेगा तो आज तक दिया हुआ सब भूल जायगा। किसी मानव को प्रसन्न करने इच्छा न रखिये। सोचिये कि मुझे तो परमात्मा को प्रसन्न करना है। ऐसा ही भाव मन में रखिये। कन्हैया प्रसन्न हो, ऐसा कार्य कीजिए। नंदजी बाजार में कन्हैया के लिये खिलौने खरीदने के वास्ते मथुरा में रुक गये।

श्रावण कृष्ण पक्ष चतुर्दशी के दिन पूतना प्रातः काल में गोकुल में पहुँची। पूतना चतुर्दशी के दिन क्यों आयी? तेरहवीं के दिन भी नहीं और अमावस्या के दिन भी नहीं? कैकेयी ने रामजी को चौदह वर्ष का वनवास दिया था। तेरह का नहीं और चौदह का क्यों? रावण काम प्रतीक है। वह चौदह स्थानों पर है।

इन्द्रियाणि मनोबुद्धि रस्याधिष्ठान मुच्यते।
अस्य कामस्य अधिष्ठानम् इन्द्रियाणि॥

पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार–इन चौदह स्थानों पर काम-वासना रहती है। इससे चौदह वर्षों का वनवास है। श्रीराम चौदह वर्ष वन में तप करने के बाद रावण को मारते हैं। प्रभु ने जगत् को बोध दिया है। चौदह वर्ष वन में रहकर तप करने की बहुत जरूरत है। वासना त्रास देती है, रुलाती है। चौदह वर्ष तप करने पर वासना मरती है। पूत=पवित्र और न=नहीं यानी जो पवित्र नहीं है, वह है पूतना। पवित्र क्या है? गीताजी में प्रभु ने कहा है, ज्ञान पवित्र है।

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

आत्म-स्वरूप का ज्ञान पवित्र है। उसका अज्ञान अपवित्र है। मैं शरीर हूँ इस अज्ञान से ही वासना जाग्रत होती है। वासना का मूल अज्ञान है। आप स्त्री नहीं हैं, आप पुरुष भी नहीं है। आप शुद्ध-चेतन आत्मा हैं, परमात्मा का अंश हैं, पर जब आत्मस्वरूप का अज्ञान होता है तब वासना जाग्रत होती है। कई आचार्य पूतना को अविद्या माया मानते हैं। कई कहते हैं–ना, ना, वह तो वासना है। इन्द्रियाँ धर्म-विरुद्ध विषयों में दौड़ने लगें, तब यह समझ लीजिए कि पूतना इन्द्रियों में बैठी है। आँख बिगड़े तो समझिये कि पूतना आँख में है। जो चीज खाने के लिये शास्त्र मना कर रहा है, उसे खाने के लिए जीभ ललचाने लगे तो समझ लीजिए कि जीभ में पूतना है।

ऋषियों ने प्याज-लहसुन खाने को मना किया है क्योंकि वे विकार-वासना को बढ़ाती हैं। जीव के कल्याण के लिये ऋषियों ने शास्त्रों की रचना की है परन्तु जब साहब कचहरी से घर आते हैं और पूछा जाता है कि क्या बनायें? रात्रि में क्या भोजन खायेंगे? तब साहब कहेंगे–बहुत दिन हो गये, प्याज के पकौड़े नहीं खाये हैं, वही बनाइए। यह साहब नहीं बोल रहे, साहब की जीभ में बैठी पूतना बोल रही है। जिसकी जीभ बिगड़ती है, उसका जीवन बिगड़ता है। जीवन सुधारने की इच्छा हो तो जीभ को शुद्ध रखिये। यह वासना पूतना राक्षसी है। यह ऐसी भयंकर है कि उसे जितना भी खिलाओगे, वह अधिक माँगेगी, शांत नहीं होगी। खिलाने वालों को भी यह खा जाती है। उसे तृप्ति ही नहीं होती है। मानव को लगता है कि विषयों को भोगने से शांति मिलती है, पर यह शांति क्षणिक है, बाद में तो अशांति जाग्रत होती है। मानव समझता है कि मैं विषय-सुख भोग रहा हूँ। विषय-वासना बाहर से सुन्दर दीखती है, पर भीतर से वह विष है। भागवत में शुकदेवजी महाराज ने ऐसा कहा है–

कंसेन प्रहिता घोरा पूतना बालघातिनी।
शिशूंश्चचार निघ्नन्ती पुरग्रामव्रजादिषु।। (१०-६-२)

संस्कृत भाषा में तीन वर्ष तक के बालक को शिशु कहते हैं। शेते इति शिशुः–जिसको निद्रा अधिक आती है, वह है शिशु। तीन वर्ष तक के बालक को निद्रा अधिक आती है। पूतना तीन वर्ष तक के बालक को मारती है। चार वर्ष तक के बालक को पूतना का डर लगता है। भागवत की कथा का महापुरुष अनेक रीति से वर्णन करते हैं। पूतना तीन वर्ष तक अर्थात् तीन अवस्था में जीव को त्रास देती है। जीव को वह रुलाती है। सुषुप्ति में वह बहुत त्रस्त नहीं करती है पर वह मरती नहीं है। इन तीन अवस्थाओं को पार करके, तुरीया अवस्था में जाने वालों के ब्रह्म-संबंध ठीक से होने पर पूतना त्रस्त नहीं करती है।

बड़े-बड़े ज्ञानी पुरुष ज्ञानमुद्रा से जगत् को बोध देते हैं। अँगूठा और उसके पास की उँगली जिसे तर्जनी कहते हैं–इन दोनों का संयोग ज्ञानमुद्रा है। अँगूठा ब्रह्मरूप है, तर्जनी जीवरूप है। तर्जनी का अर्थ होता है, जो डराती है वह तर्जनी। तर्जयति इति तर्जनी। तर्जनी को शास्त्र में अशुद्ध माना गया है। इस उँगली से तिलक नहीं होता है। माला करते समय इस उँगली का स्पर्श माला को अपवित्र करता है। बालक जब परेशान करता है तब माता इस उँगली को नाकपर रखकर रोकती है। अँगूठा या अन्य किसी उँगली के रखने पर रुआब नहीं पड़ता है। इस उँगली में अभिमान का निवास है। इससे इसे अशुद्ध माना है। यह जीव का प्रतीक है। अन्य तीन उँगलियाँ जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति और तीन गुण राजस, तामस और सत्त्व की प्रतीक हैं।

तीन अवस्थाओं में तीन गुणों के साथ जीव मिला है। जो जीव तीन गुणों का सम्बन्ध छोड़कर ब्रह्म सम्बन्ध जोड़ता है, तीन अवस्था से परे होकर, ब्रह्म-सम्बन्ध जोड़ता है, परमात्मा का स्पर्श करता है, उसे पूतना त्रास नहीं देती है। गीताजी में कहा है–

त्रैगुण्यविषयाः वेदाः निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।

निस्त्रैगुण्य बन जाइए। तीन गुणों से परे हो जाओ। जीव तीन गुणों में फँसा रहता है, ईश्वर से विमुख रहता है, तब पूतना त्रस्त करती है।

पूतना राक्षसी है। शृंगार करके आयी है। वासना प्रारम्भ में मन-भावनी लगती है। जिसकी आकृति बहुत सुन्दर हो, पर प्रकृति बहुत खराब हो, वह राक्षसी है। जिसका तन सुन्दर है पर मन मैला है। जिसके मुख में मिठास है पर मन में कड़वाहट है। जो स्वार्थ के कारण बाहर से प्रेम का आडम्बर करता है पर मन में वैर-भाव रखता है। जो प्रत्यक्ष में प्रशंसा करता है पर पीछे से निंदा करता है, वह पूतना है। पूतना बहुत शृंगार करके आयी है–

तां केशबन्धव्यतिषक्तमल्लिकां बृहन्नितम्बस्तनकृच्छ्रमध्यमाम्।
सुवाससं कम्पितकर्णभूषणत्विषोल्लसत्कुन्तलमण्डिताननाम्॥

(१०-६-५)

कोई व्यक्ति बाहर से भले ही सुन्दर दीख पड़े पर जब तक उसके चरित्र का विश्वास न हो जाय, तब तक उसके हाथ का पानी नहीं पानी चाहिए। मानव बाहर से जितना स्वच्छ दिखाई देता है, भीतर से वैसा है, यह शंका होती है। पूतना के वस्त्र और शृंगार से सभी को मोह हुआ। सौन्दर्य का मोह होते ही विवेक बह जाता है। ज्ञान तब टिकता नहीं है। सभी ब्रजवासियों से नन्दबाबा ने कहा था—लाला का ध्यान रखना। व्रजवासी एक-एक द्वार पर पहरा दे रहे हैं किन्तु यह अनजान-सी स्त्री भीतर चली जा रही है। फिर भी सौन्दर्य के मोह वश होकर कोई उसे रोकता नहीं है।

सौन्दर्य के मोह से विवेक बह जाता है, ज्ञान टिकता नहीं है। सभी व्रजवासियों से नन्दबाबा ने कहा था कि लाला का ध्यान रखना। व्रजवासी एक-एक द्वार पर पहरा दे रहे हैं। एक अनजान स्त्री भीतर जा रही है, पर सौन्दर्य का ऐसा मोह हुआ है कि कोई उसे रोकता नहीं है। कोई पूछता भी नहीं है कि 'तुम कौन हो? भीतर क्यों जा रही हो?' सभी होश गँवा बैठे हैं। मोह से सोचते हैं कि यह बड़े घर की है, ऐसा दिखता है। हम इससे पूछेंगे कि आप कौन हैं और भीतर क्यों जा रही हैं, तो उसे बुरा लगेगा। इस प्रकार सब उसे देखते ही रह गये और पूतना भीतर जाकर यशोदाजी से कहने लगी कि मैं मथुरा में रहने वाले एक ब्राह्मण की पत्नी हूँ। मैंने सुना है कि वृद्धावस्था में तुम्हारे घर पुत्र का जन्म हुआ है, इससे आशीर्वाद देने आयी हूँ। तुम्हारे पुत्र को मैं खिलाऊँगी। मैं उसे स्तन-पान कराऊँगी तो वह मोटा हो जायगा।

यशोदामाता बहुत भोली है। जिसका मन भोला सरल है, उसे जगत् में कहीं भी छल-कपट नहीं दिखायी पड़ता है और जो कपटी है, उसे सब कपटी ही लगते हैं। उसे कहीं साधु-संत नहीं दिखायी देते। यशोदाजी के मन में छल-कपट नहीं है। यशोदामाता पूतना को भीतर ले जाती हैं—

विबुध्य तां बालकमारिकाग्रहं चराचरात्माऽऽस निमीलितेक्षणः।
अनन्तमारोपयदंकमन्तकं यथोरगं सुप्तमबुद्धिरज्जुधीः॥

(१०-६-८)

बालकृष्णलाल पालने में विराजमान हैं। जैसे ही पूतना भीतर आयी, लाला ने आँखें बन्द कर लीं। लाला ने सोचा कि यह तन का शृंगार करके आयी है, पर इसका मन मैला है। मुझे इसका मुँह नहीं देखना है। जिसका मन मलिन है, उसका मुख नहीं देखना चाहिए। भगवान् आपको दृष्टि दें, ऐसी इच्छा हो तो भगवान् के समक्ष जाते समय मन का शृंगार करके जाइए। लोग जब मन्दिर

में जाते हैं, तब प्रायः कपड़े बदलकर जाते हैं। मन को बदलकर नहीं जाते हैं। प्रभु किसी के कपड़े नहीं देखते हैं। कपड़ों में माया होती है। आप भी किसी के कपड़े न देखिये। एक महापुरुष ने वर्णन किया है कि लाला ने आँखें बन्द कीं, इसका कारण दूसरा है। श्रीकृष्ण की आँखों में ज्ञान और वैराग्य है। भगवान् जब किसी की ओर एक बार भी प्रेम से देखते हैं, उसको संसार तुच्छ प्रतीत होता है। उसकी बुद्धि में ज्ञान का स्फुरण होता है। आप लाला से बार-बार कहना कि मुझे एकबार देखो। श्रीकृष्ण सोच रहे हैं कि आज पूतना मुझे बालक समझकर विष देने आयी है। मैं उसे दृष्टि दूँगा तो वह समझ जायगी कि यह बालक नहीं, पर काल है। यह बालक काल का भी काल है। यह तो ईश्वर है। इसे मेरे ऐश्वर्य स्वरूप का ज्ञान होगा तो वह जो कार्य करने आयी है, वह नहीं करेगी और मेरे पैर पड़ेगी। मेरी पूजा करेगी, आरती करेगी। इससे लाला ने आँखें बन्द कर लीं।

एक महात्मा कहते हैं—ना, ना, ऐसा नहीं है। भगवान् की दृष्टि पाने से क्या कहीं अचानक ज्ञान हो जाता है? दुर्योधन को प्रभु ने समझाया, फिर भी उसे कहाँ ज्ञान हुआ? लाला ने आँखें बन्द कर लीं, इसका कारण कुछ और है। प्रभु ने सोचा कि मैंने शास्त्र में नियम बनाया है कि 'स्त्री अबला है, उसे मारना नहीं चाहिये।' इस नियम का भंग मेरे ही द्वारा हो जायगा! कोई वीर पुरुष होता तो मैं आँखें खोलकर युद्ध करता, उसे मार डालता पर यह तो स्त्री है, अबला है। उसे मैं क्या मारूँ? पर इसे तो मारे बिना काम चलेगा भी नहीं। इस प्रकार लाला को क्षोभ हुआ और उसने आँखें बन्द कर ली हैं। कभी कोई काम करने की आपकी इच्छा न हो पर आपको अनिवार्य रूप से करना पड़े, तब आप आँखें बन्द कर लेते हैं।

एक महात्मा वर्णन करते हैं—नहीं, नहीं, लाला ने आँखें बन्द कर लीं, इसका कारण यह नहीं है। कारण यह है कि लाला ने सोचा कि अब मैं पूतना के प्राण चूसने वाला हूँ। तब पूतना बहुत तड़फेगी। मैं उसे मुक्ति तो देने ही वाला हूँ, पर मुक्ति से पहिले वह सिर पटकेगी, बहुत रोयेगी। मुझसे यह देखा नहीं जायगा। लाला को दया आ गयी। इससे उसकी आँखें बन्द हो गयी हैं।

एक महात्मा कहते हैं कि ना, ना, ऐसा नहीं है। ईश्वर है और वह जाग रहा है। ऐसा जिसको ज्ञान है, वह पाप नहीं कर सकता है। ईश्वर नहीं हैं और हैं तो सोये हुए हैं, ऐसा जो मानते हैं वही जीव पाप कर सकते हैं। पूतना पाप करने के लिये आयी है। लाला ने सोचा कि मैं आँखें खुली रखूँगा तो वह पाप नहीं कर सकेगी। मैं सोया हुआ हूँ, ऐसा समझेगी तो ही पाप करेगी। मैं निद्रा का थोड़ा-सा नाटक करता हूँ। इससे लाला ने आँखें बंद कर ली हैं।

एक महात्मा कहते हैं—ना, ना, ऐसा भी नहीं है। पूतना वासना है। वासना आँखों से भीतर आती है। भीतर आने के बाद ज्ञान को धक्का देती है। इससे जगत् को प्रभु ने बोध दिया है कि

मन को पवित्र रखना हो तो आँखों को पवित्र रखना। आँखें बिगड़ती हैं तो मन बिगड़ता है। आँख से ही पूतना-वासना भीतर आती है। उसे भीतर न आने देना।

एक महात्मा ने कहा है-ऐसा नहीं है। पूतना जब भीतर आयी, तब प्रभु ने आँखें बंद कर लीं, इसका कारण भिन्न है। इन वृन्दावन के साधुओं को कोई काम न था। सनातन गोस्वामी, जीव गोस्वामी, विश्वनाथ चक्रवर्ती, श्रीधर स्वामी-ये सब महान् पुरुष दशम स्कंध की लीला में पागल हो गये। लाला ने आँखें क्यों बंद कीं? दूध में उफान क्यों आया? कन्हैया क्यों हँसा? लाला ने बाँसुरी क्यों बजायी? इन सब पर ये विचार किया करते और जैसे जैसे सोचते नये-नये विचार प्रस्फुटित होते। पूतना जब आयी तब लाला की आँखें बंद करने के विषय में एक महापुरुष ने कहा है-भगवान् सोच रहे हैं कि कोई जीव मेरे पास जल्दी से नहीं आता। यह पूतना क्यों आ रही है?

जीव ईश्वर के सम्मुख जाता ही नहीं है। परमात्मा को ऐसा लगता है कि जीव मेरा अंश है पर मुझे भूल गया है। वह मेरे सम्मुख आ जाय। मानव के लिए इसीलिए तो दुःख के प्रसंग खड़े रहते हैं। दुःख का मारा मानव प्रभु के सम्मुख जायगा। आपके जीवन में भी ऐसी अनुभूति हुई होगी। जिसके साथ आप प्रेम कर रहे हैं, वह ही आपसे दगा करेगा। मित्र विश्वासघात करेगा, शत्रु जैसा हो जायगा। जिसके लिए तन-तोड़ मेहनत की है, पैसा पानी तरह बहाया है, जिसके प्रति आपको विश्वास है, वही आपके प्रति बेईमान हो जायगा। आपके लिए बुरा-भला कहेगा। आपको तब अति दुःख होगा। दुःख में जीव थोड़ा समझदार होता है। जीव को अपनी ओर खींचने के लिए ही प्रभु ऐसे प्रसंग उत्पन्न करते हैं। दुःख में जीव जगत् के समक्ष भीख माँगने जायगा, पर परमात्मा के सम्मुख नहीं जाता है। भगवान् के सम्मुख जाना सरल नहीं है, बहुत कठिन है। कोई तन से परमात्मा के सम्मुख जाना सरल नहीं है, बहुत कठिन है। कोई तन से परमात्मा के सम्मुख जाता है पर मन से नहीं जाता है। कदाचित् कोई मन से प्रभु के सम्मुख जाता है तो कह नहीं पाता कि मैं आपकी शरण आया हूँ, मैं आपका हूँ। भीतर का अभिमान उसे नम्र नहीं बनने देता। मानव में बहुत अभिमान है इससे ही वह पाप करता है। यह जीव ईश्वर के पास नहीं जाता है। अनेक जन्मों का पुण्य एकत्र होता है तब जीव परमात्मा के सम्मुख जाता है।

लाला ने सोचा-पूतना आज मेरे सम्मुख आती है। पूतना ने इस जन्म में तो कोई पुण्य नहीं किया है। उसने पूर्व जन्म में कोई पुण्य किया होगा। इसीसे मेरे सम्मुख आती है। उसने क्या पुण्य किया होगा? लाला ने आँखें बंद की हैं। लाला ने देखा-यह तो बलिराजा की पुत्री है। बलिराजा के यज्ञ में भगवान् वामनजी का रूप धारण करके भिक्षा माँगने गये थे। सात वर्ष के वामनजी महाराज बहुत सुन्दर दिख रहे थे। बलिराजा की कन्या को जब वामनजी के दर्शन हुए, तब उसके

मन में ऐसा प्रेम जाग्रत हुआ कि ऐसा बालक मेरी गोद में आ जाय तो कितना अच्छा हो, कितना सुन्दर दिख रहा है। ऐसे बालक को मैं खिलाऊँ, स्तन-पान कराऊँ। वामनजी को देखते ही बलिराजा की पुत्री के मन में वात्सल्य-भाव जागा पर जब वामनजी ने विराट स्वरूप धारण किया और बलिराजा का सर्वस्व अपहरण कर लिया, तब कन्या को बहुत बुरा लगा। वह सोचने लगी कि मेरे पिता को, कपट करके छले जाता है। इसे मारना चाहिये। एक बार गोद में खिलाने का संकल्प और फिर मारने का संकल्प। भगवान् के सम्मुख बैठने के बाद मन में बुरे विचार आने लगें तो वहाँ से उठ जाइए। वहाँ बैठना नहीं चाहिये। भगवान् के सम्मुख बैठकर जो विचार करेंगे, वे सत्य हो जायेंगे। मन में बुरे विचार आने लगें तो 'हरे कृष्ण.....' का उच्चारण करके कीर्तन कीजिए। भगवान् से कहिये कि मेरा मन बहुत बिगड़ा है। मेरे मन में बहुत बुरे विचार आते हैं। मैं अपने मन को संभाल नहीं पाता मैं आपकी शरण आया हूँ।

बलिराजा की कन्या ने वामनजी के स्वरूप को देखकर दो संकल्प किये हैं—एक, गोद में खिलाने का और दूसरा मारने का। दोनों संकल्प एकत्र हुए और बलि राजा की कन्या पूतना होकर आयी! पूतना के पूर्वजन्म के पुण्य देखने के लिये लाला ने आँखें बंद कीं।

एक महात्मा ने ऐसा लिखा है—ऐसा नहीं है। खुली आँखों से क्या लाला नहीं देख सकता? अरे, उसे तो खुली आँखों से भी सब दीख पड़ता है। ज्ञान-शक्ति प्रकट करने के लिए जीव को आँखें बंद करनी पड़ती हैं। ईश्वर की ज्ञान-शक्ति तो प्रकट ही है। लाला ने आँखें बंद की हैं, इसका कारण भिन्न है। पूतना के आने के बाद प्रभु सोचने लगे कि मैं इसे किस तरह सद्गति दूँ? इसे स्वर्ग में ले जाऊँ, बैंकुठ में ले जाऊँ या गोलोक धाम में ले जाऊँ? यह सोचते हुए लाला ने आँखें बंद कीं।

एक महापुरुष कहते हैं—ऐसा भी नहीं है। लाला ने आँखें बन्द कीं, इसका कारण भिन्न है। लाला ने सोचा कि मैं तो मथुरा छोड़कर गोकुल में आया। मैं तो मलाई-मिसरी आरोगने के लिए आया हूँ। अभी तक तो किसी ने यह किया नहीं और यह विष देने आयी है! विष पीने की आदत तो शिवजी को है। जिसके सिर पर ज्ञान-गंगा हो, उसे सबका पाचन हो जाता है। इससे लाला ने आँखें बन्द की हैं, और शंकर भगवान् का स्मरण किया। लाला शिवजी से कहने लगा—महाराज! जल्दी आइए। इस पूतना के स्तन में जितना विष है, पी जाइए। विष ही पीजिए, दूध न पीना। दूध तो मेरे लिये रखना! किसी देव को बुलाना हो तो आँखें बंद करके उनका स्मरण करना ही पड़ता है।

सनातन गोस्वामी कहते हैं—ऐसा भी नहीं है। कारण दूसरा ही है। सनातन गोस्वामी की वृन्दावन में समाधि है। घर के बहुत सुखी थे। एक बार एक ब्राह्मण के मुख से दशम-स्कंध की

कथा सुनी। भीतर से भक्ति का रंग लगा। अपने हाथों सब कुछ लुटा दिया। महाराज माटी का बर्तन और टाट की लंगोटी रखते थे। पास में और कुछ था नहीं। वृन्दावन में बैठे-बैठे सारा दिन 'राधे-कृष्ण', 'राधे-कृष्ण' नाम का एक लाख जप करते थे। मदनमोहनजी की सेवा थी। एक लाख जप पूर्ण करके माधुकरी माँगने जाते। माधुकरी में जो कुछ मिलता, उसे यमुनजी के पानी में डुबोकर ठाकुरजी को समर्पित करते। ठाकुरजी आरोगते। सनातन गोस्वामी महाराज ने भागवत पर टीका लिखी है। लाला ने आँखें बन्द कीं। उसका कारण स्पष्ट करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं कि वेदों में वर्णन है कि श्रीकृष्ण की दायीं आँख में सूर्य है, बायीं में चन्द्र है। सूर्य-चन्द्र वैष्णव हैं। उन्हें कन्हैया बहुत प्रिय है। पूतना जब विष देने आयी तब सूर्य-चन्द्र को यह बात पसन्द न आयी। वे सोचने लगे कि हमारा कन्हैया कोमल है। यह कैसी दुष्ट है कि हमारे कन्हैया के लिए माखन-मिसरी तो न लायी, पर विष लायी है! आपके किसी प्रिय को कोई विष देने आये तो क्या आप देख सकेंगे? सूर्य-चन्द्र से यह सहन न हुआ। सूर्य-चन्द्र उसे देख न सके। इससे आँखें बन्द हो गयीं।

एक महापुरुष कहते हैं कि ऐसा भी नहीं है। पूतना के आने के बाद श्रीकृष्ण आंखें बन्द करते हैं, इसका कारण यह है कि पूतना, वासना है। वासना का विनाश उपासना से होता है। उपासना अर्थात् क्या? संसार के विषयों से आँखें हटाकर, आँखें भगवान् में स्थिर करना। मन से भगवान् के चरणों में जाना ही उपासना है। उपासना में आँखें बन्द रखनी पड़ती है।

महापुरुष अनेक कारण दिखाते हैं। यशोदा मैया बालकृष्णलाल को उठाकर पूतना की गोद में रखती है। पूतना प्रेम का नाटक करती है, वात्सल्य दिखाती है। वह लाला को खिलाती है। उसने यशोदामाता से कहा—मैं तो सारा दिन आपके घर रहने वाली हूँ। आपको घर का काम करना हो तो कीजिए। यशोदामाता ने पूतना में विश्वास रखा। यशोदामाता जैसे ही भीतर जाती हैं, पूतना स्तन लाला के मुख में देती है। वह कन्हैया को स्तन-पान कराती है। लाला ने सोचा कि यह मुझे प्रेम से देती है। प्रेम से जो कुछ मिलता है, मैं स्वीकार लेता हूँ। कन्हैया धीरे-धीरे स्तन-पान करते हुए पूतना के प्राण चूसने लगा। इस तरह प्राण का आकर्षण हुआ। तब पूतना व्याकुल हुई। उसने लाला से कहा—बहुत हुआ, बहुत हुआ। बेटा! अब मुझे छोड़, छोड़ अब।

सा मुञ्च मुञ्चालमिति प्रभाषिणी निष्पीड्यमानाखिलजीवमर्मणि।
विवृत्य नेत्रे चरणौ भुजौ मुहुः प्रस्विन्नगात्रा क्षिपती रूरोद ह॥

(१०-६-११)

लाला ने मन में कहा कि तुम्हें छूटना ही था, तो मेरे पास क्यों आयीं? मैं जिसे एक बार पकड़ता हूँ उसे कभी छोड़ता नहीं हूँ।

पूतना 'छोड़-छोड़' दो बार कहती है। अस्माँल्लोकात् परांच लोकात् मुंच–मुंच वह कहती है कि पाप और पुण्य–दोनों से मुझे मुक्त कर दो। राग द्वेष से मुझे मुक्त कर दो। ममता–अहंता से छुड़ाकर मुझे अपने धाम में ले जाओ।

ये राक्षस जब स्वरूप बदलते हैं, तब उन्हें भीतर से अनुसंधान रखना पड़ता है कि मैं राक्षस हूँ। लोगों को ठगने के लिये यह स्वरूप मैंने लिया है। पूतना के प्राण जब चूसे जाने लगे, तब वह बहुत व्याकुल हुई और उसे अपने स्वरूप का अनुसंधान न रहा। असली राक्षसी स्वरूप तब प्रकट हुआ। एकदम से धमाका हुआ। पूतना लाला को लेकर आसमान में उड़ने लगी। यशोदामाता दौड़कर आ पहुँची हैं–मेरे लाला को पकड़कर यह ले जा रही है। ब्रजवासी घबरा गये हैं। ऊपर आसमान में पूतना दौड़ती है। नीचे धरती पर यशोदामाता और ब्रजवासी दौड़ते हैं।

बालकृष्णलाल पूतना के वक्षःस्थल मैं हैं। यशोदामाता थोड़ा-सा दौड़ी हैं, पर राक्षसी लाला को लिये जा रही है, ऐसा देखते ही व्याकुल होकर, रास्ते में ही मूर्च्छित होकर गिर पड़ती हैं। गोप-गोपियाँ दौड़ते हैं। धरती पर वे दौड़ रहे हैं पर दृष्टि ऊपर है, श्रीकृष्ण की ओर है। कदाचित मन में शंका हो कि ऊपर दृष्टि रखकर दौड़ने पर कोई नीचे गर्त में न गिर पड़े, किसी से टकरा न जाये? शंका उचित है। सभी की दृष्टि पूतना के वक्षःस्थल पर विराजमान श्रीकृष्ण को ही देखती है। कोई पूतना को नहीं देखता है। पूतना को देखते तो पतन होता। पूतना वासना है। जिसकी दृष्टि वासना में है, उसका पतन होता ही है पर जिसकी दृष्टि कृष्ण में स्थिर है, उसका पतन नहीं होता है।

श्रीकृष्ण एक लीला में अनेक कार्य करते हैं। पूतना को कंस राजा के बगीचे में वृक्ष पर उन्होंने गिरा दिया है। इस तरह गिराया है कि उस वृक्ष पर दूसरा वृक्ष गिर पड़े और दूसरे पर तीसरा वृक्ष गिर पड़े। लाला ने सोचा कि पूतना के अग्नि-संस्कार में लकड़ी की आवश्यकता होगी, तो पहिले से ही व्यवस्था करके रखूँ। कंस का बगीचा लाला ने वीरान कर दिया। पूतना के प्राण निकलते हैं। बालकृष्णलाल वक्षःस्थल पर विराजमान हैं। एक गोपी दौड़ कर आ पहुँची है। पूतना के वक्षःस्थल पर विराजमान लाला को वह उठा लेती है। कहती है कि यह कैसी भयंकर राक्षसी थी! यह तो नारायण की कृपा, कि पुत्र बच गया। गोकुल के ब्रजवासी ऐसा नहीं मानते कि श्रीकृष्ण पूतना को मारते हैं। वे तो ऐसा मानते हैं कि कन्हैया हमारा बालक है। कन्हैया देव नहीं है। वह परमात्मा भी नहीं है, वह तो हमारा पुत्र है। अनेक मनौतियों के बाद आया है। वह राक्षसी को कैसे मार सकता है? हम नारायण की सेवा करते हैं इससे नारायण की कृपा से बालक बच गया और राक्षसी अपने पापों के कारण मर गयी। गोकुल के ब्रजवासियों का वात्सल्यभाव है। नंदगांव के वैष्णवों का श्रीकृष्ण में सखा-भाव है। वे मानते हैं कि कन्हैया हमारा मित्र है। वृन्दावन

में माधुर्य है। द्वारकालीला में ऐश्वर्य है। द्वारिका में श्रीकृष्ण राजाधिराज हैं, गोकुल में वे बालक है। प्रेमरस लेने के लिये, प्रेम-रस देने के लिये कन्हैया बालक होकर आया है।

गोपियाँ लाला को लेकर आती हैं। रास्ते में यशोदामाता मूर्च्छा में पड़ी हैं। एक गोपी ने यशोदामाता से कान में कहा—माँ! मैं लाला को लेकर आयी हूँ। कन्हैया बच गया है। राक्षसी मर गई है। यशोदामाता मूर्च्छा से जाग्रत नहीं होती हैं। वे यशोदामाता की गोद में बालकृष्णलाल को रखती है। लाला का स्पर्श होते ही माता आँखें खोलती हैं। लाला को देखकर उन्हें आनन्द हुआ। एक-एक गोपी को वंदन करके कहने लगीं—मेरी गोद आपने भरी है। राक्षसी लाला को लेकर चली थी। मैं आप सब का उपकार कभी नहीं भूलूँगी।

गोपियों ने यशोदामाता को उलाहना दिया—माँ राक्षसी की गोद में आपने बालक क्यों दिया? माँ बाहर से जो सुन्दर दीखता है, भीतर से कभी-कभी वह राक्षस-सा होता है। जिसके चरित्र की पहिचान नहीं है, उसके कपड़ों को देखकर विश्वास न करना चाहिये। माता ने कहा—मेरी बुद्धि नष्ट हो गयी थी। बालक पहला ही है, इससे बालक के लालन-पालन का तरीका मैं जानती ही नहीं हूँ।

गोपी ने कहा—माँ अब कोई आये तो कन्हैया को उसकी गोद में न देना। आज तो नारायण की कृपा हुई। माँ, राक्षसी के स्पर्श से लाला को नजर लगी होगी। लाला की नजर उतारियें। यशोदामाता बहुत भोली है। माता को अभी तक नजर उतारने का मंत्र भी नहीं आता है। एक गोपी बालकृष्णलाल को उठाकर गौशाला में ले गई।

नंदबाबा के घर में अनेक गायें हैं। उनमें से एक का नाम गंगी। गंगी गाय का दूध लाला को बहुत भाता है। गंगी गाय को कन्हैया बहुत प्यारा है। गंगी गाय का ऐसा नियम था कि बालकृष्णलाल के दर्शन के बिना वह पानी नहीं पीती थी, खाना तक नहीं खाती थी। ग्वाल जब दूध दूहने जाते तब एक बूँद भी दूध न निकलता। गंगी गाय 'हम्म, हम्म'— कहकर पुकारती। मानो कह रही हो कि लाला को जगाइए, मुझे दर्शन करने हैं। यशोदामाता लाला को जगाकर गौशाला में ले आती। कन्हैया सुबह सर्वप्रथम गायों के दर्शन करते। यशोदामाता की ऐसी भावना थी कि गायों के आशीर्वाद से ही पुत्र हुआ है। अन्यथा पचपन वर्ष की उम्र में मुझे पुत्र हो, ऐसी मुझे आशा न थी। इससे कन्हैया के जाग्रत होने के साथ ही माता उसे गौशाला में ले आती हैं। बालकृष्णलाल के दर्शन होते ही गंगी गाय को बहुत आनंद होता। दूध की धारा उसके थनों से बहने लगती। गायों का ऐसा नियम था कि कन्हैया के दर्शन के बिना पानी भी न पीती थीं कई व्यक्ति मंगला के दर्शन का नियम लेते हैं पर घर में चाय-पानी, जलपान करके; झूमते हुए दर्शन के लिये जाते हैं।

जो लोग दर्शन नहीं करते, उनकी तुलना में तो अच्छा ही है। पर पेट की पूजा प्रथम है कि परमात्मा के दर्शन प्रथम हैं? पेट में कुछ डालने के बाद रजोगुण आता है। पेट अगर हल्का हो तो सात्विक भाव तुरंत जाग्रत होता है। पेट एकदम शुद्ध होता है, तब मन भक्ति रस में आर्द्र हो जाता है। उस समय पर ध्यान कीजिए, भक्ति कीजिए।

गोपी नजर उतारने के लिए बालकृष्णलाल को गंगी गाय के पास ले आयी। उसने गंगी की पूँछ को हाथ में लेकर तीन बार लाला के चरणों से मुख तक सर्वांग में घुमाया। गोपी मंत्र बोल रही थीं–मेरे लाला को किसी की नजर लग गयी हो ग्रह की बाधा हो, बाहर की कुछ बला लग गयी हो तो निकलकर इस गंगी गाय की पूछ में आ जाय! मेरा कन्हैया प्रसन्न हो। वह आनन्द में रहे।

लाला की नजर उतारकर गोपी ने कहा–माता! अब आप लाला को स्नान कराइये, उसे राक्षसी का स्पर्श हुआ है।

गोमूत्रेण स्नापयित्वा पुनर्गोरजसार्भकम्।
रक्षां चक्रुश्च शकृता द्वादशांगेषु नामभिः॥ (१०-६-२०)

लाला को गाय का गोवर मला गया। गाय के गोबर में अनेक जन्तुओं को मारने की शक्ति होती है। लाला को मांगलिक स्नान करवाया। बाद में यशोदामाता लाला को गोद में लेकर बैठी। गोपियाँ उनके चारों ओर बैठ गयीं। ये गोपियाँ ऋषि-रूपा हैं। बड़े-बड़े ऋषि हजारों वर्ष तक तपस्या करते हैं, पर उनकी बुद्धि से काम निकलता नहीं है। काम बुद्धि में घर करके बैठा है। हम परमात्मा से मिलेंगे, हमें ब्रह्म-स्पर्श होगा। हमारी बुद्धि से काम निकल जायगा–इस तरह का अभिमान छोड़कर ये ऋषि, गोपी रूप धारण करके आये हैं। ऋषि होने के बाद गोपी हो सकते हैं। गोपियाँ कोई साधारण नहीं हैं। वे अनेक जन्मों के ऋषि हैं, इससे उन्हें मंत्रों का ज्ञान परिपूर्ण है। वे एक-एक मंत्र बोलती हैं–

अव्यादजोऽङ्घ्रि मणिमांस्तव जान्वथोरू यज्ञोऽच्युतः कटितटं जठरं हयास्यः।
हृत् केशवस्त्वदुर ईश इनस्तु कण्ठं विष्णुर्भुजं मुखमुरुक्रम ईश्वरः कम्॥
(१०-६-२२)

आज भगवान् तुम्हारे चरणारविंद का रक्षण करें, मणिमान भगवान् तुम्हारी जंघा की रक्षा करें। विष्णु भगवान् तुम्हारे हाथों का रक्षण करें, जनार्दन वासुदेव तुम्हारे कंठ की रक्षा करें। श्रीवामनजी महाराज मुखारविंद का रक्षण करें–

क्रीडन्तं पातु गोविन्दः शयानं पातु माधवः। (१०-६-२५)

मेरा कन्हैया खेलने जाय, तब गोविंद भगवान् उसकी रक्षा करें। मेरा कन्हैया जब सोये तब हे माधवराय! आप उसकी रक्षा करना।

मेरे लाला को कोई स्वप्न न आये। बालक घबराये नहीं। उसे प्रगाढ़ निद्रा आ जाय। हे, माधवराय! मैं आपके चरणों में बारंबार वंदन करती हूँ। मेरे लाला का रक्षण कीजिए। गोपी नहीं जानती कि जिस माधवराय को वह मना रही है वही माधवराय यशोदाजी की गोद में विराजमान है।

चरणों से मुखारविंद तक के लाला के सर्वांग को गोपी धीरे-धीरे सहला रही है। आदिनारायण परमात्मा के नाम का कीर्तन करती हुई सखियाँ परमात्मा को मना रही हैं—मेरे लाला का सर्वकाल में रक्षण करना।

गोपियाँ कहती हैं—माँ, बालक के पेट में डर होगा तो वह दूध नहीं पी सकेगा। आप लाला को स्तनपान कराइये। यशोदामैया लाला को हृदय का प्रेम-रस अर्पण करती है। माता का हृदय प्रेम से द्रवित होता है, तब प्रेम ही दूध बनकर बाहर निकलता है। इस दूध को गर्म करने की जरूरत नहीं है, न इसमें पानी डालने की जरूरत होती है। प्रेम ही दूध बन जाता है। स्तनपान करते हुए, लाला की आँखें बन्द हो गयी हैं। यशोदा मैया लाला को पालने में सुलाकर झुलाती हैं। उसी समय मथुरा से नंदबाबा आ गये हैं। सुना था कि राक्षसी आयी थी। इससे नंदबाबा घबराये हुए हैं। लाला को स्वस्थ देखकर प्रसन्न हुए। पूतना के शरीर का अग्नि-संस्कार किया गया। तब चिता से अगर चंदन की सुगन्ध आने लगी है। पूतना को प्रभु ने सद्गति दी है।

योगी कल्पना से परमात्मा का स्वरूप हृदय में धारण करके ध्यान-दर्शन करते हुए, तन्मय होते हैं। परमात्मा को मन से स्पर्श करने वाले योगियों को सद्गति मिलती है। आज पूतना के वक्षःस्थल में प्रत्यक्ष परमात्मा विराजमान थे। तब पूतना को सद्गति मिल गई, तो क्या आश्चर्य है? श्रीकृष्ण की मार में भी प्यार है। विष देने वाली पूतना को भी श्रीकृष्ण मुक्ति देते हैं। फिर प्रेम से माखन-मिसरी खिलाने वाले को कन्हैया क्या न देगा?

य एतत् पूतनामोक्षं कृष्णस्यार्भकमद्भुतम्।
शृणुयाच्छ्रद्धया मर्त्यो गोविन्दे लभते रतिम्॥ (१०-६-४४)

पूतना-चरित्र पढ़ने-सुनने के बाद इसका मनन कीजिए। पूतना वासना है। वासना ही भक्ति में बहुत बिघ्न लाती है। वासनारूपी राक्षसी भयंकर है। निरन्तर भक्ति करने की आदत डालिये। साधारण भक्ति को—ज्ञान को पूतना धक्का मारकर हटा देती है। जो व्यक्ति नित्य हरि-स्मरण में लीन रहता है, वही वासना का विनाश कर सकता है। वासना के विनाश के बाद ही भक्ति में आनंद आता है।

५३- मंगला-दर्शन

कदाचिदौत्थानिककौतुकाप्लवे जन्मर्क्षयोगे समवेतयोषिताम्।
वादित्रगीतद्विजमन्त्रवाचकैश्चकार सूनोरभिषेचनं सती॥

(१०-७-४)

श्रीकृष्ण-लीला निरोध-लीला है जिसके मन का निरोध हुआ है, उसे मुक्ति जैसा ही आनन्द मिलता है। मन में विरोध हो या मन में कोई वासना हो तो मन का निरोध नहीं होता है। दीपक में जब तक तेल होता है तब तक वह जलता है, उसी तरह मन में जब तक वासना रहती है, तब तक मन अशांत रहता है।

शुकदेवजी महाराज राजर्षि को सावधान करते हैं। श्रीकृष्ण-लीला प्रभु का बहुत बड़ा अनुग्रह है। आनंदमय परमात्मा का कोई स्वार्थ नहीं है। भगवान् हमारे लिये लीला करते हैं। गोपियों को मृत्यु से पहिले मुक्ति का आनन्द देने के लिये गोकुल की लीला है। भागवत की कथा ऐसी नहीं है कि मरने से ही मुक्ति मिलती है। भागवत की कथा में ऐसी शक्ति है कि मानव को मरण के पहिले ही मुक्ति जैसा आनन्द देती है। गोपियों को परमानन्द का दान देने के लिये ही प्रभु ने यह लीला की है। आज हजारों वर्षों के बाद भी श्रीकृष्णलीला-स्मरण से ऐसा आनन्द मिलता है तो गोपियों को प्रत्यक्ष एक-एक लीला के दर्शन करते हुए कितना आनन्द मिला होगा।

इन्द्रियों की शक्ति संसार के विषयों में बह जाती है। संसार के विषयों में बह जाने वाली शक्ति को विवेक से रोक कर प्रभु के मार्ग में ले जाइए। शक्ति का उपयोग भक्ति के लिये कीजिए। प्रत्येक इन्द्रिय में दिव्य शक्ति है। मानव शक्ति को नष्ट कर देता है। वह शक्ति का दुरुपयोग करता है, इसलिए दुःखी होता है। शक्ति का सदुपयोग महान पुण्य है। आपकी आँखों में बहुत-सी शक्ति है। इस शक्ति का दुरुपयोग न होना चाहिये। साधारण मानव ऐसा समझता है कि इन्द्रियों के स्वामी विषय हैं पर वे उनके सच्चे पति नहीं है। श्रीकृष्ण का नाम है हृषि अर्थात् इन्द्रिय और ईस अर्थात् स्वामी। इन्द्रियों के स्वामी परमात्मा श्रीकृष्ण का नाम है। कान को शब्द सुनाई दे तो निद्रा नहीं आती है। आँखों को सुन्दर रूप दिखाई देता है, तो निद्रा नहीं आती है। ये इन्द्रियाँ रूप, रस, शब्द, स्पर्श और गंध आदि विषयों को छोड़ देती हैं, तब अंतर्यामी के साथ सो जाती हैं और तब ही निद्रा आती है। जब ये इन्द्रियाँ परमात्मा की ओर उन्मुख नहीं होती हैं, तब विषय इन्हें अपनी ओर खींचते हैं। आँख का परमात्मा के साथ विवाह कर दो। जहाँ बैठे हो वहाँ बैठे-बैठे ठाकुरजी के स्वरूप का दर्शन करो। आपकी दृष्टि ठाकुरजी से दूर न जाय, ऐसा निश्चय कर लो।

प्रभु ने ऐसा दिव्य स्वरूप प्रकट किया कि ठाकुरजी के दर्शन के बाद गोपियों को अब अन्य किसी को देखने की इच्छा नहीं होती है। श्रीकृष्ण अति सुन्दर हैं। अपने अति सुन्दर अलौकिक सौंदर्य से प्रभु ने गोपी का आकर्षण किया है। कन्हैया ऐसी सरस बाँसुरी बजाता है कि लाल की बाँसुरी सुनने के बाद गोपियों की और कुछ सुनने की इच्छा ही नहीं होती है।

यह तो बहुत अच्छा है कि आप लाला की कथा सुन रहे हैं और अभी तक बाँसुरी नहीं सुन रहे हैं। सचमुच ही जब आप कृष्ण की बाँसुरी सुनेंगे तो आपको घर में रहना नहीं भायेगा। जो लाला की बाँसुरी सुनता है, उसे लाला से मिलने की तीव्र इच्छा होती है। सोचता है कि यह मधुर नाद कहाँ से आया? जिसके कानों में स्वर आते हैं वे पागल से हो जाते हैं।

बड़े-बड़े ज्ञानी परमहंस ॐकार का जप करते हैं, ज्योतिर्मय ब्रह्म का ध्यान करते हैं। मैं ब्रह्म हूँ—ऐसी भावना के साथ ब्रह्म-चिंतन करते हुए तन्मय होते हैं। उनके कानों में जब वंशी के स्वर पहुँचते हैं, तब वे भी निराकार का ध्यान छोड़ देते हैं। श्रीकृष्ण उनके मन का आकर्षण करते हैं—

योगिनामपि चेतांसि हरतीति हरिः

लाला की बाँसुरी सुनने के बाद महान् परमहंस निराकार के ज्ञान को, निराकार ब्रह्म के ध्यान को छोड़कर नराकार श्रीकृष्ण के दर्शन और मिलन के लिये उत्कंठित होते हैं। लाला की बाँसुरी में ऐसी ही शक्ति है। बड़े-बड़े राजाओं को लाला की बाँसुरी सुनने के बाद राजमहल में रहना पसंद नहीं आता है। उन्हें संसार के सभी सुख तुच्छ प्रतीत होते हैं श्रीकृष्ण-मिलन की तीव्र उत्कंठा उनके मन में जागती है। वे पागल से राधे कृष्ण-राधे कृष्ण... कीर्तन करते हुए श्रीधाम वृन्दावन में जाते हैं। लाला ने वंशी से कानों का आकर्षण किया है लाला की वंशी सुनने के बाद और कुछ सुनने की इच्छा नहीं होती है।

लाला ने अलौकिक सौंदर्य से गोपियों की आँखों का आकर्षण किया है। वंशी से गोपियों के कानों का आकर्षण किया है। अलौकिक लीलाओं से गोपियों के मन का आकर्षण किया है। गोपियाँ मुझे देखें, मुझे सुनें, मन में रख लें। गोपियाँ मेरी ही बातें करें। प्रभु ने परमानन्द का दान देने के लिये लीला की है। श्रीकृष्ण-लीला में ऐसी शक्ति है कि इसके द्वारा अनायास जगत् भुलाया जाता है। किसी भी निमित्त से जगत् को भूल ही तो जाना है। परमात्मा के दर्शन में, स्मरण में तन्मय होना है। बड़े-बड़े योगी प्राणायाम, प्रत्याहार करते हैं। नाक पकड़कर बैठे रहते हैं। जितने समय तक वे प्राणायाम करते हैं। उनका मन शांत रहता है। प्राणायाम छोड़ने पर मन पुनः कूद-फाँद करता है। यह मन कुत्ते की पूँछ के समान है। कुत्ते की पूँछ को नली में रखेंगे तब तक सीधी रहेगी पर नली से बाहर निकालेंगे कि वह टेढ़ी हो जायेगी।

शुकदेवजी महाराज गोपियों की प्रशंसा करते हैं। खुली आँखों से गोपियों का मन शांत रहता है। गोपियाँ नाक नहीं पकड़ती हैं, प्राणायाम-प्रत्याहार नहीं करती हैं। अनायास ही उनके मन का निरोध होता है। श्रीकृष्ण-लीला में ऐसी शक्ति है। सभी इन्द्रियाँ भगवान् की ओर उन्मुख हों, इसलिये भगवान् ने कृपा करके यह लीला की है। गोपियों का ऐसा नियम था कि मंगला के दर्शन करने के लिये वे जाती थीं। मंगला के दर्शन अंधेरे में हों तो अति उत्तम है। अंधेरे में दर्शन का अर्थ यह है कि किसी मानव के मुख को देखने से पहिले भगवान् का बराबर दर्शन कीजिए।

दर्शन वे ही करते हैं जो भगवान् को अपने हृदय के भीतर उतारते हैं। दर्शन करने जाने वालों से पूछिये कि आज ठाकुरजी के वस्त्र कैसे थे? शृंगार कैसा था? वे तो सिर खुजलाने लगेंगे। उनको न तो सिर की सुध रहती है, न पाँवों की। भगवान् के दर्शन इस तरह से कीजिए कि स्वरूप आँखों में से भीतर आकर बस जाय। आज के बाद जब कल दर्शन करने जायें तब तक वही स्वरूप आँखों के समक्ष प्रत्यक्ष रहे, कभी ओझल न हो।

गोपियों की आदत है कि श्रीकृष्ण के दर्शन के बिना उन्हें कहीं चैन नहीं आता है। कई व्यक्तियों को सुबह गर्म पानी नहीं मिलता तो चैन नहीं आता। आप सब प्रभु के प्यारे हैं। सब वैष्णव हैं। भले ही चाय पीजिए पर चाय के गुलाम न बनिये। निरंतर निष्ठा रखिये कि मैं वैष्णव हूँ। मैं भगवान् का दास हूँ। मैं भगवान् के आधीन हूँ। गोपियों को सुबह जाग्रत होने के साथ कन्हैया याद आता है। शय्या में से जाग्रत होने के बाद आपको क्या याद आता है?

कई लोग ऐसे हैं कि जाग्रत होने के साथ उन्हें याद आता है कि पैसे के लिए कहाँ-कहाँ जाना है? पैसे कहाँ से आयेंगे? शय्या में प्रभु का स्मरण कीजिए। जागने के साथ ही, उस क्षण में प्रभु के दर्शन कीजिए, स्मरण कीजिए। गोपियाँ दर्शन के लिए उत्कंठित होकर दौड़ती हैं। यशोदाजी ने कहा—अरी सखी, अभी तो अंधेरा है। इस समय तुम आयी हो? गोपी कहती है कि माँ मुझे लाला के दर्शन के बिना चैन नहीं आता है। इससे लाला के दर्शन करने आयी हूँ। यशोदाजी ने कहा—अंरी सखी! अभी तो कन्हैया निद्रा में है। अभी आधा घंटा उसे आराम करने दे, बाद में मैं लाला को जगाऊँगी। कन्हैया तो आँखें बंद रखकर माँ और गोपी की सारी बातें सुन रहा है।

श्रीकृष्ण नाटक करने में बहुत चतुर हैं। लाला का नाम है नटवर गोपाल। नाटक में काम करने वालों का असली स्वरूप तो भिन्न ही होता है और जगत् को वे भिन्न स्वरूप दिखाते हैं। नाटक देखने वालों को यह अभिनय भुलाता है। श्रीकृष्ण परमात्मा हैं पर वे ऐसा नाटक करते हैं कि ना, ना, मैं देव नहीं हूँ, मैं तो यशोदा माता का पुत्र हूँ। माता ऐसा मान रही है कि कन्हैया निद्रा में है। सचमुच ही अगर श्रीकृष्ण सो जायें तो जगत् में जाग्रत कौन रहेगा? वे तो सोचते हैं कि मेरी माता

की इच्छा कि मैं अभी आधा घंटा आराम करूँ। इसी से लाला आधा घंटा आँखें बंद रखता है, नाटक करता है। गोपियाँ पालने के चारों ओर खड़ी हैं। एक-एक श्रीअंग में वे आँखें स्थिर करती हैं।

गंगातट पर शुकदेवजी महाराज संत-समाज में किसी ग्वालिन की कथा करने नहीं बैठे हैं। गोपी मात्र ग्वालिन नहीं है। गोपी भक्ति-संप्रदाय की आचार्या हैं। गोपी जगत् को समझा रही हैं कि भक्ति किस तरह से की जाती है। भक्ति करना अर्थात् क्या करना? भगवान् के स्वरूप में आसक्ति को भक्ति कहते हैं। संसार में आसक्ति ही माया है। परमात्मा के स्वरूप में मन और आँखें आसक्त बनती हैं, वही भक्ति है। जिसे संसार में सौंदर्य दीख पड़ता है, वह भगवान् की भक्ति उचित रूप से नहीं करता है। वह तो संसार की भक्ति करता है। जिसे ऐसी प्रतीति हुई है कि मेरे श्रीकृष्ण अति सुन्दर हैं, वही भगवान् की भक्ति करता है। ठाकुरजी के एक-एक स्वरूप में मन को; आँखों को स्थिर कीजिए, तब ही भक्ति हो सकेगी। गोपी भगवान् के चरणों में आँखें रखती हैं। एक गोपी कहती है कि अरी सखी, लाला के चरण मुझे बहुत भाते हैं। उन्हें सहलाने की इच्छा होती है। तुम देखो, उसके तलवे कितने लाल हैं। लाला के नाखून रत्न-से हैं। लाला की उँगलियाँ बहुत सुन्दर हैं। इस चरण में कमल का चिह्न है, स्वस्तिक का चिह्न है। इस प्रकार दास्य भाव में भक्त भगवान् के चरणों में ही दृष्टि रखते हैं। हनुमानजी दास्य भक्ति के आचार्य हैं। एक सखी कहती है कि अरी सखी, लाला के चरण तो अति सुन्दर है, पर मुझे लाला का वर्ण भी बहुत प्रिय लगता है। मेघ-सा इनका श्रीअंग है। एक गोपी कहती है कि लाला के मुखारविंद के दर्शन के बिना मुझे चैन नहीं आता है। जिनका सख्य भाव है, वात्सल्य भाव है, उसे मुख देखे बिना संतोष नहीं होता है। एक गोपी कहती है कि लाला की आँखें कैसी हैं। एक अन्य गोपी कहती है कि लाला के बाल कितने सुन्दर हैं।

श्रीकृष्ण के एक-एक अंग में आँखों और मन को स्थिर कीजिए। संसार के ध्यान से मन बिगड़ा है, परमात्मा के स्वरूप का ध्यान करने से वह सुधरता है। भगवान् के एक-एक अंग में आँखों और मन को स्थिर करके, प्रभु के स्वरूप में आसक्त होने पर भक्ति होती है। भक्ति करना सरल नहीं है। अपने मन को बारम्बार समझाइए कि संसार सुन्दर नहीं है, श्रीकृष्ण अति सुन्दर हैं। ये पुष्प अभी सुन्दर लगते हैं, दो-चार घंटों के बाद मुरझा जायेंगे। पुष्प के मुरझाने के बाद पुष्प में सौंदर्य नहीं दिखाई देता। फिर लोग उसे उठाकर फेंक देते हैं। जिस तरह पुष्प मुरझाते हैं, उसी तरह सारा जगत् मुरझा जाता है। नित्य-सुन्दर एक परमात्मा श्रीकृष्ण ही है।

गोपियाँ लाला के दर्शन में तन्मय हुई हैं। उसी समय लाला ने करवट बदलना प्रारंभ किया। उसे देखकर गोपियों को अतिशय आनंद हुआ। एक गोपी दौड़ती हुई यशोदामाता के पास पहुँची

और बोली कि लाला ने करवट ली है। मैंने अपनी आँखों से देखा। यशोदामाता को अति आनन्द हुआ। अभी तो कन्हैया दो-तीन महीनों का है और करवट बदल रहा है। मुझे उत्सव करना है।

घर में ठाकुरजी को प्रतिष्ठित करने के बाद रोज-रोज उत्सव कीजिएगा। ठाकुरजी के नाम हैं–नित्योत्सव-नित्यश्री। भगवत-स्मरण में तन्मय होने के लिये उत्सव है। उत्सव जगत् को भुलाने के लिये है। उत्सव के दिन जगत् भुलाया जाता है, भूख-प्यास भुलाई जाती है, देह का बोध भुलाया जाता है, तब ही उत्सव सफल होते हैं। उत्सव में धन गौण है, मन मुख्य है।

परमात्मा को धन की जरूरत नहीं है। परमात्मा जीव से प्रेम माँगते हैं और प्रेम देते हैं। जो अतिशय गरीब है, वह भी उत्सव कर सकता है। लाला को प्रसन्न रखने के लिए उत्सव कीजिए। भगवान् ने आपको धन दिया हो, तो उत्सव में थोड़ी सामग्री बनाइए। भगवान् को भोग लगाइए। किसी गरीब को बुलाइए और लाला का प्रसाद उसे दीजिए। कई लोग उत्सव मनाते हैं। दो सेर, पाँच सेर का मोहनथाल बनाते हैं पर किसी गरीब या ब्राह्मण को नहीं खिलायेंगे। कई लोग अपने साढू भाई को बुलाते हैं। कई व्यक्ति अपने संबंधियों को ही बुलाते हैं और घर के लोग इकट्ठे होकर खाते हैं। यह क्या उत्सव कहा जा सकता है? इसे तो 'व्यवहार-क्रिया' कहते हैं। किसी साधु-संत, किसी गरीब को बुलाइए और लाला का प्रसाद उन्हें दीजिए। भगवान् गरीब के मुँह से आरोगते हैं। ग्वाले बहुत गरीब थे, इससे कन्हैया उन्हें बहुत चाहता था। गरीब की पूजा होती है तब कन्हैया बहुत प्रसन्न होता है। आप गरीब की पूजा कीजिए। गरीब का सम्मान कीजिए और फिर लाला के दर्शन कीजिए। तब कन्हैया धीरे-धीरे होठों में हँसता हुआ दीखेगा। लाला को यह बहुत अच्छा लगता है। यशोदा माता ने निश्चय किया कि आज मुझे ग्वालों की पूजा करनी है। आज उत्सव करना है। आज कन्हैया ने करवट ली, आज के उत्सव का नाम है–अंग-परिवर्तन उत्सव। यशोदा माता कैसा सुन्दर बोलती हैं। यशोदामाता ने नहीं कहा कि गोपियाँ गरीब हैं, मैं उनकी मदद करना चाहती हूँ। यह जीव लक्ष्मी का पुत्र है। लक्ष्मी माता हैं और नारायण पिता हैं। लक्ष्मीपुत्र का कोई अनादर करता है तो प्रभु को बहुत बुरा लगता है। वे सोचते हैं कि जीव मेरा पुत्र है, उसे गरीब कहने वाले तुम कौन हो?

गरीब का अनादर न कीजिए। यशोदामाता कहती हैं कि मुझे ग्वालों की पूजा करनी है। 'समागतान् व्रजौकस: पूजयती। जो ऐसा समझता है कि मैं गरीबों की मदद करता हूँ, तो यह कथन उसके अभिमान का है। उसका अभिमान बढ़ जाता है। गरीब तो उसे हाथ जोड़ते हैं, उसका आभार मनाते हैं। गरीब की पूजा करने वाले को आशीर्वाद मिलते हैं, मदद करने वाले को आभार मिलता है। आप गरीब की पूजा कीजिए, आपको आशीर्वाद मिलेंगे। "मैं" भाव, अभिमान मर जाय, हृदय

में कोमल भाव जाग्रत हों तो मानना कि दान सफल है। कई व्यक्ति गरीब को देते हैं, पर घंटे-दो-घंटे बैठाने के बाद देते हैं। उससे कहा जाता है कि साहब अभी काम में हैं। इन बड़े साहब को झूठ बोलते हुए भगवान् का भी डर नहीं लगता है। साहब कुछ काम में नहीं है, वे तो बीबी के साथ गप्पें लड़ा रहे हैं। देने वाला अभिमान में रहता है, पर देने वाला बड़ा नहीं है। लेने वाला छोटा नहीं है। देने वाला परमात्मा का स्वरूप है, लेने वाला भी परमात्मा का स्वरूप है। गरीब में परमात्मा के दर्शन कीजिए। गरीब की पूजा कीजिए। जीवन में दस वर्ष भाग्योदय के होते हैं। उस समय प्रभु का स्मरण करके विवेक से व्यय करेंगे, तो वह सब वापस मिलेगा। भाग्य प्रतिकूल हो जाने के बाद लक्ष्मी नहीं रहेगी। धन कमाना कठिन नहीं है। विवेक से सत्कर्म में व्यय करना कठिन है।

भाग्य अनुकूल है, तब अपने हाथों से बहुत दीजिए। लक्ष्मी का सदुपयोग कीजिए। लक्ष्मीं माता है, जीव पुत्र है। माता का उपयोग कीजिए। जहाँ लक्ष्मी का सदुपयोग होता है, वहाँ लक्ष्मीजी अखण्ड भाव से विराजती हैं। नंदबाबा के घर लक्ष्मीजी पधारी हैं। नंदबाबा ने कहा कि पुत्र बहुत भाग्यवान है। नंदबाबा उदारता से सब लुटाते हैं।

५४- जीवन की गाड़ी को संभालिये

उत्सव में माँ ने सभी को निमंत्रण दिया है माँ सोच रही हैं कि बहुत-से लोग आयेंगे। मैं एक-एक की पूजा करना चाहती हूँ। यह कन्हैया जागता है तो मुझे छोड़ता नहीं है। यह सो जाय तो अच्छा है। घर का मुख्य व्यक्ति किसी को मान दे, और दूसरा कोई मान दे, उसमें बहुत फर्क होता है।

यशोदामाता की ऐसी भावना है कि मैं स्वयं एक-एक व्यक्ति की पूजा करूँगी। बालकृष्णलाल को पता चला कि माँ आज ग्वालों-गोपियों की पूजा करने वाली है। कन्हैया प्रसन्न हुआ। माँ की इच्छा है कि कन्हैया सो जाय तो अच्छा है। लाला ने ऐसी लीला की, कि आँखें बंद करके सो गया। यशोदामाता बहुत खुश हुईं कि पुत्र बहुत अच्छा है। कहती हूँ कि सो जाओ, सो जाता है। जगाती हूँ तो जाग जाता है। ऐसा बालक कभी हुआ नहीं है न कभी होगा।

कन्हैया बालक है? उसे बालक होना भी आता है और प्रतिकूल प्रसंग पर पिता होना भी आता है। वह आपकी रक्षा करेगा। वह सभी का पिता है, सभी का पुत्र है। वह अति उदार है। वह प्रेम भरा है। आप जब जगायेंगे वह जागेगा। कई लोग ऐसे हैं कि कभी सुबह सात बजे सेवा करते हैं तो कभी दस बजे सेवा करते हैं। पर कन्हैया कहता है कि मैं आपके हाथों में हूँ। जब जगायेंगे, जागूँगा और जब सुलायेंगे, सो जाऊँगा। सेवा का एक समय निश्चित कीजिए और उसी समय नियमित सेवा कीजिए।

माता की इच्छा के अनुसार बालकृष्णलाल निद्रा में हैं। माता ने सोचा कि आज बहुत से लोग आयेंगे, इससे लाला का यह पालना बाहर रख दूँ, इससे घर में बहुत जगह हो जायगी। बाहर एक बैल गाड़ी थी उसके तले माँ ने पालना रख दिया। पालने में बालकृष्णलाल सोये हैं। गोपियाँ आ रही हैं। यशोदा मैया एक-एक का पूजन करती हैं। पटड़े पर बैठाकर आदर के साथ भेंट देती हैं। लेने वाला भगवान् का स्वरूप है, ऐसा भाव रखकर वे देती हैं, पूजा करती हैं, चंदन की अर्चा करती हैं। कुमकुम का तिलक करती हैं, पुष्प की वेणी देती हैं, साड़ी देती हैं। जब कोई गोपी अकेली आती है तो माँ कहती हैं कि अकेली क्यों आयी हो? तुम्हारे बालक की भी पूजा करनी है। तुम घर जाकर बालक को ले आओ। इससे गोपी दौड़कर घर जाती है और बालक को लाती है। यशोदा माता पूजा करती हैं, तिलक करती हैं, गले में मोती की माला पहिनाती हैं, और सिर पर हाथ रखकर कहती हैं कि बेटा, तुम चिरायु होओ, सुखी रहो। बालक की पूजा से माता प्रसन्न होती है। यशोदामाता ने बालक के गले में मोती की माला पहिना दी गोपी की जीभ नहीं बोल रही, गोपी का हृदय बोल रहा है। बालकृष्णलाल की जय–वह हृदय से बोलती है और हृदय से ही आशीर्वाद देती है। लाला का जय जयकार करती है।

इस ओर पालने में सोये बालकृष्णलाल जागे हैं। उन्होंने देखा कि मेरी माता ने मुझे बैल गाड़ी के तले रखे दिया है। मेरी माता मेरा ही उत्सव कर रही है और मुझे ही उसने बाहर निकाल दिया है। लाला को यह अच्छा न लगा। उत्सव भगवान् में तन्मय होने के लिये है। उत्सव अंतर्मुख होने के लिये है। भीतर का आनन्द न मिले तो उत्सव उचित नहीं है। कई लोग उत्सव करते हैं पर उनका मन बाहर भटकता है। सोचते हैं कि कितने लोग आये हैं? कहाँ से आये हैं? अरे, जगत का स्मरण करने के लिये उत्सव नहीं है। भगवान् में तन्मय होने के लिये उत्सव है, देह-भान भूलने के लिये उत्सव है भगवान् भुलाये जायँ, ऐसा उत्सव किस काम का? यशोदामाता गोपियों के साथ बातें कर रही हैं। कन्हैया रो रहा है पर माता ने सुना नहीं।

कंसराजा का भेजा हुआ शकटासुर नाम राक्षस आया है। वह पूतना का भाई है। इस शकटासुर ने सोचा कि पूतना को मारने वाला, पूतना का काल यही बालक है। अभी वह बैलगाड़ी के तले सोया है। मैं बैलगाड़ी पर चढ़कर जोर से दबा दूँ तो पूतना का काल मर जायगा। ऐसा सोचकर वह बैलगाड़ी पर चढ़ गया। रोते-रोते ही बालकृष्ण की दृष्टि ऊपर गई। लाला ने देखा कि शकटासुर राक्षस बैठा है। लाला ने सोचा कि आज कंस मामा ने नया खिलौना भेजा है। मामा हैं और मामा ही खिलौने भेजते हैं न! कंस मामा खिलौने भेजते हैं और लाला एक-एक कर के तोड़ देता है। आज कंस मामा ने यह खिलौना भेजा है। बालक की प्रकृति है वह रोते-रोते पैर उछालता

है। लाला ने रोते-रोते पैर ऐसे उछाला कि शकटासुर को लात लगी। बैलगाड़ी को ठोकर लगी। कट्-कट्-कट् शब्द हुआ। बैलगाड़ी नीचे गिर पड़ी है। बड़ा धमाका हुआ गोप-गोपियाँ दौड़कर आ पहुँचे। कहने लगे कि क्या हुआ? क्या हुआ? इतनी बड़ी बैलगाड़ी नीचे गिर पड़ी? माता ने लाला को उठा लिया। इतनी बड़ी बैलगाड़ी कैसे उलटकर नीचे गिर पड़ी? यशोदामाता को आश्चर्य हो रहा है। तीन चार वर्ष के बालक वहाँ खेल रहे थे। कहने लगे कि यह कन्हैया रो रहा था। रोते-रोते लाला ने एक पैर उछाला। वह पैर एकदम लम्बा हो गया! लाला ने बैलगाड़ी उलट दी। लाला ने राक्षस मार डाला—

न ते श्रद्दधिरे गोपा बालभाषितमित्युत।
अप्रमेयं बलं तस्य बालकस्य न ते विदुः॥ (१०-७-१०)

यशोदामाता को विश्वास नहीं आ रहा है। कन्हैया तो बालक है। वह इतनी बड़ी बैलगाड़ी को कैसे उलटा कर गिरा सकता है? माँ कहती है कि तुम सब झूँठ बोल रहे हो। बालक कहने लगे—ना, माँ हमने अपनी आँखों से देखा है। लाला का पैर लम्बा हुआ और उसने बैलगाड़ी उलटाकर गिरा दी। लाला ने राक्षस को मारा है। बैलगाड़ी के तले जो श्रीकृष्ण को रखते हैं, उनके जीवन की गाड़ी उलटी गिर पड़ती है। जो प्रमुख है, उसे ऊपर रखिये। जब जीवन में प्रभु गौण हो जाते हैं, तब काम-सुख प्रमुख हो जाता है। भक्ति गौण होती है, तब भोग मुख्य हो जाता है। वह ही शकटासुर का स्वरूप है। यशोदामाता ने बैलगाड़ी के ऊपर लाला को रखा होता तो शकटासुर आने वाला न था। माता की भूल थी कि बैलगाड़ी के तले लाला को उन्होंने रखा। मानव का जीवन एक बैलगाड़ी है। गाड़ी के ऊपर श्रीकृष्ण को रखिये। गाड़ी के तले जो श्रीकृष्ण को रखते हैं, उनकी गाड़ी को श्रीकृष्ण ठोकर लगाते हैं। जीवन में धन प्रमुख नहीं है, परमात्मा प्रमुख हैं। जीवन में धन की जरूरत है पर हमारे ऋषियों ने धन को साधन माना है, साध्य नहीं। जीवन में पैसा प्रमुख हुआ, तब से पाप बढ़ा है। और तभी से जीवन बिगड़ा है। यशोदामाता बैलगाड़ी के तले लाला को रखती हैं। परमात्मा हुए गौण, लौकिक सुख हुआ प्रमुख। जीवन में भक्ति गौण है, उसकी छाती पर काम चढ़कर बैठता है, उसके जीवन में काम प्रमुख हो जाता है। मानव काम को एकदम नहीं छोड़ सकता है। काम त्याग सरल नहीं है, अति कठिन है। धर्म की मर्यादा में रहकर विवेक से थोड़ा सुख भोगना ठीक है, पर जीवन में काम प्रमुख नहीं है, परमात्मा मुख्य हैं। चेतन गौण हो जाता है, तब जड़ मुख्य होता है। जिसके जीवन में चेतन परमात्मा गौण हो जाते हैं, उसकी बुद्धि जड़ हो जाती है। मानव जड़बाद है। चेतन जड़ से श्रेष्ठ है। जीवन में भगवान् की भक्ति मुख्य है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चार पुरुषार्थ माने गये हैं। इस में पहला धर्म है, अंतिम मोक्ष

है। अर्थ और काम दोनों को मध्य में रखा है। अर्थ और काम मुख्य नहीं है। धर्म मुख्य है, मोक्ष मुख्य है। ऐसा क्यों न कहा कि अर्थ, काम धर्म, मोक्ष? अर्थ धर्मानुकूल हो तथा काम धर्मानुकूल हो। प्रथम है धर्म और अंतिम है मोक्ष पर जब परमात्मा गौण हो जाते हैं, तब गाड़ी उलटे मार्ग पर चढ़ जाती है। मानव का जीवन गाड़ी है। पति-पत्नी इसके दो बैल हैं। कई लोग ऐसे हैं कि रोज कथा में नहीं जाते, पर कहते हैं कि रविवार के दिन जायेंगे। रविवार के दिन भी कथा में नहीं आते।

जब मित्र पूछते हैं कि आप तो कह रहे थे कि रविवार के दिन कथा में जाना है, पर आप तो आये नहीं? तब उत्तर मिलता है कि आना तो था पर बालक रोने लगा, इससे पत्नी ने कहा कि बालक को रोते हुए छोड़कर कथा में जायेंगे तो क्या पुण्य मिलेगा? बालक को ही खिलाइये न। मित्र पूछते हैं कि घर में बैठकर क्या किया? विष्णुसहस्रनाम का जप किया कि रविवार की छुट्टी का दिन था इसलिये और कोई जप-पाठ किया? भक्ति करने से तन-मन को आराम मिलता है। इससे तन मन शुद्ध होते हैं। बहुत खाने से, बहुत भटकने से तन-मन दोनों बिगड़ते हैं। रविवार छुट्टी के दिन अधिक भक्ति कीजिए। उस भाई ने कहा—आप जानते ही हैं कि घर में कुछ नहीं हो सकता है। फिर याद आया कि यह अंतिम रविवार है इसलिए सिनेमा देखने गये। किसी एक जीव को निमित्त बनाकर परमात्मा सत्संग करवाते हैं। यह प्रभु की कृपा चाहती है कि यह जीव जहाँ जाय, जीवन सुधार करे। कथा का एकाध शब्द भी मर्म का स्पर्श कर ले तो जीवन सुधर जाता है। श्रृंगार के चित्र देखने से और श्रृंगार के गीत गाने से जीवन मन बहुत बिगड़ते हैं। कथा में जाने पर प्रसाद मिलता है। सिनेमा देखने से प्रसाद नहीं मिलता है। कथा में जाने से मन शुद्ध होता है। भगवान् को बैलगाड़ी के ऊपर रखिये। भगवान् मुख्य हैं, भोग गौण है। जीवन में भगवान् मुख्य हैं तो बैलगाड़ी सीधे रास्ते पर चलती है। जीवन में परमात्मा गौण हो जाय तो बैलगाड़ी उलट जाती है। यशोदा माता ने लाला को गाड़ी के तले रखा और गाड़ी में दही-माखन रखा था। इससे भगवान् गौण हुए और गाड़ी उलट गई। यशोदाजी को गोपियाँ समझा रही हैं कि माता आपके घर आकर हम आपके सब काम करेंगी, आप लाला को संभालना लाला को गोद में लेकर बैठना। नंद-यशोदा जब श्रीकृष्ण से दूर जाते हैं, तब ही राक्षस आते हैं। कृष्णलीला में यही रहस्य है। नंद-यशोदा श्रीकृष्ण के पास रहते हैं तो कोई राक्षस नहीं आता है। बुद्धि विश्वनाथ के सम्मुख हो, बुद्धि परमात्मा के पास हो तो कभी कोई राक्षस नहीं आता है। नंदबाबा लाला को छोड़कर मथुरा गये, तब पूतना आयी। यशोदा मैया लाला को पालने में रखकर गोपियों का स्वागत करती हैं। वे लाला को भूल गयी हैं। तभी शकटासुर आया। नंद-यशोदा जब-जब लाला से दूर गये हैं, तब तब विपत्ति आयी है, राक्षस आये हैं। व्यवहार का काम कीजिए पर आपकी बुद्धि श्रीकृष्ण

से दूर न हो, इसका ध्यान रखिये। जीवन का लक्ष्य धन नहीं है, जीवन का लक्ष्य परमात्मा हैं। लक्ष्य को ध्यान में रखकर व्यवहार कीजिए। व्यवहार का काम तो करना ही पड़ता है पर व्यवहार के कार्य को करते हुए अपने लक्ष्य को नहीं भूलना चाहिये। शरीर और इन्द्रियाँ भले ही व्यवहार का कार्य करें, पर मन बुद्धि श्रीकृष्ण से दूर न जाने चाहिये। भगवान् से दूर जाने से विपत्ति आती है। बालकृष्णलाल ने शकट-भंजन की लीला की है। शकटासुर का प्रभु ने उद्धार किया, प्रभु ने शकट-भंजन किया, तब प्रभु एक सौ आठ दिन के थे। शकटासुर छाती पर चढ़कर बैठ जाय तो एक सौ आठ मनकों वाली माला हाथ में रखिये। माला के साथ मैत्री कीजिए। निरंतर जप करने की आदत डालिये। परमात्मा के नाम के साथ मैत्री करेंगे, तो शकटासुर का नाश होगा।

बाद में, तृणावर्त के प्रसंग का आलेखन है। तृणावर्त रजोगुण है। वह आँखों में धूल फेंकता है। प्रभु ने तृणावर्त का उद्धार किया है। दशम स्कंध की लीला सागर के समान है।

इस स्कंध में तृणावर्त लीला और विजृंभण लीला भी है। यशोदा मैया प्रेम से लाला को दूध पिला रही हैं। माता के हृदय में बहुत प्रेम है, इससे दूध भी बहुत आता है। कन्हैया दूध पीता है। बालक बहुत दूध पीता है तो माता को चिंता होती है कि लाला को अपच न हो जाय। उस समय लाला को उबासी आती है और यशोदामाता को तो लाला के मुख ब्रह्मांड के दर्शन हुए हैं। कन्हैया कहता है कि माँ, मैं अकेला दूध नहीं पीता हूँ। मेरे पेट में ये सब हैं। सारा जगत लाला के पेट में है। शकट-भंजन, तृणावर्त का उद्धार और विजृंभण-ये तीनों लीलाएँ सातवें अध्याय में हैं।

५५- नारायण के समान गुण

धीरे-धीरे बालकृष्णलाल बड़े होते हैं।

गर्गः पुरोहित राजन् यदूनां सुमहातपाः।
व्रजं जगाम नन्दस्य वसुदेवप्रचोदितः॥ (१०-८-१)

बालकृष्ण लाल घुटनों के बल सरक रहे हैं। सरकते-सरकते कन्हैया गौशाला में जाता है और तब गायें बहुत प्रसन्न होती हैं। यशोदामाता को चिन्ता होती है कि कदाचित कोई गाय लाला को मारे तो? पुनः वे मन को मनाती हैं कि ना, ना, मेरी गायें तो लाला को सहलाती हैं, लाला की देखभाल रखती हैं। कन्हैया गौशाला में खेल रहा है। एक गाय ने अभी बछड़े को जन्म दिया है। तीन-चार दिन का बछड़ा अभी वहाँ बैठा था। आधी आँखें खुली थीं, आधी बंद थीं। बालकृष्णलाल वहाँ घुटनों के बल चलते आये हैं। बछड़े को देखकर लाला को लगा कि यह तो मेरा मित्र बैठा है और मेरे समान ही है। तीन-चार दिन का बछड़ा निर्दोष होता है, निर्विकार होता है। श्रीकृष्ण

को काम का स्पर्श नहीं है। इस से जो निष्काम हैं, वे ही लाला को प्रिय हैं। निष्काम के साथ परमात्मा खेलते हैं। लाला को बछड़ा बहुत अच्छा लगता है, इससे वह बछड़े के गले में हाथ डालकर प्यार करता है। प्रेम से बछड़े को वह खिलाता है। इससे वह बछड़ा तो थोड़ा घबरा गया और हम्मा बोलने लगा। तब लाला को भी डर लगा। कन्हैया भी मैया- मैया पुकारने लगे। बछड़ा गाय माता को और कन्हैया यशोदामाता को पुकारने लगे। रसोई घर से यशोदामाता दौड़कर आ पहुँची, बोली कि क्या है? क्या है? अब यह लड़का मुझे घर के काम करने नहीं देता है। बहुत चंचल हो रहा है। लाला को उन्होंने उठा लिया। यशोदाजी का श्रीअंग भारी था, इससे यशोदामाता घर का काम करतीं तो लाला को अखरता था, वह मानो कहता है कि माँ, तुम मुझे छोड़कर घर का काम करती हो, मुझे तो बहुत डर लगता है। माँ! तुम अकेला छोड़कर न जाओ। यशोदाजी कहती हैं कि लाला मैं तुम्हें गोद में लेकर बैठी रहूँ तो घर का काम कौन करेगा? लाला कहता है कि घर का काम गोपी करेगी। मेरी माता बहुत काम करेगी तो थक जायेगी। कन्हैया माता की बहुत सँभाल रखता है।

एकबार गर्गाचार्यजी घूमते हुए वहाँ पधारे हैं। गर्गाचार्यजी ज्योतिष शास्त्र के पंडित हैं। नंदबाबा ने गर्गाचार्यजी का स्वागत किया और कहा—महाराज, आप आये तो बहुत अच्छा हुआ। वृद्धावस्था में बालक आया है, इससे उसका नाम नहीं रखा है। सब इसे लाला कहते हैं। आप ज्योतिष शास्त्र के पंडित हैं। तो लाला का नामकरण कीजिए। गर्गाचार्यजी ने कहा—नामकरण एक धार्मिक संस्कार है। विधि से करेंगे तो छह-सात घंटे लगेंगे। नगर में आपका सभी से प्रेम भाव है। आप सभी को निमंत्रण दें तो लौकिक कामों में ही समय व्यतीत हो जायगा। कई लोग तो पुरोहितजी से कह देते हैं कि पूजा जल्दी निबटाना हमारा दूल्हा दो घंटों तक घूमेगा। पूजा में निबटाने की वृत्ति वालों की पूजा-पूजा ही नहीं है। दूल्हा धार्मिक नहीं है। लौकिक रस्मों को बहुत महत्व न देना चाहिए। लौकिक को बहुत महत्व देने वाले का अलौकिक बिगड़ता है। नंदबाबा ने कहा—मुझे लौकिक को बहुत महत्व नहीं देना है। आप धार्मिक विधि बराबर कीजियेगा। सनातन धर्म में सोलह संस्कार बतलाये गये हैं। पुत्र के जन्म मात्र से कुछ सुख नहीं मिलता है। पुत्र लायक हो तो ही सुख मिलता है। सत्पुत्र सुख देता है। पुत्र लायक न हो तो अधिक त्रास देता है। बालक माता के पेट में आ जाय, तब से उसे अच्छे संस्कार देना चाहिये। लोग पानी को छानकर पीते हैं। दूध, घी, तेल को भी छाने बिना लेना नहीं चाहिए। यह उसका संस्कार है। संस्कार से शुद्धि होती है। संस्कार से नयी शक्ति आती है। यह जीव पशु, पक्षी की योनि में भटकते-भटकते मानव-शरीर में आया है। इससे उसे अच्छे संस्कारों की जरूरत है।

मानव कभी-कभी पशु जैसा बोलता है। कभी-कभी पशु जैसी क्रिया करता है। वह किसी जन्म में पशु होगा। उसे संस्कार देना आवश्यक है, अनिवार्य है। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि बालक के जन्म के बाद उसके ऊपर किसी संत-महात्मा की दृष्टि पड़े, या छाया पड़े तो बालक में संत-महात्मा के कुछ संस्कार आते हैं। जातकर्म संस्कार से पवित्र ब्राह्मण की दृष्टि पड़ती है। जातकर्म संस्कार में पितरों की पूजा होती है। वेदमन्त्र बोलकर अभिमन्त्रित शहद बालक को चटवाते हैं। ये सभी संस्कार अब भुलाये गये हैं। संस्कार न होने से बुद्धि बिगड़ती है। नामकरण एक संस्कार है। गर्गाचार्यजी ने कहा कि नामकरण संस्कार में होम करना पड़ता है। लाला का जन्म नक्षत्र रोहिणी है। उस रोहिणी नक्षत्र में देव की स्थापना करके, देव की पूजा करनी पड़ती है। अग्नि प्रकट करके उस देव का होम करना पड़ता है। नामकरण संस्कार विधि छह-सात घंटों तक चलती है। नंदबाबा ने कहा कि महाराज, मुझे किसी को निमंत्रण नहीं देना है। उनकी माताएँ, आप, मैं और ये दो बालक रहेंगे। मैं लौकिक को बहुत महत्व नहीं देता हूँ। धार्मिक विधि बराबर कीजियेगा। गर्गाचार्यजी कर्मकाण्ड में निपुण हैं। वे विधि से नामकरण संस्कार करते हैं। होम किया गया और फिर नामदेव की पूजा की है, फिर नामकरण हुआ है। रोहिणीजी की गोद में दाऊजी बैठे हैं। यशोदाजी की गोद में हैं बालकृष्णलाल। गर्गाचार्यजी ने कहा कि बाबा, रोहिणीजी की गोद में जो बालक है, वह बहुत बलवान होगा। यह लोगों को खिलायेगा, सुखी करेगा। इस बालक का नाम रखता हूँ बलराम। यशोदाजी की गोद में जो बालक है, वह तो युग-युग में रंग परिवर्तित करता रहा है। सत्ययुग में उसका शुक्ल स्वरूप था, त्रेतायुग में रक्त स्वरूप था। इस द्वापरयुग में यह मेघ-समान श्याम है।

इस बालक के नाम अनंत हैं, इसके गुण भी अनंत हैं। एकबार यह वसुदेवजी के घर प्रकट हुआ है, इससे कुछ लोग इसे वासुदेव कहेंगे। यह बालक सभी का आकर्षण करेगा, इससे इसका नाम रखता हूँ श्रीकृष्ण। यशोदाजी ने पूछा—लाला के जन्माक्षर में कैसे ग्रह हैं। गर्गाचार्यजी ने कहा—माता! ग्रह बहुत उत्तम हैं। लाला के जन्माक्षर में तीन ग्रह उच्च क्षेत्र के हैं, पाँच ग्रह स्वक्षेत्र के हैं। यह बड़ा राजा होगा। लक्ष्मी इसके चरणों में रहेगी। इसकी कीर्ति बहुत होगी। यह सर्वका रक्षण करेगा। लोगों का उद्धार करेगा। यह बालक बहुत प्रतापी होगा। यशोदाजी का शुद्ध प्रेम है। यशोदाजी कहती हैं कि महाराज आप तो सब अच्छा ही बतलाते हैं। लाला के जन्माक्षर में कोई खराब ग्रह तो नहीं है न? क्या किसी अनिष्ट का योग है? ऐसा हो तो पहिले ही बतला दीजिये।

गर्गाचार्यजी ने विचार करके कहा कि लाला के जन्माक्षर में आठ ग्रह अच्छे हैं। एक ग्रह खराब पड़ा है। राहु नीच क्षेत्र का है। यशोदा मैया घबरा गयीं और कहने लगीं कि महाराज, आप

आज्ञा कीजिए, मैं बारह ब्राह्मणों को राहु के जप के लिए बैठा देती हूँ। क्या राहु मेरे लाला को त्रास देगा? गर्गाचार्यजी ने कहा–माँ, किसी तरह के जप की आवश्यकता नहीं है। लाला को परेशानी हो, ऐसा खराब ग्रह नहीं है। हमारा तो ऐसा सिद्धान्त है कि जिस पुरुष के जन्माक्षर में सप्तम स्थान में नीच क्षेत्र का राहु हो, वह पुरुष अनेक स्त्रियों का पति होता है। लाला के लिए कुछ बुरा नहीं है। यह बालक अनेक स्त्रियों का पति होगा। यशोदामाता यह सुनकर खुश हुईं। अनेक स्त्रियों का पति हो तो क्या बुरा है? लाला का विवाह तुरंत हो जायेगा, ऐसा लगता है। गर्गाचार्यजी कहते हैं कि माँ विवाह तुरंत होगा, ऐसा लगता है। माँ, मैं आपसे क्या कहूँ। आपका कन्हैया नारायण भगवान् के समान होगा।

तस्मान्नन्दात्मजोऽयं ते नारायणसमो गुणैः।
श्रिया कीर्त्यानुभावेन गोपायस्व समाहितः॥ (१०-८-१९)

गर्गाचार्यजी ने कहा–यह बालक भगवान् नारायण जैसा होगा। श्रीधर स्वामी का अर्थ सरल है–नारायणेन सम श्रीकृष्णः। श्रीकृष्ण नारायण के समान होंगे। वृन्दावन के साधुओं को श्रीधर स्वामी का अर्थ बहुत अच्छा लगा। इससे संत अर्थ को परिवर्तित करते हैं। नारायण के समान श्रीकृष्ण हैं ऐसा नहीं हैं, पर नारायण श्रीकृष्ण के समान हैं। नारायणः समः येन श्रीकृष्णेन इति नारायणसमः–नारायण श्रीकृष्ण के समान हैं। पर जो संत ऐसा अर्थ करते हैं कि नारायण के समान श्रीकृष्ण हैं, उस अर्थ में नारायण प्रमुख होते हैं और श्रीकृष्ण गौण होते हैं। वृन्दावन के साधुओं की श्रीकृष्ण में आसक्ति है। तत्त्व से नारायण और श्रीकृष्ण एक ही हैं। नारायण और श्रीकृष्ण में जरा भी भेद नहीं है। एक होने पर भी भिन्न हैं। नारायण, चतुर्भुज हैं और श्रीकृष्ण द्विभुज मुरलीमनोहर हैं। यह तो प्रेम की कथा है। प्रेम में पक्षपात का गुण प्रमुख है। वृन्दावन के साधु नारायण और श्रीकृष्ण को एक ही मानते हैं। किन्तु एक होने पर भी वे भिन्न हैं। हमारा कन्हैया दो हाथों वाला है। वह हमारा मुरली मनोहर है। नारायण को मैं मानता हूँ, नारायण को मैं वंदन करता हूँ पर नारायण से भी अधिक अपना कन्हैया मुझे प्रिय है। नारायण-श्रीकृष्ण समान हैं। मेरा कन्हैया तो नारायण से भी श्रेष्ठ है। गोपियों में अनेक बार चर्चा होती है–अरी सखी! मैं नारायण को वंदन करती हूँ पर मुझे ऐसा लगता है कि मेरा बालकृष्ण, नारायण से भी श्रेष्ठ है। मैं तुम्हें क्या कहूँ? नारायण शंख बजाते हैं, पर मेरा कन्हैया मधुर बाँसुरी बजाता है। शंख बजाने वाले देव बड़े हैं कि बाँसुरी बजाने वाले देव बड़े? इस जगत् में जितने भी देव हैं,वे सभी हाथ में शस्त्र लेकर बैठे हैं। कोई धनुष-बाण हाथ में रखते हैं तो कोई त्रिशूल हाथ में रखते हैं। कोई सुदर्शन चक्र हाथ में लेकर बैठे हैं। ये सभी देव एक-एक को शस्त्र से घायल करते हैं। अरी सखी! मेरा कन्हैया तो बाँसुरी

के स्वर से घायल करता है, प्रेम से घायल करता है। जब कन्हैया एक बार प्रेम से देखता है, तब वह चाहे राक्षस हो, या पशु, उसका दास बन जाता है। उसमें प्रभु का प्रेम जागता है। कृष्ण आँखों से घायल करता है। उसकी आँखों में प्रेम भरा रहता है। मेरा कन्हैया मुझे प्राणों से भी प्रिय है। नारायण में साठ गुण हैं, मेरे बालकृष्ण में चौंसठ गुण हैं।

श्रीकृष्ण में नारायण से भी चार गुण अधिक हैं। श्रीकृष्ण की वेणु-माधुरी, श्रीकृष्ण की रूप-माधुरी, श्रीकृष्ण की लीला-माधुरी—ये चार गुण नारायण से भी कन्हैया में अधिक हैं। कन्हैया जैसी बांसुरी बजाता है, वैसी बांसुरी कोई नहीं बजा सकता है। कन्हैया जैसी लीला करता है, वैसी लीला कोई नहीं कर सकता है। गोपी के घर कन्हैया जाता है और कहता है—तुम्हारा माखन मुझे बहुत भाता है। तुम्हारे घर की छाछ बहुत मधुर है। गोपी लाला से कहती है—लाला मेरे घर जैसी छाछ तुम्हें सारे गाँव में कहीं नहीं मिलेगी, क्योंकि मेरे अनेक जन्मों का प्रेम इस छाछ में है। प्रेम-रस अति मधुर है। लाला! तुम्हें मेरे घर की छाछ पीनी है तो थोड़ा नाचो। तब मैं तुम्हें छाछ दूँगी। कन्हैया नाचता है। वैंकुण्ठ के नारायण से कोई कह सकता है कि आप थोड़ा नाचिये? अरी सखी! वैंकुण्ठ के नारायण को मैं मानती हूँ। मैं उन्हें वंदन करती हूँ पर वे हमारे साथ बातें नहीं करते हैं। उन्हें अभिमान है क्या? हमारा कन्हैया सर्व-से श्रेष्ठ है, पर लाला को जरा भी अभिमान नहीं है। बिना बुलाये वह मेरे घर आता है। मेरे पीछे-पीछे चलता है। मैं जब पूछती हूँ कि कन्हैया! तुम मुझ में क्या देखते हो? तब कन्हैया कहता है कि तुम्हारे घर मुझे बहुत आनंद आता है। क्या मैं तुम्हारे घर आ जाऊँ? अरी सखी! कन्हैया जैसी लीला करता है, वैसी लीला वैंकुण्ठ के नारायण भी नहीं कर सकते हैं। श्रीकृष्ण की लीला-माधुरी अलौकिक है। एक गोपी छाछ व माखन बेचने जा रही थी। घर में उसने संकल्प किया कि आज रास्ते में अगर कन्हैया मिल जायेगा तो मैं उसे घर लाकर माखन आरोगने दूँगी। इस विचार में ही गोपी तन्मय हो गयी। उसकी आँखों में श्रीकृष्ण हैं, उसके मन में श्रीकृष्ण हैं, उसकी बुद्धि में श्रीकृष्ण हैं। इससे बाजार में जाकर माखन लो, माखन लो, कहने के स्थान पर भूल से कहने लगी—'माधव लो, माधव लो—मैं तो बेचने निकली, व्रज की नारि.....माधव लो रे.... माधव लो....., लाला ने सोचा—यह तो आश्चर्य है। यह गोपी तो मुझे ही बेचने निकली है? इसका कितना प्रेम है। निरंतर स्मरण करते हुए चलती है। बालकृष्णलाल रास्ते में प्रकट हुए हैं। छुम-छुम करते हुए गोपी के पीछे-पीछे चलते हैं। गोपी श्रीकृष्ण के स्मरण में ऐसी तन्मय हुई कि उसे मालूम ही नहीं हो रहा कि लाला उसकी साड़ी पकड़ रहा है और कह रहा है कि मुझे माखन दे। मैं गोकुल का राजा हूँ। मुझे दान दो। गोपी लाला को चिढ़ाती है—तू कैसा गोकुल का राजा? गोकुल के राजा तो दाऊजी भैया हैं। तुम्हें माखन नहीं दूँगी। मुझे छोड़ दे, पर

कन्हैया छोड़ ही नहीं रहा है। किसी देव में है ऐसी ताकत कि रास्ते में जाती हुई किसी स्त्री की साड़ी पकड़ ले, उसका हाथ पकड़ ले। परस्त्री से देवों को भी संकोच होता है। कदाचित् इस तरह करूँगा तो लोग मेरी पूजा नहीं करेंगे। परस्त्री से सब घबराते हैं। कन्हैया के लिये कोई परस्त्री नहीं है। कन्हैया कहता है कि मैं सबका हूँ, सब मेरे हैं। कन्हैया गोपी का हाथ पकड़ लेता है, गोपी की साड़ी पकड़ता है और कहता है कि मैं तुम्हें नहीं छोडूँगा। गोपी कहती है–लाला में बड़े घर की हूँ। तुम इस तरह व्यवहार करो, तो उचित नहीं है। मुझे घर जाना है। गोपी लाला को छोड़कर घर जाने लगी। वह जानती है कि लाला को मेरा माखन भाता है वह थोड़ा चलती है और पीछे देखती है कि कन्हैया आ रहा है या नहीं। उसे घर ले जाना है।

रास्ते में एक पत्थर पड़ा था। लाला ने वह उठा लिया और छिपा दिया। गोपी की आँखें श्रीकृष्ण के मुखारविंद में स्थिर हैं। लाला के हाथ में क्या है, इसका ध्यान उसे नहीं है। उसे कुछ नहीं दीख रहा है। गोपी ने लाला को रास्ते में माखन नहीं दिया और इससे लाला रूठ गया है। लाला ने मटकी पर पत्थर मारा। दही फैल गया। माखन लुढ़क गया। गोपी की साड़ी बिगड़ गयी। कन्हैया दौड़ते-दौड़ते घर पहुँच गया। घर आकर माता की गोद में बैठ गया। कहने लगा कि माँ, एक गोपी तो बाघिन जैसी है। वह मेरे पीछे पड़ी है। यशोदा माता पूछ रही हैं कि बेटा! तुमने तो कुछ नहीं किया है न? लाला कहता है कि ना! मैंने तो कुछ नहीं किया, मैं तो कुछ नहीं जानता। गोपी ने आकर यशोदामाता से कहा–माँ, देखिये, मेरी साड़ी लाला ने बिगाड़ दी, मेरी मटकी फोड़ डाली। ऐसी-ऐसी शैतानी यह करता है। कन्हैया ने मटकी फोड़ दी, सो यशोदामाता को अच्छा नहीं लगा। उन्होंने पूछा कि बेटा! तुमने मटकी फोड़ डाली? लाला ने कहा कि 'माँ! तुम गोपी को उसके घर जाने को कह दो। मुझे उससे डर लगता है। उसके घर जाने पर मैं तुम्हें सब समझा दूँगा। यशोदा माता ने कहा–बेटा, तुम्हें कोई नहीं मारेगा, तुम्हें जो कुछ कहना है, कह दो। लाला ने कहा–माँ, यह गोपी कंजूस है। दो-तीन दिन का बासी दही बेचने जा रही थी। मैं तो सब की सँभाल रखता हूँ कि हमारे गांव में किसी को बुखार न आ जाय। ऐसा दही खाने से तो बुखार आयेगा ही न? तीन दिनों का रक्खा दही था, इससे मैंने मटकी फोड़ डाली। आरोग्य-प्रचारक मंडल का अध्यक्ष मैं हूँ। जगत् में जितनी संस्थाएँ हैं, सभाएँ हैं, उनके अध्यक्ष श्रीकृष्ण हैं। यशोदाजी ने तो गोपी को उलहाना दिया–हमारे गांव में दही-माखन की क्या कमी है? कन्हैया कहता है कि तीन दिन का बासी दही है। ऐसा बासी दही तुम बेचने ले जाती हो? यशोदामाता ने कहा–जो हुआ सो हुआ, पर हमारे गांव में ऐसा विज्ञापन हो जाय, तो इसे लड़की कौन देगा?

इसने मटकी फोड़ दी है, ऐसा किसी से न कहना। मैं अपने घर की पाँच मटकियाँ देती हूँ। मटकी फोड़ता है पर कन्हैया गोपियों को इतना ही प्रिय है, प्राणों से प्यारा है। लाला को देखे बिना उन्हें चैन नहीं है। उसके साथ बातें किये बिना गोपियों का मन ही नहीं मानता है। गोपी कहती है—माँ! आपका यह कन्हैया हमें प्राणों से भी प्यारा है। मैं किसी से कहने वाली नहीं हूँ। श्रीकृष्ण की लीला-माधुरी ऐसी ही अलौकिक है। इससे महापुरुषों की समाधि लग जाती है और वे कृष्ण-लीला में तन्मय हो जाते हैं।

गर्गाचार्यजी यशोदामाता से लाला के जन्माक्षर देखकर कहते हैं कि मैया! यह बालक बहुत प्रतापी होगा। सबको सुखी करेगा। आपको भी सँभालेगा।

५६– चतुर्भुज-विष्णु को शीश झुकाता हूँ

यशोदाजी ने हाथ जोड़े और गर्गाचार्यजी से कहा—महाराज! यह सब तो ठीक है पर अब आप भोजन कीजिये। गर्गाचार्यजी ने कहा—मैं तो स्वयंपाकी हूँ। हाथ से खाना बनाता हूँ। माँ! मुझे किसी का पानी भी नहीं चलता है। गर्गाचार्य महान् तपस्वी और ज्ञानी ब्राह्मण थे। उन्होंने यमुनाजी में स्नान किया। बाद में घड़ा भरकर यमुनाजी का जल लाये। यशोदाजी विवेक से पूछती हैं—महाराज! आपके ठाकुरजी को क्या प्रिय है? आपके ठाकुरजी को जो प्रिय है, वही बनाइए। आप भी बोलते हुए विवेक रखियेगा। खाना बना रहे हैं तो ऐसा भाव रखिये कि भगवान् के लिये खाना बना रहा हूँ। प्रभु का स्मरण करते हुए, पवित्रता से खाना बनाइए। गर्गाचार्यजी ने कहा—अपने ठाकुरजी के लिये खीर बनाता हूँ। यशोदाजी ने सभी तरह की तैयारी कर दी है। गर्गाचार्यजी खीर बनाते हैं। थाली में खीर को ठण्डी कर रहे हैं। ठाकुरजी को गर्म-गर्म खाना प्रस्तुत न कीजियेगा। भगवान् बहुत कोमल हैं। आरोगते हुए उन्हें बहुत कष्ट होता है। आप जैसा अपने प्रति प्रेम रखते हैं, उससे हजार गुना प्रेम भगवद्-स्वरूप में रखिये। गर्गाचार्यजी ने खीर ठण्डी कर ली। खीर में तुलसी पधराई और नारायण का स्मरण करने लगे। हाथ जोड़कर नारायण की प्रार्थना करने लगे—हे वैकुण्ठाधिपते! हे चराचराधिपते! हे लक्ष्मीपते! गर्गाचार्यजी ने बहुत प्रेम से, पवित्रता से खीर बनायी है। यह खीर आरोगिये, गर्गाचार्यजी प्रेम से नारायण की प्रार्थना करते हैं। उनके शब्द लाला के कानों में पड़े। लाला ने सोचा कि यह तो मुझे ही बुलाते हैं। लक्ष्मीजी का पति और वैकुण्ठाधिपति तो मैं ही हूँ। अन्य कोई लक्ष्मी का पति तो नहीं है। हमें कोई प्रेम से बुलाता है और हम नहीं जाते हैं तो यह अच्छा नहीं है। बालकृष्ण तो दौड़ते हुए आते हैं और धीरे-धीरे प्रेम से खीर आरोगते हैं। गर्गाचार्यजी का ऐसा नियम था कि ठाकुरजी को भोग लगाकर आँखें बन्द करके ॐ.....नमो

नारायणाय.....ॐ नमो नारायणाय.....इस महामन्त्र की बारह माला करते और तब तक ऐसी भावना करते कि ठाकुरजी आरोग रहे हैं। भावना से भगवान् के आरोगने की कल्पना करते हैं। भक्तिमार्ग में भावना मुख्य है। भावना से भक्ति बढ़ती है। गर्गाचार्यजी आँखें बंद रख करके ॐ नमो नारायणाय का जप कर रहे हैं। बालकृष्णलाल धीरे-धीरे खीर आरोग रहे हैं। बारह माला पूर्ण होने पर आँखें खोलते हैं तो गर्गाचार्यजी को दर्शन हुए हैं......बालकृष्णलाल आरोगते हैं। अभी गर्गाचार्यजी ठीक-ठीक नहीं जानते हैं कि यह कौन है। गर्गाचार्यजी ने विचार किया कि मैं ब्राह्मण हूँ, नन्दबाबा वैश्य हैं। बनिया का पुत्र मेरी खीर को छू गया है। अब मुझसे यह खीर नहीं खायी जा सकती है। अरी यशोदा! अरी यशोदा!—गर्गाचार्यजी यशोदा को बुलाते हैं। यशोदामाता दौड़कर आयी है। यशोदामाता आती हैं, तब लाला को थोड़ा डर लगता है। लाला सोचता है, कि मेरी माता मुझे मारेगी तो?

कन्हैया एक बार माता को देखता है और दूसरी ओर महाराज को देखता है। लाला की आँखों में प्रेम भरा है। लाला की आँखें बहुत सुन्दर हैं। यशोदामाता ने पूछा—महाराज! यह कन्हैया खीर को छू गया क्या? महाराज कहने लगे—अरे! छू गया, आधी खीर खा गया। मैं तो आँखें बंद करके—ॐ नमो नारायणाय का जप कर रहा था। तुम्हारा पुत्र कब आया, पता ही नहीं चला। यशोदाजी को यह अच्छा न लगा। उन्होंने लाला से कहा—क्या तुम्हें घर में खाना नहीं मिलता है? इधर क्यों आया? लाला ने उत्तर दिया—इन महाराज ने मुझे बुलाया, इसलिए मैं आया। यशोदाजी ने गर्गाचार्यजी से पूछा—क्या आपने लाला को बुलाया था? गर्गाचार्यजी ने कहा—नहीं। मैं तो अपने इष्टदेव नारायण को बुला रहा था, और तुम्हारा पुत्र आ गया। मैंने इसे नहीं बुलाया था। यशोदाजी ने लाला को उलाहना दिया—तुम्हें कहाँ बुलाया था? वे तो अपने ठाकुरजी को बुला रहे थे। लाला ने कहा—मैं ही इनका ठाकुरजी हूँ। माँ! मैं नारायण हूँ। यशोदाजी ने अपने कानों पर हाथ रखते हुए कहा—यह लड़का कैसा कह रहा है? चाहे जैसा बोलता रहता है! अरे! तुम कैसे हो नारायण? तुम तो मेरे पुत्र हो। तुम्हें मालूम है कि नारायण के चार हाथ होते हैं। तुम्हारे कहाँ चार हाथ हैं। लाला ने कहा—माँ! तुम्हें चार हाथ देखने हैं? बतलाऊँ? यशोदा माता घबरा गईं......यह लड़का तो बहुत चमत्कारी है। इसका जन्म हुआ तब मुझे मालूम भी न हुआ। अभी ये चार हाथों वाला हो जायगा तो लोगों को ऐसा लगेगा कि यह यशोदा का लड़का नहीं है। लोग शंका करेंगे। माता ने कहा—तुम मेरे दो हाथों वाले बालकृष्ण रहो, यही मुझे पसन्द है। चार हाथों वाले न होना। कभी भी इस माँ के देखते चार हाथों वाले न होना। चार हाथों वाले देव को मैं मानती हूँ, पर मुझे मेरा बालकृष्ण अधिक प्रिय लगता है। कैसा सुन्दर है तू यशोदामाता ने बालकृष्णलाल को अति ममता से उठा

लिया और फिर गर्गाचार्यजी से कहने गईं—महाराज! बालक है, भूल हो गयी। गर्गाचार्यजी ने कहा तुम्हारा पुत्र खीर को छू गया, अब इस खीर को मैं नहीं खा सकूँगा। यशोदामाता ने हाथ जोड़कर कहा—महाराज! मैं यह नहीं कहती कि आप इस खीर को खाइए, पर मेरी ऐसी भावना है कि आप फिर से खीर बनाइए। आप भूखे रहेंगे तो मुझे बहुत दुःख होगा। बोलते-बोलते माता की आँखों में आँसू आ गये। लाला ने ब्राह्मण को बहुत परेशान किया, आज ब्राह्मण भूखे हैं।

गर्गाचार्यजी ने पुनः घड़ा उठाया। नदी में स्नान करने गये। इधर यशोदाजी ने सब तैयारी कर दी। माँ ने निश्चय किया कि मैं लाला को छोड़ूँगी नहीं। महाराज शाँति से तो भोजन करेंगे। यशोदामाता बालकृष्णलाल को आँगन में ले आयीं। लाला को देखकर कोकिला कुहू-कुहू करने लगीं। लाला का शरीर मेघ-सदृश श्याम है। मोर को भी मेघ का रंग बहुत प्रिय है।

कन्हैया को देखकर मोर थेई-थेई नाचते हैं। लाला के चरणों में दो-चार पँख गिर पड़ते हैं। लाला ने कहा—माँ! यह मोर जैसा नाचता है, वैसा नाचना मुझे आता है। माता ने पूछा—लाला तुम्हें नाचना आता है? बेटा! मैंने तो नहीं देखा कि मेरा कन्हैया कैसा नाचता है? यशोदामाता तालियाँ बजाती हैं। बालकृष्ण छुम्-छुम् करते हुए नाचते हैं। चरणों में सुवर्ण के नूपुर हैं। कन्हैया ऐसा सुन्दर नृत्य करता है। देखकर यशोदा मैया को अति आनंद हुआ। बोलीं कि लाला तुम बहुत सुन्दर नाच रहे हो। दौड़ते-दौड़ते कन्हैया माँ के पास आता है और माता के गले में बाँहें डाल देता है। माता लाला को हृदय से लगा लेती हैं। यशोदामाता कहती हैं, कि बेटा, तुम बहुत सुन्दर नाचते हो। ऐसा सुन्दर नाचना किसने सिखाया है? लाला ने कहा—माँ! तुम्हारे पेट में था, तब से सीखकर जन्म लिया है मैंने। लाला को सब कुछ आता है। वह किसी को गुरु नहीं मानता है। वह सबका गुरु है। मोर जब नाचता है, तब उसके साथ-साथ मोरनी भी नाचती है। लाला ने पूछा—माँ, इस मोर के साथ-साथ कौन नाचता है? यशोदाजी ने कहा—बेटा! यह मोरनी है। माँ, मोरनी अर्थात् क्या? यशोदाजी समझाती हैं कि बेटा! मोर की बहू को मोरनी कहते हैं। मोर नाचता है तो उसके साथ उसकी बहू भी नाचती है। कन्हैया पूछता है कि माँ, मेरी बहू कहाँ है? मुझे बहू के साथ नाचना है। तुम मेरी बहू मुझे दिखलाओ। यशोदामाता को आनंद हुआ लाला माता से पूछता है कि माता! मेरी बहू कहाँ है? माँ, बहू के आने के बाद क्या होता है? माता कहती है कि अब, क्या होता है? तुम जब बड़े हो जाओगे, तब तुम्हें सब मालूम पड़ जायगा। लाला, तुम बहुत शरारत करते हो? चोरी करते हो तो तुम्हें बहू कौन देगा? लाला कहता है अच्छा, माँ मैंने अब, शरारत छोड़ दी है। अब तो तुम मेरी बहू मुझे दिखला दो। मुझे अपनी बहू देखनी है। माँ ने कहा—बेटा, जब तुम बड़े हो जाओगे तो मैं तुम्हारे लिये सुन्दर बहू लाऊँगी। यशोदामाता लाला को स्नेह से समझाती हैं।

इस ओर गर्गाचार्यजी ने फिर से खीर बना ली है और वे खीर को ठंडा करते हैं। लाला ने सोचा कि खीर तो अच्छी बनायी है। मुझे अर्पण किये बिना ये पानी भी नहीं पीते हैं। ऐसी सरस खीर बनायी है इससे मुझे तो बुलायेंगे ही पर मेरी माँ मुझे वहाँ जाने नहीं देगी। लाला का मजाक करने का मन हुआ। वह खेलते-खेलते माता की गोद में सो गया। यशोदामाता खुश हुईं। सोचने लगीं कि लाला सारा दिन खेलता रहता है, इससे थक गया है और सो गया है। बहुत अच्छा हुआ। बेचारे ब्राह्मण अब शांति से भोजन कर सकेंगे। बाद में मैं लाला को लेकर उनके चरणों में प्रणाम करूँगी। श्रीकृष्ण गोकुल में बालक होकर खेलते हैं। वे जतलाते हैं कि मैं देव नहीं हूँ, मैं ईश्वर नहीं हूँ, मैं तो आपका बालक हूँ पर श्रीकृष्ण परमात्मा हैं। जहाँ श्रीकृष्ण बिराजते हैं, वहाँ ऐश्वर्य-शक्ति हाथ जोड़कर सेवा में उपस्थित रहती है। आज लाला ने ऐश्वर्य-शक्ति को आज्ञा दी—मेरी माता को निद्रा आ जाय ऐसा करो। अचानक ठंडी हवा चलने लगी। ऐश्वर्य शक्ति ने माता की आँखों में प्रवेश किया। या देवी सर्व भूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता—यशोदामाता को नींद आ गयी है। गोद में बालकृष्णलाल हैं और माता को नींद आ गयी है।

गर्गाचार्यजी प्रार्थना करते हैं—

ससंखचक्रं सकिरीट कुण्डलं सपीतवस्त्रं सरसीरुहक्षणम्।
संहारवक्षः स्थलकौस्तुभश्रियं नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम्॥

नारायण को वे मना रहे हैं— मेरे नाथ! आप पधारिये। एक बार बालक खीर को छू गया, इससे मैंने पुनः स्नान करके आपके लिये बहुत पवित्रता से तथा प्रेम से खीर बनाई है। आप इस खीर को आरोगिये। लाला के कानों तक शब्द पहुँचे। गर्गाचार्य मुझे बुला रहे हैं—ऐसा सोचकर बालकृष्णलाल उठे हैं। यशोदामाता निद्रा में हैं और बालकृष्णलाल दौड़ते-दौड़ते पहुँचे हैं। प्रेम से खीर आरोग रहे हैं। यह दूसरी बार हुआ। गर्गाचार्यजी को बहुत भूख लगी है। गर्गाचार्यजी सोचते हैं कि बारह माला करते हुए, समय लगेगा। तब तक मैं आँखें बंद रखूँगा किन्तु वह पुनः आकर छू जाय तो बालक बहुत चंपल है। बारह माला करते हुए, आँखें बंद रखूँ तो ठीक नहीं है। ॐ नमो नारायणाय मंत्र जप करते-करते आँखें खोलकर देख लूँ कि वह आ तो नहीं रहा है? जैसे ही गर्गाचार्यजी ने आँखें खोलीं तो समक्ष कन्हैया दीख पड़ा। गर्गाचार्य व्याकुल हो गये। विचारने लगे कि यह तो पुनः आ गया। मेरी खीर फिर छू गया। अब मुझसे खीर नहीं खायी जायगी। लाला को दया आ गयी है। सोचा कि ब्राह्मण है, मेरा भक्त है। उसे कब तक भ्रान्ति में रखूँ? प्रभु ने लीला की। बालस्वरूप अंतर्धान हुआ और चतुर्भुज श्रीनारायण सम्मुख आ गये। गर्गाचार्यजी ने देखा कि यह तो मेरे इष्टदेव हैं। गर्गाचार्यजी को विश्वास हो गया कि मेरी भक्ति को सफल करने के लिये

मेरे भगवान् पधारे हैं। गर्गाचार्य साष्टांग वंदन करते हैं। मानते हैं कि आज मेरा जीवन सफल हुआ। आज मेरी भक्ति सफल हुई मेरे प्रभु प्रत्यक्ष आरोग रहे हैं। गर्गाचार्य वंदन करते हैं, तब उनके कानों में शब्द पड़े कि बैंकुण्ठ के नारायण ही श्रीकृष्ण हैं। नारायण और श्रीकृष्ण एक ही हैं। आपकी भक्ति सफल करने के लिए मैंने यह लीला की है। बाद में चतुर्भुज स्वरूप अंतर्धान होकर बालस्वरूप प्रकट हुआ है। कन्हैया जैसा प्रेम करता है, वैसा प्रेम करनेवाला जगत् में कोई नहीं हुआ और न कोई होगा। वह जब प्रेम करता है, तब जीव की योग्यता का विचार नहीं करता है।

एक रुपया जब देना हो तो आप बहुत सोचते हैं कि व्यक्ति योग्य है कि नहीं? बिना सोच-विचार मानव एक रुपया भी नहीं देता है, पर कन्हैया जब प्रेम करता है, तब विचार कहाँ करता है? वह अकारण कृपा करता है, अकारण प्रेम करता है। वह प्रत्येक जीव के साथ प्रेम करता है। लाला ने सोचा कि ब्राह्मण हैं। दो बार खीर बनायी पर स्वयं भूखे रहे और इन्हें भूख भी बहुत लगी है। मैं इन्हें खिलाऊँ। लाला ने लीला की है। गर्गाचार्यजी हाथ जोड़कर बैठे हैं। बालकृष्णलाल खड़े हैं तथा गर्गाचार्यजी के मुख में ग्रास दे रहे हैं। मेरे इष्टदेव ने मुझे उच्छिष्ट प्रसाद दिया—गर्गाचार्य यह सोचकर प्रेम से आरोग रहे हैं।

इस ओर यशोदामाता जागी हैं। माता ने देखा कि कन्हैया गोद में नहीं हैं। वे भीतर आती हैं; देखा कि कन्हैया कुछ दे रहा है और महाराज आरोग रहे हैं। एकबार मेरा पुत्र खीर को छू गया तो महाराज ने खीर ही न खायी और अब कन्हैया मुख में देता है और महाराज खा रहे हैं। महाराज की यह कैसी अनोखी रीति है? यशोदामाता को आश्चर्य हुआ? वे धीरे-धीरे आगे आती हैं। गर्गाचार्यजी ने देखा कि यशोदाजी पधार रही हैं, वे तुरंत उठकर खड़े हो जाते हैं और उनके चरणों में साष्टाँग वंदन करते हैं। यशोदाजी मना करने लगीं—महाराज! आप ब्राह्मण हैं मैं ग्वालिन हूँ। मुझे पाप में न डालिये। मैं आपके चरणों में वंदन करती हूँ। गर्गाचार्यजी ने कहा—माँ, तुमने बहुत पुण्य किया है। तुम्हारी गोद में परमात्मा खेल रहे हैं। लाला का तब जय-जयकार हुआ है। यशोदामाता को थोड़ी शंका हुई कि यह परमात्मा है कि मेरा पुत्र है? लाला ने सोचा कि महाराज ने घोटाला कर दिया। माँ अगर मुझे परमात्मा मानेंगी तो प्यार नहीं कर सकेंगी। ऐश्वर्य और वात्सल्य दोनों का विरोध है। जीव को ईश्वर से संकोच होता है। जहाँ ऐश्वर्य है, वहाँ संकोच है। मैं परमात्मा नहीं हूँ। मैं तो यशोदामाता का पुत्र हूँ। अगर यशोदामाता मुझे परमात्मा मानेगी तो लीला नहीं होगी। माता मुझे बालक मान लें तो ही अच्छा है। प्रेमरस लेने और देने के लिये ही मैं बालक हुआ हूँ, मैं ईश्वर हूँ, ऐसा ज्ञान अगर मेरी माता को हो जायगा तो वह मुझे धमकायेगी नहीं, प्यार भी नहीं कर सकेगी। जीव ईश्वर से दूर खड़ा रहता है, इससे प्रभु ने वैष्णवी माया का ऐसा आवरण डाल दिया

कि यशोदामाता सब भूल गयीं। यशोदामाता ने सोचा कि बालक सुन्दर है। इससे जो आता है वही प्रेम करता है। यह तो महाराज ने लाला को आशीर्वाद दिये हैं। माता ने लाला को गोद में उठा लिया। वह कन्हैया से प्यार करने लगीं।

५७– वत्सों को छोड़ रहे हैं.......... असमय में.......

बालकृष्णलाल के अब चार वर्ष पूर्ण हुए हैं। पाँचवा वर्ष शुरू हुआ है। कन्हैया अब ग्वाल-बाल मित्रों के साथ खेलने जाता है। मधुमंगल, मनसुखा, श्रीदामा–ये सब गरीब ग्वालों के बालक हैं। वे लाला के मित्र हैं। श्रीकृष्ण का प्रेम अलौकिक है। ग्वालों के साथ ग्वाल होकर वे खेलते हैं। मैं देव नहीं हूँ, मैं ईश्वर नहीं हूँ, मैं आपके समान ग्वाल ही हूँ–ऐसा मानकर प्रेम करते हैं। मनसुखा बहुत दुर्बल है। उसके शरीर की सभी हड्डियाँ दीख रही हैं। लाला ने मनसुखा के कंधे पर हाथ रखा और कहा–मनसुखा! तुम मेरे मित्र हो कि नहीं? मनसुखा ने सिर हिलाकर स्वीकृति दी कि मैं मित्र हूँ। कन्हैया ने कहा कि तुम बहुत दुबले हो। ऐसा दुबला मित्र मुझे पसन्द नहीं है। तुम मेरे जैसे तगड़े हो जाओ। मनसुखा रोने लगा। उसने कहा–कन्हैया! तुम राजा के पुत्र हो। तेरी माता तुझे मलाई-माखन खिलाती है। इससे तुम तगड़े हो गये हो। मैं तो गरीब हूँ। मैंने कभी माखन नहीं खाया है। मेरी माता मुझे दूध भी नहीं देती है। छाछ ही देती है। कन्हैया! मुझे कोई माखन खिलाये तो मैं भी तुम्हारे जैसा तगड़ा हो जाऊँगा पर मुझ जैसे गरीब को कौन माखन देगा? लाला ने मनसुखा से कहा कि मैं तुम्हें हर रोज माखन खिलाऊँगा। मनसुखा ने कहा–कन्हैया! तुम हर रोज माखन नहीं खिला सकोगे। अगर तुम हर रोज माखन खिलाओगे तो तुम्हारी माता को गुस्सा आयेगा। वह नाराज हो जायगी। वह तुम्हें मारेगी तो?

लाला ने कहा–अपने घर का माखन नहीं, पर बाहर से कमाकर मैं तुम्हें खिलाऊँगा। मनसुखा पूछने लगा–लाला! तुम्हें कमाना आता है? कन्हैया कहता है–मुझे सब कुछ आता है। मनसुखा पूछता है–लाला! तुम कैसे कमाओगे? लाला कहता है कि हम सब मिलकर एक सहकारी मण्डली बनायेंगे, और तब बहुत कमा सकेंगे। मुझे सब कुछ आता है। मित्रों ने पूछा कि अपनी सहकारी मण्डली का नाम क्या रखेंगे? लाला ने कहा–बालगोपाल-चौर्यविद्या प्रचार मण्डल। मित्र पूछते हैं कि लाला, चौर्यविद्या मण्डल अर्थात् चोरी करना? लाला! तुम अभी से हमें चोरी सिखाते हो? चोरी करने पर हमें कोई पकड़कर, मारेगा। लाला ने कहा–तुम लोग इसकी चिंता न करना। मेरे गुरु ने मुझे एक मन्त्र सिखलाया है। इसको बोलते हुए, चोरी करने पर कोई हमें देख नहीं सकता और कदाचित् पकड़े गये तो भी छिटक कर भाग सकते हैं। मेरे पास मन्त्र है। लाला मित्रों के लिये

माखन-चोर बनने के लिये तैयार है। लाला ने एक-एक मित्र के कान में मंत्र कहा–कफलम्-कफलम्। बालक लाला से कहने लगे कि कन्हैया, 'कफ़लम्' का क्या अर्थ होता है? कन्हैया समझा रहा है कि अर्थ की तुम लोगों को क्या जरूरत है? इस जगत् में जितनी विद्याएँ हैं, उनके गुरू ब्राह्मण होते हैं। ब्राह्मण सबके गुरू हैं तो चोर के गुरू कौन हैं? चौर्य.... कला है। कफल ऋषि इसके आचार्य थे। जितने चोर हैं, सभी कफल ऋषि के शिष्य होते हैं। लाला ने मित्रों को मंत्र दिया है। यह मंत्र तो प्रभु ने ग्वालबाल मित्रों को ही दिया है। आप इस मंत्र को याद रखकर चोरी करने न जाइयेगा। थोड़ा सोच लीजिए कि चोरी पाप है। पाप कौन करेगा? शरीर के साथ खेलने में जो सुख मानता है, वह चोरी करता है। संसार में जड़ पदार्थों के साथ खेलता है, वह पाप करता है। ये बालक तो श्रीकृष्ण के साथ खेलते हैं। परमात्मा के स्वरूप में जो खेलता है, प्रभु के नाम में जो रमता है, परमात्मा से जो प्रेम करता है, वह पाप कर ही नहीं सकता है।

परमात्मा के साथ खेलने वाला पाप कर ही नहीं सकता। 'अविद्यावत् जीवपरायण सर्वाणि शास्त्राणि प्रवर्तन्ते सर्वेषां अविद्या दृष्टत्वात्। शास्त्र की प्रवृत्ति अज्ञानी जीवों के लिये है। जो श्रीकृष्ण के साथ खेलते हैं, उनके द्वारा कदाचित् पाप हो जाय तो इसका जबाब प्रभु ही देते हैं। आपका अगर इस 'कफलम्' मंत्र का उपयोग करने का मन हो या इच्छा हो तो आज से श्रीकृष्ण का ध्यान कीजिए। बालकृष्णलाल की प्रेम से सेवा कीजिए। श्रीकृष्ण-कीर्तन में तन्मय हो जाइए। आप अपने ठाकुरजी से कहिए कि मुझे आपके साथ खेलना है। अब मुझे किसी मानव के साथ नहीं खेलना है। प्रभु! द्वापर युग में जब आप प्रकट हों, तब मुझे भी किसी ग्वाले के घर जन्म देना। मैं आपका ग्वाला बनूँगा। मैं आपकी गोपी बनूँगा। हम सब लाला के ग्वाल मित्र बनकर गोकुल में जन्म लेंगे। लाला के साथ खेलेंगे और फिर 'कफलम् कफलम्' बोलते-बोलते चोरी करेंगे तो कोई हर्ज नहीं है।

लाला ने बालकों को मंत्र दिया है। बालकों ने लाला से कहा कि कन्हैया! अब तुम ही हमारे मण्डल के प्रमुख बनो। तुम्हारे सिवाय अध्यक्ष और कौन होगा? लाला ने कहा कि आप की इच्छा है तो मैं अध्यक्ष बनने के लिये तैयार हूँ। बालकों ने पूछा कि लाला, तुम अध्यक्ष हुए हो, पर क्या हमें कुछ काम करना पड़ेगा? लाला ने कहा कि काम किये बिना कैसे चलेगा? काम तो करना ही पड़ेगा। बालक पूछने लगे कि कन्हैया! हमें इस मण्डल का क्या काम करना पड़ेगा? लाला ने कहा कि और तो कुछ काम नहीं है, पर तुम लोग इतना करना कि गोपियाँ कब बाहर जाती हैं, और कब घर लौटती हैं, इसका पता लगाकर आना। और काम मैं सँभाल लूँगा। एक बालक ने कहा कि कन्हैया! मेरी माता तीन बजे बाहर जाती है, सात बजे वापस आती है। लाला ने कहा कि अगर ऐसा है तो मैं आज तुम्हारे घर आकर श्रीगणेश करूँगा। बालक कहता है–

लाला! तुम मेरे घर आना, आज मेरे घर बहुत-सा माखन है। लोग कहते हैं कि श्रीकृष्ण चोरी करता है। यह चोरी की कथा है।

जगत् का आकर्षण श्रीकृष्ण करता है, श्रीकृष्ण का आकर्षण गोपी-प्रेम करता है। गोपियाँ तन, मन, धन सर्वस्व श्रीकृष्ण को अर्पण करती हैं। जिन गोपियों ने सर्वस्व अर्पण किया है, उन गोपियों के घर जाकर लाला थोड़ा माखन आरोगता है तो क्या यह चोरी कही जायगी? लाला के घर बहुत सी गायें हैं, हर रोज बहुत-सा माखन होता है किन्तु कन्हैया घर का माखन नहीं खाता है। गोपियों के घर जाकर माखन आरोगता है यह अलौकिक दिव्य प्रेम कथा है। गंगातट पर संत-समाज में शुकदेवजी महाराज गोपियों की प्रशंसा कर रहे हैं। अलौकिक दृष्टि से जगत् के मालिक श्रीकृष्ण हैं। वे घर के स्वामी हैं, चोर नहीं हैं। अलौकिक भाव रखते हुए यह बात स्पष्ट होती है पर कदाचित् कोई मानव लौकिक भाव रखता हो तो भी यह चोरी नहीं है। जिस गोपी के घर में श्रीकृष्ण माखन आरोगते हैं, उस गोपी का पुत्र लाला की मंडली में है और लाला से कहता है कि मेरी माँ सात बजे के बाद घर आती है। गोपी का पुत्र घर का स्वामी ही कहा जायगा। फिर सब साथ माखन खाते हैं तो उसे चोरी कैसे कहा जा सकता है? लौकिक दृष्टि से भी यह चोरी नहीं है।

गोपियों का हर रोज का नियम है कि सुबह वे यशोदाजी के घर जाती हैं। लाला का दर्शन करती हैं और यशोदामाता को लाला की एक-एक लीला सुनाती हैं। गोपियाँ वर्णन करती हैं और यशोदा माता सुनती हैं–

वत्सान् मुञ्चन् क्वचिदसमये क्रोशसंजातहासः
स्तेयं स्वाद्वत्त्यथ दधि पयः कल्पितैः स्तेययोगैः।
मर्कान् भोक्ष्यन् विभजति स चेन्नात्ति भाण्डं भिनत्ति
द्रव्यालाभे स गृहकुपितो यात्युपक्रोश्य तोकान्॥ (१०-८-२९)

एक गोपी ने कहा कि मां! कन्हैया बहुत शैतानी करता है। यशोदा माता पूछती हैं कि अरी सखी! मेरे लाला ने क्या किया? गोपी कहती है कि कल कन्हैया मेरे घर आया था दूध दुहने का समय नहीं हुआ था, फिर भी उसने बछड़ों को छोड़ दिया। माँ! सभी बछड़े सारा दूध पी गये। असमये वत्सान् मुञ्चन–दूध दुहने के बाद बछड़ों को छोड़ें वह तो साधारण ग्वाले हैं, पर यह ग्वाला तो ऐसा है कि दूध दुहने के समय से पहिले ही बछड़ों को छोड़ता है–

असमये–समयं अतिक्रम्य, वत्सान् विषयासक्त जीवान् संसार वंधनात् मुञ्चन्।

श्रीकृष्ण पुष्टि-पुरुषोत्तम हैं। श्रीकृष्ण जिस जीव पर विशिष्ट कृपा करते हैं, उस जीव को उसी जन्म में मुक्ति देते हैं। मुक्ति और सद्यो-मुक्ति-क्रम-मुक्ति में जीव एक-एक सीढ़ी चढ़ता हुआ परमात्मा के चरणों में पहुँच जाता है। शास्त्रों में वर्णन आता है कि ८३,९९,९९९ जन्मों के बाद इस जीव को शूद्र के घर जन्म मिलता है। शूद्र हो जाने के बाद चोरी न करे, व्यभिचार न करे तो दूसरे जन्म में वैश्य होता है। सत्य नीति के अनुसरण से व्यापार-धंधा करे, तो मरने के बाद क्षत्रिय होता है। क्षात्र-धर्म का यथायोग्य पालन करने पर, शरीर छोड़ने पर ब्राह्मण होता है। दिन में तीन बार संध्या करने पर, गीता का अध्ययन करने पर, सत्कर्म करने पर मृत्यु के बाद दूसरे जन्म में अग्निहोत्री होता है। अग्निहोत्री ब्राह्मण देहाध्ययन करे, उपासना, ब्रह्मचर्य इत्यादि का पालन करे तो अग्निहोत्री के बाद योगी होता है। योगी परमात्मा के साथ मन से संयोग सिद्ध करते हैं। योगी बहुत सावधान रहते हैं कि नया पाप न हो जाय। जितने पाप हैं, वे भोग कर पूर्ण कर लूँ। हमारे शास्त्रों में वर्णन है कि योगी को भी तीन जन्म लेने पड़ते हैं। संचित, क्रियमान, और प्रारब्ध -इन तीनों के विनाश के लिये योगी जन्म लेते हैं-

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।

योगी, नया पाप न हो, इसका ध्यान रखते हैं। वे सतत् परमात्मा का ध्यान करते हुए ब्रह्ममय होते हैं। तीसरे जन्म में संचित, क्रियमाण तथा प्रारब्ध का विनाश करके योगी भगवान् के चरणों में लीन हो जाते हैं। इसका नाम है क्रम-मुक्ति पर श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम हैं। जिस जीव पर उनकी कृपा-दृष्टि होती है वह जीव अपने इस जीवन में ही मुक्ति पाता है। कल्पना कीजिए कि कोई वैश्य प्रेम से बालकृष्णलाल की सेवा करता है कीर्तन करता है, प्रभु से विनय करता है कि प्रभो! मुझे किसी के पेट में नहीं जाना है। मुझे पति नहीं होना है, पत्नी भी नहीं होना है। इस संसार का मैंने बहुत ही अनुभव किया। अब तो मुझे आपके चरणों में आना है। वैश्य प्रभु की बहुत सेवा करता है। कीर्तन करते-करते प्रभु की प्रार्थना करता है, तो प्रभु को दया आती है और प्रभु जीव को उठाकर स्वधाम में ले जाते हैं। मुक्ति का नियम ऐसा है कि वैश्य के बाद क्षत्रिय होना पड़े, ब्राह्मण होना पड़े अग्निहोत्री होना पड़े, योगी होना पड़े तो बाद में मुक्ति मिलती है पर वैश्य पर प्रभु की कृपा हो तो उसे ब्राह्मण, अग्निहोत्री योगी कुछ भी होने की जरूरत नहीं रहती है। उसे इस जन्म में ही श्रीकृष्ण, मुक्ति दे देते हैं। इतिहास में ऐसे उदाहरण हैं। राजा की कृपा सिपाही पर होती है तो सिपाही को वह दीवान बना देता है। राजा चाहे तो सिपाही को राजा भी बना सकता है पर राजा कभी ऐसा नहीं चाहता है।

परमात्मा की साधारण कृपा सर्वजीवों पर है पर जिस जीव पर विशिष्ट कृपा भगवान् करें, तो उसे परमात्मा, परमात्मा बनाते हैं। भगवान् विशिष्ट कृपा कब करते हैं? जब यह जीव एकांत में बैठकर परमात्मा के लिये रोता है कि मेरा प्रभु से वियोग हुआ है। मुझे परमात्मा के चरणों में जाना है। तब प्रभु को दया आती है। यह जीव रोता हुआ माता के पेट से बाहर आता है और जब संसार छोड़ता है, तब हाय-हाय करके जाता है। पैसा नहीं रहता तो कई लोग बहुत रोते हैं। कई लोग ऐसे हैं कि अपमान होने पर बहुत रोते हैं। कई लोग संतान न होने के कारण रोते हैं। जीव पुत्र के लिये, पैसे के लिये, स्त्री के लिये रोता है पर कभी परमात्मा के लिये नहीं रोता है। जो जीव एकांत में बैठकर परमात्मा के लिये रोता है, उस पर प्रभु को दया आती है। जो बहुत हँसता है, उस पर परमात्मा की कृपा तुरन्त नहीं होती है। जो प्रभु के लिए रोता है उसके दुःख का अंत आता है। हर रोज एकांत में बैठकर परमात्मा के लियें रोइये। मैं प्रभु से बिछुड़ गया हूँ। मैं इतना बड़ा हुआ अभी तक मुझे प्रभु के दर्शन नहीं हुए हैं। मैं प्रभु के प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहता हूँ। मुझे प्रभु के चरणों में जाना है। ऐसा सोचते हुए श्रीकृष्ण-वियोग में जो व्याकुल होता है और जो व्याकुल होकर रोता है तथा जिसे श्रीकृष्ण-वियोग का दुःख होता है, वह भक्ति कर सकता है।

श्रीकृष्ण-वियोग में जिसका मन संसार में रमता है, प्रभु के वियोग में जिसे संसार सरस लगता है, वह भक्ति नहीं कर पाता है। भक्ति का प्रारंभ तब होता है, जब जीव को संसार नीरस लगता है तथा संसार का सुख, दुःख-रूप प्रतीत होता है। जब प्रभु के वियोग में दुःख लगता है और जब भक्ति परिपूर्ण होती है, तब परमात्मा उसे सद्यो-मुक्ति देते हैं, समय से पहिले ही मुक्त कर देते हैं। असमय पर......'असमयेन वत्सान् जीवान मुञ्चन'.... समय नहीं हुआ है, पर बंधन से छुड़ाते हैं। यशोदाजी गोपियों को समझाती हैं—वृद्धावस्था में बालक का जन्म हुआ है। मैं तो माता हूँ, बालक को कैसे धमका सकूँगी? वह मुझे प्राण से भी प्रिय है। कन्हैया बालक है। तुम्हारा ही बालक है। तुम सबके आशीर्वाद से पुत्र मिला है। वह आपके घर आकर शैतानी करे, तो आप उसको धमकाना। एक गोपी ने कहा—माँ, आप किसे समझा रही हैं वह तो ऐसा धृष्ट हो गया है कि उसे कौन धमका सकेगा? वह तो मुझे ही धमकाने लगा है। कल मेरे घर शरारत करने आया। जब मैं उसे पकड़ने गयी तो वह हाथ ही नहीं आया। वह बहुत चंचल हो गया। वह तो दूर-दूर चला गया। माँ मैं तो दौड़ते-दौड़ते थक गयी। वह तो मुझे अगूँठा दिखाता रहा......लो पकड़ लो!. .....लड़कों को सिखलाता है कि इसको चिड़ाओ फजीहत करो। लड़के सब मेरा नाम ले-लेकर मेरा मजाक करने लगे। माँ वह तो ऐसा ही करता रहता है। क्रोशसंजातहास....

एक गोपी ने कहा—माँ! लाला को चोरी करने की आदत हो गयी है। कोई इसे बुलाकर माखन खिलाता है तो वह नहीं खाता है। कहता है कि मुझे माखन नहीं भाता है। पर जब कोई नहीं होता तो चोरी करके वह माखन खा जाता है। वही उसे भाता है। उसे ऐसी आदत पड़ गयी है। यह सब सुनकर माता को बहुत क्षोभ हुआ। यशोदाजी ने कहा—अरी सखी! क्या आप लोगों को पता चल जाता है कि आज कन्हैया आने वाला है? गोपी ने कहा—माँ, पता तो चल जाता है। जिस दिन वह आनेवाला होता है, उस दिन उसकी बहुत याद आती है। माँ! मैं आपको क्या बतलाऊँ। रात्रि में जब मैं शय्या पर सोती हूँ, तब कन्हैया बहुत याद आता है।

रात्रि में शय्या में सोने पर आपको क्या याद आता है, जरा विचार कीजिये। मन की परीक्षा दिन में ठीक से नहीं होती है। रात्रि के समय पर होती है। देखिये कि निवृत्ति के समय पर मन कहाँ जाता है? निवृत्ति के समय पर मन जहाँ जाता है, वहाँ मन फँसा है, ऐसा समझ लीजिये।

श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण नाम का जप करते हुए गोपी सो जाती है। रात्रि में शय्या में वह बहुत भक्ति करती है। शय्या में जो भक्ति नहीं करता है, उसे काम मारता है। जब तक निद्रा नहीं आती, तब तक प्रभु के नाम का जप करते रहिये। जाग्रत अवस्था की समाप्ति और निद्रा की प्रारंभ की अवस्था की संधि में श्रीकृष्ण को रखने वाले की निद्रा भी भक्ति ही है। गोपी ने यशोदाजी से कहा—माँ! कभी मुझे ऐसी अनुभूति होती है कि श्रीकृष्ण मेरी शय्या में ही हैं। छोटे बालकृष्णलाल मुझे शय्या में ही दिखाई देते हैं। गोपी श्रीकृष्ण का स्मरण करते हुए श्रीकृष्ण के साथ ही सो जाती है। जो परमात्मा के साथ सोता है, उसे कैसा आनंद मिलता होगा? गोपी को काम का स्पर्श नहीं है। जो प्रभु के साथ सोता है, उसे काम का स्पर्श नहीं होता है।

जीव जब ईश्वर से विमुख होता है, तब काम उसे मारता है। शय्या में बहुत भक्ति कीजिये। शय्या में भक्ति की जरूरत है। गोपी ने कहा कि आज मुझे स्वप्न में आपका कन्हैया दिखाई दिया। मैंने स्वप्न में देखा कि बालकृष्णलाल ग्वाल बाल मित्रों के साथ मेरे घर आये हैं। मेरे घर का माखन छींके से उतार लिया है। सुबह चार बजे मैंने स्वप्न देखा और फिर जाग गयी। मुझे बहुत आनंद आया। मैं जान रही हूँ कि सुबह का स्वप्न सत्य होता है, इससे मुझे विश्वास है कि आज कन्हैया मेरे घर आयेगा।

माँ! मैं अपने घर का काम करती हूँ तो भी मुझे आपका कन्हैया ही दीख पड़ता है। कभी ऐसा आभास होता है कि कन्हैया दाँयें खड़ा है, बाँयें खड़ा है। गोपी को घर का काम करते हुए कन्हैया ही दीख पड़ता है। गोपी कहती है कि माँ! सुबह जब घर का काम करती हूँ, तो कन्हैया

बहुत याद आता है। माँ! सुबह उठकर जब मैंने चूल्हा जलाया तो चूल्हे में लकड़ियों के साथ बेलन भी जला दिया मुझे कुछ होश ही नहीं रहा। तब मुझे कन्हैया ही दिखायी दे रहा था।

माँ! कन्हैया जिस दिन आने वाला होता है, उस दिन हमें उसकी याद आती है। हमें होश ही नहीं रहता है। एक गोपी ने कहा कि माँ! मैं आपसे क्या कहूँ? लाला ने मेरी रक्षा जिस तरह से की है मैं कभी भी नहीं भूलूँगी। माँ! वह संकट के समय दौड़ता आ पहुँचा। हम तो क्या प्रेम करते हैं। हमारा प्रेम तो कुछ भी नहीं है। प्रेम तो कन्हैया करता है। वह हमारी रक्षा करता है। माँ! आज मुझे मार पड़ने वाली ही थी, पर लाला ने मुझे बचा लिया। यशोदामाता ने पूछा—अरी सखी, क्या हुआ? गोपी कहने लगी कि माँ! मैं आपसे क्या कहूँ? मेरे ससुरजी को क्रोध बहुत शीघ्र आ जाता है। वे बहुत क्रोध करते हैं। आज मेरे घर मेहमान आये थे। ससुरजी ने कहा कि हम खेत में जा रहे हैं, दो बजे वापस आ जायेंगे। आज खाना ठीक से बनाना। माँ! मैं रसोई में गलती कर बैठती हूँ। मुझे ऐसी आदत हो गयी है कि 'हरे कृष्ण-हरे कृष्ण' बोलते-बोलते मैं आटा तैयार करती हूँ। रोटी बनाती हूँ तो भी 'हरे कृष्ण-हरे कृष्ण' बोलती रहती हूँ। माँ! मैंने लाला से कहा कि तुम मेरे घर आना चाहो तो आ जाना, पर बेटा, जब मैं खाना बनाती हूँ, तब न आना। माँ! आपके लाला को देखने के बाद मुझे कुछ होश ही नहीं रहता है। कभी नमक डालना भूल जाती हूँ तो कभी छोंकना ही भूल जाती हूँ। यह गोपी जब खाना बनाती है, तब 'हरे कृष्ण-हरे कृष्ण' जप करती रहती है।

खाना बनाने वाला बहुत पवित्र होना चाहिये। खाना बनाने वाले का भाव सूक्ष्मरूप से अन्न में आता है और खानेवाले के भीतर जाता है। अन्न-दोष मन-बुद्धि को बिगाड़ता है। बहुत पवित्रता से, मन से प्रभु के नाम के जप करते हुए प्रेम से खाना बनाइये। भगवान् को भोग लगाइये। आजकल माताएँ भगवान् का नाम लेकर खाना नहीं बनाती हैं। कई तो ऐसी हैं कि सिनेमा के गीत गाते-गाते खाना बनाती हैं। रात्रि में सिनेमा देखकर आती हैं और सुबह बनाते-बनाते वही चित्र उन्हें याद आता है। रसोई बनाने वाले का मन बहुत पवित्र होना चाहिये। पति की बुद्धि को सुधारना पत्नी के हाथ में है। छह मास पवित्र अन्न पेट में जाता है तो धीरे-धीरे बुद्धि सुधरती है। अन्न के तीन भाग हैं—अन्न का स्थूल भाग, मल-रूप से बाहर निकलता है। मध्य भाग लहू-मांस बनता है और सूक्ष्म भाग से मन-बुद्धि बनती है। गोपी कहती है कि माँ! मुझे ऐसी आदत हो गयी है कि रोटी बनाते हुए मैं जप करती रहती हूँ। मैं रोटियों को घी लगाते हुए भी जप करती रहती हूँ। कृष्ण कृष्ण बोले बिना मुझे चैन नहीं आता है और जब मैं कृष्ण बोलती हूँ तब कन्हैया ही दिखाई देता है। मुझे तब बहुत आनंद होता है। मुझे होश भी नहीं रहता है। आज मैंने निश्चय किया था कि मेहमान

भोजन करने वाले हैं, इससे भोजन बनाते समय मैं लाला का स्मरण नहीं करूँगी। लाला को भूल जाऊँगी। बड़े-बड़े योगी जगत् को भूलने का यत्न करते हैं। जगत् भूलने के लिये वे आँखें बंद रखते हैं, नाक पकड़ते हैं, प्राणायाम करते हैं, फिर भी जगत् भुलाया नहीं जाता। आँखें बंद करने के बाद भी उन्हें जगत् दिखाई देता है। योगियों की ऐसी इच्छा होती है कि जगत् को भुलाया जाय और भगवान् के स्मरण में, दर्शन में तन्मयता आ जाय। धन्य हैं व्रज की गोपी, जो भगवान् को भूलने का प्रयत्न करती हैं पर श्रीकृष्ण उनसे भुलाये नहीं जाते। गोपी कहती है कि माँ! मैंने सब खाना बना लिया, पर अन्त में जब मोहन भोग बनाने लगी, तब कन्हैया बहुत याद आया। माँ! मैं जानती हूँ कि कन्हैया को मोहन भोग बहुत भाता है। कहीं अच्छी मिठाई या अच्छा फ़ल दिखाई देता है तो गोपी की इच्छा होती है लाला को अर्पण करने की। लाला को अच्छी वस्तु खिलाने की उसकी बहुत इच्छा होती है। गोपी का भाव है कि कन्हैया आरोगे और हम दर्शन करें।

गोपी लाला को सब कुछ अर्पित करती है। गोपी कहती है कि माँ! मैं जानती हूँ कि लाला को मोहन भोग भाता है। मुझे लगता है कि कन्हैया आ जाय तो अच्छा है। ये मेहमान तो दो बजे के बाद आने वाले हैं। अभी कन्हैया आ जाय तो मैं उसे मोहन भोग खिलाऊँ। मेरा कन्हैया खुश हो जायगा। माँ! मैंने आज निश्चय किया था कि खाना बनाते समय कन्हैया का स्मरण नहीं करूँगी। हरे कृष्ण, हरे कृष्ण' नहीं बोलूँगी पर यह रटन कब शुरू हो गयी, पता ही न चला और उसके विचारों में मैं तन्मय हो गयी। माँ! फिर मुझे कुछ होश ही न रहा। मोहन भोग में शक्कर के स्थान पर मैंने नमक डाल दिया। माँ! आज आँगन में मैंने कन्हैया को दो बार देखा। मैं पागल की तरह रसोईघर से दौड़कर बाहर आयी पर कन्हैया हाथ नहीं आया। यशोदाजी पूछने लगीं कि अरी सखी! फिर क्या हुआ? गोपी कहने लगी कि माँ! मोहन भोग में नमक डालने के कारण आज मुझे मार ही पड़ने वाली थी, पर लाला ने मुझे बचा लिया। मुझे कुछ भी मालूम न था। दो बजे ससुरजी मेहमान के साथ घर आये। मैंने ठाकुरजी को भोग लगाया। सभी को भोजन परोस दिया। माँ! लाला ने मेरी इज्जत रख ली। मेहमान तो खुश-खुश हो गये। मेरी प्रशंसा करने लगे बोले कि ऐसा स्वादपूर्ण मोहन भोग-तो हमने कभी नहीं खाया है, यह कैसे बनाया है?

मोहन भोग में गोपी ने भले ही नमक डाल दिया हो, पर एकाएक कण गोपी के मन का श्रीकृष्णनामामृत में भीगा हुआ था। श्रीकृष्ण का नाम अमृत से भी मधुर है। श्रीकृष्ण ने सोचा कि मेरे नाम-स्मरण में यह तन्मय बन जाती है। इसकी बेइज्जती न होनी चाहिए। गोपी कहती है कि मेरे लाला ने तो ऐसी लीला रचायी कि किसी को पता तक न चला। ससुरजी कभी मेरे लिए अच्छे शब्द नहीं कहते थे, पर आज वे भी मेरी प्रशंसा करने लगे। बोले कि कितनी सुन्दर रसोई

बनायी है। यह बहू क्या है, यह तो लक्ष्मी है। जब से इसका आगमन हुआ तब से मैं सुखी हुआ हूँ। माँ! मैंने सोचा कि मैंने खाना अच्छा बनाया है, इससे सब खुश हुए हैं। सब के भोजन कर लेने के बाद मैं जब भोजन करने बैठी तब मुझ अकेली को ही पता चला कि मैंने तो शक्कर के स्थान पर नमक डाल दिया है। माँ! आज लाला ने मेरी रक्षा की है। दूसरी गोपी ने कहा कि माँ! आज तो मेरी फजीहत हुयी। मेरे जेठजी भोजन करने बैठे थे, तब उनके लिए मैंने मरब्बा निकाला और उसी समय मुझे कन्हैया याद आ गया। मेरी सासजी कन्हैया को पटड़े पर बैठा देती है और मैं उसे खिलाती हूँ। हमारे घर में कन्हैया सबको बहुत प्यारा है। मेरे पतिदेव भी लाला के संग से बदल गये हैं। वे अब ब्रह्ममुहूर्त में उठकर ध्यान करते हैं। मेरे पतिदेव तो भगवान का कीर्तन करते हुए कभी-कभी देह-भान भी गँवा देते हैं। कन्हैया आये-ऐसे विचार में मैं तन्मय हो गयी और काँच का मर्तबान छींके में रखने के बदले अपने लड़के को ही उसमें रख दिया। बालक जब रोने लगा तब मुझे पता चला। माँ! आज ऐसा हुआ। व्यास महर्षि ने गोपियों को 'प्रेम संन्यासिनी' की उपाधि दी है। गोपी परमहंस हैं। भागवत परमहंसों की संहिता है।

यशोदाजी ने फिर कहा कि सखी आप लोगों को पता तो चल जाता है न कि कन्हैया आने वाला है? गोपियाँ कहती हैं कि हाँ माँ! पता तो चल ही जाता है। यशोदाजी ने कहा-तो ऐसा कीजिए कि जिस दिन आपको पता चले कि आज कन्हैया आयेगा, उस दिन घर में कुछ खाने का सामान ही न रखना। सब पीहर रखकर आना। सखी के घर रख देना। बालक है। आपके घर अच्छा-अच्छा खाना मिलता है न, इससे आता है। दो-चार बार कुछ नहीं मिलेगा तो फिर नहीं आयेगा। एक गोपी ने कहा कि माँ! आप किसे सीख देती हैं? कल ही मुझे मालूम हो गया था। माँ! मैं आँगन में बैठी थी। कन्हैया गोपाल-मंडली के साथ मेरे घर के पास से निकल गया। वह गोपालों के पीछे-पीछे चलता था। सब लोग आगे निकल गये। कन्हैया मेरे आँगन में खड़ा रह गया। मेरे सामने देखने लगा। लाला ने मुझ पर नजर डाली। माँ! लाला की आँखें बहुत सुन्दर हैं। लाला की आँखों में प्रेम भरा है। मुझे देखकर होठों में हँसने लगा। मैंने पूछा-कन्हैया! क्यों हँस रहा है? तो कहने लगा कि कल तुम्हारी बारी है। मुझे तुम्हारे घर का माखन खाना है, मैं कल तुम्हारे घर आने वाला हूँ। मैं समझ गई। मैंने घर में कुछ न रखा। माँ! कन्हैया जब घर आया तो उसे कुछ न मिला। इससे रूठ गया। उसने मेरे बच्चे को जगाया। मेरा बच्चा पालने में सोया था। कहने लगा कि मेरा ऐसा नियम है कि जिसके घर जाता हूँ घर के स्वामी का कल्याण करता हूँ और प्रसाद देकर घर छोड़ता हूँ। पर तेरी माँ ने कुछ रखा ही नहीं, मैं तुम्हें क्या प्रसाद दूँ? लो, मेरा प्रसाद।

ऐसा कहकर मेरे बच्चे को चुटकी काटने लगा। मेरा बच्चा रोने लगा। माँ! घर में कुछ नहीं रखते तो वह बच्चों को रुलाता है।

कन्हैया जब आपके घर आयेगा तब उसका सम्मान नहीं होगा तो वह रुलायेगा। प्रत्येक जीव से एकबार भगवान् मिलने जाते हैं, पर जीव भगवान् को पहिचान नहीं पाता। हमारे घर शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म लेकर प्रभु पधारेंगे तो उनका तेज हम सह नहीं सकेंगे। तब हम उलझन में पड़ जायेंगे। इससे हम देख सकें ऐसे ही स्वरूप में प्रभु पधारते हैं। कभी आपके घर भिखारी के रूप में आ जायँ या संभव है कि कभी वे साधु-संन्यासी के रूप में आ जायँ। वेदान्त कहते हैं कि प्रभु अरूप हैं, रूप-रहित हैं। ईश्वर का कोई स्वरूप नहीं है। इसका अर्थ यह है कि ईश्वर का कोई एक रूप नहीं है। हाथ में शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म हो तो ही क्या ईश्वर होते हैं? क्या उनका दूसरा कोई स्वरूप नहीं है? वस्तुतः ईश्वर का कोई एक स्वरूप निश्चित नहीं है। अनेक रूपरूपाय विष्णवे प्रभुविष्णवे– इस जगत् में जितने रूप दिखाई देते हैं, वे सभी तत्त्व से परमात्मा के ही हैं, ऐसा समझकर विवेक से व्यवहार कीजियेगा। किसी जीव का तिरस्कार न कीजियेगा। सभी को मान देना, सभी में सद्भाव रखना। अगर आपको तिरस्कार करने की आदत पड़ गयी तो जब कभी प्रभु आयेंगे, आपसे तिरस्कार हो जायेगा। सभी के समक्ष हाथ जोड़ने में क्या होता है? सभी को मान देने में क्या आपका कुछ कम हो जाता है? आपके घर प्रभु पधार रहे हैं और आप सोये हुए हैं, प्रभु का सम्मान नहीं कर पाते तो प्रभु आपको रुलायेंगे ही। बोलेंगे कि तुम्हारे घर आया था। मेरे कारण ही तुम्हें सब कुछ प्राप्त होता है, पर जब मैं आया तुमने मेरी ओर देखा तक नहीं। तुमने मेरा तिरस्कार किया। तुम इस सबके लिए लायक नहीं हो!

यशोदा कहती हैं–अरी सखी! आप सब कहती हैं कि कन्हैया शरारत करता है पर जब मैं उससे पूछती हूँ, तब वह इन्कार कर देता है। ऐसा करो कि जब लाला तुम्हारे घर आ जाय, तब उसे पकड़कर मेरे घर ले आना। मैं उसे सजा दूँगी। प्रभावती ने लाला को पकड़ने का बीड़ा उठाया। प्रभावती से लाला ने कहा–कल मैं तुम्हारे घर आनेवाला हूँ। प्रभावती ने घर दही, माखन सब कुछ रखा उसने सोचा कि लाला जब माखन खायेगा, तब ही उसे पकड़ लूँगी।

गोपाल-मंडली के साथ लाला आ पहुँचा। प्रभावती पलंग के नीचे छिप गई। लाला ने मटकी उतार ली और मित्रों को माखन देने लगा। प्रभावती को बहुत आनंद आया। वह धीरे-धीरे बाहर निकली। लड़कों की दृष्टि गई। बोले–कन्हैया, कन्हैया, वह आयी! बालक सब भाग गये पर कन्हैया खड़ा ही रहा। प्रभावती ने लाला की कलाई पकड़ ली। लाला ने कहा–तेरे पाँवों पड़ूँ, अब कभी तुम्हारे घर नहीं आऊँगा। आज के दिन मुझे छोड़ दे। प्रभावती लाला को नहीं छोड़ती

है। उसका एक पुत्र था। लाला जैसा ही था। उसने देखा कि माँ तो लाला को पकड़कर यशोदाजी के पास ले जा रही है। वह अपनी माता से कहने लगा—माँ! मैंने ही कल लाला को अपने घर बुलाया था। यशोदा माँ मुझे हर रोज माखन देती हैं। इससे मैंने आज लाला को निमंत्रण दिया है। लाला ने चोरी नहीं की है। माँ! तुम लाला को छोड़ दो मुझे मारो, मुझे सजा दो। मंडली के बालक रोने लगे। यशोदामाता लाला को मारेंगी तो!

प्रभावती सोच रही है कि आज मैं लाला को पकड़कर ले जाऊँगी। यशोदामाता लाला को धमकायेंगी तो कुछ नहीं बोलूँगी, अगर वे लाला को मारने जायेंगी तो मैं उनका हाथ पकड़ लूँगी। कन्हैया बहुत कोमल है। उसे मार पड़े, ऐसा मैं नहीं चाहती हूँ।

वह लाला को पकड़कर ले जाने लगी। लाला ने बालकों से कहा—तुम लोग घबराना नहीं, मैं मजाक करने वाला हूँ। प्रभावती लाला को पकड़कर ले जाने लगी, तब वह लाला को भूल गयी। जीवन की अंतिम साँस तक भक्ति कीजिए। कई व्यक्ति भक्ति में आनन्द की अनुभूति करते हैं, पर इससे भक्ति परिपूर्ण नहीं होती है। परमात्मा हाथ में आ जायँ तो भी भक्ति नहीं छोड़नी है। जीव को भक्ति मिलती है, और जगत का मोह होता है तो भगवान् छिटक जाते हैं। भगवान् हाथ में आ जायँ, तो भी भक्ति को नहीं भूलना चाहिए। प्रभावती के हाथ में श्रीकृष्ण के आ जाने के बाद वह श्रीकृष्ण का स्मरण नहीं कर रही है, पर अपना ही चिंतन करने लगी कि मैं कैसी हूँ....लाला को मैं पकड़ सकी हूँ। निष्काम बुद्धि प्रभावती है। निष्काम बुद्धि भगवान् को पकड़ सकती है पर ईश्वर हाथ में आ जायँ, तब अभिमान आ जाता है और अभिमान आ जाने से ईश्वर छिटक जाते हैं।

लाला ने मजाक किया। प्रभावती से कहा—मैं तुम्हारे साथ चलने के लिए तैयार हूँ पर मेरी कलाई तुमने बहुत जोर से पकड़ ली है, यह दुःख रही है, इसे छोड़ दो, और मेरा दूसरा हाथ पकड़ लो।

प्रभावती ने लाला का दूसरा हाथ पकड़ लिया। रास्ते में वृद्ध लोग मिले तो प्रभावती ने घूँघट निकाला। लाला ने अपने तीव्र नाख़ूनों से चुटकी काटी। प्रभावती ने हाथ बदला। उसे बार-बार हाथ बदलना पड़ा। कन्हैया ने युक्ति करके उसके पुत्र का हाथ ही उसके हाथ में दे दिया और स्वयं दौड़ता हुआ अपने घर पहुँचा गया। प्रभावती के पाँवों में गति थी। घूँघट निकाला था, इसलिए उसे कुछ भी पता न चला। कन्हैया घर में पहुँच गया, और तब पीछे से वह आ पहुँची। प्रभावती ने कहा—माँ! देखिये! आपके कन्हैया को पकड़कर ले आयी हूँ।

यशोदाजी ने कहा–श्रीकृष्ण तो भीतर हैं। प्रभावती ने कहा–बाहर हैं। आनंद भीतर ही है, आनंद को जो बाहर ढूँढ़ने जाता है उसकी फजीहत होती है। आनंद चेतन परमात्मा का स्वरूप है। किसी जड़ वस्तु में आनंद नहीं हो सकता है। उपनिषद् कहते हैं–'निहितं गुहायाम्'।

यशोदाजी हँसने लगीं। प्रभावती ने घूँघट हटाकर देखा तो.... अपना ही पुत्र। प्रभावती बालक को मारने लगी। बालक मार सहता है पर रोता नहीं है सोचता है कि आज मैं लाला के लिये मार खा रहा हूँ। मेरा कन्हैया बच गया। जो परमात्मा के लिये मार खाता है, जो परोपकार के लिये मार खाता है, उस मार में परमात्मा का प्यार होता है।

प्रभावती को आश्चर्य हुआ। उसने यशोदामाता से कहा–माँ, रास्ते में कुछ गड़बड़ हो गयी है। यशोदामाता ने उसकी बात को नहीं माना–

नरसैया का स्वामी सच्चा, झूठी सब व्रज नारी रे।

प्रभावती को बहुत दुःख हुआ। वह धीरे-धीरे घर की ओर चल पड़ी। लाला ने खेल किया। एक स्वरूप यशोदाजी के पास रखा और दूसरा स्वरूप उसके पीछे चला। प्रभावती के ससुरजी की सी आवाज निकालकर लाला ने कहा–अरी प्रभावती! प्रभावती ने मुड़कर देखा, तो कन्हैया खड़ा था। कन्हैया ने कहा–मैं तुम्हें विशेष रूप से कहने आया हूँ कि अगर तुम मेरे या मेरे मित्रों के पीछे पड़ोगी तो मैं तुम्हारी फजीहत करूँगा। आज तो तुम्हारे लड़के को ही पीछे लगा दिया, पर दूसरी बार मुझे पकड़ोगी तो तुम्हारे पति को ही तुम्हारे पीछे लगा दूँगा और फिर सारे गाँव में तुम्हारी फजीहत होगी। प्रभावती पूछने लगी–लाला! तुम्हें ऐसा कौन सिखाता है? लाला कहने लगा–मुझे कौन सिखायेगा? मैं ही सभी को सिखाता हूँ–

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम्।
देवकी परमानन्दं कृष्णं वंदे जगद्गुरुम्॥

श्रीकृष्ण जगद्गुरु हैं। बाललीला एक दो नहीं, अनेक हैं। अनेक तरह की हैं। लाला ने ललिता गोपी के साथ खिलवाड़ किया है। चन्द्रावली की कथा आती है। दुर्वासा ऋषि के साथ भी खेल किया है। दुर्वासा ऋषि को शंका हुई कि क्या यह श्रीकृष्ण परमात्मा हैं? ना, ना, यह तो ग्वाले का बेटा है। दुर्वासा ऋषि परीक्षा करने लाला के पेट में गये। लाला ने ऋषि को पेट में ही ब्रह्मांड के दर्शन करवाये हैं। दुर्वासा ऋषि को विश्वास हो गया कि यह ही परमात्मा हैं। इसके बाद गणपति महाराज की कथा है। यशोदा माता ने गणपति महाराज की मनौती मानी है। गणपति महाराज लाला को लड्डू खिलाते।

५८– निष्काम भाव से प्रस्फुटित होती है प्रेमलक्षणा भक्ति

भागवत में तो बाल लीला के एक-दो श्लोक ही वर्णित हैं, पर वृन्दावन के साधुओं द्वारा इनका बहुत विस्तार हुआ है। वृन्दावन में सुखिया नाम की मालिन रहती थी। वह गोकुल में गोपियों के घर पुष्प तुलसी देने जाती थी, और जब-जब वह जाती गोपियों से लाला की बातें सुनती थी। उसे कृष्ण-कथा सुनने का व्यसन सा हो गया। जब तक लाला की बातें न सुनती, उसे अच्छा न लगता। वह नियम से कृष्ण-कथा सुनती थी। लाला ने आज ऐसा किया......लाला ने कल ऐसा किया.....। उसके हृदय में धीरे-धीरे कृष्ण-प्रेम अंकुरित होता है और लाला के दर्शन की भावना होती है। वह सोचती रहती है कि गोपियाँ जिसकी बातें करती हैं, वह कन्हैया कैसा होगा? मुझे लाला के दर्शन करने हैं। मालिन यशोदाजी के आँगन में खड़ी रहती है। सोचती है कि कन्हैया बाहर निकलेगा तो मैं उसे देखूँगी। मालिन की श्रीकृष्ण दर्शन की बहुत इच्छा है पर साथ-साथ उसके मन में अन्य वासनाएँ भी हैं। जब तक संसार की एक भी वासना मन में रहती है, तब तक जीव प्रभु-दर्शन के योग्य नहीं होता है। मालिन जब-जब दर्शन करने आती है, कन्हैया भीतर ही बैठा रहता है, बाहर निकलता ही नहीं है। कई दिनों तक ऐसा होता रहा। मालिन लाला की प्रतीक्षा करती है पर लाला बाहर ही नहीं आता है। एक दिन मालिन ने भूदेव से पूछा—महाराज! जब-जब मैं वहाँ जाती हूँ, वह बाहर नहीं आता है। गोपियाँ कहती हैं कि वह प्रेममय है। मेरे कुछ पाप होंगे इससे मुझे उसके दर्शन नहीं होते हैं। मुझे लाला के दर्शन हों, ऐसा कोई उपाय बतलाइये। भूदेव ने कहा—सुबह उठकर जब ध्यान में बहुत तन्मय होती है, तब उसके दर्शन होते हैं। तब देह-भान भुलाया जाता है और देव दिखाई देते हैं। जिसे याद रहता है कि मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ—उसे देव के दर्शन ठीक से नहीं होते हैं। तुम परमात्मा का ध्यान-स्मरण करो। मालिन ने कहा—सुबह से ही मैं कैसे ध्यान करूँ? भूदेव ने कहा—लाला की सेवा घर में ही करना। मालिन ने कहा—महाराज मैं लाला की सेवा नहीं कर सकती हूँ। भूदेव ने कहा—लाला के लिए कोई एक नियम लेना पड़ता है। भक्ति के लिए तुम कोई एक नियम ले लो।

मन तो छलिया है। मन को पाप करने की छुट्टी न दीजियेगा। एक बार मन को पाप करने की छुट्टी देने पर वह पुनः-पुनः वही माँगेगा और फिर मन को पाप करने में आनन्द आयगा। जीवन बिगड़ जायगा। इस कथा सुनने के बाद आप अपने मन को किसी नियम में बाँध लो, उसे मुक्त न रखो। उसे एकबार भी पाप करने के लिये छुट्टी न दीजियेगा। पाप छोड़िये। भक्ति का कोई एक नियम लीजिये, तो कथा का पूर्ण फल मिलेगा। आपका कल्याण होगा। आप पर भगवान्

की बहुत कृपा होगी। लोग समझते हैं कि पाँच-दस रुपये भेंट करने से भागवत का सब पुण्य मिल जाता है। अरे धन से कभी पुण्य मिलता है? प्रभु ने धन दिया है और उसका सदुपयोग कर रहे हैं तो अच्छा है, पर कथा के फल की इच्छा है तो पाप छोड़िये। विचारिये कि आज से मैंने निश्चय किया है कि मैं झूठ नहीं बोलूँगा। मैं क्रोध नहीं करूँगा। पाप छोड़कर भक्ति करने वाले पर भगवान् तुरन्त प्रसन्न होते हैं। लोग भक्ति करते हैं पर प्रायः पाप चालू रखते हैं। इससे ऐसी भक्ति प्रभु को भाती नहीं है।

भूदेव ने मालिन से कहा—तुम्हें कोई नियम तो लेना ही पड़ेगा। मालिन ने कहा—महाराज मैं बहुत गरीब हूँ। मैं रख सकूँ ऐसा नियम दीजिए। भूदेव ने सोचकर कहा—मालिन, तुम नन्दबाबा के आँगन में खड़ी रहती हो न! वह अच्छा नहीं है। तुम आज से नन्दबाबा के राजमहल की एक सौ आठ प्रदक्षिणा करने का नियम ले लो। तुम्हारे पाप भस्म हो जायेंगे। प्रभु को तब दया आयगी। प्रदक्षिणा करते-करते प्रभु से प्रार्थना करना कि हे परमात्मा! मुझे आपके दर्शन करने हैं। मालिन ने सोचा कि इसमें तो दो पैसे का भी खर्च नहीं है। मुझे हर रोज गोकुल में तो जाना ही पड़ता है। मैं आँगन में खड़ी रहती हूँ, यह तो अच्छा नहीं है। इससे आज से हर रोज एक सौ आठ प्रदक्षिणा का नियम लूँगी। उसने महाराज से कहा—महाराज! प्रदक्षिणा कैसे करनी है यह समझाइए। महाराज ने कहा—श्रीकृष्ण के स्मरण में हाथ जोड़कर प्रदक्षिणा करनी चाहिए। मन से स्मरण करना और जीभ से भगवान् के नाम के जप करते हुए प्रदक्षिणा करना। प्रदक्षिणा कर रहे हो, तब धीरे-धीरे चलना। कुत्ता पीछे पड़ जाय और हम दौड़ते हैं—उस तरह से दौड़ते हुए कई लोग परिक्रमा पूर्ण करते हैं। यह अनुचित है। मालिन ने भूदेव से पूछा—मुझे श्रीबालकृष्णलाल के दर्शन कब होंगे? भूदेव ने कहा—तीन वर्षों तक तुम नियम से परिक्रमा करो। लाला को दया आयेगी। वह बहुत प्रेममय है। वह अति उदार है।

मालिन हर रोज नियम से नन्दबाबा के राजमहल की एक सौ आठ प्रदक्षिणा करती है। प्रदक्षिणा करते हुए लाला को मनाती है—नन्दकुमार! बाहर आइये, मुझे दर्शन दीजिये। धीरे-धीरे उसका मन शुद्ध हो रहा है। श्रीकृष्ण-दर्शन के लिए उसके प्राण तड़प रहे हैं। मालिन सोचती है कि गोपियाँ कहती हैं, वह तो बहुत प्रेममय है। छुम-छुम करके बाहर आता है। तीन वर्ष व्यतीत हो गये। मैं लाला के पीछे पड़ी हूँ। अभी तक मुझे एकबार भी नहीं दिखाई दिया। आज मालिन ने निश्चय किया कि लाला के दर्शन के बिना पानी भी नहीं पीना है। सुन्दर-सरस फलों की टोकरी सिर पर है और पुकार रही है—फल लो, फल लो। लाला के कानों तक शब्द पहुँचे। लाला

ने सोचा कि यह जीव तीन साल से मेरे पीछे पड़ा है। यह जीव दर्शन के लिये योग्य तो नहीं है पर इसकी भक्ति को दृढ़ करने के लिए आज मैं दर्शन दूँगा। किये हुए कर्म का फल देने वाले परमात्मा की आज फल लेने की इच्छा हुई। आज बालकृष्णलाल दौड़ते हुए बाहर आये। पाँच वर्ष का कन्हैया है, बहुत सुन्दर दिखाई दे रहा है। यशोदा माता ने पीताम्बर पहिनाया है। सुवर्ण की करधनी है, बाजूबन्द पहिने हैं। कानों में कुण्डल हैं, नाक में मोती लटक रहा है। गाल पर सुन्दर तिलक है। रेशम से बाल है। मोर पंखों का मुकुट है। हाथ में छोटी सी बाँसुरी है। चरणों में सुवर्ण के नूपुर हैं। छुम-छुम-छुम करके चलता है। लाला की आँखों में प्रेम भरा है। लाला ने दो हाथ आगे किये और माँगने लगा मुझे फल दो। मालिन को बालकृष्णलाल के दर्शन हुये। चार आँखें जब मिलती हैं, तब दर्शन में बहुत आनन्द आता है। कन्हैया प्रेम से मालिन को देखता है। मालिन को लाला के दर्शन से बहुत आनन्द हुआ। सोचने लगी कि कैसा दिखाई देता है। यशोदा माता ने बहुत पुण्य किये होंगे। तभी ऐसे बालक का उनके पेट से जन्म हुआ। लाला को मेरी नजर न लग जाय कहीं! मेरी आँखें बहुत खराब हैं। यह बालक सदा-सर्वदा आनन्द देता है। लाला के दर्शन के बाद मालिन की लाला के साथ बोलने की इच्छा हुई है। उसका प्रेम क्षण-क्षण बढ़ रहा है। लाला से उसने कहा—बेटा मैं गरीब हूँ। फल देने नहीं आयी हूँ, फल बेचने आयी हूँ। तुम थोड़ा अनाज ले आओ। बालकृष्णलाल दौड़ते हुए भीतर गये। मालिन ने अनाज तो माँगा, पर बाद में उसे दुःख होने लगा।

वह सोचने लगी कि मुझ से गलती हो गई है। इसने फल क्या मेरे प्राण माँगे होते तो भी कम थे। वह प्रेम से बाहर आया। मेरी बुद्धि भ्रष्ट हुई और मैंने कहा कि फल बेचने आयी हूँ। गरीब हूँ। पर मैंने इसमें कुछ झूँठ तो कहा नहीं है। सच ही तो कहा है। मालिन को चिंता थी, कि घर जाकर क्या खाऊँगी? मालिन ने लाला से सच ही कहा था पर अब सोच रही है कि लाला बाहर नहीं आयेगा क्या? नहीं वह आयेगा तो। मुझ से कहा है कि मैं आऊँगा! मालिन को प्रेम बहुत बढ़ने लगा। मालिन के घर में आठ कन्याएँ थीं। एक भी पुत्र न था। लाला को देखकर उसके मन में ऐसा प्रेम जाग्रत हुआ कि मेरा भी ऐसा पुत्र हो तो कितना अच्छा! यशोदा माता जब बालकृष्णलाल को गोद में लेती हैं, तब उन्हें कितना आनन्द होता होगा? मुझे भी कभी ऐसा आनन्द मिल सकेगा? लाला को देखकर मालिन के मन में ऐसा भाव जगा कि कन्हैया दो मिनट मेरी गोद में आ जाय तो मुझे बहुत आनन्द हो। वह राह देख रही है। बालकृष्णलाल घर में गये हैं। एक मुट्ठी में चावल लेकर दौड़ते-दौड़ते लौटते हैं। लाला के हाथ बहुत कोमल हैं। रास्ते में चावल बिखर जाते हैं । थोड़े से चावल मुट्ठी में बचे हैं। वे टोकरी में डाल दिये। मालिन के हृदय

में प्रेम है। ऐसी भावना है कि यह बालक मेरी गोद में आ जाय पर मैं ऐसा कैसे कहूँ कि तुम मेरी गोद में आ जाओ? ऐसा मुझ से कैसे कहा जायगा? उसके हृदय का प्रेम बालकृष्णलाल समझ गये। बालकृष्णलाल उसकी गोद में गये। वे गोद में बैठ गये। मालिन को आनन्द मिलने लगा। उसका प्रेम बढ़ने लगा। उसके मन में ऐसा प्रेम जगा कि कन्हैया मुझें एक बार माँ कह कर पुकारे। मुझ से ऐसा कहा तो नहीं जायगा। मालिन क्षोभ के कारण ऐसा नहीं कह पाती कि तुम मुझे एक बार 'माँ' कह कर पुकारो।

लाला को दया आ जाती है। कन्हैया सोचता है कि इसकी ऐसी भावना है कि मैं इसका पुत्र हो जाऊँ! मैं तो सभी का पुत्र हूँ। मैं सभी का पिता हूँ और सभी का दादा भी हूँ। जीव जैसा भाव रखता है, उसी भाव के अनुसार मैं प्रेम रखता हूँ। मालिन की बहुत भावना थी, इससे लाला ने कहा कि माँ मुझे फल दे। लाला ने मालिन को 'माँ' कहा। मालिन को अतिशय आनन्द हुआ। वह सोच रही है कि लाला को क्या दूँ? उसके हाथ में अंगूर हैं, जामुन हैं। मालिन लाला पर निछावर हो जाती है। उसने लाला से कहा कि बेटा! आज मुझ से भूल हो गयी, मैंने अनाज की माँग की। अब मैं तुम से कभी कुछ नहीं माँगूँगी। हर रोज तुम्हारे लिये सरस फल ले आऊँगी। बेटा! मेरी बहुत इच्छा है कि जब मैं फल लेकर आऊँ तब तुम बाहर आ जाना। बेटा! मैं ऐसा आग्रह नहीं कर रही हूँ कि तुम मेरी गोद में बैठना, पर तुम्हारा मन हो जाय, तो मेरी गोद में बैठना, मुझे बहुत आनन्द होगा। बेटा! मैं योग्य तो नहीं हूँ पर अगर तुम मुझे एकबार 'माँ' कहकर पुकारोगे तो मैं अपना सब दुःख भूल जाऊँगी। मालिन कह रही है पर लाला ने तो कुछ सुना ही नहीं। हाथ में फल आ गये तो वह दौड़ता हुआ घर में भाग जाता है। साथ में मालिन का मन भी चोरी करके ले जाता है। मालिन के पास अब मन नहीं है। वह तो पागल सी हो गयी। वह स्वप्न देखने लगी कि कन्हैया मेरी गोद में बैठा है, कन्हैया मुझे माँ कहकर बुलाता है। मालिन का ऐसा मन हुआ कि मैं यहीं रह जाऊँ। यशोदा माता मुझे दासी बनाकर रखें, तो अच्छा है। मैं तुच्छ से तुच्छ कार्य करूँगी। घर का जूँठा खाना देंगे तो भी मेरा काम चल जायेगा। मैं अपने घर जाना नहीं चाहती। इस तरह मालिन की घर जाने की इच्छा ही नहीं हो रही है। पर घर तो उसे जाना ही पड़ेगा अन्यथा घर से सब लोग खोजते हुए आ जायेंगे। उसने टोकरी सिर पर रख ली। और लाला का स्मरण करते-करते घर पहुँच गयी। घर आकर देखा, तो उसकी टोकरी रत्नों से भर गयी थी! एक-एक रत्न लाख-लाख रुपये का था। उसके जन्म का दारिद्रय लाला ने दूर कर दिया था। लाला का प्रण है कि मेरे आँगन में आया जीव दीन नहीं रहेगा। आप जो कथा सुन रहे हैं प्रभु के नाम का जप

कर रहे हैं, जो दान दे रहे हैं–इन सब सत्कर्मों का पुण्य-रूपी फल श्रीकृष्ण को अर्पण कीजिये। कोई भी अच्छा कार्य करने के बाद उसे भूल जाइए। जो अपने कर्म-रूपी पुण्य का फल भगवान् को अर्पण करता है, उसकी टोकरी भगवान् रत्नों से भर देते हैं। मानव की बुद्धि भी टोकरी जैसी है। प्रेम लक्षणा भक्ति रत्न-सदृश है। अपरोक्ष ज्ञान ही रत्न है। अपने किये हुए सत्कर्मों के फल श्रीकृष्ण को अर्पण करने से बुद्धि में प्रेम-लक्षणा भक्ति प्रस्फुटित होती है। अपरोक्ष ज्ञान-सा स्फुरण होता है। मालिन की टोकरी कन्हैया ने रत्नों से भर दी। उसका प्रकाश चारों ओर फैल गया है और प्रकाश में बालकृष्णलाल दिखाई देते हैं। दायीं ओर श्रीकृष्ण, बायीं ओर श्रीकृष्ण, आगे श्रीकृष्ण, पीछे श्रीकृष्ण, भीतर श्रीकृष्ण, बाहर श्रीकृण–श्रीकृष्ण के सिवाय उसे और कुछ भी नहीं दिखाई देता है। वह चारों ओर श्रीकृष्ण के दर्शन करती हुई–

हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण हरे-हरे।
हरे राम, हरे राम, राम-राम हरे-हरे॥

कीर्तन करती है। श्रीकृष्ण-दर्शन में–अति आनन्द में वह तन्मय हो गयी है। बालकृष्णलाल अंगूर लेकर घर में जाते हैं। माता से कहते हैं–माँ अंगूर लेकर आया हूँ। यशोदा माता के मुँह में देते हैं। यशोदा माता को आनन्द होता है। यह अंगूर कहाँ से लाया होगा? ऐसे मधुर अंगूर मैंने कभी नहीं खाये हैं। एक दासी ने कहा कि कन्हैया बाहर गया था। वहाँ एक मालिन की गोद में बैठा था। इसने मालिन को माँ कहकर पुकारा, तब मालिन ने इसे अंगूर दिये।

यशोदा माता को यह सुनकर जरा भी बुरा न लगा। कन्हैया सभी को माँ कहकर पुकारता है, तो क्या बुरा है! यह तो सभी का पुत्र है। आज सब लाला को आशीर्वाद देते हैं, मेरा पुत्र सुखी होगा, आज सुबह से कन्हैया सभी को–गोपियों को ग्वालों को मित्रों को अंगूर देता है फिर भी टोकरी भरी ही रहती है। यशोदामाता ने सोचा कि आज लाला को आशीर्वाद देने के लिये अन्नपूर्णा माता मेरे घर आयी होंगी। श्रीकृष्ण की बाललीला सुनने से श्रीकृष्ण में श्रद्धा उत्पन्न होती है। श्रद्धा से सेवा स्मरण करने से धीरे-धीरे श्रद्धा आसक्ति में परिणत होती है। भगवत्स्वरूप में मन आसक्त बनता है। स्वरूप में और नाम-स्मरण में आसक्त होकर जो भक्ति करते हैं, उनकी भक्ति व्यसन-रूपा हो जाती है। भक्ति जब व्यसन-रूपा हो जाती है, तब उसे प्रेमलक्षणा भक्ति कहते हैं। प्रेम-लक्षणा भक्ति वासना का विनाश करती है। प्रेम-लक्षणा-भक्ति परमात्मा को बाँधती है। जीव जब ईश्वर को बाँधता है, तब माया के बन्धन से मुक्त हो जाता है। गोपियों का प्रेम अति बढ़ गया है। गोपियाँ प्रेम से लाला को बाँधती हैं।

५९. प्रेम-परतंत्र परमात्मा

एकदा गृहदासीषु यशोदा नन्दगेहिनी।
कर्मान्तरनियुक्तासु निर्ममन्थ स्वयं दधि॥
यानि यानीह गीतानि तद्बालचरितानि च।
दधिनिर्मन्थने काले स्मरन्ती तान्यगायत॥ (१०-९-१/२)

परमात्मा श्रीकृष्ण परम प्रेमस्वरूप हैं। प्रेम और परम प्रेम में अन्तर है। जो पुत्र या मित्र के साथ स्नेह किया जाता है, उसे प्रेम कहते हैं। सब के साथ प्रेम किया जाता है, उसे परम प्रेम कहते हैं। श्रीकृष्ण सभी जीवों से प्रेम करते हैं। जब परमात्मा प्रेम करते हैं, तब इस जीव की पात्रता का भी विचार नहीं करते। इस जगत् में अनेक जीव ऐसे हैं, जो परमात्मा का अनादर करते हैं कि ईश्वर कहाँ हैं? मैं ईश्वर को नहीं मानता। फिर भी परमात्मा सबको मानते हैं। यह पृथ्वी परमात्मा की है। मानव पृथ्वी के आधार पर स्थित है। परमात्मा पवन सभी को देते हैं। परमात्मा सभी को प्रकाश देते हैं। परमात्मा ही अन्न-जल देते हैं। फिर भी जीव अभिमान में आकर बोलता है कि मैं ईश्वर को नहीं मानता। कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि मैं ईश्वर को मानता हूँ; किन्तु एक आसन पर तीन घण्टे बैठकर मुझे भगवान् की भक्ति करने की फुरसत नहीं है। जिसे चौबीस घण्टे में केवल तीन-चार घण्टे एक आसन बैठकर भगवान् की भक्ति करने की फुरसत नहीं है वह ईश्वर को माने. या न माने दोनों समान ही हैं। "मैं ईश्वर को मानता हूँ।" यह कहने से कोई लाभ नहीं। तुम भगवान् के लिए कितना समय देते हो, उसी का महत्त्व है। जो भगवान् के लिए तीन-चार घण्टे का भी समय नहीं देता, वह भगवान् को ठीक तरह से मानने वाला नहीं कहा जा सकता।

प्रेम और परम प्रेम में दूसरा भी अन्तर है। जो प्रेम थोड़ा-सा भी स्वार्थ लेकर किया जाता है। वह साधारण प्रेम कहलाता है। जो प्रेम किसी बदले की भावना छोड़कर निःस्वार्थ भाव से किया जाता है, उसे परम प्रेम कहते हैं। परमात्मा बिना किसी स्वार्थ के जीव से प्रेम करता है। लक्ष्मीपति परमात्मा किसी से पैसा नहीं माँगते, वह केवल प्रेम चाहते हैं। यह जीव अनेक बार परमात्मा को पैसा देता है किन्तु प्रेम नहीं देता। मनुष्य स्त्री के साथ प्रेम करता है, किसी पुरुष के साथ प्रेम करता है; किसी कपड़े से प्रेम करता है। उसे परमात्मा को साष्टाँग दण्डवत् प्रणाम करने में संकोच होता है, लज्जा आती है। उसे कपड़ा गन्दा होने की चिन्ता होती है। मनुष्य जितनी सावधानी कपड़ा सम्हालने में करता है उतनी वह अपने दिल की नहीं करता। उसे कपड़े में दाग लगने की तो चिन्ता होती है, किन्तु अपने मन को दाग लगने की चिन्ता नहीं होती। थोड़ा-सा

अपने अन्तर की ओर देखो, मन को बारंबार देखो तो पता लगे कि मन में कितने दाग लगे हुए हैं? यदि कपड़े में दाग लगेगा तो वह बाजार से दूसरा खरीदा जा सकता है; किन्तु यदि मन खराब हो जाएगा, तो वह बाजार से दूसरा नहीं मिलेगा।

शरीर एक दिन गलित हो जाएगा। इस संसार में जिसकी उत्पत्ति होती है, उसका क्षय भी होता है। जिसका क्षय होता है, उसे शरीर कहते हैं। ''शीर्यते इति शरीरम्'' किसी के मरण से ईश्वर की सृष्टि में कोई अन्तर नहीं पड़ता। मरने पर पंच महाभूत में मिल जाते हैं। जीवात्मा मरने के बाद केवल मन को साथ लेकर जाता है, शरीर छोड़ने पर मन ही साथ में आता है। हमारा यह तन पूर्व जन्म का मन लेकर आता है। जो मन मरने के बाद भी साथ जाने वाला है, उसे अधिक सावधानी से सम्हालना चाहिए।

मैं यह नहीं कहता कि जगत् से घृणा करो; किन्तु यहाँ किसी जीव से अधिक प्रेम भी न करो। इस संसार में केवल परमात्मा ही प्रेम करने योग्य है। परमात्मा से प्रेम करो। कदाचित् आप यह शंका करेंगे कि महाराज आप प्रतिदिन परमात्मा से प्रेम करने को तो कहते हैं, किन्तु प्रभु में तो प्रेम होता ही नहीं। आप भगवान् में प्रेम होने का कोई उपाय बताइए। आप जरा विचार तो कीजिए कि अपने घर के लोगों से कैसे प्रेम करते हैं? पति ऐसा समझता है कि पत्नी मुझे सुख देती है और पत्नी ऐसी कल्पना करती है कि पति के कारण ही सुखी हूँ। घर के लोग मुझे सुख देते हैं, ऐसा समझने से प्रेम होता है। आज से आप ऐसा निश्चय कीजिए कि प्रभु ने ही मुझे सुख दिया है। न कोई स्त्री सुख देती है, न कोई पुरुष सुख देता है। यहाँ सब अपने किये गये कर्म का फल भोगने के लिए इकट्ठा हुए हैं। कर्म का सम्बन्ध पूरा होते ही सुख देने वाला ही दुःख का कारण बनता है।

व्यवहार में यह देखा गया है कि जिससे अधिक सुख मिलता है, वही रुलाता है। सुख तो परमात्मा देता है। आपको यदि थोड़ा ठंडा पानी मिले तो विचार करो कि यह किसने दिया है? किसी मनुष्य में पानी पैदा करने की शक्ति नहीं है। पानी तो परमात्मा देता है। यदि पानी मिले, तो भगवान् का एहसान मानना कि उसने पानी दिया। यदि आप बारंबार अपने मन में विचार करेंगे कि मैं परमात्मा की कृपा से सुखी हूँ, तो ही प्रभु में प्रेम उत्पन्न होगा। जो यह समझता है कि मैं अपने कर्म से सुखी हूँ, वह अभिमानी है। ऐसा विचार करो कि भगवान् मुझे सुख देते हैं; प्रभु की कृपा से मुझे धन मिला है और जो मान या धन आपको मिला है क्या वह किसी योग्यता से मिला है? इसके लिए अपनी दृष्टि अन्दर की ओर मोड़ो और विचार करो कि क्या मैं इसके योग्य हूँ?

मैंने आज तक कितना पाप किया है? विचार करो कि मैंने मन से बहुत पाप किया है, आँख से बहुत पाप किया है। फिर भी प्रभु ने मुझे बहुत कम सजा दी है। प्रभु ने मुझे बहुत सुख दिया है।

परमात्मा मनुष्य की योग्यता से अधिक मान या आदर देते हैं, सुख देते हैं। परमात्मा अत्यन्त उदार हैं। अहेतुकी प्रेम करना प्रभु का स्वभाव है। परमात्मा प्रेम किये बिना रह ही नहीं सकता। वह नास्तिकों से भी प्रेम करता है। वैष्णव-जन अपने प्रेम द्वारा ही भगवान् को अपने वश में करते हैं। इसलिए प्रेम-बल ही सबसे श्रेष्ठ बल है। जब द्रव्य-बल, बुद्धि-बल, शरीर-बल, ज्ञान-बल इन सबकी हार हो जाती है, तब प्रेम की जीत होती है। जहाँ अतिशय प्रेम है, वहाँ मनुष्य हार स्वीकार कर लेता है। प्रेम के सब नियम भिन्न हैं। प्रेम में अति मान मिलना अपमान जैसा लगता है। प्रेमी को अति मान नहीं सुहाता। इसीलिए वह कह पड़ता है कि मैं तो घर का हूँ। मैं क्या कोई पराया हूँ? मुझे इतना आदर क्यों देते हो? प्रेम में अति मान ही अपमान जैसा लगता है। इसीलिए वह कह पड़ता है कि मुझे अपना समझकर ही ऐसा कहा जाता है। प्रेम में अपमान भी मान है, आदर है। प्रेम के अनेक तत्त्व काफी भिन्न हैं।

प्रेम में हार ही जीत है और जीत ही हार है। यानी मेरे प्रियतम की जीत ही मेरी जीत है और उसकी हार ही मेरी हार है। जहाँ अतिशय प्रेम है, वहाँ जीव भी हार पसन्द करता है। कल्पना करो कि कोई माता कथा सुनने के लिए जाने वाली है। उसके घर में तीन-चार वर्ष का बालक है। माता की ऐसी इच्छा है कि बालक घर में ही खेले उसे यहीं छोड़ मैं कथा सुनने जाऊँ। माता बालक को समझाती है, उसे खिलौना देती है, मिठाई देती है, पैसा देती है और कहती है कि बेटा! तू घर में ही खेलना। लेकिन बालक पैसा फेंक देता है। उसे पैसा भी नहीं चाहिए, खिलौना भी नहीं चाहिए। उसे तो उसकी माता चाहिए। उसे माता को छोड़ कोई चीज पसन्द नहीं आती। बालक का सम्पूर्ण प्रेम माता में होता है। यदि बालक अपनी माता की साड़ी पकड़कर खूब रोने लगे तो क्या उसकी माता उसे रोता हुआ छोड़कर कथा में जाएगी। वास्तव में माता अपने बालक का प्रेम देखकर विह्वल हो जाएगी। यदि उससे कोई पूछे कि तुम कथा में क्यों नहीं आई? तो वह जवाब देगी कि बच्चे ने मुझे रोक लिया। क्या छोटा बालक माता को रोक सकता है? माता में तो बालक से अधिक शक्ति है; किन्तु बालक में प्रेम अधिक है। बालक का प्रेम देखकर माता दुर्बल बन जाती है कि बेटा! तेरी इच्छा नहीं है, तो मैं कथा में नहीं जाती।

मान लो कि वह बालक अब बड़ा होकर चौबीस-पच्चीस वर्ष का जवान हो गया। उसकी शादी भी हो गई और उसकी पत्नी घर में आ गई। तब यदि माता कथा में जाने को तैयार हुई और वह विवाहित युवक उसे रोकना चाहता हो, तो क्या माता उसका कहना मानेगी? माता साफ शब्दों में कह देगी कि तू आज कथा में जाने से रोकेगा, तो भी मैं जाऊँगी। मुझे अपनी देह का, अपनी

आत्मा का कल्याण करना है। विवाहित युवक माता को कथा में जाने से कितना ही रोके, किन्तु वह अवश्य जाएगी। अब यदि लड़का माता से कहे कि मैं छोटा था तो कथा में जाने से जब तुझे रोकता था, तब तू नहीं जाती थी। इस समय मैं पैसा कमाता हूँ और कथा में जाने से तुझे रोकता हूँ, फिर भी तू कथा में क्यों जाती है? माता बड़ी सरलता से उत्तर देगी कि जब तू छोटा था, तब तेरा सम्पूर्ण प्रेम मुझ में ही था। अब तेरी पत्नी आ गई है और तेरा पहले जैसा प्रेम मुझ में नहीं है।

आज लड़कों की शादी होती है। उसके बाद वे माता-पिता का प्रेम और उनका उपकार भूलने ही लगते हैं। बालक बाल्यावस्था में माता के आधीन था। इसलिए माता भी उसके आधीन रहती थी और बालक जो कहता था उसे वह करती थी। लड़के के बड़ा होने पर माता उसके अधीन नहीं रहती। पुत्र का प्रेम कम होते ही माता का प्रेम भी कम हो जाता है। जीव और ईश्वर का सम्बन्ध पिता-पुत्र जैसा है, माता-पुत्र जैसा है। परमात्मा सबकी माता है। वही सबका पिता है। उस परमात्मा से प्रेम करो, सतत प्रभु-स्मरण की आदत डालो, भगवान् का नाम जप करो, प्रतिपल भगवान् के उपकारों का स्मरण करो कि उसकी मुझ पर बड़ी कृपा है। जो परमात्मा के उपकारों का स्मरण करता है, प्रतिपल भगवान् की मुझ पर कृपा है—ऐसा सोचता रहता है वही भक्ति कर सकता है। उसे ही प्रभु के प्रति प्रेम जगता है। कोई भी जीव प्रेम किये बिना रह ही नहीं सकता। जीव प्रेम तो करता है किन्तु जगत् के साथ प्रेम करता है। वह परमात्मा से प्रेम नहीं करता। जीव पैसे से भी प्रेम करता है। कितने ऐसे सुधरे हुए लोग भी हैं, जो अपनी चप्पल से भी बहुत प्रेम करते हैं। वे चप्पल पहनकर घर में फिरते हैं और चप्पल पहनकर रसोई घर में भी जाते हैं। वे ऐसा समझते हैं कि हम सभ्य हैं। जो चमड़े से अधिक प्रेम करे, उसे सुधरा हुआ कहें या बिगड़ा हुआ कहें? मन्दिर की तरह ही अपना रसोईघर पवित्र रखना चाहिए।

सूतजी सावधान करते हुए कहते हैं, कोई भी जीव प्रेम किये बिना नहीं रह सकता। लेकिन मनुष्य भगवान् से प्रेम नहीं करता। यह जीव जगत् से प्रेम करके ही दुःखी हुआ है। जगत् के साथ वैर मत करो, परन्तु उससे अधिक प्रेम भी मत करो। यह जगत् अधिक प्रेम करने योग्य नहीं है। तुमसे जो मिले, उसे 'जय श्रीकृष्ण' कहो, हाथ जोड़ो, दो मधुर शब्द कहो, किन्तु यदि तुमसे कोई न मिले, तो ऐसा न सोचो कि वे भाई दो-तीन महीनों से क्यों नहीं मिले? कोई मिले तो अच्छा, न मिले तो अधिक अच्छा! यह सोचो कि मुझे परमात्मा से मिलना है, परमात्मा से एकाकार होना है; जगत् के साथ विवेक पूर्वक प्रेम करो। उससे अधिक प्रेम मत करो। जिसका संयोग तुम्हें अधिक सुख देता है, उसका वियोग बहुत रुलाएगा। संसार का संयोग वियोग के ही लिए होता है। संयोग में जितना सुख है, उससे हजार गुना दुःख वियोग में है। एक दिन ऐसा आएगा जिस दिन तुम उसे छोड़ दोगे अथवा वह तुम्हें छोड़कर चला जाएगा। यह सोचकर कि एक दिन वियोग

होने ही वाला है, यह याद रखते हुए विवेक पूर्वक प्रेम करो। यदि शरीर से प्रेम करो, तो उसे काम कहेंगे, धन से प्रेम करो, तो उसे लोभ कहेंगे। मनुष्य का प्रेम अनेक स्थानों पर बिखरा हुआ है। इस बिखरे हुए प्रेम को इधर-उधर से बटोर कर परमात्मा को अर्पित कर दो। सर्व शक्तिमान परमात्मा प्रेम-परतंत्र, प्रेमाधीन बन जाता है।

सूरदासजी महाराज के जीवन में एक घटना घटी थी। वे जन्म से अन्धे नहीं थे। जब उन्होंने आँख से पाप होते देखा तब यह जानकर कि आँख भक्ति में विघ्न डालती है, उन्होंने उसे फोड़ डाला था कि मुझे अब जगत् को नहीं देखना है, बल्कि सतत श्रीकृष्ण का दर्शन करना है, सतत भक्ति करनी है। सूरदासजी वृन्दावन में रहते थे। उनके इष्टदेव बालकृष्णलाल थे। वे सारे दिन शुद्ध भाव से ध्यान करते थे, जप करते थे और कीर्तन करते थे। उनके चरित्र में लिखा है कि जब वे बड़े प्रेम से कृष्ण-कीर्तन करते, तब बालकृष्णलाल उनके सामने बैठकर कीर्तन सुना करते थे। उनके कीर्तन में भगवान् को बहुत आनन्द आता था। सूरदासजी का ऐसा नियम था कि किसी मनुष्य से भीख न माँगे। जब वे कहते कि लाला मुझे बहुत भूख लगी है। मैं किसी मनुष्य से नहीं माँगूंगा। वे बालकृष्णलाल को अपना मालिक मानकर कहते कि मेरा कपड़ा बहुत फट गया है। श्रीकृष्ण किसी न किसी को प्रेरणा प्रदान करते और किसी से सूरदास को वह वस्तु मिल जाती। एकबार सूरदासजी कहीं जा रहे थे। उनके रास्ते में एक बड़ा गड्ढा मिला। वे उसमें जा गिरे। गड्ढा बड़ा होने के कारण वे उससे बाहर न निकल सके। वे कुछ घबरा गये कि क्या करें? बालकृष्णलाल को दया आ गई। बालकृष्णलाल वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने सूरदासजी का हाथ पकड़ लिया। सूरदासजी को मालूम दिया कि किसी ने हाथ पकड़ा है। वे पूछ बैठे कि तुम कौन हो? बालकृष्णलाल ने कहा, "मैं नन्दबाबा के गाँव के एक ग्वाले का पुत्र हूँ। मैं गायों को लेकर इस ओर आया था। यहाँ आपको गड्ढे में पड़ा देखकर आपको निकालने के लिए चला आया।" सूरदासजी विचार में पड़ गए कि वह किस ग्वाले का लड़का है? किसे मेरी इतनी चिन्ता है? यह कोई दूसरा ग्वाला नहीं है। यह तो मेरा बालकृष्ण हैं वे उस लाला को पकड़ने के लिए आगे बढ़े। उनकी आँख से तो दिखाई नहीं देता था। बालकृष्णलाल आगे भाग गए। तब सूरदास ने कहा-

हाथ छुड़ाए जात हौ, निबल जानि के मोहि।
हिरदय ते जो जाउ तौ, सबल कहौं मैं तोहि॥

तुम बलवान हो, मैं निर्बल हूँ, तुम सिन्धु हो, मैं बिन्दु हूँ। तुम अंशी हो मैं अंश हूँ। तुम सर्वज्ञ हो, मैं अल्पज्ञ हूँ, तुम ईश्वर हो, मैं जीव हूँ। तुमको सर्वशक्तिमान मानते हैं, किन्तु मैं तुमको सर्व शक्तिमान तब मानूँगा, जब तुम मेरे हृदय से बाहर निकल सको। सूरदासजी ने प्रभु को

प्रेम से अपने हृदय में बाँध रखा है। परमात्मा प्रेम का बन्धन नहीं तोड़ सकते। सर्वतंत्र-स्वतंत्र परमात्मा प्रेम-परतंत्र हैं। जहाँ अतिशय प्रेम, वहाँ परमात्मा अपनी हार मान लेते हैं।

भ्रमर को कमल से अतिशय प्रेम होता है। वह भ्रमर कमल के मकरन्द में लीन होता है। संध्याकाल सूर्य अस्त होने पर कमल मुँद जाता है। भ्रमरकाल की पंखुरियों में बन्द होकर सबेरा होने की प्रतीक्षा करता है। और अन्त में घुट कर मर जाता है। लकड़ी को छेदने वाला समर्थ भ्रमर कमल को तोड़ नहीं सकता। क्योंकि उसे कमल से प्रेम है। परमात्मा भी प्रेम-बन्धन नहीं तोड़ सकता। इसीलिए परमात्मा से प्रेम करो। यदि प्रभु-प्रेम न हो सके, तो भगवान् का नाम-जंप करो। जब पाप कम होता है, तब प्रभु में प्रेम जागृत होता है। जो श्रीकृष्ण के साथ प्रेम करता है, उसे श्रीकृष्ण श्रीकृष्ण बना देते हैं। यदि तुम किसी धनवान की खुशामद करो, तो वह धनवान तुमको क्या देगा? यदि बहुत उदार होगा, तो तुम्हें दस हजार देगा, बीस हजार देगा। अति उदार होगा, तो तुम्हें अठन्नी का पचास प्रतिशत का हिस्सेदार बना देगा। क्या कोई तुम्हें अपना सोलहों आना भाग देगा? मानो कोई उदार हुआ, तो आधी सम्पत्ति देगा। उससे अधिक तो क्या देगा? कोई तुमको अपनी सोलहों आने सम्पत्ति देने को तैयार नहीं हो सकता। केवल श्रीकृष्ण ही सोलह आना दे सकते हैं।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

जब तक ईश्वर के साथ पूर्ण प्रेम न करो, तो वह प्रेम अधूरा है, अपूर्ण है। जो परमात्मा से प्रेम करता है, उसे परमात्मा पूर्ण बनाता है। फिर भी भगवान् परिपूर्ण ही रहता है। परमात्मा की तरह प्रेम करने वाला संसार में कोई नहीं है, न कोई हो सकेगा। भगवान् गोप-बालकों का स्वरूप धारण करते हैं और गोपियों को आत्म-स्वरूप का दान करते हैं। वे अत्यन्त उदार हैं। जब तक जीव भगवान् से प्रेम न करे, तब तक वह माया के बन्धन में पड़ा रहता है। जब जीव परमात्मा को प्रेम-बन्धन से बाँधता है, तभी यह जीव माया के बन्धन से मुक्त होता है। जब गोपियों का प्रेम बढ़ने लगता है, तब वे बालकृष्णलाल का नाम माखनचोर रख देती हैं। उन्हें 'माखनचोर-माखनचोर-कहकर बुलाती हैं। यशोदामाता को ऐसा पुकारना। अच्छा नहीं लगता। वे कहतीं हैं कि मेरे बालक का नाम चोर रखती हैं। कन्हैया अपने घर का माखन नहीं खाता, वे गोपियों के घर का मक्खन खाने जाता है। इसीलिए तो वे सब उन्हें माखन चोर कहती हैं। लाला मुझ से कहता है कि मुझे अपने घर का माखन पसन्द नहीं। लाला को घर का माखन पसन्द न होने का कारण क्या है? घर का काम नौकर करता है। इसलिए नौकर का काम नौकर जैसा ही होता है। माता प्रेम से रसोई बनाती

है। इसलिए उसके स्वाद में बहुत फर्क पड़ जाता है। माता के परोसने और नौकर के परोसने में काफी फर्क पड़ जाता है। घर में नौकर काम करते हैं। इसलिए लाला को माखन नहीं भाता है इसलिए यशोदा माता ने आज यह निश्चय किया है कि आज मैं अपने हाथ से दधि-मन्थन करूँगी और अपने हाथ से स्वादिष्ट माखन निकालूँगी। उसे अपने लाला को मना-मनाकर खिलाऊँगी। जब वह पेट भरकर माखन खालेगा, तब उसे दूसरे के घर का माखन खाने की इच्छा नहीं होगी। शुकदेवजी महाराज कथा नहीं सुना रहे हैं, बल्कि नीचे के श्लोक में यशोदा का दर्शन कर कह रहे हैं-

क्षौमं वासः पृथुकटि तटे विभ्रती सूत्रनद्धं।
पुत्रस्नेहस्नुतकुचयुगं जातकम्पं च सुभ्रूः।।
रज्ज्वाकर्ष श्रमभुजचलत्कंकणौ कुण्डले च।
स्विन्नं वक्त्रं कबर बिगलन्मालती निर्ममन्थ।। (१०-९-३)

शुकदेवजी ने यशोदा का वर्णन करते हुए कहा है कि आज 'क्षौमं वासः' अर्थात् रेशमी साड़ी पहन रखी है। यशोदा में शुद्ध भक्ति का स्वरूप है। शुद्ध भक्ति भगवान् को बाँध लेती है। वस्त्र वासना का प्रतीक है। सूत्री वस्त्र रेशमी वस्त्र की अपेक्षा अधिक मुलायम होता है। जीव वासना का बिल्कुल नाश नहीं कर सकता। वह पहले वासना को मुलायम बनाता है। इसलिए यदि तुम्हें भक्ति-मार्ग में आगे बढ़ना हो तो सुख भोगने की वासना मत रखना। तुम दूसरे को सुखी करने और सुखी देखने की इच्छा करना, अपनी वासना को मुलायम बनाना। जिसे दूसरे को सुख देने की वासना होती है, वही भक्ति कर सकता है और वह कभी दुःखी नहीं हो सकता। यशोदा ने रेशमी साड़ी धारण की है। उनके कान में कुण्डल हैं। वह भक्ति का शृंगार है। यशोदा माता भक्ति-रूपिणी है। साँख्य और योग रूपी कुण्डल भक्ति का शृंगार है। ये दोनों भक्ति के साधक हैं। साँख्य शास्त्र जड़-चेतन का विभाग करता है। जो जड़-चेतन का विभाग करता है। जो जड़-चेतन का अच्छी तरह विभाग कर सकता है, वही भक्ति कर सकता है। मैं इस शरीर से पृथक् हूँ। मैं यह शरीर नहीं हूँ। यह शरीर पंच महाभूत (क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर) अथवा पाँच तत्त्वों से बना है। शरीर से आत्मा भिन्न है, पृथक है। आत्मा परमात्मा का अंश है। शरीर जड़ है, आत्मा चेतन है। यही समझना साँख्य शास्त्र है। योग-शास्त्र का काम मन को एकाग्र करना है। जब भगवत के स्वरूप और उनके नाम में आँख और मन एकाग्र होंगे, तो भक्ति होगी। भक्ति करने का अर्थ है भगवान की मूर्ति में परमात्मा के मंत्र में मन को पिरो देना। तभी भक्ति सिद्ध होती है।

यशोदामाता दधि-मंथन करते समय लाला को देखती हैं। माता की नजर श्रीकृष्ण में है। हमें भी ऐसी आदत डालनी चाहिए। घर में चाहे जो भी काम करो अपनी नजर भगवान् में स्थिर

करो। जो अपनी आँखें भगवान् में रखता है, उसे भगवान दिव्य भक्ति देते हैं। आँखें भगवद्-स्वरूप में स्थिर करो। यशोदा माता जो काम करती हैं, वह लाला के लिए करती हैं। घर का प्रत्येक काम भगवान् के लिए करना ही भक्ति है।

कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि मन्दिर में जाकर काम करना ही भक्ति है। वास्तव में तुम्हारे घर के मालिक परमात्मा हैं यदि घर में जो काम करो, वह भगवान् को ध्यान में रखकर करो और भगवान् के लिए करो, तो यह भी भक्ति है। जब बाजार में साग-सब्जी लेने जाओ, तो भगवान् को याद करना कि मैं यहाँ भगवान् के लिए आया हूँ। अपने घर में कोई काम करो तो उसे भगवान् के लिए करो। कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि स्नान तो शरीर को स्वच्छ करने के लिए किया जाता है। अरे, यह शरीर तो मल-मूत्र से भरा हुआ है। एक-दो बार क्या अनेक बार धोने या स्नान करने पर भी यह स्वच्छ नहीं हो सकता। अनेक लोग शरीर पर खूब साबुन घिसते हैं। क्या बहुत साबुन रगड़ने पर शरीर का रंग बदल जाएगा? एकाध बार साबुन लगाना तो ठीक है। स्नान सेवा करने के लिए है। ऐसा भाव रखो कि मुझे स्नान करके भगवान् की सेवा में जाना है। अधिक क्या कहें? कोई भी काम हो, वह भगवान् के लिए करो।

गोपियों का शृंगार करना भी भक्ति है। यदि शृंगार करने में कोई मानसिक विकार हो, वासना हो, तो वह आसक्ति कहा जाएगा। यदि परमात्मा को प्रसन्न करने के विचार से शृंगार किया जाए तो वह भी भक्ति है। यह सोचना कि मुझे ठाकुरजी के सामने बैठना है। यदि मेरा कपड़ा गन्दा होगा तो मेरे भगवान् को पसन्द नहीं पड़ेगा। मैं भगवान् का हूँ। तुम्हें अच्छा और स्वच्छ कपड़ा पहिनकर भगवान् की सेवा करनी है, परमात्मा का ध्यान करो, प्रेम से कीर्तन करो। तुमको इस प्रकार देखकर भगवान् प्रसन्न होंगे।

मीराबाई के चरित्र में लिखा है कि वह सुन्दर शृंगार करती और गोपालजी के सम्मुख कीर्तन करती-'गोपालजी की नजर मुझ पर पड़ने वाली है। इसलिए मैं शृंगार करती हूँ।' उनका भाव ऐसा था। यदि शृंगार के पीछे शुद्ध भाव हो तो शृंगार भी भक्ति है। प्रायः ऐसा होता है कि लोग जब बाहर निकलते हैं, तब अच्छा कपड़ा पहनते हैं, किन्तु कुछ लोग ऐसे होते हैं, कि जब घर के अन्दर ठाकुरजी की पूजा करने बैठते हैं, तब फटा कम्बल पहनकर बैठते हैं अथवा साधारण कपड़ा पहनते हैं और सोचते हैं कि यहाँ कौन देखने वाला है? तुम जगत् को अच्छा कपड़ा दिखाते हो और भगवान् को साधारण कपड़ा दिखाते हो। क्या यह भगवान् को पसन्द आएगा? तुम यदि भगवान् को अच्छा कपड़ा पहनाकर प्रेम से पूजोगे, तो भगवान् की तुम पर नजर पड़ेगी। केवल तन को ही नहीं, अपने मन को भी सजाना है, मन को शुद्ध और सुन्दर बनाना है। कपड़े

की अपेक्षा हृदय का शृंगार अधिक महत्वपूर्ण है। शृंगार में यदि कोई शुद्ध भाव है तो वह भक्ति ही है। व्यवहार और भक्ति दोनों भिन्न नहीं है। अपने व्यवहार को भक्तिमय बनाओ। यशोदा मैया दधि-मन्थन करते समय अपने लाला को निहार लिया करती हैं। इस पर थोड़ा विचार करें तो यह संसार भी एक मटकी (दुग्ध पात्र) जैसा ही है। इसमें माया ने विषय रूपी दही भरा है। जिस प्रकार दही में खट्टापन होता है, उसी प्रकार संसार के विषयों में अधिक खट्टापन होता है, अधिक कड़वाहट होती है, मीठापन बहुत ही कम होता है। दही का मन्थन करने से मक्खन निकलता है। दही में भले ही खट्टापन हो; वह मक्खन मधुर होता है। तुम विषयों का मन्थन विवेक पूर्वक करो और प्रेमरूपी मक्खन निकालकर परमात्मा को अर्पित करो। यशोदा श्री सम्पन्न हैं। उन्होंने कभी ऐसी मेहनत नहीं की थी, किन्तु आज अपने लाला के लिए वह मेहनत कर रही हैं। इसीलिए उसे पसीना छूट रहा है (स्वीनं वक्त्रं) फिर भी उनके हृदय में श्रीकृष्ण प्रेम भरा पड़ा है। वह सोच रही हैं कि आज लाला के लिए मक्खन निकाल रही हूँ। आज मैं लाला को मना-मनाकर अपने हाथ से निकाला हुआ मक्खन खिलाऊँगी, जिससे वह फिर दूसरी जगह मक्खन खाने न जाए। माता यशोदा थक गई हैं, प्रेम में हृदय गद्‌गद हो गया है, द्रवीभूत हो उठा है। इसीलिए उसे अपनी थकावट का पता नहीं लगता। यदि तुम प्रेम से काम करो, परमात्मा प्रसन्न करने की भावना से काम करो, श्रीकृष्ण में नजर रखकर काम करो, थकावट होने पर भी उसकी खबर नहीं पड़ेगी, पता नहीं लगेगा। प्रेम एक ऐसी ही शक्ति है। प्रेम में भले ही थक जाए किन्तु उस थकावट का पता नहीं लगता। श्रीकृष्ण के प्रेम में माता यशोदा का हृदय पिघल गया है—पुत्रस्नेहस्नुत कुचयुगम्।

धम-धम-धम की जो मधुर ध्वनि होती है, वह दधि-मन्थन की धमधमाहट है। यशोदा मैया प्रेम से श्रीकृष्णलीला का वर्णन करती हैं कि मेरे लाला का जब से जन्म हुआ, तभी से इस गाँव की शोभा बढ़ी है। मेरा लाल सारे गाँव को प्राणों से भी प्यारा लगता है। श्रीकृष्ण की एक-एक लीला का स्मरण करते-करते माता के शरीर में रोमाँच हो उठता है, आँखें गीली हो जाती हैं। यशोदा माता दधि-मन्थन में तन्मय हो गई हैं। उनकी बहुत इच्छा है कि कन्हैया के जागने से पहले मक्खन निकाल लें। इसका कारण यह कि वह जागने के बाद काम नहीं करने देता। हर रोज का नियम तो यह था कि यशोदा माता के मंगल गीत गाने पर श्रीबालकृष्णलाल जागते थे। कई बार ऐसा भी होता था कि कन्हैयालाल बिछौने पर जागते, किन्तु माता की गोद में फिर सो जाते। यशोदा मैया लाला को समझातीं कि बेटा! अब सूर्योदय का समय हो गया है। तुझे तेरी गायें बुला रही हैं। इस प्रकार जब यशोदा माता बहुत प्रेम से जगातीं, तब कन्हैया जागता है। आज यशोदा माता की ऐसी इच्छा है कि जल्दी-जल्दी मन्थन करूँ, तो मक्खन निकले। उसे निकाल कर रख

लूँ। इसके बाद लाला को जगाऊँगी, लेकिन आज लाला को जगाने की कोई जरूरत पड़ी नहीं। बालकृष्णलाल जाग उठे हैं और जगकर घुटनों से चलते हुए पीछे से माता की साड़ी खींचने लगे हैं। माता को आश्चर्य हुआ कि यह कौन आया? माता ने मुड़कर देखा तो बालकृष्ण नजर आए। निद्रा से जागने के बाद तो कन्हैया की शोभा कुछ और ही होती है। बालकृष्णलाल के बाल रेशम की तरह नरम हैं बाल उनके गाल पर आ गए हैं। लाला की आँखों में केवल प्रेम भरा है। वे प्रेम से अपनी माता को देख रहे हैं कि वह मेरे लिये कितना दुःख सहन कर रही है। आज लाला से यह न देखा गया। वे बोले, माँ तू मेरे लिए कितना दुःख सहन करती है। लाला को आज सहन नहीं हुआ। वे बोल पड़ा, माँ, मुझे भूख लगी है! माता का हृदय प्रेम से पिघल उठा। इसीलिए लाला को आज भूख लगी है। माता ने मटकी में नजर दौड़ाई, तो थोड़ा मक्खन ऊपर आया देखा।

माता को अब ऐसा लगा कि यदि दस-पन्द्रह मिनट और दधि-मन्थन करूँ तो अच्छी तरह मक्खन निकलेगा। माता ने लाला से कहा, बेटा, तू बैठ! मैं मक्खन निकाल लूँ तो तुझे खिलाऊँ। माता पुनः दधि-मन्थन आरम्भ कर देती है, किन्तु लाला को जरा भी भूख सहन नहीं होती। उसे खूब भूख लगी है। फिर तो कन्हैया वहाँ से उठा और मथानी पकड़ कर रोने लगा। माता को उस पर दया आ गई। माता ने दही मथना बन्द कर दिया है और बालकृष्णलाल को अपनी गोदी में उठा लिया है। माता अपने हृदय का प्रेम-रस अर्पित कर रही है।

तमंक मारूढमपायमस्तनं स्नेहस्तुतं सस्मितमीक्षती मुखम्।
अतृप्तमत्सज्य जनेत सा यथा वत्सिच्य माने पयसि त्वधिश्रिते॥

माता जिस समय अपने बालक को दूध पिलाती है माता और पुत्र दोनों एक हो जाते हैं। यशोदा माता और बालकृष्णलाला दोनों एक हो गए हैं। यही यशोदाजी की ब्रह्म सम्बन्धी कथा है। माता बालकृष्णलाल को गोद में लेकर बैठी है। वह अपने लाला को हृदय का प्रेम-रस अर्पित कर रही है, तन्मय बन गई है। उसी समय माता ने देखा कि चूल्हे पर रखा हुआ दूध उफन रहा है। जब जीव का ब्रह्म से सम्बन्ध होता है, तभी दूध में उफान आता है।

यदि शान्ति से विचार करें, तो ज्ञात होगा कि यह लीला हर घर में होती है। तुम सबेरे चार बजे उठे, स्नान किया, पवित्र आसन पर बैठे और ऐसा संकल्प किया कि ध्यान के साथ जप करते हुए मैं तन्मय हो जाऊँगा, मुझे भगवान् के दर्शन होंगे, मुझे परमात्मा से मन पूर्वक मिलना है। परमात्मा से मिलने की भावना रखते हुए ध्यान के साथ जप करने के कारण तुम्हारी तन्मयता थोड़ी बढ़ेगी, लेकिन जीव जब परमात्मा से मिलता है, तभी दूध में उफान आता है।

जब जप करने पर थोड़ी तन्मयता बढ़ी, लेकिन यदि उसी समय याद आया कि आज कौन सा साग लाऊँगा? तो यह दूध का उफान कहलाएगा। इस जीव की यह कुटेव है कि यह जो सुख भोग चुका है, उसका स्मरण करता है, जो सुख भोगना है उस पर विचार करता है, यही दूध का उफान है। यशोदा माता ने देखा कि चूल्हे पर दूध है और उसमें उफान आ गया है। प्रश्न यह है कि दूध में उफान क्यों आया? महापुरुषों ने इसके सम्बन्ध में अपने अनेक भाव प्रदर्शित किए हैं। इस दूध की ऐसी इच्छा थी कि यशोदा माता अपना दूध कम पिलायें। कम दूध पिलाने पर लाला को भूख बनी रहेगी तो कन्हैया मुझे पिएगा। अथवा लाला के पेट में मैं जाऊँ तो मेरा उद्धार होगा। इस प्रकार श्रीकृष्ण सेवा में, भगवद् सेवा में मेरा सदुपयोग होगा। मुझे किसी विलासी के पेट में नहीं जाना है। अथवा दूध की यह भी इच्छा है कि मेरा दुरुपयोग न हो। मुझे लाला के पेट में जाना है। किन्तु यशोदा के हृदय में कृष्ण के प्रति बहुत प्रेम है। वह उन्हें खूब दूध पिलाती है। इसलिए दूध को यह विश्वास हो गया कि अब लाला के पेट में भूख नहीं रहेगी और मेरा उपयोग कृष्ण सेवा में नहीं होगा। इसलिए मेरा जीवन व्यर्थ है। इसलिए मैं अग्नि में गिर कर मर जाऊँ। जीकर भला क्या करूँगा।

जीना है उसका भला, जो इन्सान के लिए जिए,
मरना भी उसका भला, जो अपने लिए जिए।

जो परोपकार के लए जीता है, परमात्मा के लिए जीता है, उसी का जीवन जीवन है। इसीलिए दूध चूल्हे में गिरकर जल जाना पसन्द करता है। कुछ महात्मा कहते हैं, "दूध यह विचार करता है कि मुझे पता लगने के मुताबिक जो श्रीकृष्ण का दर्शन हमेशा करता है, उसका पाप–ताप–सन्ताप सबका विनाश हो जाता है। जो श्रीकृष्ण को प्रेम से देखता है, उसका पाप जल जाता है, उसे संसार का कोई ताप नहीं लगता। श्रीकृष्ण का दर्शन करने के बाद दुःख का अन्त हो जाता है। परमात्मा के दर्शन से दुःख का अन्त हो जाता है। मुझे यशोदा माता की गोद में कन्हैया दिखाई देता है। फिर भी मेरा पाप कैसा है कि अग्नि का ताप सहन करना पड़ता है? दूध को यह बात पसन्द न आई। उसके मन में आया कि मैं अग्नि में गिरकर मर जाऊँ। इसीलिए दूध में उफान आया है।

कुछ महापुरुषों का कथन है कि यशोदामाता की थोड़ी भूल हुई। इसीलिए दूध में उफान आया है। यशोदा की गोद में बालकृष्णलाल हैं। जब तक वे गोद में हों, तब तक उनमें नजर स्थिर करनी है। उसके बदले माता की आँख ऊपर गई है, चूल्हे पर रखे दूध पर गई है। श्रीकृष्ण का जीव उनके भक्तों से प्रेम करने के बदले दूसरी किसी वस्तु से अधिक प्रेम करे, इसे वे सहन नहीं कर पाते। तुम यदि ठाकुरजी की सेवा में लगे हुए हो और तुम्हारा मन कदाचित् चंचल हो तो उसे

चंचल होने देना, किन्तु अपनी आँखें मत चंचल होने देना। अपनी आँखें भगवान् में लगाए रखना। यशोदामाता अपनी गोद में विराजित लाला को ठीक तरह देख नहीं पातीं। वे दूध देखने जाती हैं। इससे लाला को नाराजगी होती है कि मेरी माता को दूध में क्या कोई विशेष स्नेह है। लाला ने अग्नि को हुक्म दिया कि चूल्हे में जा। इस से जोर की आवाज होगी, तो दूध में उफान आएगा।

जीव का जब ब्रह्म से सम्बन्ध होता है, तब परमात्मा थोड़ी परीक्षा लेता है। भक्ति का अर्थ है प्रेम। जीव जब जगत् की अपेक्षा भगवान् से अधिक प्रेम करता है, तब उसे भक्ति कहते हैं। यदि वह भगवान् की अपेक्षा जगत् से अधिक प्रेम करे, तो भक्ति में व्यभिचार आ जाता है। जब जीव भगवान् के साथ अतिशय प्रेम करता है, तब उसे भक्ति कहते हैं। यदि वैष्णव भगवान् की अपेक्षा जगत् से अधिक प्रेम करता है, तो यह बात ठाकुरजी को नहीं सुहाती। वे सोचते हैं कि प्रेम करने योग्य मैं हूँ। मुझे क्यों नहीं देखता? मुझे तेरी सारी चिन्ता है। जब गोद में बालकृष्णलाल बिराजमान हैं, यशोदाजी की दूध की ओर देखने की जरूरत ही कहाँ है?

एक महापुरुष ने कहा है कि यह दूध लाला को अधिक भाता था। उनके घर में अधिक गायें थीं; किन्तु उनमें से गंगी गाय का दूध लाला को बहुत भाता था। इसलिए यशोदामाता गंगी गाय के दूध का बहुत ध्यान रखती थीं। यशोदामाता को लाला की अपेक्षा दूध अधिक पसन्द नहीं था। फिर भी यह दूध यदि आग में गिर जाए, तो कन्हैया क्या पियेगा इसकी उनको अधिक चिन्ता थी। प्रियतम को जिस विषय में अधिक सुख मिले, उसी से अधिक प्रेम होता है। लाला को यही दूध अधिक भाता है। इसलिए माता की नजर दूध की ओर गई है। माता दूध की ओर देख रही है, यह बात लाला को ठीक नहीं लगी। लाला ने अग्नि को आज्ञा दी। इससे आग प्रज्वलित हो उठी और दूध में एकदम उफान आ गया।

इसीलिए यशोदामाता ने लाला को धरती पर उतार दिया और दूध उतारने गईं।

अतृप्तमुसृज्य जवेन सा ययौ.........

लाला को अभी तृप्ति नहीं हुई है। माता जल्दी से दूध उतारने जा रही है। लाला को यह बात पसन्द नहीं आई कि मेरी माता मुझे छोड़कर दूध उतारने जाए! उसने मेरे लिए अनेक वर्षों तक जंगल में रहकर, पेड़ों के पत्ते खाकर भक्ति की थी किन्तु अब? जीव का एक स्वभाव है कि उसे जो मिलता है, उसकी उपेक्षा करता है। माता ने भी यही सोचा कि कन्हैया कहाँ जाने वाला है? मैं उसे बाद में दूध पिलाऊँगी! पहले इस दूध को अग्नि में गिरने से बचा लूँ। इसीलिए यशोदामाता लाला को धरती पर उतारकर दूध उतारने गईं। लाला से यह सहन नहीं हो सका। जो भगवत् सेवा और स्मरण छोड़कर लौकिक सुधारने जाता है, भगवान् उसका लौकिक अधिक बिगाड़ देते हैं।

आप सब वैष्णव हैं, प्रभु के प्यारे हैं। इसलिए भगवान् में अधिक विश्वास रखिए। भगवान् को आपके लौकिक-अलौकिक की अधिक चिन्ता है। जो परमात्मा से प्रेम करता है और परमात्मा के सेवा-स्मरण में रहता है, उसके लौकिक की चिन्ता भगवान् को अधिक होती है। आप जिस देव की पूजा करते हैं और जिस देव का नाम-जप करते हैं, उस देव को आपकी सभी चिन्ता होती है। माता जब लाला को छोड़कर दूध उतारने गई तो इससे लाला को बहुत बुरा लगा। उनके मन में यह बात आई कि माता मेरी कीमत एक दो लीटर दूध से भी कम समझती है। वह उफनता दूध उतारने गई है। यशोदा ने एक-दो सेर दूध बचाया होगा; किन्तु लाला ने विचार किया आज मैं एक मन दही का नुकसान करूँगा। माता को भी यह याद रहेगा कि मैं लाला को छोड़ दूध उतारने गई तो उसने इतना बड़ा नुकसान कर दिया। उसी समय लाला को क्रोध आ गया। वहाँ एक चटनी पीसने वाला पत्थर पड़ा था। लाला ने उसे उठा लिया दही की मटकी पर दे मारा। उससे दही भरी मटकी फूट गई। संसार की आसक्ति ही मटकी है। जो भगवत् स्वरूप में आसक्ति होती है, उसे भक्ति कहते हैं। विषयासक्ति भक्ति का विनाश करती है। श्रीकृष्ण एक-एक घर में जाकर मटकी इसलिए फोड़ते थे कि मेरी शरण में आया हुआ जीव मेरी अपेक्षा दूसरे से अधिक प्रेम करे, तो वह मुझ से कैसे सहन होगा? भगवान् विषयासक्ति का विनाश करते हैं। प्राय: ऐसा देखा गया है कि यह जीव संसार को ठीक करने जाता है। वह यह भी समझता है कि संसार को ठीक करके भगवान् की भक्ति करूँगा। आश्चर्य है कि अब तक न किसी का संसार व्यवस्थित हुआ है न होगा। संसार तो क्षण-प्रति क्षण बदलता है, किन्तु परमात्मा का स्वरूप एक सा स्थिर रहता है। संसार को व्यवस्थित करने के बाद भक्ति करने की कल्पना ही गलत है। इसलिए भगवान् मटकी फोड़ देते हैं। संसार की आसक्ति तोड़ देते हैं।

उलखराँध्रेरुपरि व्यवस्थितं यर्काय कामं दस्तं शिचि स्थितम्।
हैयंगवं चौर्यावशंकितेक्षणं निरीक्ष्य पश्यात्सुत मागमच्छनैः॥

उसी समय वहाँ ग्वाल-बाल मित्र आ जाते हैं। उन्होंने लाला से पूछा कि कन्हैया! आज किसके घर चोरी करने जाना है? लाला को इस समय क्रोध चढ़ा है। उन्होंने क्रोध में ही कह दिया कि मुझे आज अपने ही घर में चोरी करनी है।

बालकृष्णलाल ग्वाल-बालों की पीठ पर चढ़कर मक्खन उतारते हैं और ग्वाल-बाल मित्रों को मक्खन देते हैं। श्रीकृष्ण जिस घर में चोरी करते हैं, उस घर के झरोखों के पास बन्दर एकत्र हो जाते हैं। उस समय भगवान् को यह बात याद आती है कि ये मेरे रामावतार के भक्त हैं। रामावतार में मैं तपस्वी था। उस समय मैं इन बन्दरों को कुछ खिला न सका। ये सब पेड़ के पत्ते

खा-खाकर मेरे लिए युद्ध करते थे। इसलिए वे उन बन्दरों को कृष्णावतार में मक्खन खिलाते हैं। बन्दर ही वैष्णव हैं। बन्दर बहुत अधिक चपल और चंचल होने पर भी उनमें कई सद्‌गुण होते हैं। उनमें एक सद्‌गुण ऐसा है कि वे एक ऋतु में संयम रखते हैं। बानर जाति में दूसरा सद्‌गुण यह भी है कि वे जंगल में खारे, खट्टे, मीठे, कड़वे सभी फल खायेंगे किन्तु कभी भी वे सीताफल और रामफल नहीं खाते। दक्षिण भारत में रामफल होता है। बन्दर यह मानते हैं कि हम श्रीसीतारामजी के सेवक हैं। हमसे रामफल या सीताफल नहीं खाया जाएगा। बन्दर भी अपने जीवन में संयम रखते हैं। जिसके जीवन में संयम नहीं है, जिसके जीवन में भक्ति का कोई नियम नहीं है, वह पशु से भी तुच्छ है। जो इन्द्रियों का संयम और भक्ति का नियम पालता है, उसे यमराज भी दण्डित नहीं करते।

भगवद्‌गीता किंचिद्‌धीता गंगाजल लवकणिका पीता।
सकृदपि येन मुरारिसमर्चा क्रियते तस्य यमेन न चर्या॥ भज गोविन्दम्

इसलिए संयम रखो और भक्ति के नियमों का पालन करो। नियम के बिना भक्ति नहीं हो सकती। लाला सबको मक्खन देते हैं, किन्तु उसकी आँखें चारों ओर फिरती हैं। वह देखता है कि कहीं मेरी माता तो नहीं आ रही है? प्रभु ने इस घटना से यह उपदेश दिया है कि मैं ईश्वर हूँ। फिर भी चोरी करने पर मुझे भी डरना पड़ता है।

यशोदामाता ने दूध उतारकर रख लिया है। अग्नि बुझाकर उन्होंने फिर चूल्हे पर दूध रख दिया है। वहाँ से वापस आने पर यशोदामाता ने देखा कि लाला ने मटकी फोड़ दी है सारा दही ढुलक गया है और लाला यहाँ नहीं है। माता ने यह सोचा कि लाला कहाँ गया? उन्होंने घर में नजर दौड़ाकर देखा तो लाला घर में ओखली पर चढ़कर मक्खन उतार रहा है और उसे ग्वाल-बाल मित्रों तथा बन्दरों को खिला रहा है। माता को बड़ा दुःख यह हुआ कि मेरे लाला को चोरी करने की आदत पड़ गई है। जो वह माँगे, वह देने को तैयार हूँ। मैंने देने से मना ही कब किया है? घर में बहुत माखन है। उसके मित्रों को भी दूँगी; किन्तु इसे चोरी करने की आदत पड़ गई है। आज मुझे उसका व्यवहार ठीक नहीं लगा है, कुछ क्रोध भी पैदा हो गया है। यशोदामाता ने हाथ में सोटी पकड़ ली है। ग्वाल-बालों ने माता को देखकर कहा कि कन्हैया! कन्हैया! तेरी माता आ गई है। लाला तुरन्त कूदकर वहाँ से भागने लगता है। यशोदा माता लाला के पीछे-पीछे दौड़ पड़ती हैं और कहती हैं, "तू बहुत शरारती हो गया है। तू भागकर कहाँ जाएगा! आज मैं तुझे सजा अवश्य दूँगी।"

यशोदाजी कन्हैया के पीछे-पीछे दौड़ती हैं, किन्तु वह हाथ नहीं आता। इससे हमें उपदेश मिलता है कि लाला को पकड़ना हो तो सोटी फेंक कर दौड़ो। जो हाथ में सोटी लेकर दौड़ता है,

वह लाला को पकड़ ही नहीं सकता। सोटी अर्थात् अभिमान। हाथ में सोटी लेकर कोई कितना भी दौड़े, उसके हाथ में कृष्ण आ ही नहीं सकता। इसलिए अभिमान छोड़कर भगवान् के पीछे दौड़ो। यशोदाजी में यहं एक सूक्ष्म अभिमान है कि लाला मेरा बेटा है, मैं उसकी माता हूँ। यशोदामाता दौड़ते-दौड़ते थक गई हैं। कन्हैया हाथ में नहीं आता। इस पर महापुरुषों ने अनेक भाव प्रकट किये हैं। वे कहते हैं कि यशोदा के दौड़ने पर भी कन्हैया क्यों हाथ में नहीं आता? माता की यंह भूल है कि लाला की पीठ पर नजर रखकर दौड़ती है। उन्हें लाला का मुँह नहीं दिखाई देतां। उनकी नजर लाला की पीठ पर है। अर्थात् जो भगवान् की पीठ पर नजर रखकर दौड़ता है, वह उसे नहीं पकड़ सकता। ईश्वर को वह पकड़ सकता है, जो श्रीकृष्ण के चरण अथवा मुखारविन्द पर नजर रखकर सामने को दौड़ता है। तीसरे स्कन्ध में ऐसा ही वर्णन आया है कि भगवान् की पीठ में अधर्म है और उनके हृदय में धर्म है।

धर्मः स्तनाद्दक्षिणतो यत्र नारायणः स्वयम्।
अधर्मः पृष्ठतो यस्मान्मृत्युर्लोकभयंकरः॥ (३-१२-२५)

यदि भक्ति धर्मानुकूल हो, तो भगवान् हाथ में आते हैं। अधर्म के सामने दौड़ने से अनेक लोग भक्ति तो करते हैं, किन्तु धर्म का पालन ठीक तरह नहीं करते। वे ऐसा समझते हैं कि हम भक्ति करते हैं, सेवा करते हैं। इसलिए हमें धर्म का पालन करने की कोई आवश्यकता नहीं। तुम भक्ति करो, सेवा करो। यह बहुत अच्छी बात है, किन्तु धर्म को मत छोड़ो। धर्म का भक्ति के साथ कोई विरोध नहीं है। अपने धर्म का ठीक-ठीक पालन करते हुए भक्ति करो। मनुष्य आकाश से सीधे धरती पर नहीं उतर आया है। उसका किसी कुल में, किसी जाति में जन्म हुआ है। जन्म से ही कुल धर्म और जाति के साथ सम्बन्ध जुड़ गया है। यह समझकर धर्म को छोड़ना नहीं चाहिए। धर्म के छोड़ देने पर भक्ति सफल नहीं होती और भक्ति में विघ्न आते हैं। धर्म को कभी मत छोड़ना। जब तक देह में चेतना है, तब तक धर्म का पालन करना चाहिए। कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि हम ध्यान-क्षेत्र में आगे बढ़ गए हैं। अब हमें धर्म का पालन करने की आवश्यकता नहीं। भागवत में विशेष रूप से आज्ञा दी गई है कि जिसे देह का ज्ञान है, उसे धर्म की आवश्यकता है। जो देहातीत अवस्था में है या जिसे देह का ज्ञान नहीं है, उसके लिए कोई धर्म नहीं है।

श्रीकृष्ण भागते जा रहे हैं। वे माता के हाथ में नहीं आते। यशोदामाता चिढ़ गई हैं। उन्हें अब थोड़ा क्रोध भी आ गया है। वे दौड़ती-दौड़ती थक गई हैं। इसलिए वे रास्ते में एक जगह बैठ जाती हैं और सोटी हाथ से दूर फेंक देती हैं। लाला तो यही चाहता था कि माता सोटी फेंक दे और उसके हाथ में आ जाऊँ। अब श्रीकृष्ण माता के पास जाते हैं। यशोदामाता यह समझ जाती हैं कि

मेरे सोटी फेंक देने से लाला को यह विश्वास हो गया है कि अब माता मुझे नहीं मारेगी। इसीलिए कन्हैया पास आता है। लेकिन कन्हैया कहता है कि माता! तेरा ऐसा सोचना ठीक नहीं है। मैं तेरा अभिमान उतर जाने के कारण तेरे पास आया हूँ। अब यशोदा माता की नजर श्रीकृष्ण के मुँह पर है, पीठ पर नहीं है। कन्हैया पास आ जाता है। मुँह पर नजर रखकर जहाँ यशोदाजी थोड़ा दौड़ती हैं कि कृष्ण हाथ में आ जाता है। यशोदाजी ने कहा कि लाला! तू बहुत शरारत करता है। आज मैं तुझे सजा देने वाली हूँ। यह सुनकर लाला ने तुरन्त कहा कि माता! अब मैं ऐसा कभी नहीं करूँगा। आज तू मुझे छोड़ दे। माता ने कहा, "आज मैं बिल्कुल मानने वाली नहीं हूँ। तूने जिस ओखली पर चढ़कर चोरी की है, उसी से आज तुझे बाँधूँगी। यशोदामाता कृष्ण को पकड़कर घर ले गयीं और उसे ओखली में बाँधने की तैयारी कर रही हैं। इससे कृष्ण के ग्वाल-बाल मित्र दुःखी हो गए हैं। आज बाल-मण्डल का अध्यक्ष पकड़ा गया है। इसीलिए सारी बाल-मण्डली रो पड़ी।

बालक यशोदामाता का वन्दन करते हैं और समझाते हैं कि माता, लाला ने हमारे लिये चोरी की है। माँ मुझे आज घर पर कुछ खाने को नहीं मिला। इसलिये मैंने लाला से बार-बार कहा कि मुझे भूख लगी है। इसके कारण लाला ने मेरे लिये चोरी की। तुम्हें जो सजा करनी हो, मुझे करो। लाला को मत बाँधो। अब इसे छोड़ दो। यह सुनकर यशोदामाता को आश्चर्य होता है कि बालकों का यह कैसा प्रेम है! वह बालकों को धमकाती है कि तुम अपने घर चले जाओ। मेरे सामने तुम वकालत करने चले हो! यहाँ से निकल जाओ। यशोदामाता ने अब तक किसी बालक से घर चले जाने को नहीं कहा था। वे ऐसा मानती थीं कि गाँव के सब बालक मेरे ही हैं। आज वे क्रोध में हैं। इसीलिए उन्होंने बालकों से घर जाने को कहा। बालक भागकर अपने घर गये और वहाँ जाकर गोपियों से कहा कि आज यशोदामाता बहुत चिढ़ गई हैं। लाला ने मटकी फोड़ डाली है। इसलिए उन्होंने लाला को बाँध रखा है। तुम जाओ और यशोदा माता को समझाओ कि लाला को बाँधे नहीं।

गोपियाँ यह खबर पाते ही दौड़ी-दौड़ी यशोदा माता के पास जाती हैं और उनको समझाती हैं कि माता, तू यह क्या करती है? हमने अनेक देवों की मनौती मानी अनेक व्रत किये, तब हमें यह बालक मिला है। मैं घर की गरीब हूँ। तेरा कन्हैया मेरे घर आता है, कभी मटकी भी फोड़ देता है, तब मैं इसे कभी धमकाती हूँ, किन्तु कभी इसे बाँधने का विचार नहीं किया है। माता! क्या तुमको इस पर दया नहीं आती? तुम इसे बाँधना मत। मेरे बालक घर पर जाकर रो रहे हैं। इस कारण आज कोई मेरे घर पानी भी नहीं पीता है। सभी को कन्हैया दुलारा है। आज तुमको

यह क्या हो गया है? तुम इतनी निष्ठुर क्यों बन गई हो? आज गोपियों की ये बातें माता को नहीं सुहाती। वे कहती हैं कि मैंने अपनी आँखों से देखा है कि इसे चोरी करने की आदत पड़ गई है। यह किसी की परवाह नहीं करता। तुम लोग इसको बहुत लाड़-प्यार करती हो, इसे सिर पर चढ़ा रही हो। क्या यह उसे समझता है? यह मेरा लड़का है। मुझे जैसा उचित लगेगा वैसा करूँगी। यशोदा माता ये बातें कहकर कन्हैया को बाँधने का प्रयत्न करती हैं। वे जिस डोरी से उन्हें बाँधने जाती हैं, वह एक अंगुल छोटी हो जाती है।

न चान्तर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम्।
पूर्वापरं बहिश्चान्तर्जगतो यो जगच्च यः।। (१०-९-१३)

महापुरुषों ने वर्णन किया है कि श्रीकृष्ण के कोमल गात को स्पर्श करते ही डोरी में दया आ गई है। वह सोचती है कि कन्हैया अत्यन्त कोमल है। उसे बाँधने पर कष्ट होगा। तात्पर्य यह है कि जो ब्रह्म-संस्पर्श करता है, उसका स्वभाव सुधरता है आज डोरी भगवान् का स्पर्श करती है और दो अंगुल छोटी हो जाती है, इस प्रकार जीव और ईश्वर में दो अंगुल का अन्तर है। यदि जीव निर्मोही और निर्मानी बने, तो ही ईश्वर को बाँध सकता है। माता उस डोरी के साथ दूसरी डोरी जोड़ती है, लपेटती है और उससे फ़िर कृष्ण को बाँधने जाती है, लेकिन वह डोरी भी दो अँगुल छोटी पड़ती है। गोपियों ने माता से कहा, ''यह तेरा कन्हैया है। इसके भाग्य में बन्धन लिखा ही नहीं है। यह हम सबको बन्धन से छुड़ाने आया है। इसको कोई बाँध नहीं सकता। यह सुनकर कन्हैया धीरे-धीरे मन में हँसने लगता है। इससे यशोदामाता चिढ़कर बोलती हैं, ''तू चार-पाँच वर्ष का बालक मुझे दाँत दिखाता है? तू समझता क्या है? आज मैं तुझे बाँधने ही वाली हूँ। चाहे जो भी हो। घर की सारी डोरियाँ इकट्ठी करूँगी, लेकिन तुझे जरूर बाँधूँगी।

माता यशोदा दूसरी डोरी जोड़ती है और बालकृष्णलाल को जहाँ बाँधने के लिए जाती है, वहाँ डोरी दो अँगुल छोटी हो जाती है। इस पर महापुरुषों ने कहा है, ''श्रीकृष्ण जहाँ विराजते हैं, वहाँ ऐश्वर्य शक्ति सेवा उपस्थित होती है। ऐश्वर्य शक्ति और वात्सल्य भक्ति का झगड़ा शुरू हो गया है। यशोदाजी में वात्सल्य भाव है। इसीलिए वे कहती हैं कि यह मेरा बालक है। इसे चोरी करने की आदत पड़ गई है। इसकी आदत मैं नहीं सुधारूँ तो कौन सुधारेगा? मुझे इसकी आदत सुधारनी है। ऐश्वर्य शक्ति कहती है कि यह मेरा पति है मेरे पतिदेव को कोई बाँधे, तो मुझ से सहन नहीं होगा। मैं देखती हूँ कि ये कैसे बाँधती हैं? ऐश्वर्य शक्ति डोरी में प्रवेश कर उसे छोटा कर देती है। शुकदेव महाराज ने दर्शन करते-करते कहा है--

स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्त्रस्तकबरस्त्रजः।
दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयाऽऽसीत् स्वबन्धने।। (१०-९-१८)

माता थक गई है। उसे देख बालकृष्णलाल को दया आ गई। अल्पशक्ति होने पर भी जीव दुराग्रही है और ईश्वर अनन्त शक्तिमान होने पर भी अनाग्रही है। इस जीव में शक्ति तो कम है; किन्तु वह अपना ही उल्लू सीधा करना चाहता है। दुराचारी हमेशा दुःखी होता है। माता का यह दुराग्रह था कि चाहे जो हो, मुझे तो लाला को बाँधना ही है। बालकृष्णलाल आज माता के दुराग्रह पर सहमत हैं। इस पर ऐश्वर्य शक्ति से कहा है कि मेरी माता मुझे बाँधना चाहती है; तू डोरी को क्यों छोटा कर देती है? इस समय मैं तेरा मालिक नहीं हूँ, बल्कि यशोदा माता का बालक हूँ। मैं प्रेम-रस लेने और प्रेम-रस देने के लिए बालक हुआ हूँ। तू द्वारका चली जा। जब मैं द्वारका आऊँगा, तब तेरा मालिक होकर आऊँगा। श्रीकृष्ण द्वारका में तो राजाधिराज हैं, किन्तु गोकुल में बालक हैं। इस समय लाला को दया आ गई है।

परमात्मा ने बन्धन स्वीकार किया है। जब ईश्वर बन्धन में आता है, तब जीव बन्धन से मुक्त होता है। लाला ने यशोदाजी से कहा "माता, तू मुझे छोड़ दे।" इस पर माता इन्कार कर देती है। उसके हृदय में तो प्रेम है कि मुझे कोई बाँधने की इच्छा नहीं; लेकिन क्या करूँ? लाला को चोरी करने की आदत पड़ गई है। वह मुझे छुड़ानी है। यशोदाजी ने विचार किया कि मैं जब रसोई घर में रसोई बनाने जाऊँगी, तो लाला को छोडूँगी उसे खिलाऊँगी। फिर बालक सब भूल जाएगा। लाला को बाँध कर वे रसोई बनाने गईं। उनका तन तो रसोई बनाने में लगा है; किन्तु मन श्रीकृष्ण में लगा है। वह रसोई बनाते-बनाते बारंबार कृष्ण को देखती हैं। लाला के ग्वालबाल मित्र आते हैं और वे उन्हें छुड़ाने का प्रयत्न करते हैं; किन्तु यशोदा माता ने गाँठ इतनी मजबूत बाँधी थी कि वह किसी से खुली नहीं। कोई बालक लाला के कन्धे पर हाथ रखता है, कोई उनके माथे पर हाथ फिराता है। वे पूछते हैं कि लाला, क्या तेरे पेट में दर्द होता है? तुझे क्या कोई तकलीफ होती है? लाला ने सोचा कि यदि मैं मित्रों से यह कहूँगा कि मुझे तकलीफ हो रही है, तो ये रोने लगेंगे। मित्रों का प्रेम विशुद्ध है। लाला ने कहा, "मुझे कोई तकलीफ नहीं है। तुम मेरी जरा भी चिन्ता मत करो। मैं तो झूठा-झूठा रो रहा था। मैं आनन्द से हूँ। मेरी माता ने मुझे बाँध कर अच्छा ही किया है। आज तो मुझे बैलगाड़ी का खेल खेलना ही था, लाला को खेल पसन्द है। कन्हैया ऐसा खेल करता है, जिसे देखकर ग्वाल बाल रीझ उठते हैं, मक्खन-मिश्री खाते लाला अपने मित्रों का बड़ा ध्यान रखता था।

६०- हमारी वाणीः भगवद्-गुणगान करे

कृष्णस्तु गृहकृत्येषु व्यग्रायां मातरि प्रभुः।
आद्राक्षीदर्जुनौ पूर्वं गृह्यकौ धनदात्मजौ।। (१०-९-२२)

नवें अध्याय में यशोदा माता कृष्ण को बाँधती हैं, यह कथा आई है। दसवें अध्याय में यमलार्जुन के मोक्ष की कथा है।

नारदजी के शाप से कुबेर के दो बालक नन्दजी के आँगन में दो पेड़ बन गए थे। इन दोनों बालकों को अपने बाप की सम्पत्ति बिना मेहनत किये मिली थी। इनका नाम नलकुबेर और मणिग्रीव था। बिना मेहनत से प्राप्त सम्पत्ति बुद्धि को भ्रष्ट कर देती है। अति सम्पत्ति में तीन दोष हैं- (१) जुआ खोरी, (२) मदिरापान, (३) स्त्री-प्रसंग।

यत्र स्त्रीद्युतमासवः

अति सम्पत्ति के कारण जुआखोरी का व्यसन आ जाता है। अति सम्पत्ति से माँस-मदिरा का व्यसन पैदा हो जाता है। सम्पत्तिवान लोग सादा भोजन नहीं करते। वे वासना-विकार बढ़ाने वाले तामसी अन्न का सेवन करते हैं। तदुपरांत अति सम्पत्ति में स्त्री-भोग का व्यसन होता है। कुबेर के दोनों पुत्र अनेक गन्धर्व-कन्याओं से विवाह करते हैं, मदिरा-पान कर स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करते हैं। नारदजी को यह देखकर क्रोध आया। उन्होंने सोचा कि यह गंगा-तट बहुत पवित्र है। ये विलासी लोग गंगा-तट पर आकर इस तीर्थ को भ्रष्ट कर रहे हैं। विलासी लोगों के आने से तीर्थ-देवों को भी कष्ट होता है। कितने ही लोग गंगा-तट या यमुना-तट पर बैठकर अपने घर की बातें करते हैं। यदि घर की बात ही करनी थी तो उसे छोड़ा ही क्यों? तुम किसी यात्रा में जाओ, भगवान् के लिए घर छोड़ो, भगवान् में यह विश्वास करो कि वह तुम्हारा घर सम्हालेगा, तुम्हारे बच्चों को सम्हालेगा। घर में रहकर गंगाजी और यमुनाजी का स्मरण करना पुण्य है किन्तु गंगा के किनारे बैठकर घर का स्मरण करना पाप है। नारदजी सोचते हैं कि मनुष्य को कितना सुन्दर शरीर मिला है, प्रभु ने बिना टूटे फूटे यह शरीर दिया है। इसका दुरुपयोग वह भोग-विलास में करता है। इस जीव को यह पता नहीं है कि इस शरीर पर किसका अधिकार है? माता यह समझती है कि पुत्र हमारा है। मैंने इसे पेट में दस मास रखा है। वर्ना यह पैदा ही नहीं होता। इस प्रकार माता अपने पुत्र के शरीर पर अपना अधिकार जताती है। बाप यह समझता है कि पुत्र मेरा है। मेरे बिना पुत्र पैदा ही नहीं होता। इस प्रकार पुत्र-शरीर पर मेरा अधिकार है। पत्नी यह कहती है कि जब तक विवाह नहीं हुआ था, तब तक आप दोनों का अधिकार था। मैं अपने माँ-बाप को छोड़कर

यहाँ आई हूँ। इस शरीर पर अब आपका कोई अधिकार नहीं। अब इस पर मेरा अधिकार है। अग्नि देव इन सबसे पहले कहते हैं कि पिता, माता और पत्नी इस शरीर पर अपना-अपना अधिकार जताते हैं, किन्तु प्राण निकल जाने के बाद कोई इसे घर में रखने को तैयार नहीं होता? ये लोग उसे जल्दी से जल्दी श्मशान में ले जाते हैं। वे मुझे मेरा भोजन देने के लिए वह शरीर मेरे पास ले आते हैं। यह शरीर मेरा भोजन है। इस पर मेरा अधिकार है। प्रभु ने यह फैसला किया कि इस शरीर पर न तो पत्नी का, न पिता का, न माता और न अग्नि का अधिकार है। इस पर भगवान् का अधिकार है। यह जीव अनेक योनियों में भटकते-भटकते थक जाता है। इसलिए प्रभु को इस पर दया आती है और वह इसे मनुष्य योनि प्रदान करते हैं, जिससे यह परमात्मा का काम करे और उसकी शरण में जाए। भगवान् ने मानव-शरीर भगवान् की भक्ति करने के लिए दिया है। फिर भी कोई मनुष्य भक्ति नहीं करता। मनुष्य को सुन्दर शरीर मिला है, घर में सब सुविधाएँ मिली हैं। फिर भी वह भोग-विलास में फँस गया है; अपने को भूल गया है। नारदजी ने शाप दिया कि जाओ, तुम वृक्ष बन जाओ। जो सम्पत्ति और शक्ति का दुरुपयोग करता है, वह दूसरे जन्म में वृक्ष बन जाता है।

भगवान् वृक्ष को धूप सहने, ठण्डी सहन करने की तपश्चर्या कराते हैं, इसके लिए विवश कर देते हैं। इसलिए भगवान् यदि तुमको खूब सम्पत्ति दें तो सुख मत भोगना, नित्य कुछ दुःख सहन करके भी भक्ति करना, तप करना। यदि तप नहीं करोगे, वृक्ष बनना पड़ेगा। वृक्षों को तप करना ही पड़ता है। नारदजी ने उनको शाप दिया कि तुम नन्द बाबा के आँगन में वृक्ष होगे। नारदजी उस समय गंगा-तट पर विराजमान थे; किन्तु उनका मन गोकुल में था। इसीलिए नारदजी के मुखसे यह वाणी निकली कि तुम नन्दबाबा के आँगन में वृक्ष बनोगे। नारदजी ने क्या यह शाप दिया या वरदान दिया? नल कुबेर और मणिदीप ने नारदजी से हाथ जोड़कर कहा कि महाराज, हमारी भूल हुई है। हम आपसे क्षमा चाहते हैं। आपकी शरण में आए हैं। नारदजी ने कहा, "नन्दबाबा के आँगन में बालकृष्णलाल का चरण-स्पर्श पाकर तुम्हारा उद्धार होगा। वह ही नलकुवेर और मणिग्रीव नन्दजी के आँगन में दो वृक्ष हैं। प्रभु ने नारदजी का वचन पूरा करने के लिए यह लीला की है। बालकृष्णलाल ओखली खींचते बाहर आते हैं। ये दोनों वृक्ष नन्दबाबा के आँगन में थे। उनके बीच से होकर बाल कृष्णलाल बाहर निकले और दोनों वृक्षों के बीच फैली हुई ओखली को जोर से खींचकर बाहर निकाला। श्रीकृष्ण-चरण के स्पर्श से ये दोनों वृक्ष दो देवपुरुष के रूप में बदल गये और श्रीकृष्ण-कन्हैया लाल की जय कहकर उन्हें बारंबार वन्दन करते हैं, उनकी स्तुति करते हैं-

नमः परमकल्याण नमः परममंगल, वासुदेवाय शान्ताय यदूनां पतये नमः।
वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां, हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः।
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे, दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम्।।

(१०-१०-३६/३८)

वे कहते हैं कि अब हमारी एक-एक इन्द्रिय को भक्ति से सराबोर कर दो। हमारी वाणी भगवद्-गुणगान करे, आपका गुणगान करे।

यदि तुम किसी मानव का अति वर्णन करोगे, तो जीभ और मन खराब होंगे। जीभ और मन से परमात्मा का गुणगान करो। भगवान् के चरण कैसे हैं! भगवान् के नेत्र कैसे हैं! भगवद्-स्वरूप और भगवद्-स्वभाव का वर्णन करने से ही वाणी पवित्र बनती है। संसार का वर्णन करने से जीभ अपावन बनती है, मन विकृत बनता है। नलकुबेर और मणिग्रीव कहते हैं, "हे भगवान्, हम तुम्हारा वर्णन करें, तुम्हारी कथा कहें, ऐसी कृपा करो।

प्रभु ने नलकुबेर और मणिग्रीव को सद्गति दे दी है। उनके स्वधाम में जाने के बाद कड़-कड़-कड़-कड़ का शब्द होता है और वे दोनों एक जोर के धड़ाके के साथ जड़ से उखड़कर जमीन पर गिर पड़ते हैं। गोपी और ग्वाल-वाल यह आवाज सुनते ही दौड़ पड़ते हैं। वे कहते हैं, 'क्या हुआ? क्या हुआ? ये वर्षों के पुराने पेड़ किस तरह जड़ से उखड़कर गिर गए हैं? अरे, वहीं पर कन्हैया ओखल के साथ बँधा हुआ है।" गोपियाँ बातें करती हैं, "यह बालक कितना भाग्यशाली है! अनेक राक्षस आए, राक्षसनियाँ आईं, किन्तु इसका बाल भी बाँका न कर सकीं। यह बच जाता है। भगवान् की कैसी कृपा है! ये वृक्ष किस तरह गिरे होंगे! नन्दबाबा ने ज्यों ही सुना कि दो वृक्ष टूट गिरे हैं, त्यों ही वे उधर को दौड़ पड़े हैं। उन्होंने दूर से देखा कि दोनों वृक्ष टूट गिरे हैं और कन्हैया ओखली के साथ बँधा पड़ा है। कन्हैया मेरा पुत्र है। नन्दबाबा ने इस प्रकार अपना वात्सल्य भाव दिखाया। उनको ऐसा प्रतीत हुआ कि मेरा बालक घबड़ा गया है। ये गोप गोपियाँ बातें कर रहे हैं। कोई लाला को छुड़ाता नहीं। अनेक देवताओं की मनौती मानने पर बुढ़ौती में यह बालक मिला है। इसकी माता को जरा भी इसकी चिन्ता नहीं है।

नन्दबाबा यह दृश्य न देख सके। आँखें गीली हो गईं। वे दौड़कर उस स्थान पर आ गये। लाला ने देखा कि नन्दबाबा दौड़ते हुए आ रहे हैं। इसलिये वे मुझे छुड़ा देंगे। लाला ने दोनों हाथ जोड़ कर ऊँचा किया और कहा, "बाबा, मुझे। मेरी माता ने बाँधा है।" नन्दबाबा ने कहा कि बेटा, मैं तुझे छुड़ा देता हूँ। नन्दबाबा लाला को छुड़ा देते हैं और उसे अपनी छाती से चिपका लेते हैं। पिता-पुत्र एकाकार हो जाते हैं। लाला बाबा को प्यार करता है और कहता है कि बाबा, मेरी माता

मुझे बाँधती है और मारती है। नन्दबाबा ने कहा कि तेरी माता ने तुझे बाँधा, किन्तु मैंने तुझे छुड़ाया है। लाला ने कहा, "हाँ आपने छुड़ाया है।" नन्दबाबा ने पूछा, "तू किसका लड़का है? कृष्ण ने कहा कि मैं अपनी माता का बालक हूँ। नन्दबाबा की बड़ी इच्छा है कि लाला कभी यह कहे कि बाबा, मैं आपका बालक हूँ आपका पुत्र हूँ, लेकिन उनकी इच्छा परिपूर्ण न हुई। वे बालकृष्णलाल को लेकर घर में आए और यशोदाजी को उलाहना दिया कि क्या तेरी बुद्धि खराब हो गई है? तू ने मेरें लाला को क्यों बाँधा? यशोदा माता ने कहा, 'सब मुझे ही उलाहना देते हैं गोपियाँ मुझे उलांहना देती हैं, किन्तु इसे चोरी करने की आदत पड़ गई है।" नन्दबाबा ने कहा कि यह अभी बालक है। बाल्यावस्था में सब ऐसा ही करते हैं। बड़ा होने पर भला ऐसा क्यों करेगा? तूने लाला को बाँधकर अच्छा नहीं किया। यशोदा माता व्याकुल हो उठीं और कहा कि मैंने प्रेम से बाँधा है। वे लाला को प्रेम से बुलाती हैं, "बेटा, तू मेरे पास आ। लाला ने माता के पास जाने से इनकार करते हुए कहा कि मैं तो बाबा का पुत्र हूँ। लाला को खुश करने के लिए नन्दबाबा ने कहा, "लाला, तू रो मत। तुझे तेरी माँ ने बाँधा था। तो मैं उसे खम्भे से बाँध दूँगा और सोटी से मारूँगा।" लेकिन यह सुनकर भी कन्हैया खुश नहीं हुआ। लाला ने कहा, "बाबा, मेरी माता भले मुझे मारे, किन्तु उसे न बाँधिए और न मारिए। वह मेरी माता है" यशोदा माता इसे सुनती है और कहती है कि बालक का यह कैसा प्रेम है! मुझे सब रोकते थे, किन्तु मैंने इसे बाँधा। मेरी बुद्धि ही बिगड़ गई थी, मैं बहुत निष्ठुर बन गई। यह कैसे प्रेम कर रहा है और मेरे बाँधे जाने की बात पसन्द नहीं करता। मैं इसकी योग्य माता नहीं हूँ। मैं निष्ठुर हूँ, यह प्रेम की मूर्ति है, सबके साथ प्रेम करता है। यह सोचकर यशोदा माता रोने लगती हैं और कहती हैं कि कन्हैया मेरी गोद में कब आएगा? वह मुझसे रूठ गया है, वह मेरे पास नहीं आएगा। माता का हृदय विकल हो उठा है।

कोई भी जीव जब परमात्मा के लिए रोने लगता है, तब प्रभु को दया आ जाती है। लाला ने देखा कि मेरी माता मेरे लिए रो रही है। उसी समय लाला ने नन्दबाबा से कहा "बाबा, मुझे तो भूख लगी है। आपके पास तो कुछ है नहीं। मैं आपका लड़का नहीं हूँ, बल्कि अपनी माता का लड़का हूँ।"

यह कहकर कन्हैया बाबा को छोड़ दौड़ता-दौड़ता अपनी माता के पास पहुँच जाता है, उनकी गोद में बैठ जाता है और उनसे कहता है कि माता, मैं आ गया। उस समय माता ने अपनी आँखें खोलकर देखा तो कन्हैया उनकी गोद में था। माता ने उसे छाती से लगा लिया और कहा कि मेरा रोना इससे सहा नहीं गया, मेरी आँखों में आँसू आना इसे सहन नहीं होता है। यह मुझसे बहुत प्रेम करता है। माता लाला को प्यार करने लगी। रस्सी से बाँधे जाने के कारण लाला का नाम दामोदर पड़ गया।

ग्वाल-बालों ने आज अपने-अपने घरों में पानी भी नहीं पिया। क्योंकि उनका कन्हैया बाँधा गया है। लाला ने कहा कि मैंने अपने मित्रों से कहा था कि अपनी माता का बन्धन छूट जाने पर वह सबको अपनी ओर से खाने की दावत देगा। माता! मुझे मित्रों को खाने के लिए दावत देनी है? यशोदा माता ने कहा, "बेटा, घर में सभी चीजें तैयार हैं। तुम सब एक साथ खाने बैठ जाओ।" लाला ने कहा कि मुझे आज परोसना है। मुझे परोसने में बड़ा मजा आता है; खाने में मजा नहीं आता। जब मैं अपने मित्रों को खिलाता हूँ, तब मुझे और भी मजा आ जाता है।

खाने वाले की अपेक्षा प्रेम से परोसने वाले को हजार गुना सुख मिलता है। खाने वाले में भगवान् के दर्शन करो, प्रेम से परोसो। कुछ लोग परोसते समय दौड़ते-दौड़ते चलते हैं, ऐसा नहीं होना चाहिए। जो खिलाकर तृप्त होता है, वह सच्चा वैष्णव है।

यशोदा माता समझाती हैं, "बेटा! तू अभी छोटा है। तुझे परोसना नहीं आएगा।" बालकृष्णलाल ने कहा कि मुझे परोसना बड़ा अच्छा आता है। आज मुझे परोसने दो। मेरे मित्र भूखे हैं। यह कहकर बालकृष्णलाल परासेने लगे। सभी उनकी जय-जय करते हैं और प्रेम से भोजन करते हैं। वे यह भी कहते हैं कि आज बहुत खाया, बहुत खाया। अब मेरे पेट में जगह नहीं है। कन्हैया कहता है कि मेरे गुरु ने मुझे ऐसा मंत्र सिखाया है कि उसे बोलने पर पेट के अन्दर भी दिखाई देता है। मैं उसके प्रभाव से देख रहा हूँ कि अभी तुम्हारे पेट में दो मालपुए की जगह है। इस प्रकार वे प्रेम से मालपुआ परोसते हैं, बारंबार मित्रों से विनोद करते हैं। इससे बालक प्रसन्न हो जाते हैं। कन्हैया एक-एक का हाथ पकड़ता है, उसे उठाता है और जल देता है। एक मित्र कहता है, "मेरा पेट बहुत भर गया है; मुझसे तो उठा ही नहीं जाता। लाला तूने मुझे बहुत परोस दिया था। अब तो यदि कोई बिछौना बिछा दे, तो यहीं सो जाऊँ। इस समय मुझे नींद आ रही है।" कन्हैया मजाक में जबाब देता है, "मित्र, प्रसाद तो मेरा था, किन्तु पेट तो तेरा था। तू ने इतना अधिक क्यों खा लिया?" मित्रों ने कहा कि लाला, जब परोसने लगा तो अपने आप ही अधिक खाया गया। इस प्रकार सब विनोद करते हैं और परमानन्द प्राप्त करते हैं।

६१- वंसी का बजवैया

गोकुल में उपनन्द नाम के एक वयोवृद्ध गोप थे। ये उपनन्द काका सभी बालकों को बड़े प्रिय लगते थे। ये नन्दजी के आँगन में बैठकर बालकों को ऐसी रसीली कहानियाँ सुनाते कि उन्हें सुनकर बालक अपने माता-पिता का आदर करें, ईश्वर में विश्वास करें और दीन-दुखियों पर दया करें।

कहानियों का मन पर बहुत प्रभाव पड़ता है, यह जानकर उपनन्दजी ऐसी सुन्दर कथाएँ सुनाते, विनोद करते, मनोरंजन करते और उपदेश भी देते क्योंकि उन्हें बालक बड़े प्रिय लगते। काका को देखते ही बालक दौड़ कर उनके पास जाते और उनको चारों ओर से घेरकर कहते कि कोई कहानी सुनाइए। उस समय गोकुल में राक्षसों का उत्पात बढ़ गया था। काका ने कहा कि यदि तुम सबको पसन्द हो, तो गोकुल छोड़कर वृन्दावन चले चलें।

वनं वृन्दावनं नाम पशव्यं नवकाननम्।
गोपगोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरुधम्।।

(१०-११-२८)

वृन्दावन बहुत सुन्दर है और सब तरह अनुकूल है। सभी बालकों को उपनन्द काका की बात पसन्द आई और सब उनसे सहमत हुए। फिर वे वृन्दावन में रहने गए।

अब धीरे-धीरे कन्हैया बड़ा होता जा रहा है। उसका मित्र प्रेम-आलौकिक है। ग्वालवाल उनसे कहने लगे कि चलो, हम बछड़े लेकर यमुनाजी के तट पर क्रीड़ा करने चलें। तू दिन भर क्यों घर में बैठा रहता है। अब तो तू बड़ा भी हो गया है। लाला ने अपनी माता यशोदा से कहा कि मेरे मित्र बछड़े लेकर यमुना तट पर क्रीड़ा करने को कहते हैं। तुम्हारी क्या इच्छा है यशोदा ने कहा, "बेटा, अभी तू छोटा है। बछड़े बड़े शरारती होते हैं। तुझे कोई मार दे तो क्या हो? कन्हैया ने कहा कि मुझे यमुनाजी के किनारे बछड़े लेकर जाना ही है, मुझे कोई नहीं मारेगा।

नन्दबाबा ने विचार किया कि लाला पाँच वर्ष का हो गया है। अब इसका छठा वर्ष आरंभ हो गया है। अब कन्हैया बाहर जाए और मित्रों के साथ खेल-कूद करे तो कोई हर्ज नहीं है। इससे कसरत होगी कसरत से शरीर सुधरेगा। लाला कसरत करेगा तो उसे थोड़ी भूख लगेगी और अधिक तगड़ा बनेगा। यशोदा, माता ने यह कहा कि कन्हैया बहुत शरारत करता है। अभी से पेड़ पर चढ़ता है। यदि यह यमुना के किनारे खेलने जाए; वहाँ काली नाग का बिल है। शरारत करते-करते लाला अन्दर जाए, तो अनर्थ हो जाए। नन्दबाबा ने उपनन्दजी से कहा कि लाला की यमुनाजी के किनारे खेलने की इच्छा है। यदि तुम इसके साथ जाओ, तो वहाँ खेलने भेजूँ। काका तो यह चाहते ही थे। उन्होंने कहा, "यमुनाजी के तट पर खेलने के लिए ले जाऊँगा। जरा भी चिन्ता मत कीजिए।" उपनन्दजी के साथ जाने की बात जानकर यशोदा माता को सन्तोष हुआ कि वे लाला को ठीक तरह सम्हाल लेंगे।

बालकृष्णलाल जब ग्वालवाल मित्रों और बछड़ों को साथ लेकर यमुनाजी के किनारे की ओर चल पड़ते हैं। इस अध्याय में श्रीकृष्ण वत्सपाल हो गए हैं। उनके साथ उपनन्दजी हैं।

उपनन्दजी बंसी बजाते हैं। उनको बंसी बजाते देख कृष्णजी बहुत खुश होते हैं। वे उनके पीछे-पीछे जाते हैं और कहते हैं, ''काकाजी, मुझे आप जैसी बाँसुरी बजानी हैं। मुझे आप बांसुरी दे दीजिए। उसे बजाऊँगा। उपनन्दजी ने कहा कि मेरे पास तो यह एक ही बाँसुरी है। जंगल में बाँस का एक पेड़ है। उसका बाँस काटकर उससे एक बाँसुरी तुम्हारे लिए बना दूँगा। लाला ने कहा, ''काका मुझे आप जैसी बाँसुरी बजानी है।'' काका को इस बात का अभिमान था कि मैं चालीस वर्ष से बाँसुरी बजाता हूँ। मेरीं जैसी बाँसुरी कोई बजा ही नहीं सकता। उन्होंने लाला से कहा कि तुम एकदम मेरे जैसी बाँसुरी बजाना कैसे सीख सकोगे। हाँ, मैं तुमको धीरे-धीरे सिखा दूँगा। बांसुरी अनेक रागों में बजानी पड़ती है। प्रभाती राग, भैरवी राग, सारंगी राग एक-एक राग में बजाना पड़ता है। जंगल में बाँस का एक पेड़ दिखाई दिया। कन्हैया ने काका से जिद की कि आप जिस बाँस के पेड़ की बात कर रहे थे। वह सामने दिखाई देता है। आप ऊपर चढ़ जाइए। उपनन्दजी बाँस के पेड़ पर चढ़ गए। वहाँ देवताओं ने लाला के लिए एक सुन्दर बाँसुरी बनाकर रख छोड़ी है। उसे देखकर उपनन्दजी को आश्चर्य होता है कि किसने यह बाँसुरी बनाकर रख छोड़ी है? यह कन्हैया ऐसा है कि इसके मन में जो आता है, उसे तुरन्त करना चाहता है। यह बड़ा भाग्यवान है। उपनन्दजी ने वह तैयार बाँसुरी लाला को देते हुए कहा कि देख, तेरे लिए यह किसी ने तैयार कर रखी है। इससे लाला के मन में बड़ा आनन्द हुआ। उसने कहा, ''काका मुझे आप जैसी बाँसुरी बजानी है। आप मुझे अच्छी तरह सिखाइए।'' उपनन्दजी ने कहा, ''बेटा, एकदम मेरी जैसी बाँसुरी बजाना तो नहीं आएगी। तू मुझे बजाते देखकर बजा।''

लाला ने बायाँ गाल झुकाकर बाँसुरी बजाई। उससे इतनी मधुर ध्वनि निकली कि उसे सुनकर दूर-दूर तक चरती हुई गाएँ हुम्-हुम् करती हुई लाला के पास दौड़ती-दौड़ती आ गईं। मुरलीधर भगवान् की जय! आज वे ही वेणुधर या मुरलीधर कहलाते हैं। इससे बालकों को आनन्द हुआ। बालक लाला की जय-जयकार करते हुए कहते हैं,''कन्हैया, तू बाँसुरी बहुत मीठी बजाता है। यह बुड्ढा बाँसुरी बजाता है, तब गाएँ दौड़कर नहीं आतीं, यह दुनियां भर का बनावटी नखरा अधिक करता है। जब हमारी गायें दूर-दूर जंगल में चली जाती हैं, तब हम उन्हें खोजते-खोजते थक जाते हैं। अब बहुत अच्छा हुआ। जब मेरी गाएँ दूर जाएँगी, तब मैं तुझे बताऊँगा कि बाँसुरी बजाओ। सुनकर गायें दूर से आती हैं। कन्हैया तो चुपचाप काका का मुँह देखता है और कहता है, ''काका मेरे मित्र मुझसे कहते हैं कि तू बहुत मीठी बंशी बजाता है। क्या मुझे आप जैसी मीठी बाँसुरी बजानी आएगी?''

लाला की बाँसुरी सुनने के बाद काका का चालीस वर्ष तक का बाँसुरी बजाने का अभिमान गलकर पानी हो गया। लाला किस खूबी से बाँसुरी बजाता है कि उसे सुनकर काका ने कहा, "तू मुझसे भी मीठी बाँसुरी बजाता है लाला, क्या यशोदा के पेट में से ही बाँसुरी बजाना सीख कर आया है—बनाई बाँस की बंशी, बजाना किससे सीखे हो?

शाम को कन्हैया घर आया। उसने यशोदा माता से कहा, "माँ मुझे बाँसुरी बजानी आ गई।" माता ने कहा, "क्या तूने एक ही दिन में सीख लिया?" कन्हैया ने कहा, "हाँ, एक ही दिन में आ गई।"

यशोदाजी ने गोपियों को आमंत्रण दिया है। सब गोपियाँ यशोदा माता के आँगन में आकर एकत्र हो गई हैं। गोपियों की मण्डली में बालकृष्ण खड़े हो गए हैं। वे बड़े प्रेम से बाँसुरी बजा रहे हैं। कन्हैया जब अपने दाहिने कन्धे की ओर दाहिना गाल झुकाकर बाँसुरी बजाते हैं, तब गोपियाँ और गाएँ बावली बन जातीं और जब वे नजर ऊपर कर बाँसुरी बजाते, तब स्वर्ग के देवता, इन्द्र, चन्द्र, वरुण आदि तन्मय हो जाते। जब वे धरती की ओर नजर कर बाँसुरी बजाते, तब पाताल की नागकन्याएँ भी डोल पड़ती थीं। वे चार प्रकार से बाँसुरी बजाते थे। इस अध्याय में केवल श्रीकृष्ण के मुरलीधर होने का ही वर्णन है। बाँसुरी की कथा तो इक्कीसवें अध्याय में फिर जानने को मिलेगी। यह ग्यारहवाँ अध्याय चल रहा है। शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं कि कन्हैया इस प्रकार बाँसुरी बजाता है कि उसे सुनकर माता को बड़ा आनन्द मिलता है। अत्यन्त आनन्द में उनकी आँखें बन्द हो जाती हैं। कन्हैया की बाँसुरी सुनकर माता यशोदा की दोनों आँखें बन्द हो गई हैं। यह देखकर कन्हैया दौड़ता हुआ उसके पास गया और बोला, "माँ-माँ, क्या तू सो गई?" यशोदा माता ने कहा, "नहीं बेटा, मैं सो नहीं गई, जाग रही हूँ। बेटा, तू बहुत मीठी बाँसुरी बजाता है। ऐसी कोई भी नहीं बजा सकता।" सभी को इससे आनन्द होता है।

एक बार श्रीकृष्ण ग्वाल बाल मित्रों के साथ बछड़ों को लेकर यमुनाजी के किनारे खेलने के लिए आए। उस समय कंस द्वारा भेजा गया बकासुर नाम का राक्षस एक बड़े बगुले का रूप बनाकर वहाँ आया। बकासुर वहाँ उपस्थित बालकों को खाने के लिए दौड़ता है। इससे बालक घबड़ा गए। श्रीकृष्ण दौड़ते-दौड़ते वहाँ पहुँच जाते हैं और उस बगुले की दोनों चोंचें पकड़कर उसे चीर डालते हैं। उस समय सभी बालक 'जय कन्हैयालाल" कह उठते हैं। बालक सायंकाल अपने-अपने घर लौटकर आते हैं और अपनी-अपनी माताओं को लाला की कहानी सुनाते हुए कहते हैं, "माँ, कन्हैया बड़ा बहादुर है। जंगल में एक बड़ा बगुला आया। वह हम सबको काटने के लिए दौड़ पड़ा। हम सब बहुत डर गए, किन्तु लाला को जरा भी डर नहीं लगा। वह दौड़ता

हुआ उसके पास गया और उसकी दोनों पकड़ीं चोंचें और उन्हें (माँ की साड़ी का पल्ला पकड़कर दिखाते हुए) इस प्रकार चीर डाला। और आवेश में आकर उन्होंने अपनी माँ की साड़ी का पला चीर डाला।

यह देखकर उनकी माँ ने कहा, "अरे, यह तू यह क्या कर रहा है?" बालक ने कहा, "माँ, मैं लाला के आवेश में आ गया और वैसा ही करने लगा।" गोपी बोली, "लाला ने बगुला मारा, राक्षस मारा और तूने मेरी साड़ी ही फाड़ दी।" बालक बोला, "माँ, मेरे घर साड़ियों की क्या कमी है? क्या तू रोज-रोज नई-नई साड़ियाँ नहीं पहनती। कन्हैया जब से ब्रज में आया है, तब से लक्ष्मीजी यहाँ पधारी हैं।"

जो लोगों पर अपनी छाप डालने के लिए भक्ति करते हैं, उसे दंभ कहते हैं। बगुला मानो दंभ है। भक्ति के तट पर दंभ आ जाता है। मनुष्य अनेक बार दंभ करता है। अन्दर से उसका मन काम-सुख और रुपये-पैसे में फँसा होता है और बाहर से वह ऐसा नाटक करता है कि मैं बड़ा ज्ञानी हूँ बड़ा भक्त हूँ। दंभ करने वाला मनुष्य दूसरे को धोखा देता है, समाज को छलता है। समाज तो परमात्मा का स्वरूप है। समाज को छलना परमात्मा को छलने के समान है। दंभ के समान दूसरा पाप नहीं है। हमारे शास्त्रों में एक-एक पाप का प्रायश्चित्त लिखा है, किन्तु दंभ का कोई प्रायश्चित्त ही नहीं है।

दंभ का ज्ञान मार डालता है। बगुले से कौआ अच्छा है। कौआ बाहर और अन्दर से काला है। बगुला बाहर से उजला और अन्दर से काला है। 'मुख में राम बगल में छुरी' की बात है। तुम अन्दर जैसे हो, वही स्वरूप संसार को दिखाओ। किसी को छलना मत। मनुष्य लोभ के कारण दंभ करता है। कीर्ति-लोभ और धन-लोभ पाप कराता है। बकासुर की दो चोंचें हैं। एक कीर्ति का लोभ है और दूसरी द्रव्य का लोभ है। श्रीकृष्ण दंभ का विनाश करते हैं।

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे।
निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः॥ (१०-११-५९)

दसम स्कन्ध का ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ। अब बारहवाँ अध्याय आरम्भ होता है।

क्वचिद् वनाशाय मनो दधद् व्रजात् प्रांतः समुत्थाय वयस्यवत्सपान्।
प्रबोधयञ्छृंगरवेण चारुणा, विनिर्गतो वत्सपुरःसरो हरिः॥

(१०-१२-१)

प्रतिदिन बालक लाला के घर आते, उन्हें जगाते और कभी कन्हैया ही एक-एक के घर जाते और उन्हें जगाते हैं। वे मित्रों के साथ बड़े प्रेम से ऐसा व्यवहार करते कि मैं तुम्हारे जैसा एक

ग्वाला हूँ, कोई बड़ा या महान् नहीं हूँ। एक दिन बछड़ों को लेकर वे अपने मित्रों के साथ जमुनाजी के किनारे आए। वहाँ कंसराज का भेजा हुआ अघासुर नाम का एक राक्षस अजगर का रूप धारणकर पहुँचा और अपना मुँह फाड़कर बैठा था। अघासुर का मुँह पर्वत की गुफा के समान दिखाई दे रहा था। ग्वाल बाल मित्र खेलते-खेलते वहाँ पहुँचे और बोले, ''कन्हैया, यह गुफा है। चलो, इसके अन्दर चलें।'' एक बालक बोला कि इससे कुछ श्वास निकलती मालूम होती है। यह कोई गुफा नहीं है, बल्कि कोई जानवर है। यह सुनकर दूसरा बोल उठा, चाहे यह कोई हो। यदि कन्हैया साथ आयेगा, तो हम सब भी अन्दर चलेंगे। यदि यह अजगर होगा तो कन्हैया कोई ऐसा मन्त्र बोलेगा जिससे यह मर जाएगा। लाला के पास इसका मन्त्र है।''

इन बालकों का एक नियम था कि ये श्रीकृष्ण के बिना जाते नहीं थे और न ये श्रीकृष्ण को कहीं अकेला जाने देते हैं। वे जहाँ जाते हैं श्रीकृष्ण को लेकर जाते हैं। अकेले नहीं जाते। यदि आपसे हो सकता हो, तो ऐसा ही नियम बना लीजिये कि अकेले कहीं नहीं जाएँगे। जहाँ जाना हो तो वहाँ भगवान् को लेकर जाना। अनेक लोगों की यह आदत होती है कि वे जहाँ कहीं जाते हैं पैसे का पाकिट साथ लेकर जातें हैं, उसमें सौ दो सौ रुपए होते हैं। वे इससे खूब अकड़ कर चलते हैं और सोचते हैं कि पैसा अपने पास है। इसलिए कोई तकलीफ नहीं होगी। पैसे से आपको सुख जरूर होगा किन्तु इससे दुःख का अन्त नहीं आएगा, जिसके पास पैसा होता है, वह सुख भले ही भोगे, किन्तु उन्हें दुःख तो भोगना ही पड़ता है। जो परमात्मा को साथ रखता है, उसे कदाचित दुःख उठाना पड़े, किन्तु उस दुःख का असर मन पर नहीं होता। इसलिए जहाँ कहीं जाओ, वहाँ भगवान् को अपने साथ रखो। किसी जगह पर अकेले मत जाओ।

अनेक वैष्णवजनों की ऐसी आदत होती है कि वे घर से बाहर जाते समय घर में स्थित ठाकुरजी को वन्दन कर कहते हैं, ''भगवान्, हमें बाहर जाना है। आपको स्वरूप बनाना आता है। आप एक स्वरूप लेकर घर में विराजिए, इस घर को सम्हालिये। दूसरा स्वरूप लेकर मेरे साथ बाहर चलिए। मुझे तुम्हारे बिना अच्छा नहीं लगेगा। मैं अकेला बाहर नहीं जाऊँगा। आप भी साथ चलिए।'' आप जहाँ जाइए, वहाँ ठाकुरजी को साथ लेते जाओ। अकेले कदपि मत जाओ।

हमेशा भगवान् को साथ लेकर जाने का अर्थ भगवान् की मूर्ति हाथ में लेकर फिरना नहीं है। एक वैष्णवजन गाड़ी में बैठे थे और बड़ी लम्बी चौड़ी बातें कर रहे थे, स्टेशन आने पर उन्होंने अन्य सामान तो उतारा किन्तु ठाकुरजी तो गाड़ी में ही रह गये। इस प्रकार भगवान् को अपने साथ ले जाने का कोई अर्थ नहीं। भगवान् को अपने मन से साथ रखो। दो-चार मिनट बीतने पर दर्शन करो, उनके चरणों में वन्दन करो, भगवान् को मत भूलो। ईश्वर से मन का विभक्त न होना ही

भक्ति है। बालकों ने लाला से कहा, ''कन्हैया, तू आएगा तो अन्दर चलेंगे, खेलने की बड़ी इच्छा है।'' कुछ ग्वालबाल तो लाला से कहकर अन्दर चले गये। भगवान् सब जानते थे कि ये भोले व्रजवासी हैं और यह तो बहुत बड़ा अजगर है। ग्वालबाल के पीछे-पीछे श्रीकृष्ण भी चल पड़ते हैं। श्रीकृष्ण अन्दर जाते हैं। वे विचार करते हैं कि इन ग्वालों का मुझ से कितना प्रेम है यदि अकेले जाएँगे तो अजगर इन्हें खा जायेगा, मार डालेगा। प्रभु ने अपनी महिमा शक्ति प्रकट की और अपना इतना स्वरूप विस्तार किया कि अघासुर के प्राण को बाहर निकलने का रास्ता ही न रहा। अब अघासुर के प्राण अन्दर ही अन्दर व्याकुल हो गए हैं। अघासुर बहुत घबरा गया है। ब्रह्मरंध्र को फाड़कर उसके प्राण बाहर निकल जाते हैं। ग्वालबाल मित्रों के साथ श्रीकृष्ण बाहर चले आते हैं। अघासुर के प्राण आकाश में चक्कर लगा रहे थे। जैसे ही श्रीकृष्ण बाहर आये वैसे ही ''कृष्ण कन्हैयालाल की जय'' कहकर पड़ जाते हैं। अघासुर को मुक्ति मिल जाती है। अभिप्राय यह है कि मुक्ति तभी मिलती है जब भगवान् बाहर से अन्दर आते हैं। अन्दर बिराजने वाले भगवान् जीव को मुक्ति नहीं देते। प्रत्येक जीव के अन्दर भगवान् विराजमान रहता है। फिर भी वह बन्धनग्रस्त रहता है। अन्दर ईश्वर के होने पर भी जीव अज्ञानी है। जब भगवान् बाहर से अन्दर आते है तब जीव के अज्ञान का विनाश हो जाता है, और तभी माया का बन्धन छूट जाता है। अन्दर का जो भगवान् है वह निराकार है। निराकार कुछ कर नहीं सकता। जो करता है वह साकार भगवान् ही करता है। इसलिए भगवान् को बाहर से अन्दर पधराओ। घर में ठाकुरजी का स्वरूप पधराकर भगवान् का शृंगार करो। केवल भगवान् के दर्शन में ही मत फँसो बल्कि दर्शन करते-करते भगवान् को आँख में से अन्दर उतार लो।

जब अन्दर का निराकार भगवान् और बाहर का साकार भगवान् ये दोनों मिलते हैं तब माया का बन्धन छूट जाता है और तभी जीव को मुक्ति मिलती है। प्रभु ने अघासुर का उद्धार कर दिया। अब हम अघासुर शब्द पर भी थोड़ा विचार करें। 'अघ' शब्द का अर्थ पाप होता है। 'अश' शब्द का अर्थ है प्राण, 'र' शब्द का अर्थ है रमण करना अर्थात् जिसका प्राण पाप में रमण करता है, जो पाप करने में सुख मानता है, जिसे पाप करने में आनन्द आता है। ऐसे सभी लोग अघासुर जैसे हैं। इस बात पर खूब ध्यान देना कि इस जगत् में पाप करने वाला कोई सुखी नहीं हुआ, पापी दुःखी होता है। पाप का फल दुःख है। इस कलियुग में कदाचित ऐसा दिखाई देगा कि पाप करने वाला सुखी है और जो पाप से डरता है, पाप नहीं करता वह दुःखी है। देखने में चाहे ऐसा लगे किन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता कि पाप करने के कारण ही पापी सुखी है। यदि कोई पापी सुखी दिखाई दे तो यह मान लेना कि वह इस समय किसी पूर्व जन्म के पुण्य का फल भोग रहा है,

इसीलिए वह सुखी है। यदि पुण्यशाली जीव दुःखी दिखाई दे तो समझना कि इस समय वह पूर्व जन्म के किसी पाप का फल भोग रहा है। क्या कोई मनुष्य आज झूँठ बोले तो आज ही दुःखी होगा? जो आज झूँठ बोलता है सम्भव है उसे धन अधिक मिल जाए, इससे वह सुखी हो जाएगा। इस प्रकार भले वह सुखी हो जाये किन्तु उसने जो झूँठ बोला है उसके कारण सुखी नहीं हो सकता। जो आज सुखी है वह इस समय अपने पूर्वजन्म के किसी पुण्य का फल भोग रहा है और उसी पुण्य के कारण सुखी हुआ है। आज जिसने झूँठ बोला है उसकी सजा तो उसको मिलने ही वाली है। वह सजा आज नहीं तो वर्ष, दो वर्ष, बारह वर्ष बाद भी भोगनी पड़ती है।

बहुत से पाप ऐसे होते हैं जिनका फल इस जन्म में भोगने का आता ही नहीं है, वह फल दूसरे जन्म में भोगना पड़ता है। यह जीव किए गए कर्म का फल भोगता है। पाप सबसे पहले मन में आता है। इससे पहले मन बिगड़ता है, इसके बाद वाणी बिगड़ती है, फिर व्यवहार बिगड़ता है। इसलिए मन को बार-बार समझाओ कि पाप करके कोई सुखी नहीं हुआ है, तू पाप छोड़ दे। पाप को मन में घर मत करने दो। यदि पाप मन में आये, तो तुरन्त उसे मन से निकाल दो, जोर से हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, का कीर्तन प्रेम से करो, अपने भगवान् का स्मरण करो और भगवान् को वन्दन कर कहो कि मेरा मन बिगड़ गया है। मन बिगड़ने के बाद वाणी बिगड़ती है और उसके बाद व्यवहार बिगड़ता है। कोई भी क्रिया शब्दोच्चार पूर्वक ही होती है। मनुष्य कोई खराब काम करने के पहले खराब शब्द बोलता है और अच्छा काम करना हो तो पहले अच्छा शब्द बोलता है। व्याकरण शास्त्र का एक नियम है कि बिना शब्दोच्चार के कोई क्रिया नहीं होती। मनुष्य पाप कर्म करने के पहले एक दो मिनट खराब शब्द बोलता है, यह खराब शब्द जीभ से न बोला जाकर भी अन्दर की वाणी से बोला जाता है। इसलिए कभी खराब शब्द मत बोलना। अपनी जीभ से हरे कृष्ण, हरे राम का सतत जप करो। वाणी बिगड़ने पर व्यवहार बिगड़ता है। वाणी न बिगड़े तो व्यवहार नहीं बिगड़ता। लोग स्वप्न में बात करते हैं, स्वप्न में जीभ से बोलते हैं।

परा, पश्यन्ति मद्यमा, और वैखरी वाणी के ये चार प्रकार हैं। परा वाणी या अन्दर की वाणी से खराब शब्द बोलने पर खराब काम होता है। क्योंकि मन और वाणी का बहुत गाढ़ा सम्बन्ध है। इसलिए तुम्हारे जीवन में कैसा ही कठोर अवसर आवे तब भी खराब शब्द मत बोलना। वाणी के बिगड़ने से ही बर्ताव बिगड़ता है। जीवन में ऐसा भी समय आएगा कि पाप की इच्छा न करने पर भी तुम से पाप हो जाएगा। यह जीव अनेक जन्म से पाप करता आया है। इसलिए पाप का संस्कार बुद्धि में दृढ़ हो गया है। इस पाप-संस्कार के जगने पर चतुर मनुष्य भी मूर्ख बन जाता है। फिर तो उसे पाप करने में सुख का आभास मिलने लगता है। अनेक बार ऐसा प्रतीत होता

है कि कोई अन्दर से बैठा-बैठा पाप करा रहा है। तुम्हें जब ऐसा लगे कि मन हाथ से छटक गया है, मन अब हाथ में नहीं है, अब पाप होने वाला है तो ऐसे समय में तुम प्रभु का नाम जप करो या स्नान करो, या ध्यान करो तो भी मन पाप करेगा ही। जीवन में जब ऐसी घड़ी आ जाती है कि मन पाप करेगा ऐसा प्रतीत होने लगता है, तब पाप करो। कथा का एक ही शब्द पकड़ कर मत रखो नहीं तो तुम इतना ही ध्यान में रखोगे कि महाराज ने पाप करने के लिए कहा है।

मैंने पाप करने के लिए नहीं कहा है कि बल्कि जब पाप मन में आंवे तो स्नान करो, ध्यान करो, हरे कृष्ण हरे राम कीर्तन करो। यह सब करने पर भी पाप होगा। जब ऐसा लगे कि अब पाप होगा ही तब भगवान् से हाथ जोड़कर कहना कि, "मैं पाप करता हूँ, मैं अपने मन को सम्भाल नहीं सकता, हे भगवान्! मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ, मैं तुम्हारा हूँ, मुझे पाप करने से रोको और मेरे साथ रहो।"

श्रीकृष्ण को साथ रखकर पाप करना, श्रीकृष्ण से कहकर पाप करना। भगवान् को साथ रखकर पाप करने का क्या अर्थ? इसका अर्थ 'हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, बोलते-बोलते पाप करना। मनुष्य का एक स्वभाव है कि वह पुण्य कर सकता है किन्तु पाप नहीं छोड़ सकता। यदि परमात्मा अतिशय कृपा करे तो ही पाप छूट सकता है। यदि भगवान् को साथ रखकर पाप करोगे तो धीरे-धीरे पाप छूट जाएगा। भगवान् को साथ रखकर किए गए पाप की सजा बहुत कम होती है। जब भगवान् पूछेंगे कि तूने ऐसा पाप क्यों किया तब उस समय हाथ जोड़कर उनसे कहा जाएगा कि मैंने पाप किया है किन्तु आपको साथ रखकर पाप किया है। इसलिए आधी सजा आप भोगिए और आधी मैं भोगूँगा क्योंकि आप पाप करते समय साथ थे। जो चोरी नहीं करता किन्तु चोर के साथ घूमता है उसे भी तो सजा भुगतनी पड़ती है।

६२- ब्रह्म कृष्ण-जगत् कृष्ण

एतत्कौमारजं कर्म हरेरात्माहिमोक्षणम्।
मृत्योः पौगण्डके बाला दृष्ट्वोचुर्विस्मिता व्रजे।। (१०-१२-३७)

बालक अपने घर जाकर प्रतिदिन की कथा अपनी माताओं को प्रतिदिन सुनाते हैं। वे कहते हैं कि लाला ने आज ऐसा किया, लाला ने आज ऐसी लीला की। किन्तु उन्होंने अघासुर वध की कथा एक वर्ष बाद सुनाई यह सुनकर राजा परीक्षित को आश्चर्य हुआ कि बालकों ने यह कथा एक वर्ष बाद क्यों सुनाई? शुकदेवजी महाराज का हृदय यह जानकर पिघल उठा है, आँखें भीगी हो गई हैं और शरीर में रोमांच हो आया है, वे कहते हैं, "मेरे श्रीकृष्ण अति उदार हैं, अतिशय

प्रेमालू हैं। इस जीव को परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान नहीं हैं, भगवान् के स्वभाव को वह नहीं जानता। इसीलिए वह जगत् की खुशामद करता है। किसी धनवान की बहुत खुशामद करोगे तो वह देते देते भी क्या देगा? जो परमात्मा की खुशामद करता है उसे वह भगवान् बना देता है। यदि जीव श्रीकृष्ण से प्रेम करे तो वह उसे श्रीकृष्ण बना देते हैं। यह जीव बड़ा अभागा है इसलिए वह भगवान् से प्रेम नहीं करता, परमात्मा की खुशामद नहीं करता, जगत् की खुशामद करता है। शुकदेवजी को श्रीकृष्ण की उदारता का स्मरण हो आता है। उनकी आँखें भीग गई हैं, उनका गला भर आया है, वे दो मिनट तक बोल नहीं सके। जब वैष्णवजन कीर्तन करते हैं तब उन्हें अपने देह का भान होता है। उन्होंने इस लीला का बहुत प्रेम से वर्णन करते हुए कहा है कि हे राजा! तूने बहुत सुन्दर प्रश्न किया है। अघासुर के मारने के बाद बालकों ने लाला से कहा कि कन्हैया बहुत भूख लगी है। लाला ने कहा, "चलो जमुना किनारे चलें वहाँ पंक्ति में बैठकर भोजन करेंगे।" वे ग्वाल बालमित्र, श्रीकृष्ण यमुना किनारे श्रीधाम वृन्दावन में वृक्षों की छाया में भोजन करने बैठे हैं। तुम मन से उनका दर्शन करो और अनुभव करो कि मैं इस समय वृन्दावन में हूँ, यमुनाजी का दर्शन करता हूँ, सभी वृक्ष फल-भार से झुक गए हैं। श्रीकृष्ण के स्पर्श की आशा से बड़े-बड़े ऋषियों ने वृंदावन में पेड़ का रूप धारण कर लिया है। श्रीकृष्ण उन्हीं वृक्षों की छाया में अपने ग्वाल बालमित्रों के साथ भोजन करने बैठे हैं। शुकदेवजी महाराज कथा नहीं कर रहे हैं, वे दर्शन करते-करते कह रहे हैं-

बिभ्रद्वेणुं जठरपटयोः शृंगवेत्रे च कक्षे, वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यंगुलीषु।
तिष्ठन्मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन्नर्मभिः स्वैः स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग्बालकेलिः॥

(१०-१३-११)

आज की भोजन व्यवस्था कमलाकार हो रही है। यह बालकों का शुद्ध प्रेम है। उनकी इच्छा है कि मुझे आज श्रीकृष्ण से सटकर ही बैठना है। जो श्रीकृष्ण से दूर बैठता है उसे आनन्द नहीं मिल पाता, श्रीकृष्ण को स्पर्श कर बैठने वाले को ही आनन्द प्राप्त होता है। वृन्दावन के साधु रासलीला की कथा चार प्रकार से करते हैं, चार प्रकार की रासलीलाओं का वर्णन है। एक रास लीला में श्रीकृष्ण वृद्ध गोपियों के साथ रमण करते हैं। दूसरी रासलीला गायों के साथ होती है, तीसरी रासलीला ग्वालमित्रों के साथ होती है और चौथी रासलीला युवती गोपियों के साथ होती है। युवती गोपियों के साथ रास करने की कथा उन्नीसवें अध्याय में आएगी। यह तेरहवाँ अध्याय चल रहा है। इस अध्याय में श्रीकृष्ण की रासलीला वृद्ध गोपियों, गायों और ग्वालमित्रों के साथ हुई है।

शुकदेवजी महाराज कहते हैं "हे राजर्षि यह अलौकिक रासलीला है। रासलीला का क्या तात्पर्य है इसे समझो। उपनिषद् में "रसो वै सः" कहकर परमात्मा का वर्णन किया गया है। अर्थात् परमात्मा रसस्वरूप है, रसमय है। अति मधुर रस ही परमात्मा है। रसमय मनुष्य ही परमात्मा को प्राप्त करता है। रसमय परमात्मा के साथ एक होना ही रास कहलाता है। गोकुल में वृद्ध गोपियाँ थीं। वे बालकृष्णलाल का दर्शन करती हैं। दर्शन में आनन्द तो आता है किन्तु उनके मन में यह भाव जगता है कि यदि हमें श्रीकृष्ण के दर्शन में इतना अधिक आनन्द आता है तो जब यशोदा माता लाला को अपनी गोद में लेकर छाती से चिपकाती होंगी तो उन्हें कितना आनन्द आता होगा। हमें लाला से मिलना है, मुझे उसके साथ एकाकार होना है। ये वृद्ध गोपियाँ श्रीकृष्ण के दर्शन करते-करते अपने मन द्वारा श्रीकृष्ण से मिलती हैं। वे मन से तो श्रीकृष्ण से मिल रही हैं, किन्तु अब भी उनकी भावना प्रत्यक्ष मिलन की है। इस अध्याय में इन वृद्ध गोपियों के साथ रास है, मिलन है।

गोकुल में जो गायें थीं, उन्हें भी लाला से मिलने की इच्छा थी। अरे! इन गायों से लाला किस प्रकार मिले? यह बड़ा भारी प्रश्न है। गायों के मन में ऐसा भाव जगता है कि जिस प्रकार बछड़ा गाय का दूध पीता है, उसी प्रकार कृष्ण मेरा दूध पिएँ तो मैं उससे मिलूँ। गाय जब बछड़े को दूध पिलाती है तब गाय और बछड़ा दोनों एकमय हो जाते हैं। उनका अद्वैत ऐसा हो जाता है कि उसे कोई तीसरा नहीं समझ सकता। इसका अनुभव गाय और बछड़े ही कर सकते हैं। इन गायों को कन्हैया के साथ एकाकार होना है, लाला से मिलना है। इस अध्याय में परमात्मा ने गायों के साथ भी रास किया है।

तत्पश्चात् इस अध्याय में ग्वाल मित्रों के साथ भी रास है। ग्वालों की ऐसी भावना है कि मुझे श्रीकृष्ण को स्पर्श करके ही बैठना है। कोई श्रीकृष्ण से दूर बैठने को तैयार नहीं है। अब श्रीकृष्ण तो ठहरे एक और बालक हैं अनेक। फिर वे एक ही समय सबसे किस प्रकार मिलें। शुकदेवजी महाराज समाधि-भाषा में एक ऐसा वर्णन करते हैं-

यथाम्भोरुहकर्णिकायाः।

आज की भोजन-बैठक कमल जैसी है। कमल के मध्य में गाभा (पुष्प दण्ड) होता है। श्रीकृष्ण मध्य में हैं। छोटी-छोटी पंखुरियाँ गाभे के पास होती है। बड़ी पंखुरी गाभा से दूर दिखाई देती हैं। दूर दिखाई देने पर भी प्रत्येक पंखुरी का संयोग गाभा के साथ होता ही है। कमल एक हजार पंखुरियों का होता है। उसमें एक भी पंखुरी ऐसी नहीं होती जिसका सम्बन्ध गाभा से न हो। छोटे बालक श्रीकृष्ण के पास हैं और बड़े बालक थोड़े दूर हैं। तुम्हारे बड़े हो जाने पर कन्हैया तुम्हें

दूर रखेगा। तुम यदि छोटे होगे, मन से बालक की तरह छोटे रहोगे, तो श्रीकृष्ण तुम्हें पास बैठाएँगे। प्रभु ने अनेक बालकों को एक साथ अपने मिलने का अनुभव कराया है कि तुम से सटकर बैठा हूँ। श्रीकृष्ण ने रासलीला में प्रत्येक गोपी को यह अनुभव कराया है कि मैं तेरे पास हूँ।

बालकों का प्रेम शुद्ध है। ये बच्चे अपने-अपने घर से जो कुछ लाते उसमें जो अच्छी से अच्छी वस्तु होती उसे लाला के लिए अलग रख देते, जो मध्यम वस्तु होती उसे मित्रों को देते और जो साधारण वस्तु होती उसे अपने खाते। अच्छी वस्तु दूसरे को देना ही भक्ति है। जो अच्छी वस्तु अपने लिए रखी जाए, वह आसक्ति है बालकों की ऐसी भावना है कि लाला के मुँह में मुझे कौर (कवल) देना है। यदि मैं श्रीकृष्ण से दूर बैठूँ तो मुँह में कौर किस प्रकार दे सकूँगा? बालक प्रेम से लाला को भोजन कराते हुए कहते हैं, 'लाला मेरी माँ ने तेरे लिये जलेबी बनाई है। उसने मुझसे यह कहा है कि तू इसे लाला के हाथ में मत देना। उसके मुँह में ही खिला देना। लाला मैं इसे तेरे मुँह में ही दूँगा।' कन्हैया भोजन में भी बालकों को बोध देता है और कहता है कि तू मुझ अकेले को ही जलेबी देता है, मेरे मित्रों को नहीं देता। मेरे गुरु ने मुझे यह विशेष रूप से सिखाया है जो अकेला खाता है, वह दूसरे जन्म में बिल्ली हो जाता है। इसलिए किसी दिन अकेले नहीं खाना चाहिए। कुछ लोग ऐसे होते हैं कि जो वस्तु अधिक हो तो देने की उदारता दिखाते हैं, किन्तु थोड़ी होने पर उसे छिपा रखते हैं। यदि अंगूर खाते हों और उस समय अपने किसी साथी को आते हुए देखते हैं, जिनके साथ दो बच्चे हैं तो तुरन्त ही अपनी पत्नी से कहते हैं इसे अन्दर रख दो, वे आते हैं। इसलिए जय श्रीकृष्ण-जय श्रीकृष्ण किया जाता है। वह पूछता है कि क्या कर रहे हो? तो जवाब मिलता है कि-'कुछ नहीं खाली बैठे हैं।' मित्र ने देखा था इसका सीढ़ी चढ़ते समय मुँह कुछ हिल रहा था, यह कुछ खाता होगा; लेकिन यह बात बदल गया। जगत् में कोई मूर्ख नहीं है, जो दूसरे को मूर्ख समझता है वही मूर्ख होता है। सभी यह समझते हैं कि जीव ईश्वर का अंश है। यदि तुम खाने बैठे हो और उसी समय तुम्हारे घर कोई आ जाए, तो ऐसा मानना कि इस अन्न में इसका भी भाग है। वह अपना भाग लेने आया है। अर्थात् वह खाने नहीं आया है। आज़ उसका भाग नहीं दोगे तो एक दिन व्याज के साथ उसे देना पड़ेगा। दूसरे को देने से कुछ घटता नहीं है बल्कि बढ़ता है। जिसका मन बड़ा है, उसके घर में कमी नहीं होती। मन बड़ा रखो। कोई चीज़ थोड़ी हो, तो थोड़े में से भी थोड़ा भाग दूसरे को दो।

कन्हैया उस बालक को समझता है, 'सभी को जलेबी दो।' वह बालक सभी को जलेबी देने के बाद लाला के मुँह में जलेबी डालता है। कन्हैया उसे खाता है, उसकी प्रशंसा करता है और कहता है कि तेरी माँ ने जलेबी बहुत अच्छी बनाई है। ऐसी जलेबी मेरी माँ को बनानी नहीं आती।

तात्पर्य यह है कि जिसका खाओ उसका बखान करो। जिसने मेहनत की है, जिसने पैसा लगाया है उसकी ऐसी इच्छा होती है कि लोग मुझे अच्छा कहें, मेरा बखान करें और मैं उसे सुनूँ। कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि मेरा बखान मुझे पसन्द नहीं आता। किन्तु प्रायः वे गलत कहते हैं। अपना बखान सभी को पसन्द आता है। क्योंकि बखान सुनने के बाद क्या नया उत्साह आता है, थकावट उतर जाती है। दूसरा एक बालक आया और उसने कहा कन्हैया मैं तो बरफी लाया हूँ। मैंने सभी को दे दी है। तू ही अकेला बाकी है। उसने लाला के मुँह में बरफी डाल दी। इस प्रकार श्रीकृष्ण ग्वालबाल मित्रों के साथ प्रेम से भोजन करते हैं। तुम इसका दर्शन मन से करो और ऐसी भावना करो कि मैं इस समय वृन्दावन में हूँ, श्रीकृष्ण के ग्वालबाल मित्रों के साथ मण्डल में हूँ। मैं लाला के लिए अच्छी सामग्री ले गया हूँ। मैं लाला को खिला रहा हूँ। उस समय तुमको समाधि लग जाएगी। यह मन संसार की लीला का चिन्तन करने से बिगड़ गया है। यह यदि श्रीकृष्ण लाला का चिन्तन करे, तो धीरे-धीरे सुधर सकता है। कन्हैया बर्फी खाता है और बखान करता है कि यह बहुत अच्छी है।

श्रीकृष्ण के बाल मण्डल में एक ब्राह्मण का बालक भी है। वह शांडिल्य ऋषि का पुत्र है। उसका नाम मधुमंगल है। उस बालक की उम्र चार-पाँच वर्ष की है। नंदबाबा ने शांडिल्य ऋषि से कहा है कि यज्ञोपवीत करने के बाद आपका बालक हमारे घर में नहीं खाएगा। अभी उसको जनेऊ नहीं दिया गया है। इसलिए रोज सुबह-शाम हमारे यहाँ भोजन करने के लिए भेजना। वह पुरोहित महाराज का लड़का था इसलिए यशोदा माता उसका बहुत आदर करती हैं उसे लाला के साथ ही भोजन करने के लिए बैठाती हैं। यशोदा मैया यदि लाला के लिए कुछ बनातीं तो बनाने के बाद सबसे पहले पुरोहित महाराज के लड़के को देतीं। इसके बाद लाला को देतीं। यशोदा माता की ऐसी भावना है कि पुरोहित महाराज के आशीर्वाद से बालक का जन्म हुआ है। कन्हैया उसका यजमान है। इसलिए वह रोज लाला के घर भोजन करने आता है।

आज कन्हैया मधुमंगल के पीछे पड़ गया और कहा कि तू प्रतिदिन मेरे घर खाने आता है, लेकिन किसी दिन अपने घर मुझे भोजन करने के लिए नहीं बुलाता। आज मुझे तेरे घर भोजन करना है। तू अभी अपने घर जा और तेरी माँ ने जो कुछ बनाया हो, उसे ले आ। यह सुनकर मधुमंगल थोड़ा शरमा गया और सोचने लगा कि मेरी माँ ने कभी लाला को अपने घर नहीं बुलाया। वह दौड़ते-दौड़ते अपने घर गया। उसकी माँ का नाम पूर्णमासी है। उसने माँ से कहा कि लाला को अपने घर क्यों नहीं बुलाती? तूने अपने घर जो खाने की चीज तैयार की हो, उसे लाला को खाने की इच्छा प्रबल हो उठी है। तू उसमें से मुझे थोड़ा दे दे। पूर्णमासी जानती थी कि कन्हैया

परमात्मा है। आज परमात्मा को मेरे घर की वस्तु खाने की इच्छा हुई है। परमात्मा तो माँगता है, किन्तु मैं उन्हें क्या दूँ! पूर्णमासी का हृदय पिघल गया है। वह बोली, "बेटा, मैं घर में रसोई करती ही नहीं। तेरे पिता महान् तपस्वी भक्त हैं। उन्हें खाने के लिए अधिक फुर्सत ही नहीं मिलती।

शांडिल्य ऋषि ऐसे तपस्वी ब्राह्मण हैं कि सबेरे चार बजे उठते हैं, यमुनाजी में स्नान कर आसन पर बैठते हैं और रात के सात-आठ बजे तक नित्य कर्म पूरा करते हैं। उन्होंने सत्कर्म के इतने अधिक नियमों का पालन किया था कि एक पूरा हो, तो दूसरा शुरू करें। प्रातः संध्या पूरी होने पर सूर्यनारायण को अर्घ्य देते हैं, वंदन करते हैं। इसके बाद उनकी स्तुति करते हैं। फिर गणपति महाराज की पूजा शंकर-पार्वती की पूजा, लक्ष्मीनारायण की पूजा करते हैं, वेद मन्त्र बोल-बोल कर एक-एक देवता की अभिषेक के साथ पूजा करते-करते बारह बज जाते हैं। बारह बजने के बाद मध्याह्न की संध्या करते हैं। मध्याह्न की संध्या में गायत्री का जप करते हैं, वेदाध्ययन करते हैं, देव, ऋषि, पितरों का तर्पण करते हैं। महाराज का नियम है कि प्रतिदिन प्रभु के नाम के इक्कीस हजार जप नियमपूर्वक करें। ब्राह्मण का अवतार खाने के लिए नहीं, बल्कि सारे दिन भक्ति करने के लिए है। एक घण्टे में ९०० स्वाँस ली जाती हैं। इस प्रकार २४ घण्टे में २१६०० स्वाँस ली जाएँगी। प्रत्येक स्वाँस पर भगवान् का जप होना चाहिए वे प्रभु के नाम का २१६०० जप करते हैं। यह सब करते-करते सायंकाल की संध्याकाल की संध्या का समय हो जाता है। फिर वे सायं-संध्या करते हैं। भला उन्हें खाने की फुर्सत ही कहाँ है? सायं-संध्या के बाद रात को दो-चार केले खाकर सो जाते हैं। कभी-कभी दूध पीकर सो जाते हैं।

पूर्णमासी महान् पतिव्रता है। वह यह सोचकर कि मेरे पतिदेव भोजन नहीं करते, तो मुझे भी भोजन नहीं करना है। इसलिए वह घर में रसोई ही नहीं बनाती। उसके घर में एक लड़का है वह रोज नंदबाबा के घर खाने जाता है फिर रसोई की आवश्यकता किसके लिए? पूर्णमासी सारे दिन पतिदेव की सेवा में रहती है। पतिदेव फल खाएँ तो रात को वह बाकी बचे दो-चार फल खाकर उनके चरणों में सो जाती है। पति-पत्नी सारे दिन तपश्चर्या करते हैं। उनका घर तपस्वी ब्राह्मण का घर है। उनके घर में कुछ नहीं है, किन्तु सन्तोष है जहाँ सन्तोष है वहाँ सब कुछ है। जहाँ सन्तोष नहीं है वहाँ सब कुछ होने पर भी कुछ नहीं है। पूर्णमासी को सन्तोष है, वह कहती है कि मैं बहुत गरीब हूँ, किन्तु मैंने पूर्वजन्म में कुछ पुण्य तप किया था, जिससे मुझे ऐसे पति प्राप्त हुए हैं। उसके पति को पैसे के लिए कोई प्रवृत्ति करने की इच्छा नहीं होती। वे सारे दिन भक्ति करते हैं। वे प्रायः गरीबी ही में रहते हैं। जो सारे दिन भक्ति करता है वह लक्ष्मीजी को पसन्द नहीं होता। लक्ष्मीजी को मन में ऐसा लगता है कि यह व्यक्ति मुझे अपने मालिक के साथ

पाँच-सात मिनट भी एकान्त में बोलने नहीं देता! यह यहाँ से चला जाय तो मैं कुछ अपनी निजी बात करूँ। यह तो मेरे पतिदेव का चरण छोड़ता ही नहीं। इसीलिए जो दिन भर भक्ति करता है, वह लक्ष्मीजी को नहीं सुहाता। जो भगवान् को छोड़कर प्रवृत्ति करता है वह लक्ष्मीजी को सुहाता है।

पूर्णमासी ने सुना कि लाला को मेरे घर की वस्तु खाने की इच्छा हुई है, यह सुनकर उनका हृदय भर आया। भला यह गरीब ब्राह्मणी लाला को क्या दे? यशोदाजी रोज मुझसे कहती हैं कि मुझे कुछ सेवा बताओ, किन्तु मेरे पतिदेव किसी की सेवा लेते ही नहीं। कल मैं यशोदाजी से कहूँगी कि थोड़ा खोआ भेजो। मैं उससे लाला के लिए मिठाई बनाऊँगी और उसे दूँगी। आज तो घर में कुछ भी नहीं है। यह सुनकर बालक बोला, "माँ तू मुझे कुछ दे। दूसरे सभी मित्र लाला के लिये मिठाई लाते हैं। मैं ही एक ऐसा हूँ जो खाली हाथ जाता हूँ।" यह कहकर बालक रोने लगा। पूर्णमासी ने अपने घर में देखभाल की, किन्तु उसे दूसरा कुछ नहीं मिला। थोड़ी छाछ पड़ी थी। वही हाथ लगी। पूर्णमासी ने विचार किया कि यह गरीब ब्राह्मणी लाला को दूसरा कुछ क्या दे? वह छाछ देते समय आँख में आँसू भरकर बोली, लाला के लिए घर में जो अच्छी से अच्छी वस्तु हो वही देनी चाहिए, किन्तु मेरे घर में कुछ दूसरी वस्तु नहीं है। केवल यह छाछ है, किन्तु वह भी खट्टी है। कन्हैया का शरीर बहुत कोमल है। उसे यह खट्टी छाछ पीने पर बहुत तरह की तकलीफ खड़ी होगी। बेचारी गरीब ब्राह्मणी दूसरा कर ही क्या सकती थी। उसने छाछ में थोड़ी चीनी मिला दी और उसे मीठी बनाकर एक छोटी-सी हाँडी में रख दिया। उसने बालक के हाथ में वह हाँडी देते हुए कहा, 'बेटा, आज मैं लाला के लिए छाछ दे रही हूँ, किन्तु कल मैं उसके लिए मिठाई दूँगी। आज मेरे घर में कुछ नहीं है। लाला से कहना कि यह छाछ देते हुए मेरी माँ रोने लगी थी, मैं छाछ लेकर आया हूँ।'

गरीब ब्राह्मण का बालक प्रेम से वह छाछ लेकर आया है, लेकिन उसे लाला को छाछ देने की हिम्मत नहीं होती। वह जानता है कि कन्हैया परमात्मा है। यदि उसे छाछ दूँ तो मुझे भी जन्म भर छाछ पीनी पड़ेगी। हमें लाला को अच्छी से अच्छी वस्तु देनी चाहिए। यह छाछ लाला को नहीं दी जा सकती। इसे मैं ही पी जाऊँ। कल मेरी माँ मिठाई बनाएगी। वह मिठाई लाकर मैं लाला को दूँगा। यह विचारकर मधुमंगल छाछ पीने लगा। यह देखकर लाला ने कहा, 'हे मधुमंगल तेरी माँ ने मेरे लिए छाछ भेजी है, वह मुझे दे।' मधुमंगल ने कहा कन्हैया मैं वह छाछ तुझे नहीं दूँगा कल मैं तुझे मिठाई लाकर दूँगा। कन्हैया बोला, 'तू यह छाछ क्यों नहीं देगा, कल की बात कल देखी जाएगी। मैं तेरी हाँडी खींच लूँगा। मधुमंगल ने देखा कि कन्हैया खड़ा हो गया है। वह

दौड़ता हुआ आएगा और हाँडी मुझसे छीन लेगा। मुझे लाला को मिठाई खिलानी है। क्या मैं उसे छाछ दूँ। जब तक कन्हैया आए, तब तक मैं अकेले सारी छाछ पी जाऊँ और हाँडी खाली कर दूँ। ऐसा विचार कर मधुमंगल ने छाछ पीली और हाँडी खाली कर दी। लेकिन अधिक जल्दी के कारण उसके मुँह में से छाछ की एक धारा बाहर निकल पड़ी। वह प्रेम में देह का भान भूल गया था। कन्हैया दौड़ता आया और मधुमंगल का मुँह चाटने लगा।

यह प्रेम कथा है। यह जीव जब परमात्मा के साथ प्रेम करते हुए अपना देह भान भूल जाता है, तब परमात्मा भी उसके सामने अपना ईश्वरत्व भूल जाता है। आज श्रीकृष्ण को यह याद नहीं आता कि मैं लक्ष्मी का पति हूँ, वैकुण्ठ का स्वामी हूँ। उसने ग्वालों के साथ ऐसा सच्चा प्रेम किया है कि मधुमंगल उससे शरमा गया। उसने कहा कि कन्हैया, तू यह क्या कर रहा है? लाला ने कहा, 'तेरे घर की जूठी छाछ भी यदि मुझे मिल जाए, तो मेरी बुद्धि सुधर जाए। तेरे पिता महान् तपस्वी ब्राह्मण हैं। उनके पुण्य प्रताप से हमारा ब्रज सुखी हुआ है।' चौबीस लाख गायत्री जप का एक पुरूश्चरण होता है। उस तपस्वी ब्राह्मण ने ऐसे तीन पुरूश्चरण किए हैं। दिन में तीन बार नियमित रूप से संध्या करता है, भगवान् भी उसके घर का माँगकर भोजन करते हैं। लाला ने मधुमंगल के पिता का खूब बखान किया। गरीब ब्राह्मण का बालक अपने पिता का बखान सुनकर खूब खुश हो गया और लाला के कंधे पर हाथ रखकर कहा, "कन्हैया, मेरे घर में आज कुछ नहीं था। इसलिए मेरी माँ रोने लगी थी। मेरी माँ ने कहा है कि कल मैं लाला के लिए स्वादिष्ट मिठाई बनाऊँगी। इसलिए मैं कल तेरे लिए मिठाई ले आऊँगा।

आकाश में ब्रह्मादि देवता इस लीला का दर्शन करते हैं। ब्रह्माजी के मन में शंका हुई कि यह श्रीकृष्ण तो बालकों का मुँह चाटता है। क्या यह परमात्मा है? क्या जो परमात्मा होगा वह बालकों का मुँह चाटेगा? श्रीकृष्ण की लीला ऐसी विचित्र है कि देवता भी भ्रम में पड़ जाते हैं। यदि आज कल के लोग शंका करें, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। ब्रह्माजी ने ऐसा निश्चय किया कि मुझे श्रीकृष्ण की परीक्षा करनी पड़ेगी कि वे ईश्वर हैं या देव हैं? यदि उसे मेरे जैसा संसार बनाना आएगा, तो मैं मान लूँगा कि वह ईश्वर है।

श्रीकृष्ण बालकों के साथ भोजन करते हैं। उस समय सबने बछड़े चरने के लिए छोड़े हैं। ब्रह्माजी बछड़ों को उठाकर ब्रह्मलोक में ले गए। भोजन के बाद बालकों ने देखा कि बछड़े नहीं हैं। उन्होंने लाला से कहा कि कन्हैया, बछड़े दिखाई नहीं देते। लाला ने कहा कि तुम भोजन करो। मैं बछड़ों को खोजकर ले आता हूँ। कन्हैया बछड़े खोजने निकल पड़ता है। उसी समय ब्रह्माजी

ने उन बालकों को भी उठा लिया और उन्हें ब्रह्मलोक में ले गए। लाला को मालूम हो गया कि यह बुड्ढा आज अकारण ही मेरे पीछे पड़ गया है। यह बात लाला को पसन्द नहीं आई। इसलिए उसने एक ही समय सभी बछड़ों और ग्वालबालों का स्वरूप अचानक प्रकट कर दिया। शुकदेवजी महाराज कहते हैं, राजन्! मैं तुझे क्या बताऊँ?

यावद्वत्सपवत्सकाल्पकवपुर्यावत्करांघ्र्यादिकं
यावद्यष्टिविषाणवेणुदलशिग्यावद्विभूषाम्बरम्।
यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद्विहारादिकं
सर्वं विष्णुमयं गिरोऽङ्गवदजः सर्वस्वरूपो बभौ।।

(१०-१३-१९)

कमरी भी श्रीकृष्ण हो गई, लकड़ी भी श्रीकृष्ण हो गई। जिसका जो स्वभाव था, वह श्रीकृष्ण हो गया। जिसका स्वभाव उतावलापन था, भगवान् भी उसी तरह उतावले हो गए। श्रीकृष्ण इसके स्वभाव के अनुसार उनका स्वरूप धारणकर घर लौट आए हैं। सबेरे गए हुए बालक शाम को घर लौट आए हैं और वे दौड़ते-दौड़ते अपनी दादी माँ के पास गए हैं। दादी माँ ने बालकों को गोद में लेकर छाती से लगा लिया है। अत्यंत आनन्द-आनन्द पैदा हो गया है। इस प्रकार आज ये वृद्ध गोपियाँ बालकों से न मिलकर सीधे परमात्मा श्रीकृष्ण से मिलती हैं, जब कि उनके बालक ब्रह्मलोक में हैं। इन वृद्ध गोपियों को श्रीकृष्ण मिलन की तीव्र भावना थी इसलिए बालकों के स्वरूप में श्रीकृष्ण उनके घर आए हैं, वृद्ध गोपियों से मिलते हैं तथा एक-एक का मनोरथ सफल करते हैं।

आज गोकुल के एक-एक घर में आनन्द समुद्र बह रहा है। आज तक गोपियाँ आनन्द लेने के लिए यशोदाजी के घर जाती थीं, किन्तु आज प्रत्येक गोपी के घर परमानन्द प्रकट हुआ है। आज गायों को भी अत्यंत आनन्द हुआ हैं उनके बछड़े ब्रह्मलोक में हैं और बछड़ों के स्वरूप में श्रीकृष्ण ही घर आए हैं। यह गायों के साथ रासलीला है। यह जीव और ईश्वर का मिलन है। गायों को अत्यंत आनन्द हो रहा है। ग्वाल गायों को रोकने के लिए जाते हैं लेकिन उन्हें अपने बछड़ों के प्रति ऐसा अलौकिक प्रेम जागा है कि वे दौड़ती-दौड़ती बछड़ों के पास चली जाती हैं। यह देखकर ग्वालों को आश्चर्य होता है। इस प्रकार गायों को ब्रह्म-सम्बन्ध प्राप्त हो गया है। इस समय कमरी श्रीकृष्ण, डण्डा श्रीकृष्ण, गोप बालक श्रीकृष्ण, बछड़े श्रीकृष्ण, यानी सभी श्रीकृष्ण-श्रीकृष्ण बनकर परस्पर क्रीड़ा कर रहे हैं।

ज्ञानी पुरुष आत्म-स्वरूप में रमण करते हैं, बिहार करते हैं। वेदान्त का विवर्तवाद और वैष्णवाचार्यों का ब्रह्म परिणामवाद इन दोनों का उद्भव इस लीला से हुआ है। भागवत में इन दोनों वादों का समन्वय किया गया है। वेदान्त का ऐसा कहना है कि ब्रह्म तत्व सत्य है, सभी में ब्रह्म ही सत्य है, माया के कारण यह संसार चित्र-विचित्र दिखाई देता है। प्रभु के सहारे यह संसार दृष्टिगोचर होता है। सिनेमा के पर्दे पर अनेक चित्र दिखाई देते हैं। कभी उस पर जोरदार बरसात दिखाई देती है, कभी समुद्र उछलता है। चित्र में यह भले दिखाई दे, किन्तु पर्दे का एक सूत भी भीगता नहीं। ब्रह्म एक सच्चा आधार है। सहारा है। ब्रह्म में माया के कारण यह संसार चित्र-विचित्र रूप में दिखाई देता है। लकड़ी और बछड़ा दिखाई देते हैं, किन्तु वे श्रीकृष्ण हैं उन्हें छोड़ कुछ दूसरे नहीं। माया के कारण विविधता दिखाई देती है। इस प्रकार की अनेकता और विविधता ही अविद्या है। इसलिए ज्ञानी महापुरुष इसे माया का भँवर मानते हैं। वैष्णवाचार्यों का कथन है कि यह जगत् ब्रह्म का परिणाम है अर्थात् ब्रह्म ही एक प्रकार से जगत् है। ब्रह्म ही अनेक स्वरूप धारण करता है और वही सर्वत्र दिखाई देता है। श्रीकृष्ण ही अनेक रूपों में दर्शन देते हैं।

शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं, "यह लीला एक वर्ष तक चलती रही। किसी को वास्तविक बात खबर न पड़ी। श्रीकृष्ण अनेक बछड़ों के स्वरूप में, अनेक ग्वाल-बालों के स्वरूप में स्वयं अपने स्वरूप के साथ क्रीड़ा करते रहे। महान् योगी अपने ही आत्म-स्वरूप में अथवा आत्मरति में ही लीन रहते हैं। ब्रह्माजी ने विचार किया कि ग्वाले बहुत दुःखी हुए होंगे, रोते होंगे, उन्हें देखने के लिए वे गोकुल में आए। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि एक भी बालक कम नहीं हुआ है, सभी दिखाई दे रहे हैं। अब ब्रह्माजी विचार में पड़ गए कि मैंने जिन्हें ब्रह्मलोक में रखा है, वे सच्चे हैं अथवा जो सामने दिखाई दे रहे हैं वे सच्चे हैं?

उस समय लाला ने एक और चमत्कार दिखाया। वे ब्रह्माजी का स्वरूप धारणकर उनकी गद्दी पर जा बैठे और उनके सेवकों से कहा, "अब मैं अन्दर आराम कर रहा हूँ। आजकल एक भूत जैसा नकली ब्रह्मा उत्पन्न हुआ है। वह कदाचित् आधे घण्टे बाद यहाँ आएगा। तुम उसके लिए मुझसे पूछे बिना ही बाहर ही छड़ी से अच्छी तरह से उसकी पूजा करना।" श्रीकृष्ण ब्रह्मा होकर उनकी गद्दी पर बैठे हैं और आराम कर रहे हैं। ब्रह्मा विचार करते-करते गोकुल से ब्रह्मलोक में आते हैं। यहाँ आने पर उनके नौकर ही उन्हें मारने लगते हैं। इससे ब्रह्मा को बहुत बुरा लगता है। उन्होंने अपने नौकरों से कहा "अरे! तुम्हें कुछ होश है। तुम मेरे नौकर हो और मेरा ही अपमान कर रहे हो! मैं ब्रह्मलोक का राजा हूँ। नौकर कहते हैं "तुम किसके राजा? हमारे राजा तो अन्दर आराम कर रहे हैं। तू भूत जैसा कहाँ से यहाँ आया है? हम लोग तुझे अन्दर नहीं जाने देंगे।" इस प्रकार

लाला की परीक्षा करने वाले बूढ़े ब्रह्मा की ही परीक्षा हो गई। मार पड़ने पर ही अक्ल आती है। मार न पड़े तो बुद्धि नहीं आती यह एक सिद्धांत है। ब्रह्माजी ने आँखें बन्दकर ज्यों ही ध्यान लगाया तो, उन्हें विश्वास हो गया कि मेरी गद्दी पर कृष्ण कन्हैयालालजी विराजमान हैं। यह बस श्रीकृष्ण की लीला है। वास्तव में श्रीकृष्ण देव नहीं हैं, सर्व देवों के देव हैं, परमात्मा हैं। ब्रह्माजी को पश्चाताप होने लगता है कि मैंने भूल की है, परमात्मा का अपमान किया है। क्या अब मैं उनके पास जाकर क्षमा माँगू? ब्रह्माजी जिस समय क्षमा माँगने आए, उस समय अनेक बछड़े और अनेक ग्वाल-बालों में श्रीकृष्ण का जो स्वरूप था वह एक ही क्षणमें अन्तर्धान हो गया। अकेले श्रीकृष्ण रह गए और ऐसा नाटक किया मानों उन्हें डर लग रहा है। उस समय श्रीकृष्ण रोते जा रहे हैं, बछड़ों और मित्रों को ढूँढ़ रहे हैं और कहते हैं, हे मधुमंगल! हे मनसुखा! हे श्रीदामा! तुम सब मुझे छोड़कर कहाँ चले गए? मुझे अकेले बहुत डर लग रहा है। ब्रह्माजी ने उन्हें देखकर हाथ जोड़े और कहा, महाराज किसी को तुम्हारे जैसा नाटक करना नहीं आएगा, मैं तुम्हारे चरणों में पड़कर क्षमा माँगने आया तो मुझे आप ऐसा स्वरूप दिखा रहे हैं?

रोना यह माया का धर्म है श्रीकृष्ण में माया का यह धर्म भले ही दिखाई दे, किन्तु श्रीराम श्रीकृष्ण माया रहित शुद्ध ब्रह्म हैं, आनन्दमय हैं। जिस प्रकार सूर्य के पास अन्धकार नहीं जा सकता उसी प्रकार ब्रह्म के पास माया नहीं जा सकती, उसे स्पर्श नहीं कर सकती। यह तो प्रभु ने ऐसा नाटक किया है कि आज आनन्द रोता हुआ दिखाई देता है। कदाचित् श्रीराम-श्रीकृष्ण रोएँ, किन्तु वे अपने स्वरूप में स्थिर होकर ही लीला करते हैं। जिस प्रकार किसी नाटक में कोई राजा भिखारी का वेश धारणकर भीख माँगने जाए और भीख न मिलने पर नाटक करे कि मुझे कुछ नहीं मिला और रोने लगे किन्तु अन्दर से उसे पता है कि मैं राजा हूँ। उसी प्रकार परमात्मा श्रीराम-श्रीकृष्ण आनन्दमय हैं। भले ही वे रोते हुए दिखाई दें।

रामायण में वर्णन आता है। जब रावण सीताजी को हरण करके ले गया, तब श्रीराम सीताजी को खोजने निकल पड़ते हैं। जब लंका में रामजी का स्मरणकर सीताजी रोती हैं, तब रामचन्द्रजी ऐसा नाटक करते हैं कि सीता के वियोग से मुझे बहुत दुःख है। यदि कभी भक्त भगवान् के वियोग में रोने लगे, तब भगवान् कभी-कभी ऐसी लीला करते हैं कि मुझे भक्त का वियोग सहन नहीं होता। श्रीसीताजी के वियोग में रामजी को रोते देखकर लक्ष्मणजी समझाते हैं, "बड़े भाई, आप रोएँ नहीं, सीताजी मिलेंगी।" रामजी कहते हैं कि मेरी सीता कहाँ है? वृक्ष से पूछते हैं कि सीता कहाँ है? श्रीराम जिस समय दंडकारण्य से होकर गुजर रहे थे उसम समय भगवान् शंकर सतीजी के साथ उसी मार्ग में आ जाते हैं और उन्हें श्रीराम-लक्ष्मण के दर्शन होते हैं। शिवजी वृक्ष

की ओट में खड़े हैं, प्रेम से उनका दर्शन करते हैं, शरीर में रोमाँच का अनुभव करते हैं। उन्होंने अपने दोनों हाथ जोड़ लिए हैं। यह कैसा नाटक है! मनुष्य जैसी लीला हो रही है। आज आनन्द रोता- रोता जा रहा है।

श्रीराम आनन्दमय हैं, श्रीकृष्ण आनन्दमय हैं। शिवजी महाराज वृक्ष की ओट में खड़े होकर वंदन करते हैं। वे सोचते हैं कि यदि मैं सामने जाकर वंदन करूँ, तो भगवान् की लीला में विघ्न पड़ेगा। सतीजी ने पूछा कि आप किसे वंदन करते हैं। शिवजी ने कहा, "ये परमात्मा हैं। मैं इनको वंदन करता हूँ।" सतीजी ने कहा, "यह तो रोते-रोते जा रहे हैं। क्या आनन्द कभी इस प्रकार रोयेगा? यह तो राजा दशरथ के पुत्र हैं।" शिवजी ने कहा, "ये राम हैं, परमात्मा हैं, मेरे इष्ट-देव हैं। ये राम सर्वमय हैं। ये अंदर से आनन्दमय हैं, सावधान हैं। यह तो लीला कर रहे हैं।" सतीजी को इस बात पर विश्वास नहीं होता। वे कहती हैं कि मैं इनकी परीक्षा लूँगी। शिवजी ने परीक्षा लेने की अनुमति दी। सतीजी परीक्षा लेने निकल पड़ीं। रामचन्द्रजी जिस मार्ग से आने वाले हैं, उसी मार्ग पर वे सीता का रूप धारण कर खड़ी हो गई हैं। सतीजी ने सोचा कि राम जब सीता का स्वरूप देखेंगे, तब एकदम प्रसन्न हो जाएँगे। सतीजी को सामने खड़ी देखकर राम ने वह रास्ता छोड़ दिया और दूसरा रास्ता पकड़ लिया। सतीजी ने यह समझा कि राम स्त्री-वियोग में बहुत व्याकुल हैं, बहुत दुःखी हैं। इसलिए उन्होंने मुझे नहीं देखा है। अतः वे फिर रामजी के रास्ते में चलकर आगे खड़ी हो जाती हैं। यह भी पुकारकर कहा कि मैं तो यहाँ खड़ी हूँ। आप क्यों रो रहे हैं? श्रीराम इस बात को अनसुनी कर देते हैं और वे रास्ता छोड़कर दूसरा रास्ता पकड़ लेते हैं। सतीजी को आश्चर्य होता है कि अभी उनकी नजर ठीक तरह मुझ पर नहीं पड़ी है। मैं उनके पास जाकर खड़ी रहूँ तो वे प्रसन्न होंगे। सीताजी के रूप में सतीजी रामचन्द्रजी के पास जाकर खड़ी हो गईं। उन्हें देखकर श्रीराम अपना मस्तक धरती पर झुकाकर वन्दन करते हैं और कहते हैं, "दशरथ-पुत्र राम आपको वन्दन करता है। माँ, तुम अकेले ही जंगल में क्यों घूम रही हो? भगवान् शंकर कहाँ हैं?" अब सतीजी को विश्वास हो गया, "भले ही ये रो रहे हैं, किन्तु अन्दर से बहुत सावधान हैं, आनन्द में हैं। इनको माया का स्पर्श नहीं है।" जो परमात्मा का सेवा-स्मरण करे, उसे माया का स्पर्श नहीं होता। फिर स्वयं परमात्मा को, श्रीराम को, श्रीकृष्ण को माया कैसे स्पर्श कर सकती है?

ब्रह्माजी ने निश्चय किया है कि श्रीकृष्ण भले ही रोयें, किन्तु ये परमात्मा हैं। ब्रह्माजी को यह विश्वास हो गया। हंस पर विराजे हुए ब्रह्माजी नीचे उतरते हैं और 'कृष्ण कन्हैयालाल की जय' कहकर श्रीकृष्ण के चरणों में वंदना करते हैं। ब्रह्माजी परमात्मा की स्तुति करते हुए कहते हैं—

नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय।
वन्यस्त्रजे कवलवेत्रबिषाणवेणुलक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय॥

(१०-१४-१)

आपका श्रीअंग मेघ जैसा श्याम है। आपने पीला पीताम्बर धारण किया है और आपके गले में गुँजा अर्थात् चणोठी (गुजराती शब्द) ब्रह्माण्ड का आकार गुँजा जैसा है। श्रीकृष्ण अनंत कोटि ब्रह्माण्ड के नायक हैं। उन्होंने ब्रह्माजी को बताया है तुम तो एक ही ब्रह्माण्ड के ब्रह्मा हो, ऐसे-ऐसे अनेक ब्रह्माण्ड मेरे श्रीअंग में विलास करते हैं। वे अनंत कोटि ब्रह्माण्ड के नायक हैं इसलिए उन्होंने गले में गुंजा की माला धारण की है, उनके मस्तक पर मोर-पिच्छ का मुकुट है। लाला को मोर बहुत पसन्द आता है। मोर में अनेक गुण है। वह दूसरे के दुःख से दुःखी और सुख से सुखी होता है। अधिक गर्मी पड़े और सब कुछ सूख जाए, तो मोर को मरण-तुल्य दुःख होता है। आकाश में बादल के गड़गड़ाने पर वह अत्यंत आनन्द से नाचता है और उसकी आँख से आनन्दाश्रु प्रवाहित हो उठता है, जिसे मोरनी पी जाती है और उससे सगर्भा बन जाती है। जो- काम सुख का त्याग करता है, उसे श्रीकृष्ण अपने मस्तक पर स्थान देते हैं। ब्रह्माजी कहते हैं-

उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे।
किमस्तिनास्तिकव्यपदेशभूषितं तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनन्तः॥

(१०-१४-१२)

माता के पेट में निवास करने वाला बालक यदि अज्ञान में उसे लात भी मारे, तो वह उसे क्षमा करती है। इसी प्रकार आप मुझे क्षमा कीजिए। मैं आपकी लीला से विमोहित हो गया था। आपकी लीला का पार भला कौन पा सकता है?

को वेत्ति भूमन्भगवन्परात्मन् योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम्।
क्व वा कथं वा कति वा कदेति विस्तारयन्क्रीडसि योगमायाम्॥

(१०-१४-२१)

श्रीकृष्ण की लीला ही उनकी बहुत बड़ी कृपा है। श्रीकृष्ण आनन्द में हैं। इसलिए उन्हें सुख भोगने की इच्छा होती ही नहीं। श्रीकृष्ण को कोई भी स्वार्थ नहीं होता। परमात्मा जो कोई काम करता है, वह हमारे लिए करता है। यह जीव ईश्वर का है। परमात्मा का होते हुए भी यह जीव अपने को भूल गया है। यह जीव ऐसा मानता है कि मैं ही जगत् हूँ, मैं किसी स्त्री का हूँ, मैं किसी पुरुष का हूँ। जीव का जगत् से जो सम्बन्ध है, वह कच्चा है, केवल श्री परमात्मा, श्रीकृष्ण के साथ ही स्थापित होने वाला सम्बन्ध सच्चा है। यह ज़ीव भगवान् का होने पर भी

संसार में उलझ गया है। जीव के आकर्षण के लिये ही परमात्मा लीला करते हैं। शुकदेवजी राजर्षि को सावधान करते हुए कहते हैं, ''संसार का चिन्तन करने से मन विषयों में उलझ जाता है, किन्तु श्रीकृष्ण-लीला में ऐसी दिव्य शक्ति है कि उनकी कथा सुनते ही अनायास हमारा मन संसार को भूल जाता है। मुक्ति मन को मिलती है, आत्मा को नहीं मिलती। आत्मा परमात्मा का अंश है। भला राजा के पुत्र को कौन बाँध सकता है? हम सब राजा के बालक हैं। अत: राजकुमार को कोई रुला नहीं सकता। सुख और दु:ख की अनुभूति मन को होती है, मन संसार के विषयों में फँसता है, मन को बन्धन होता है, आत्मा को कोई बन्धन नहीं है।

आत्मस्वरूप के सम्बन्ध में सन्तों में थोड़ा मतभेद है। अनेक सन्त ऐसा मानते हैं कि आत्मा और परमात्मा दोनों एक ही हैं। आत्मा-परमात्मा के स्वरूप में जो भेद दिखाई देता है वह सच्चा नहीं है, वह अज्ञान से पैदा हुआ है। अनेक साधु-सन्त ऐसा मानते हैं कि यह जीव ईश्वर का अंश है, परमात्मा अंशी है। ज्ञानी पुरुषों का कथन है कि परमात्मा का स्वरूप ऐसा दिव्य है कि उसमें से थोड़ा भी अंश अलग नहीं हो सकता।

जीव अंश नहीं है बल्कि अंश जैसा है। यदि एक करोड़ रुपए में से एक भी पैसा निकाल लो, तो करोड़ का नाश हो जाता है, उसके बाद वह करोड़ नहीं रहता। यदि जीव को ईश्वर का अंश मानें, तो यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि जीव के ईश्वर से अलग हो जाने पर परमात्मा का स्वरूप भंग हो जाता है। इसलिए ईश्वर से थोड़ा भी अंश अलग नहीं हो सकता, जीव अंश जैसा है, वैसा ही वह परमात्मा का स्वरूप है। अनेक सन्त ऐसा मानते हैं कि जीव ईश्वर का अंश है। यदि परमात्मा सिन्धु है, तो जीव बिन्दु है। समुद्र से एक छींटा भी यदि (कोई) बाहर निकाले तो क्या उससे समुद्र का विनाश होता है। जिसकी बुद्धि तर्क की कसौटी में कसी हुई होगी वह ऐसा ही कहेगा कि समुद्र में से यदि एक बिन्दु भी बाहर निकालो, तो समुद्र का जो असली रूप होता है वह बना नहीं रहता। जिसकी बुद्धि तर्क की कसौटी पर कसी होती है, उसे वेदान्त का सिद्धांत पसंद होता है। जिसकी बुद्धि भावना प्रधान होती है, उसे वैष्णव-सिद्धांत पसंद होता है। किसी भी सिद्धांत में जीव को बंधन नहीं बताया गया है। चाहे जीव को ईश्वर का अंश मानो या उसे परमात्मा का स्वरूप मानो। जो सिंह का बालक है वह सिंह ही होगा। जो परमात्मा का पुत्र है, उसे कोई नहीं बाँध सकता, जो राजा का बालक है उसे कोई रुला नहीं सकता। यह जीव अज्ञान के कारण ही दु:खी होता है। सुख-दु:ख का स्पर्श मन को होता है, बन्धन मन को होता है। जब मन बंधन में होता है, तब आत्मा को ऐसी प्रतीति होती है कि मैं बन्धन में हूँ। मन को होने वाले बंधन का आरोप आत्मा अपने स्वरूप में करती है। आत्मा को किसी ने बाँधा नहीं है।

ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।
सो माया बस भयउ गोसाईं। बध्यो कीट मर्कट की नाईं।।

महापुरुषों ने इस सिद्धांत को समझाने के लिए बहुत सुन्दर दृष्टांत दिया है। वे कहते हैं कि बन्दर बहुत चंचल होता है। वह जल्दी पकड़ा नहीं जा सकता। पारधी बंदर पकड़ने की युक्ति करता है। जहाँ बंदर घूमते होते हैं वहाँ वे छोटी-सी हाँडी में चना रख देते हैं। हाँडी का मुँह सँकरा होता है। बंदर चना देखते ही बहुत खुश हो जाता है। वह एकदम दोनों हाथ हाँडी में डाल देता है। जब उसकी मुट्ठी में चना आ जाता है, तब मुट्ठी फूल जाती है। फलतः उसका हाथ हाँडी से बाहर नहीं निकलता। बन्दर को ऐसी भ्राँति होती है कि हाँडी में कोई भूत बैठा है। उस भूत ने मेरा हाथ पकड़ लिया है। वास्तव में बंदर को किसी ने पकड़ा नहीं है। हाथ में चना है उसका हाथ बाहर नहीं निकलता। यदि वह चना छोड़ दे तो हाथ बाहर निकल सकता है। बन्दर को चना बहुत भाता है। इसलिए वह हाथ में आए हुए चने को छोड़ने की इच्छा नहीं करता। यदि तुम्हारे हाथ में स्वादिष्ट केसरी पेड़ा आ जाए तो क्या तुम उसे छोड़ने की इच्छा करोगे? कुछ लोग ऐसे होते हैं जो पेड़ा इसलिए छिपा रखते हैं कि उस पर किसी की नजर पड़े तो आधा पेड़ा देना पड़ेगा। इस जीव को बन्धन नहीं है, किन्तु मन विषयों में उलझा हुआ है। इसलिए जीव अपने अज्ञान के कारण समझता है कि मैं आबद्ध हूँ। बन्धन केवल मन का है। अनेक लोगों को व्यवहार में यह अनुभव होता है कि ठाकुरजी ने मुझपर बड़ी कृपा की है, मुझे किसी तरह की चिन्ता नहीं है। क्योंकि दो लड़के काम-धन्धे में लग गए हैं। दो लड़कों के लिए दो बंगले अलग बनवा दिये हैं। उनमें झगड़ा होगा ही नहीं। मुझे कोई परेशानी नहीं है, कोई बन्धन नहीं है। अब मैं स्वतंत्र हूँ। अब मैं कितनी भक्ति करूँ, उतनी कम है। अब मुझे भक्ति करने के लिए गंगा-तट पर जाना है। मनुष्य जितना बोलने में होशियार है, उतना व्यवहार में होशियार नहीं है। वह कहता है कि मुझे कोई झंझट नहीं है। एक पुत्री बाकी है। इसकी शादी हो जाए, तो मैं तुरन्त गंगा-तट पर भजन करने चला जाऊँगा। वहीं अपना शरीरान्त करना है। क्या अभी आप गंगा-तट पर नहीं गए? यह सुनकर कोई वृद्ध पुरुष उत्तर देता है, ''मुझे तो सब कुछ छोड़ना है; किन्तु ये लड़के जाने नहीं देते। ये घर में रहने के लिए ही जिद करते हैं और कहते हैं कि घर में भी भक्ति होती है।

यह बात सत्य है कि घर में भक्ति होती है, लेकिन घर में रहकर सतत भक्ति नहीं होती। घर में रहने पर बालक बालिकाओं की भी भक्ति करनी पड़ती है। घर में सारे दिन भगवान् की भक्ति करना अशक्य है। वृद्ध कहता है कि लड़कों के इनकार करने के कारण मैं कहीं बाहर

भक्ति करने नहीं जाता। वास्तव में उसे घर छोड़ने की इच्छा नहीं है किन्तु लड़कों को व्यर्थ अपयश देता है। जब यमराज के यहाँ से धर-पकड़ का वारण्ट आएगा, तब क्या उसे किसी प्रकार रोका जा सकेगा? या यह कहा जाएगा कि लड़के जाने नहीं देते। उस समय तो यमदूत धक्का मारकर ले जाएँगे। एक दिन सब कुछ छोड़ना ही पड़ेगा। जब विवश होकर छोड़ना पड़ता है, तो बड़ी तकलीफ होती है और मनुष्य सोच समझकर छोड़ दे तो बड़ा सुख मिलता है। उसके बिना कोई काम रुका नहीं है, न किसी ने उसे बाँध रखा है। फिर भी वह अपने अज्ञान के कारण स्वयं बँधा हुआ है। आत्मा को किसी प्रकार का बन्धन नहीं है। बन्धन तो मन को है।

श्रीकृष्ण-लीला में ऐसी दिव्य शक्ति है कि सांसारिक विषयों में फँसा हुआ मन अनायास ही संसार को भूल जाता है। इस जगत् में रहकर किसी न किसी निमित्त से इसे भूलना है और परमात्मा के स्मरण में तन्मय होना है। यही श्रीकृष्ण-लीला का रहस्य है। श्रीकृष्ण की लीला अमृत है। मनुष्य स्वर्ग का अमृत पीने से अमर नहीं बनता। उल्टे स्वर्ग का अमृत पीने से विकार-वासना की वृद्धि होती है। यदि कृष्ण-कथामृत का पान करे और प्रभु में प्रेम जगे, तो धीरे-धीरे मनुष्य की वासना विनष्ट होती जाती है। स्वर्ग का अमृत पीने से पुण्य का नाश होता है; किन्तु कथामृत-पान से पापों का विनाश होता है। स्वर्ग का अमृत थोड़े समय के लिए सुख-शान्ति देता है; किन्तु कुछ समय पश्चात् मन अशान्त बन जाता है। तुम जितने समय तक कथा सुनते हो, उतने समय तक संसार को भूल जाते हो। भगवान् की लीला में ऐसी दिव्य शक्ति है। योगीजन जगत् को भूलने के लिए प्राणायाम, प्रत्याहार करते हैं। कृष्ण-लीला ऐसी मधुर है कि इसमें अनायास ही यह जीव जगत् को भूल जाता है। इससे प्रभु में प्रेम जगता है और परमात्मा के दर्शन-स्मरण में तन्मयता उत्पन्न होती है। ब्रह्माजी कहते हैं—

अथापि ते देव पदाम्बुजद्वय प्रसादलेशानुगृहीत एव हि।
जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन्॥

(१०-१४-२९)

श्रीकृष्ण की कृपा से ही श्रीकृष्ण-लीला का रहस्य ध्यान में आता है। भगवान् की सारी लीला बड़ी अटपटी है। उसमें अनेक बार ब्रह्मादिक देवता भी भ्रम में पड़ जाते हैं। प्रभुजी ने ब्रह्मा का मोह दूर कर दिया। ब्रह्माजी बालकों और बछड़ों को ब्रह्मलोक से धरती पर ले आए हैं। वे सब मानो ऊँघ में से जाग गए हैं। पूरा वर्ष का समय बीत जाने पर भी उन्हें ऐसा लगता है कि अघासुर का वध मानो आज ही हुआ है। इसलिए एक वर्ष के बाद अपने घर पर पहुँच कर बालक अघासुर की बात सुनाते हैं।

६३– गोपाल कृष्ण

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे।
निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः।।

(१०-१४-६१)

ततश्च पौगण्डवयः श्रितौ व्रजे बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ।
गाश्चारयन्तौ सखिभिः समं पदैर्वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतुः।।

(१०-१५-१)

इस प्रकार खेलते-कूदते कुमारावस्था बीत गई। दोनों भाई प्रौढ़ावस्था में प्रवेश करते हैं। श्रीकृष्ण ने यशोदा माता से कहा, ''माँ मैं बड़ा हो गया। मुझे गायों की सेवा करनी हैं। माँ, मुझे गोपाल होना है।'' आज तक श्रीकृष्ण वत्सपाल थे, छोटे-छोटे बछड़ों को लेकर चराने जाते थे। अब लाला को ऐसी इच्छा हुई है कि मैं गायों की सेवा करूँ यदि भगवान् तुमको संपत्ति दे, तो ऐसा नियम पालना कि गरीब को खिलाकर ही मैं खाऊँगा। भगवान् तुम्हें यदि खूब संपत्ति दे, तो गाय माता को घर में रखना, गाय माता की सेवा करना।

गायमाता के श्रीअंग में सारे देवों का वास है। जो गायमाता को खुश करता है, वह सभी देवों को खुश करता है। सभी देवता उसे आशीर्वाद देते हैं। हमारे सनातन धर्म में कोई भी काम गाय के बिना नहीं होता। जो घर गाय के गोबर से नहीं लीपा जाता, वह अशुद्ध माना जाता है। आजकल लोगों को पत्थर बहुत पसंद आता है। सभी जगहों पर पत्थर बहुत लगवाते है। इससे उनका हृदय भी पत्थर जैसा हो जाता है। गाय के गोबर से भूमि शुद्ध होती है। गौमूत्र से देह की शुद्धि होती है। श्रीकृष्ण को अब गोपाल बनना है। यशोदा मैया लाला को समझाती हैं, बेटा तू अभी छोटा है। तू ग्यारह वर्ष का हो जाए, तो तुझे गोपाल बनाऊँगी। लाला ने कहा, ''माँ अब मैं बड़ा हो गया हूँ।'' इस वर्ष लाला ने छठा वर्ष पूरा किया है और सातवाँ आरंभ हुआ है। यशोदाजी ने कहा, ''बेटा गोर महाराज तेरा जन्माक्षर देखकर जो अच्छा मुहूर्त बताएँगे; उसी मुहूर्त में तुझे गोपाल बनाऊँगी।'' यह बात होते समय शांडिल्य ऋषि वहाँ आ गये हैं। लाला ने कहा, माँ! पुरोहित महाराज आ गए हैं, तू मुहूर्त पूछ ले। मुझे जल्दी गोपाल होना है।'' यशोदा माता ने शांडिल्य ऋषि की पूजा की और कहा, ''महाराज, लाला को गोपाल होने की इच्छा है। इसके लिए आप कोई अच्छा मुहूर्त बताइए। शांडिल्य ऋषि ने लाला के जन्माक्षर पर विचार कर मुहूर्त बताया, कार्तिक शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि को महापुरुष लोग गोपाष्टमी कहते हैं। लाला को बड़ी

उतावली है। वे कहता है, माँ, अभी तो अष्टमी को आठ दस दिन बाकी हैं। माँ ने कहा बेटा पुरोहितजी ने जो मुहूर्त दिया है, उसे मानना ही पड़ेगा।

लाला को सप्तमी की रात में निद्रा भी नहीं आई। वे प्रातः काल जाग गए। उन्होंने गायों की पूजा की और उनके मुँह में लड्डू खिलाया। उन्होंने गायों की प्रदक्षिणा की और साष्टांग वंदन भी किया। गायें हृदय से लाला को आशीर्वाद देती हैं कि हमारे गोपाल का सदा-सर्वदा जय-जयकार हो। श्रीकृष्ण यशोदा माता को वंदन करते हैं। माता का हृदय प्रेम से भर उठता है और वे कहती है, "बेटा, अब तू बड़ा हो गया है। गायों की सेवा कभी व्यर्थ नहीं जाती। गायों का आशीर्वाद पाकर मेरा बालक सुखी होगा।" यशोदा माता श्रीकृष्ण बलराम को भोजन कराती हैं। वे बड़ी भाग्यशाली हैं। उनके एक हाथ में बलराम हैं, दूसरे हाथ में श्रीकृष्ण हैं। इस प्रकार उन्होंने शब्द ब्रह्म और परब्रह्म को हाथ में रखा है। ग्वाल बालमित्र भी आ गए हैं। यशोदा माता उनमें से एक-एक को समझाती हैं, "मेरे लाला का ध्यान रखना। अकेले यमुनाजी में स्नान करने न जाए, न अकेले वृक्ष पर चढ़े। यह बहुत शरारती हो गया है। तुम सब इसे सम्हालना।" ग्वाल बालमित्रों ने कहा "माँ, जरा भी चिन्ता मत करना। मैं तो उम्र में लाला से चार वर्ष बड़ा हूँ। मैं इसका हाथ पकड़कर ही चलने वाला हूँ, मैं लाला को सम्हालूँगा।" जो जगत् को सम्हालने वाला है उसे ये ग्वाल मित्र प्रेम से सम्हालने चले हैं! वे कहते हैं, 'माँ, यदि कन्हैया कुछ तूफान करेगा, तो मैं उसे धमकाऊँगा।' यह सुनकर यशोदाजी कहती हैं, मेरा कन्हैया बहुत कोमल है इसे धमकाना मत। इसे समझाना। यह मान जाएगा।

यशोदा माता ने खाने के लिए स्वादिष्ट सामग्री दी है। और कहा है कि भूख लगने पर तुम सारे मित्र एक साथ भोजन करना। श्रीकृष्ण ग्वालों को साथ लेकर गायों के साथ जाते हैं। यशोदा माता ने एक ब्रजवासी से कहा कि आज तक कृष्ण बछड़े लेकर यमुनाजी के किनारे जाता था। अब वह गायों को लेकर दूर-दूर तक जाएगा। खूब धूप पड़ती है। मेरा लाला अत्यन्त कोमल है। उसके लिये सुन्दर जूता-जोड़ा बना देना। वह ब्रजवासी जूता बनाकर ले आता है। सबकी इच्छा है कि कन्हैया पैर में जूता पहनकर जाए। लाला ने साफ कह दिया है कि मैं पैर में जूता क्यों नहीं पहनना चाहता। लाला ने कहा, "ये मेरी गायें कभी पैर में जूता पहनतीं हैं? मैं तो गोपाल हूँ। गोपाल तो गायों का सेवक है। यदि गाएँ नंगे पैर चलती हैं, तो उनका नौकर भी नंगे पैर चलेगा। मुझे अपने पैरों में जूता नहीं पहनना है।" लाला ने गायों की सेवा बड़े प्रेम से की है। ऐसी सेवा अब तक किसी ने नहीं की।

यशोदा माता का हृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने कहा, "तू क्या कहता है? तू गायों की सेवा करेगा, तो वे सुखी होंगी। इस समय धूप बहुत तेज पड़ रही है। जंगल में काँटे कंकड़ अधिक होते हैं। बेटा तू बहुत कोमल है। तेरे पैर में काँटे गड़ जाएँगे। तू नंग पैर चले, यह मुझे पसन्द नहीं है।" लाला ने कहा कि तू मेरी चिन्ता मत कर। मैं गायों की सेवा करने जाता हूँ। इसलिए नंगे पैर जाऊँगा। यह सुनकर यशोदा माता ने कहा कि तू गायों की सेवा करे, यह ठीक है। आखिर गाय तो पशु ही है। लाला ने कहा, "माँ, आज आपने कहा तो कहा। फिर ऐसा मत कहना। गायें पशु नहीं हैं, ये विश्वमाता हैं। जो गाय को पशु कहता है, वह जरा भी नहीं सुहाता। माँ, गाय में तो सभी देवों का निवास है। मैं नंगे पाँव ही चलूँगा। श्रीकृष्ण गोकुल और वृन्दावन में नंगे पाँव घूम चुके हैं। इसलिए ब्रज-रज पावन हो गई। महापुरुष ब्रज-रज का अपने ललाट पर तिलक करते हैं। ब्रज-रज मन को शुद्ध करती है।

श्रीकृष्ण आज गायों को लेकर ताल-वन में पहुँच गए हैं। वे वहाँ अपने ग्वाल बालमित्रों के साथ खेलते हैं। ताल-वन में बेर, कैंथ आदि के पेड़ है। बालकों ने लाला से कहा कि मुझे ये फल खाने की इच्छा है। लाला ने कहा, "जरूर फल खाओ।" बालकों ने कहा, "कैसे खाएँ? यहाँ एक राक्षस रहता है। उसकी शक्ल गदहे जैसी है। वह लोगों को बहुत सताता है।"

ताल-वन यह समाज की सार्वजनिक सम्पत्ति है। धेनुकासुर बहुत दिनों से यहाँ पर रहता है। वह जबर्दस्ती यहाँ का मालिक बन गया है। जो समाज की सम्पत्ति पर अधिकार करता है, वह गदहा बनता है। यदि कोई ताल-वन के फल खाए, तो धेनुकासुर उसे मारता है। फल भले ही सड़ जाए, किन्तु धेनुकासुर उसे खाने नहीं देता। यदि घर में कोई वस्तु बिगड़े, तो उस वस्तु का अभिमानी देव उसे शाप देता है। प्रत्येक वस्तु का एक-एक अभिमानी देव होता है। इसलिए घर में कोई वस्तु खराब न हो, ऐसा उसका सदुपयोग करो। जो उसका सदुपयोग नहीं करता, वह दरिद्र हो जाता है। इतनी सावधानी रखना कि एक कण का भी दुरुपयोग न हो। एक कण से अनेक चीटियों का पेट भरेगा।

बालक कहते हैं, "लाला, हमें फल खाना है; किन्तु धेनुकासुर मारता है।" बलरामजी ने कहा, "तुम सब निश्चिन्त होकर फल खाओ। वह राक्षस आएगा, तो मैं देख लूँगा।" ग्वाल बाल मित्र फल खा रहे थे। उसी समय धेनुकासुर क्रोध से आगबबूला होता हुआ वहाँ आ पहुँचा। बलरामजी चौकन्ना होकर उसे देखते हैं। वे उसका पैर पकड़ कर गोल-गोल चक्कर कराते हुए उसे धरती पर पटक देते हैं। धेनुकासुर मर जाता है। सब बालक दाऊजी महाराज की जय बोलते हैं। वे श्रीकृष्ण कन्हैयालाल की जय, श्रीकृष्ण-बलराम की जय भी कहते हैं।

धेनुकासुर यह देहाभिमान है। उसे बलरामजी मारते हैं। अनेक जन्म का यह देहाभिमान इतना मजबूत हो गया है कि जीव यह समझता है कि शरीर मैं हूँ। जबकि तुम इस शरीर से पृथक हो। मनुष्य यह नहीं कहता मैं ही शरीर हूँ। वह यह कहता है कि यह मेरा शरीर है। इस शरीर से आत्मा पृथक् है। शरीर का आत्मा समझना हीं देहाभिमान है। जो शरीर के सुख को अपना सुख और देह के दुःख को अपना दुःख समझता है अर्थात् शरीर को आत्मा समझता है वही राक्षस है। "आत्मा इस शरीर से भिन्न है। आत्मा उस परमात्मा का अंश है।" इस सिद्धान्त का चिन्तन अपने फुरसत के समय में अवश्य करो। यह सोचो कि मैं परमात्मा का अंश हूँ। मैं शरीर नहीं हूँ, बल्कि इस शरीर से भिन्न हूँ। इस देह का सुख मेरा सुख नहीं है। मैं परमात्मा का अंश हूँ। इसलिए मुझे प्रभु के चरणों में जाना है। ऐसा समझने वाला ही भगवान् की भक्ति करता है। जो शरीर को आत्मा समझता है, वह संसार-सुख में फँसा है। इस शरीर से आत्मा को पृथक् करो। जो शरीर से आत्मा को पृथक् समझकर व्यवहार करता है उसी का पाप छूटता है। वही भगवान् की भक्ति भी कर सकता है। यह देहाभिमान साधारण ज्ञान या साधारण भक्ति से नहीं छूट सकता। क्यों कि यह अनेक जन्मों से बुद्धि में दृढ़ होकर बैठा है। जिस प्रकार देहाभिमान दृढ़ है, उसी प्रकार भक्ति भी दृढ़ करो। सतत भक्ति करने की आदत डालो। बलरामजी शब्द-ब्रह्म के स्वरूप हैं। जो शब्द-ब्रह्म की उपासना करता है, उसका देहाभिमान छूट जाता है।

आज बलरामजी ने बहुत बड़े राक्षस को मारा है। श्रीकृष्ण अपने ग्वाल बालमित्रों के साथ घर लौटते हैं। लाला ने आते समय विचार किया कि कल मुझे कालिया नाग की खबर लेनी है। मेरे बड़े भाई शेषनाग के स्वरूप हैं। वे कालिया नाग के जाति-भाई हैं। मैं यदि उसको मारने जाऊँ और बड़े भाई उसका पक्ष लें तो क्या हो? लाला की ऐसी इच्छा हुई कि कल यदि बड़े भाई साथ न आएँ तो अच्छा हो। भोजन करने के बाद श्रीकृष्ण और बलराम बिछौने पर लेटे हैं। यशोदा माता उनके पास बैठी हैं। उस समय लाला ने बड़ी चतुराई से हँसना शुरू कर दिया। यशोदाजी के पूछने पर उन्होंने बताया, "माँ, ये मेरे बड़े भाई आज गदहे के पीछे पड़ गए थे। ये गदहा मारकर आए हैं।" लाला का यह कहना बड़े भाई को पसन्द न आया। बलरामजी ने कहा, "माँ, वह गदहा नहीं था, बड़ा राक्षस था। मैंने उस राक्षस को मारा और सभी को फल खिलाये।" इस पर कन्हैया ने कहा, "नहीं, वह राक्षस नहीं था, गदहा था।" यह बात बलरामजी को बहुत बुरी लगी। उन्होंने लाला से कहा, "कन्हैया, अब मेरी-तेरी दोस्ती नहीं रहेगी। मैं कल तेरे साथ नहीं जाऊँगा।" यह सुनकर लाला ने कहा, "मुझे इससे खुशी है। मुझे कल कालिया नाग की खबर लेनी है। परसों मैं आपके पैरों पड़कर और समझाकर वहाँ ले चलूँगा।"

दूसरे दिन बलरामजी गुस्सा होकर घर रह गए। श्रीकृष्ण अपने ग्वाल बालमित्रों के साथ उस स्थान पर पहुँचे जहाँ कालिय नाग यमुना में रहता था। सब गेंद खेल रहे हैं। लाला ने आज शर्त रखी है कि जिसके हाथ से यह गेंद यमुना में जाकर गिरेगी, उसे गेंद को लाना पड़ेगा। लाला ने जान-बूझकर वह गेंद कालिय नाग की जगह पर फेंक दी और कहा कि मेरे हाथ से गेंद यमुना में गिरी है मैं उसे अन्दर जाकर ले आऊँगा। ग्वाल बालमित्र लाला को समझाते हैं, "कन्हैया यशोदा माता ने मुझसे कहा है कि लाला को सम्हालना। मैं तुझे अन्दर नहीं जाने दूँगा। मैं तुझे सम्हाल रहा हूँ। लाला ने कहा कि तू मुझे रोकता क्यों है? ग्वालबालों ने कहा, "कन्हैया तुझे खबर नहीं है। इसके अन्दर एक जहरीला नाग रहता है।" लाला ने कहा कि नाग मेरा क्या बिगाड़ लेगा? मित्रों ने कहा, "कन्हैया तू अन्दर जाए और नाग तुझे काट खाए तो?" लाला ने कहा, "वह मुझे काटे तो मैं उसे काटूँगा। मेरे गुरू ने मुझे नाग का मन्त्र सिखाया है। मैं किसी को काटता नहीं, यदि कोई मुझे बिना कारण सताए तो मैं उसका दिमाग ठीक कर दूँगा। यह कालिय नाग ब्रजवासियों को बहुत सताता है। मैं अन्दर जाऊँगा, तुम मेरी चिन्ता मत करो। मैं अपने मण्डल का अध्यक्ष हूँ। यदि मैं अध्यक्ष होकर अपने नियम को भंग करूँ तो दूसरा कोई नियम का पालन किस प्रकार करेगा?"

यदि घर का बड़ा आदमी अथवा मुख्य आदमी बहुत भक्ति करता हो, बहुत पवित्र जीवन गुज़ारता हो तो दूसरे को भी भक्ति करने की प्रेरणा मिलती है। आप सब लोग भी अपने बालकों में अच्छा संस्कार डालने के लिए उनके सामने खूब भक्ति कीजिए। बालक के देखते-देखते कोई भी पाप मत कीजिए।

यमुना के किनारे कदम्ब का एक पेड़ था। श्रीकृष्ण उस पर चढ़ गए और वहाँ से कूद पड़े। वे कालिया नाग के स्थान में प्रवेश करते है। मनुष्य जैसी गंध आते ही कालिय नाग क्रोध में फूँ-फूँ-फूँ करता हुआ वहाँ दौड़ आया। वह लाला को काटने लगता है। अत्यन्त क्रोध में यदि कोई बरफी काटे तो क्या हो? उससे काटने वाले का मुँह मीठा होगा, क्रोध शांत होगा। आज अमृत को जहर काटने जा रहा है। श्रीकृष्ण अमृत हैं, आनन्दमय हैं। कालिय नाग लाला को काटने दौड़ता है। लाला ने उसका जहर खींच लिया है। कालिय नाग को आश्चर्य हो रहा है कि मेरे जहर की गंध भी कोई सहन नहीं कर सकता। यह बालक कैसा है! कालिय नाग लाला को बाँधने का प्रयत्न करता है। सभी ग्वाल बाल मित्र किनारे खड़े हैं और देख रहे हैं कि कालिय नाग ने लाला को लपेट लिया है। यह देखकर सब रोने लगते हैं, व्याकुल हो गए हैं। प्रभु ने अपना हाथ ऊपर उठा दिया है और मित्रों को ढाँढस बँधाया है, "घबड़ाना मत, मैं आता हूँ।"

प्रभु ने अपनी महिमा-शक्ति प्रकट कर दी है और कालिय नाग के बन्धन से अलग हो गये हैं। इसके बाद वे कूद कर उसके फण पर सवार हो गये हैं और उसे एड़ी से मारते हैं, थेई-थेई कर नाचते हैं। ग्वालबाल मित्र लाला को घूर-घूरकर देखते हैं। वे कहते हैं कि कन्हैया का होठ हिल रहा है, वह कोई मन्त्र बोलता होगा। ये व्रजवासी बड़े भोले हैं। ये मानते हैं कि लाला के पास जरूर कोई मन्त्र है। कालिय नाग का जहर बाहर निकल गया है। वह रुधिर की उल्टी कर रहा है। नाग पत्नियाँ आकर भगवान् को वंदन कर रही हैं, प्रभु से क्षमा माँगती हुई कह रही हैं, 'लोग हमारे पति को दुष्ट मानते हैं किन्तु हम ऐसा मानते हैं कि हमारा पति श्रेष्ठ है। हे भगवान्, दुष्टों को सजा देने के लिए आपका अवतार हुआ है। यह हमारे पति के पूर्वजन्म का कोई पुण्य होगा कि आपके चरण हमारे पति के माथे पर पड़े हैं, उसके पुण्य का परिचय देते हैं। हमारे पति दुष्ट नहीं, श्रेष्ठ हैं। आप हमें सौभाग्य का दान करें।' प्रभु ने कालिय नाग को मारा नहीं, केवल नाथा है। उन्होंने कालिय नाग को आज्ञा दी है तू यहाँ से चला जा। क्योंकि व्रजवासी और ग्वाल मित्र यहाँ जलपान करने आते हैं। तेरे जहर से यमुनाजी का जल खराब हो जाता है। तू रमणक द्वीप में जाकर रह।

श्रीकृष्ण कालिय नाग को आदेश देकर बाहर आ गए हैं और अपने ग्वालबाल मित्रों से मिले हैं। इससे सभी को आनन्द हुआ है। प्रश्न यह है कि यह कालिय नाग कौन है? कालिय नाग के तो गिने हुये फण थे, किन्तु मनुष्य के मन में अनेकानेक फण होते हैं, वे फण गिने ही नहीं जा सकते। मनुष्य को थोड़ी भी छुट्टी मिली तो वह संसार सुख का ही विचार करता है। वह सोचता है कि इतने सुख मैंने भोग लिए हैं और इतना सुख मुझे भोगना है। उसका यही विचार कालिय नाग के फण हैं। कालिय नाग के फणों में जिस प्रकार जहर हैं, उसी प्रकार मनुष्य की एक-एक इन्द्रिय में वासना का विष है। जहर तो अपने खाने वाले को एक ही बार मारता है, किन्तु यदि वासना का विष मन में रह जाए तो दूसरे जन्म में भी मारने आता है। इसलिये सतत भक्ति करो, परमात्मा के साथ प्रेम करो, इन्द्रियों में स्थित वासना का विष बाहर निकालो। इन्द्रियों में जब तक वासना का विष है, तब तक उनको भक्तिरस नहीं मिल सकता। जो जितेन्द्रिय है, वह देव की सेवा और देश की सेवा कर सकता है। जिसकी इन्द्रियों में वासना का विष है वह सेवा-भक्ति का बहाना कर सुख भोगता है सेवा और स्वार्थ ये एक दूसरे के विरोधी शब्द हैं। सेवा वह कर सता है, जिसने स्वार्थ का बलिदान किया है और जिसे यह भी इच्छा नहीं है कि लोग मुझे धन्यवाद दें। जिसे लोक-आदर की इच्छा होती है, उसका मन अशांत रहता है। प्राय: ऐसा होता है कि मनुष्य कोई अच्छा काम करे, तो यदि हजार लोग खुश होते हैं, तो दो-चार लोग बिना कारण

नाराज हो जाते हैं। इसलिये कभी यह इच्छा न रखो कि सब तुम्हें धन्यवाद ही देंगे, अच्छा ही कहेंगे। यदि तुम्हें अपने मन को शांत रखना हो तो लोगों की बातें कभी मत सुनना। यदि लोग तुम्हारी प्रशंसा करें, तो उसे सुनकर अभिमान बढ़ जाएगा। यदि लोग तुम्हारी निन्दा करें तो उसे सुनकर उनके प्रति बैर-भाव पैदा होगा। यदि लोग तुम्हारी प्रशंसा करें तो कोई लाभ नहीं है और कोई निन्दा करे तो उससे जरा भी नुकसान नहीं है। जगत् के साथ जीव का सच्चा सम्बन्ध है, जो सब प्रकार का स्वार्थ छोड़ देता है, वही अच्छी तरह देव सेवा कर सकता है और वही देश सेवा भी कर सकता है। जिसके मन में कोई स्वार्थ होता है वह सेवा का बहाना ढूँढ़ कर अपना स्वार्थ सिद्ध करता है। प्रायः लोग देश सेवा का बहाना कर सुख भोगते हैं, मज़ा लूटते हैं। वे लोग कालिय नाग के समान हैं।

कालिय नाग जब से यमुनाजी में आया है, तब से यमुनाजी का जल दूषित हो गया है। यमुनाजी भक्ति महारानी का स्वरूप हैं। भक्ति-संप्रदाय में जब से विलासी लोग घुस गये हैं, तब से वह बिगड़ने लगी है। प्रभु में प्रेम रखना ही भक्ति है। यदि संसार के विषयों में वैराग्य हो तो ही ईश्वर में प्रेम पैदा होता है। जिसे संसार के विषय बहुत मधुर लगते हैं, जिसे अच्छा-अच्छा खाने में मजा आता है, ऐसा मनुष्य भला भक्ति क्या करेगा? वह तो लूली-लंगड़ी से प्यार करता है। जिसे दूसरे के झगड़े बहुत पसन्द आते हैं, जिसे दूसरे की बातें सुनने में आनन्द आता है, वह भक्ति नहीं करता। जिसे भक्ति का आनन्द मिला है, उसका जीवन कुछ भिन्न प्रकार का ही होता है। ज्ञान-वैराग्य विहीन भक्ति रोती है, भक्ति-सम्प्रदाय के जितने आचार्य हुए हैं—भगवान् श्रीमाध्वाचार्य स्वामी, भगवान् श्रीरामानुजाचार्य, भगवान् श्रीवल्लभाचार्य इत्यादि उनमें ज्ञान, वैराग्य और भक्ति तीनों की परिपूर्णता है। इसीलिए वे भक्ति-मार्ग की स्थापना करने में सफल हुए हैं। भक्ति-मार्ग में विलासी लोग घुस जायें, तो उसे छिन्न-भिन्न बना देते हैं—

पुजारी पूजा करे, मन में राखे आँट।
बाल भोग भीतर धरे, चरणामृत दे बाँट॥

किसी के आने पर पुजारी कहता है कि चरणामृत लो, तुलसी लो यदि कोई पुजारी से मोहन भोग बाहर निकालकर बाँटने के लिए कहें तो वह कहेगा, 'यह मोहन भोग सबके चले जाने के बाद हम लोग लेंगे—मैं, मेरी पत्नी, मेरा बच्चा और मेरी बच्ची। भगवान् गरीब के मुख से भोजन ग्रहण करते हैं। भगवान् ब्राह्मण और साधु के मुख से भोजन ग्रहण करते हैं। भगवान् के हजार मुँह हैं। दूसरे को बाँटकर खाओ, अकेले मत खाओ। सूतजी सावधान करते हुए कहते हैं, जिसे इन्द्रियों

का सुख मीठा लगता है, वह अच्छी तरह भक्ति नहीं कर सकता। इन्द्रियों का सुख ही मानो दुःख है। यदि भक्ति रस का पान करना हो तो इन्द्रियों में समाया हुआ वासना का विष बाहर निकालकर फेंक दो। क्योंकि यदि इन्द्रियों में वासना का विष होगा, तो भक्ति रस टिक नहीं सकेगा। प्रभु ने कालिय नाग को मारा नहीं है, नाथा है, उसका उद्धार किया है। तुम इन्द्रियों को मारना मत, बल्कि उन्हें प्रभु के मार्ग में मोड़ देना।

प्रभु ने कालिय नाग को आज्ञा दी है कि तू रमणक द्वीप में चला जा। इन्द्रियों का रमण भक्ति रस से होता है। भोग से इन्द्रियाँ घिस जाती हैं, दुर्बल हो जाती हैं। अतः एक-एक इन्द्रिय को भक्तिरस का पान कराओ और इन्द्रियों को प्रभु के मार्ग में मोड़ो। ऐसे विरक्त भजनानन्दी सन्तों का संग करो जिनको भक्ति में ही आनन्द आता है और जिसे अधिक परोपकार की झंझट में पड़ने की इच्छा नहीं होती। जिसे भगवान् के चरणों तक पहुँचना है, उसे अधिक परोपकार के झंझट में नहीं पड़ना है। क्योंकि परोपकार के झंझट में अधिक पड़ने से भगवान् भूल जाता है, अभिमान बढ़ जाता है। तुम्हें ऐसे सन्तों के सत्संग से भक्ति का रंग प्राप्त होगा, जो सतत भक्ति करते हैं। सत्संग में इन्द्रियों का रमण होता है। तुम ऐसी सात्विक भूमि में रहना जहाँ महात्मा लोग विराजते हैं। क्योंकि विलासी लोगों के संग में रहकर भक्ति करना अशक्य है।

एक बार वन में चारों ओर दावाग्नि लग गई। ग्वालबाल मित्र घबड़ा गए। लाला ने सबकी आँखें बन्द कराईं। उन्होंने अपना विराट स्वरूप धारण कर सारी दावाग्नि पी ली। संसार दावाग्नि अनेक प्रकार से जीव को जलाने के लिए आती है दरिद्रता, सन्तान का अभाव, अनारोग्य, झगड़ा। जब-जब यह दावाग्नि तुमको जलाने आए तब-तब आँखें बन्द करो, जगत् का सम्बन्ध छोड़कर परमात्मा के साथ मन से सम्बन्ध जोड़ दो। संसार के विषयों से भी अपनी आँखें हटा लो अथवा उनकी तरफ से आँखें बन्द कर लो और परमात्मा का स्मरण-कीर्तन करो। यदि जीव संसार का सम्बन्ध छोड़ कर परमात्मा के स्मरण में लीन हो जाए, तो ही वह संसार की दावाग्नि से बच सकता है। भक्ति वही कर सकता जो यह समझता है कि भगवान् मेरे हैं और मैं भगवान् का हूँ। जो ऐसा समझता है कि मैं किसी स्त्री का हूँ अथवा किसी पुरुष का हूँ, वह विलासी जीव अच्छी तरह भक्ति नहीं कर सकता। भक्ति का आरम्भ तभी होता है, जब ऐसा भाव दृढ़ होता है कि मैं भगवान् का हूँ। भक्ति जब बढ़ती है तब यह अनुभव होने लगता है कि भगवान् मेरे हैं, परमात्मा मेरे हैं। उसी मनुष्य की संसार दावाग्नि शान्त होती है जो ऐसा भाव रखकर सतत सेवा-स्मरण में तन्मय रहता है।

६४- वेणु गीत

इसके बाद ऋतुओं का वर्णन किया गया है। गोपियाँ लाला की बाँसुरी सुनकर आपस में बातें करती है। उसी का वर्णन वेणुगीत कहलाता है। भक्ति के बढ़ने पर दूर-दर्शन और दूर श्रवण दो सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। आज तक गोपियाँ लाला के दर्शन की इच्छा से यशोदा माता के घर जाती थीं और लाला की झाँकी प्राप्त करती थीं। अब गोपियाँ का प्रेम इतना बढ़ गया है कि उनके घर में ही श्रीकृष्ण का दर्शन होता है। जो मन्दिर में जाकर भगवान् के दर्शन करता है, वह साधारण वैष्णव है। जिनको अपने रहने के स्थान पर ही भगवान् दिखाई देता है, वे सच्चे वैष्णव हैं। गोपियों को रास्ता चलते-चलते भी श्रीकृष्ण दिखाई देते हैं, उनके घर में भी श्रीकृष्ण के दर्शन होते हैं, उनकी बाँसुरी का नाद सुनाई देता है। गोपियों का ऐसा नियम है कि वे अपने घर का काम-काज पूरा करने के बाद शान्ति से बैठकर श्रीकृष्ण का ध्यान करती हैं, प्रेम से प्रभु नाम का कीर्तन करती हैं। वे अपने घर का उतना ही काम करती हैं, जिसे किये बिना नहीं चल सकता। अपनी प्रवृत्ति अधिक मत बढ़ाना। क्योंकि प्रवृत्ति और भक्ति में विरोध है। प्रवृत्ति उतनी ही करो, जिसके बिना काम न चल सके। जितनी बोलने की जरूरत हो, उतना ही बोलना। जिससे बोलने की जरूरत न हो, उससे मत बोलना। अधिक बोलने से भक्ति का विनाश होता है। जिसे विचारने की अधिक आवश्यकता है, उसे ही विचारो जिसे विचारने से जीवन में कोई लाभ नहीं, भक्ति बढ़ती नहीं है, उसे मत विचारो।

एक भाई कह रहे थे कि कौए के कितने दाँत होते हैं, यह हमें जानना है। मैं उनसे पूछना चाहता हूँ कि कौए के दाँतों की संख्या जानकर क्या मिलने वाला है? लाभ क्या है? ऐसे विचार मत करो जिनसे भक्ति-प्रेम बढ़ते न हों। जिसे देखने की जरूरत हो, उसे ही देखो, जो विचारने की जरूरत हो, उसे ही विचारो। जो बोलने की जरूरत हो, वही बोलो। वृथा भाषण, वृथा चिन्तन और वृथा कथन से भक्ति में विक्षेप पड़ता है। कुछ लोगों को ऐसी कुटेव होती है कि घर का काम पूरा हो जाने पर बातचीत करने के लिए पड़ोसी के घर चले जाते हैं। अथवा बम्बई में क्या हुआ? समाचार पत्रों में क्या छपा है? अथवा जगत् भर की बातें जानने से क्या लाभ? कुछ लोगों को अपने पड़ोसी के साथ बात करने से तृप्ति नहीं होती। इसीलिए वे किसी रास्ता-चलने वाले को बुलाते हैं और उन्हें बैठाते हैं, जय श्रीकृष्ण करते हैं। फिर थोड़ी बात करने के लिए कहते हैं। "मेरा तो सत्यानाश हुआ है। तुम मेरे पास आओ, तो तुम्हारा भी सत्यानाश करूँ।" इस प्रकार वृथा भाषण पाप है। वृथा चिंतन उससे बड़ा पाप है। गोपियाँ भगवान् की आज्ञा मानकर ही घर का काम

करती हैं वे अपने घर का काम करते-करते भी लाला का स्मरण करती हैं। वे अपने घर का काम पूरा करने के बाद लाला की जो बातें करती हैं, उसे ही महापुरुष लोग वेणुगीत कहते हैं।

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः सख्यः पशूननु विवेशयतोर्वयस्यैः।
वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणु जुष्टं यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्ष मोक्षम्॥

(१०-२१-७)

गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणुर्दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम्।
भङ्क्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो हृष्यत्त्वचोऽश्रु मुमुचुस्तरवो यथाऽऽर्याः॥

(१०-२१-९)

श्रीकृष्ण गिरिराज में बाँसुरी बजाते हैं। गोपियों के घर पर सुनाई देती है। गोपियाँ लाला के बारे में परस्पर बातें करती हैं, "सखी, देख तो जरा कन्हैया बाँसुरी बजा रहा है। यह बाँसुरी बड़ी भाग्यशाली है। यह सारे दिन उनके हाथ में रहती है। जो सारे दिन श्रीकृष्ण का स्पर्श करता होगा, उसे कितना आनन्द मिलता होगा! मैंने सुना है कि वे जब भोजन करने बैठते हैं, तब बाँसुरी को कमर में बाँध लेते हैं। अरी सखी, मैं तुझसे क्या कहूँ? मेरे श्रीबालकृष्णलाल बाँसुरी को लेकर बिछौने पर सोते हैं। उन्हें बाँसुरी के बिना नींद नहीं आती। जो परमात्मा के साथ सोता होगा, उसे कितना आनन्द आता होगा। यह बाँसुरी तो लाला की रानी बन गई है। इसने बहुत पुण्य किया होगा! जिसके कारण परमात्मा ने इसे अपना लिया है। इसे परमात्मा का नित्य संयोग प्राप्त है। अरी सखी, मुझे भी प्रभु से विवाह करना है, श्रीकृष्ण के साथ एकाकार होना है।" गोपी ने बाँसुरी से पूछा है, अरी बाँसुरी तूने क्या पुण्य किया है कि भगवान् को तेरे बिना कुछ नहीं सुहाता? भगवान् द्वारा तुझे अपनाए जाने का कारण क्या है? अयं वेणुः कुशलं किं आचरन्–

बाँसुरी ने कहा, "मैंने बड़ी तपश्चर्या की है। मैंने बड़े-बड़े दुःख सहे हैं।" जो मन को शान्त रखकर दुःख सहन करता है, वह भगवान् को बहुत भाता है। तुम जितना ही अधिक दुःख सहन करोगे, उतने ही अधिक सुखी बनोगे। जो मन को शान्त रखकर दुःख सहन करता है, उस जीव पर भगवान् जल्दी कृपा करते हैं। बाँसुरी ने कहा, "मैंने धूप सहन की है, ठंडी सहन की है, बरसात सहन की है। मैं तुमसे अधिक क्या कहूँ? लोगों ने मेरे शरीर में सात छेद किये हैं। उसे भी मैंने चुपचाप सहन किया है। इसीलिए मैं अपने भगवान् को भाती हूँ। जो गम खाता है, वह मालिक को प्रिय लगता है। कुछ लोग ऐसे होते हैं कि कोई उनकी जगह पर बैठ जाए, तो वह उनकी आँखों में पाँच दस मिनट खटकता है। मनुष्य गम नहीं खाता। जो मन शान्त रखकर गम

खाता है, दुःख सहन करता है, उसे भगवान् अपना लेते हैं। मुझमें अनेक सद्गुण हैं, एक भी गाँठ नहीं है। इसीलिए मैं भगवान् को बहुत प्रिय लगती हूँ।"

उपनिषदों में कहा गया है कि वासना ही ग्रन्थि है, गाँठ है। जिसके अन्दर वासना की गाँठ होती है, वह भगवान् को प्रिय नहीं होता।

बाँसुरी कहती है, "मैं अन्दर से पोली हूँ। जिसका हृदय मेरे जैसा पोला है, वह प्रभु को प्रिय लगता है।" तुम अपनी आँखें बन्द करो, अपने हृदय पर हाथ रखकर देखो कि तुम्हारा हृदय पोला है, या उसमें कोई कूड़ा कचरा भरा है? लोग जब बैठते हैं, तब चारों ओर देख लेते हैं कि कहीं यहाँ कूड़ा कचरा तो नहीं है? यदि कूड़ा कचरा होगा, तो मेरा कपड़ा खराब होगा। तो जिस हृदय में भगवान् का आगमन कराना है, उसमें यदि कचरा पड़ा होगा, तो भगवान् वहाँ कैसे बिराजेंगे? यदि कोई तुम्हारे लिए खराब शब्द बोले, तो तुम उसे भूल जाओ। उसे कभी अपने मन में स्थान मत दो। जिसके मन में कर्कश वाणी का कचरा भरा है, उसमें भगवान् कभी भी नहीं बिराजेंगे।

बाँसुरी कहती है, "मैं कभी अकेली नहीं बोलती मैं अपनी इच्छा से भी नहीं बोलती। जब मेरे मालिक को बोलने की इच्छा होती है, तब मैं बोलती हूँ। तुमको भी जब बोलना हो तो ठाकुरजी की ही इच्छा के अनुसार बोलना। क्या तुम जब बात करते हो, तब भगवान् याद आता है? परमात्मा का स्मरण करते-करते बोलने की आदत डालो। बाँसुरी ने कहा कि मेरे मालिक को जो पसन्द है, वही मैं बोलती हूँ, उनको जो ध्वनि निकालनी हो, वही निकालती हूँ। मैं कभी अकेली नहीं बोलती। मनुष्य जब अकेला बैठता है, तब वह अपने मन से बात करता है, "यह अच्छा है, यह खराब है। यह जो हुआ है, बहुत खराब, ऐसा होना चाहिए—इत्यादि।"

मनुष्य जब अकेला बैठता है, तब भी बोलता है। लोग तन को आराम देते हैं। तुम मन से एक अक्षर भी बोले बिना शान्ति से बैठो। जो मन से न बोले, उसे मौन कहते हैं। मन के बोलने पर मौन भंग होता है। कुछ लोग जीभ से न बोलकर मन से बोलते हैं। वह मौन सच्चा मौन नहीं है। जब मन एक भी अक्षर बोलता नहीं और संसार-चिन्तन छोड़ देता है, तब उसकी शक्ति बढ़ती है। कदाचित् आप यह कहें कि मैं तो कथा में मौन रहता हूँ, तीन-चार घण्टे बाद बोलता हूँ। यह सच है कि आप कथा के समय जीभ से नहीं बोलते; किन्तु कभी-कभी आपका मन बोलता है, जो मुझे भी सुनाई देता है। कितने लोग कथा में बैठे-बैठे मन से बोलते हैं कि आज गोवर्धन-लीला है इस लिए सात तो बजेगा ही। महाराज यदि थोड़ी जल्दी कथा पूरी कर दें, तो बहुत अच्छा है। मनुष्य मन की उपेक्षा जीभ से अधिक नहीं बोलता। जो मन से अधिक बोलता है, उसकी शक्ति

नष्ट होती है। यदि तुम अपनी शक्ति का संग्रह करो, तो सुखी बनोगे। बहुत सुख है शक्ति के संग्रह मैं और शक्ति के विनाश में बहुत दुःख है।

बाँसुरी ने कहा कि मैं कभी अकेली नहीं बोलती। जब मेरे प्रभु की प्रेरणा होती है, तभी मैं बोलती हूँ और ऐसा बोलती हूँ कि सुनने वाला डोल उठता है। मेरा शब्द सुनकर नाग भी डोलने लगता है और हिरन भी तन्मय हो जाता है। नाग के फण में ज़हर है और हिरन की नाभि में कस्तूरी है। मैं इस प्रकार विवेक से बोलती हूँ कि सज्जन-दुर्जन सभी को सुख मिलता है। तुम भी बोलो, तो ऐसा बोलो कि सुनने वाले का हृदय डोल उठे। मधुर बोलो और वाणी में विनम्रता रखो। कुछ लोग सच तो बोलते हैं, किन्तु बहुत जोर से और ऊँची आवाज से बोलते हैं। उनकी वाणी सुनने वाले को ऐसा लगता है कि मानो वे अपमान कर रहे हों बहुत ऊँचे स्वर से नहीं बोलना चाहिए।

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्—सुनने वाले के कान को प्रिय लगे ऐसा बोलो।

कबीरदास महाराज के दो शिष्य थे। एक शिष्य किसी गृहस्थ के दरवाजे पर जाकर बोला, 'मैया—साधु को भिक्षा दे।' घर में लक्ष्मी जैसी गृहिणी ने बाहर आकर देखा और विचार किया कि साधु महाराज को एक मुट्ठी चावल देने की अपेक्षा भोजन करा दूँ तो हमारे यहाँ कुछ नुकसान नहीं है। उसने साधु महाराज को प्रेम से भोजन कराया। वे इससे खूब सन्तुष्ट हुए। उसने अपने गुरु भाई को सारी बात बता दी कि इस गली में पाँचवाँ घर है, लक्ष्मी जैसी स्त्री है। उसने मुझे भोजन कराया। तू जाए तो तुमको भी भोजन कराएगी। दूसरा शिष्य अधिक चालाक था। उसने सोचा कि मेरे गुरु भाई ने 'मैया-मैया भिक्षा दे।' ऐसा कहा है। यदि मैं भी ऐसा ही कहूँ तो मेरी चतुराई किस काम की? वह उस गृहस्थ के घर आकर बोला, 'ऐ मेरे बाप की औरत, तू बाहर आकर हमको भिक्षा दे।' घर की लक्ष्मी हाथ में डण्डा लेकर आई और बोली; 'महाराज तुम क्या बोलते हो? क्या तुमको कुछ होश है?'

'मैया' और 'मेरे बाप की औरत' में क्या अन्तर है? फिर भी 'मैया' शब्द कान को कितना मधुर लगता है! और 'मेरे बाप की औरत' यह कान को कितना कर्कश लगता है! तात्पर्य यह है कि सच बोलो, मधुर बोलो। बाँसुरी बहुत मधुर बोलती है। इसलिए वह परमात्मा को बहुत भाती है। बाँसुरी अपनी इच्छा से नहीं बोलती, प्रभु की प्रेरणा होने पर ही बोलती है।

वेणु=व+ई+णु। व=विषयानन्द, इ=ब्रह्मानन्द, णु=तुच्छ। विषयानन्द और ब्रह्मानन्द ये दोनों जिसके सामने तुच्छ हैं, उसे वेणु कहते हैं। ये दोनों आनन्द इकलौते जैसे किसी एक को ही मिलते हैं किन्तु बाँसुरी का आनन्द सभी को मिलता है।

एक गोपी कहती है, अरी सखी तू जरा देख तो, जब कन्हैया बाँसुरी बजाता है तब ये पेड़ भी खुश हो जाते हैं और इनमें से मधु की धारा बहने लगती है।

अश्रु मुमुचुस्तरवो यथाऽऽर्थाः

लाला की बाँसुरी जड़ को भी चैतन्य बना देती है। ये वृक्ष यह मानते हैं कि लाला के हाथ में जो बाँसुरी है वह बाँस की पुत्री है। बाँस एक वृक्ष है, मैं भी वृक्ष हूँ। मेरे जाति बन्धु की कन्या परमात्मा के साथ ब्याही गई है। इससे वृन्दावन के वृक्ष भी लाला से अपना नाता-रिश्ता जोड़ते हैं। वे कहते हैं कि कन्हैया हमारा जामाता या दामाद है। इसी प्रकार तुम भी लाला से अपना नाता-रिश्ता जोड़ लो। व्यवहार में भी देखा जाता है कि स्वार्थ होने पर लोग किसी बड़े आदमी के साथ अपना दूर-दूर का रिश्ता खोज निकालते हैं। तुम भी लाला के साथ रिश्ता जोड़ो। जीव जब संसार का सम्बन्ध छोड़ता है, तब बहुत घबराता है। यदि परमात्मा से सम्बन्ध स्थापित कर ले तो जीव को अन्तकाल में शान्ति मिलती है। ईश्वर के साथ सम्बन्ध रखने के लिये यदि वह सोच ले कि मैं भगवान् का दास हूँ, भगवान् मेरा मालिक हैं। मैं प्रभु के धाम में जाने वाला हूँ। तो मृत्यु सुधरती है। जो परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ता है, अन्तकाल में भगवान् उसे लेने के लिए आते हैं।

श्री श्रीधर स्वामी ने अपनी टीका में लिखा है कि वेणुगीत में बोलने वाली गोपी भिन्न है। प्रत्येक श्लोक में वक्ता बदलता रहता है। इसलिए एक श्लोक का दूसरे श्लोक से सम्बन्ध नहीं होता। एक गोपी ने कहा है, सखी मैं तुझसे क्या बताऊँ? इस वृन्दावन की हिरनियाँ मेरी अपेक्षा अधिक भाग्यशाली है।

धन्याः स्म मूढमतयोऽपि हरिण्य एता या नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेषम्।
आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः॥

(१०-२१-११)

ये हिरनियाँ आँख से श्रीकृष्ण के दर्शन करती हैं और कान से बाँसुरी सुनती हैं। ये जब दर्शन करती हैं तब इनकी पलकें भी नहीं गिरतीं, टकटकी लगाकर देखती हैं ये दर्शन में कितनी तन्मय हो गई हैं! अरी सखी! ये हिरणियाँ बहुत भाग्यशाली हैं। क्योंकि जब ये दर्शन करने जाती हैं, तब अकेली नहीं जाती हैं। अपने पति को समझाकर साथ ले जाती हैं।

यदि पत्नी बहुत लायक हो तो अपने पति को सुधार सकती है, किन्तु स्त्री लायक न हो तो पति उसे नहीं सुधार सकता। ये हिरनियाँ अपने पति को समझाती हैं कि तुम भी दर्शन करने चलो। पति-पत्नी का पवित्र सम्बन्ध परमात्मा के लिए ही है। जो पति को प्रेम से समझाकर पाप

करने से रोकती है, पति को प्रभु के मार्ग में लगाती है, जो भक्ति में बहुत साथ देती है, वही पत्नी है। जो पति को भोग-विलास में फँसाती है वह शत्रु है। ये हिरणियाँ अपने पति को समझाकर साथ ले जाती हैं। तू यह तो देख कि पति-पत्नी आज लाला के दर्शन में कितने तन्मय बन गए हैं! ये हिरनियाँ जब लाला की बाँसुरी सुनती हैं, तब उन्हें बड़ा आनन्द आता है। लाला की बाँसुरी सुनकर इनमें प्रेम जागता है। प्रेम की एक यह रीति है कि जिसमें यह जागता है, उसे कुछ लेने की इच्छा नहीं होती। प्रेम में समर्पण की भावना होती है। लाला की यह बाँसुरी सुनने के बाद हिरणियों की यह इच्छा होती है कि मैं इनको कुछ भेंट दूँ। वे सोचती है कि क्या भेंट दूँ? ये हिरणियाँ श्रीकृष्ण को अपना नेत्र-कमल भेंट देती हैं। आँख की भेंट देने के योग्य न कोई पुरुष है, न कोई स्त्री है। यदि आँख भेंट लेने लायक कोई है, तो वह पुरुषोत्तम परमात्मा श्रीकृष्ण हैं। भगवान् को अपनी आँख अर्पित करो। कदाचित तुमको यह शंका होगी कि महाराज क्या कह रहे हैं? संसार को आँख तो देनी ही पड़ती है। आँख दिये बिना कोई काम नहीं होता। वास्तव में सन्त लोग संसार को देखते हैं, किन्तु उपेक्षा भाव से देखते हैं। आप घर से यहाँ पर आए हैं तो रास्ते में पड़ा हुआ कूड़ा-कचरा भी आँख को दिखाई दिया। आप कचरे को उपेक्षा भाव से देखते हैं। इस समय वह आपको याद नहीं आता। दृष्टि दो प्रकार की होती है—अपेक्षात्मक और उपेक्षात्मक। जो जगत को उपेक्षा भाव से देखता है, वह सन्त है। सन्त वह है जो भगवान् में अपेक्षा दृष्टि रखता है।

गोपी कहती है, 'अरी सखी! मैं तो यह मानती हूँ कि ये वृन्दावन की हिरणियाँ भी मुझसे बहुत श्रेष्ठ हैं।' दूसरी गोपी ने पूछा कि अरी सखी! तू ऐसा क्यों कहती है? कुछ भी हो आखिर यह हिरणी तो पशु है और हम मनुष्य हैं। पशु की अपेक्षा मनुष्य श्रेष्ठ समझा जाता है। यह सुनकर पहली गोपी कहती है, 'सखी! यह मेरी अपनी बात है, तू किसी से कहना मत। मैं इन हिरणियों को अपने से श्रेष्ठ इसलिए मानती हूँ कि इनको जो पति मिला है, वह भक्ति में इन्हें बहुत साथ देता है।' यदि पति-पत्नी एक विचार लेकर भक्ति करें, तो भगवान् जल्दी कृपा करें। यदि पति-पत्नी का लक्ष्य एक न हो, एक पैसा चाहता हो और दूसरे को भगवान् के दर्शन की इच्छा हो, परस्पर मतभेद हो तो वहाँ किसी को शाँति नहीं मिलेगी। मेरे घर में मुझे जो पतिदेव मिले हैं, उन्हें ठाकुरजी से थोड़ा प्रेम तो है, वे सबेरे आधे घण्टे तक थोड़ी भक्ति भी करते हैं, किन्तु बाद में उन्हें भगवान् की भक्ति करने की बिल्कुल इच्छा नहीं होती। अरी सखी! मैं अधिक भक्ति करूँ यह मेरे पतिदेव को पसन्द नहीं। मुझ से कहते हैं कि चलो घूमने चलें। मैं आज तक घूमती ही तो रही, किन्तु मुझे शान्ति नहीं मिली। मुझे अब एक जगह बैठकर लाला का ध्यान करने में, स्मरण करने में ही आनन्द आता है। मुझे अब इधर-उधर भटकना अच्छा नहीं लगता। मुझे बहुत बोलने

की इच्छा नहीं होती। यदि मैं बहुत भक्ति करूँ तो मेरे पतिदेव कभी-कभी घर में झगड़ा करते हैं, क्रोध करते हैं। मुझे जो पति मिले हैं, वे मेरी भक्ति में बहुत अनुकूल नहीं हैं। ये हिरणियों के पति इन्हें भक्ति में बहुत साथ देते हैं। इसलिए मैं ऐसा मानती हूँ कि ये हिरणियाँ मुझसे श्रेष्ठ हैं।

धन्या!........मझे ऐसा पति मिला होता तो इस जन्म में मेरा उद्धार हुआ होता। ये हिरणियाँ मुझसे बहुत ही श्रेष्ठ हैं।

गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीत पीयूषमुत्तभितकर्णपुटैः पिबन्त्यः।
शावाः स्नुतस्तनपयः कवलाः स्म तस्थुर्गोविन्दमात्मनि दृशाश्रुकलाः स्पृशन्त्यः॥

(१०-२१-१३)

एक गोपी ने कहा, 'सखी तू जरा देख तो, मेरा कन्हैया कदम्ब वृक्ष पर शोभित हो रहा है और वहाँ से जब बाँसुरी बजाता है तब गायें पागल बन जाती हैं। तू अच्छी तरह दर्शन कर। गायें खली खा रही है। उनके मुँह में खली है, किन्तु लाला की बाँसुरी कान में पड़ते ही उन्हें खली खाने का ध्यान नहीं रहता। उनके मुंह से खली नीचे गिर पड़ती है। इन गायों के विचित्र-विचित्र नाम हैं। कुछ गायों के नदी के नाम-गंगा, गोदावरी, यमुना, कावेरी, नर्मदा, सरयू इत्यादि हैं। कुछ गायें लताओं के नाम की हैं-वासन्ती, मधुमालती, चम्पकलता इत्यादि। कुछ गायों के नाम केसरगन्धा, कर्पूरगन्धा, कस्तूरीगन्धा हैं। जिस गाय के दूध से केसर का रंग और उसकी सुगन्ध प्राप्त हो उसका नाम है केसरगन्धा। इसके दूध में केसर डालने की जरूरत नहीं पड़ती। कन्हैया बाँसुरी में से एक-एक गाय का नाम लेकर बुलाता है। जब कन्हैया नाम लेकर बुलाता है, तब इन्हें बहुत आनन्द आता है। ये गायें मन में यह सोचकर कि मेरा मालिक मुझे बुलाता है। हुम-हुम करती हुई, दौड़ती हुई आती हैं। ये कदम्ब को घेर कर खड़ी हो जाती हैं। ये अपना मुँह ऊपर उठाती हैं और देखती हैं। अरी सखी! वास्तव में ये देखती नहीं, बल्कि अपनी आँखों द्वारा श्रीकृष्ण को अन्दर उतारती हैं। और मन से उनका आलिंगन करती हैं। इसलिए इनको बहुत आनन्द आता है। जो परमात्मा से मिलता है उसको कितना आनन्द मिलता होगा? गायों के बीच खड़े गोपालकृष्ण के दर्शन से बहुत आनन्द आता है। मानो ये गायें लाला की बाँसुरी सुनने के बाद उनसे मिलने जाती हैं। मेरे हृदय में भी कभी-कभी ऐसा प्रेम उभर आता है कि दौड़कर जाऊँ और लाला का आलिंगन करूँ। जिस प्रकार ये गायें दौड़ती हैं, उसी प्रकार मैं भी प्रेम में पागल बनकर लाला के पीछे-पीछे दौड़ती जाती हूँ। मुझे उनसे मिलने की तीव्र इच्छा होती है, किन्तु बाद में याद आता है कि मैं तो स्त्री हूँ। लोग मुझे क्या कहेंगे। मुझे जब स्त्रीत्व का स्मरण हो आता है, मुझे जब लोकलज्जा का ख्याल आता है तब मैं रास्ते में ही बैठ जाती हूँ। मेरे मन में यह बात पैदा होती है कि मुझे प्रभु

ने गाय बनाया होता तो कितना अच्छा होता! मैं स्त्री होने के कारण लाला से मिल नहीं सकती।

अभी इस गोपी को यह याद आता है कि मैं स्त्री हूँ। यह गोपी जब श्रीकृष्ण-प्रेम में अधीर बनकर अपने स्त्रीत्व को भूल जाएगी, तब भगवान् इसे रास में बुलायेंगे। जिसको यह याद आता है कि मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ, उसकी बुद्धि में काम बैठा होता है। काम श्रीकृष्ण-मिलन में विघ्न पैदा करता है। भगवान् की भक्ति इस प्रकार करो कि तुम्हें यह न याद आये कि मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ। परमात्मा के स्मरण में जो स्त्रीत्व-पुरुषत्व भूल जाता है। जो पूर्ण निष्काम बन जाता है, वह रासलीला में प्रवेश पा सकता है।

गायों की दशा जैसी ही दशा उनके बछड़ों की भी है। बछड़े स्तन-पान करते हैं। उनके मुँह में दूध होता है, किन्तु लाला की बाँसुरी सुनते ही उन्हें इतना आनन्द आता है कि मुँह का दूध गले में उतारने अथवा पी जाने का ख्याल नहीं रहता। इसलिए उनके मुँह में से दूध की धारा बहती है। एक गोपी कहती है, अरी सखी! गायों का प्रेम तो ठीक है, वृन्दावन के ये पक्षी भी बहुत प्रेम रखते हैं।

प्रायो बताम्ब बिहगा मुनयो वनेऽस्मिन्कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम्।
आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान् शृण्वन्त्यमीलितदृशो विगतान्यवाचः॥

(१०-२१-१४)

पक्षियों का स्वभाव है कि वे सायंकाल कोलाहल करते हैं। जब कन्हैया बाँसुरी बजाता है, तब वृन्दावन के पक्षी एक शब्द भी नहीं बोलते, ये मौन बनकर लाला की बाँसुरी सुनते हैं। ये जिस प्रकार तन्मय हो जाते हैं! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि ये पूर्वजन्म के ऋषि हैं और इन्हें यमुनातट पर मौन रहकर भक्ति करने की आदत पड़ गई है। वृन्दावन के पक्षी मेरी अपेक्षा श्रेष्ठ हैं। तू जरा देख तो। अरी सखी! कितने ऐसे पक्षी भी हैं, प्यास लगती है, वे यमुना तट पर रहते हैं, किन्तु पानी पीने के लिए नीचे उतरते ही नहीं। गोपी पक्षी से पूछती है, "प्यास लगने पर यमुनाजी के किनारे रहने वाला पक्षी जलपान करने के लिए नीचे क्यों नहीं आता।" पहली गोपी जवाब देती है, 'इसका कारण यह है कि वृन्दावन के पक्षी राधाकृष्ण-राधाकृष्ण बोलते हैं। इन पक्षियों को वृक्ष में वृक्ष के पत्ते में श्रीकृष्ण का दर्शन होता है। इन्हें दर्शन में ऐसा आनन्द आता है कि उसे छोड़ पानी पीने कौन जाए? श्रीकृष्ण का वियोग ही महान दुःख है। अरी सखी! मैंने ऐसा सुना है कि अगर वहाँ कोई वैष्णव आए और बहुत प्रेम से राधाकृष्ण-राधाकृष्ण, राधाकृष्ण बोले, तो ही ये पक्षी जलपान करने नीचे उतरते हैं। ये पानी पीते-पीते भी लाला को देखते हैं, उसका स्मरण करते हैं।

यह बात गोपियों में हो रही है, उसी समय यशोदाजी वहाँ पधारती हैं। उन्होंने पूछा कि अरी सखियों, तुम किसकी बात कर रही हो? गोपियाँ कहती हैं, "माँ हमारे गाँव में तो एक ही विषय है—श्रीकृष्ण। हम सब हमारे लाला की ही बात कर रही हैं। हमें लाला की बात छोड़कर कुछ भाता ही नहीं।" यशोदाजी ने कहा, "लाला की तो बात क्या करें? धूप बहुत पड़ती है, किन्तु लाला के पैर में जूते नहीं हैं, माथे पर छतरी नहीं है, इससे उसको कितनी तकलीफ होती होगी? वह गायों के लिए कितना दुःख सहन करता है। मैं हर रोज कहती हूँ, किन्तु वह मानता नहीं। वह कहता है कि मैं गायों का नौकर हूँ। मुझे बहुत चिन्ता होती है।" तब एक गोपी बोली, "माँ, तुम जरा भी चिन्ता मत करना। लाला का एक खास मित्र है। वह उसके माथे पर छतरी लगाकर चलता है।" माता यशोदा बहुत खुश होती हैं और कहती हैं, मेरे लाला के माथे पर छतरी लगा के चलने वाला कौन है? आज घर लौटने पर तू मुझे उसको दिखाना। मैं उसे भोजन कराऊँगी वह मेरे लाला का बहुत ध्यान रखता है, इसलिए मुझे उसका सम्मान करना है। उस समय गोपी कहती है, माँ लाला का वह मित्र ऐसा है जो कभी घर नहीं आता!" यशोदाजी को आश्चर्य होता है कि वह मित्र कैसा है जो कभी घर आता ही नहीं। तब गोपी कहती है—

दृष्ट्वाऽऽतपे व्रजपशून् सहरामगोपैः सञ्चारयन्तमनु वेणुमुदीरयन्तम्।
प्रेमप्रवृद्ध उदितः कुसुमावलीभिः सख्युर्व्यधात् स्ववपुषाम्बुद आतपत्रम्॥

(१०-२१-१६)

यह मेघराज है। यही लाला का मित्र है। मेघराज यह मानता है कि मेरा और लाला का रंग एक जैसा है। माँ! मैंने अनेक बार देखा है कि भले ही धूप हो तो भी मेरा कन्हैया गायों को लेकर जहाँ विराजता है, उस जगह छाया होती है। लाला को गरमी से ज़रा भी परेशानी न हो इसका ख्याल वह बादल रखता है। माँ, कन्हैया यदि चलने लगे, तो आकाश में मेघ भी चलने लगता है। तुम्हारा कन्हैया सभी को प्यारा लगता है। सभी तुम्हारे लाला को सम्हालते हैं, सभी उसकी सेवा करते हैं। यशोदाजी ने कहा, अरी सखी! तू कहती है कि मेघराज छाया करता हुआ चलता है, यह ठीक है; किन्तु लाला के पैर में जूता नहीं होता इसलिए उसके पैर में तकलीफ तो होती ही होगी। दूसरी गोपी कहती है—"माँ! उसके पैरों में जरा भी तकलीफ नहीं होती।

हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो यद् रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः।
मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत् पानीयसूयवसकन्दरकन्दमूलैः॥

(१०-२१-१८)

गा गोपकैरनुवनं नयतोरुदारवेणुस्वनैः कलपदैस्तनुभृत्सु सख्यः।
अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणां, निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम्॥

(१०-२१-१९)

यह गिरिराज है। कन्हैया जहाँ चरण रखता है वहाँ यह मक्खन से भी कोमल बन जाता है। श्रीकृष्ण के चरण-स्पर्श से उसे ऐसा ही आनन्द मिलता है। वह जानता है कि लाला के चरण अत्यन्त कोमल हैं, लाला को जरा भी परिश्रम न हो इसका वह बहुत ख्याल रखता है। यशोदाजी कहती हैं कि सखी! तू यह क्या कह रही है? यदि कोई मक्खन डाले तो उसमें गड्ढा पड़ जाता है। इतने सब ग्वाले और गाय गिरिराज पर फिरें और गिरिराज मक्खन से भी कोमल हो तो उस पर कितने गड्ढे पड़ें? गोपी कहती है, 'माँ! तुम्हारी शंका ठीक है, किन्तु तुम्हारे लाला के पास एक ऐसी दवा है, जिससे सारे गड्ढे भर जाते हैं। सायंकाल जब कन्हैया नीचे उतरता है, तब गिरिराज महाराज थोड़ा अकड़ जाते हैं। क्योंकि उनको सारे दिन श्रीकृष्ण के चरण स्पर्श का आनन्द मिला था। उनको इस बात का आनन्द होता है कि ये अब कल सबेरे आयेंगे और मुझे सारी रात श्रीकृष्ण का वियोग सहन करना पड़ेगा। श्रीकृष्ण के वियोग समान कोई दुःख नहीं है। माँ! लाला का यह नियम है कि गिरिराज से उतरने के बाद वे एकबार बड़े प्रेम से देखते हैं। माँ! लाला की आँखों में तो अमृत है। कन्हैया गिरिराज को देखते-देखते प्रेम से ऐसी बाँसुरी बजाता है, ऐसी तान छेड़ता है कि उसकी बाँसुरी सुनकर उनको अतिशय आनन्द होता है। गिरिराज महाराज अत्यन्त आनन्द से फूल उठते हैं। इससे उनके सारे गड्ढे भर जाते हैं।

वेणोः मधुरसूरया गिरिराजस्य रंध्रान् पूरयन्

लाला की बाँसुरी सुनकर गिरिराज बहुत आनन्दित होता है, उनके शरीर में रोमाँच हो उठता है।

यशोदाजी ने कहा 'अरे सखी! मैं लाला से रोज कहती हूँ कि जल्दी आना, किन्तु वह अँधेरा हो जाने पर आता है। घर में तीन बजने के बाद मुझे कुछ सूझता नहीं, उसे देखे बिना मेरा मन मानता ही नहीं, मैं तो बाहर जाकर पागल जैसी बैठ जाती हूँ और उसकी प्रतीक्षा करती हूँ। लाला को आने में बहुत देर हो जाती है।' तब गोपी कहती है माँ! वे तो वहाँ से जल्दी चल पड़ते हैं, किन्तु रास्ते में बहुत देर हो जाती है। माँ! इस गोकुल के व्रजवासियों को विश्वास हो गया है कि तुम्हारा कन्हैया परमात्मा है। माँ! तुम्हारे देखते-देखते कोई कन्हैया को वन्दन नहीं करता। यशोदा माँ देखे और कोई उसके लाला को वन्दन करे, यह उन्हें अच्छा नहीं लगता। वे कहती हैं, 'यह मेरा पुत्र है। इसके पैर क्यों पड़ते हो? यह तुम्हारा बालक है। तुम इसे आशीर्वाद दो।' गोपियाँ कहती हैं, मेरी सासुजी का एक नियम है कि जिस रास्ते श्रीकृष्ण आने वाले हों, उस रास्ते पर

खड़ी रहती हैं। उस रास्ते के एक ओर बूढ़ी स्त्रियाँ खड़ी रहती हैं और दूसरी ओर बूढ़े लोग खड़े रहते हैं। सबेरे जब वे गाय लेकर जाते हैं तब उन्हें उतावली होती है। वे दौड़ते हुए जाते हैं, किन्तु जब सायंकाल होती है, लौटते हैं तब वे थके होने के कारण धीरे-धीरे चलते हैं। माँ! कन्हैया जैसा किसी को रास्ता चलना नहीं आएगा। लाला का सब मंगलमय है। वह बाँसुरी बजाता हुआ चलता है। रास्ते में किसी की ओर नजर कर गाल में स्मित हास्य करते हुए जिसे देखता है, उसे बड़ा आनन्द मिलता है कि मुझे देखकर लाला ने स्मितहास्य किया। वह सारे गाँव को प्राणों से भी प्यारा लगता है। वह एक-एक से पूछता है कि काकी तुम्हारी तबीयत तो ठीक है। बुढ़ियों को बहुत आनन्द होता है कि मैं लाला की काकी हूँ। लाला मेरा बहुत ख्याल रखता है। माँ! बहुत-सी बुढ़ियाँ तो अपनी नजर उतारती हैं। कुछ गोपियाँ रास्ते में लाला को तिलक करती हैं और उसकी आरती उतारती हैं। वे किसी को नजर से देखता है और किसी से दो शब्द बोलता है, किसी को देखकर स्मित करता है। इस प्रकार वह सबको आनन्द देता है। इससे सब प्रसन्न हो जाते हैं। इसीलिए उसे देर हो जाती है।

एवंविधा भगवतो या वृन्दावनचारिणः।
वर्णयन्त्यो मिथो गोप्यः क्रीडास्तन्मयतां ययुः॥

(१०-२१-२०)

गोपियाँ लाला की बात करती हैं और उसकी बात करते-करते उनकी समाधि लग जाती है। गंगा-तट पर सन्त-समाज में शुकदेवजी महाराज गोपियों का बखान करते हैं। बड़े-बड़े योगी प्राणायाम-प्रत्याहार कर मन को शान्त करते हैं किन्तु गोपियाँ तो उघड़ी आँखों द्वारा नाक पकड़े बिना लाला की बात करते-करते जगत् को भूल जाती हैं। तन्मयता ययुः-

वेणुगीत में ब्रह्मचारिणी गोपियों की कथा है यज्ञपत्नियाँ ही गृहस्थ गोपियाँ हैं। गोवर्धन लीला में वानप्रस्थ गोपियों को कथा है और रासलीला में संन्यासिनी गोपियों की कथा है। संन्यासिनी का अर्थ भगवा वस्त्र धारिणी नहीं। इकतीसवें अध्याय में श्लोक है-

पतिसुतान्वयभ्रातृ बान्धवा नतिविलंध्य तेन्त्यच्युतागताः।

इस श्लोक से गोपियों का संन्यास सिद्ध होता है। जो परमात्मा के लिए सारे सुखों का न्यास या त्याग करे, वह संन्यासी है।

वेणुगीत में ब्रह्मचारिणी योगियों की कथा है। परमात्मा श्रीकृष्ण की आकर्षण-शक्ति अलौकिक है। परमात्मा समस्त जीवों को आकर्षित करने के लिए बाँसुरी बजाते हैं। बाँसुरी से दिव्य मधुर ध्वनि निकलती है। उसके द्वारा परमात्मा समस्त जीवों को बुलाते हैं, "तुम यहाँ आओ। मैं

ही सच्चा आनन्द हूँ। आज तुम्हारे लिए मेरे मन में प्रेम का उफान आया है। मैं तुमको आत्मस्वरूप का दान करने के लिए बुलाता हूँ।''

आज हजारों वर्ष बाद लाला की बात सुनकर हमें आनन्द आता है, तो फिर गोपियाँ उसे प्रत्यक्ष देख उसकी बाँसुरी सुनकर समाधिस्थ हो जाती हों तो आश्चर्य क्या? चाहे कैसा जीव हो, उसे श्रीकृष्ण-कथा सुनने में आनन्द आता है। राजस, सात्विक किसी भी प्रकृति का जीव हो, मनुष्य हो उसे इस कथा में आकर्षण होता है और इस कथा में वह अनायास ही जगत् को भूल जाता है। परमात्मा श्रीकृष्ण सभी शक्तियों से क्रीड़ा करते हैं। इसलिए श्रीकृष्ण अवतार नहीं हैं, अवतारी परमात्मा हैं। श्रीकृष्ण के विराजित होने पर परमात्मा ने जो दिव्य शक्ति प्रकट की है, वही दिव्य शक्ति कृष्ण-कथा में है। यदि परमात्मा के पास जाना हो, तो मन से संसार का सम्बन्ध छोड़ना पड़ेगा। हमारा जीव जगत् का नहीं है, यह ईश्वर का है। यह ईश्वर का होते हुए भी अपना स्वरूप भूल गया है और जगत् का बन गया है। संसार के साथ जीव का सम्बन्ध सच्चा नहीं है, झूँठा है। जीव को अपने पास बुलाने के लिए परमात्मा बाँसुरी बजाता है बाँसुरी नादब्रह्म का स्वरूप है। जब नादब्रह्म और नामब्रह्म एक हो जाते हैं, तब परब्रह्म प्रकट होता है।

एकबार श्रीकृष्ण को भूख लगी। उस समय बालकों ने कहा, ''लाला, आज हम लोग कुछ लाए नहीं हैं।'' श्रीकृष्ण ने कहा, ''ब्राह्मण पूड़ी बनाते हुए दिखाई दे रहे हैं। वहाँ तुम जाओ। वे तुमको कुछ दे देंगे।'' बालक ब्राह्मणों के पास गए। ब्राह्मण भाँग के नशे में चूर पड़े थे। उन्होंने बालकों को कुछ नहीं दिया, यज्ञ में आहुति डालने से ही यज्ञ होता है। वे गरीब बालकों को कुछ दे देंगे, तो कोई हर्ज नहीं था। बालकों ने फिर माँगा। इस पर एक ब्राह्मण ने क्रोधित होकर उसे डण्डा दिखाया। लक्ष्मीजी को यह देखकर बुरा लगा। उन्होंने ब्राह्मणों को शाप दिया, ''तुमने मेरे बालकों को डण्डा दिखाया है। इसलिये तुम भी डण्डा और लोटा लेकर भटकते रहोगे।''

जब इसकी खबर ब्राह्मण-पत्नियों को पड़ी, तब वे स्वादिष्ट भोजन बनाकर श्रीकृष्ण के पास ले गईं और उन्हें खिलाया। इससे श्रीकृष्ण को आनन्द हुआ। परमात्मा ने इस प्रकार यज्ञ-पत्नियों का उद्धार किया।

६५– लाला का ठाकुरः जागती ज्योति

अब गोवर्धन-लीला आरंभ होती है। यह लीला बहुत मधुर है। गोवर्धन शब्द पर थोड़ा विचार करें। संस्कृत में 'गो' शब्द के अनेक अर्थ हैं। 'गो' का अर्थ उपनिषद-सर्वोपनिषदो गावो। 'गो' का अर्थ गाय, धरती, ज्ञान इन्द्रिय। गोवर्धन अर्थात् ज्ञान और भक्ति को बढ़ाने वाली जो

लीला है, उसे ही गोवर्धन-लीला कहते हैं। गोवर्धन-लीला के बाद रासलीला आती है। जब ज्ञान और भक्ति की अतिशय वृद्धि होती है, तभी देहाभिमान छूटता है और रासलीला में प्रवेश मिलता है। तुम ज्ञान और भक्ति बढ़ाने का प्रयत्न करो। लोग अपनी आमदनी बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं। यह अच्छा है। तुम भक्ति बढ़ाने का प्रयत्न करो। अपने मन को बारंबार देखो, ''मन सुधरता है या बिगड़ता है? भक्ति घटती है या बढ़ती है? दो महीने पहले जैसा धन था, वैसा आज है या नहीं? ज्ञान-भक्ति की वृद्धि करना,'' ज्ञान-भक्ति की वृद्धि के लिए क्या करना चाहिए? यह एक स्वभाविक प्रश्न है। लोग अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए हवा खाने जाते हैं, हवा-परिवर्तन करने जाते है। जहाँ का हवा-पानी अच्छा हो, वहाँ रहने से शक्ति बढ़ती है। इसलिए भक्ति वृद्धि के लिए कुछ दिन घर छोड़ो।

हमारे शास्त्रों में लिखा है कि गृहस्थ बारहों महीने घर पर रहे, यह अच्छा नहीं है। एक दो महीने घर छोड़कर गंगा-तट या यमुना-तट के किसी तीर्थ में रहकर शुद्ध होना चाहिए। क्योंकि गृहस्थ का घर भोगभूमि है। गृहस्थ के घर में काम के परमाणु उड़ते हैं। ये परमाणु मन को बिगाड़ते हैं। इसलिए घर में भक्ति नहीं हो सकती। कसाई के घर घृणा पैदा होती है, हिंसा होती है। इसलिए वहाँ के परमाणु हिंसक होते हैं। वहाँ कभी सात्विक भाव नहीं जगेगा। मन्दिर में जाने पर कुछ सात्विक भाव जगता है, वहाँ की भूमि भक्ति में थोड़ा साथ देती है। बारहों महीने घर पर मत रहना। एक दो महीना ऐसे तीर्थ में जाकर रहो, जहाँ सन्त-महात्मा वास करते हों। यदि सन्त कुछ न बोले, तो भी उसके पास जाकर बैठे रहना। सन्तों का मौन भी ज्ञान है—गुरोस्तु मौन व्याख्यानम्।

यदि सन्त चुपचाप बैठे हों, तो भी बहुत-सा उपदेश देते हैं। तुम किसी ऐसे विरक्त साधु के पास जाकर बैठो, जिसे भक्ति का रंग लगा है, जिसे संसार का सुख तुच्छ लगता है। उसका सत्संग करने की बड़ी आवश्यकता है। गृहस्थ का धर्म है कि बारह महीने में एक दो महीने भी किसी तीर्थ में रहे और सात्विक पवित्र जीवन गुजारे। ऐसी कोई सात्विक भूमि ढूँढ़कर वहाँ रहो, एकान्त में बैठकर साधना करो। प्रवृत्ति का विषयानन्द छोड़कर निवृत्ति या एकान्त में बैठकर भक्ति करो तो ही भक्ति बढ़ती है। कुछ लोग ऐसे होते हैं, जिन्हें भगवान् के दर्शन की इच्छा होती है; किन्तु सांसारिक प्रवृत्ति छोड़ने की इच्छा नहीं होती। कुछ लोग ऐसा सोचते हैं कि संसार के सुख-भोग में ही भगवान् मिल जाएँ तो अच्छा है। यह होना असम्भव है। भगवान् के लिए लौकिक सुख छोड़ना ही पड़ता है। इसलिए प्रवृत्ति छोड़कर एकान्त में बैठो। वहाँ बैठकर ऐसी साधना करो, 'मैं और मेरे भगवान् को छोड़कर यहाँ कोई तीसरा न आये।'

एक गृहस्थ के घर दो कन्यायें थीं। एक कन्या की शादी एक किसान के घर और दूसरी की शादी एक कुम्हार के घर हुई थी। दोनों कन्याओं का विवाह एक ही गाँव में हुआ था। कन्याओं का समाचार बहुत दिनों तक न मिला, तो उनका बाप हाल-चाल लेने के लिए उस गाँव में गया। वह कुम्हार के घर वाली कंन्या से पहले मिलने गया। वहाँ जाकर उसने पूछा, 'बेटी तुम्हें कोई तकलीफ तो नहीं है? घर में कोई अड़चन तो नहीं है?' कन्या ने कहा, 'पिताजी, ये सब मिट्टी के बर्तन बनकर तैयार हो गये हैं, किन्तु ये अभी कच्चे हैं। कल से हमारी भट्टी का काम शुरू होगा और पन्द्रह-बीस दिन तक चलेगा। मैं भगवान् से रोज प्रार्थना करती हूँ कि इन बर्तनों के पकने के बाद बरसात आए। इन दिनों में बरसात का एक छींटा भी न पड़े। अन्यथा हमारी सारी मेहनत पर पानी फिर जाएगा। इन बर्तनों के पक जाने पर बरसात भले ही आए। पन्द्रह-बीस दिन तक बरसात न आए तो सारा वर्ष सुख से बीतेगा।'

बाप उस कन्या के घर से उठकर जिस कन्या की शादी किसान के घर में की थी, उसके घर मिलने गया। बाप ने बेटी से पूछा 'तुम्हारा काम कैसा चल रहा है?' कन्या ने कहा 'पिताजी बोवाई का सारा काम हो गया है। मैं तो भगवान् से प्रार्थना करती हूँ कि अब जल्द ही जोर की बरसात आ जाए तो अच्छा हो। इन सात-आठ दिनों में बरसात आ जाए तो सारा वर्ष आनन्द से बीतेगा। यदि आठ-दस दिन में बरसात न आई तो बहुत तकलीफ होगी। यह भी चिन्ता होगी कि क्या खायें, बेचारे बाप की कैसी दशा है? बरसात पड़े तो कुम्हार के घर जो कन्या ब्याही गई है, वह दुःखी हो और बरसात न पड़ने पर किसान के घर जो कन्या ब्याही गई है वह दुःखी होगी। तात्पर्य यह है कि दोनों कन्याएँ सुखी नहीं होने वाली हैं। उनमें एक तो दुःखी होगी ही।

थोड़ा विचार करो ख्याल में आएगा कि यह तुम्हारी ही कथा चल रही है। इस जीव की दो कन्याएँ हैं। एक कन्या का नाम प्रवृत्ति है और दूसरी का नाम निवृत्ति है। ये दोनों कन्याएँ एक साथ कभी सुखी नहीं होने वाली हैं। दोनों में से एक तो दुःखी होने ही वाली है। प्रवृत्ति में विषयानन्द और निवृत्ति में भजनानन्द मिलता है। जीव दोनों आनन्द लेना चाहता है। उसे विषयानन्द छोड़ना नहीं है और भजनानन्द लेना है। फलतः कोई लाभ हाथ में नहीं आता। विषयानन्द छोड़ना ही पड़ेगा, मन को समझाकर उसे विषय से विमुख करना ही पड़ेगा। इसलिए अब प्रवृत्ति का विषयानन्द छोड़ो। खूब समझकर प्रवृत्ति छोड़नी है। कितने ही लोग प्रवृत्ति तब छोड़ते हैं, जब ब्लड प्रेशर बढ़ जाए और डाक्टर उन्हें मूर्ख कह दे। शरीर बिगड़ जाने पर प्रवृत्ति छोड़ने का कोई विशेष अर्थ नहीं। शरीर में शक्ति हो और बाजी तुम्हारे हाथ में हो तो प्रभु को खुश करो। शरीर अस्वस्थ होने के बाद या शरीर दुर्बल होने पर भगवान् की भक्ति नहीं होती। इसके बाद शरीर की ही अधि

क भक्ति करनी पड़ती है। शरीर में शक्ति रहते-रहते प्रवृत्ति घटाते जाओ। इस समय प्रभु ने जो दिया है, उसे बहुत बढ़ाने की इच्छा मत करो। हमारे शास्त्रों में तो लिखा है कि पुत्र यदि योग्य है, तो कुछ अधिक संचय करने की जरूरत नहीं है। पुत्र के योग्य होने का अर्थ है कि भूखे नहीं मर सकता। वह कमाकर खा लेगा। उसके लिए अधिक संचय करने की आवश्यकता नहीं। यदि पुत्र नालायक हो, अयोग्य हो तो उसके लिए भी अधिक संचय करने की आवश्यकता नहीं। उसके लिए यदि बहुत कुछ संचय करो, तो भी वह उड़ा देगा, दिवाला निकाल देगा, दुःखी होगा। योग्य के लिए भी बहुत संचय करना वृथा है। विवेक से कुछ संचय करो। ऐसा करना ठीक है किन्तु प्रवृत्ति को विषयानन्द समझकर छोड़ते जाओ और एकान्त में बैठने की आदत डालो।

गोवर्धन लीला अर्थात् ज्ञान-भक्ति को बढ़ाने वाली लीला। व्रजवासी लोग अपना घरबार छोड़कर गिरिराज महाराज के चरणों में आश्रय ले चुके हैं। गोवर्धन-लीला में वर्णन आता है कि व्रजवासियों के गिरिराज-शरण में जाने के बाद इन्द्रराज ने मूसलाधार वर्षा की है। इन्द्र राजा अर्थात् इन्द्रियों के अभिमानी देव! देव भी प्रायः विघ्न पैदा करते हैं। इसीलिए उपनिषदों में देवों को स्तुति का विधान है। यदि हम एकान्त में बैठें, तो कभी-कभी हमारी इन्द्रियाँ वासना की तीव्र वर्षा करती हैं। इसलिए एकान्त में बैठने पर कभी ध्यान में या भक्ति में जल्दी से आनन्द नहीं आएगा। प्रायः इन्द्रियाँ एकान्त पाकर अधिक उछूँखल हो जाती हैं, भक्ति में आनन्द न आने पर मन धोखा देता है, मन अपने भोगे हुए सुखों का स्मरण करता है, आगे भोगे जाने वाले सुखों पर विचार करता है। प्रवृत्ति छोड़ने के बाद उसके संस्कार मन को चंचल बना देते हैं। निवृत्ति में ब्रह्मानन्द-भजनानन्द न मिलने पर प्रवृत्ति का विषयानन्द फिर भोगने का लालच जीव को व्यग्र बना देता है। कुछ लोग फिर से वही पाप कर बैठते हैं। एकान्त में बैठने पर जब इन्द्रियाँ वासना की बरसात करती हैं; तब जीव घबरा उठता है। उस समय घबराने की नहीं, अपितु मन को समझाने की आवश्यकता है कि हे मन, तू ने विषयानन्द का अनेक बार लाभ लिया है, किन्तु आज तक शान्ति नहीं मिली। अब तो भक्ति में आनन्द न आए तो भी मुझे भक्ति ही करनी है। मुझे अब किसी तरह भक्ति छोड़नी नहीं है।

वासना की बरसात दूध के उफान के समान है। यदि दूध में थोड़ा उफ़ान आए और तुम उस पर थोड़ा पानी डाल दो तो वह उफान बैठ जाता है। इसी प्रकार वासना की बरसात की दशा है। एकान्त पाकर इन्द्रियों का त्रास बढ़ जाने पर सावधान रहो। उस समय वासना की बरसात सहन करो। तभी तुम सुखी बनोगे। तुमको भगवान् भक्ति में आनन्द देंगे। जो वासना की बरसात सहन करता है, उसे क्या करना चाहिए? यह एक प्रश्न है। जिसका उत्तर यह है कि उसे स्वरूप-सेवा का आधार लेकर मन और आँख को भगवान् के स्वरूप में स्थिर कर देना चाहिए। यदि भगवान्

का स्वरूप मन से ओझल हो जाए तो मन को भगवान् के रूप में जोड़ दो। जो अपने मन को मन्त्र और मूर्ति दोनों जगहों में लगा देते हैं, जो नाम-सेवा और स्वरूप-सेवा दोनों का आधार लेता है वही वासना की बरसात सहन कर सकता है। वासना की बरसात सहन करने के लिए इसे छोड़ कोई उपाय नहीं है। भक्ति में जल्दी आनन्द नहीं आता। जब भक्ति में आनन्द आ जाएगा, तब वह स्थिर हो जाएगा।

इन्द्र राजा ने जब बरसात बरसाना आरम्भ किया तब प्रभु ने अपनी तर्जनी अँगुली पर गिरिराज गोवर्धन को धारण कर लिया है। उन्होंने गिरिराज को अँगूठे पर नहीं, अपितु तर्जनी उँगली पर ही क्यों धारण कर रखा है? इसका कारण यह है कि तर्जनी उँगली सत्त्वगुण का स्वरूप है। सत्त्वगुण ब्रह्म सम्बन्ध स्थापित कराता है। ब्रह्म-सम्बन्ध के टिकाए रखने से और सत्वगुण के बढ़ाने से वासना की बरसात सहन की जा सकती है। संयम से सत्वगुण बढ़ता है। इसके लिए सादा भोजन करो। पवित्र ग्रंथों का पठन करो और सत्व प्रधान साधुओं का सत्संग करो।

ज्ञान-भक्ति बढ़ाने वाली लीला ही गोवर्धन-लीला है। ज्ञान-भक्ति को बढ़ाने के लिए गोवर्धन लीला में एक रहस्य वर्णित किया गया है। पूजा करने वाले श्रीकृष्ण हैं और श्रीकृष्ण ही गिरिराज के शिखर में गोवर्धननाथ के स्वरूप में भी प्रकट हुए हैं। इस प्रकार जब पूज्य और पूजक एक हो, सेव्य और सेवक एक हों, भक्त और भगवान् एक हों, तो ही भक्ति की वृद्धि होती है। यदि भक्ति बढ़ाने की इच्छा हो तो भगवान् से एकाकार हो जाओ। ब्राह्मण पूजा करते समय अंग-न्यास और कर-न्यास करते हैं। एक-एक अंग में प्रभु की स्थापना करने के बाद पूजा होती है। जो प्रभु के समान नहीं होता, उसकी पूजा को प्रभु ग्रहण नहीं करते।

देवो भूत्वा यजेत् देवं, शिवो भूत्वा यजेत् शिवम्

भगवान् के साथ एकाकार होने का अर्थ है भगवान् की इच्छा में अपनी इच्छा का मिलाना। जीवन में सुख-दुःख का, लाभ-हानि का, मान-अपमान का चाहे जैसा अवसर आए, उसे अपना मन शान्त रखकर सहन करो। तुम भगवान् की पूजा करोगे, तो भी बहुत से लोग तुम्हारी व्यर्थ निन्दा करेंगे। उससे तुम्हें घबराना नहीं चाहिये। क्योंकि सब काम भगवान् की इच्छा से ही होते हैं। ऐसा मान लेना कि सब कुछ भगवान् की इच्छा से होता है और मेरी निन्दा भी भगवान् की इच्छा से हो रही है। भगवान् की इच्छा ही मेरी इच्छा है, यह मानकर काम करना। यदि भगवान् की इच्छा से तुम्हारी इच्छा भिन्न होगी तो भक्ति नहीं बढ़ेगी। भगवान् की इच्छा से जो कुछ होगा वह तुम्हारे कल्याण के लिए होगा, ऐसा प्रभु में विश्वास करना। भगवान् को किसी का बुरा करना नहीं आता। कोई जीव बिगाड़ सकता है; किन्तु प्रभु किसी का नहीं बिगाड़ता। कदाचित भक्ति करने से हानि

भी हो, दु:ख का अवसर भी आए, तो भी प्रभु को मत कोसना। ऐसी श्रद्धा रखना कि भगवान् की इच्छा से जो हुआ है, वह अच्छा ही हुआ है। ऐसी निष्ठा पैदा करना कि मेरे भगवान् को जो पसन्द है, वह मुझे पसन्द है। पूज्य और पूजक के एक हो जाने पर ही भक्ति बढ़ती है। मन से भगवान् के साथ एकता स्थापित करो, तो तुम्हारी भक्ति बढ़ेगी। जब ज्ञान–भक्ति खूब बढ़ती है, तब जीव को रासलीला में प्रवेश मिलता है। रासलीला जीव और ईश्वर के मिलने की कथा है। जब ज्ञान–भक्ति की वृद्धि होती है और देहाभिमान ध्वस्त होता है, तब जीव परमात्मा से मिलता है और तब गोवर्धन लीला के बाद रासलीला आती है। पहले गोवर्धन लीला आती है। इसलिए ज्ञान और भक्ति बढ़ाने का प्रयत्न करो। इस प्रकार हमने थोड़ी प्रस्तावना की है। श्रीशुकदेवजी महाराज हमें बताते हैं कि श्रीकृष्ण के सातवें वर्ष पर गोवर्धन लीला हुई है।

भगवानपि तत्रैव बलदेवेन संयुतः।
अपश्यन्निवसन् गोपानिन्द्रयागकृतोद्यमान्।। (१०-२४-१)

नन्दबाबा प्रतिवर्ष इन्द्र का यज्ञ करते थे। इन्द्र के यज्ञ की तैयारी होने लगी है। सात वर्ष के श्रीकृष्ण नन्दबाबा से पूछते हैं, 'बाबा, यह किसकी तैयारी कर रहे हो? नन्दबाबा ने उत्तर दिया, 'बेटा, इन्द्र सब देवों के राजा हैं। इन्द्र राजा को प्रसन्न करने के लिए हम सब यज्ञ करते हैं। उनके प्रसन्न होने पर बरसात होती है और अन्न पैदा होता है। इन्द्र बरसात का आधार है।''

प्रभु ने इन्द्र का गर्व चूर करने के लिए लीला की है। श्रीकृष्ण नन्दबाबा को समझाते हैं, बाबा, आप इन्द्र की पूजा करते हैं यह मुझे पसन्द है। मैं इन्द्र को मानता हूँ; किन्तु आप जो यह कहते हैं कि इन्द्र सभी देवों का राजा है, यह कथन ठीक नहीं है। बाबा मैंने ऐसे सुना है कि जो सौ अश्वमेध कर सकता है, वह इन्द्र बन सकता है। इन्द्र स्वर्ग का राजा है, वह ईश्वर नहीं है। जिसने इस इन्द्र को स्वर्ग का राज्य दिया है वह इन्द्र का राजा या इन्द्र का इन्द्र कोई और है बाबा, इन चार दिशाओं के चार मालिक देव हैं। पूर्व दिशा के मालिक देव जगन्नाथ स्वामी, दक्षिण दिशा के मालिक देव श्रीरामेश्वर भगवान्, पश्चिम दिशा के मालिक देव श्रीद्वारकानाथ हैं और उत्तर दिशा के मालिक देव बद्रीनाथ हैं। बद्रीनारायण में उत्तर दिशा समाप्त हो जाती है। उसके आगे जाने पर हिमालय आ जाता है। पश्चिम दिशा की समाप्ति द्वारका में होती है। उससे आगे बढ़ो तो समुद्र आ जाता है। दक्षिण दिशा में रामेश्वर से आगे जाने पर कन्याकुमारी में समुद्र का संगम होता है, समुद्र एक जगह मिलते हैं। वहाँ दक्षिण दिशा समाप्त होती है। पूर्व दिशा की समाप्ति जगन्नाथपुरी में होती है। इन चार दिशाओं के चार मालिक देव हैं। बाबा, हमारा यह गोवर्धननाथ सब देवों का राजा है। इन्द्र को स्वर्ग का राज्य देने वाले गोवर्धननाथ ही हैं। बाबा आप इनकी पूजा कीजिए। आप

अनेक वर्षों से इन्द्र की पूजा करते हैं। क्या कभी उनका दर्शन हुआ है? बाबा ने कहा, हमें इन्द्रदेव का दर्शन कभी नहीं हुआ है।

कन्हैया ने कहा, वह इन्द्र बड़ा अभिमानी है जो आपके अनेक वर्षों से पूजा करने पर भी दर्शन नहीं देता। मेरे गोवर्धननाथ की पूजा करो, तो ये तुमको अवश्य दर्शन देंगे। मुझे उनका दर्शन हुआ है। बालकों ने कहा कि लाला का ठाकुर तो जागती ज्योति है। गोवर्धननाथ की पूजा की जाए तो जो माँगो, वह प्रसाद मिल सकता है।

नन्दबाबा ने कहा, बेटा, गोवर्धननाथ की पूजा करने में कोई हर्ज नहीं है, किन्तु यदि इससे इन्द्र नाराज हो गया तो क्या होगा? लाला ने कहा, इन्द्र नाराज होकर हमारा क्या बिगाड़ेगा? मेरा गोवर्धननाथ सबकी रक्षा करेगा। किसी का बाल भी बाँका न होगा। इन्द्र अभिमानी है। गोवर्धननाथ जरा भी अभिमानी नहीं हैं। बाबा, क्या आपने आज दिन तक कभी गोवर्धन की पूजा की है? नन्दबाबा ने कहा कि कभी हमने गोवर्धननाथ की पूजा नहीं की है। यह सुनकर कन्हैया बोला, पूजा न करने पर भी गोवर्धननाथजी हमारी रक्षा करते हैं और प्रसाद देते हैं। बाबा, मैं एकबार गायें लेकर अपने मित्रों के साथ जंगल में घूम फिर रहा था। रास्ते में दो बड़े-बड़े बाघ दिखाई दिए। बाबा, मुझे तो बहुत डर लगा। उसी समय इस गिरिराज की गुफा से चार हाथ वाला एक देव बाहर निकला और उसने बाघों को मार डाला। जब मैं उनके पैरों पड़ा, तो उन्होंने मेरे माथे पर हाथ रखा और कहा कि गिरिराज में रहने वाला गोवर्धननाथ मैं ही हूँ। बेटा तू मुझे बहुत प्यारा लगता है तुझे देखते ही मुझ में प्रेम जागता है। मैं तुझे अपनी सारी शक्ति देना चाहता हूँ। गोवर्धननाथजी का मुझ को आशीर्वाद मिला है। मुझ पर उनकी बहुत कृपा है। बाबा आप गोवर्धननाथ की पूजा कीजिए। नन्दबाबा ने कहा हम गोवर्धननाथ की पूजा करें, किन्तु हम उसकी कोई विधि जानते नहीं हैं। फिर किस प्रकार उनकी पूजा करें? कन्हैया बोला, बाबा मैं विधि जानता हूँ नए वर्ष के दिन पूजा करूँगा। मुझे बहुत अन्नकूट करना है। बाबा उस दिन सारे गाँव को भोजन कराना है और प्रसाद देना हैं बाबा, मैं सच कहता हूँ। मेरे ठाकुरजी किस प्रकार भोजन करते हैं यह उस दिन आप सबको दिखाऊँगा। यह सुनकर सभी सहमत हो गए और लाला ने सभी को सुन्दर भोजन-सामग्री लाने को कहते हुए बताया कि जिसके घर की भोजन सामग्री ठाकुरजी ग्रहण करेंगे उसके घर लक्ष्मीजी और अन्नपूर्णाजी विराजेंगी।

व्रजवासियों ने बहुत ही पवित्रता से सुन्दर सामग्री तैयार की है। नए वर्ष के दिन सभी गिरिराज महाराज के चरणों में आ गए हैं। शास्त्रों में वर्णन है कि गोवर्धननाथ के हजार मुख हैं, अनेक मुख हैं। उनका प्रधान मुख जतीपुरा में है। मथुरा से २० मील दूर जतीपुरा गाँव है। वैष्णव

वहाँ सारे दिन ठाकुरजी का अभिषेक करते हैं। सायंकाल भगवान् का शृंगार होता है। इसके बाद भगवान् भोजन करते हैं। तुम यहाँ मन से गिरिराज महाराज के दर्शन करो और ऐसी भावना करो कि मैं इस समय गोवर्धननाथ के चरणों में बैठा हूँ तो मन से किए पुण्य का फल मिलता है। जिस प्रकार मन से किए गए पाप की सजा मिलती है, उसी प्रकार मन से भगवान् के दर्शन और उनकी पूजा करने पर फल मिलता है। गोवर्धन का स्वरूप अत्यंत दिव्य है। ग्वालों के साथ सभी वृजवासी वहाँ आए हैं और भोजन सामग्री गाड़ियों में भरकर लाए हैं। वे नए वर्ष पर गोवर्धननाथ की पूजा करते हैं। श्रीकृष्ण सभी देवताओं का मान करते हैं। जो सबको मानता है वह बड़ा होता है। गोवर्धन पूंजा के आरंभ में लाला ने कहा, "पहले गणपति महाराज की पूजा करनी पड़ेगी। गणपति पूजा के बिना गोवर्धननाथ की पूजा नहीं हो सकती। गणपति महाराज विघ्नकर्ता हैं और वे विघ्नहर्ता भी हैं।

ओम् गणानान्त्वा गणपति गुं हवामहे,
प्रयाणान्त्वा प्रियपति गुं हवामहे,
निधिनान्त्वा निधिपति गुं हवामहे,
वसोमम आहमजानिगर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्।

वेदों में गणपति महाराज की महिमा का बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है। गणपति महाराज की सभी पूजा करते हैं। पून्याहवाचन हुआ है। इसके बाद गोवर्धननाथ की पूजा करते हैं। ब्राह्मण वेद-मंत्र बोलते हैं और वैष्णवजन प्रेम से प्रभु-नाम का संकीर्तन करते हैं सब गोवर्धननाथ पर दूध से अभिषेक करते हैं। अभिषेक में बहुत सावधान रहना होता है। दूध की धारा अखण्ड रहनी चाहिए। खण्डित नहीं होनी चाहिए। दूध की धारा खण्डित होने पर अभिषेक भंग हो जाता है। क्या दूध की धारा खण्डित होने पर ठाकुरजी गुस्सा हो जाते होंगे ऐसा नहीं है, ठाकुरजी गुस्सा नहीं करते। वे बड़े प्रेमालु हैं। दूध की धारा खण्डित हो या न हो, किन्तु तुम्हारे मन की धारा खण्डित न होनी चाहिए। वह मन की धारा भगवान् के चरणों में पड़नी चाहिए। मन सतत परमात्मा का चरण-चिंतन करे, स्मरण करे यही अभिषेक का महत्व है। अभिषेक करते समय मन में कोई लौकिक विचार नहीं आना चाहिए। दूध की धारा खण्डित होने पर भगवान् को बुरा नहीं लगता। क्योंकि भगवान् कहते हैं कि तेरे मन की धारा मेरे चरणों में पड़ती है। ब्रजवासी दूध से अभिषेक करते हैं।

श्रीयमुनाजी गिरिराज से दूर हैं! बालक यमुनाजी का जल ले आते हैं। गिरिराज का स्वरूप बहुत विशाल है। बालक थक गए हैं। ठाकुरजी की सेवा करते-करते शरीर थक जाए, खूब पसीना छूटने लगे तो परमात्मा को वंदन करके कहना कि अब मेरे हाथ से कुछ हो नहीं पाता है। यह सुनकर परमात्मा को दया आएगी। मनुष्य पैसे के लिए पसीना बहाता है, लेकिन परमात्मा के लिए

पसीना नहीं बहाता है। बालक थक गये हैं और कहते हैं कि लाला, तेरे ठाकुरजी तो बहुत बड़े हैं। हम लोग तो थक गये हैं। लाला ने प्रार्थना की, "हे गोवर्धननाथ, अपने अन्दर से गंगाजी को प्रकट करें।" उसी समय गिरिराज में से खल-खल, खल-खल करती हुई गंगाजी प्रकट हो गईं। उन्हें मानसी गंगा कहते हैं।

गंगा-जल से गोवर्धननाथ का खूब अभिषेक किया गया है, स्नान कराया गया है। इसके बाद श्रीकृष्ण उनका सुन्दर शृंगार करते हैं। उनको पीला पीताम्बर पहनाया गया है। केसरी अंगोछा कन्धे पर डाला गया है। लाला ठाकुरजी का शृंगार करें तो फिर पूछना ही क्या? लाला ने इस संसार को कैसा बनाया है! सभी के चेहरे अलग-अलग हैं। एक का चेहरा दूसरे से नहीं मिलता-जुलता। यदि वह पूरा-पूरा मिल जाए तो संसार में गड़बड़ी पैदा हो जाए। मोर का अण्डा सफेद होता है। उस अण्डे में भगवान् नए-नए रंग कैसे भर देते हैं। मोर को किस प्रकार रंगबिरंगा बनाया गया है। यह जगत् उसी प्रभु का सूचक है। यह सबसे बड़ा चमत्कार है। आज श्रीकृष्ण शृंगार करते हैं। गोवर्धनाथ बहुत प्रसन्न दिखाई देते हैं। आज परमात्मा के दर्शन में बहुत आनन्द आता है। बालक लाला से कह रहे हैं, "कन्हैया ये तेरे ठाकुरजी आज बहुत आनन्दमग्न हैं। ये मुझे देखकर धीरे-धीरे गाल में हँसते हैं।" तुम कभी गोवर्धनाथ का दर्शन करने जाओ तो इस बात को याद रखकर दर्शन करना। ठाकुरजी की आँख बहुत सुन्दर हैं। भगवान् की आँख जगत् को देखने के लिए नहीं हैं, वह बिना आँख के भी देख सकते हैं। भगवान् की आँख जीव के आकर्षण के लिए हैं। दाहिनी ओर खड़े होकर गोवर्धननाथ का दर्शन करने वाले प्रभु की तुम प्रार्थना करो, हे गोवर्धननाथ! मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ, मुझे कुछ माँगना नहीं है। मेरी तीव्र भावना यह है कि एक बार आप मुझ पर नजर कीजिए। तुम दाहिनी ओर खड़े होकर प्रभु से प्रार्थना करो, तो तुम्हें ऐसा प्रतीत होगा कि भगवान् के नेत्र दाहिनी ओर हैं। फिर वहाँ से तुम बाईं ओर आओ और गोवर्धननाथ को मनाओ कि मैं आपकी शरण में आया हूँ। आपने मुझे बहुत सुख दिया है। मैं उसके योग्य नहीं हूँ। मेरी भावना है कि एक बार मुझ पर नजर कीजिए। इस प्रकार तुम बाईं ओर खड़े होकर प्रार्थना करोगे, तो तुमको ऐसी प्रतीति होगी कि ठाकुरजी की आँख बाईं ओर रही है। तुम सामने खड़े रहो, तो भगवान् की नजर सामने रहेगी। इस प्रकार भगवान् नजर देते हैं, भगवान् आँख फिराते हैं। जब नजर मिलती है, तब दर्शन में बहुत आनन्द आता है।

बालक लाला से कहते हैं कि क्या तुम्हारे ठाकुरजी तुमसे बातें करते हैं? लाला ने कहा 'हाँ जो प्रेम से सेवा-पूजा करता है, उसके साथ बातचीत करते हैं, कभी-कभी बोलते हैं। रोज नहीं बोलते।' गोवर्धननाथ को तिलक करने के लिए नन्दबाबा चन्दन का कटोरा ले आए हैं। लाला ने

कहा 'यह कार्तिक का महीना है। इसलिए ठण्डी अधिक पड़ती है। आप लोग चन्दन की अर्चा करेंगे, तो मेरे ठाकुरजी को ठण्डी हो जाएगी। मेरे भगवान् बहुत कोमल हैं। उनकी सेवा प्रेम से करनी है। गर्मी बहुत पड़ती हो और चन्दन से अर्चा करो तो ठाकुरजी को ठण्डक लग जाएगी। वे सब सहन कर लेते हैं, कुछ बोलते नहीं। लेकिन चन्दन की अर्चा करना मुझे पसन्द नहीं।' बालकों ने कहा, 'कन्हैया क्या हम कुमकुम का तिलक करें?' लाला ने कहा कि कुमकुम का तिलक अच्छा होगा, किन्तु तुम सब यदि कुमकुम का तिलक करो, तो कुमकुम ठाकुरजी की नाक पर पड़े। वह कुमकुम यदि श्वास लेते समय अन्दर जाए तो शायद उनको छींक आए? नन्दबाबा ने कहा, कन्हैया, तू किसे समझाता है? क्या तेरे ठाकुरजी को छींक आती है?' लाला ने कहा आप इसे क्या समझते हैं? नन्दबाबा ने कहा, हम इसमें कुछ नहीं जानते। हम तो केवल इतना ही मानते हैं कि यह एक ऊँचा पहाड़ है। लाला ने कहा आज तो आपने कहा सो कहा; फिर कभी ऐसा मत कहिएगा। क्या हम लोग पहाड़ की पूजा करने आए हैं? पूजा जड़ की नहीं होती है, चेतन की होती है। बाबा यह जो पहाड़ जैसा स्वरूप है, यह ठाकुरजी का भौतिक स्वरूप है। ठाकुरजी आध्यात्मिक स्वरूप में तो सबमें विराजमान हैं। मेरे भगवान् का आधिदैविक स्वरूप चार हाथ वाला है। वह कभी प्रत्यक्ष प्रकट होता है। बाबा हम किसी पहाड़ की पूजा करने नहीं आए हैं। ये हमारे प्रत्यक्ष परमात्मा हैं। मेरे ठाकुरजी की नाक से श्वास निकलता है। उसकी परीक्षा आप कर सकते हैं। इससे आपको विश्वास होगा।' लाला ने मजाक किया। उसने अपना एक स्वरूप नन्दबाबा के पास रखा और दूसरे स्वरूप से गिरिराज में प्रवेश किया। नन्दबाबा ने नाक पर उँगली रखी तो गिरिज श्वाँस लेते प्रतीत हुए। नन्दबाबा ने कहा, 'तूने हमें जागती ज्योति दिखाई है। यह तो प्रत्यक्ष परमात्मा है। हम अभी तक इसे नहीं जानते थे।'

सभी व्रजवासियों ने विचार किया कि लाला के हाथ से ही गोवर्धननाथ को तिलक कराया जाए। क्योंकि इसने ही इनके दर्शन कराये हैं। व्रजवासी शङ्खनाद और घण्टानाद करते हैं तथा श्रीकृष्ण उसी समय तिलक करते हैं। चारों ओर श्रीगोवर्धननाथ की जय-जयकार हो रही है। लाला ने ठाकुरजी पर अक्षत चढ़ाने की मनाई की और कहा 'तुम लोग दूसरे देवताओं को अक्षत चढ़ाते हो यह अच्छा है; किन्तु ये तो देवों के देव हैं। तुम इन पर अक्षत चढ़ाओ, तो मेरे ठाकुरजी को कष्ट होगा। अक्षत आँख-कान में जाए और उससे माथे में चोट लगे तो इन्हें कितना कष्ट होगा। ये तो बहुत प्रेमालु हैं, सहन करने वाले हैं; किन्तु तुमको भी सावधान रहना है। लाला के गले में मोती की कण्ठियाँ थीं। प्रभु ने लीला की और कण्ठियाँ तोड़कर मित्रों में बाँट दी। ग्वाले गरीब हैं। बालकों के हाथ में मोती आ गए हैं। वे लाला से कहते हैं कि कन्हैया एक-एक मोती एक-एक

हजार रुपये का होगा, ऐसा हमारा मानना है। मेरे घर में एक भी मोती नहीं है कहो तो यह मोती मैं कण्ठी बनाने के लिए अपने घर ले जाऊँ। लाला ने कहा, सेवा में मन अच्छी तरह लगाओ। यदि तुम इस मोती से मेरे ठाकुरजी को सजाओगे तो तुम्हारे घर के कूँड़े भरे रहेंगे।' यह सुनकर बालकों ने कहा कि तब तो हम इसे ठाकुरजी पर चढ़ाने को तैयार हैं। इस जीव को विश्वास हो जाए कि मुझे कुछ अधिक मिलेगा या मेरे ऊपर प्रभु की कृपा होगी।' इसलिए थोड़ा अपने काम में लूँगा। काम में लेने से अधिक मिलेगा और मुझे लाभ होगा। उसे इस बात का विश्वास है तभी वह मोती निकालता है, नहीं तो कभी अपने गले में से नहीं निकालता। घर में लक्ष्मी विराजेगी इस लालच से ग्वाले गोवर्धननाथ की पूजा मोती चढ़ाकर करते हैं और गोवर्धननाथ की जय बेलते हैं। जय-जयकार होता है।

बालकों ने लाला से पूछा "कन्हैया, अब क्या करना है?" कन्हैया ने कहा कि अब मेरे ठाकुरजी को भूख लगी है। इसलिए भोजन की सामग्री भगवान् के सामने उपस्थित करो। सब भगवान् के सम्मुख सामग्री प्रस्तुत करते हैं और तुलसीजी अर्पण करते हैं। श्रीकृष्ण-लीला अत्यंत मधुर है। श्रीकृष्ण हाथ जोड़कर खड़े हैं और गोवर्धननाथ से प्रार्थना करते हैं, "हे गोवर्धननाथ आप तो सारे जगत् को भोजन कराते हैं। जगत् को भोजन कराने वाले को कौन भोजन करा सकता है। हम ब्रजवासी तो बहुत प्रेम से, पवित्रता से आपके लिए यह सुन्दर सामग्री बनाकर लाए हैं। हे गोवर्धननाथ आप कृपा कीजिए। सबकी भावना है कि आप भोजन ग्रहण कीजिए और हम दर्शन करें। आप प्रत्यक्ष प्रकट होकर भोजन ग्रहण कीजिए।" लाला ने मजाक किया अपना एक स्वरूप नन्दबाबा के पास रखा और दूसरा स्वरूप चतुर्भुज-स्वरूप गिरिराज के शिखर पर गोवर्धननाथ में प्रकट किया। कन्हैया ने ऐसा मजाक किया कि अपने ही अपने चरणों में पड़ रहा है। कन्हैया ने कहा, बाबा यह मेरा ठाकुर है। मैंने आपसे कहा था कि ठाकुरजी का आधिदैविक स्वरूप चार हाथों वाला है।" श्रीकृष्ण को वन्दन करते देखकर सभी वन्दन करते हैं और गोवर्धननाथ से भोजन करने की प्रार्थना करते हैं। गोवर्धननाथजी तो शिखर पर प्रकट हुए और भोजन सामग्री तो पहाड़ की तलहटी में है। गोवर्धननाथ शिखर से अपना हाथ बढ़ाकर भोजन की टोकरियाँ उठाते हैं और प्रसन्न होकर पाते हैं। यह देखकर ग्वाले चकित हो जाते हैं, खुश हो जाते हैं और कहते हैं लाला-लाला, तेरा ठाकुर तो खा रहा है, खा रहा है।" यह सामग्री ठाकुरजी के लिए ही बनाई गई है। एक के बाद एक टोकरी उठाकर गोवर्धननाथ भोजन कर रहे हैं और सभी दर्शन कर रहे हैं।

जो छोटे बालक थे वे कुछ घबरा गए और लाला से कहने लगे "कन्हैया, तेरा गोवर्धननाथ तो अनेक वर्षों के भूखे दिखाई देते हैं। यह तो सब कुछ खाने लगे हैं। यह एक के बाद दूसरी

टोकरी खाली करते जा रहे हैं। यह कितना खाते हैं? लाला, तू तो हमें दिए बिना कभी नहीं खाता और यह तो अकेले ही सब खाते जा रहे हैं! लाला, देखो, इनने सूतरफेनी (एक प्रकार की मिठाई) की टोकरी उठा ली। मुझे तो सूतरफेनी बहुत अच्छी लगती है। क्या मुझे कुछ प्रसाद मिलेगा?" लाला ने कहा मेरा ठाकुर सब खा जाएगा और जितना खाएगा उतना ही प्रसाद भी देगा। बालकों ने कहा कि लाला, तू कहता है कि हम सबको प्रसाद मिलेगा, लेकिन यह तो एक के बाद दूसरी टोकरी खाली करते जा रहे हैं। फिर प्रसाद कैसे मिलेगा? लाला ने कहा "तुम श्रद्धा रखो। मेरे ठाकुरजी जिस घर में भोजन करते हैं, उसमें लक्ष्मीजी अन्नपूर्णा पधारती हैं। तुम लोग अच्छी तरह दर्शन नहीं करते। बाँई ओर लक्ष्मीजी हैं। आज तो सामग्री अधिक है तुम लोग भोजन कराने में जल्दी मत करो शांति रखो।" बालकों ने कहा कि लाला, तेरे ठाकुर भोजन करें तो हमें क्या करना है? लाला ने कहा, चलो, हम सब गिरिराज महाराज की परिक्रमा करें। लाला के कहने के अनुसार सभी व्रजवासी "श्रीकृष्ण-गोविन्द हरे-मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव" कीर्तन करते-करते गिरिराज की परिक्रमा करते हैं। गिरिराज की परिक्रमा करते समय रास्ते में राधा कुण्ड आता है उसकी रज अत्यन्त पावन है।

इसके बाद गोवर्धननाथ की आरती उतारी गई ब्राह्मणों और साधुओं को प्रसाद दिया गया। फिर व्रजबासियों की पंक्ति भोजन करने बैठी है। बालकृष्णलाल परोसने लगे हैं। इस प्रकार मालिक परोसने जाता है और सभी को समझाता है, "यह प्रसाद देवों के लिए भी दुर्लभ है। तुम सब प्रेम से प्रसाद लेना, किन्तु जरा भी छोड़ना मत। इस प्रसाद में ठाकुरजी का अधरामृत टपका है। इसलिए यह अधिक मीठा हो गया है। जो प्रसाद का अपमान करता है, उसे बहुत पाप लगता है। थाली या पत्तल में जरा भी प्रसाद मत छोड़ना। कुछ बालक लाला को अपना मित्र मानते थे। वे लाला से कहने लगे, "कन्हैया तू तो हमें बहुत उपदेश देता है। यदि हम कुछ प्रसाद छोड़ दें, तो क्या होगा?" लाला ने कहा "प्रसाद मत छोड़ना। नहीं तो गोवर्धननाथ रात को स्वप्न में आकर तुझे डंडे से मारेंगे क्योंकि प्रसाद का अपमान प्रभु का अपमान है।" थाली या पत्तल में प्रसाद छोड़ने जैसा कोई पाप नहीं है। लोग अन्न की निन्दा करते थे, उसे बिगाड़ते थे इसलिए मँहगाई हुई है। कभी भी अन्न की निन्दा मत करना, कितने ही लोग बहुत होशियारी दिखाते हैं और ऐसा समझते हैं कि हम अन्न छोड़ देंगे तो भिखारी को खाना मिलेगा। हमें भिखारी को भी जूठा अन्न नहीं देना चाहिए। शास्त्रों में लिखा है कि जो तुम्हारा जूठा खाएगा वह तुम्हारा थोड़ा पुण्य ले जाएगा। इसलिए किसी को उच्छिष्ट या जूठा भोजन नहीं देना चाहिए। यह सुनकर सभी व्रजवासियों को आनन्द हुआ है और प्रसाद लेने के बाद सभी गिरिराज के चरणों में सो गए हैं।

उधर नारदजी इन्द्र के पास पहुँचे और उन्होंने उनसे जाकर कहा, तू किस प्रकार के देवों का राजा है? ग्वाले तेरी पूजा छोड़कर गोवर्धननाथ की पूजा करते हैं। यह सुनकर इन्द्र राजा को क्रोध आ गया। उसने मेघों को आज्ञा दी कि ब्रज पर टूट पड़ो, मूसलाधार बरसात करो और उसे छिन्न-भिन्न कर दो। कार्तिक महीना होने पर भी आकाश में मेघ छा गए। गड़गड़-गड़गड़ गर्जना होने लगी। जोर से बिनौले (तुषार) बरसने लगे। नन्दबाबा बहुत घबरा उठे, व्याकुल हो गए कि गोपियाँ अपने छोटे-छोटे बच्चे लेकर आई हैं। उन्हें कहाँ ले जाएँ? उस समय सात वर्ष के श्रीकृष्ण नन्दबाबा को समझाते हैं, 'बाबा घबराइए मत। मैंने गोवर्धननाथ की पूजा प्रेम से की है। मुझे रात में उनके दर्शन हुए हैं। गोवर्धननाथ ने मुझसे कहा कि तूने सात दिन मेरी पूजा की है। मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ, किन्तु कल से सात दिन तक बहुत बरसात पड़ेगी। फिर भी तुम लोग घबराना मत। कन्हैया, तू मुझे बहुत प्यारा लगता है तेरी तर्जनी उँगली पर मैं फूल जैसा हल्का रहूँगा, तू मुझे उठा लेना। मैं सबकी रक्षा करूँगा। किसी का बाल भी बाँका नहीं होगा।' नन्दबाबा ने कहा कि कन्हैया, यदि तुझे आज्ञा हुई हो तो तू गिरिराज को जल्दी उठा ले। लाला ने कहा, नन्दबाबा, मैं तो तुम्हारा लड़का हूँ। मुझ में कोई ऐसी शक्ति नहीं कि मैं गिरिराज को उठा सकूँ। भीति के बिना प्रीति नहीं होती। सब घबरा उठे सबने गोवर्धननाथ को साष्टाँग वंदन करके कहा, हे गोवर्धननाथ! हम तुम्हारे चरणों में पड़े हैं, हमारी रक्षा करो। 'श्रीगोवर्धननाथ की जय! श्रीगोवर्धननाथ की जय!' इस प्रकार कहकर सब जय-जयकर कर रहे हैं।

लाला ने तलहटी में जहाँ हाथ बढ़ाया वहीं गिरिराज धीरे-धीरे ऊपर उठने लगे।

कन्हैया ने तर्जनी उँगली पर गिरिराज गोवर्धन को उठा लिया और व्रजवासियों को बुलाया, 'तुम सब यहाँ आओ! यहाँ आओ! बिल्कुल घबराना मत। गिरिराज महाराज तुम्हारी रक्षा करेंगे। गाय, ग्वाले और गोपियाँ दौड़कर वहाँ पहुँच गए। आज श्रीकृष्ण गिरिराज-धरण हो गए हैं। यों तो ब्रजवासी प्रतिदिन लाला का दर्शन करते हैं, किन्तु आज का कन्हैया कुछ और ही है। दाऊजी ने शेष स्वरूप धारणकर गिरिराज को चारों ओर से घेर लिया है, जिससे बरसात का एक छींटा भी अन्दर न आ सके। श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र को आज्ञा दी। उनकी आज्ञा से उसने चारों ओर प्रकाश फैला दिया है। उस प्रकाश में सबको गिरिराज-धरण श्रीकृष्ण का दर्शन करने में बड़ा आनन्द आता है। यशोदामैया हाथ से प्यार करती हुई कहती हैं, बेटा तुझे क्या यह बोझ भारी लगता है? लाला ने कहा कि माँ तूने मुझे मक्खन खिलाया है। इससे मुझ में शक्ति आ गई है। तू मेरी चिन्ता मत कर। ग्वालों का स्वभाव बड़ा भोला हैं वे लाला को बालक मानते हैं। कुछ ग्वालों ने विचार किया कि लाला तो सात वर्ष का बालक है। यह पहाड़ इतना बड़ा है! कहीं कोई गड़बड़ी हुई तो क्या

दशा होगी? कुछ व्रजवासियों ने लाठियों से सहारा दिया। एक ब्रजवासी लाला से कहने लगा, 'मैंने गिरिराज को अपनी लाठी पर टाँग लिया है।' यह सुनकर लाला ने कहा, 'तेरी लाठी ऊपर है। इसलिए क्या मेरी उँगली ऊपर नहीं है?' ग्वालमित्र बोले कन्हैया तू, अकेले पहाड़ कैसे उठा सकता है? हम सबने उसे लाठी पर टाँग रखा है। लाला ने कहा, 'तेरी लाठी ऊपर हो, तो मैं अपना हाथ नीचे कर लूँ।' ग्वालबाल मित्र ने कहा यदि तू थक गया हो तो हाथ नीचे कर ले। हम सब लाठी पर रख लेंगे। कन्हैया ने जैसे ही हाथ नीचे करना आरम्भ किया कि गिरिराज हिलने लगे। ग्वाले एकदम चिल्ला उठे, 'कन्हैया-कन्हैया, यह गिरिराज गिर पड़ेगा।' लाला ने झट अपनी उँगली ऊपर उठा ली। तब सबको विश्वास हो गया कि गिरिराज हमारी लाठी पर नहीं, बल्कि लाला की उँगली पर टिका है। वह श्रीकृष्ण की उँगली पर है। यह घर किसके आधार पर है? यह जगत् किसके आधार पर है? जब तक ठाकुरजी की कृपा हो, तब तक पौबारा है। उनकी कृपा घटते ही राजा रंक बन जाता है, लाख की राख बनते देर नहीं लगती। इस जीव के पास गर्व करने जैसी कोई चीज ही नहीं है। सब कुछ भगवान् की मर्जी पर है। फिर भी जीव अकड़कर चलता है और अभिमान से बोलता है।

यह लीला सात दिन तक चलती रही। लाला ने अपनी बाँसुरी बजा दी है। व्रजवासी अब गिरिराज-धरण श्रीकृष्ण के दर्शन करते हैं और उनकी बाँसुरी सुनते हैं। किसी को भूख नहीं लगती, किसी को प्यास नहीं लगती। लाला ने ऐसी बाँसुरी बजाई कि उसे सुनकर गिरिराज महाराज डोलने लगे हैं। अब इन्द्र को विश्वास हो गया कि श्रीकृष्ण परमात्मा हैं। उसने मेघों को आज्ञा दी कि बरसात बन्द करो। बरसात बन्द हो गई है, सूर्य उदय हो गया है, गोपी-ग्वाल और गोपीगण बाहर निकल रहे हैं। गिरिराज की स्थापना हो गई है। श्रीगोवर्धन महाराज की जय। गोपियों को अत्यन्त आनन्द हुआ है।

आज सबको विश्वास हो गया कि कन्हैया के कारण हमारी जिन्दगी बच गई। अनेक जनों को यह शंका होने लगी, 'क्या यह नन्दजी का लाला है या कोई बड़ा देव है? व्रजवासी नन्दबाबा के आँगन में एकत्र हो गए हैं। एक कहता है, 'यह नन्दबाबा का पुत्र नहीं है।' दूसरा कहता है तुझे तो यह बात समझ में आई है, किन्तु मुझे तो इसके जन्म से ही यही शंका है नन्दबाबा गोरे हैं, यशोदाजी गोरी हैं। यह कन्हैया काला क्यों है? क्या नन्दबाबा किसी दूसरे का लड़का ले आए हैं?

सबने इस सभा में नन्दबाबा को बुलाया और पूछा, महाराज आप सच-सच बताइए। क्या यह कन्हैया आपका लड़का है?" नन्दबाबा ने हाथ जोड़कर कहा, "मैं अपनी गायों की शपथ खाकर कहता हूँ कि कन्हैया मेरा लड़का है। यशोदाजी की गोद में कृष्ण उस समय खेल रहे थे।

यहाँ यह बात यशोदाजी के कान में भी पड़ी। उसने कन्हैया से पूछा, "बेटा तू किसका लड़का है?" कन्हैया बोला कि मैं तेरा लड़का हूँ। यशोदाजी ने विनोद किया, "बेटा, तू मेरा लड़का नहीं है। मेरा लड़का तो दाऊजी है। यह सुनकर कन्हैया रोने लगा और बोला, "नहीं मैं तेरा लड़का हूँ और तू मेरी माता है।" यह सुनकर माता ने कन्हैया को अपनी गोद में उठा लिया और कहा, "बेटा ये सब सन्देह कर रहे हैं कि हम दोनों गोरे हैं। फिर तू काला कैसे हुआ?"

श्रीकृष्ण ने कहा, "माँ–इसमें तेरा दोष है। मेरा जन्म रात को बारह बजे हुआ। मैं तुझे जगाने लगा, किन्तु तू जग नहीं पाई। इसलिए मैं सबेरे तक अन्धकार में लोटता रहा। अन्धकार मुझसे लिपट गया। इसलिए मैं काला हो गया।"

यशोदामाता बड़ी भोली हैं। वे श्रीकृष्ण की बात सच मान लेती हैं। सन्त ज्ञानेश्वर महाराज महान् ज्ञानी थे। महाराज ने सोलह वर्ष का समय लगा कर गीता पर एक भाष्य लिखा है। इसके बाद उनसे परमात्मा का वियोग सहन न हुआ और उन्होंने जीतेजी समाधि ले ली। सत्वगुण के अतिशय बढ़ जाने पर जीव पंच महाभूत में कैद नहीं रह सकता, ईश्वर से पृथक नहीं रह सकता। ज्ञानेश्वरजी ने गीताजी पर लिखे गए भाष्य में एक स्थान पर लिखा हैं कि गीता के उपदेशक श्रीकृष्ण साँवले क्यों हैं? वे कहते हैं कि दूर से श्रीकृष्ण का अंग दर्शक को श्याम लगता है, किन्तु समीप जाने पर खबर पड़ती है कि वह अतिशय प्रकाशमय हैं।

एकनाथ महाराज ने भागवत पर भाष्य लिखते हुए कहा है कि श्रीकृष्ण श्याम क्यों है? लोभ का रंग पीला है, क्रोध का रंग लाल है, काम का रंग काला है। मनुष्य के कलेजे में काम रहता है। इसलिएं कलेजा काला होता है। जो श्रीकृष्ण का ध्यान करता है, प्रेम से श्रीकृष्ण की सेवा करता है उसका कलेजा धीरे-धीरे उजला हो जाता है। भगवान उसके कलेजे के कालेपन को खींच लेते हैं और अपने श्रीअंग में रखते हैं। इसीलिए श्रीअंग थोड़ा श्याम है।

एकबार श्रीकृष्ण दूत बनकर दुर्योधन के यहाँ गए। दुर्योधन मूर्ख है, मालिक का अपमान करता है और पूछता है, "तुम नंद यशोदा के पुत्र हो फिर काले क्यों हो?" श्रीकृष्ण ने कहा, 'मैं गोरा था किन्तु तेरा काल होने के कारण काला होकर आया हूँ।'

कालोऽस्मि लोकक्षयकृतप्रवृत्तः

हरितनिकुंज में श्रीकृष्ण राधाजी के साथ क्रीड़ा कर रहे हैं। राधा-कृष्ण वृन्दावन में कभी लम्बे नहीं होते। हमेशा छोटे आकार के होते हैं। वहाँ नित्य लीला होती है। एकबार राधाजी ने कहा, 'श्यामसुन्दर आप सुन्दर तो हैं किन्तु काले क्यों हैं?' श्रीकृष्ण कहते हैं, 'राधे मैं तो तेरी शोभा बढ़ाने के लिए ही काला होकर आया हूँ।'

जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी।

वृज में खूब बरसात कर वृजवासियों को भयभीत करने के बाद इन्द्र राजा को पश्चात्ताप हुआ। इन्द्र क्षमायाचना करने आये, और उन्होंने प्रभु की स्तुति की–

विशुद्धसत्त्वं तव धाम शान्तं तपोमयं ध्वस्तरजस्तमस्कम्।
मायामयोऽयं गुणसम्प्रवाहो न विद्यते तेऽग्रहणानुबन्धः॥

(१०-२७-४)

इसके बाद इन्द्र-पत्नी सुरभि ने भगवान् का खूब अभिषेक किया। अभिषेक से जो दूध इकट्ठा हुआ उसका आज भी वहाँ सुरभिकुण्ड है।

सत्ताईसवें अध्याय में गोवर्धन लीला समाप्त हुई है। अट्ठाईसवाँ अध्याय बहुत छोटा है, उसमें वरुणदेव की पराजय की कथा का वर्णन है।

एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम्।
स्नातुं नन्दस्तु कालिन्द्या द्वादश्यां जलमाविशत्॥ (१०-२८-१)

सारा गोकुल गाँव एकादशी का व्रत करता है। नन्दबाबा रात्रि में जागरण करते हैं। एकादशी करना बहुत जरूरी है। उसे विधिपूर्वक करने से पाप नष्ट होते हैं।

एकबार मध्य रात्रि के समय नन्दबाबा अनजान से यमुनाजी में स्नान करने गए। वहाँ वरुण के सेवक थे। वे उन्हें पकड़कर वरुणदेव के पास ले गए। रात को दस बजे के बाद निषेध काल (प्रातः साढ़े तीन बजे तक) में स्नान नहीं करना चाहिए और खाना भी नहीं चाहिए। जो इस निषेध काल को भंग करता है, वह दूसरे जन्म में राक्षस होता है। क्योंकि यह समय राक्षसों का भोजनकाल है।

जब श्रीकृष्ण को यह पता लगा तब वे वरुण लोक में पहुँचे। वरुणदेव ने श्रीकृष्ण की पूजा की और नन्दजी से क्षमा माँगते हुए कहा, 'भूल से मेरे सेवक तुमको पकड़कर यहाँ ले आये हैं।' श्रीकृष्ण वहाँ से नन्दबाबा को भूलोक में ले आए हैं। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण आदि देवों को पराजित किया है। वे देवों के देव परमात्मा हैं।

इसके बाद उन्नीसवें अध्याय में रासलीला प्रकरण का प्रारम्भ होता है। प्रभु रास में अलौकिक रस का दान करने वाले हैं, किन्तु जिसका मन लौकिक रस में फँसा है, उसे अलौकिक रस नहीं मिलता। जब जीवात्मा भक्ति रस में डुबकी लगाती है, तब उसे षड्रस पकड़ लेते हैं। खारा, खट्टा, कसैला, तीखा, कड़वा और मीठा रस, ये षड्रस हैं। जो षड्रस के आधीन है उसे भक्तिरस नहीं प्राप्त होता। परमात्मा कृपा करके जीव को षड्रस के बन्धन से मुक्त कराते हैं। अब रासलीला का आरम्भ हो रहा है। यह भागवत का दिव्य फल है।

६६– शुद्ध जीव और ईश्वर का मिलन

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः॥
तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शन्तमैः।
स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन् प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः॥

(१०-२९-१/२)

परमात्मा श्रीकृष्ण का नाम-स्वरूप ही यह भागवत है। भागवत का एक-एक स्कन्ध परमात्मा का हृदय है। हृदय में ही पंच प्राण निवास करते हैं। रासलीला के पाँच अध्याय भागवत के पंच प्राण है। सन्तों ने माना है कि रासलीला भागवत का फल है। रासलीला की कथा गंगा-किनारे हुई है। कथा करने वाले श्री शुकदेवजी महाराज हैं। उनकी कमर पर करधनी नहीं हैं फिर तो लँगोटी कहाँ से होगी? जिसे सारा जगत् ब्रह्मरूप में दिखाई देता है उसे सारे जगत् में ज्ञान की अन्तिम कक्षा में पहुँचने के बाद बाकी केवल परमात्मा ही रहता है। साधारण ज्ञान में यह जगत् है और यह ईश्वर है, ऐसा भेदभाव होता है। ज़ब ज्ञान-निष्ठा परिपूर्ण हो जाती है, तब जगत्, जगत् नहीं रहता। वह ईश्वर बन जाता है। शुकदेवजी की ज्ञान-निष्ठा परिपूर्ण है। पहले यह कथा आ गई है कि सुन्दर देव कन्यायें और अप्सरायें सरोवर में स्नान करती हैं। उस समय शुकदेवजी महाराज की आँखें खुली हैं। उनको आँखें खुली होने पर भी यह पता नहीं लगा कि कोई स्त्री स्नान कर रही है। उनका हृदय गंगा के समान अति शुद्ध है। स्नान करती हुई कन्याओं को ऐसा प्रतीत हुआ कि इस सन्त को सच्चा आनन्द मिल रहा है। ये आनन्द में कितने निमग्न हैं! यह हमारी भूल हुई कि पशु-पक्षी जो सुख भोगते हैं, उस पर हमारा ध्यान गया है। शुकदेवजी के दर्शन से अप्सराओं को विलासी जीवन से घृणा हो गई थी। उन्होंने उनको कोई उपदेश नहीं किया था, केवल दर्शन ही हुआ था। जिनके दर्शन से काम का विनाश होता है वे महापुरुष यह कथा सुनाने बैठे हैं। इस कथा के श्रोता वे राजा परीक्षित हैं, जिनकी मृत्यु अत्यन्त नजदीक है। यदि रासलीला में काम-सुख का वर्णन हो, तो परीक्षित उसे कभी भी नहीं सुन सकते, शुकदेवजी महाराज कथा ही सुना सकते हैं। क्योंकि शुकदेवजी पूर्ण निष्काम हैं।

रासलीला में स्त्री और पुरुष के मिलन की कथा नहीं है, बल्कि जीव-ब्रह्म के मिलन का वर्णन है। 'गोपी' शब्द सुनने से प्रायः लोगों को स्त्री का शरीर दिखाई देता है। चीनी का करेला बनाया जाए तो वह देखने में करेला जरूर दिखाई देगा, उसमें कड़वापन नहीं होता। इसी प्रकार गोपियों का आकार कुछ स्त्री जैसा दिखाई देता है, किन्तु उनमें स्त्रीत्व नहीं है। आचार्यों ने 'गोपी'

शब्द के अनेक अर्थ किए हैं। 'गोपायती श्रीकृष्ण इति गोपी' अर्थात् जिसके शरीर में कृष्ण का स्वरूप गुप्त है, जिसके हृदय में श्रीकृष्ण को छोड़ कुछ नहीं है जो भगवद्-स्वरूप को ही अपने हृदय में रखता है उसे गोपी कहते हैं। साधारण मनुष्य अपने मन में संसार को रखता है। मन में जो संसार है, वही रुलाता है, वही सताता है। तुम संसार में भले रहो, किन्तु संसार को अपने मन में मत रखो। संत लोग संसार में रहते हैं, किन्तु संसार उनके मन में नहीं आता। संत जन अपने मन में परमात्मा का स्वरूप स्थिर करते हैं। गोपी ने मन से सर्वस्व त्याग कर दिया है और मन में परमात्मा का स्वरूप स्थिर कर लिया है। न तो गोपी नाम की कोई स्त्री, न कोई पुरुष और न कोई स्त्री- पुरुषोत्तर है। परमात्मा के दर्शन की, मिलन की तीव्र इच्छा ही गोपी है। भागवत में ही 'गोपी' शब्द का अर्थ परमात्मा को प्राप्त करने की तीव्र इच्छा बताया गया है। इस जीव को प्रभु के दर्शन की इच्छा ही नहीं होती। मनुष्य का मन ऐसा मैला है कि इसे संसार सरस लगता है। मनुष्य का मन संसार में उलझा हुआ है। इसे यह इच्छा नहीं होती कि मुझे भगवान् का दर्शन हो अथवा मुझे परमात्मा से मिलना है। प्रभु-मिलन की तीव्र भावना ही गोपी है।

आचार्यों ने गोपी शब्द का अर्थ इस प्रकार किया है, "गोभिः पीबति इति गोपी" अर्थात् गोभिः इन्द्रियभिः भक्ति रसं पीबति। अर्थात् जो प्रत्येक इन्द्रिय से भक्तिरस का पान करता है। भक्ति अलौकिक दिव्य रस है। जो आँख से भक्ति करे, कान से भक्ति करे, मन से भक्ति करे, जीभ से भक्ति करे, जो अपनी प्रत्येक इन्द्रिय को भक्तिरस में डुबो दे उसे गोपी कहते हैं। जब प्रत्येक इन्द्रिय से भक्ति फूटती है, तब देहाभिमान छूटता है। गो-इन्द्रियाणि पाति इति गोपः अर्थात् इन्द्रियों को भक्तिरस से पुष्ट करना है। वासना का विनाश करने के बाद प्रेम-मार्ग में प्रवेश मिलता है। प्रेम और मोह दोनों का आकार समान है, किन्तु दोनों में बहुत अन्तर है। मोह में सुख भोगने की इच्छा होती है, किन्तु प्रेम-मार्ग में प्रियतम के लिए सर्वसुख का त्याग करना पड़ता है। मोह प्रेम माँगता है और प्रेम प्रेम देता है। प्रेम सारी वासनाओं को नष्टकर, प्रतिकूल सारे विषयों में से इन्द्रियों को हटाकर अनुकूल परमात्मा के प्रति अपने भावों को मोड़ता है। आचार्यों ने गोपी के अनेक भेद किए हैं—नित्यसिद्धा, साधनसिद्धा, ऋषिरूपा, अनन्यपूर्वा, अन्यपूर्वा इत्यादि।

रासलीला में स्त्री और पुरुष के मिलन की कथा नहीं है। न तो गोपी कोई स्त्री है और न श्रीकृष्ण कोई पुरुष। श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम परमात्मा हैं, गोपी शुद्ध जीव है और रासलीला शुद्ध जीव तथा ईश्वर के मिलने की कथा है। यही भागवत का फल है। भागवत में वर्णन आता है, "गोपियों के शरीर ने प्रभु का स्पर्श किया ही नहीं, जब शरीर का विचार किया जाता है, जब शरीर का स्पर्श होता है तभी काम पैदा होता है। गोपियों के शरीर ने परमात्मा का स्पर्श किया ही नहीं।

मल-मूत्र भरे हुए शरीर के साथ साधु-सन्त भी रमण नहीं करते, फिर परमात्मा क्या मल-मूत्र भरे हुए शरीर से क्रीड़ा करेंगे? परमात्मा का स्वरूप आनन्दमय है। निराकार आनन्द निराकार श्रीकृष्ण के रूप में प्रकट हुआ है। हमारे शरीर में माँस-रुधिर है। ठाकुरजी का स्वरूप आनन्दमय है। जीव को जो शरीर मिलता है, वह पूर्वजन्म की वासना के अनुसार ही मिलता है। परमात्मा अपनी इच्छा से शरीर धारण करते हैं।

निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुन गो पार।

भगवान् की तरह गोपियों का स्वरूप भी अलौकिक, अप्राकृतिक और दिव्य है। जिस शरीर में मल नहीं जिस शरीर में मूत्र नहीं ऐसा गोपियों का शरीर भगवान् का सतत ध्यान करने से भगवान् जैसा दिव्य बन गया है। गोपियों का पंच-भौतिक शरीर श्रीकृष्ण-वियोग में भस्म हो गया है। वियोग बहुत बड़ी अग्नि है। पतिव्रता स्त्री-पतिदेव के परदेश में होने पर वियोग में व्यथित होती है। जिस प्रकार वियोग पतिव्रता स्त्री को पति की ओर मोड़ता है उसी प्रकार भक्त भगवान् के वियोग में अपने को भस्म कर देता है। गोपियों ने परमात्मा का अलौकिक दिव्य स्वरूप प्राप्त किया है। गोपियों को श्रीकृष्ण के दर्शन के बाद प्रेम जगा है। प्रेम का आरम्भ द्वैत से होता है किन्तु प्रेम की समाप्ति अद्वैत में होती है। आरम्भ में प्रेमी और प्रियतम दोनों अलग होते हैं, किन्तु अतिशय प्रेम बढ़ने पर ये दोनों अलग नहीं रह सकते और मिट कर एक हो जाते हैं। प्रेम का अर्थ है 'मैं' मिटाकर 'तू' हो जाना। साधारण प्रेम में 'मैं' और 'तू' दोनों अलग है। अतिशय प्रेम बढ़ने पर 'मैं' अलग नहीं रह सकता, वह 'तू' में मिल जाता है। गोपियाँ अब श्रीकृष्ण से अलग नहीं रह सकतीं। गोपियों का प्रेम अन्तिम कक्षा में पहुँच गया है। रासलीला में गोपी और श्रीकृष्ण एक हो गए हैं। यह अलौकिक दिव्य कथा है। भागवत परमहंसों की संहिता है। प्रत्येक अध्याय की समाप्ति पर लिखा है कि यह परमहंसों की संहिता है। परमहंस वह है जो परमात्मा के साथ एकाकार हो गया है। रासलीला की कथा सुनने के पहले तीन सिद्धान्त ध्यान में रखने चाहिए। प्रथम यह कि यह रमण शरीर के साथ नहीं है, दूसरा यह शुद्ध जीव-ईश्वर की दिव्य लीला है और तीसरा यह कि इसमें स्त्री-पुरुष के मिलन की इच्छा नहीं है। गोपी में स्त्रीत्त्व है ही नहीं। कदाचित् आप यह सोचेंगे कि महाराज, क्या यह आप अपनी तरफ से बनाकर कहते हैं या भागवत में लिखा है? वास्तव में यह भागवत में ही लिखा है। इसको वही समझ सकता है, जो अच्छी तरह विचार करे और जिसे संस्कृत भाषा का ज्ञान हो। भागवत के श्लोक से सिद्ध हुआ है कि गोपी में स्त्रीत्त्व रहा ही नहीं क्योंकि शुकदेवजी ने किसी गोपी का नाम लिया ही नहीं– अन्याः कश्चिताः ...... नामरूप की पूर्ण विस्मृति होने के बाद ही गोपी-भाव जगता है। गोपी-भाव एक सर्वोच्च भाव है। आत्मा तीनों

शरीरों से भिन्न है। बाहर से जो शरीर दिखाई दे रहा है उसे स्थूल शरीर कहते हैं। अन्दर सूक्ष्म शरीर है जिसमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, मन और बुद्धि ये सत्रह तत्व होते हैं। सूक्ष्म शरीर में मन के अन्दर अनेक जन्मों की जो वासनाएँ होती हैं, उन्हीं के कारण उसे शरीर कहा गया है। जिस दीपक में तेल नहीं होता वह बुझ जाता है। उसी प्रकार जिस मन में कोई वासना नहीं होती वह शांत हो जाता है। मन वासना से ही जीता है। बिना संकल्प के मन नहीं जी सकता। हमारे जैसे साधारण मनुष्य यह कथा कहने के योग्य नहीं हैं और हमारे जैसे साधारण मनुष्य यह कथा सुनने योग्य भी नहीं हैं। यह सर्वोच्च भाव है। मन के पूर्ण निष्काम होने के बाद अब गोपियाँ परमात्मा से अलग नहीं रह सकतीं। यह शुद्ध मिलन की कथा है। गोपियाँ ऋषिरूपा हैं। वेदाचार्यों ने गोपियों को अनेक प्रकार माना है। पूर्वजन्म के महान्-महान् ऋषि गोपी बनकर आए हैं। ऋषि लोग हजारों वर्षों तक तपश्चर्या करते हैं, किन्तु काम बहुत बलवान है, वह उन्हें सताता है। काम किसी को छोड़ता नहीं, किसी की परवाह नहीं करता, जंगल में रहकर कंदमूल, पान, फल और पत्ते खाने वाले को भी काम त्रास देता है तो स्त्री को प्यार करने वाले की तो क्या दशा होती होगी? जंगल में रहने वाले ऋषियों को भी यह काम सताता है। बेचारे ऋषि थक जाते हैं। यदि काम शरीर से किसी प्रकार निकल जाता है तो भी बुद्धि में सोया हुआ होता है। ऋषि विचार करते हैं, कि बुद्धि में से काम किस प्रकार बाहर निकले? वही काम अब वे श्रीकृष्ण को अर्पण करती हैं।

यदि काम का विषय कोई स्त्री या पुरुष हो तो वह पतन करता है और यदि परमात्मा उसका विषय हो तो जीव निष्काम बन जाता है। भुने और उबाले हुए बीज में से जिस प्रकार अँकुर नहीं फूट सकता उसी प्रकार निष्काम परमात्मा को अर्पण किए गए काम से विकार उत्पन्न नहीं होता। काम के सकाम होने पर विकार-वासना जागृत होती है और उसे निष्काम में रखने पर विकार-वासना का विनाश होता है। सकाम का स्मरण करने पर काम जागृत होता है, किन्तु निष्काम का चिन्तन करने पर निष्काम बना जा सकता है। गोपियाँ ऋषिरूपा हैं। उन्होंने निश्चय किया है कि श्रीकृष्ण को काम अर्पित करूँगी। काम एक काँटा है। काँटे को काँटे से ही निकालना पड़ता है। जंगल में चलते-चलते यदि पैर में काँटा धँस जाता है तो उसे निकालने के लिए सूई कहाँ मिलेगी? इसलिए पैर में जो काँटा धँसा था उसे दूसरे काँटे द्वारा निकालने के बाद दोनों काँटे फेंकने पड़ते हैं। काम एक काँटा है। इसका विनाश काम से ही करना है। तुम यह इच्छा रखो कि भगवान् से मिलना है। विचार करो कि तुम्हें किसी मनुष्य से मिलने पर सुख मिलता है, तो यदि भगवान् से मिलो तो कैसा आनन्द प्राप्त होगा! जो एक बार परमात्मा से मिलता है वह उससे अलग नहीं हो सकता। वह परमात्मा के साथ एकाकार हो जाता है। ऋषिरूपा गोपियाँ काम को श्रीकृष्ण को अर्पण

करती हैं। बड़े-बड़े ऋषि गोपी बनकर आए हैं। गोपियाँ चार-पाँच वर्ष की थीं, तभी से उनकी इच्छा है कि श्रीकृष्ण उनके पति हों। इसके लिए गोपियों ने उन दिनों में कात्यायनी व्रत किया था।

हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रजकुमारिकाः।
चेरुर्हविष्यं भुञ्जानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम्॥ (१०-२२-१)

ऋषिरूपा गोपियों के लिए भागवत में कुमारिका शब्द प्रयोग किया गया है। संस्कृत भाषा में चार-पाँच वर्ष की कन्या को कुमारिका कहा गया है। पाँच वर्ष पूरा होने पर छठा वर्ष लगते ही कन्या कुमारिका नहीं कही जा सकती। ये गोप-कन्यायें चार-पाँच वर्ष की हैं और आशा रखती हैं कि श्रीकृष्ण पति होकर मिलें। चार-पाँच वर्ष की कन्या को भला क्या खबर पड़े कि पति क्या और पत्नी क्या? श्रीकृष्ण पतिरूप में मिलें ऐसी अपेक्षा रखने का अर्थ यह है कि मेरा सम्बन्ध किसी जीव से न हो। मुझे परमात्मा से मिलना है और परमात्मा के साथ एकाकार बनना है। ये कन्याएँ अविषयान्न का भोजन करती हैं, यमुनाजी में स्नान करती हैं रेती से पार्वती की मूर्ति बनाती है। पार्वती ब्रह्मविद्या का स्वरूप हैं। वह परमात्मा से मिलन कराती हैं। वे उस माता पार्वती की स्थापना कर पूजा कर प्रार्थना करती हैं कि मुझे परमात्मा से मिलना है और श्रीकृष्ण से एकाकार होना है। वे चार-पाँच वर्ष की कन्याएँ है। ये अपना वस्त्र यमुनाजी के किनारे रखती हैं और नग्न स्नान करती हैं। नग्न स्नान करने वाला तीर्थदेव का अपमान करता है और उसे पाप लगता है। भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ पहुँचते हैं, उनके वस्त्र उठाकर कदम्ब वृक्ष पर रख देते हैं और कहते हैं तुम बाहर आओ और अपने वस्त्र पहनकर ले जाओ। कुछ लोगों को इस लीला में अश्लीलता दिखाई देती है। वास्तव में यह लीला शुद्ध है। ध्यान में रखकर विचार करने पर पता लगेगा कि वहाँ श्रीकृष्ण गोपियों की नग्न काया देखने नहीं आए हैं। यमुनाजी के जल में श्रीकृष्ण जलस्वरूप बनकर निवास करते हैं, गोपियों से मिले ही हैं। गोपियों पर वासना का पर्दा पड़ा होने के कारण मिलन का अनुभव नहीं होता था। यह समस्त जगत् भगवान् में स्थित है। जगत् का आधार परमात्मा हैं। इसलिए वह सबमें सम्मिलित हैं। यदि ईश्वर एक से मिले और दूसरे से न मिले तो उसे सर्वव्यापक कौन माने? सर्वव्यापक तो सबका आधार होता है। वे भगवान् सबसे मिले ही हैं। जीव और ईश्वर तो साथ ही होते हैं। ईश्वर जीव को देखता है, किन्तु जीव ईश्वर को देख नहीं सकता। जीव और ईश्वर के बीच एक परदा है। परमात्मा सबसे मिले हुए हैं और वह मिला हुआ भगवान् ही मिलता है।

तत्त्व दृष्टि से विचार करने पर परमात्मा सबसे मिला हुआ दिखाई देता है। गाँव में रहने वाले और बहुत कम पढ़े लिखे दस आदमी एक बार घूमने निकले। उनके रास्ते में एक नदी आई। वे

सब नदी पार कर दूसरे किनारे पहुँचे। इसके बाद एक बोला कि नदी में कोई डूबा तो नहीं? कोई खो तो नहीं गया? हम दस आदमी रवाना हुए थे, उनको गिन लो। गणना करने पर दस की संख्या पूरी नहीं होती, नौ ही होते हैं। एक के बाद एक इस प्रकार सबने गणना की, किन्तु नौ ही संख्या हुई! यह देखकर सब रोने लगे और कहने लगे कि हम दस निकले थे उसमें से एक कम हो गया। दूसरे लोग पूछते हैं कि कौन डूब गया। इस पर वे कहते हैं कि मुझे खबर नहीं पड़ती। यहाँ तो सब दिखाई देते हैं, किन्तु गिनने पर एक कम होता है। उस रास्ते से एक सन्त जा रहे थे। सन्त ने गिनकर देखा, तो संख्या पूरी थी। बात यह हुई कि कम पढ़े-लिखे वे लोग गणना में अपने को शामिल नहीं करते थे। इस कारण दस की संख्या पूरी नहीं होती थी। वह दसवाँ मिल गया। वह मिला ही था अथवा नदी में डूबा हुआ मिला? वास्तव में दसवाँ कहीं गया नहीं था, वह उनके मण्डल में ही था। वह अज्ञान के कारण दिखाई नहीं देता था। उसी प्रकार हम में मिले हुए या हमारे अन्दर निवास करने वाले परमात्मा ही हमें मिलते हैं। इस प्रकार वे सबसे मिले ही होते हैं। वासना रूपी अज्ञान अथवा माया का पर्दा होने के कारण जीव को ईश्वर का अनुभव नहीं होता। शरीर को वस्त्र और आत्मा को वासना ढँकती है। जिस प्रकार सामान्य बादल सूर्य को ढँकता है उसी प्रकार वासना परमात्मा को ढँकती है। परमात्मा सर्वत्र है, किन्तु उसका दर्शन नहीं होता। प्रभु ने वस्त्रहरण द्वारा वासना का पर्दा दूर किया है।

जप करने से, तप करने से, सत्कर्म करने से इन्द्रियों में से काम निकलता है, किन्तु बुद्धि में स्थित काम सद्गुरु दूर करते हैं। सद्गुरु परमात्मा के दर्शन कराते हैं। इसलिए क्या वह दूर देश में किसी स्थल पर रहने वाले परमात्मा का दर्शन कराते हैं? वास्तव में ईश्वर तो जीव के साथ ही होता है, किन्तु माया के पर्दे के कारण उस जीव को ईश्वर का अनुभव नहीं होता। सद्गुरु माया का आवरण दूर करते हैं। सद्गुरु भी भगवान् हैं। मनुष्य चाहे ज्ञानी हो या बुद्धिमान हो? किन्तु बुद्धि से काम नहीं निकलता। जब कोई महापुरुष कृपा करता है, तभी काम निकलता है और तभी जीवात्मा को परमात्मा का अनुभव होता है। प्रभु ने गोपियों का वासना रूपी पर्दा दूर किया है और गोपियों से कहा है, "यह तुम्हारा आखिरी जन्म है। तुम शरद पूर्णिमा की रात्रि को मिलना। फिर तुम्हें जन्म लेने का अवसर नहीं आयगा।"

गोपियों की संख्या अधिक है, किन्तु उनमें सबको रास में प्रवेश नहीं मिला है। जिसका अन्तिम जन्म है, जिसकी वासना का पर्दा प्रभु ने दूर किया है और जिस जीव को परमात्मा ने अपनाया है, वही जीव रास में जाता है। यह लीला दिव्य है, मधुर है।

भागवत के टीकाकार श्रीधर स्वामी ने अपनी टीका में लिखा है कि भागवत परमहंसों की संहिता है। परमहंस निवृत्ति-प्रधान होते हैं। निवृत्ति धर्म का एक फल है—आत्मा और परमात्मा का मिलन है। श्री श्रीधर स्वामी ने रासलीला को काम-विजय लीला या मदन-मानभंग लीला कहा है। रासलीला श्रीकृष्ण का काम-विजय है। ब्रह्मादि देवों का पराभव करने से कामदेव का अभिमान बहुत बढ़ गया है। वह अपने को ईश्वर समझने लगा हैं काम का नाम ही महारथी है। अनेक देवों और ऋषियों को मारने से जिस कामदेव का अभिमान बढ़ गया है, वह श्रीकृष्ण से युद्ध करने आया है। कामदेव कहता है कि मैं इस बात को भूला नहीं हूँ, यह मुझे याद है कि आपने रामावतार में मुझे हराया है। रामावतार में कामदेव ने अनेक बार ऐसा अवसर उपस्थित किया है, जिससे रामजी की आँख में अथवा उनके मन में विकार उत्पन्न हो, किन्तु वे तो निष्काम हैं, कामदेव ने कहा कि रामावतार में मेरी हार तो हुई, किन्तु मेरे मन में सन्देह रह गया है। रामावतार में आपका नियम था कि किसी स्त्री का स्पर्श न करूँगा, प्रत्येक स्त्री में मातृभाव रखूँगा। आपने मर्यादा में रहकर मुझे हराया। वास्तव में मर्यादा का बन्धन ईश्वर के लिए नहीं है। वह जीव के लिए है। आपको सब ईश्वर मानते हैं। इसलिए आपको बन्धन में रहने की क्या आवश्यकता है? श्रीकृष्ण ने कहा कि भाई, तेरी क्या इच्छा है? कामदेव ने कहा, "मेरी इच्छा है कि शरद ऋतु हो, पूर्णिमा हो, मध्यरात्रि का समय हो उस समय किसी स्त्री को स्पर्श न कर उसमें मातृ-भाव रखने की मर्यादा आप न रखिये। उस समय आप स्त्रियों के साथ क्रीड़ा कीजिए और मैं आकाश में रहकर बाण मारूँ। यदि आपके मन में विकार पैदा हो, तो मैं ईश्वर होऊँगा। उस समय आप निष्काम रूप ईश्वर नहीं माने जाएँगे। काम की मार खाने वाला जीव है और जो काम की मार नहीं खाता, वह ईश्वर है।

प्रभु ने कहा कि मैं यह शर्त मानने को तैयार हूँ। प्रभु इसीलिए शरद पूर्णिमा की मध्य रात्रि को गोपियों के साथ क्रीड़ा करते हैं। कामदेव आकाश में खड़ा है और श्रीकृष्ण को बाण मारता है। श्रीकृष्ण के चरण में गंगाजी है, और भगवान् शिवजी के माथे पर भी गंगाजी हैं। शिवजी और श्रीकृष्ण ज्ञान-स्वरूप हैं। उनका काम क्या बिगाड़ सकता है? काम अनेक प्रयत्न करने पर भी श्रीकृष्ण को अपने आधीन नहीं बना सका। इसलिए उसे विश्वास हो गया कि श्रीकृष्ण भगवान् हैं। वह अब श्रीकृष्ण की शरण में आया है। श्रीकृष्ण ने मदन का पराभव किया। इसलिए उनका नाम मदनमोहन पड़ गया। मदन का अर्थ है काम। अर्थात् काम से ही काम का नाश करना। महापुरुष लौकिक काम को अलौकिक काम से मारते हैं। मुझे किसी मनुष्य से नहीं मिलना है, केवल परमात्मा से मिलना है और उनके साथ एकाकार होना है ऐसी प्रस्तावना कर चुकने के बाद आगे कथा आरम्भ होती है।

प्रभु ने गोपियों से कहा था, ''तुम्हारा यह अन्तिम जन्म है। मैं तुमसे शरद् पूर्णिमा की रात को मिलूँगा।'' शुकदेवजी महाराज को समाज के सामने रासलीला की कथा कहने में थोड़ा संकोच हुआ। वे विचारने लगे कि मैं रासलीला की कथा कहूँ या नहीं। क्योंकि समाज में सब अधिकारी ज़ीव नहीं होते। उन्होंने राधाजी का स्मरण किया। क्योंकि वे पूर्वजन्म में राधाजी की निकुँज के शुक (तोता) थे। निकुँज में गोपियों के साथ परमात्मा क्रीड़ा करते हैं। शुकदेवजी सारे दिन श्रीराधे-राधे कहते हैं। यह सुनकर श्रीराधाजी ने हाथ उठाकर तोते को अपनी ओर बुलाया। तोता आकर राधाजी के चरणों की वन्दना करता है। वे उसे उठाकर अपने हाथ में लेती हैं। तोता फिर श्रीराधे-राधे-राधे बोलने लगा। राधा ने कहा कि अब तू 'राधे-राधे' न कहकर 'कृष्ण-कृष्ण' कह। राधेति मा वद—कृष्ण-कृष्ण बोल। इस प्रकार राधाजी तोते को समझा रही हैं। उसी समय श्रीकृष्ण वहाँ आ जाते हैं। राधाजी ने उनसे कहा कि यह तोता कितना मधुर बोल रहा है! और उसे उनके हाथ में दे दिया। इस प्रकार राधाजी ने शुकदेवजी का ब्रह्म के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध कराया है। इसलिए शुकदेवजी की सद्गुरु श्रीराधाजी हैं। राधाजी ही सद्गुरु हैं। इसलिए उन्होंने भागवत में उनका नाम स्पष्ट रूप से नहीं लिया है। सद्गुरु का मन से स्मरण कर 'सद्गुरु देव की जय' का उच्चारण करना चाहिए। उनका नाम नहीं लेना चाहिए। मर्यादा का भंग नहीं करना चाहिए। यदि पत्नी अपने पति का नाम स्पष्ट रूप से ले, तो पति की आयु घटती है, ऐसा शास्त्रों में वर्णन आता है। इसीलिए श्रीराधाजी का नाम भागवत में स्पष्ट रूप से नहीं मिलता। उनका नाम गुप्त रीति से दो-तीन स्थानों पर लिया गया है। क्योंकि शुकदेवजी को सभा में उनका नाम लेने में संकोच होता है। वे विचार करते हैं कि रासलीला की कथा सुनाऊँ या नहीं सुनाऊँ? उन्होंने राधाजी का स्मरण किया। राधाजी ने कहा, ''बेटा, तू कथा सुना किन्तु कथा विवेक से सुनाना।

भगवानपि ता रात्रीः

परिपूर्ण आनन्दमय श्रीकृष्ण को कोई सुख भोगने की इच्छा ही नहीं होती। प्रभु ने यह लीला गोपियों को परमानन्द देने के लिए की है और योगमाया का आश्रय लिया है। भगवान् ने आज क्रीड़ा करने की इच्छा की है, बाँसुरी बजाई है, गोपियों को बुलाया है। बाँसुरी की ध्वनि गोपियों के कान में पड़ती है। गोपियाँ परमात्मा से मिलने की तीव्र भावना लेकर दौड़ पड़ती हैं। तुमको चाहिए कि भगवान से मिलने के लिए दौड़ते-दौड़ते नहीं तो रोज थोड़ा चलते-चलते अवश्य जाओ। ऐसा निश्चय करो कि इस जन्म में मुझे उनके दर्शन करने हैं, उनके चरणों तक पहुँचना है। धीरे-धीरे भक्ति बढ़ाना, संयम बढ़ाना है। उस समय गोपियाँ जो काम कर रही थीं, उसे छोड़कर दौड़ पड़ती हैं?

लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या अञ्जन्त्यः काश्च लोचने।
व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः॥ (१०-२९-७)

उस समय एक गोपी घर लीप रही थी। उसके हाथ में मिट्टी लिपटी हुई थी। उसे इसका ध्यान-भान ही नहीं रहा। वह दौड़ने लगी। एक गोपी घर में शृंगार कर रही थी। उसी समय उसे बाँसुरी की आवाज सुनाई दी। उसने सोचा कि भगवान् मुझे बुला रहे हैं। वह जल्दी में काजल लगाने के बदले कंकु लगाकर उधर दौड़ी। यदि गोपी में स्त्रीत्व होता, तो वह ऐसा कदपि नहीं करती। हम दर्पण में मुँह देखकर सब ठीककर बाहर निकलते हैं। 'व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः' शब्द से सिद्ध होता है कि गोपियों में स्त्री-भाव नहीं है। रासलीला में किसी स्त्री को प्रवेश नहीं मिला है। उसमें तो शुद्ध जीव ही जा सकता है, जिसके वासना का पर्दा दूर हो गया हो, जिसमें लौकिक नाम-रूप की पूर्ण विस्मृति हो।

स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः।
ब्रजस्यानामयं कच्चिद् ब्रूतागमनकारणम्॥ (१०-२९-१८)

भगवान् गोपियों से कहते हैं कि तुम बहुत भाग्यशाली हो। 'महाभागा' हो बहुत भाग्यशाली वह है, जिसे भगवान् से मिलने की तीव्र इच्छा हो। जो पैसा कमाकर सुखी होता है, वह भाग्यशाली नहीं है। जिसके सिर पर काल सवार है, जिसे मृत्यु का भय है, वह कैसे भाग्यशाली हो सकता है? भाग्यशाली वह होता है, जो परमात्मा से मिलने के लिए आतुर हो। भगवान् कहते हैं, "तुम बड़ी भाग्यशाली हो। तुम इस समय क्यों आई? सुन्दर रात्रि है। इसमें तुम वृन्दावन की शोभा देखो। इसके बाद अपने घर जाओ, अपने पति के पास जाओ।" इस पर आप शान्ति से विचार करेंगे तो ध्यान में आएगा कि ऐसा तो आपके घर में भी होता है। आप कल स्नानकर पवित्र आसन पर बैठिए और मन में ऐसा संकल्प कीजिए कि आज मैं ध्यान के साथ जप करते हुए तन्मय हो जाऊँ। आज भगवान् प्रकट होंगे। मैं भगवान् को वन्दन करूँगा। भगवान् मुझे उठाकर छाती से लगा लेंगे। आज मैं अपने भगवान् से मिलने वाला हूँ।"

इस प्रकार भगवान् से मिलने की इच्छा करते हुए जब उनसे मिलने जाओगे, तब वे तुम्हारी परीक्षा करेंगे। तुमसे कहेंगे कि तू मेरे पीछे क्यों पड़ा है। तू संसार में जा। तुझे कोई पुरुष सुख देगा, कोई स्त्री सुख देगी। श्रीकृष्ण किसी को सुख नहीं देते। वे आनन्द देते हैं। यह संसार सुख-दुःख से भरा हुआ है। जो सुख देता है, वही दुःख का कारण बनता है। यहाँ न सुख है, न दुःख है। श्रीकृष्ण आनन्दमय हैं। सभी को आनन्द देते हैं। उन्होंने गोपियों से कहा कि तुम्हें सुख तुम्हारे पति देंगे। तुम उनके पास जाओ। गोपियाँ कहती हैं कि जिसे सुख की इच्छा है, वह पति या पत्नी के

पास जाएगा। जिसे सुख की इच्छा नहीं है, वह परमात्मा के पास आता है। हमें कोई सुख नहीं चाहिए। श्रीकृष्ण गोपी- वृन्द को स्त्री-धर्म समझाते हैं और घर जाने की आज्ञा देते हैं।

दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा।
पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी॥ (१०-२९-२५)

गोपी से कहा है कि पति रोगी हो, दरिद्री हो तो भी उसमें परमात्मा की भावना रखकर सेवा करने से स्त्री का यह लोक सुधरता है और परलोक भी सुधरता है। रात्रि काल में तुम क्यों बाहर आती हो? तुम्हारा पति तुम्हारी प्रतीक्षा करता होगा। पति में परमात्मा की भावना रखो। श्रीकृष्ण ने गोपियों को घर जाने की आज्ञा दी है। शास्त्र में लिखा है कि पुरुष को जल्दी मुक्ति नहीं मिलती; किन्तु स्त्री को भगवान् जल्दी मिल जाते हैं। स्त्री को भगवान् के लिए इधर-उधर भटकने की जरूरत नहीं है। उसका हृदय कोमल होता है। यदि स्त्री घर के एक-एक जीव में ईश्वर का भाव रखकर उसकी सेवा करे और भगवान् का स्मरण करे, तो उसे अनायास ही मुक्ति मिल जाती है। क्यों कि उसका हृदय अत्यन्त कोमल होता है। पुरुष अपने व्यवसाय में जो पाप करता है, उसका पूरा फल उसे अकेले ही भोगना पड़ता है। यदि वह पैसे से कोई दान पुण्य करे, तो उसमें स्त्री का भी आधा भाग होता है। जो स्त्री अपने पति में परमात्मा का भाव रखकर उसकी सेवा करती है, उसे ही पुण्य मिलता है। भगवान् गोपियों से कहते हैं, "स्त्री का इधर-उधर भटकना ठीक नहीं है। फिर तुम सब क्यों इधर-उधर भटक रही हो?" गोपियाँ उसका उत्तर देती हैं कि भगवान् की हार हो गई है। श्रीकृष्ण की कभी हार नहीं हुई है; किन्तु गोपियों से बातचीत करने में भगवान् की हार हो गई है। गोपियों का एक-एक शब्द दिव्य है।

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं सन्त्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम्।
भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान् देवो यथाऽऽदिपुरुषो भजते मुमुक्षून्॥
यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरंग स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम्।
अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बन्धुरात्मा॥
कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं कुशलाः स्व आत्मन् नित्यप्रिये पतिसुतादिभिरार्तिदैःकिम्।
तन्नः प्रसीद परमेश्वर मा स्म छिन्द्या आशां भृतां त्वयि चिरादरविन्दनेत्र॥
(१०/२९/३१-३२-३३)

श्रीकृष्ण गोपियों को स्त्री-धर्म समझाते हैं और गोपियाँ उसका उत्तर आत्मधर्म से देती हैं। वे भगवान् से कहती हैं कि जो स्त्री होगी, वह स्त्री-धर्म का पालन करेगी। जो स्त्री न हो, उसे स्त्री-धर्म का पालन करने की क्या आवश्यकता है? मेरा मन रिक्त है। मैंने सबका त्याग कर दिया

है और स्त्रीत्व का भी त्याग कर दिया है। गोपी-वृन्द में स्त्रीत्व नहीं है। वे 'संत्यज्य सर्व विषयान्- समझकर कर सब कुछ छोड़ चुकी हैं। श्रीकृष्ण के बिना सब कुछ दु:ख रूप है ऐसा समझकर जो बुद्धि पूर्वक त्याग किया जाये वह सच्चा त्याग है। जब हाथ में पैसा नहीं होता, सट्टा में सब कुछ चला जाता है, तब कुछ लोग ज्ञान की बात करते हैं, वैराग्य की चर्चा में पड़ते हैं कि जगत् में सब खराब है। जब उनके हाथ में पैसा था, तब तो उनकी अक्ल ठिकाने न थी और अब त्याग की बात करते हैं, अज्ञानपूर्ण त्याग करते हैं। गोपियाँ सब बातें समझकर त्याग करती हैं। खाना न मिलने पर भिखारी एकादशी की बात करे, तो उचित नहीं है। वास्तव में उसे खाना नहीं मिला है। इसलिए उसने भोजन का त्याग किया है।

गोपियों ने कहा कि हमारे लिए यह बात नहीं कही जा सकती। क्योंकि हमने खूब समझकर सब कुछ छोड़ा है। श्रीकृष्ण के बिना सब कुछ दु:ख रूप ही है। ऐसा मानकर हमने सर्वस्व का त्याग किया है और आपके चरणों का सहारा लिया है। हे नाथ! आप निष्ठुर मत बनिए।

प्रभु ने कहा कि मैं निष्ठुर नहीं हूँ। मैं तुम्हारा प्रेम जानता हूँ, किन्तु मुझे धर्म बहुत प्रिय है। तुम अपना धर्म छोड़ रही हो। अपने पति की सेवा करना तुम्हारा धर्म है। एक गोपी ने कहा कि महाराज, आपने मुझे अपना धर्म समझाया। अब यह समझाइये कि धर्म का फल क्या होता है? अथवा धर्म करने से क्या होता है? श्रीकृष्ण उन्हें समझाते हैं कि प्रभु ने जिसका ज़ो धर्म निश्चित किया है उसे फल की अपेक्षा छोड़कर पालन करके अपना कर्तव्य निभाना चाहिए, इससे उसका पाप नष्ट हो जाता है। धर्म का फ़ल है पाप का विनाश करना। यह सुनकर गोपियों ने पूछा कि पाप का विनाश होने के बाद क्या होता है? यदि धर्म का फ़ल पाप का विनाश है तो पाप के नाश का फ़ल क्या है? प्रभु ने कहा कि जिसके पाप का विनाश होता है, उसका मन शुद्ध हो जाता है। अर्थात् पापनाश का फल है-मन की शुद्धि। गोपियों ने कहा कि अब यह बताइए कि मन की शुद्धि का क्या फल होता है? भगवान् ने कहा कि जिसका मन शुद्ध होता है उसे परमात्मा मिलता है। गोपियों ने कहा कि हमारा मन शुद्ध है। इसीलिए तो हमें आप मिले। यदि धर्म का फल पापनाश है, पापनाश का फल मन-शुद्धि है, मन-शुद्धि का फल परमात्मा की प्राप्ति है तो परमात्मा के मिलने के बाद धर्म पालने की क्या आवश्यकता है? फल हाथ में आने के बाद कोई वृक्ष को नहीं पकड़ने जाता। परमात्मा फल-स्वरूप मिलता है। साधन की अपेक्षा साध्य के हाथ में आ जाने पर साध्य छोड़कर साधन कौन पकड़ने जाए? आज़ तक हमने धर्म का बहुत पालन किया और हमारा मन शुद्ध हो जाने पर आप मिले हैं। मन की शुद्धि के बिना परमात्मा के प्रत्यक्ष दर्शन का लाभ मिल ही नहीं सकता। अब आपको छोड़कर हमें धर्म पालने की जरूरत

नहीं रहती। आपने हमें धर्म का जो उपदेश दिया है उसका हमने ठीक तरह पालन किया। हमारा मन शुद्ध हो गया है। इसीलिए आपके दर्शन हुए हैं। आपको छोड़ हम धर्म पालने के लिए कहाँ जाएँ? हमने आपके चरणों में अपना सर्वस्व अर्पण किया है। नाथ! हम पर कृपा कीजिए।

प्रभु ने गोपियों से कहा कि सखियो! क्या तुम मुझे मानती हो? सखियों ने कहा 'हाँ हम आपको मानती हैं।' भगवान् ने कहा, 'तो मेरी आज्ञा है कि तुम यहाँ से अपने घर जाओ। नौकर का अधिक बोलना अच्छा नहीं माना जाता। नौकर का एक ही धर्म है कि वह मालिक की आज्ञा का पालन करे। तुम्हारे पति के शरीर में भी मैं ही निवास करता हूँ। क्या मैं यहाँ जो खड़ा हूँ, उतना ही हूँ? मैं सबका आधार हूँ। तुम अपने पति के शरीर में विराजने वाले परमात्मा से मिलो।

यह सुनकर गोपी ने बहुत सुन्दर जबाब दिया, "पति के शरीर में परमात्मा है और पत्नी के शरीर में जो परमात्मा है, वह माया से ढँका हुआ है। पति-पत्नी में विद्यमान परमात्मा वासना के स्पर्श से दूषित है। आप वासना रहित शुद्ध परमात्मा हैं, पूर्ण निष्काम हैं। मैं वासना का पर्दा फेंककर यहाँ आयी हूँ, पूर्ण निर्वसन होकर आई हूँ। जहाँ वासना का स्पर्श है, वहाँ हमें परमात्मा से नहीं मिलना है। जो वासना-रहित है, शुद्ध है। उस परमात्मा से मैं मिलने आई हूँ। प्रभु ने यह बात सुनी। वे मन में विचार करते हैं कि मुझे किसी ने भी ऐसा उत्तर नहीं दिया। फिर कहा कि तुम्हारी बात सुनकर मुझे बहुत आनन्द होता है, किन्तु मेरी इच्छा है कि तुम अपने घर जाओ। तुम अपने पति में ऐसी भावना रखो कि वह माया-रहित परमात्मा है। लोग पत्थर की मूर्ति पूजते हैं। मूर्ति पत्थर की होती है, किन्तु लोग भावना रखते हैं कि यह भगवान् की है। वह ईश्वर की मूर्ति है, ईश्वर मूर्ति नहीं है। यदि कोई मूर्ति में ईश्वर की भावना रखकर पूजा करे, तो वह पूजा भगवान् को मिलती है। इससे पूजा सफल होती है और पूजा करने वाले का कल्याण होता है। पति चाहे जैसा है, किन्तु वह चेतन है, पत्थर की मूर्ति जड़ है। जड़ में परमात्मा की भावना रखकर, जड़ में चेतन की भावना रखकर जो पूजा की जाती है, वह सफल होती है। फिर तुम चेतन पति में परमात्मा की भावना क्यों नहीं करतीं? तब एक गोपी ने उत्तर दिया, "पति में परमात्मा की भावना रखी जाए तो वह भावना वियोग में फलित होती है। वह भावना संयोग में नहीं होती। प्रत्यक्ष परमात्मा के दर्शन के बाद कोई पत्थर की मूर्ति की पूजा नहीं करता। जिसे दर्शन नहीं हुआ है, वह ऐसी भावना रखता है कि 'यही भगवान् है।' जब तक आपके दर्शन नहीं हुए थे तब तक हम सब में आपकी ही भावना करते थे। अब आपके दर्शन हो जाने पर आपको छोड़कर हम भावना सिद्ध करने के लिए कहाँ जाएँ?

परमात्मा ने कहा, "मेरी आज्ञा है कि तुम अपने घर जाओ।" गोपियों ने कहा कि हम आपकी आज्ञा मानकर घर तो जाएँ, किन्तु हमारा मन जो आपके पास है, उसे वापस दीजिए।

परमात्मा ने कहा, "तुम्हारा मन तो मुझ में मिल गया है।" परमात्मा में मन मिलने के बाद उसे परमात्मा भी अलग नहीं कर सकता। जो मन भगवान् को अर्पण किया जाता है, वह उसमें मिल जाता है। उसे भगवान् भी अलग नहीं कर सकता।

एक गोपी बोली, "जहाँ मन मिलता है वहीं आत्मा स्थिर हो जाती है। हे नाथ, ऐसा मत कीजिए।"

एक ब्राह्मण ने छह महीने तक समुद्र देव की पूजा की। इससे समुद्र देव प्रसन्न हुए और वरदान माँगने को कहा। ब्राह्मण ने वरदान माँगा, "महाराज, मैं घर से जो जल ले आया और तुम्हें अर्पित किया, उसे मुझे वापस कर दो।"

वरुण देव ने कहा, "वह जल तो मुझमें मिल गया। अब वह वापस नहीं मिल सकता।"

जैसे समुद्र वह जल अलग नहीं कर सकता वैसे ही परमात्मा में समाया गया मन ईश्वर भी अलग नहीं कर सकता।

प्रभु ने कहा, "सखियो, तुम्हारे वचन बड़े सुन्दर हैं। तुम्हारी इच्छा क्या है?" गोपी कहती हैं–

सिञ्चांग नस्त्वदधरामृतपूरकेण हासावलोककलगीतजहृच्छयाग्निम्।
नो चेद् वयं विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ते॥

(१०-२९-३५)

मुझे अधरामृत दीजिए। मैं अधरामृत लेने आई हूँ।

भागवत समाधि-भाषा का ग्रन्थ है। अधरामृत का अर्थ भागवत में एक-दो स्थानों पर ऐसा किया गया है–इतर राग विस्मरणम् यानी जहाँ जगत् नहीं है, जहाँ मैं नहीं हूँ, जहाँ केवल परमात्मा ही विराज रहा है। उस परमात्मा के साथ मैं एकाकार हो जाऊँ। परमात्मा के साथ एकाकार होने का अर्थ जगत् की विस्मृति है। मुझे ऐसा ही अधरामृत दीजिए। गोपी अधरामृत माँगती है। मुझे ऐसा ज्ञानामृत दीजिए। पृथ्वी ही धरा है–"धरति इति धरा।" संसार के विलासी जीव तो धरामृत का भोग करते हैं, जो अमृत पीने पर मृत्यु होती है। 'धरामृतम् इति न भवति ते इति अधरामृतम्' ऐसा ज्ञानामृत दो कि मैं एक क्षण भी श्रीकृष्ण से दूर न होऊँ, ऐसा अधरामृत दो कि आपका नित्य संयोग प्राप्त हो। यानी जहाँ जगत् नहीं, जहाँ केवल परमात्मा है। गोपी अब श्रीकृष्ण से अलग रह ही नहीं सकती। उसे अब श्रीकृष्ण का वियोग असह्य है। रासलीला में गोपी श्रीकृष्ण का रूप ग्रहण करती है। वह कहती है, "मुझे ऐसा अधरामृत दीजिए। उसे ही पीने मैं यहाँ आई हूँ।" श्रीकृष्ण

ने कहा, "तुम्हें तो अधरामृत लेने की इच्छा है, किन्तु यदि मेरी इच्छा अधरामृत देने की न हो तो? मुझे अधरामृत नहीं देना है। तुम यहाँ से अपने घर जाओ।" गोपियों ने कहा, "आप घर जाओ, घर जाओ" किससे कहते हैं। हम आपको अपने लिए नहीं मना रही हैं। हम जानती हैं कि आप बड़े ही संकोची हैं। यदि हम सब घर चली जाएँ, तो आप यहाँ रहकर क्या करेंगे? भगवान् की शोभा भक्तों से है। आप भी हमसे मिलने के लिए आतुर हैं। ईश्वर की इच्छा होती है कि जीव मेरा अंश है, वह मुझसे मिले। हे नाथ, हम पर कृपा करो। हमारे मन में श्रीकृष्ण को छोड़ दूसरा कोई नहीं है। हम यहाँ से घर जाकर आपके वियोग में प्राण-त्यागकर आपसे ही मिलने वाली हैं। अन्तिम उपाय तो हमारे हाथ में है। अर्थात् हम अपने प्राण छोड़कर आपसे मिलने ही वाली हैं, किन्तु उसका कलंक आपको न लगने पाए। आपकी अपकीर्ति न हो, इसीलिए हम आपको मना रही हैं।

नो चेद्वयं विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा ध्यायेन यार्मापदयोः पदवीं सखे ते।

मुझे मरण से थोड़ी भी भीति नहीं लगती। मृत्यु से वही घबराता है; जिसके मन में वासना होती है। जिसके मन में वासना नहीं होती, उसे मृत्यु से कोई भय नहीं लगता। मृत्यु तो मिलन कराने वाली होती है, वह परमात्मा के साथ ऐक्य कराती है। गोपियों को मरने का न तो कोई दुःख है, न भीति है। प्रभु ने यह सुना और उनकी हार हो गई।

भगवान् विचार करते हैं, "इन गोपियों में कितनी आतुरता है? मैं इनसे मिलूँ और मिलन-क्रम में जिसकी अन्तिम बारी हो, वह कदाचित् अपने प्राण छोड़ दे तो?" इसीलिए श्रीकृष्ण ने जितनी गोपियाँ थीं उतने स्वरूप धारण कर यह अनुभव कराया कि मैं तेरे साथ ही हूँ। हजारों वर्षों से भगवान् से बिछुड़ा हुआ यह जीव प्रभु के पास आया है और भगवान् उसे भुजाओं में भरकर आलिंगन देते हैं। गोपी और श्रीकृष्ण का यह मिलन जीव ईश्वर का मिलन है। इस समय अंशी और अंश एक हो गए हैं। गोपी के हाथ में भगवान् आ गए हैं। वे इस बात से मगन हैं कि मुझे परमात्मा मिले हैं। इससे उन्हें अत्यन्त आनन्द हुआ। आज भगवान् को भी आनन्द हो रहा है कि मुझसे बिछुड़ा हुआ अंश आज मुझसे मिला है। रास में संगीत, साहित्य और नृत्य तीनों का समन्वय हुआ है। गोपियाँ आनन्दातिरेक में नाच रही थीं। उन्हें देखकर श्रीकृष्ण ने भी ताल का अनुसरण करते हुए नाचना शुरू कर दिया।

क्ष्वेल्यावलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणामुत्तम्भयन् रतिपतिं रमयाञ्चकार।

(१०-२९-४६)

शुकदेवजी महाराज ने दर्शन करते-करते कहा है, "यह लीला खुले मैदान में हुई है। यह दरवाजा बन्द करके नहीं की गई। श्रीकृष्ण ने वृन्दावन में खुले मैदान में यह लीला की है। प्रत्येक

गोपी के साथ श्रीकृष्ण का एक स्वरूप है। मध्य में राधा-माधव हैं। उस समय ब्रह्मादिक देव इस लीला के दर्शन करने आए। ब्रह्माजी ने विचार किया कि यह लीला शुद्ध तो है; किन्तु मेरे विचार से कुछ लोक-विरुद्ध है। गीता में भगवान् ने कहा है, "मेरा अवतार धर्म-रक्षण के लिए है।" वास्तव में इस मिलन में कोई विकार नहीं है, कोई वासना नहीं है। यह बिल्कुल निष्काम है, शुद्ध है। फिर भी लोक-विरुद्ध है इस प्रकार स्त्रियों के साथ नाचना-कूदना अधर्म है। इससे ब्रह्माजी को थोड़ी शंका हुई। श्रीकृष्ण तो ब्रह्माजी के मन में विराजमान हैं, अन्तर्यामी हैं। श्रीकृष्ण को ज्ञात हुआ कि ब्रह्माजी की भावना कुछ बिगड़ी है। मैंने उसे धर्म का मर्म समझाया है; किन्तु आज वह मुझे समझा रहा है। प्रभु ने अब ऐसी लीला की कि गोपी को छाती से लगा कर आलिंगन किया और उसे आत्मस्वरूप दान किया। अब साड़ी पहनने वाली कोई गोपी नहीं रह गई। सभी पीताम्बर धारी कृष्ण बन गईं। अब श्रीकृष्ण के साथ श्रीकृष्ण की क्रीड़ा हो रही है। शुद्ध जीव अब ब्रह्म रूप बन जाता है। ब्रह्म का ब्रह्म के साथ विलास करने का नाम रास है।

यदि सजातीय सजातीय से मिले तो धर्म-मर्यादा का भंग नहीं होता। विजातीय का सजातीय से मिलना यह भले ही धर्म-भंग हो। यह तो सयुजा सखाया अर्थात् आत्मा का अंश परमात्मा को मिला। यह लोक विरुद्ध नहीं हो सकता न तो धर्म-विरुद्ध है। यह तो स्वयं धर्म का फल है। ब्रह्माजी को दर्शन हुआ कि साड़ी पहनने वाली कोई गोपी है ही नहीं। सभी पीताम्बरी धारी श्रीकृष्ण हैं। तब उन्हें विश्वास हुआ कि यह मिलन लोक-विरुद्ध नहीं है, यह अति शुद्ध है। ब्रह्माजी साष्टांग वन्दन करते हैं और रासबिहारी लाल की जय-जयकार करते हैं। जब ब्रह्माजी वन्दन कर खड़े हुए तब लाला ने विनोद किया अब तो पीताम्बरधारी कृष्ण दिखाई नहीं देते, सब गोपियाँ हैं। श्रीकृष्ण एक बार दर्शन कराते हैं तो सब श्रीकृष्ण ही हैं, उनके सिवाय कोई अन्य नहीं है। अब जो दर्शन कराते हैं, उनमें कोई पीताम्बरधारी श्रीकृष्ण नहीं है। सभी साड़ी पहनने वाली गोपियाँ ही हैं। यह पूर्ण अद्वैत की कथा है।

श्रीकृष्ण-लीला का रहस्य श्रीकृष्ण-कृपा से ही ध्यान में आता है। अब गोपी के साथ श्रीकृष्ण का स्वरूप दिखाई देता है। उस समय नारदजी वहाँ आए। उनकी इच्छा हुई कि यदि मैं अन्दर जाऊँ तो क्या भगवान् मुझे आलिंगन देंगे? मुझे परमात्मा से मिलना है लेकिन इधर तो सखियों का पहरा है। उन्होंने नारदजी से कहा, "आप दूर से दर्शन कर सकते हैं। आपको अन्दर प्रवेश नहीं मिल सकता। आप अन्दर नहीं जा सकते।" प्रवेश न मिलने पर नारदजी को दुःख हुआ। उनको मन में ऐसा आया कि ब्रह्माजी का पुत्र होकर मैंने बड़ी भूल की। मैं यदि गोपी हुआ होता

तो मुझे अन्दर प्रवेश मिलता। अब नारदजी 'श्री राधे-राधे' कहकर रोने लगे। इस पर राधाजी को दया आ गई। श्रीधाम वृन्दावन में यदि कोई जीव रोने लगे, तो श्रीराधाजी वहाँ तुरन्त पहुँच जाती हैं।

आनन्दमय वृन्दावन में कोई रोता नहीं है। वहाँ तो ब्रह्म भी नाचता है। राधाजी नारदजी से पूछती हैं, 'नारद, तू क्यों रोता है? तुझे क्या हो गया है?' उस समय नारदजी ने हाथ जोड़कर कहा है 'मुझे अन्दर आना है किन्तु ये सब मुझे रोकती हैं।' राधाजी की आज्ञा मिल गई। नारदजी राधा-कुण्ड में स्नान कर रहे हैं। इससे उनमें अलौकिक गोपी भाव पैदा हो जाता है, और नई नारदी गोपी उत्पन्न हो उठती है। अब नारदजी ने पुरुषत्व के अभिमान का त्याग कर दिया। क्योंकि किसी पुरुष या स्त्री को रास में प्रवेश नहीं मिलता। राधाजी इस नई सखी को श्रीकृष्ण के पास ले जाती हैं। श्रीकृष्ण नारदी सखी का आलिंगन कर रहे हैं। नारदजी ने विचार किया यदि भगवान् मिलता हो, तो साड़ी पहनने से मेरा क्या बिगड़ता है? मैं बहुत भटक चुका। मैं कथाकार हूँ, मैं पुरुष हूँ। यह अहं धारण कर मैं बहुत दुःखी हुआ। गोपियाँ स्त्रीत्व छोड़कर प्रभु से मिलने आती हैं। इसलिए नारदजी ने पुरुषत्व का अभिमान छोड़ दिया। उनमें गोपीभाव जागृत हो उठा। इस प्रकार प्रभु ने गोपियों को परमानन्द दिया है और गोपियाँ कृतार्थ हो उठी हैं।

६७- वियोग-लीला

अब थोड़ी वियोग-लीला का वर्णन आता है। जीव को ईश्वर का वियोग है। ईश्वर के वियोग में यह जीवन कैसा होना चाहिए, इसका आदर्श गोपियों ने इस वियोग-लीला में प्रस्तुत किया है। परमात्मा के साथ रास-क्रीड़ा करते-करते गोपियों के मन में सूक्ष्म अभिमान पैदा हो गया है। वे मन में विचार करती हैं, मेरे समान इस संसार में कोई भाग्यशाली नहीं है। मैं बहुत श्रेष्ठ हूँ। पहले तो ये इनकार करते थे, किन्तु अब प्रेम से क्रीड़ा कर रहे हैं। मैं अतिशय सुन्दर हूँ, अत्यन्त योग्य हूँ। परमात्मा जीव के सारे अपराध क्षमा करता है, किन्तु यदि जीव में अभिमान आ जाए तो वे उसकी उपेक्षा नहीं करते। गोपियों में अभिमान आने के कारण भगवान अचानक अन्तर्धान हो गए। गोपियों को प्रभु का वियोग हो गया।

गोपियों में यह अभिमान आया कहाँ से? उनके मन में श्रीकृष्ण को छोड़कर कुछ था ही नहीं। जो एकबार परमात्मा से मिलता है, उसे कभी प्रभु का वियोग नहीं होता। पारसमणि एक बार लोहे को सोना बनाने के बाद उसे लोहा नहीं बना सकती, वह सोना ही रहता है। इसी प्रकार ब्रह्म-स्पर्श के बाद जीव ब्रह्म-रूप हो जाता है। फिर भी प्रभु ने यहाँ अपनी लीला दिखाई है और उन्होंने ही गोपियों में अभिमान भी उत्पन्न कर दिया है। भागवत के सभी श्लोकों का मनन करने

पर ऐसा प्रतीत होता है कि गोपियों में अभिमान हो ही नहीं सकता। वे तो शुद्ध हैं, निष्काम हैं। इसलिए उनमें यह जो अभिमान पैदा हुआ है, वह ईश्वरेच्छा से ही पैदा हुआ है। ठाकुरजी की लीला करने की इच्छा होने के कारण ही प्रभु की स्वजनमोहिका माया ने गोपियों के मन में अभिमान जागृत किया।

भगवान की माया तीन प्रकार की होती है—स्वमोहिका, स्वजन मोहिका और विमुखजन मोहिका। श्रीकृष्ण को स्वयं में भी मोह उत्पन्न कराने वाली माया स्वयं मोहिका माया है। जब प्रभु को लीला करनी होती है, तब वे अपने जीवों में मोह उत्पन्न करने वाली माया उत्पन्न कर देते हैं। उसे स्वजन मोहिका माया कहते हैं। साधारण जीव को भ्रम में डालने वाली माया विमुखजन मोहिका माया है।

स्वजन मोहिका माया के वश में होने के कारण गोपियों में सूक्ष्म अभिमान पैदा हुआ, रासलीला में गोपी की दृष्टि संसार के किसी विषय में नहीं गई, किन्तु श्रीकृष्ण से हट गई। गोपी ने जगत् को नहीं देखा, किन्तु अपने को ही देखना आरम्भ कर दिया।

श्रीकृष्ण में वैराग्य परिपूर्ण अवस्था में है। जहाँ प्रेम है, वहाँ कन्हैया मक्खन-मिश्री देने पर नाचने लगता है। ऐसा प्रेम से होता है, न कि आसक्ति से। जो दूसरे से आनन्द लेने जाता है, वह दुःखी होता है। इसलिए यह भावना रखकर प्रेम न करो कि कोई तुम्हें सुख देगा। श्रीकृष्ण में प्रेम परिपूर्ण है, ज्ञान परिपूर्ण है और वैराग्य भी परिपूर्ण है। इसीलिए द्वारकानाथ होने के बाद वे कभी गोकुल में नहीं आए। श्रीकृष्ण दूसरे से आनन्द नहीं लेते। वे स्वयं आनन्दस्वरूप हैं। जिसका आनन्द दूसरे से होता है, उसके समान कोई दुःखी नहीं है। गोपी को अभिमान हुआ कि श्रीकृष्ण अधीन हैं। जैसे मैं नचाती हूँ वैसे वे नाचते हैं। प्रभु ने कहा कि अब गोपी को मेरी आवश्यकता नहीं है। वह मुझे अब कहाँ देखती है? वह तो अपने को ही देखती है। इसलिए भगवान् अन्तर्धान हो गए।

यशोदामाता की गोद में श्रीकृष्ण हैं। फिर भी वह दूध के उफान की ओर देखती है। वात्सल्य भाव में यदि दृष्टि किसी अन्य की ओर जाए तो बुरा नहीं है। जिसे जगत् को देखकर कुछ सुख का भास होता है, वह ईश्वर से विमुख होता है। इसलिए तुमको यदि जगत् दिखाई दे तो दिखाई देने दो, किन्तु जगत् को देखने की इच्छा मत करना। जगत में देखने योग्य तो केवल ईश्वर ही है। प्रेम-भाव में प्रियतम से बढ़कर कोई प्रिय लगे तो वह ईश्वर को पसन्द नहीं। यदि भगवांन् की अपेक्षा जगत् के विषय मधुर लगें तो भक्ति में व्यभिचार पैदा हो जाता है। गोपी की दृष्टि जगत् में तो नहीं गई, किन्तु वह अपने को देखने लगी। मान के पीछे अभिमान खड़ा रहता है। अनेक लोगों को कम मान मिलने पर मन अभिमान से घायल हो जाता है। ज्ञानियों को अभिमान बहुत सताता है। उनमें प्रायः

अहं बढ़ जाता है। ऐसा भाव पैदा हो जाता है कि जहाँ हरि नहीं है वहाँ मैं नहीं हूँ और जहाँ मैं हूँ वहाँ हरि नहीं हैं। गोपी में भी अहं के जागृत होने से भगवान् अन्तर्धान हो गए।

तासां तत् सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत॥ (१०-२९-४८)

अन्तर्धान का अर्थ अन्दर छिपना है। अर्थात् वे अन्तर्हित हो गए। तात्पर्य यह है कि अब वे अन्दर रहकर हित करते हैं। श्रीकृष्ण अब गोपियों के हृदय में प्रवेश करते हैं। गोपियों की आँखों पर अब अभिमान का पर्दा पड़ गया। इसलिए उन्हें अब प्रभु दिखाई नहीं देते। अर्थात् गोपियों को बहिरंग में परमात्मा का वियोग हो गया है।

जिसे वियोग में अत्यन्त दुःख होता है, उसके संयोग में अत्यन्त आनन्द आता है। जीव के लिए तो वियोग से ही संयोग की पुष्टि होती है। परमात्मा के लिए संयोग-वियोग सब समान हैं। जगत् की उत्पत्ति, पालन और संहार तीनों स्थितियों में परमात्मा में कोई परिवर्तन नहीं होता। जगत् क्षण-प्रतिक्षण बदलता है, किन्तु परमात्मा के रूप में परिवर्तन नहीं होता। ईश्वर का रूप आनन्दमय है। एक वैष्णव ने भगवान् से कहा, "महाराज, आपका स्वरूप सदैव एक-सा रहता है। उसमें कुछ-न-कुछ परिवर्तन होना चाहिए।" प्रभु ने कहा, "जा, अब तुझे मेरा वियोग होगा।" यह कहकर प्रभु अन्तर्धान हो गए।" वैष्णव को खूब वियोग हुआ। वह रोने लगा और प्रभु का कीर्तन करने लगा। यह देख प्रभु प्रकट हो गए। प्रभु को देख उसे खूब आनन्द हुआ। यह आनन्द क्यों अधिक हुआ? स्पष्ट है कि वियोग के बाद प्रभु के दर्शन से आनन्द बढ़ जाता है। प्रभु ने गोपियों को परमानन्द का दान देने के लिए वियोग-लीला की है।

प्रभु का अन्तर्धान होना भी उनकी लीला है। श्रीकृष्ण ने पीताम्बर माथे पर बाँध लिया। गोपी ने समझा कि यह कोई सखी हैं वह भगवान् को बाहर ढूँढ़ने लगी। श्रीकृष्ण तो गोपियों के मण्डल में ही हैं। आनन्द तो अन्दर है। उसे बाहर मत ढूँढ़ो।

श्रीकृष्ण-वियोग में गोपियाँ श्रीकृष्ण-लीला का खूब अनुकरण करती हैं। वे श्रीकृष्ण-स्मरण में इतनी तन्मय हो गई हैं कि वृक्ष से पूछती हैं कि मेरे श्रीकृष्ण कहाँ हैं? उनको यह भी ख्याल नहीं है कि पेड़ बोलते नहीं। एक को सभी के अन्दर श्रीकृष्ण के दर्शन से ऐसी प्रतीति हुई कि मैं ही श्रीकृष्ण हूँ।

लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल।

गोपियों ने श्रीकृष्ण की बड़ी खोज की, किन्तु वे दिखाई नहीं दिये। गोपियों को पूर्ण विश्वास है कि मेरा श्रीकृष्ण मुझे छोड़कर कहीं नहीं जा सकता। वह यहीं कहीं छिपा हुआ है।

वह वे सब बातें सुनता है, जो हम सब बोलती हैं। किसी गोपी को ऐसा लगता है कि श्रीकृष्ण मेरी दाहिनी तरफ खड़े हैं। किसी को बाईं ओर खड़े प्रतीत होते हैं। किसी को अपने पीछे खड़े प्रतीत होते हैं। किसी को अपने सम्मुख और किसी को सर्वत्र दिखाई देते हैं। वियोग में ध्यान-स्मरण में अतिशय तन्मयता के कारण श्रीकृष्ण के प्रत्यक्ष उपस्थिति की प्रतीति होती है। गोपियों को ऐसी प्रतीति हुई कि हम जैसे-जैसे उन्हें अधिक ढूँढ़ रही हैं, वैसे-वैसे वे निकुँज में अधिकाधिक अन्दर चले जा रहे हैं। वे निकुँज के अन्दर अन्दर प्रवेश करते जाएँ और उनके पैरों में काँटे धँस जाएँ तो क्या हो?

अन्त में गोपियों ने निश्चय किया कि श्रीकृष्ण जिस स्थान से अन्तर्धान हुए हैं, वहाँ चलकर उन्हें स्मरण-कीर्तन करते हुए खोजें। ज्ञान-मार्ग में ध्यान प्रधान होता है और भक्ति मार्ग में स्मरण-कीर्तन प्रधान है। तुम ईश्वर का सतत ध्यान भले ही न कर सको, किन्तु संसार के किसी भी विषय का ध्यान मत करो। जगत् को देखने से मन नहीं बिगड़ता अपितु जगत् का ध्यान करने से मन बिगड़ता है। ज्ञान-मार्ग में प्रवृत्ति उतनी ही होती है। प्रवृत्ति पूरी होने पर ध्यान किया जाता है। भक्ति-मार्ग में गुण-गान मुख्य होता है। निवृत्ति के समय मनुष्य जगत की स्तुति-निन्दा करता है। महापुरुष न तो स्तुति करते हैं, न निन्दा करते हैं। सूर्य नारायण जगत् को देखते हैं, किन्तु बोलते नहीं। तुम भी जगत् कैसा है, इसका परिचय प्राप्त करना, किन्तु उसका चिन्तन मत करना। जब-जब समय मिले, तब-तब परमात्मा की स्तुति करना।

अब गोपी स्तुति करती हैं। उस स्तुति को महापुरुष गोपी-गीत कहते हैं। गोपी-गीत वियोग का गीत है।

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते॥

(१०-३१-१)

हे श्रीकृष्ण जब से आपने इस ब्रजभूमि में जन्म लिया है, तब से इसका महत्त्व खूब बढ़ गया है। भगवान् को ब्रज बहुत प्रिय है। ब्रज की महिमा बैकुण्ठ से भी बढ़ गई। है। कण्ठ अर्थात् बुद्धि। विगता कुण्ठा इति बैकुण्ठ। जो निष्काम बुद्धि में प्रकट होता है। उसे बैकुण्ठ कहते हैं। सूर्य के प्रकाश में अग्नि है, किन्तु वह अग्नि नहीं उत्पन्न कर सकता। अग्नि तो सूर्यमणि द्वारा उत्पन्न होती है। इसी प्रकार परमात्मा सर्वव्यापक है, किन्तु वह निष्काम बुद्धि से ही प्रकट होता है। बैकुण्ठ में काम नहीं है किन्तु काम और क्रोध तो रजोगुण है। गीता में कहा गया है-

काम एव क्रोध एव रजोगुण समुद्भवः

बैकुण्ठ अति दिव्य सत्व प्रधान भूमि है। वहाँ जाने के बाद जीव संसार में नहीं आता।

गोपी कहती है कि वैकुण्ठ से भी ब्रज की कक्षा ऊँची हो गई है। वैकुण्ठ में परमात्मा राजाधिराज हैं। यदि कोई वैकुण्ठ में जाए, तो प्रभु का चरण स्पर्श नहीं कर सकता। वहाँ उनकी चरण-सेवा लक्ष्मी करती हैं। प्रभु की चरण-पादुका सामने पड़ी होती है स्वर्ग में जाने वाला प्रभु के चरणों का नहीं, बल्कि उनकी चरण-पादुका का स्पर्श करता है। वैकुण्ठ में ऐश्वर्य है, ब्रज में प्रेम है। जहाँ ऐश्वर्य होता है, वहाँ पर्दा होता है, किन्तु ब्रज में कोई पर्दा नहीं है ग्रन्थों से पता चलता है कि नारायण निद्राहीन होते हैं और लक्ष्मीजी इनकी चरण-सेवा करती हैं। जब कोई जीव स्वर्ग में पहुँचता है, तब लक्ष्मीजी चरण सेवा करते हुए जोर से चरण दबाती हैं। इसके बाद ठाकुरजी अपनी आँखें थोड़ी-सी खोलते हैं और पूछते हैं कि कहो क्या बात है? उन्हें श्रीलक्ष्मीजी बताती हैं कि यह जीव आपकी शरण में आया है, सुनकर परमात्मा कहते हैं कि इसे बैकुण्ठ में रखो। इतना कहकर वे पुनः आँख बन्द कर सो जाते हैं। बैकुण्ठ में तो ऐश्वर्य है, जहाँ के वे राजाधिराज हैं। ब्रज में श्रीकृष्ण किसी के बालक हैं, किसी के सखा हैं। यहाँ केवल प्रेम है। श्रीकृष्ण ने ब्रज में रहकर व्रजवासियों को जो आनन्द दिया है, वह बैकुण्ठ में नहीं है। क्या कोई बैकुण्ठ में नारायण से कहने की हिम्मत कर सकता है कि मेरा यह काम करो। कन्हैया ब्रज में यदि किसी के घर जाता है तो वह उनसे कहता है, ''क्या मक्खन ले आऊँ! यदि तुम्हें मक्खन खाना हो, तो मेरा थोड़ा सा काम करो। यह सुनकर कन्हैया कहता है कि तेरा क्या काम करना है? गोपी कहती है, 'मेरा वह पीढ़ा (पाटला) ले आ।''

जहाँ प्रेम होता है वहाँ संकोच नहीं होता। यह तो शुद्ध प्रेम-लीला है। कन्हैया पाटला (पीढ़ा) उठाता तो है; किन्तु भारी होने के कारण उसे उठा नहीं पाता। कन्हैया अत्यन्त कोमल शरीर का है। यों तो उसने अपनी तर्जनी उँगली पर गोवर्धन उठा लिया था फिर भी उसे मक्खन का लालच हैं वह पीढ़ा उठाता तो है; किन्तु वह भारी होने के कारण रास्ते में उसके हाथ से छूट गिरता है और उसका पीताम्बर भी खुल जाता है। वेदान्त में लिखा है कि ज्ञानी पुरुष को ब्रह्म-साक्षात्कार होता है। फिर भी ज्ञानी पुरुष जब तक पंचभौतिक शरीर में होता हैं, तब तक माया का थोड़ा पर्दा होता ही है। उसे प्रारब्ध का कुछ भोग भोगना ही पड़ता है। माया यदि थोड़ी भी बाकी होती है, तो भी प्रारब्ध भोगना पड़ता है। इसलिए वह माया के आवरण के साथ ही परमात्मा के दर्शन करता है। गोपियाँ निरावरण परमात्मा के दर्शन करती हैं। जहाँ अतिशय प्रेम होता है, वहाँ परदा छूट जाता है।

पीढ़ा गिरते ही कन्हैया रोने लगता है। गोपी दौड़ कर आती है और कहती है, अरे! तुझे क्या हो गया? क्या कुछ चोट लग गई? कन्हैया कहता है, "चोट तो नहीं लगी; किन्तु मेरा पीताम्बर खुल गया है।" गोपी लाला को पीताम्बर पहनाती है। जहाँ ऐश्वर्य होता है, वहाँ पर्दा होता है। प्रेम में पर्दा नहीं होता। कृष्ण ने गोपियों को जो आनन्द दिया है, वह भला वैकुण्ठ में कहाँ मिल सकता है? वैकुण्ठ में नन्द-महोत्सव नहीं होता, वहाँ नारायण का जन्म ही नहीं होता, नन्द-महोत्सव की बात कैसे उपस्थित हो?

भगवान् लक्ष्मीजी को अपने हृदय में रखते हैं। क्योंकि लक्ष्मीजी उन्हें अतिशय प्रिय हैं। एक कारण यह भी है कि यदि कोई जीव ईश्वर की बहुत भक्ति करे तो उस पर कृपा दिखाने के लिए भगवान् लक्ष्मीजी से कहते हैं। लक्ष्मीजी की एक बार कृपा हो जाय, तो जीव उस आश्चर्य में चकमका उठता है। जीव को मान सम्मान वृद्धि का मोह हो उठता है। थोड़ा मोह होते ही जीव ईश्वर से दूर हो जाता है। ईश्वर जीव की अच्छी तहर परीक्षा करने के बाद ही उसे वैकुण्ठ में स्थान देता है। इसीलिए उन्होंने अपने हृदय में लक्ष्मीजी को स्थान दे रखा है।

लक्ष्मीजी ने परमात्मा से कहा, "आप मुझे अपने हृदय में रखते हैं; किन्तु मुझे तो आपके चरणों की सेवा ही करनी है।" "परमात्मा के चरणों में अलौकिक दिव्य रस है। कुछ महापुरुषों को मुक्ति की अपेक्षा भगवान् के चरणों में पड़ा रहना खूब भाता है, अधिक आनन्द मिलता है। यह दास्य भक्ति है।

लाला को एकबार अपने मन में यह विचार आया कि लोगों को मेरे चरण में क्या विशेषता दिखाई देती है? वे क्यों मुक्ति को तुच्छ समझते हैं और मेरे चरणों में पड़े रहना पसन्द करते हैं? मेरे चरणों में आखिर क्या है? वे अपना चरण उठाकर मुंह में डालते हैं।

करारविन्देन पदारविंदं मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम्

वैकुण्ठ तो सत्व-प्रधान भूमि है। वहाँ रज नहीं है।

जहाँ रजोगुण न हो, वहाँ भला रज कहाँ मिलेगी? लक्ष्मीजी को भगवान्‌जी के चरण रज लेने की इच्छा है। इसलिए वे व्रज में एकबार आती हैं।

व्रज प्यारा है, वैकुण्ठ न आऊँ।

श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि॥

गोपी कहती हैं, "सब बैकुण्ठ में लक्ष्मीजी की सेवा करते हैं। वे ही लक्ष्मीजी ब्रज में दासी बनकर सेवा करती हैं। ब्रज के वृक्षों-पत्तों में लक्ष्मीजी का प्रवेश होता है। वैकुण्ठ से भी ब्रज श्रेष्ठ है। हे नाथ! हम आपको सभी में खोज रही हैं। आप हमें दर्शन दीजिये।" इस सृष्टि में कई ऐसे

जीव हैं, जिन्हें प्रभु का मूल्य एक पैसा भी नहीं है, न उन्हें प्रभु के दर्शन की इच्छा ही होती है। वे भगवान् को नहीं खोजते। गोपी कहती हैं, 'हे प्रभु, हम सभी में आपको ढूँढ़ रही हैं, हम आपके लिए जीवित हैं। यदि आपके प्रयोग में हमारे प्राण प्रस्थान कर जायेंगे तो आपको कलंक लगेगा, आपकी अपकीर्ति न हो इसीलिए हम जी रही हैं और आपको ढूँढ़ रही हैं। हे दयित! दृष्यताम् (दया ही श्रीकृष्ण का स्वरूप है।) परमात्मा अकारण कृपा करते हैं। वे जीव की योग्यता पर बहुत विचार नहीं करते। जीव पर अकारण कृपा करने के कारण आप दयित हैं। आप हमारे लिए प्रत्यक्ष प्रकट हों।'

ज्ञानी महापुरुष कहते हैं कि भगवान् के दर्शन इन चर्म-चक्षुओं से नहीं होते, ज्ञान-चक्षुओं से होते हैं। वेदान्त का सिद्धान्त है कि जो सबका द्रष्टा है, उसे भला कौन देख सकता है? किन्तु गोपी कहती है कि अब मेरी आँखों के सामने प्रकट हों। भक्ति-प्रेम के अतिशय बढ़ जाने पर इन चर्म चक्षुओं से भी भगवान् दिखाई देते हैं। गोपी भगवान् से कहती हैं, 'आप बनें दृश्य और मैं बनूँ द्रष्टा।' वह श्रीकृष्ण के रसात्मक रूप के दर्शन का भी अनुरोध करती है, 'हम आपको सबमें ढूँढ़ रही हैं। आपको ढूँढ़ने वाला रात्रिकाल में वन में भटके यह ठीक नहीं है। इसलिए आप हमारे समक्ष प्रकट हों, हमें प्रत्यक्ष दर्शन दें।

सखियाँ परमात्मा को मनाती हैं, ''हे नाथ कृपा कीजिए और जगत को प्रेम का आदर्श समझाने के लिए आप आए हैं, यह आदर्श लुप्त होगा तो प्रेम छिन्न-भिन्न हो जायेगा। स्वरूप तो ब्रह्म छिपाता है। आपका स्वरूप छिपाना उचित नहीं है। हम आपकी दासियाँ हैं। यदि हमसे कुछ भूल हुई हो तो हमें दण्ड दें, किन्तु हमारा त्याग करना आपको उचित नहीं है, आपकी आँखें बहुत सुन्दर हैं। आपने आँख से ही हमें वरदान दिया है। आपने आँख से ही हमें बुलाया, आँख से ही हमें अपनाया और आज आँख से ही आप हमारा वध करें, यह ठीक नहीं। क्या आपने आज तक हमारा रक्षण इस वियोग में मारने के लिए किया है? कालियानाग से हमारी मृत्यु हुई होती तो अच्छा था, किन्तु यदि आपके वियोग से हमारी मृत्यु होगी, तो आपको कलंक लगेगा। आपने अघासुर, बकासुर से हमारी रक्षा की। आज हमें बिरहासुर सता रहा है। नाथ! कृपा करें। अपने चरण को हमारे मस्तक तक पहुँचने का अवसर दें।

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमंगलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥ (१०-३१-९)

आपके वियोग में कथामृत-नामामृत हमारी रक्षा कर रहा है। स्वर्ग का अमृत पीने से विकार-वासना बढ़ती है, पुण्य का नाश होता है। नामामृत-कथामृत वासना को भस्म कर देता है, पाप का नाश कर देता है। अन्नदान और द्रव्यदान से कुछ समय के लिए शान्ति मिलती है। निर्पेक्ष

बुद्धि से ज्ञान-दान करने वाला, कथा कहने वाला, ही बहुत बड़ा वीर है। आपकी कथा में आनन्द आता है।

प्रभु ने कहा है "यदि कथा में आनन्द आता है तो मुझे किसलिए खोज रही हो?"

गोपी कहती है, 'अब तो कथा में भी रस नहीं आता है। क्योंकि आपके दर्शन की आतुरता बढ़ गई है।'

रासलीला में संन्यासिनी गोपी है। गोपी का प्रेम-संन्यास है। वह कहती है, आपके लिए हमने सब कुछ छोड़ दिया है।' ऐसा कहकर श्रीकृष्ण का कीर्तन करते-करते गोपियाँ रोने लगीं? श्रीकृष्ण-दर्शन के लिये उनके प्राण व्याकुल हो उठे। गोपी का रुदन परमात्मा से सहन नहीं हुआ। उनके प्रेम के कारण परमात्मा प्रकट हो गये और उन्होंने कहा, 'सखी, मैं तुमसे सच कहता हूँ कि तुम्हें मेरे वियोग में जितना दुःख हुआ है उसकी अपेक्षा तुम्हारे वियोग में मुझे अधिक दुःख हुआ है। तुम्हारा मंडल बड़ा है। वह अन्दर-अन्दर बात करते हुए अपने दुःख को भूलता था और मैं अकेला बैठा-बैठा रोता था मुझे प्राप्त करने वाला जीव भला फिर से संसार में कैसे डूब सकता है! मुझे तुम्हारी अपेक्षा अधिक दुःख था। मैं तुम्हारे प्रेम का क्या बदला दूँ? मैं तुम्हारा ऋणी हूँ। इससे अधिक क्या कहूँ? इस प्रकार श्रीकृष्ण ने सखियों से बात की। इसके बाद जल-विहार और थल-बिहार कर रहे हैं।

रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः॥

(१०-३३-१७)

यह सुनकर गोपियाँ कृतार्थ हो गईं। प्रभु ने परमानन्द का दान किया है।

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः॥

(१०-३३-४०)

काम से क्रोध का जन्म हुआ है। किसी मनुष्य से मिलने की इच्छा को काम कहते हैं और परमात्मा से मिलने की इच्छा को प्रेम कहते हैं। श्रीकृष्ण से मिलने की तीव्र इच्छा ही गोपी है और तीव्र प्रभु-मिलन की इच्छा से, अलौकिक काम से लौकिक काम का विनाश हुआ है। काम का नाश काम से ही करो। जब मन में परमात्मा से मिलने की इच्छा होती है और हम कहते हैं कि अब मुझे ईश्वर से ही मिलना है, तभी काम का विनाश होता है।

विधिपूर्वक छह मास तक अनुष्ठान करने से धीरे-धीरे काम का नाश होता है। बहुत से साधु-सन्त आधी रात में स्नान करते हैं और गोपालजी की पूजाकर रासलीला का पाठ करते हैं।

यदि कोई जीव रास-लीला की कथा सुने और उसका मनन करे तो वह धीरे-धीरे काम पर विजय प्राप्त कर सकता है। परमात्मा को अर्पण किया गया काम ही निष्काम कर्म है। सकाम कर्म का चिन्तन करने से काम जागृत होता है; किन्तु यदि परमात्मा के साथ प्रेम करे तो जीव भी निष्काम बनता है। यही रास-लीला का रहस्य है।

हमने यहाँ रास-लीला की थोड़ी कथा सुनाई। इसके बाद प्रभु ने किस प्रकार शंखचूर दैत्य और सुदर्शन विद्याधर को सद्गति दी उस कथा का वर्णन है। इसके बाद युगल-गीत आता है।

वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम्।
कोमलांगुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः॥

(१०-३५-१)

युगल-गीत में गोपियाँ परमात्मा के स्वरूप का वर्णन करती हैं और उनकी एक-एक लीला का वर्णन करती हैं। यह संसार मायामय है। तुम यदि संसार का वर्णन करोगे, तो माया मन में आएगी। संसार का वर्णन करने से जीभ बिगड़ती है, मन बिगड़ता है। गोपियों को जब मौका मिलता है तब श्रीकृष्ण का वर्णन करती हैं, कृष्ण-लीला का वर्णन करती हैं। यदि तुम्हें अपना मन शुद्ध और शान्त रखना हो तो जगत् का वर्णन छोड़ दो। जगत् में जो कुछ है वह अपनी जगह पर ठीक होते हुए भी वर्णन करने योग्य नहीं है। वर्णन करना हो तो परमात्मा का वर्णन करो।

इसके बाद प्रभु ने अनेक राक्षसों का उद्धार किया।

६८- उस जन्म को धिक्कार है, जिसमें न प्रभु-आदर भरा।

यशोदायाः सुतां कन्यां देवक्याः कृष्णमेव च, रामं च रोहिणीपुत्रं वसुदेवेन बिभ्यता॥

(१०-३६-१७)

शुकदेवजी महाराज कहते हैं कि "राजन्! एकबार नारदजी राजा कंस से मिलने गए और उनसे कहा, "भाई मुझे अभी जो खबर मिली है, उसे मैं तुम्हें बताने आया हूँ। नन्दबाबा के गोकुल में लोग जिसे कन्हैया-कन्हैया कहते हैं वह उनका पुत्र नहीं है। वह वसुदेव का पुत्र है। वह देवकी की आठवीं सन्तान है। वही तुम्हारा काल है।" कंस बोला "मुझे शंका तो हो रही थी कि कृष्ण अनेक राक्षसों को मार रहा है। वही मेरा काल है और वही देवकी की आठवीं संतान है।" कंस राजा को आश्चर्य हुआ कि मैंने वसुदेव और देवकी को कैद में डाल रखा था। फिर यह कैसे वहाँ चला गया? नारदजी ने कहा, "भाई! तू बड़ा भोला है, वह भोला नहीं है। वह तो इस प्रकार गया कि तुझे खबर भी न पड़ी। कंस राजा को ऐसा मन में लगा कि मुझे धोखा देकर वसुदेव-देवकी

ने अपना पुत्र वहाँ पहुँचा दिया। कंस को क्रोध आ गया और वह वसुदेव को मारने के लिए तैयार हो गया। नारदजी को जिस प्रकार आग लगाना आता है उसी तरह बुझाना भी आता है। आजकल लोगों को केवल आग लगाना आता है। कुछ लोग तो आज ऐसे हैं जो सबेरे उठते ही आग लगाने की बात करते हैं। हमें सबेरे सोकर उठने के बाद आग नहीं लगाना चाहिए, बल्कि बिछौने पर बैठकर आधे घण्टे तक परमात्मा का स्मरण करना चाहिए। शान्ति से भक्ति करो, भगवान् का ध्यान करो, बड़े दुलार के साथ श्रीकृष्ण की सेवा करो, बिछौने पर बैठकर आधे घण्टे तक परमात्मा का स्मरण करना चाहिए। शान्ति से भक्ति करो, भगवान् का ध्यान करो, बड़े दुलार के साथ श्रीकृष्ण की सेवा करो, बिछौने पर बैठकर जप करो। भगवान् के चरण में वंदन कर कहो, "मैंने कथा सुनी। आज से मैं तुम्हारा हो गया हूँ। मुझे पाप करने से रोको, मुझे पाप करने की कुटेव पड़ी है। मेरी आँख और मेरे मन जो पाप करते हैं, मैं उसे नहीं छोड़ सकता। मैं आपकी शरण में आया हूँ। आप मेरे हृदय में विराजमान होकर मुझे पाप करने से बचाइये।" प्रातःकाल में की गई प्रार्थना बड़ी उपयोगी होती है। स्त्रियाँ किसी स्थान पर जब इकट्ठी होती हैं, तब कहती हैं कि तेरी बहू ऐसा कहती थी, वैसा कहती थी। ऐसा कहना महा पाप है। किसी की चुगली न करो। वैष्णव वह है जो वैर का विनाश करता है। नारदजी ने कंस से कहा कि वसुदेव को मारने से भला तुमको क्या मिलेगा? क्योंकि तेरा काल तो श्रीकृष्ण है। उसका अभी ग्यारहवाँ वर्ष शुरू हुआ है। वह बहुत कम उम्र का है, छोटा है। फिर भी वह बहुत होशियार है। तू अपने काल को मारने का प्रयत्न कर। कंस राजा को समझाकर नारदजी मथुरा से गोकुल आए। उन्होंने बालकृष्णलाल को वंदन किया और कहा, नाथ "मैं सब तैयारियाँ करके आया हूँ। अब आप मथुरा जायेंगे, कंस को मारेंगे और द्वारका के राजा बनेंगे। अनेक रानियों से आपका विवाह होगा। उस समय मैं आपका गृहस्थाश्रम देखने द्वारका आऊँगा। मैं आपकी सभी लीलाएँ जानता हूँ।" नारदजी एक-एक लीला का वर्णन करते हैं।

इस ओर कंस घबरा उठा। उसने वसुदेव और देवकी को फिर वेड़ियों से जकड़ दिया। वह विचार करने लगा कि श्रीकृष्ण को कैसे मारूँ? उस समय कंस से मिलने के लिये वहाँ बड़े-बड़े पहलवान आए और उन्होंने उसको समझाया कि तुम घबराना नहीं। वह बालक भला तुम्हें क्या मारेगा? तुम उसे मथुरा में बुला लो। मैं उसका हाथ पकड़कर उसे अखाड़े में उतारूँगा। मुझमें हजार हाथियों का बल है। मेरा वजन उससे सहन नहीं होगा। उसे मैं मिट्टी बना दूँगा और कुश्ती करते हुए ऐसा हुआ है यह लोगों को बताऊँगा। आपका नाम होगा। कंस के पुरोहित महाराज वहाँ आए हैं, और वे उसे समझाते हैं, पाँच दिन का एक धनुष-यज्ञ है। वह यदि ठीक तरह पूरा हो जाये,

तो यजमान का शत्रु मर सकता है और यजमान की आयु बढ़ सकती है। यदि यज्ञ में कोई विघ्न आ जाये और वह अधूरा रहे तो यजमान का नाश हो जाता है। कंस ने कहा 'किन्तु हमारे सामने विघ्न कैसे आयेगा? हम उसे दूर हटा देंगे। तुम शत्रु को मारने के लिए यज्ञ करो।'

कंस राजा को यह उपाय ठीक लगा और उसने यज्ञ की तैयारी करने का आदेश दे दिया। वह विचार करता है कि मैं इस यज्ञ के दर्शन के लिए नन्दबाबा को आमन्त्रण दूँगा। नन्दबाबा कृष्ण को लेकर मथुरा आयेंगे। इसके बाद मैं अपने हाथी को मदिरापान कराकर कृष्ण के सामने छोड़ दूँगा। हाथी उसे पैर के नीचे कुचल देगा। फिर भी यदि कृष्ण जीवित बचेगा तो उसे मेरे पहलवान मार डालेंगे। कंस राजा ने ऐसा षड्यन्त्र तैयार किया है और नन्दबाबा को यज्ञ के दर्शन के लिये निमन्त्रण देने का विचार किया है। उसने सोचा कि निमन्त्रण देने के लिये किसे भेजूँ? उसी समय उसे वयोवृद्ध अक्रूर की याद आई। उसने सोचा कि अक्रूर गम्भीर हैं, वयोवृद्ध हैं, वे विश्वाघात नहीं करेंगे। ऐसा विचार कर उसने अक्रूर के घर जाकर कहा, 'काका, मेरा एक खास काम आपको करना है। अभी नारदजी आए थे वे मुझसे कह गए हैं कि वसुदेव ने मुझे धोखा दिया है। नन्दबाबा के गोकुल में जिसे कन्हैया कहते हैं, वही मेरा काल है। मैं भी उसे कष्ट से मारूँगा। शत्रु को मारने के लिये मुझे यज्ञ करना है। कल मेरा रथ लेकर आपको नन्दबाबा के यहाँ आमन्त्रण देने जाना है कि वे यज्ञ के दर्शन के लिये अवश्य पधारें। नन्दबाबा को विश्वास हो कि राजा का मुझ पर प्रेम है। इसलिये मैं अपना सोने का रथ भेज रहा हूँ। नन्दजी भले बैलगाड़ी में बैठकर आवें किन्तु आप बालकों को मेरे इस रथ में बैठाकर ले आइए। इसके बाद हाथी उन्हें पैरों के नीचे कुचलेंगे, मेरे पहलवान भी उन्हें मारेंगे। मैंने अपने इस काल को मारने के लिये यह कपट किया है। मेरा इतना विशाल राज्य है, सुन्दर रानियाँ हैं। फिर भी मैं सुख-भोग नहीं कर सकता। मुझे अपने काल का बहुत भय लगता है। जिस समय मेरा काल मर जायेगा उसके बाद सुख भोगूँगा। काका, मैंने जो यह विचार किया है यह ठीक तो है?' अक्रूरजी ने कहा कि विचार करना मनुष्य के हाथ की बात है, किन्तु भाग्य में होने पर और परमात्मा की कृपा प्राप्त होने पर ही मानव का विचार सफल हो सकता है।

श्रीकृष्ण कँस के काल हैं। कंस को जीने की प्रबल इच्छा होने पर भी वह श्रीकृष्ण को अपने काल को—अपने पास बुलाता है। हमको मरने की बहुत इच्छा नहीं रखनी चाहिए और न बहुत जीने की ही इच्छा रखनी चाहिए। कथा सुनने के बाद एक ही इच्छा रखनी चाहिए कि मैं अब भगवान् का हो गया हूँ। मैंने अब पाप छोड़ दिया है, मुझे अब सतत भक्ति करनी है। जब भगवान बुलाए तब जाने को तैयार हूँ। जो सावधान होकर भक्ति करता है। उसे काल का भय नहीं

होता। समय आने पर जीव अपने आप ही काल को बुलाता है। कंस श्रीकृष्ण को मथुरा में न बुलाता तो अधिक समय तक जीवित रहता, किन्तु कंस का समय हो गया है। इसलिए वह अपने काल को बुलाता है। महापुरुषों ने कथा वर्णन करते हुए कहा है, व्यासजी का एक शिष्य था। उसका नाम दास था। वह गुरु की बड़ी सेवा करता था। एक दिन उसने हाथ जोड़कर व्यासजी से कहा कि महाराज मुझे कब मरना है यह बताइये। मेरा मरण कब होगा? व्यासजी ने कहा, 'ऐसा नहीं पूछना चाहिए। मनुष्य क्षण-क्षण मरता है। मृत्यु सिर पर बैठी है। उसे याद करके पाप छोड़ो और भक्ति करो। मृत्यु कब आएगी इसका विचार न करो।' दास ने कहा कि मुझे सचमुच यह जानना है कि मैं कब मरूँगा? मुझे वह समय आप अवश्य बताइए। व्यासजी ने कहा कि मृत्यु का समय जानने से कोई लाभ नहीं। यह सुनकर दास ने हठपूर्वक कहा कि मृत्यु का समय जानने से लाभ हो या न हो किन्तु आप मुझे अवश्य बताइये। दास ने व्यासजी की बहुत सेवा की थी। इसलिये वे उसे लेकर यमपुरी गए। उन्होंने यमराज से कहा कि यह मेरा शिष्य है। इसे आप यह बताइए कि कब मरेगा? यमराज ने कहा कि मैं यह नहीं जानता, मेरे मन्त्री मृत्युदेव जानते होंगे। यमराज व्यासजी और दास तीनों मृत्युदेव के घर गये। मृत्युदेव ने कहा कि महाराज विधाता ने इसके कपाल में क्या लिखा है, इसकी मुझे जानकारी नहीं। मुझे तो जब आदेश मिलता है, तब पकड़ने के लिये जाना पड़ता है। कोई कब मरेगा, इसकी मुझे खबर नहीं होती, विधाता जानें। सबने मृत्युदेव से कहा कि चलो हम विधाता के पास चलें। तुम यदि साथ रहोगे तो काम जल्दी होगा। यमराज, व्यास, दास और मृत्युदेव चारों विधाता के घर गये। उन्होंने विधाता से पूछा कि यह कब मरेगा, इसे हमें बताइये। विधाता ने व्यासजी से कहा, 'यह तुम्हारा शिष्य है। यह तुम्हारी सेवा करने के लिए आया है। यह तुम्हारी सेवा बहुत समय तक करे इस इच्छा से मैंने इसके कपाल में लिखा है कि व्यास, दास, यमराज और मृत्युदेव जब ये चारों मेरे घर आएँ तो इसकी मृत्यु हो। मुझे ऐसा विश्वास था कि तुम चारों किसी दिन एकत्र नहीं हो सकते। यदि एकत्र हो भी जाओ तो मेरे घर नहीं आ सकते, किन्तु अब आज ही यह मर जाएगा।' समय होने पर जीव काल को अपने पास बुलाता है। कंस की आयु पूरी हो गई।

अक्रूरजी ने कहा कि विचार तो मनुष्य कर सकता है, किन्तु भाग्य के अनुकूल होने पर ही विचार सफल होता है। संसार का सब सुख भाग्य के आधीन है। भाग्य के अनुसार ही सुख-दुःख और संयोग-वियोग होता है। इसलिये परमात्मा को पाने का प्रयत्न करो और लौकिक सुख प्रारब्ध पर छोड़ दो। प्रारब्ध में लिखा होने पर ही सुख मिलता है। परमात्मा प्रारब्ध से नहीं किन्तु प्रयत्न से मिलता है। राजा, तुम्हारी इच्छा है तो मैं नन्दबाबा के यहाँ जाऊँगा? कंस राजा ने

कहा कि काका, मेरा यह भेद कोई न जानने पाये। अक्रूरजी ने कहा कि मैं यह भेद किसी पर प्रकट नहीं करूँगा, कोई इसे नहीं जानेगा। मैं विश्वासघात को बहुत बड़ा पाप समझता हूँ। यह सुनकर कंस अपने घर चला गया, किन्तु अक्रूर को सारी रात नींद न आई। वे रात भर परमात्मा का चिन्तन करते रहे और सोचते रहे कि आज की रात कब पूरी होगी। कल मुझे गोकुल जाना है। मुझे श्रीकृष्ण के दर्शन का लाभ मिलेगा। प्रातःकाल जल्दी उठकर अक्रूरजी ने स्नान किया और नित्यकर्म से निवृत्त होकर मथुरा से गोकुल के लिए प्रस्थान किया।

गच्छन् पथि महाभागो भगवत्यम्बुजेक्षणे।
भक्तिं परामुपगत एवमेतदचिन्तयत्॥ (१०-३८-२)

तुम रास्ते चलते-चलते भी भक्ति करना। क्योंकि भक्ति सर्वत्र और सर्वकाल होती है। रास्ते में तो भक्ति करने की अधिक आवश्यकता है। तुम घर से यहाँ आए तो रास्ते में क्या करते थे? कुछ लोग तो दूसरे का मुँह देखते-देखते चल रहे थे, किन्तु किसी का मुँह या कपड़ा देखने से हमें क्या लाभ? अक्रूरजी रास्ते में यह पवित्र विचार करते हुये जा रहे हैं कि आज मेरे भाग्य का उदय हुआ है। आज मैं परमात्मा श्रीकृष्ण के दर्शन के लिये जा रहा हूँ मैंने पूर्वजन्म में कोई बड़ा यज्ञ किया होगा, किसी सन्त की सेवा की होगी, मैंने गरीब को प्रेम से भोजन कराया होगा। इसलिए आज मेरे उस पुण्य का उदय हुआ है। मेरे जैसे कामी-विलासी को भगवान् के दर्शन का लाभ नहीं मिल सकता, किन्तु प्रभु ने कृपा कर मुझे बुलाया है। जब परमात्मा कृपा करता है तब मन अत्यन्त शुद्ध हो जाता है। आज मेरा मन बहुत पवित्र हो गया है। आज मैं कंस राजा का उपकृत हूँ कि उसने मुझे गोकुल जाने की प्रेरणा दी। मैं सायंकाल गोकुल पहुँचूँगा। उस समय श्रीकृष्ण गौशाला में गायों की सेवा करते हैं। गोपालकृष्ण के दर्शन का मुझे सौभाग्य मिलेगा।

नमस्य आभ्यां च सखीः वनौकसः

मेरी तो ऐसी इच्छा थी कि श्रीकृष्ण को वंदन करने के पहले वहाँ जितने ग्वालमित्र होंगे उन सबको वंदन करूँगा। क्योंकि वे सभी मुझसे श्रेष्ठ हैं, इसीलिये परमात्मा के साथ क्रीड़ा करते हैं। जो प्रभु के धाम में क्रीड़ा करता है वही श्रेष्ठ है। जो शरीर के साथ क्रीड़ा करने में सुख समझता है वह कनिष्ठ है। ग्वाल पढ़े-लिखे नहीं हैं, गरीब हैं, किन्तु मेरी अपेक्षा श्रेष्ठ हैं। क्योंकि वे श्रीकृष्ण के साथ प्रेम करते हैं, परमात्मा के साथ प्रेम करते हैं। जो संसार के पदार्थों के साथ प्रेम करता है वह कनिष्ठ है।

मैं ग्वालों को वन्दन करूँगा। बलरामजी को भी वन्दन करूँगा। इसके बाद अपने श्रीकृष्ण को साष्टांग वन्दन कर कहूँगा कि मैं तुम्हारा हूँ। जब मैं साष्टांग वन्दन करूँगा, तब ठाकुरजी मुझे

देखेंगे। वह कैसी शुभ घड़ी होगी? उनकी दृष्टि मुझपर पड़नी चाहिये। उनको यह मालूम होना चाहिए कि यह जीव शरण में आया है। जब स्वामी की प्रेमासिक्त दृष्टि मुझ पर पड़ेगी तब मेरा जीवन सफल होगा।

यद्यपि अक्रूरजी रास्ते में हैं, फिर भी परमात्मा के विचार में ऐसे तन्मय बन गये हैं कि वे मन से गोकुल में पहुँच गए हैं। उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि गोपालकृष्ण के दर्शन का लाभ मिल गया है। आज श्रीकृष्ण ने पीला पीताम्बर पहना है। दाऊजी ने नीलाम्बर पहना है। श्रीकृष्ण श्याम हैं, दाऊजी गौर हैं। श्यामसुन्दर और गौरसुन्दर के दर्शन का लाभ अक्रूरजी को रास्ते में हुआ। अक्रूरजी विचार करते हैं कि जब मैं भगवान् को वन्दन करूँगा, तब वे मुझे प्रेम से देखेंगे और मेरे मस्तक पर हाथ रखेंगे। अक्रूरजी ने जहाँ अपने मन में यह विचार किया, वहाँ उन्होंने अपना हाथ स्वयं अपने मस्तक पर रख दिया इसके बाद वे विचार करते हैं, स्वामी का हाथ मेरे मस्तक पर पड़ते ही मेरी बुद्धि सुधर जाएगी, आज मैं कृतार्थ होने वाला हूँ। तत्पश्चात् मैं हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम करूँगा। मैंने ऐसा सुना है कि यदि कोई भी जीव उनके पास जाए, तो उसे वे छाती से लगाकर एक बार उससे भेंट करते हैं।

लब्धाँगसंगं प्रणतं कृताञ्जलिं मां वक्ष्यतेऽक्रूर ततेत्युरुश्रवाः।
तदा वयं जन्मभृतो महीयसा नैवादृतो यो धिगमुष्य जन्म तत्।।

(१०-३८-२१)

अक्रूरजी ने मन में सोचा कि श्रीकृष्ण बहुत प्रेम करते हैं। मैं उनके योग्य नहीं हूँ, किन्तु मेरी उम्र बड़ी है, मैं वयोवृद्ध हूँ उनके पिता वसुदेव का मैं मित्र हूँ। इसलिये वे मेरा नाम लेकर नहीं बुलाएँगे। मुझे वे 'काका' कहकर बुलायेंगे, उस समय मुझे बहुत आनन्द होगा। वे यदि एक बार 'काका' कहकर बुलायेंगे तो मेरा मरण मंगलमय होगा। क्योंकि भगवान् जिसे अपनाते हैं, उसे अन्त समय में लेने के लिए आते हैं।

इस जीव को मान-सम्मान की भूख होती है। प्रभु के दरबार में जाकर मान मिलता है और प्रभु जिसे मान देते हैं उसी का मान स्थायी बनता है। जगत् में कुछ लोग मान-सम्मान देते हैं, किन्तु बाद में खराब भी बोलते हैं। इसलिये जगत् खराब है, जगत् में मिला हुआ मान-सम्मान भी खराब है, और अपमान हो तो भी खराब है। जिसका मन मान और अपमान में शान्त रहता है, वही भक्त भक्ति कर सकता है। अक्रूरजी विचार करते हैं; 'आज मुझे बहुत आनन्द मिलेगा और मेरा जीवन सार्थक हो जायेगा। मैं आज परमात्मा के साथ एकाकार होने वाला हूँ।'

अक्रूरजी विचार करते-करते चले जा रहे हैं। उनका रथ नन्दगाँव के पास पहुँच गया है। जिस मार्ग से भगवान् श्रीकृष्ण गायों को लेकर घर गये हैं, उस रास्ते पर अक्रूरजी का रथ आ गया है उस भूमि में उन्हें श्रीकृष्ण के चरण-चिह्नों के दर्शन हुए हैं। वे विचार करते हैं, 'मैंने सुना है कि जिस समय वे गायों के पीछे-पीछे चलते हैं उस समय पैर में जूते नहीं पहनते, नंगे पैर चलते हैं। वे श्रीकृष्ण के चरण-चिह्न दिखाई दे रहे हैं। यह स्वस्तिक का चिह्न है और यह कमल का चिह्न दिखाई दे रहा है। इस ओर ग्वालों के चरण-चिह्न दिखाई दे रहे हैं। जब अक्रूरजी को ब्रज-रज में श्रीकृष्ण के चरणारविन्द के दर्शन हुए, तब उनका हृदय प्रेम से द्रवीभूत हो गया और उनकी आँखें गीली हो गईं। उस समय वे रथ में नहीं बैठ सके और रथ से जमीन पर कूद पड़े। श्रीकृष्ण की चरण-रज में वे लोटने लगे। उनकी दशा पागल जैसी हो गई। लोभी मनुष्य पैसे के लिए पागल बन जाता है। जब वह अनेक की खुशामद करता है, तब पैसा हाथ में आता है। जब पागल हुए बिना पैसा नहीं मिल सकता, तो परमात्मा उसे आसानी से कैसे मिल सकता है?

अति लोभी जीव पैसे में पागल बनता है। अति कामी जीव काम में पागल बनता है; किन्तु वह परमात्मा के लिए पागल नहीं बनता है। जो भगवान् के लिये पागल बनता है, उसे ही परमात्मा मिलता है। अक्रूरजी के मन में विचार आता है, 'मेरे भगवान् नंगे पैर चलते जा रहे हैं, तो फिर हमें रथ में नहीं बैठना है। क्योंकि मैं तो श्रीकृष्ण की सेवा करने वाले वैष्णवों का दास हूँ। यदि मैं रथ में बैठकर जाऊँ तो मुझे पाप लगेगा।' इसलिए अक्रूरजी साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते-करते आगे चले जा रहे हैं। बद्रीनारायण जाते समय अन्तिम मुकाम हनुमानचट्टी आता है। कुछ लोग हनुमानचट्टी से साष्टाँग प्रणाम करते-करते बद्रीनाथ जाते हैं। बहुत दुःख सहने पर और पापों का क्षय होने पर सात्विक भाव जागृत होता है। अक्रूरजी को याद आता है कि मेरा जीवन कैसा है! मैं श्रीकृष्ण के दर्शन के लिये जाता हूँ। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वे दर्शन नहीं देंगे। भला वे मेरे जैसे कामी और विलासी को क्यों दर्शन दें? अपनी जवानी का स्मरण करते हुए अक्रूरजी रो पड़ते हैं और विचार करते हैं, 'मैं दर्शन करने के योग्य नहीं हूँ, किन्तु मेरे भगवान् उदार हैं। यदि वे हमारे जैसे पापी को न अपनाएँ तो उन्हें पतितपावन कौन कहेगा? मैंने पाप किया है, किन्तु मेरे भगवान् ने उन पापों को भुला दिया है। इसीलिये तो प्रभु ने मुझे बुलाया है। वे मुझे अपनायेंगे।' अक्रूरजी को जब अपनी करनी याद आती है, तब वे हिम्मत खो बैठते हैं। फिर भी परमात्मा की दयालुता के विचार से उनमें हिम्मत आ जाती है। अक्रूरजी ने रास्ते में जो-जो मनोरथ किये प्रभु ने उन सबको परिपूर्ण कर दिया। परमात्मा के लिए जो विचार किया जाता है उन विचारों को वह सत्य सिद्ध करता है। पवित्र संकल्प करने से ही मन सुधरता है। तन्मे मनः शिव-संकल्पमस्तु।

संकल्प करना मन का एक स्वभाव है। यदि संकल्प करना ही हो तो पवित्र संकल्प करना। संसार-सुख का संकल्प करके मन को खराब मत करना। एक बार मन के बिगड़ जाने पर फिर वह जल्दी नहीं सुधरता। अक्रूरजी जैसा पवित्र विचार करो।

अक्रूरजी का संकल्प था कि जिस समय वे गौशाला में गायों का दूध दुहने की तैयारी में होंगे उसी समय मैं पहुँचूँगा। आज ऐसा ही हुआ। गायें ऐसे स्वभाव की हैं कि जब श्रीकृष्ण उन पर हाथ फिराते हैं अथवा अपनाते हैं तो ही वे दूध देती हैं। लाला गाय दूहने की तैयारी में लगे हैं। ग्वालबाल मित्र यहाँ खड़े हैं। अक्रूरजी ने श्रीकृष्ण के दर्शन किए और उनके शरीर में रोमाञ्च हो आया। उनकी आँखें भीग गईं, गला भर आया और मुँह से एक शब्द भी न निकला। वे लाठी की तरह ढलकर भगवान् के चरणों में पड़े। उन्होंने "कृष्ण कन्हैयालाल की जय" कहकर साष्टाँग प्रणाम किया। जब जीव को अपने किए गए पापों के प्रति हृदय से पश्चाताप होता है और जब यह जीव सब प्रकार का अभिमान छोड़कर भगवान् की शरण में जाता है तब वे इसे प्रेम से देखते हैं। भगवान् अक्रूरजी को प्रेम से देखते हैं और उनके माथे पर हाथ फिराते हैं। अक्रूरजी का सारा संकोच पिघल उठता है। प्रभु ने उनके मस्तक पर हाथ फिराया और कहा, 'उठो'। अक्रूरजी विचार करते हैं कि श्रीकृष्ण ने मस्तक पर हाथ तो फिराया; किन्तु वे अभी मुझे 'काका' कहकर नहीं बुलाते। क्या वे मुझे काका कहकर नहीं बुलाएँगे? मैंने बहुत पाप किए हैं। इसलिए मेरे जैसे पापी को 'काका' कहने में उन्हें संकोच होता होगा। अनेक वर्षों से हमने पाप छोड़ दिया है। मैं सबेरे उठकर ध्यान धरता हूँ, सेवा करता हूँ, और श्रीकृष्ण का कीर्तन करते-करते तन्मय हो उठता हूँ। कभी-कभी तो उनके कीर्तन में मुझे अपने देह का भान भी नहीं रहता। मेरे भगवान् मेरी इच्छापूर्ण नहीं करेंगे तो दूसरा कौन करेगा? जब वे मुझे 'काका' कहकर बुलाएँगे तभी मैं उठूँगा। मुझे पानी भी नहीं पीना है। मुझे कुछ माँगने की इच्छा नहीं है। वे मुझे एकबार 'काका' कहकर बुलायें तो मेरा मरण सुधरेगा। प्रभु के साथ सम्बन्ध जोड़ने पर भी भक्ति होती है। बिना सम्बन्ध जोड़े स्मरण नहीं होता। अक्रूरजी ने भगवान् से सम्बन्ध जोड़ लिया है। वृन्दावन में एक सन्त रहते थे। यौवन में वे योगी थे। वे प्राणायाम करते और समाधि में बैठते थे; किन्तु वृद्धावस्था में महान् भगवत-भक्त बन गए। उन सन्त को ऐसा विश्वास था कि जब तक नाक पकड़कर प्राणायाम करते हैं, तब तक मन शांत रहता है; किन्तु उसके बाद मन चंचल बन जाता है। अंतकाल में योग मुझे धोखा देगा। क्योंकि अंत समय की वेदना में योग सफल नहीं होगा। ध्यान रखो कि अन्त समय में अति दुःख पड़ता है। उस समय ज्ञान पर अधिक भरोसा मत करना। अंत समय की वेदना के समय मनुष्य यह भूल जाता है कि मैं शुद्ध चैतन्य आत्मा हूँ। उस समय यह देहाध्यास ही याद आता है

कि मैं शरीर हूँ। इसीलिए उस समय शरीर छोड़ने में बहुत व्याकुलता होती है। यदि योग का भक्ति से साथ नहीं होता है तो योग के कारण मरण बिगड़ जाता है। भक्ति से मरण सुधरता है।

अक्रूरजी ने विचार किया कि इस संसार में रहकर मुझे इसे भूल जाना है, श्रीकृष्ण में तन्मय होना है। मैं ऐसा कौन-सा काम करूँ जिससे यह संसार भूल जाए उन्होंने श्रीकृष्ण से अपना सम्बन्ध जोड़ा कि कन्हैया मेरा पुत्र है, मैं नंदबाबा हूँ। मुझे वृद्धावस्था में यह बालक मिला है। इसलिए मेरे प्राणों से भी प्यारा है। एक महात्मा परमात्मा को बालक मानकर श्रीकृष्ण की सेवा में तन्मय हो जाते हैं, बाललीला के चिन्तन में तन्मय बन जाते हैं। एकबार वे गंगाजी के दर्शन के लिए इच्छा करते हैं और गंगा में स्नान करने की कामना करते हैं। उन्होंने पहले गंगाजी को नहीं देखा था। काशी में गंगाजी सुशोभित हैं। इसलिए वे काशी जाने की तैयारी कर रहे हैं। किन्तु जिस समय वे बालकृष्ण-लाल की सेवा में तन्मय हो जाते उस समय उनका हृदय द्रवित हो जाता। उनको ऐसा अनुभव होता कि कन्हैया गोद में है और वह कह रहा है, ''मैं तुम्हारा बालक हूँ। मुझे छोड़कर क्या काशी जाने वाले हो? मुझे तुम्हारे बिना कुछ सुहाता नहीं बाबा, तुम मुझे छोड़कर यात्रा में मत जाना।''

सन्तजी काशी जाने की तैयारी करते; किन्तु अन्त में जाना बन्द कर देते थे। वे कहते कि मेरा पुत्र मना करता है। मुझे काशी नहीं जाना है।

वे सन्त वृन्दावन में पड़े रहे। उनकी उम्र १०५ वर्ष हो गई है। महाराज का शरीर अत्यन्त वृद्ध हो गया, किन्तु उनका कन्हैया चार-पाँच वर्ष का बालक ही बना रहा वह बड़ा नहीं हुआ। उनको बालस्वरूप में बहुत प्रीति है। उन्होंने बालकृष्णलाल को प्रेम से बालक माना है। वे श्रीकृष्ण में ही तन्मय रहते। एक दिन लाला का सेवा-स्मरण करते-करते महात्माजी ने अपना शरीर त्याग दिया। सभी साधु एकत्र हुए और कीर्तन करते-करते उनके शरीर को श्मशान में ले गए। अग्नि संस्कार की तैयारी के समय श्मशान में पाँच-छह वर्ष का एक सुन्दर बालक आया। उसने पीला पीताम्बर पहन रखा था और उसके कंधे पर गंगाजल का छोटा घड़ा था उस बालक को देखकर सब स्तब्ध रह गए उस बालक ने कहा, ''ये मेरे पिता हैं, मैं इनका पुत्र हूँ, इनके अग्नि-संस्कार का अधिकार मेरा है और मैं इनका अग्नि-संस्कार करूँगा इन्होंने मेरा बड़ा लाड़-प्यार किया है। मैं तो हठ करता था, किन्तु इन्होंने मुझ पर बहुत प्रेम किया था। पिताजी की इच्छा काशी में जाकर गंगा-स्नान करने की थी, किन्तु ये गंगा-स्नान नहीं कर सके। पिताजी की अंतिम इच्छा पूरी करना पुत्र का धर्म है।'' बालक ने महात्मा के शरीर को गंगा-जल से स्नान कराया। पुत्र ने पिता की जिस प्रकार अंतिम पूजा की जाती है उसी प्रकार उनकी अंतिम पूजा की उन्होंने कपाल में तिलक किया और उनको फूल की माला पहनाई। बालक ने उनके चरण में माथा झुकाया और कहा बाबा,

तुम्हारा कन्हैया तुमको वन्दन करता है। वन्दन करते-करते उसकी आँख में आँसू आ गए और उसने कहा, "ऐसे पिता को धन्य है। इनका मुझ पर कितना प्रेम था। बालक ने सन्त का अग्नि-संस्कार किया।" इसके बाद देखते ही देखते वह अदृश्य हो गया।

यदि परमात्मा के साथ सम्बन्ध रखोगे तो अन्त समय में वे तुम्हारे बहुत काम आयेंगे। आजकल यदि कोई पिता पुत्र को लाखों रुपये की सम्पत्ति दे तो भी वह पुत्र अन्त समय में पिता को धोखा दे देता है, पिता को मृत्यु-शय्या पर छोड़कर कहीं चला जाता है। यदि तुम ईश्वर के साथ सम्बन्ध जोड़ोगे तो धोखा नहीं होगा और मन शान्त रहेगा। यदि श्रीकृष्ण से सम्बन्ध जोड़ोगे तो वे अन्त समय में तुमको लेने आयेंगे। इसलिए भक्ति से ही मरण सुधरता है और भक्ति से ही जीवन मंगलमय बनता है।

अक्रूरजी की इच्छा थी कि श्रीकृष्ण उन्हें एकबार 'काका' कहकर पुकारें। प्रभु को जब यह पता चला कि इस जीव को 'काका' कहकर पुकारने की तीव्र इच्छा है तो इसमें मेरी क्या हानि है? मैं सबका बाप हूँ और सबका दादा भी हूँ। तुम श्रीकृष्ण के साथ जो सम्बन्ध जोड़ो, वे अवश्य सहायक बनते हैं। श्रीकृष्ण ने अक्रूरजी के मस्तक पर हाथ फेरा और कहा, 'काका, अब उठो।' यह सुनंकर अक्रूरजी को आनन्द हुआ। कोई भी जीव जब भगवान् के पास आता है तब परमात्मा उसे एकबार भुजाओं में लेकर भेंट करते हैं। उन्हें यह लगता है कि मेरा जीव मेरे पास आया है। श्रीकृष्णजी के भेंट करने से अक्रूरजी को आनन्द हुआ। भगवान् ने अक्रूर काका का हाथ पकड़ा और कहा, 'काका आप अन्दर आइए। आपको नन्दबाबा बुला रहे हैं।' यह कहकर श्रीकृष्ण उन्हें अन्दर ले गए। नन्दजी ने अक्रूरजी का स्वागत किया। स्नान और भोजन से निवृत्त होकर बिछौने पर बैठने के बाद नन्दबाबा कुशल समाचार पूछते हैं। अक्रूरजी ने कहा, बाबा, सभी आनन्द से हैं, और आपको सब बहुत याद करते हैं। आप बहुत दिन से मथुरा नहीं आए हैं। कंस राजा कल से एक बड़ा यज्ञ कर रहे हैं। मैं उस यज्ञ के दर्शन के लिये विशेष रूप से आपको आमन्त्रण देने आया हूँ। कंस राजा की मुझे यह आज्ञा मिली है कि नन्दबाबा दर्शन के लिये मथुरा आयें। लाला भी ग्यारह वर्ष के हो गए हैं। मथुरा पास ही है। फिर भी वे अब तक वहाँ एक बार भी नहीं आए हैं। सबकी इच्छा है और कंस राजा की अधिक इच्छा है कि वे भी आयें। कंस राजा ने लाला के लिये सोने का रथ भेजा है।

कँस राजा ने रथ तो भेजा है लेकिन कपट से भेजा है। नन्दबाबा बहुत भोले हैं। बहुत भोले को संसार में कहीं छल-कपट नहीं दिखाई देता। नन्दबाबा यह समाचार सुनकर खुश हो गये और कहा कि एक ब्राह्मण ने लाला की जन्मकुण्डली देखकर मुझे यह बताया था, 'तुम्हारे कन्हैया को

ग्यारहवाँ वर्ष आरम्भ होते ही उसे लेने के लिये कोई सवारी लेकर तुम्हारे घर आयेगा। इसके बाद लाला गायों के पीछे-पीछे नंगे पैर नहीं घूमेगा। ऐसा योग है कि वह राजा होगा।' फिर नन्दबाबा ने कहा कि ब्राह्मण की यह बात सत्य सिद्ध हुई। आज तुम रथ लेकर आये हो। मेरी भी बहुत इच्छा थी कि लाला को मथुरा दिखा दूँ। अब मैं कल श्रीकृष्ण-बलराम को मथुरा ले जाऊँगा। मुझे उस रथ में नहीं बैठना है। मैं तो बैलगाड़ी में बैठकर आऊँगा। तुम मेरे बालकों को उस रथ में बैठाकर ले आना।

६८- मथुरा-प्रयाण

बालकों को यह समाचार मिला कि उन्हें मथुरा जाना है, तब वे दौड़ते-दौड़ते नन्दबाबा के पास पहुँचते हैं और कहते हैं, 'बाबा मुझे भी अपने साथ ले चलो। कन्हैया अकेला जायेगा तो उसके साथ कौन खेलेगा? मैं लाला के साथ खेलूँगा। मुझे जाने से मत रोकना। बाबा हमको रथ में नहीं बैठना है। हम तो कंस के रथ के पीछे-पीछे दौड़ेंगे।' नन्दबाबा ने उनसे कहा कि तुम अपने घर जाओ और अपने माता-पिता से आज्ञा ले आओ। यह सुनकर बालक अपने-अपने घर जाते हैं। और अपनी माँ से कहते हैं, माँ कल कन्हैया मथुरा जाने वाला है, मुझे भी उसके साथ मथुरा जाना है। माँ को अपना बालक प्राणों से प्यारा लगता है। वे अपने बालक से कहती है कि तुम लाला के साथ जाना और उसको अच्छी तरह सम्हालना। लाला बहुत कोमल है।

मथुरा जाने की तैयारी होने लगी। सभी आनन्द मग्न हैं। केवल यशोदामाता व्याकुल हैं। वे नन्दबाबा से पूछती हैं कि क्या आप कल मथुरा जाने वाले हैं? क्या अपने साथ मेरे लाला को भी ले जाने वाले हैं? नन्दबाबा ने कहा, "हाँ, कल मथुरा जाना है। तू देखती नहीं कि कंस राजा ने लाला के लिए रथ भेजा है।" यशोदामाता ने कहा, "यह रथ देखकर आप भ्रम में मत पड़िए। कंस कपटी है। उसकी नीयत अच्छी नहीं है। इधर दो-तीन दिनों से मुझे बड़े खराब-खराब सपने दिखाई देते हैं। मैं विचार कर रही थी कि मुझे ऐसे खराब स्वप्न क्यों दिखाई देते हैं? मैं आपसे क्या कहूँ? आप अक्रूर से बातें करते हैं; किन्तु मुझे यह अक्रूर काल जैसा दिखाई देता है। मेरा लाला मथुरा नहीं जाएगा। उसे सबेरे उठते ही भूख लगती है। जब मैं उसे सबेरे मक्खन देती हूँ, तब वह थोड़ा खाता है। वह बड़ा संकोची है। लाला देखने में बड़ा सुन्दर लगता है। मुझे भय रहता है कि अत्यन्त सुन्दर होने के कारण कन्हैया को किसी की नजर न लग जाए। मथुरा जाने पर कोई स्त्री उस पर जादू कर देगी। वह यहाँ से मथुरा जाने के बाद फिर वापस नहीं आ सकेगा। यह मुझे प्राणों से भी बढ़कर प्यारा लगता है। यही मेरा आधार है। इसे वृद्धावस्था में मेरी आँखों से दूर न

हटाइये। आपकी वहाँ जाने की बड़ी इच्छा हो, तो बलराम को साथ ले जाइए। मैं लाला को आपके साथ नहीं भेजूँगी। यदि कन्हैया हठ करेगा, तो भी मैं उसे नहीं भेजूँगी।''

नन्दबाबा कहते हैं, कन्हैया का ग्यारहवाँ वर्ष चल रहा है। इसे कुछ बाहरी ज्ञान होना चाहिए। तू इसे घर में कितने दिन कैद रखेगी? मैं इसे जल्दी गोकुल का राजा बनाना चाहता हूँ। कंस एक बड़ा राजा है। उसके साथ उसकी जान-पहचान होगी। कंस ने इसे लाने के लिए रथ भेजा है। यदि इसे न भेजूँ, तो वह बुरा मानेगा और दुश्मनी करेगा।''

यशोदाजी कहती हैं, ''यहाँ से जाने के बाद वह जल्दी वापस नहीं आएगा।''

नन्दबाबा ने कहा, ''यह वापस क्यों नहीं आएगा? मैं इसके साथ जाने वाला हूँ। मैं इसे मथुरा में सब कुछ दिखाऊँगा। फिर इसे रथ में बैठाकर वापस ले आऊँगा।''

नन्दबाबा को यह पता नहीं कि मथुरा में क्या होने वाला है। वे यशोदा की बात नहीं मानते।

घर के सब लोग सो गए हैं। नन्दबाबा यह बात भूल गए हैं। उन्हें भी नींद आ गई है। आज यशोदामाता उद्विग्न हैं। उन्होंने बालकृष्ण को बिछौने पर सुला दिया है वे बारंबार उसकी पीठ थपथपाती हैं, उनके मस्तक पर हाथ फिराती हैं और सोचती हैं, ''आज यह मेरे बिछौने पर है। कल यहाँ नहीं होगा। मथुरा जाने के बाद क्या होगा?'' यह सोचकर यशोदामाता व्याकुल हो उठती हैं और रो पड़ती हैं। उनको निद्रा नहीं आती। उन्होंने बिछौना छोड़ दिया है। आधी रात का समय है। वे अपने आँगन में बैठ गई हैं। रात्री काल में कन्हैया की नींद खुल गई। उन्होंने माता को बिछौने पर नहीं देखा। वे विचार में पड़ गए, ''मेरी माता मेरा बड़ा ध्यान रखती है। वह इस समय बिछौने पर नहीं दिखाई देती। वे माता को रात्रिकाल में खोजने के लिए निकल पड़ते हैं। जब उन्होंने उसे घर में नहीं देखा, तो बाहर निकल पड़े। उन्होंने देखा कि माता आँगन में बैठी-बैठी रो रही है। वे अपने पीताम्बर से माता के आँसू पोंछने लगते हैं और कहते हैं, ''माँ, तू क्यों रो रही है? मैं तेरा पुत्र हूँ। तू जो कहेगी, वह करने को मैं तैयार हूँ। तू बिल्कुल मत रो।''

माता बोली, मुझे कुछ नहीं होता है; किन्तु कल तू जाने वाला है, इसका मुझे दुःख है। मेरा कन्हैया मुझसे दूर न जाए, यह मेरी इच्छा है।

लाला ने कहा, ''मैया मुझे मथुरा नहीं जाना है; किन्तु कंस मामा की आज्ञा न मानूँ तो उनको बुरा लगेगा। इसलिए कल मैं उनके यहाँ जाऊँगा।'' यह सुनकर माता ने कहा कि मुझे तेरे बिना कुछ नहीं सुहाता। किन्तु जब लाला ने यह कहा कि मैं वापस आऊँगा, तब माता को आनन्द हुआ कि मेरा पुत्र जो कहता है उसीके अनुसार कार्य करता है। इसने मुझसे कहा है कि मैं,

आऊँगा? माता को आनन्द हुआ। आनन्द के कारण वह यह भी न पूछ सकी कि तू कब वापस आएगा? बालकृष्णलाल ने भी इतना ही कहा कि मैं आऊँगा। हमें किसी मनुष्य की आशा नहीं करनी चाहिए और परमात्मा की आशा छोड़नी नहीं चाहिए। व्रजवासी इस आशा से जी रहे हैं कि कृष्ण ने आने के लिए कहा है इसलिए वह अवश्य आएगा। यशोदामाता ने विचार किया कि बेटा अकेला सोने वाला नहीं है इसलिए वे भी सो गईं। माता को निद्रा तो नहीं आती; किन्तु लाला को समझाने के लिए बिछौने पर पड़ी आँख बन्द कर लेती हैं। माँ लाला को अपनी छाती से चिपका लेती है। आज यशोदा माँ के हृदय में लाला ने प्रवेश किया।

प्रातःकाल हो गया। यशोदामाता ने श्रीकृष्ण-बलराम को जगाया। उनके शरीर पर सुगन्धित तेल की मालिश की और स्नान कराया। लाला ने पीताम्बर धारण किया। यशोदा माता ने लाला का अन्तिम शृंगार किया और उनका शृंगार करते-करते रो पड़ीं। माता का प्रेम देखकर लाला की आँखों में आँसू आ गए। उन्होंने कहा कि माँ, तुझे रोती देखकर मुझे दुःख होता है। माँ ने अपने दुःख का वेग दबा लिया।

इस ओर अक्रूरजी ने रथ तैयार किया और आँगन में ले आए। जब गोपियों को यह समाचार मिला तो वे सब यशोदाजी के आँगन में पहुँच गईं। आज तो श्रीराधाजी भी आ गईं। उनकी उम्र ९ वर्ष की है। उनका शृंगार बहुत सादा है। उन्होंने जबसे यह जाना है कि श्रीकृष्ण मथुरा जाने वाले हैं तभी से मूर्छावस्था में हैं। कुछ गोपियाँ श्रीराधाजी की सेवा में लगी हैं, कुछ रथ घेरकर बैठी हैं और कुछ अक्रूरजी से बातें करती हुई कहती हैं, अक्रूरजी आप कैसे हैं? आप क्या हमारा गोकुल गाँव उजाड़ने आए हैं? हम आपसे सच कहती हैं कि जब श्रीकृष्ण नहीं दिखाई देते तब गायें घास नहीं खातीं पानी नहीं पीतीं। आपको इन गायों की हाय लगेगी। क्या आपको हम पर दया नहीं आती? आपके चरणों में मैं वंदना करती हूँ। यदि आप कहेंगे तो मैं आपके घर आकर आपका छोटे से छोटा काम करूँगी। आप हमें श्रीकृष्ण के वियोग में क्यों मार रहे हैं? श्रीकृष्ण का वियोग हमें एक क्षण के लिए भी सहन नहीं होता। बिना श्रीकृष्ण के हमारा जीवन व्यर्थ ही है। गोपी अन्दर ही अन्दर बात करते-करते कहती हैं कि इसकी बुआ ने बिना विचारे ही इसका नाम अक्रूर रखा है। यह तो बड़ा क्रूर दिखाई देता है। दूसरी गोपी ने कहा कि विधाता दो प्रेमियों को एक स्थान पर देख नहीं सकता। गोपी सेवा किस प्रकार करें यह समझ नहीं आता। मैं तो मूर्ख हूँ, पागल हूँ। मैं सारे दिन "हे कृष्ण! हे कृष्ण! याद करती हूँ। मथुरा की स्त्रियाँ बहुत सुन्दर हैं, बहुत शिक्षित हैं। लाला की ऐसी सेवा करेंगी कि वह फिर गोकुल में वापस नहीं आएगा, हमें भूल जाएगा। श्रीकृष्ण के बिना यह जीवन व्यर्थ है।"

कुछ गोपियाँ विचार करती हैं, "मैं रथ के आगे सो जाऊँगी और देखूँगी कि वे रथ को कैसे आगे ले जाते हैं।"

अक्रूरजी ने गोपियों का प्रेम देखा। उनकी नजर धरती पर गड़ी है और उन्होंने अपने दोनों हाथ जोड़ लिए हैं।

यशोदा माँ श्रीकृष्ण-बलराम को भोजन कराती हैं। भोजन करने के बाद वे बाहर आते हैं। उस समय राधाजी तो मूर्छित होकर जमीन पर पड़ी हैं। वे राधाजी के मस्तक पर हाथ रखते हैं और उनके कान में कहते हैं कि तुम और मैं एक ही हैं। अर्थात् हम दोनों एक ही हैं। राधा ही श्रीकृष्ण हैं और श्रीकृष्ण ही राधा हैं। केवल लीला करने के लिए दोनों स्वरूप प्रकट हुए हैं। आज तक मैं श्रीराधाजी को खुश करने के लिए बाँसुरी बजाता था। मैं गोपियों को खुश करने के लिए नाचता था। हे श्रीराधे, इस जगत् में पाप बढ़ गया है। इस समय देश दुःखी है। इस देश को सुखी करने के लिए, पृथ्वी का भार-उतारने के लिए और धर्म की स्थापना करने के लिए मथुरा जाता हूँ। मैं जा तो रहा हूँ, किन्तु मैंने अपने प्राण तुममें रख छोड़े हैं। श्रीराधे, मैं तुम्हें क्या दूँ?

यह बाँसुरी मुझे प्राणों से भी प्यारी है। यह मैं तुम्हें देता हूँ। मथुरा जाने के बाद मैं बाँसुरी नहीं बजाऊँगा, शंख बजाऊँगा। उन्होंने बाँसुरी श्रीराधाजी के हाथ में देते हुये कहा कि श्रीराधे, तुम जब बाँसुरी बजाओगी तो मैं दौड़ता हुआ तुमसे मिलने आऊँगा। यह सुनकर श्रीराधाजी एक अक्षर भी बोल न सकीं। श्रीकृष्ण ने गोपियों से कहा, 'यदि तुम रोओगी तो मेरे प्रस्थान में अपशकुन होगा, इसलिये रोना मत। मैं तुम्हारा प्रेम जानता हूँ।' स्वामी की आज्ञा होते ही गोपियाँ आँख के आँसू रोकते हुये खड़ी हो जाती हैं।

अक्रूरजी ने कहा कि मैं आप सबसे आज्ञा चाहता हूँ। गोपियाँ परमात्मा को मनाती हुई कहती हैं कि हे प्यारे! हमारा नियम है, हम तुमको प्रतिदिन मक्खन मिश्री देती हैं वह तैयार रखा है। तुमको अधिक नहीं रोकना है। इसे खाकर मथुरा जाओ।

दूसरी गोपी कहती है, 'मेरा नियम है कि मैं प्रतिदिन सायंकाल श्रीकृष्ण को तिलक करतीं हूँ, लाला की आरती उतारती हूँ। आप अपने प्रस्थान करने के पूर्व दो घड़ी के लिये पधारिये। मैं आपको अधिक नहीं रोकूँगी।'

गोपी-प्रेम का बहुत सुन्दर वर्णन किया गया है। प्रभु ने सबको आश्वासन दिया और बलरामजी के साथ रथ में बैठे। रथ में विराजमान श्रीकृष्ण के दर्शन से गोपियाँ व्याकुल हो उठीं कि कन्हैया जा रहा है। अब इसका दर्शन कब होगा? गोपियों के दबाये हुए आँसू बाहर छलक पड़े। सबने हाथ उठाकर कहा कि हे गोविन्द, हे दामोदर, हे प्राण प्यारे, आप जल्दी वापस आना।

एवं ब्रुवाणा विरहातुरा भृशं व्रजस्त्रियः कृष्णविषक्तमानसाः।
विसृज्य लज्जां रुरुदुः स्म सुस्वरं गोविन्द दामोदर माधवेति॥

(१०-३९-३१)

हे दामोदर, हे गोविन्द! हम तुम्हारे ही आधार पर जी रही हैं। हमारा त्याग न करना। प्रभु ने अक्रूरजी की ओर देखा और रथ चलाने का इशारा किया। जब अक्रूरजी ने रथ चलाया तो गोपियाँ बहुत व्याकुल हो गईं और बोल पड़ीं, 'अक्रूर, अक्रूर, तू हमें गोविन्द के दर्शन करने दे। हमने अभी इनके दर्शन नहीं किए। अक्रूर तू क्या क्रूर हो गया है। तुझे हम पर दया नहीं आती।'

अक्रूर ने रथ आगे बढ़ाया। कुछ गोपियाँ मूर्च्छित हो गईं। अब तक यशोदा माता धीरज रखकर वहाँ खड़ी थीं। उनका लाड़ला कन्हैया जा रहा है। उन्होंने कहा कि मेरे लाल को कोई क्यों नहीं रोकता? उस समय यशोदा माता को लोकलज्जा का कुछ ख्याल नहीं रहा और वे रथ के पीछे-पीछे दौड़ने लगीं। प्रभु ने देखा कि मेरी माता दौड़ती हुई आ रही है। वे रथ से नीचे उतर पड़े। यशोदा माँ ने उनसे कहा, 'बेटा मेरी इच्छा थी कि तू मेरी आँख से दूर न जा। मैंने तुझे आनन्दमय रूप में देखने का हमेशा प्रयत्न किया है। अब तुझे मथुरा जाने की इच्छा हुई है इसलिए मैं तुझे रोकती नहीं। तेरा सुख ही मेरा सुख है। लाला तू ऐसा है कि तुझे याद कर सब रोते हैं। मैं भी तुझे याद कर रोऊँगी।'

रोने में अत्यन्त सुख है। परमात्मा का स्मरण करते-करते जो उनके वियोग में रोता है उसके दुःख का अन्त होता जाता है। यह जीव अनेक जन्मों से रोता ही आया है। कोई धन के लिए रोता है तो कोई कीर्ति के लिए रोता है। यह जीव किसी दिन परमात्मा के लिए नहीं रोता। यशोदा माता कहती हैं कि मैं तुझे याद करके रोऊँगी। उन्होंने लाला का हाथ दाऊजी के हाथ में देते हुए कहा, 'बेटा तू बड़ा है। तू इसे सम्भालना। मेरी इच्छा है कि कन्हैया कहीं इधर-उधर न जाए और यह यदि कभी हठ करे तो तू इसे खुश करना।

माँ ने लाला से कहा, 'बेटा आज तक मैंने तुझसे कुछ कहा नहीं और मेरी कुछ कहने की इच्छा भी नहीं है, किन्तु तू आज जा रहा है इसलिए कहती हूँ कि तू मुझे माँ-माँ कहकर बुलाता है तो लोग यह बात करते हैं कि मैं तेरी माँ नहीं हूँ, तेरी माँ देवकी है। मैं तेरी दासी हूँ, तेरी धाय हूँ। बेटा मैंने तो तुझे दूध पिलाया है। मैं अधिक कुछ नहीं जानती। केवल इतना ही जानती हूँ कि मैंने तुझे प्रेम किया है और पालपोस कर बड़ा किया है। मैं केवल यही इच्छा रखती थी कि लाला को कोई तकलीफ न हो। इसे छोड़कर मैंने कोई दूसरा विचार नहीं किया। बेटा, आज

मुझे याद आता है कि मैंने एक बार तुझे ओखली से बाँधा था। यह मेरी भूल थी। इसलिये तेरी वह माँ क्षमा माँगती है। बेटा मन में उसके लिए नाराज न होना। जब तेरी इच्छा हो तब घर आना।

यशोदा माँ खूब रोती हैं, घर की गायें रोती हैं और वृन्दावन के पशु-पक्षी भी रोते हैं। गोपियाँ रोती हुई कहती हैं कि हमारा कन्हैया जा रहा है। सबका प्रेम देखकर अक्रूरजी भी रोने लगे। श्रीकृष्ण बार-बार माँ के चरणों में वंदना करते हैं और कहते हैं, माँ आज तूने कहा तो कहा फिर ऐसा न कहना। लोग चाहे जो कुछ कहें किन्तु कन्हैया तो तेरा ही है। तू मेरी माँ है और मैं तेरा पुत्र हूँ। माँ-माँ तूने प्रेम से बाँधा है। तेरा यह प्रेम कन्हैया कभी नहीं भूलेगा। माँ मैं आऊँगा, माँ तू रोना मत। माँ मुझे आशीर्वाद दे।

माँ लाला को छाती से लगाकर आलिंगन करती है। श्रीकृष्ण-बलराम रथ में बैठ गए और रथ चल पड़ा।

यावदालक्ष्यते केतुर्यावद् रेणू रथस्य च।
अनुप्रस्थापितात्मानो लेख्यानीवोपलक्षिताः॥ (१०-३९-३६)

शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं कि कन्हैया निष्ठुर नहीं है, वह बहुत दयालु है, वह अतिशय प्रेम करता है। श्रीकृष्ण प्रेम की मूर्ति हैं। प्रभु ने विचार किया कि ब्रजवासी मेरा बहुत ध्यान धरते हैं। इसलिए वे मेरे स्वरूप को प्राप्त होंगे। ध्यान संयोग में नहीं, वियोग में ही होता है। श्रीकृष्ण अपने सतत ध्यान के लिए ही वियोग देते हैं। कुछ सन्त ऐसा कहते हैं कि जब श्रीकृष्ण का रथ आगे बढ़ा तब जितनी गोपियाँ रथ के पीछे-पीछे दौड़ती रही थीं, उतने श्रीकृष्ण के रूप प्रकट हो गए। श्रीकृष्ण एक गोपी के कान में कहते हैं, 'तू मुझे कहीं छिपा दे। मुझे अब जाना नहीं है। तू किसी से यह मत कहना कि मैं यहाँ हूँ।' इससे कुछ गोपियों को यह अनुभव होता है कि श्रीकृष्ण मेरे लिए रथ से उतर पड़े हैं। किसी को ऐसा प्रतीत होता है कि वे मेरे साथ हैं। किसी को ऐसा लगता है कि वे मेरे घर आए हैं। इस प्रकार गोपियों की आँखों में श्रीकृष्ण हैं, उनके हृदय में श्रीकृष्ण हैं, उनके रोम-रोम में श्रीकृष्ण हैं। गोपी कृष्ण रूप हैं। भक्त और भगवान् दोनों अन्दर से एक ही होते हैं। वे गोपियों को ऐसा ही अनुभव कराते हैं। वहिरंग में वियोग है और अन्तरंग में संयोग है।

अक्रूरजी यमुनाजी की धारा तक रथ ले आए। श्रीकृष्ण-बलराम रथ में विराजमान हैं। अक्रूरजी यमुना में स्नान कर मध्याह्न की संध्या करते हैं। उस समय उन्हें यमुनाजी में श्रीकृष्ण-दर्शन का लाभ मिलता है। श्रीकृष्ण रथ में विराजमान हैं और यमुनाजी में भी दिखाई देते हैं। अक्रूरजी को विश्वास है कि श्रीकृष्ण परमात्मा हैं और भगवान् के दर्शन का आनन्द मिला है। अक्रूरजी

श्रीकृष्ण की स्तुति करते हैं। श्रीकृष्ण मथुरा पहुँच जाते हैं। नन्दबाबा ने मथुरा के बाहर एक बगीचे में मुकाम किया है। श्रीकृष्ण ने अक्रूरजी से कहा कि मुझे भी इसी बगीचे में रहना है। अक्रूरजी की बड़ी इच्छा थी कि श्रीकृष्ण मेरे घर पधारें और मेरा घर पवित्र हो जाए किन्तु श्रीकृष्ण ने कहा कि काका, मामा की खबर लिए बिना मुझे किसी के घर नहीं जाना है। कंस मामा की खबर लेने के बाद मैं आपके यहाँ आऊँगा। अक्रूरजी राजमहल में गए हैं और कंस को खबर दी है कि मैं श्रीकृष्ण और बलराम को ले आया हूँ। वे दोनों गाँव के बाहर बगीचे में ठहरे हैं। वे कल आपसे मिलेंगे। यह सुनकर कंस बहुत खुश हुआ।

इस ओर श्रीकृष्ण-बलराम बगीचे में आते हैं। नन्दबाबा लाला की प्रतीक्षा करते हुए बैठे हैं। उस समय कन्हैया को वहाँ आया देखकर सबको आनन्द होता है। नंदबाबा ने लाला को गोद में उठा लिया और प्यार करते हैं। यशोदा माता ने लाला को रास्ते में खाने के लिए उनको पसन्द आने वाली सुन्दर सामग्री दी है। वे अपने बालमित्रों के साथ भोजन करने बैठे हैं। श्रीकृष्ण के जीवन में यह पहला अवसर है जब यशोदा माता उनके साथ नहीं हैं। भोजन करते समय उन्हें माँ का प्रेम याद आता है कि वह कितना प्रेम करती है। श्रीकृष्ण यशोदा माँ का स्मरण करते हैं और उनकी आँख में आँसू भर आते हैं। उनका कौर हाथ में ही रह जाता है। वे भोजन नहीं कर सकते। नन्दबाबा से कहते हैं कि मुझे मेरी माँ बहुत याद आती है। मेरी माँ बहुत भोली है। वह घर में बैठकर रोती होगी। उस समय मेरी माँ को कौन समझाता होगा? भक्ति इस प्रकार करो कि भगवान् तुम्हें किसी दिन याद करें। यह जीव ईश्वर का स्मरण करे तो यह साधारण भक्ति है, किन्तु ऐसा प्रेम करो कि भगवान् किसी दिन जीव का स्मरण करे तो वह भक्ति है। यशोदा माता का प्रेम ऐसा है कि श्रीकृष्ण भोजन नहीं कर सकते। श्रीकृष्ण को गायें याद आती हैं। वे जब से गोकुल से अलग हुए तब से गायें घास नहीं खातीं, पानी नहीं पीतीं, नजर गड़ाकर रँभाती हैं। वे कहतीं हैं कि हमारा गोपाल अदृश्य हो गया है। वह कब लौटेगा? गायें लाला का रास्ता देखती हैं। वे चारा नहीं खातीं। यदि गायें उपवास करें तो उनका नौकर किस प्रकार भोजन करे। श्रीकृष्ण ने कहा मुझे आज कुछ भोजन नहीं करना है। नन्दबाबा ने बहुत आग्रह किया है कि बेटा थोड़ा तो खा लो। श्रीकृष्ण ने कहा कि बाबा मैं सबेरे घर से निकला तो मेरी माँ ने मुझे खूब खिला दिया था। अब मुझे जरा भी भूख नहीं। रात में सब वहाँ सो गये।

प्रातःकाल हो गया है। सबने स्नान कर लिया है। ग्वालबाल मित्रों ने लाला से कहा कि कन्हैया तू हमको मथुरा नहीं दिखाएगा? मथुरा देखने के लिए सब नन्दबाबा की आज्ञा लेने आए हैं। नन्दबाबा ने उन्हें समझाते हुए कहा कि तुमको मथुरा देखनी हो तो जाओ, किन्तु शरारत मत

करना। तुम जानते हो कि यह बड़ा शहर है और कंस राजा की राजधानी है। यहाँ कंस राजा की जय बोलनी पड़ेगी। लाला की जय बोलने पर यदि किसी को बुरा लगे तो क्या होगा? तुम सब अँधेरा होने के पहले ही वापस आ जाना। श्रीकृष्ण अपने बालमित्रों के साथ मथुरा में प्रवेश करते हैं। बालकों को रोज लाला की जय बोलने की आदत है। उनको ऐसा लगता है कि कन्हैया हमें बहुत देता है और हम उसे कुछ नहीं देते। इसलिए वे चाहे लाला बाहर हो या घर में हो लाला की जय बोलते हैं। मथुरा में लाला की जय बोलने के लिए नन्दबाबा ने मना किया था किन्तु लड़के यह भूल गए। जब लाला ने महाद्वार में प्रवेश किया तब वे कृष्ण-कन्हैयालाल की जय. ......दाऊजी महाराज की जय.........श्रीकृष्ण और बलराम का जय-जयकार करते हैं। जय-जयकार के वे शब्द मथुरा की स्त्रियों के कान में पड़ते हैं। वे सब अपना काम छोड़कर दर्शन की आतुरता से दौड़ती हुई आती हैं। जो स्त्रियाँ भोजन कर रही थीं, वे हाथ में कौर लेकर दौड़ने लगीं। सारे नगर में ग्यारह वर्ष के कृष्ण के दर्शन की आतुरता बढ़ी हुई थी।

मनांसि तासामरविन्दलोचनः प्रगल्भलीलाहसितावलोकनैः।
जहार मत्तद्विरदेन्द्रविक्रमो दृशां ददच्छ्रीरमणात्मनोत्सवम्॥

(१०-४१-२७)

प्रभु ने प्रथम दर्शन में ही प्रत्येक का मन जीत लिया है। राजमार्ग से जाते समय रास्ते में कंस का धोबी मिला। यह रामावतार का जीव है। इसने श्रीजानकी माता की निन्दा की थी। श्रीसीता राम बहुत सरल हैं। उन्होंने निन्दा करने वाले को जरा भी दण्ड नहीं दिया। निंदा करने वाले को धोबी के घर जन्म लेना पड़ता है। कंस का धोबी दुष्ट जीव है, वह बहुत अकड़कर चलता है। उसने कपड़ों की गठरी अपने सहायकों के सिर पर रख दी है। श्रीकृष्ण ने धोबी से कहा कि तुम बहुत कपड़े ले जा रहे हो। क्या इसमें से थोड़ा मुझे और मेरे मित्रों को दे दोगे? धोबी ने अकड़कर कहा, 'तुम्हारे बाप-दादों ने क्या कभी ऐसा कपड़ा देखा है। ये कंस महाराज के कपड़े हैं। तुम इसे क्या समझो। यह तुम्हारा गोकुल गाँव नहीं है। मैं सिपाही को बुलाकर तुमको पकड़वाऊँगा।' धोबी प्रभु श्रीकृष्ण की बहुत निन्दा करने लगा। यह सुनकर बलरामजी को बहुत बुरा लगा। उन्होंने लाला से कहा कि इसे मरने का सन्निपात हो गया है। तू इसे मार। बड़े भाई की आज्ञा मानकर श्रीकृष्ण दौड़ पड़े और धोबी के मुख पर थप्पड़ मारा। राजा का नियम है कि मनुष्य जिस अंग से अधिक पाप करता है उसी अंग को अंत समय में अति सजा मिलती है। धोबी ने अपने मुख से अधिक पाप किया है। इसलिए उसके मुख पर थप्पड़ मारा गया है। इससे उसका सिर और धड़ अलग हो गया। धोबी के नौकर कपड़े की गठरियाँ फेंककर भाग गए। लाला ने कहा

कि मित्रों! ये गठरियाँ खोलो। मित्रों ने घबराकर लाला से कहा कि कन्हैया नंदबाबा ने कहा है कि जरा भी शरारत मत करना। तुझे चोरी करने की आदत है। वह आदत अभी गई नहीं है। तूने रास्ते में धोबी को मार डाला और हमें कपड़ा लेने के लिए कहता है। कन्हैया कहता है " मैं चोरी नहीं करता। यह सब मेरा है। मैं मालिक हूँ। तुमको इसके बाद इसकी अधिक ज़ानकारी मिलेगी यह सुनकर भी जब बालकों को हिम्मत नहीं हुई तब श्रीकृष्ण गठरियाँ खोलते हैं। वे एक-एक को पीताम्बर देते हैं, जरी का दुपट्टा देते हैं। साफा बाँधते हैं और मित्रों को सुन्दर-सुन्दर कपड़े पहनाते हैं। आज तक तो वे काली कमली ओढ़कर और ग्वालों के साथ गाएँ लेकर वृन्दावन में जाते थे आज तक मालिक का नियम था कि सिले हुए कपड़े न पहनें और हाथ में शस्त्र न लें। आज तक वे गोपालकृष्ण थे। अब वे मथुरा नाथ होने वाले हैं। लाला और बलरामजी ने भी सुन्दर कपड़े पहने। बालक बहुत खुश हो गये।

रास्ते में कुब्जा मिली। वह कंस की सेवा करती है और शरीर में तीन जगहों से टेड़ी है। वह हाथ में चंदन का कटोरा लेकर जा रही है। प्रभु ने उससे चंदन माँगा। कुब्जा ने चंदन दे दिया। चन्दन हृदय को शीतल करता है। प्रभु ने विचार किया कि इसने चन्दन देकर मेरी शोभा बढ़ा दी। इसको सुन्दर रूप दें दूँ। प्रभु ने कुब्जा के पग पर अपना पग रखा और उसकी ठुड्डी पकड़कर ऐसा झटका दिया कि उसके तीनों अंग सीधे हो गए।

बुद्धि तीन जगहों पर टेढ़ी होती है। अर्थात् बुद्धि के तीन दोष है– काम, क्रोध और लोभ। जिसकी बुद्धि टेढ़ी होती है उसका मन टेढ़ा होता है। जिसका मन टेढ़ा होता है उसकी आँख टेढ़ी होती है और जीवन टेढ़ा होता है। कंस की सेवा करने से बुद्धि टेढ़ी होती है। वह श्रीकृष्ण के सम्मुख आने पर सीधी हो जाती है। श्रीकृष्ण बुद्धि के पति हैं और सद्गुरु बुद्धि के पिता हैं। सद्गुरु बुद्धि को प्रभु के साथ विवाहित करते हैं। स्त्री अपने पिता के पास सुखी होती है और पति के पास भी सुखी होती हैं। जो स्त्री अपने पिता या पति को छोड़कर भटकती है वह दुःखी होती है। जो बुद्धि सद्गुरु को छोड़कर बाहर जाती है, उसे रास्ते में पाँच विषय मिलते हैं। वह उनसे जबर्दस्ती विवाह करती है। इसीलिए बुद्धि टेढ़ी हो जाती है। वह परमात्मा के पास जाने पर सीधी हो जाती है। तुम अपनी बुद्धि परमात्मा के साथ विवाहित होने तक किसी सन्त की सेवा में रखो। बुद्धि को स्वतंत्र रखना अच्छा नहीं है। बुद्धि में अनेक दोष होते हैं और मनुष्य को अपने दोष ही गुण जैसे दिखाई देते हैं।

प्रभु ने कुब्जा का उद्धार किया है। वे राजमार्ग से जा रहे हैं। बड़े-बड़े महाजन लोग दुकान में बैठे हैं, दो महीने बाद भाव बढ़ेगा या घटेगा इसका विचार वे कर रहे हैं। अनेक लोग बुद्धि का

उपयोग धन के लिए करते हैं; किन्तु जो बुद्धि का उपयोग परमात्मा के लिए करता है वही बुद्धिमान है। इन वैश्यों ने विचार किया कि आज कुछ खर्च करें तो कल लाभ होगा। वे दुकान से बाहर निकल पड़ते हैं और हाथ जोड़कर भगवान् से कहते हैं कि यह आपकी दुकान है, नमस्ते-नमस्ते। भगवान् कहते हैं कि हम सब समझते हैं। वैश्य लोग प्रभु को अपनी दुकान में ले जाते हैं। उन्होंने प्रभु को कुछ और न देकर पान-सुपारी ही दी। भगवान् ने कहा कि तुम्हारी जो इच्छा हो वह मुझसे माँग लो। वैष्णव ने कहा, "पहली कृपा यह कीजिए कि लक्ष्मीजी हमारे घर में आएँ, दूसरे के घर में न जाएँ। प्रभु ने कहा कि जहाँ वैराग्य है, वहाँ भक्ति है। इस पर वैष्णव ने कहा कि हमको वैराग्य की जरा भी जरूरत नहीं है। हमें लक्ष्मी दीजिए। प्रभु ने वैश्यों का उद्धार किया।

प्रभु अब और आगे बढ़े, तब उन्हें एक बड़ा मण्डप दिखाई दिय। उसमें बैठकर ब्राह्मण यज्ञ कर रहे थे। कंस के सेवक उसका पहरा दे रहे थे। श्रीकृष्ण का स्वरूप इतना मंगलमय है कि वे सब उनको देखते ही रह गए श्रीकृष्ण ने मंडप में प्रवेश किया यज्ञ का धनुष उठाया और उसे कड़-कड़ करते हुए तोड़ दिया। ब्राह्मण घबरा गए। उनको ऐसा लगा कि यज्ञ में विघ्न हो गया। इससे यजमान की कुछ हानि होगी। कंस के सेवक दौड़ते हुए आए। दाऊजी ने उन्हें मार भगाया। उन सबने महल में जाकर कंस को सारी खबर दी।

यह समाचार सुनकर कंस बहुत क्रोधित हुआ। मृत्यु की छाया पड़ने पर स्वभाव बदल जाता है।

श्रीकृष्ण-बलराम अपने मित्रों के साथ बगीचे में लौट आए नंदबाबा ने पूछा, "लाला, तुमने कोई शरारत तो नहीं की। श्रीकृष्ण ने कहा कि बाबा, हमने कोई शरारत नहीं की। सब मुझसे पूछते रहे कि तू किसका पुत्र है। मैंने कहा कि मैं नंदबाबा का लड़का हूँ, यशोदा माता का पुत्र हूँ। बाबा, इस नगर के लोगों ने यह जान लिया कि मैं आपका पुत्र हूँ। सबने मुझे अच्छे-अच्छे कपड़े दिए और मेरे मित्रों को भी दिए।

नन्दबाबा ने समझा कि आज तक यादवों से हमारा अच्छा सम्बन्ध था। इसलिए सबने अच्छा व्यवहार किया है। आज तक मैंने उनको बहुत कुछ दिया है। मेरा कन्हैया पहली बार यहाँ आया है। इसीलिए उसे यह सब दिया होगा। कंस ने सभा बुलाई। कंस का हुक्म होते ही एक सेवक दौड़ते-दौड़ते नन्दबाबा को बुलाने गया। नन्दबाबा ने दरबार में जाते-जाते लाला से कहा, 'लाला बहुत बड़ा दरबार है, मैं जाता हूँ। तुझे आना हो तो पीछे आना; किन्तु वहाँ जाकर शान्ति से बैठना। शरारत मत करना। कन्हैया ने कहा कि बाबा मैं शरारत नहीं करता; किन्तु हम लोग गाँव

में रहते हैं। इसलिए लोग हमको चिढ़ाते हैं। मेरे मित्र मुझे बहुत प्यारे हैं। यदि कोई उन्हें सताएगा तो मैं उसे मारूँगा। नन्दबाबा दरबार में गए और वहाँ उन्होंने कंस राजा को भेंट दी।

तमापतन्तमासाद्य भगवान् मधुसूदनः।
निगृह्य पाणिना हस्तं पातयामास भूतले।। (१०-४३-१३)

इस ओर श्रीकृष्ण-बलराम अपने बालमित्रों के साथ निकले। उन्होंने रास्ते में कुवलयापीढ़ नाम के हाथी को मारा। इसके बाद सब सभा में गए और उन्हें बड़ा आनन्द हुआ।

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्।
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रो शिशुः।।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां।
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंगे गतः साग्रजः।।

(१०/४३/१७)

वहाँ बैठे हुए ऋषियों को यह विश्वास हो गया कि गायत्री-जप करते हुए हम जिस नारायण का ध्यान करते हैं वह परब्रह्म यही है। वे स्त्रियों को कामदेव जैसे सुन्दर प्रतीत हुए और कंस को काल के समान दिखाई दिये। जिसके हृदय में जैसा भाव था उसको उसी रूप में श्रीकृष्ण ने दर्शन दिए। पहलवानों ने अपना हाथ ऊँचा करके श्रीकृष्ण-बलराम को अपनी ओर बुलाते हुए कहा कि इधर आओ। तुम गिरिराज में बहुत कसरत करते हो। राजा को खुश करने के लिए चलो हम कुश्ती करें। जिसकी जीत होगी उसे कंस महाराजा भेंट देंगे। प्रभु ने हाथ जोड़कर कहा, 'राजा को खुश करना प्रजा का धर्म है। यदि राजा को कुश्ती देखने की इच्छा हो तो मैं कुश्ती करने के लिए तैयार हूँ। आप बड़े पहलवान हैं और मैं बालक हूँ। आप किसी बालक को बुलाइये तो मैं कुश्ती करूँगा।

कंस ने चाणूर को इशारा किया। चाणूर नशे में मस्त था। उसने कहा कि ऐसा नहीं होगा तू बालक नहीं है। तूने बड़ा हाथी मारा है। चल मेरे साथ कुश्ती कर। ऐसा कहकर उसने श्रीकृष्ण का हाथ पकड़कर खींचा। लाला को भी क्रोध आ गया। लाला ने कूदकर अखाड़े में प्रवेश किया। चाणूर से उनकी कुश्ती होने लगी। बलरामजी ने उसे देखा और विचार किया कि यशोदा माता की आज्ञा है कि कन्हैया अकेला कहीं न जाए। बलरामजी दौड़ते हुए अखाड़े में कूद पड़े। एक अखाड़े में दो कुश्तियाँ होने लगीं। चाणूर के साथ श्रीकृष्ण की और मुष्टक के साथ श्रीबलभद्र की, शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं, 'हे राजन्, यह संसार ही एक बड़ा अखाड़ा है। इस अखाड़े में काम और क्रोध ये दोनों बड़े पहलवान हैं। ये दोनों इस जीव को अनेक बार पछाड़ते हैं। यह

जीव अनेक जन्म से काम और क्रोध की मार खाता आया है। क्रोध का विनाश करने और काम पर विजय पाने के लिए ही जन्म लेना पड़ता है। बलराम ही शब्द ब्रह्म हैं और श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं। जो नाद ब्रह्म की उपासना करता है और परमात्मा के साथ अतिशय प्रेम करता है वह काम और क्रोध पर विजय प्राप्त कर सकता है। सभा में बैठे हुए लोग तमाशा देख रहे हैं किन्तु नन्दबाबा इसे देख नहीं सके। वे बोले यह पहलवान तो पहाड़ जैसा दिखाई देता है और मेरा कन्हैया केवल ग्यारह वर्ष का बालक है। क्या यह कन्हैया को मार डालेगा? यशोदाजी मुझसे कहती थीं कि कंस कपटी है। सोने का रथ देखकर मैं भूल पड़ा। नहीं तो मैं लाला को लाने ही वाला नहीं था। नन्दबाबा बहुत घबरा उठे और उन्होंने हाथ जोड़कर कंस राजा से कहा कि राजा, यह तो अधर्म युद्ध हो रहा है। एक ओर बड़े पहलवान हैं और दूसरी ओर मेरे छोटे बालक हैं। कंस ने क्रोध में कहा कि मैं धर्म को नहीं मानता, तुम बैठ जाओ। नंदबाबा बहुत घबरा उठे, वे विचारने लगे कि अखाड़े के मालिक देव श्रीहनुमानजी हैं। उनकी कृपा जिस पर होगी अखाड़े में उसी की जीत होगी। नन्दबाबा ने हनुमानजी महाराज की मनौती मानी कि हे हनुमानजी महाराज! मैं आपकी वंदना करता हूँ।

जय-जय-जय हनुमान गोसाईं।
कृपा करो गुरुदेव की नाईं।।

तुम मेरे लाला को सम्हालना और शक्ति देना। गोकुल में लौटने पर मैं दो मन लड्डू बनवाकर आपको चढ़ाऊँगा। लाला आपका बालक है। लाला ने देखा कि बाबा बहुत घबरा रहे हैं। उसने चाणूर को ऐसा धक्का मारा कि वह नीचे गिर पड़ा। नन्दबाबा को ऐसा लगा कि लाला में हनुमानजी का प्रवेश हो गया है। मैंने मनौती मानी है। मेरा कन्हैया अभी बालक है। क्या यह किसी पहलवान को नीचे गिरा सकता है? यह तो हनुमानजी की कृपा है। चाणूर को विश्वास हो गया कि श्रीकृष्ण बालक नहीं, किन्तु मेरा काल है। क्या केई ऐसा बालक हो सकता है? मैंने ऐसा पहलवान आज तक नहीं देखा। यदि मैं कुश्ती से भाग जाऊँ तो कंस मुझे मार डालेगा। इसलिए श्रीकृष्ण के हाथ मरूँ तो मेरा मरण सुधरेगा। आखिरी उपाय करूँ। उसकी मुठ्ठियाँ बज्र से भी कठोर थीं। उसने निश्चय किया कि मैं दौड़ता हुआ आकर श्रीकृष्ण की छाती पर मुष्ठि-प्रहार करूँ। काम इसी प्रकार जीव को मारने आता है। जो गाफिल रहता है वह काम की मार खाता है। श्रीकृष्ण सर्वकाल सावधान हैं, गाफिल नहीं हैं। चाणूर ने क्रोध में दौड़ते हुए श्रीकृष्ण की छाती में जैसे ही मुष्टि प्रहार करने का इरादा किया वैसे ही श्रीकृष्ण ने उसकी दोनों कलाइयाँ पकड़ लीं और उसे चारों ओर फिरा कर ऐसा पटका कि उसकी मृत्यु हो गई। बलरामजी ने मुष्टिक को मारा।

कंस राजा ने अपने सिपाहियों को हुक्म दिया था कि जब वे पहलवान बालकों को मारें तो बाजा बजाना। बाजे बजने लगे। यह देखकर कंस राजा ने कहा कि बाजा बजाना बन्द करो और इन दोनों बालकों को पकड़कर जेल में डाल दो। बलरामजी ने कहा कि मामा को मरने की जल्दी है। इसीलिए उन्हें अक्ल नहीं आती। श्रीकृष्ण में अनन्त शक्तियाँ हैं। उनमें दो मुख्य हैं—निग्रह और अनुग्रह। प्रभु ने इन शक्तियों का परिचय दिया। कुब्जा को सीधा बनाना अनुग्रह शक्ति है और कुश्ती करते-करते पहलवानों को मारना निग्रह शक्ति है। बलरामजी ने कहा, 'तूने दोनों शक्तियों का परिचय दिया है। तो भी मामा को अभी अक्ल नहीं आती। अब तू इसे मार डाल तो ही अक्ल आएगी। जब बड़े भाई ने कहा तब श्रीकृष्ण वहाँ से कंस की ओर दौड़ पड़े। उन्हें अपनी ओर आता देखकर कंस घबरा उठा और बोला कि मेरा काल आया, मेरा काल आया। उसके सिर पर जो मुकुट था वह एकदम नीचे गिर पड़ा। श्रीकृष्ण ने उसके माथे के बाल पकड़ लिये और कहा कि तूने रास्ते में मेरी माँ के बाल पकड़े थे, इसलिए मैं तुझे मारूँगा। घबराया हुआ कंस बोल नहीं पाया। श्रीकृष्ण ने चारों ओर घुमाकर ऐसा पछाड़ा कि वह मर गया। प्रभु ने कंस राजा को सद्‌गति दी। उन्होंने कंस को मारा नहीं बल्कि तार दिया।

परमात्मा श्रीकृष्ण के साथ सम्बन्ध रखने से जीवन और मरण दोनों मंगलमय बनते हैं। परमात्मा के साथ सम्बन्ध रखने पर लक्ष्मी भी मिलती है। बिना सम्बन्ध के स्नेह नहीं होता। सम्बन्ध से ही भाव पैदा होता है। गाँव में सभी के घर बुखार आता होगा; किन्तु हम सभी के यहाँ नहीं जाते। जिसके साथ सम्बन्ध होता है, उसी के यहाँ जाते हैं। लोग परमात्मा से सम्बन्ध नहीं जोड़ते। ईश्वर से कोई भी सम्बन्ध नहीं जोड़ता। परमात्मा को पिता मानो, तुम बालक बनो। परमात्मा को स्वामी मानो, तुम सेवक बनो। यदि कुछ लोगों को संकोच हो तो परमात्मा कहते हैं कि तू मेरा बाप बन, मैं तेरा बेटा बनने को तैयार हूँ। मुझे तो एक ग्रन्थ में ऐसा भी पढ़ने को मिला है कि परमात्मा पत्नी भी होती है। सन्त सखुवाई को पंढरपुर में भगवान् के दर्शन करने की बहुत तीव्र इच्छा थी, किन्तु पति और सास उसे जाने नहीं देते थे। उस समय ईश्वर सन्त सखुबाई के लिए पत्नी भी बन गए। भगवान् सब बन सकते हैं फिर भी सबसे अलग रहते हैं। कंस राजा ने तो श्रीकृष्ण के साथ वैर का सम्बन्ध स्थापित किया था; किन्तु बैर से भी वह श्रीकृष्ण का ध्यान धरता था।

स नित्यदोद्विग्नधिया तमीश्वरं पिबन् वदन् वा विचरन् स्वपञ्छ्वसन्।
ददर्श चक्रायुधमग्रतो यस्तदेव रूपं दुरवापमाप॥

(१०-४४-३९)

प्रभु ने कंस को मुक्ति दे दी। श्रीकृष्ण के क्रोध में भी प्रेम भरा होता है। उनकी मार में भी प्यार है। उन्होंने कंस के त्रास से अपनी जन्मभूमि मथुरा का उद्धार किया।

कंस के मरने पर सब बालक 'कृष्ण-कन्हैयालाल की जय' कहकर उनका जय-जयकार करने लगे। सब प्रसन्न हो गये। इसके बाद उनकी प्रजा ने सुन्दर हाथी सजाकर उस पर श्रीकृष्ण-बलराम को बैठाया। इस प्रकार यादवों ने जलूस निकाला।

७०– बाबा! मेरी गायों को सम्हालना

नन्दबाबा ने देखा कि कल कन्हैया रथ पर बैठा था और आज हाथी पर बैठा है। ऐसा मालूम होता है कि अब वह राजा बनेगा। नन्दबाबा में वात्सल्य भाव भरा है। वे सोचते हैं, कन्हैया सारे गाँव में हाथी फिरा रहा है। इसे किसी की नजर लग जायेगी। सबकी नजर पवित्र नहीं होती। इन यादवों में प्रेम तो है; किन्तु विवेक कम है। बड़े-बड़े पहलवानों से कुश्ती करने के बाद लाला को भूख लगी होगी। उसे कोई खाने के लिए नहीं बुलाता। नन्दबाबा मक्खन, मिश्री और मिठाई लेकर यमुनाजी के तट पर आए। जब जुलूस घाट पर पहुँचा तो उन्होंने कहा कि बेटा अब तू यहाँ उतर जा। सारे गाँव में जुलूस फिराने की क्या जरूरत है। श्रीकृष्ण यह सुनकर हाथी से उतर पड़े और कहा कि बाबा यहीं जलूस समाप्त को कहते हैं। श्रीकृष्ण और बलराम ने नन्दबाबा को वन्दन किया। नन्द-यशोदा की वात्सल्य-भावना का ध्यान रखते हुए श्रीकृष्ण ने कहा 'बाबा मेरी माता ने ऐसा आशीर्वाद दिया है कि तेरी जीत हो। इसीलिए मैं कंस को मार सका हूँ। यह सुनकर नन्दबाबा ने कहा कि यह सब तो ठीक है। तूने इतने बलवान पहलवान से कुश्ती की। कुछ चोट तो नहीं लगी है। श्रीकृष्ण ने कहा कि बाबा मुझे जरा भी चोट नहीं लगी। जिस समय मैं अखाड़े में उतरा, उस समय मुझे विशाल हनुमानजी दिखाई दिये। बाबा ने कहा कि मैंने उनकी मनौती मानी थी। श्रीकृष्ण ने कहा, 'बाबा आपने बहुत अच्छा किया। हनुमानजी ने मुझे शक्ति दी।'

कंस को मारने के बाद श्रीकृष्ण ने जिस घाट पर विश्राम किया, उसे विश्राम घाट कहते हैं। नन्दबाबा ने लाला से कहा कि इस समय वसुदेव-देवकी बहुत दुःखी हैं। तुम उनके पास जल्दी जाओ और उन्हें जल्दी कारागृह से छुड़ाओ।

बाबा की बात सुनकर श्रीकृष्ण और बलराम दौड़ते-दौड़ते वहाँ पहुँचे। कारागृह में वसुदेव और देवकी बैठे हैं। अत्यन्त दुःख होने पर भी यह समझते हैं कि भगवान् की हम पर बड़ी कृपा है। पति-पत्नी कारागृह में हाय-हाय नहीं करते, बल्कि मन शान्त रखते हुए रहते हैं। उनका शरीर दुबला है, सादा वस्त्र पहने हुए हैं। श्रीकृष्ण के दर्शन हेतु उनके प्राण तरस रहे हैं। श्रीकृष्ण जन्म

भूमि का उद्धार करने के बाद अपने जननी-जनक का वन्दन करने के लिए दौड़ते-दौड़ते उनके पास आए हैं। वहाँ पहुँचकर श्रीकृष्ण-बलराम ने उनके चरणों की वन्दना की। माता-पिता के हाथ-पैर में बड़ी-बड़ी बेड़ियाँ देखकर उनकी आँखों में आँसू आ गए। उन्होंने विचार किया कि इन्होंने कितना दुःख सहन किया! उन्होंने बेड़ियाँ तोड़ने के लिए कारीगर को बुलवाया; किन्तु उसे आने मैं देर हुई। इससे वे क्षुभित हो उठे और अपने दाँतों से बेड़ियाँ काट दीं। उन्होंने माता-पिता को कारागृह से मुक्त किया। वसुदेव-देवकी श्रीकृष्ण भगवान् और बलराम को गोद में लेकर पुलकित हो उठे। कन्हैया ग्यारह वर्ष के बाद उनके पास आया था। दोनों की बोलने की बहुत इच्छा होती है; किन्तु मुँह से एक भी शब्द नहीं निकलता। प्रेम की बात जीभ से व्यक्त नहीं की जा सकती। उसे आँख ही कह सकती है। देवकी माता मौन भाव से बालकृष्णलाल को प्रेम करती हैं और उन्हें प्रेम से निहारती हैं। वे कुछ बोल नहीं पातीं। उस समय श्रीकृष्ण बोलना आरंभ करते हैं-

सर्वार्थसम्भवो देहो जनितः पोषितो यतः।
न तयोर्याति निर्वेशं पित्रोर्मर्त्यः शतायुषा॥ (१०-४५-५)

यह शरीर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को सिद्ध कर सकता है; किन्तु जो माता-पिता यह शरीर देते हैं, उनके ऋण से मुक्त नहीं हो सकता। माता-पिता प्रत्यक्ष परमात्मा हैं। उनके उपकार कभी मत भूलना। श्रीकृष्ण ने देवकी माता से कहा कि आज तक मेरे लिए आप लोगों ने बहुत कष्ट सहे हैं। मैंने आपकी कोई सेवा नहीं की है। अब मैं आपकी सेवा करूँगा। इस प्रकार उन्होंने उनको आश्वासन दिया।

सबकी बड़ी इच्छा थी कि कंस-वध के बाद मथुरा की राजगद्दी पर श्रीकृष्ण विराजमान हों और उनका राज्याभिषेक किया जाए; किन्तु प्रभु ने इसे अस्वीकार कर दिया और कहा कि मैंने राजगद्दी लेने के लिए कंस को नहीं मारा है। मुझे राजा नहीं बनना है कंस के पिता उग्रसेन अभी जीवित हैं। उनको राजगद्दी दो। प्रभु ने गीताजी में अर्जुन को आज्ञा दी है-

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोस्त्वकर्मणि

किसी भी फल की अपेक्षा किये बिना सत्कर्म करो। अर्थात् तू निरपेक्ष रहकर सत्कर्म कर। गीताजी में उनका जो उपदेश है, वह उनके जीवन में परिपूर्ण दिखाई देता है। शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं कि श्रीकृष्ण को मथुरा का राज्य मिला है; किन्तु उन्होंने उसमें से एक पैसा भी नहीं लिया है। यदि कोई तुमको एक-दो हजार देना चाहे, तो क्या तुम उसे लेने से इनकार करोगे? इस प्रकार श्रीराम और श्रीकृष्ण के जीवन में सम्पूर्ण अनासक्ति दिखाई देती है। कोई फल कभी बाधक नहीं होता, उसकी आसक्ति बाधक होती है। रामचन्द्रजी को लंका का राज्य मिला था। लंका में बहुत

सम्पत्ति थी; किन्तु वे वहाँ से एक पैसा भी अयोध्या नहीं ले गए। लंका में जो कुछ था, उसे वहीं छोड़ दिया, उसे विभीषण को दे दिया। श्रीकृष्ण को मथुरा का राज्य मिला; किन्तु प्रभु ने कंस के पिता उग्रसेन को राजगद्दी पर बैठाकर उनका अभिषेक किया। राजा उग्रसेन ने कहा, "मैं तो केवल नाम का राजा हूँ। यह सब श्रीकृष्ण का है।" यादव-गण श्रीकृष्ण और बलराम को राजमहल में ले गए।

नन्दबाबा के विदा होने का समय आया। भागवत में तो इस सम्बन्ध का वर्णन केवल एक-दो श्लोकों में ही आया है; किन्तु अन्य ग्रन्थों में कुछ अधिक विस्तार मिलता है। नन्दबाबा मथुरा के बाहर एक बगीचे में ठहराए गए थे। वे विचार करते थे कि अब मैं लाला को गोकुल में ले चलूँगा। मैं उसको मथुरा में तो ले आया किन्तु यहाँ उन्हें बड़ा कष्ट हुआ। उसे यहाँ बड़े-बड़े पहलवानों से कुश्ती करनी पड़ी। वह थक गया है। इसलिए घर चलकर आराम करेगा। नन्दबाबा को अब गोकुल में जाने की इच्छा हुई। सायंकाल होने पर भी कन्हैया आया नहीं है। नन्दबाबा उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उन्हें रात भर नींद नहीं आई। प्रातःकाल गर्गाचार्यजी ने उनके पास आकर बताया कि कन्हैया देवकी का आठवाँ पुत्र है, वह वसुदेव का पुत्र है। सबकी यह इच्छा है कि वह मथुरा में ही रहे। नन्दबाबा ने यह सुना कि कन्हैया उनका पुत्र नहीं है, वह वसुदेवजी का पुत्र है। यह सुनकर वे व्याकुल हो गए। उनका सर्वस्व चला गया था। जिस प्रकार कोई कंजूस आदमी बहुत परिश्रम कर धन संग्रह करे और वह सारा धन नष्ट हो जाने पर जिस प्रकार उसे व्याकुलता होती है उसी प्रकार नन्दबाबा बहुत व्याकुल हो उठे उनको मूर्च्छा आ गई। जब श्रीकृष्ण-बलराम को इसकी खबर पड़ी, तो वे दौड़ते हुए वहाँ आए। उन्होंने नन्दबाबा के चरणों में अपना मस्तक रखते हुए कहा, "बाबा, आप अपनी आँखें खोलिए। आपका कन्हैया आपके चरणों में वन्दन करता है।" नन्दबाबा ने अपनी आँखें खोलीं। आँखों से प्रेमाश्रु बह उठे और वे लाला का मस्तक भिगोने लगे। प्रभु ने नन्द-यशोदा की वात्सल्य-भावना को अपने हृदय में स्थायी बना लिया है, उनको किसी प्रकार का दुःख न हो, इसका वे ध्यान रखते हैं। उन्होंने नन्दबाबा से कहा, "लोग चाहे जो भी कहें। उनकी बात मत सुनना। किसी का हाथ तो पकड़ा जा सकता है; किन्तु जीभ नहीं पकड़ी जा सकती। यह लाला आपका पुत्र है। यशोदाजी मेरी माता हैं। आपके आशीर्वाद से ही कंस को मार सका। कंस के मारने के बाद उनके मित्र राजा मुझे अपना शत्रु मानते हैं। वे मुझसे शत्रुता करते हैं। यदि मैं अभी आपके साथ गोकुल जाऊँगा तो कंस के मित्र मेरे साथ गोकुल जाएँगे और सब लोग परेशान करेंगे। वे परेशान न करें इसीलिए मैंने यह घोषणा की है कि मैं देवकी का पुत्र हूँ। यदि कंस मित्रों को यह खबर पड़े कि मैं आपका पुत्र हूँ, तो वे युद्ध करने के लिए गोकुल पहुँच जाएँगे। ब्रजभूमि तो प्रेम भूमि है। ब्रजवासी कभी झगड़ा नहीं करते। गरीबों की सेवा ही मनुष्य का बड़ा धर्म है।

ब्रजवासी सभी को प्रेम से बेसुध करते हैं। वे शस्त्र से किसी को घायल नहीं करते। ब्रजवासी कभी अपने हाथ में शस्त्र नहीं धारण करते। श्रीकृष्ण जब तक ब्रज में थे तब तक उन्होंने कभी अपने हाथ में शस्त्र नहीं लिया था। उस समय उनके एक हाथ में मक्खन और दूसरे में बाँसुरी थी। गोकुल के निवास काल में भगवान् की चार प्रतिज्ञाएँ थीं—(१) पैर में जूता नहीं पहनना, (२) कभी भी सिले कपड़ों का उपयोग नहीं करना। वे पीला पीताम्बर और काली कमली लेकर ग्वालों के साथ जाते थे। (३) जब तक लाला गोकुल में थे, तब उनके बाल काटे नहीं गए थे। इससे वे काफी बढ़ गये थे। यशोदा माता विचार करती थीं कि मुझे लाला की मनौती उतारनी है। यह सुनकर ब्रजवासी उन्हें रोकते और कहते कि बालों के साथ लाला के मुखारविन्द के दर्शन से आनन्द आता है। इसीलिए वे ज़ब तक गोकुल में रहे, तक उनके बाल नहीं उतारे गए। (४) जब तक वे गोकुल में थे तब तक उन्होंने हाथ में शस्त्र नहीं धारण किया।

कन्हैया ने नन्दबाबा से कहा, 'यदि मैं अभी आपके साथ गोकुल आऊँ तो कंस के मित्र राजा मेरे कारण गोकुल पर चढ़ाई करेंगे। मेरे ब्रजवासियों को परेशान न होना पड़े इसीलिए मैंने यह घोषणा की है कि मैं वसुदेव का पुत्र हूँ। ये दुष्ट राजा सबको परेशान करते हैं। मैंने जिस प्रकार कंस को मारा है, उसी प्रकार इन दुष्ट राजाओं को मारकर अपने देश को सुखी करूँगा और सुराज्य की स्थापना करूँगा। इसके बाद आपका कन्हैया वन्दन करने के लिए आएगा। मैं इस समय नहीं आ सकता। क्योंकि सारी प्रजा बहुत दुःखी है। मुझे मजबूर होकर यहाँ रहना पड़ रहा है। बाबा, मेरी इच्छा है कि आप जल्दी यहाँ से गोकुल जाइये।'

नन्दबाबा ने कहा, 'मैं तुझे साथ लिये बिना गोकुल नहीं जाऊँगा। क्योंकि मेरे साथ तुझे न पाकर तेरी माता बहुत रोयेगी।'

श्रीकृष्ण ने कहा, 'बाबा मैं जानता हूँ कि माता का हृदय कैसा होता है? मेरी माता के चरण में मेरा वन्दन है। मुझे मेरी माता का प्रेम कभी नहीं भूलेगा। मेरी माता जब-जब रोने लगती थी, तब-तब मैं उसे पुराण की कथायें सुनाता था। बाबा मेरी माता को खूब सम्हालना। इस समय मैं आपके साथ नहीं चल सकता।' नन्दबाबा ने कहा, 'बेटा तुझे मथुरा में रहने की इच्छा हुई है तो यहाँ रह। मेरे लिए तो तेरी इच्छा ही मेरी इच्छा है, तेरा सुख ही मेरा सुख है। हमने तेरे प्रति जो प्रेम किया है वह केवल सुख भोगने के लिए नहीं किया है। बेटा, मैं अधिक आग्रह नहीं करूँगा।

प्रेम में आग्रह तो होता है, किन्तु दुराग्रह नहीं होता? ब्रजवासियों का प्रेम शुद्ध है। नन्दबाबा ने कहा 'बेटा यदि तुम्हारी इच्छा है तो मथुरा में रहो। हम सब तुम्हें भूलने वाले नहीं हैं। मैं नारायण

से प्रार्थना करूँगा कि मेरे लाला को कोई कष्ट न हो। बेटा तू मेरी चिन्ता मत करना। जब तुम्हारी इच्छा हो, तब गोकुल आना।' नन्दबाबा श्रीकृष्ण को लिए बिना गोकुल जाने को तैयार हुए। श्रीकृष्ण ने ग्वालबालों का सम्मान किया और उनके लिये वस्त्र आभूषण दिये। ग्वालबालों का प्रेम शुद्ध है। एक ग्वाल बोला 'कन्हैया क्या तू हमको कपड़ा देकर समझाना चाहता है? क्या तू गोकुल नहीं आयेगा? मथुरा आने के बाद तेरा स्वभाव बदल गया है। तू निष्ठुर हो गया है।' यह सुनकर श्रीकृष्ण की नजर झुक गई। उन्होंने कहा कि तेरी बात सच है। अब मुझे निष्ठुर ही होना है। इस समय मुझे फुरसत नहीं है। तुम सब घर जाओ। मुझे याद करते रहना। मेरे माता पिता की सेवा करना और उनको धीरज बँधाना। यह सुनकर बालक व्याकुल हो गए। श्रीकृष्ण ने नन्दबाबा को गाड़ी में बैठाकर उनके चरणों में माथा नबाया और कहा कि बाबा, मेरी गायों को सम्हालना। यह सुनकर नन्दबाबा के मुँह से कोई आवाज नहीं निकल सकी। ब्रजवासियों के प्रेम का वर्णन भला कौन कर सकता है? ब्रजवासियों ने जगत् को यह आदर्श बताया है कि श्रीकृष्ण के वियोग में जीवन कैसा होना चाहिए? ब्रजवासी श्रीकृष्ण के वियोग में किस प्रकार व्याकुल हुए, ऐसा दुःख जब मनुष्य को होगा तभी वह परमात्मा की भक्ति कर सकता है। जिसका मन कृष्ण-वियोग में संसार में भटकता है अथवा जिसे संसार सुखदायी लगता है, वह भगवान् की भक्ति किस प्रकार करता होगा? जिसे संसार नीरस लगता है, जिसे कृष्ण-वियोग का दुःख होता है, वह भगवान् की भक्ति अच्छी तरह कर सकता है। ब्रजवासियों का प्रेम आदर्श प्रेम है।

इसके बाद वसुदेवजी ने श्रीकृष्ण का यज्ञोपवीत-संस्कार किया।

ततश्च लब्धसंस्कारौ द्विजत्वं प्राप्य सुव्रतौ।
गर्गाद् यदुकुलाचार्याद् गायत्रं व्रतमास्थितौ॥ (१०-४५-२९)

गर्गाचार्यजी ने गायत्री की दीक्षा दी। श्रीकृष्ण बलराम ब्रह्मचारी बन गए। परमात्मा यह आदर्श उपस्थित करते हैं कि मैं परमात्मा हूँ; किन्तु संसार में आने पर मुझे भी सद्गुरु देव की आवश्यकता होती है। यह संसार मायामय है। संसार में जो जन्म लेता है, उसे माया का शिकार होना पड़ता है। माया में बड़ी शक्ति होती है। कोयले की खान में उतरने वाला भले ही कहे कि मुझे दाग नहीं लगेगा, किन्तु उसे दाग तो लगने ही वाला है। इसलिए संसार में आने वाले को माया का शिकार होना पड़ता है। ऐसा कौन है, जिसे कामदेव ने एक बार भी पागल न किया हो? किसका मन हितेषणा, वित्तेषणा, और भावेषणा से दूषित नहीं हुआ है! संसार में जो आता है, उसे माया में रहना ही पड़ता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह ये सब माया की सेना हैं। ये सभी को मारते हैं। इनसे बचने के लिए किसी संत का चरण पकड़ रखना या सद्गुरु देव का सहारा लेना चाहिए।

आजकल तो अनेक लोग आराम कुर्सी पर लेटे-लेटे वेदान्त की पुस्तकें पढ़ते हैं, ब्रह्म-ज्ञान की बात भी करते हैं। उनको संयम की आवश्यकता नहीं पड़ती। वे पढ़कर ज्ञानी बन जाते हैं। वह ज्ञान कदाचित् उनको पैसा दे सकता है, किन्तु शान्ति नहीं दे सकता। संसार में आने वाले प्राणी को सद्गुरु देव की अति आवश्यकता है।

उज्ज़यिनी क्षेत्र में क्षिप्रा नदी के तट पर सान्दीपनि मुनि का एक आश्रम था। वहाँ श्रीकृष्ण-बलराम पहुँचे। वे गुरुदेव की सेवा करने लगे। सद्गुरु देव की सेवा से जो ज्ञान मिलता है, वह विनय और विवेक सिखाता है। पुस्तक पढ़ने से जो ज्ञान मिलता है, वह, प्रायः अभिमान के साथ आता है। पुस्तक-पठन से प्राप्त ज्ञान ऐसी प्रतीति लेकर आता है कि मैं होशियार हूँ और दूसरे सब मूर्ख हैं। ज्ञान बढ़ने पर उस व्यक्ति को सबकी भूल ही दिखाई देती है। क्या ज्ञान किसी को मूर्ख समझने के लिए है? वास्तव में ज्ञान किसी का दोष देखने के लिए नहीं है। ज्ञान तो जीवमात्र में परमात्मा का अनुभव करने के लिए और सबको ब्रह्मस्वरूप समझने के लिए है। श्रीकृष्ण-बलराम गुरुदेव की सेवा करते, पानी भरते और गौ चराते थे। विद्या विनय और विवेक से सफल होती है। यदि विद्या को विनय और विवेक का साथ न मिले, तो वह विनाशकारी बनती है। गुरुजी जो कहते, उसे श्रीकृष्णजी ध्यान से सुनते। श्रीकृष्ण को एक बार सुनने पर ही सब कुछ कंठस्थ हो जाता था। उन्होंने पैसा कमाने के लिए विद्या नहीं पढ़ी। आजकल स्कूल-कालेज में केवल पैसा कमाने के लिए ही विद्या पढ़ाई जाती है। पैसा कमाने की विद्या तो वैश्या को भी आती है। यदि पैसा कमाने की विद्या पढ़ाते समय आध्यात्मिक विद्या भी पढ़ाई जाए और जीवन में अच्छी तरह समझाई जाए, तो अनेक झगड़ों का अन्त हो। लोगों को सच्चे सुख का ज्ञान प्राप्त नहीं करना है, बल्कि उसका मजा लेना है। आजकल के लोग जिसे मजा कहते हैं, वैसा मजा तो गौरा-गोरैया पक्षी भी लेते रहते हैं। वे अपना घोंसला बनाते हैं और बच्चे जनमाते हैं। मनुष्य यह नहीं जानता कि सच्चा आनन्द कहाँ है? जब आध्यात्मिक विद्या का प्रचार हो, आत्मा का स्वरूप और परमात्मा का तत्व समझाया जाय तभी सच्चे सुख का ज्ञान होगा। पैसा कमाने की शिक्षा दी जाए; किन्तु आध्यात्मिक विद्या भी सिखानी चाहिए। आध्यात्म विद्या सारी विद्याओं में श्रेष्ठ है, जो मनुष्य को जन्म-मरण के बन्धन से छुड़ाती है। कहीं-कहीं कालेजों में वेदान्त पढ़ाया जाता है, किन्तु वेदान्त पढ़ाने वाले प्रोफेसर प्रायः विलासी होते हैं। विलासी भला वेदान्त क्या पढ़ा सकता है? वेदान्त की शिक्षा तो विरक्त ही दे सकता है। भजनानन्दी साधु, सन्त, संन्यासी, महात्मा, तपस्वी और ब्राह्मण ही आध्यात्मिक विद्या सिखा सकते हैं। जिसका मन सुख में फँसा है, ऐसा विलासी या व्यसनी व्यक्ति वेदान्त सिखाने के योग्य नहीं है।

श्रीकृष्ण ने सान्दीपनि मुनि के आश्रम में अध्यात्म विद्या का ज्ञान प्राप्त किया। वे जब गुरुकुल में थे उस समय अन्य अनेक विद्यार्थी भी विद्या सीखने के लिए वहाँ आए थे किन्तु उनमें से एक ही विद्यार्थी के साथ उनकी मित्रता हुई। श्रीकृष्ण के उस मित्र का नाम भागवत में दिया गया है। वह मित्र सौराष्ट्र के एक अतिशय गरीब ब्राह्मण का पुत्र था। उसका नाम सुदामा था। श्रीकृष्ण ने सुदामा से मैत्री की थी। विद्यार्थी सुदामा के साथ मित्रता करे, तो ही उसकी विद्या सफल होती है। सुदामा बचपन से ही जितेन्द्रिय थे। हमारे शास्त्रों में ऐसा लिखा है कि विवाह के पश्चात् थोड़ा विलासी जीवन गुजारना अच्छा है; किन्तु विद्यार्थी को विलासी जीवन बिताना अच्छा नहीं है। यदि विद्यार्थी विलासी जीवन गुजारे, तो विद्या का विनाश होता है। विद्या के साथ संयम की शिक्षा देने से मनुष्य सुखी होता है। उससे कुटुम्ब भी सुखी होता है। आजकल संयम की शिक्षा नहीं दी जाती। जब पढ़ाने वाले में ही संयम नहीं है, तो वह पढ़ने वाले में कहाँ मिलेगा? पढ़ाने वाला जितेन्द्रिय होना चाहिए। उसे किसी प्रकार का व्यसन नहीं होना चाहिए।

प्राचीन काल में पढ़ाने का अधिकार केवल ब्राह्मणों को ही था। ब्राह्मण को छोड़ कर कोई दूसरा गुरु नहीं हो सकता था। तिलक तो गाय को ही लगाया जाता है। भले ही आधा मन दूध देने वाली भैंस हो। उसे तिलक नहीं लगाया जाता। यदि रास्ते में भैंस मिले, तो शकुन नहीं माना जाता। गाय रास्ते में मिले तो शकुन माना जाता है। इसीलिए गुरु होने का अधिकार केवल ब्राह्मण को ही था। वह ब्राह्मण जो केवल जाति का ही नहीं, कार्य का भी हो, अर्थात् जो ब्राह्मण संध्या करे, जितेन्द्रिय हो, गुण कर्म से भी ब्राह्मण हो। विद्यार्थी को विद्या के साथ संयम का शिक्षण देना बहुत जरूरी है। संयम से ही विद्या सफल होती है। आजकल के विद्यार्थियों में कोई संयम नहीं दिखाई देता। जो खराब चित्र (सिनेमा) देखे उसकी आँख किस प्रकार पवित्र रह सकती है? जब से इन होटलों की संख्या बढ़ी है, तब से जीभ का संयम गायब हो गया है। कुछ लोगों को घर की चीज पसन्द नहीं आती। बाज़ार में तुम्हें कोई चीज स्वच्छ दिखाई देती है, किन्तु शुद्ध नहीं होती। स्वच्छता और पवित्रता दोनों भिन्न वस्तुयें हैं। यदि अपने मन को पवित्र रखना हो तो बाजार की कोई वस्तु मत खाओ। संयम रखो। संयम से मनुष्य को बहुत सुख मिलता है, सम्पत्ति से थोड़ा सुख मिलता है। सुदामदेव संयम की प्रतिमूर्ति हैं।

जिसके श्वास से वेदों की रचना हुई है उसे पढ़ने की क्या जरूरत है? भगवान् श्रीकृष्ण ने केवल पढ़ने के आदर्श का दिग्दर्शन कराया है। थोड़े दिन में उनकी विद्या परिपूर्ण हो गई? इसके बाद श्रीकृष्ण ने सान्दीपनि ऋषि को वन्दन किया और कहा, 'गुरुदेव, मुझे कुछ दक्षिणा देनी है। आप कुछ आज्ञा दीजिए। मैं आपकी क्या सेवा करूँ। सान्दीपनि ऋषि ने कहा, 'बेटा, मैंने यह ज्ञान

कुछ लेने के लिए नहीं दिया है। यह क्षिप्रा नदी मुझे जल देती है, यह पेड़ मुझे फल देता है। मुझे इससे अधिक कुछ नहीं चाहिए। जिसे जल और फल से सन्तोष है, वही सच्चा गुरु है। ज्ञान का विक्रय करना बहुत बड़ा पाप है। गुरु ने कहा 'मैं ज्ञान का विक्रय नहीं करता। मुझे किसी चीज की अपेक्षा नहीं है। मेरे पास बहुत कुछ है।' प्रभु ने कहा 'आपकी इच्छा तो नहीं है, किन्तु गुरु दक्षिणा देने की मेरी बड़ी भावना है। आपने मुझे जो बोध दिया है उसकी तुलना में इस जगत् में कोई दूसरी चीज नहीं है। वस्त्र दान, सुवर्ण दान आदि की अपेक्षा ज्ञान-दान अनेक गुना अधिक अच्छा है। दान से चौबीस घण्टे की तृप्ति होती है, किन्तु ज्ञान-दान से लोक-परलोक की तृप्ति होती है, अखण्ड तृप्ति मिलती है। आपने मुझे यह समझाया है कि आनन्द कहाँ है? आपने हमारा स्वभाव सुधारा है। ज्ञान में बहुत सुख है और अज्ञान में अत्यन्त दुःख है। आपने हमारा अज्ञान दूर किया है। मेरी भावना कुछ सेवा करने की है। आप आज्ञा कीजिए कि क्या सेवा करूँ?

श्रीकृष्ण के बहुत आग्रह करने पर गुरुजी ने दक्षिणा माँगते हुए कहा, 'बेटा मैंने जो ज्ञान दिया है वह किसी बदले की भावना से नहीं दिया है तुमको यदि कोई शिष्य मिले तो उससे कुछ लेना मत, बल्कि विद्या की वंश-वृद्धि करना।'

दो वंश महत्वपूर्ण हैं–विन्दु वंश और नाद वंश। पिता और पुत्र के वंश को विन्दु वंश कहते हैं। गुरु-शिष्य परम्परा को नाद वंश कहते हैं। नाद वंश अतिशय श्रेष्ठ है। सद्गुरु तो अपने शिष्य को सर्वस्व देता है। इसलिए गुरु ने शिष्य को बिना कुछ लिए ज्ञानोपदेश करने हेतु आज्ञा दी।

प्रभु ने अपने गुरु की इस आज्ञा का अच्छी तरह पालन किया है। गीता में अर्जुन कहते हैं–'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वाँ प्रपन्नम्।' अर्जुन श्रीकृष्ण भगवान् को अपना गुरु मानते हैं और कहते हैं 'मैं उलझन में पड़ गया हूँ। मुझे कुछ समझ में नहीं आता। मैं आपका शिष्य हूँ। आप मुझे ज्ञान दीजिए।' यह सुनकर प्रभु ने लेशमात्र अपेक्षा रखे बिना अर्जुन को गीता शास्त्र का उपदेश दिया है। उन्होंने कभी यह इच्छा नहीं की कि अर्जुन मेरा शिष्य है और वह मेरी सेवा करेगा। भगवान् ने अर्जुन की सेवा तो ली नहीं उल्टे उसकी सेवा की है। महाभारत में ऐसा वर्णन आता है कि भगवान् ने अर्जुन की सेवा कर उसे ज्ञान दिया। उन्होंने अर्जुन की सेवा तो की ही, किन्तु उसके घोड़ों की भी सेवा की। वे युद्ध में घायल घोड़ों को मलहम लगाते हैं। प्रभु को अर्जुन के घोड़ों की सेवा करने में ज़रा भी संकोच नहीं होता। इसीलिए व्यासजी ने लिखा है–'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्' श्रीकृष्ण को जगद्गुरु कहा जाता है। संसार में जितने भी गुरु हुए हैं, उन्होंने अपने शिष्यों से कुछ लेकर ज्ञान दिया है किन्तु ये तो ऐसे गुरु हैं, जिसने शिष्य के साथ उसके घोड़ों

श्रीकृष्ण सबसे श्रेष्ठ हैं। उनमें अभिमान तो लेशमात्र भी नहीं है। श्रीकृष्ण की ज्ञान-शक्ति कितनी तीव्र है? क्या उन्होंने गीताजी का उपदेश दो-चार दिन तक कथा सुनाकर किया होगा? बेचारा अर्जुन युद्धभूमि में घबरा उठा था। उस समय भगवान् ने घण्टे दो घण्टे में ही गीता का उपदेश किया है, जिसका अर्जुन के मन पर खूब प्रभाव पड़ा है। उसने कहा है–'करिष्ये वचनं तव।' ज्ञानी पुरुष समस्त जीवन गीता-शास्त्र का वर्णन करते हैं, तब भी तत्व-ज्ञान का अन्त नहीं आता। उस गीताजी का उपदेश प्रभु ने अर्जुन को बहुत थोड़े समय में दिया। प्रभु ने उद्धवजी को भी उपदेश दिया किन्तु उनसे दक्षिणा नहीं ली। जिस गुरु को शिष्य से कुछ लेने की इच्छा होती है वह उसका कल्याण नहीं कर सकता। गुरु निरपेक्ष होना चाहिए। निरपेक्षिता उसमें आती है, जिसे परमात्मा मिलता है। लक्ष्मी हाथ में आने पर जीव निरपेक्ष नहीं हो सकता। श्रीकृष्ण निरपेक्ष हैं। गुरु की आज्ञा हुई है कि विद्या का वंश बढ़ाओ। गुरुजी ने दक्षिणा में श्रीकृष्ण से इतना ही माँगा।

भगवान् को तो गुरुजी की बहुत सेवा करने की इच्छा थी। श्रीकृष्ण अन्दर गुरु-पत्नी के पास गए। उन्होंने माताजी को वन्दन कर कहा, 'माताजी मुझे कुछ आज्ञा दीजिये। मुझे आपकी सेवा करनी है। माताजी जानती थीं कि यह विद्यार्थी साधारण नहीं है। गुरु-पत्नी ने कहा, 'हम लोग जिस समय प्रभास की यात्रा में गए थे उस समय मेरा पुत्र समुद्र में डूबकर मर गया था। यदि सम्भव हो, तो उस बालक को तुम ले आओ।' ऐसी दक्षिणा भगवान् को छोड़कर दूसरा कौन दे सकता है? प्रभु ने प्रभास पहुँचकर पंच राक्षसों का विनाश किया। उनका पंचजन्य शंख धारण किया। इसके बाद वे यमपुरी गए। यमराज ने प्रभु को गुरुदेव का बालक अर्पण किया। प्रभु ने उस बालक को लाकर गुरु-पत्नी के हवाले किया। अपना पुत्र पाकर माता का हृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने हृदय से आशीर्वाद दिया। आशीर्वाद न तो माँगने से मिलता है, न सौ-दो सौ रुपये की भेंट चढ़ाने से मिलता है। जब हृदय पिघलता है तब आशीर्वाद उस पिघले हुए हृदय से अपने आप फूट निकलता है।

तुम अपने माता-पिता की सेवा करो, किसी वृद्ध की सेवा करो, तो उनका हृदय द्रवित होने से उससे आशीर्वाद अपने आप निकल पड़ेगा। श्रीकृष्ण ने गुरु-माता की सेवा की। गुरु-माता ने आशीर्वाद दिया, 'तुम्हारे मुख में सरस्वती का वास होगा, चरणों में लक्ष्मी का वास होगा, तुम्हारी कीर्ति सारे संसार में फैली रहेगी। तुम कभी भी ज्ञान को नहीं भूलोगे।' ज्ञान प्राप्त करना कठिन नहीं है, बल्कि प्राप्त ज्ञान को स्थिर रखना बहुत कठिन है। ज्ञान सुलभ होने पर भी उसमें स्थिरता का अभाव होता है। ज्ञान भूल जाता है, बह जाता है। हृदय के आशीर्वाद और सद्गुरु की कृपा से प्राप्त ज्ञान स्थिर रहता है।

७१– गोपिकाभ्यो नमोस्तु

गुरुजी और गुरू-पत्नीजी के हृदय का आशीर्वाद पाकर श्रीकृष्ण और बलराम मथुरा लौटे। उन्हें देखकर राजा उग्रसेन को बहुत आनन्द हुआ। उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति श्रीकृष्ण को अर्पण कर दी। अब श्रीकृष्ण मथुरा के राजा बने। जीव अति सम्पत्ति पाकर अपना भान भूल बैठता है; लेकिन श्रीकृष्ण अतिशय सम्पत्ति में सावधान हैं। इस पर थोड़ा विचार करो। श्रीकृष्ण का गोकुल का जीवन कैसा था! वे गोकुल में गायों के पीछे-पीछे फिरते थे अब वे मथुरा के राजा हो गए हैं! उनका राजमहल सोने का बना है, नित्य प्रति छप्पन भोग की सामग्री बनती है, सेवा में अनेक सेवक हैं। फिर भी इस अति सम्पत्ति में श्रीकृष्ण ब्रजवासियों का प्रेम नहीं भूले हैं। श्रीकृष्णजी ने उद्धव को गोकुल में भेजा।

वृष्णीनां प्रवरो मन्त्री कृष्णस्य दयितः सखा।
शिष्यो वृहस्पतेः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः॥ (१०-४६-१)

अब उद्धवागमन की बात आती है। दक्षिण के एक सन्त एकनाथजी महाराज की इस अध्याय में समाधि लग गई है। उद्धवागमन के प्रसंग में ज्ञान और भक्ति का मधुर झगड़ा है। उद्धवजी के विचार से ज्ञान श्रेष्ठ है। क्योंकि ज्ञान से ही मुक्ति मिलती है। गोपियों की यह निष्ठा है कि यदि ज्ञानी प्रभु-प्रेमी हो, तो ही उसे मुक्ति मिलती है। यदि ज्ञानी प्रभु-प्रेमी न हो, तो परमात्मा उससे अपने स्वरूप को छिपा रखता है। यह जीव जब तक ईश्वर के साथ अतिशय प्रेम नहीं करता, तब तक परमात्मा माया के पर्दे में छिपा रहता है। भगवान् को प्रत्यक्ष होना पसन्द नहीं आता। उद्धवजी की यह निष्ठा है कि ज्ञान से कल्याण होता है और गोपियों की निष्ठा है कि ज्ञानी यदि प्रभु प्रेमी न हो, तो उसका पतन होता है। कुछ ज्ञानी-जन अपमान के कारण अपना हृदय जलाते हैं, कुछ ज्ञानी किसी हानि से हृदय जलाते हैं। कुछ ज्ञानी पुरुष ईश्वर की अपेक्षा जगत् के पदार्थों से अधिक प्रेम करते हैं। उस समय पतन की संभावना होती है। दोनों की आवश्यकता होती है—ज्ञान को भक्ति की और भक्ति को ज्ञान की आवश्यकता होती है। दोनों में से कोई गौण नहीं है। दोनों प्रधान हैं। भक्ति से हृदय कोमल होता है और ज्ञान से हृदय विशाल बनता है। भक्ति से अभिमान का शमन होता है। बिना भक्ति के ज्ञान लंगड़ा है और बिना ज्ञान के भक्ति अन्धी है। महापुरुषों का कहना है कि दो नहीं तीन की आवश्यकता है। तीसरी वस्तु वैराग्य है। मिष्ठान तैयार करते समय तीन वस्तुएँ एकत्र करनी पड़ी हैं—आटा, घी और चीनी ब्रह्म रसमय है। उसके रसात्मक स्वरूप का सतत अनुभव करने के लिए तीन की आवश्यकता है—ज्ञान, भक्ति और वैराग्य। जो

ब्रह्मवत होकर स्थिर हो जाता है, उस ज्ञान का कोई फल नहीं है। ब्रह्मविद्या प्राप्त होने के बाद यदि ब्रह्म में प्रीति न हो, प्रभु के प्रति प्रेम न जगे, तो ज्ञान व्यर्थ हो जाता है। ब्रह्म ज्ञानी होना सरल है; किन्तु ब्रह्म-दृष्टि रखना बहुत कठिन है। जिसे यह जगत् ब्रह्म रूप दिखाई देता है, वही अपने अन्दर परमात्मा का अनुभव कर सकता है। गोपी को सारा जगत् श्रीकृष्ण रूप दिखाई देता है। इसलिए वह प्रेम-मूर्ति है। उद्धवजी गोकुल में गोपियों का गुरु बनने के लिए और उनको समझाने के लिए आए थे, किन्तु गोपियों का प्रेम देखने के बाद उनका अभिमान पानी-पानी हो गया।

एवं भक्तिः सकलभुवने नेक्षिता न श्रुता वा।
किं शास्त्रौघैः किमिह तपसा, गोपिकाभ्यो नमोस्तु॥ (नारायणीयम्)

उद्धवजी ने ब्रज जैसी भक्ति इस संसार में न कहीं देखी थी, न सुनी थी। यहाँ ज्ञान की क्या आवश्यकता है? तप की क्या आवश्यकता है? ब्रजवासी ऐसा कहते हैं कि "ऊधो सीधो भयो है।" जब तक उद्धवजी को गोपियों का सत्संग नहीं मिला था, तब तक वे ज्ञानी होने के कारण बहुत अकड़कर चलते थे, अपने को सर्वज्ञाता समझते थे। गोपियों के सत्संग से उनका अभिमान पिघल गया। उद्धवजी गोपियों को यह समझाने आए थे कि तुम आँख बन्दकर निराकार का ध्यान करो। गोपियों ने कहा कि आप आँख बन्द करने के लिए कहते हैं; किन्तु हमारी दृष्टि जहाँ जाती है, वहाँ-वहाँ श्रीकृष्ण दिखाई देते हैं। जिसको अपनी खुली आँखों से जगत् न दिखाई देकर परमात्मा दिखाई दे उसीका ज्ञान सच्चा है। जिसको आँख बन्द करने के बाद जगत् न दिखाई दे उसका ज्ञान कच्चा है। उद्धवजी यह समझाने लगे कि सगुण के आधार पर ही निर्गुण का अनुभव होता है। तुम निराकार ब्रह्म का ध्यान करो। गोपी ने कहा, "मुझे सगुण और निर्गुण कुछ पता नहीं लगता। मैं तो इतना ही जानती हूँ कि जब मैं प्रेम से श्रीकृष्ण बोलती हूँ तो (सगुण हो अथवा निर्गुण हो) मेरी आँखों के सामने मुझे श्रीकृष्ण के दर्शन होते हैं। आपने ज्ञान की बात तो सुनाई; किन्तु उसका असली स्वरूप नहीं देखा है। जो एक बार श्रीकृष्ण के दर्शन कर लेता है; वह उसे छोड़ ही नहीं सकता।"

उद्धवजी राधाजी का दर्शन करने जाते हैं। यह प्रसंग भ्रमर गीत का है। वे राधाजी से कहते हैं, "प्रभुजी तुमको भूले नहीं है। वे तुम्हें स्मरण करते हैं। वे इस समय मथुरा में विराजमान हैं। फिर भी तुमको याद करते हैं।" राधाजी कहती हैं, "उद्धव, तू ने चार वेद और छह शास्त्र पढ़कर भी कुछ नहीं जाना, कोरा का कोरा ही रहा। मुझे तो चारों ओर श्रीकृष्ण ही दिखाई देते हैं। मुझे सारा ब्रज कृष्णरूप दिखाई देता है। जो ब्रह्म व्यापक है, उसे तू मथुरा में ही क्यों बन्द रखता है? तू यह क्या बोल रहा है?" 'किं वदति' श्रीराधाजी ने हाथ में बाँसुरी ले ली। बाँसुरी के अन्दर से

'राधे गोविन्द' की ध्वनि निकली। गोपी ने नृत्य आरंभ किया और उद्धवजी को दिव्य लीला के दर्शन का लाभ मिला। एक-एक गोपी के साथ एक-एक श्रीकृष्ण दिखाई दे रहे हैं। गोपी कहती हैं, "उद्धवजी, मेरे कृष्ण तो मुझे छोड़कर गए ही नहीं हैं। मथुरा के कृष्ण कोई और ही होंगे।" भक्त और भगवान् अन्दर से एक ही होते हैं उद्धवजी गोपी को वन्दन करते हैं।

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां,
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा,
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥
या वै श्रियार्चितमजादिभिराप्तकामै-
र्योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठ्याम्।
कृष्णस्य तद् भगवतश्चरणारविन्दं,
न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम्॥
वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः,
यासां हरिकथोद्‌गीतं पुनाति भुवनत्रयम्॥

(१०-४७-६१,६२,६३)

उद्धवजी को अब विश्वास हो गया कि भक्ति से ही ज्ञान परिपूर्ण बनता है। भक्ति प्रेम से विहीन ज्ञान शुष्क है। ज्ञानी को प्रभु प्रेमी बनना ही पड़ता है। ज्ञानी की अपेक्षा श्रीकृष्ण-प्रेमी श्रेष्ठ है। उद्धवजी केवल दो-चार दिन के लिए ब्रज में आए थे, किन्तु वे गोकुल में दो महीने तक रह गए। उन्हें ब्रज छोड़कर मथुरा जाने की इच्छा ही नहीं होती। जब राधाजी की आज्ञा हुई, तब उद्धवजी मथुरा गये।

उद्धवजी विचार कर रहे हैं कि मथुरा में चल कर मैं श्रीकृष्ण को उलाहना दूँगा कि आपने गोपी का प्रेम ठुकराया है। वहाँ पहुँचकर वे श्रीकृष्ण का चरण-वन्दन करते हैं। श्रीकृष्ण उद्धव के मस्तक पर अपना हाथ रखते हैं। वे उनको अपनी एक-एक लीला के दर्शन कराते हैं, 'मैं ब्रज छोड़कर कहीं नहीं गया हूँ। मैं तो नित्य उसके साथ रहता हूँ।' यह लीला प्रेम लक्षणा भक्ति का आदर्श प्रस्तुत करने के लिए है।

इसके बाद श्रीकृष्ण ने अक्रूर को हस्तिनापुर भेजा। उनके काम में पाँडवों को लाक्षागृह में जलाने का समाचार सुनाई दिया था। उसका ठीक पता लगाने के लिए वे हस्तिनापुर गए। उन्होंने धृतराष्ट्र को उपदेश दिया।

एकः प्रसूयते जन्तुरेक एव प्रलीयते।
एकोनुभुँक्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम्॥

(१०-४९-२१)

जिस शरीर को तुम सुख देना चाहते हो, वह भी तुम्हारे साथ जाने वाला नहीं है। प्राण या जीव अकेला आता है और अकेला जाता है। यदि तुम बहुत पैसा कमाओगे तो बहुत से सगे सम्बन्धी एकत्र होंगे। सुख पूर्वक रहने पर सब लोग साथ देंगे। संकट के समय कोई साथ नहीं देता। संकट अकेले ही सहन करना पड़ता है। अक्रूर ने धृतराष्ट्र को समझाया कि तुम दुर्योधन के लिए पक्षपात करते हो, पाप करते हो। जब तुमको दण्ड भोगना पड़ेगा, तब दुर्योधन तुम्हारा साथ न देगा। तुम आधा राज पाँडवों को दे दो। यह बात उन्होंने धृतराष्ट्र को अनेक रीतियों से समझाई; किन्तु उसने इसे नहीं माना। अक्रूरजी धृतराष्ट्र को समझाकर हस्तिनापुर से मथुरा आ गए हैं और उन्होंने भगवान् से निवेदन किया है कि मार पड़ने पर ही उसे बुद्धि आएगी। मैंने उसे समझाने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु उसने ध्यान ही नहीं दिया।

शशंस रामकृष्णाभ्यां धृतराष्ट्रविचेष्टितम्।
पाण्डवान् प्रति कौरव्य यदर्थं प्रेषितः स्वयम्॥ (१०-४९-३१)

इति दशम् स्कन्ध पूर्वार्धः समाप्तः

हरिः ॐ तत्सत्

श्रीमन्नारायण नारायण नारायण
श्रीमन्नारायण नारायण नारायण
लक्ष्मीनारायण नारायण नारायण
लक्ष्मीनारायण नारायण नारायण
बद्रीनारायण नारायण नारायण
बद्रीनारायण नारायण नारायण
श्रीमन्नारायण नारायण नारायण
श्रीमन्नारायण नारायण नारायण

श्रीगणेशाय नमः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवत-रसामृत

दशम स्कन्धः उत्तरार्ध

७२– ब्रह्मविद्यापुरी द्वारका

सत्यं ज्ञानमनंन्तं नित्यमनाकाशं परभाकाशं।
गोष्ठं प्रांगणरिंगणलोलमनायासं परमायासम्॥
मायाकल्पितनानाकारमनाकारं भुवनाकरं।
क्ष्माया नाथमनाथं प्रणमत गोविन्दं परमानंदम्॥ (गोविन्दाष्टकम्)

परमात्मा श्रीकृष्ण आनन्द स्वरूप हैं। निराकार आनन्द ही नराकार श्रीकृष्ण के रूप में प्रकट हुआ है। श्रीकृष्ण की सारी लीला आनन्दमय है। श्रीकृष्ण की कथा जब कभी सुनें, तब आनन्द आता है। प्रभु का दर्शन जब भी करो, तब नया ही आनन्द मिलता है। श्रीकृष्ण का स्मरण जब करो, तब नया ही आनन्द मिलता है।

अब दशम् स्कन्ध का उत्तरार्ध आरम्भ होता है।

अस्तिः प्राप्तिश्च कंसस्य महिष्यौ भरतर्षभ।
मृते भर्तरि दुःखार्ते ईयतुः स्म पितुर्गृहान्॥ (१०-५०-१)

कंस जब तक जीवित था, तब तक व्यासजी ने भागवत में उसकी रानियों का नाम नहीं दिया था। उसके मरने के बाद उनका नाम दिया गया है। वह उत्तरार्ध के प्रथम श्लोक में वर्णित है। कंस की दो रानियों का नाम है अस्ति और प्राप्ति। अस्ति और प्राप्ति का पति कंस है। अस्ति अर्थात् बैंक में इतना रुपया जमा है। प्राप्ति का अर्थ है कि इस वर्ष इतने रुपये आने वाले हैं। यह सुख मुझे मिला है और यह सुख मुझे भोगना है। सभी जानते हैं कि आत्मा इस शरीर से भिन्न है। इसलिए आत्मा का आनन्द भी भिन्न होना चाहिए। फिर भी मनुष्य का अधिकाँश जीवन शरीर और इन्द्रिय का सुख भोगने में ही बीतता है। सुख की इच्छा तो सभी कों होती है, किन्तु मनुष्य सच्चे सुख का विचार नहीं करता। यही कंस का स्वरूप है। कंस के मरने के बाद उसकी दोनों

रानियाँ अपने पीहर चली गईं। उन्होंने अपने पिता जरासन्ध को मथुरा की सारी घटनायें बता दीं। जरासन्ध ने श्रीकृष्ण को अपना बैरी मान लिया।

जरासन्ध ने तेईस अक्षौहिणी सेना एकत्र कर मथुरा पर चढ़ाई कर दी। प्रभु ने बलरामजी से कहा कि बड़े भाई, आप जरासन्ध को मारिए मत। श्रीकृष्ण के कहने से बलरामजी ने जरासन्ध को नहीं मारा। फिर भी उसकी सारी सेना का विनाशकर डाला। जरासन्ध घर गया और कई अक्षौहिणी सेना लेकर फिर युद्ध करने आया। प्रभु ने उसे पराजित किया और उसकी सेना का विनाश किया। इस प्रकार जरासन्ध सत्रह बार पराजित हुआ। इस उत्तरार्ध में जरासन्ध के साथ किए गए युद्ध का वर्णन अच्छी तरह किया गया है। उनचासवें अध्याय में पूर्वार्ध पूरा हुआ है।

तुम्हारे जीवन में उनचास वर्ष पूरा होने पर जरासन्ध लड़ने आयेगा। भोजन न पचना, आँख से अच्छी तरह न दिखाई देना, थकावट लगना ही जरासन्ध की सेना है। जिस समय लोग सौ वर्ष जीवित रहते थे उस समय पचास वर्ष तक पूर्वार्ध और उसके बाद का समय उत्तरार्ध था। अब लोग सौ वर्ष जीवित नहीं रहते। पैंतीस-चालीस वर्ष की उम्र से उत्तरार्ध शुरू हो जाता है। उत्तरार्ध में बहुत सावधान रहना चाहिए। सत्रह बार जरासन्ध यांनी बीमारी आती है। उससे रक्षा होने पर अठारहवीं बार जरासन्ध काल यवन को लेकर लड़ाई करने आता है। उस समय शरीर छोड़ना ही पड़ता है। अन्त में श्रीकृष्ण मथुरा छोड़कर चले जाते हैं।

भागवत की कथा अनेक तरह से कही जाती है। जरासन्ध काल यवन से मैत्री करता है और उससे कहता है कि तुम मथुरा जाओ। फिर बाद में मैं मथुरा आऊँगा। काल-यवन ने मथुरा पर चढ़ाई कर दी। उसके बाद जरासन्ध भी आने वाला था। प्रभु ने बलरामजी से कहा कि अब क्या किया जाएगा? बलरामजी ने कहा कि जरासन्ध को सत्रह बार हराया, फिर भी वह लड़ने आया है। ये लोग मथुरा में शान्ति से नहीं रहने देंगे। मुझे तो आनर्त (गुजरात) देश में जाकर रहना है। उसी समय रेवत की पुत्री के साथ बलरामजी का विवाह हो गया। बलरामजी को इस विवाह में आनर्त-ओखा मण्डल का राज्य दहेज में मिला था। बलरामजी ने वहाँ रहने की इच्छा प्रकट की और मथुरा छोड़ना चाहा। प्रभु ने कहा कि आप बड़े भाई हैं। आपकी इच्छा यदि वहाँ रहने की है तो मैं भी वहीं रहने आऊँगा। उन्होंने विश्वकर्मा को बुलाया और समुद्र के मध्य एक नगरी बनाने की आज्ञा उन्हें दी। देवताओं ने अपनी सारी सम्पत्ति श्रीकृष्ण को अर्पण कर दी। समुद्र के मध्य सुवर्ण नगरी की रचना की गई। उसमें बड़े-बड़े बाड़े (घेरे) बनाए गए थे। यादवों को उसमें से बाहर निकलने के लिए जल्दी रास्ता नहीं मिला। वे बार-बार पूछने लगे। 'द्वार कहाँ है? द्वार कहाँ

है?' इसलिए उसका नाम द्वारका पड़ा। द्वारकाधीश की जय! इस प्रकार श्रीकृष्ण ने मथुरा नगरी छोड़ दी। जरासन्ध जब अन्तिम बार युद्ध करने आया, तब श्रीकृष्ण द्वारका पहुँच चुके थे।

द्वारका ब्रह्मविद्यापुरी है। जिस प्रकार समुद्र का अन्त नहीं है, वैसे ही ब्रह्म का अन्त नहीं है। इसीलिए परमात्मा को अनमा कहते हैं। समुद्र में स्थित द्वारका ब्रह्मविद्या स्वरूप है। द्वार का अर्थ दरवाजा और 'का' अर्थ ब्रह्म परमात्मा है। द्वारिकं-परमात्मा है। ब्रह्म यस्यां सा द्वारका। इसके प्रत्येक द्वार में भगवान् विराजमान हैं। हम सब लोग यदि द्वारका जाकर रहने लगें, तो वहाँ कितनी भीड़ होगी? तीर्थ में रहना अच्छा है; किन्तु प्रभु ने तुम्हें रहने के लिए जो घर दिया है, उसे तीर्थ तुल्य पवित्र बनाओ तो अधिक अच्छा है। अपना घर ऐसा पवित्र रखो कि वहाँ कोई आए तो उसका मन शुद्ध हो और उसे भगवान् की भक्ति करने की भावना पैदा हो अपने घर को तीर्थ बनाने की कोशिश करो, जिसके प्रत्येक स्थान पर भगवान् विराजमान हों। शरीर रूपी घर में इन्द्रिय रूपी दरवाजे हैं भगवान् को अपने शरीर में रखो। अपनी आँख में श्रीकृष्ण को रखो, कान में श्रीकृष्ण को रखो। जिस इन्द्रिय से भक्ति नहीं होती उससे जाने अनजाने पाप होता है। जो अपनी सभी इन्द्रियों से भक्ति करता है उसकी बुद्धि में ज्ञान का प्रकाश होता है। पुस्तकों से प्राप्त ज्ञान समय बीतते भूल जाता है; किन्तु अन्दर से प्राप्त किया गया ज्ञान स्थायी होता है। इसलिए अपनी एक-एक इन्द्रिय से भक्ति करो। जो ब्रह्मरूप हो जाता है, उसे काल-यवन भी नहीं मार सकता।

यादवों को द्वारका में छोड़कर श्रीकृष्ण ने काल-यवन से युद्ध करने के लिए प्रस्थान किया। ब्रह्मा ने काल-यवन को वरदान दिया था कि तुमको कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मार सकेगा जिसने यदुकुल में जन्म लिया हो। प्रभुजी ने ब्रह्माजी का वरदान सफल किया। युद्ध में काल-यवन की जीत हुई और श्रीकृष्ण की हार हुई। परमात्मा ने लीला की। वे रण छोड़कर भागे। काल-यवन ने श्रीकृष्ण का पीछा किया। उसने प्रभु से कहा, "लोग तुमको मानते हैं, लेकिन मुझे विश्वास है कि तुम डरपोक हो। तुम रण छोड़कर जा रहे हो। काल यवन ने 'रण-छोड़, रण-छोड़' कहकर पुकारा। इसलिए उनका नाम रणछोड़राय पड़ गया। रणछोड़राय की जय। श्रीकृष्ण ने भागते-भागते गिरनार पर्वत में स्थित मुचकुंद ऋषि की गुफा में प्रवेश किया। उस समय राजर्षि मुचकुंद सो गये थे। श्रीकृष्ण ने उनके शरीर पर अपना पीताम्बर उढ़ा दिया। काल यवन इसके बाद वहाँ पहुँचा। मुचकुंद ने राजऋर्षि को श्रीकृष्ण मानकर जोर से लात मारी। मुचकुंद ऋषि ने अपनी आँखें खोलीं। मुचकुंद ऋषि को यह वरदान था कि जो तुम्हारी निद्रा भंग करे उस पर यदि तुम्हारी दृष्टि पड़े तो वह जलकर भस्म हो जाए। फलस्वरूप मुचकुंद ऋषि की नजर पड़ते ही काल-यवन जलकर भस्म हो गया। इसके बाद मुचकुंद ऋषि को द्वारकानाथ का दर्शन हुआ। मुचकुंद महाराज ने परमात्मा की स्तुति की।

विमोहितो जन ईश मायया त्वदीयया त्वां न भजत्यनर्थदृक्।
सुखाय दुःखप्रभवेषु सज्जते गृहेषु योषित् पुरुषश्च वञ्चितः॥

(१०-५१-४६)

प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया, प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम्।
त्वमप्रमत्तः सहसाभिपद्यसे, क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः॥

(१०-५१-५०)

चिरमिह वृजिनार्तस्तप्यमानोऽनुतापै रवितृषषडमित्रोऽलब्धशान्तिः कथञ्चित्।
शरणद समुपेतस्त्वत्पदाब्जं परात्मन्नभयमृतमशोकं पाहि माऽऽपन्नमीश॥

(१०-५१-५८)

मुचकुंद महाराज ने अपनी स्तुति में वर्णन करते हुए कहा, "मनुष्य की दशा सर्प के मुँह में स्थित मेढ़क जैसी है। सर्प के मुँह में जो मेढ़क होता है उसका आधा शरीर सर्प के मुख में होता है। वह एक-दो मिनट में ही काल का कौर बनने वाला होता है। ऐसे समय यदि मेढ़क के ऊपर कोई मक्खी फड़कती हुई आई हो, ते वह उसे खाने का प्रयत्न करता है।" शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं, "पचास वर्ष की उम्र पूरी होते ही मनुष्य का शरीर काल के मुख में पड़ जाता है, फिर भी उसे भक्ति की ओर प्रेरणा नहीं होती और वह विषयों में लगा-लिपटा रहता है। यह जीव कितना गाफिल है? यदि किसी को कहीं बाहर जाना हो तो वह दो-तीन दिन पहले तैयारी करता है, कुछ लोग तो दो-चार महीने पहले से तैयारी करते हैं। आश्चर्य है कि प्रभु के घर जाने का निश्चय होने पर भी कोई उसकी तैयारी नहीं करता। यह कथा सुनने के बाद आप लोग हर रोज थोड़ी तैयारी करते रहें। इस में घबराने की आवश्यकता नहीं। अभी बहुत देर है। फिर भी थोड़ी-थोड़ी तैयारी करने की आवश्यकता है। देश के बदलने के साथ-साथ उसका सिक्का भी बदलता रहता है। इसलिए यहाँ का सिक्का वहाँ नहीं चल सकता मनुष्य अपने जीवन-काल में मरने की तैयारी नहीं करता। इसीलिए उसे अंत काल में बहुत पछताना पड़ता है। मुचकुन्द महाराज ने कहा है, "मुझे गर्गाचार्य का सत्संग प्राप्त हुआ है। आज मैं आपका दर्शन कर कृतार्थ हो गया हूँ। आप मुझे अपनी भक्ति दीजिए।" प्रभु ने कहा कि जिसने जवानी में विलासी जीवन गुजारा है उसे शेष जीवन में अनन्य भक्ति नहीं मिलती, अपितु उसका सारा जीवन विलास में बरबाद हो जाता है। यदि वह वृद्धावस्था में भक्ति करे तो उसका दूसरा जन्म सुधरता है। हाँ, उसे एक ध्यान होना होता है। बद्री केदार में जाकर वहाँ एक ध्यान करो वहीं शरीर छोड़ दो।" मुचकन्द

महाराज ने बद्री केदार जाकर अपना शरीर छोड़ा। वे कलियुग में नरसिंह मेहता के रूप में पैदा हुए। प्रभुने मुचकुन्द ऋषि को सद्गति दी।

इसके बाद श्रीकृष्ण मथुरा पहुँचे। उनसे जरासंध अठारहवीं बार युद्ध करने आया। उसने ब्राह्मणों को यह कहकर धमकाया कि यदि मेरी हार होगी तो मैं तुम्हारा कतल कर दूँगा। प्रभु ने लीला की। जरासंध की जीत हुई और श्रीकृष्ण की हार हुई। जरासंध प्रभु के पीछे-पीछे उन्हें मारने के लिए दौड़ा। उस समय श्रीकृष्ण प्रवर्षण पर्वत पर पहुँचे। यदि तुम्हारे पीछे भी जरासंध दौड़े तो तुम भी प्रवर्षण पर्वत पर जाओ। जहाँ ज्ञान और भक्ति की नित्य वर्षा होती है वही सात्विक भूमि प्रवर्षण पर्वत है। पचास-पचपन वर्ष हो जाने के बाद विलासी लोगों से दूर रहना। क्योंकि उनका संग मन को दुर्बल बनाता है। समाज में रहकर मनुष्य होना सरल है, किन्तु विलासी लोगों का साथ कर मन को पवित्र रखना कठिन है। इक्यावन, बावन, सत्तावन का अर्थ यह होता है कि अब 'वन' में जाओ। इस जीवन में बहुत सावधान रहो। जरासंध के पीछा करने के बाद अधिक नहीं तो प्रतिदिन नियमपूर्वक प्रभु का इक्कीस हजार जप करो। एक घंटे में नौ सौ साँस ली जाती है। चौबीस घंटे में २१,६०० साँस ली जाती है। प्रति साँस पर जप करने की आवश्यकता है। नियम से इक्कीस हजार जप करो। 'श्रीराम', 'श्रीकृष्ण' जैसा दो तीन अक्षरों का मन्त्र हो तो एक घण्टे में चार-पाँच हजार मन्त्र बोला जा सकता है। ऐसा एक आसन पर पाँच घण्टा बैठने पर पूरा होगा। जब पुत्र विवाहित हो गया और घर में पुत्र-वधू आ गई तो यह समझना कि अब तुम्हारा गृहस्थाश्रम पूरा हो गया वानप्रस्थाश्रम शुरू हो गया अब तुम्हें वन में जाने की आवश्यकता है। कुछ वृद्धाएँ ऐसी होती हैं जो मरते समय तक चाभी का गुच्छा अपनी बहू को नहीं देतीं और बहू को यह इच्छा होती है कि यदि सासु को कुछ हो जाए तो अच्छा। पुत्र के विवाहित हो जाने के बाद सावधान होकर रहना। घर में रहना हो तो भले रहो; किन्तु विवेकपूर्वक रहो, सादा भोजन करो और सतत भक्ति करो। ऐसा भाव रखो कि मेरा घर भगवान् के चरणों में है। मुझे अब यह घर छोड़ना है।

मन घर में रहने से नहीं बिगड़ता, किन्तु वह घर पर अधिक ममता रखने से बिगड़ता है। सतत भक्ति करने से मरण सुधरेगा। भक्ति करने से जरासंध के त्रास से यानी जन्म और मरण के संकट से छूट सकोगे। प्रभु का नाम जप सतत करने की बहुत आवश्यकता है। बिना जप के पाप की आदत नहीं छूटती। यज्ञ करने से पुण्य बढ़ता है, किन्तु पाप नहीं छूटता। पाप करने की आदत इस जीव को जन्म-जन्मान्तर से पड़ी है। एक स्थान पर शान्ति से बैठकर जप करने पर ही पाप छूटता है। बिना जप के वासना का विनाश नहीं होता। छः महीने जप करके देखोगे और अनुभव करोगे कि मेरा मन अब पहले की अपेक्षा कुछ सुधरा है। मन्त्र-जप करने से पाप कुछ कम होगा

और तुम्हारी आत्मा यह कहेगी कि अब तुझे भक्ति का रंग लगा है। इस प्रकार प्रभु ने जगत् को प्रवर्षण पर्वत पर जाने का उपदेश दिया है।

जीत होने से जरासंध प्रसन्न हुआ उसने ब्राह्मणों कीं पूजा की और उनका सम्मान किया। वे स्वयं द्वारका आए और उसके बाद रुक्मिणीजी से विवाह किया।

७३– रुक्मिणी विवाह

ब्रह्मन् कृष्णकथाः पुण्या माध्वीर्लोकमलापहाः।
को नु तृप्येत श‍ृण्वानः श्रुतज्ञो नित्यनूतना॥ (१०-५२-२०)

राजा परीक्षित ने प्रश्न किया "मैंने रुक्मिणिजी के विवाह की कथा सुनी है, किन्तु मुझे फिर वह कथा सुनने की इच्छा है।" कृष्ण-कथा में बहुत आनन्द आता है। जब-जब श्रीकृष्ण की कथा प्रेम से सुनोगे, तब-तब आनन्द आएगा। श्रीकृष्ण का स्वरूप मंगलमय है। उनका प्रेम से दर्शन करने पर प्रत्येक बार नया आनन्द आता है। कृष्ण-कथा नित्य नवीन लगती है। राजा ने कहा मुझे यह कथा विस्तारपूर्वक सुनाइये। शुकदेवजी महाराज कथा सुनाते हैं–

राजाऽऽसीद् भीष्मको नाम विदर्भाधिपतिर्महान्।
तस्य पञ्चाभवन् पुत्राः कन्यैका च वरानना॥ (१०-५२-२१)

विदर्भ नगरी जिसे आज लोग अमरावती कहते हैं उसमें प्राचीन काल में भीष्मक नामक एक राजा राज करता था। उसके पुत्र का नाम रुक्मी और पुत्री का नाम रुक्मिणी था। रुक्मिणीजी के रूप में मानों साक्षात् लक्ष्मीजी प्रकट हुई थीं। रुक्मिणीजी की माता का नाम भागवत में नहीं दिया गया है। किन्तु उनका नाम शुद्धमति है। जहाँ शुद्धमति है वहीं लक्ष्मी का निवास है। इसके बाद रुक्मिणी-विवाह की कथा का वर्णन है। गंगा का किनारा है, बड़े-बड़े साधु-संन्यासी कथा सुनने के लिए बैठे हैं। उनके आचार्य शुकदेवजी महाराज हैं। वे विवाह की कथा आरम्भ करते हैं। जिस घर में विवाह होता है, उस घर में प्रायः साधु संन्यासी नहीं जाते। क्योंकि विवाह की बहुत सी बातें सुनने पर मन में विकार आ जाता है। इसलिए वे वहाँ नहीं जाते। जिसकी मृत्यु अधिक है समीप उसे भी विवाह की कथा सुनने से बहुत लाभ नहीं।

शुकदेवजी महाराज को भी विवाह की कथा कहने से कोई लाभ नहीं है। बाहर से देखने पर ऐसा लगता है कि यह वर-कन्या की कथा है, किन्तु इसका वर्णन सुनने पर ऐसा लगता है कि यह साधारण वर-कन्या की कथा नहीं है। यह जीवात्मा और परमात्मा की कथा है। यह जीव अनेक बार पति हुआ है और अनेक बार पत्नी भी हुआ है। पति को शान्ति नहीं है और पत्नी

को भी शान्ति नहीं है। यदि यह जीव परमात्मा के साथ एक रूप हो जाए अथवा उनके साथ विवाह कर ले तो ही इसके दुःख का अन्त हो सकता है। शुकदेवजी महाराज परमात्मा के साथ विवाहित हुए हैं। महाराज की इच्छा है कि मेरी कथा सुनने वाला यदि परमात्मा के साथ विवाह कर ले तो उसका मरण मंगलमय होगा। परीक्षित महाराज को जब तक्षक नाग काटने वाला था, उसके पहले ही वे परमात्मा से विवाहित हो जाते हैं। उनका विवाह निश्चित हो जाने के बाद यदि तक्षक नाग काट ले, तो भी कोई परवाह नहीं। तक्षक केवल शरीर को काटने वाला है। वह आत्मा को नहीं काट सकता। यह साधारण विवाह की कथा नहीं है, बल्कि आत्मा का परमात्मा के साथ विवाह की कथा है। रुक्मिणीजी श्रीकृष्ण को जो पत्र लिखती हैं उसमें कामी पुरुषों की निन्दा करते हुए लिखती हैं, 'कामी राजा तो शृगाल के समान होते हैं। मुझे तो कामी पुरुषों का नाम लेना भी पसन्द नहीं है।' क्या कोई साधारण कन्या अपने वर के पत्र में यह लिख सकती है कि कामी पुरुष शृगाल के समान होता है।

भागवत में लिखा है कि विवाह होने के बाद जब श्रीकृष्ण कहते हैं कि मुझे संतान बढ़ाने की इच्छा नहीं है। अर्थात् मुझे किसी स्त्री की थोड़ी भी आवश्यकता नहीं है। यह अलौकिक विवाह की कथा है। रुक्मिणीजी तो जगन्माता हैं; वे कन्या नहीं हैं और श्रीकृष्ण वर नहीं हैं; वे सर्वोत्तम परमात्मा हैं। जिसे परमात्मा से विवाह करना है, उसे घर के लोगों का सताना सहन करना ही पड़ता है। लोगों का सताना सहनकर भक्ति करते रहने से अच्छा फल मिलता है। जो दूसरे का सताना सहन करता है उसकी सहायता भगवान् भी करते हैं। रुक्मिणीजी के भाई रुक्मी की यह इच्छा थी कि मेरी बहन राजा शिशुपाल की रानी बने। शिशुपाल के साथ सम्बन्ध स्थापित होने पर मुझे बहुत लाभ होगा मेरी बहन संसार सुख भोगे, तो बहुत अच्छा है। जिससे वह भक्ति की ओर अधिक न बह जाए। लेकिन रुक्मिणीजी को राजा की रानी होना पसन्द न था। संसार में रानी का जीवन श्रेष्ठ माना गया है। क्योंकि राजा को राज्य चलाने की चिन्ता होती है किन्तु रानी को किसी प्रकार की चिन्ता नहीं होती। फिर भी रुक्मिणीजी को रानी बनना तुच्छ प्रतीत होता है।

रुक्मिणीजी बचपन से ही अपने इस विचार पर दृढ़ हैं। इसलिए उन्हें परमात्मा के साथ विवाह करने की इच्छा है। जिसे प्रभु के साथ विवाह करना हो उसका जीवन अत्यन्त सादा होना चाहिए। रुक्मिणीजी का जीवन अत्यन्त सादा था। भागवत में लिखा है कि रुक्मिणीजी जब अम्बाजी की पूजा करने गईं तब किसी सवारी में न बैठकर पैदल गईं। रुक्मिणीजी ही महालक्ष्मीजी हैं। राजकन्या होने पर भी उन्हें विलासी जीवन नहीं सुहाता। वे बचपन से ही सन्तों का सत्संग

करती थीं। जिसे परमात्मा के साथ विवाह करना हो उसे सद्गुरु की आवश्यकता पड़ती है। इसीलिए रुक्मिणीजी को सुदेव ब्राह्मण की आवश्यकता पड़ी।

रुक्मिणीजी के पिता भीष्मक की इच्छा है कि अपनी कन्या श्रीकृष्ण को अर्पण करूँ। लेकिन उनके पुत्र रुक्मी का आग्रह है कि मैं अपनी बहन शिशुपाल को दूँगा। शिशुपाल का अर्थ है छोटे बालकों के पालन करने में जिसके समय और सम्पत्ति का नाश हो। शिशुपाल का अर्थ है अति कामी जीव। जब शिशुपाल को इसकी खबर पड़ी कि उसका विवाह रुक्मिणीजी के साथ होना है तब वह प्रसन्नता से पागल हो गया। वह गणपति का पूजन करते समय कन्या का चिन्तन कर रहा था। यह देखकर उसकी माता कहती है, 'तू शान्ति से पूजा नहीं करता। इसलिए विवाह में विघ्न पड़ेगा। जो मनुष्य शान्ति से पूजा करता है और पूजा में ध्यान रखता है। उसे अच्छा फल मिलता है। शिशुपाल मूर्ख है। इसलिए उसे महालक्ष्मी नहीं मिल सकती। महालक्ष्मी तो निष्काम श्रीकृष्ण के चरण में जायेगी। जब शिशुपाल बारात लेकर विवाह करने निकलता है, तब रास्ते में अपशकुन होता है।

शिशुपाल के साथ विवाह करना रुक्मिणीजी को पसन्द न आया। उन्हें तो परमात्मा के साथ ही विवाह करना है। रुक्मिणीजी ने सात श्लोकों में एक पत्र लिखा। और उसे सुदेव ब्राह्मण को देते हुए कहा 'मुझे द्वारकानाथ से ही विवाह करना है। आप यह पत्र उनके पास पहुँचा दें और मेरे लिए थोड़ी सिफारिश भी करें।' सिफारिश से काम जल्दी हो जाता है। यदि साधु-सन्त भगवान् को मनाएँ तो भगवान् जल्दी प्रसन्न हो जाते हैं और उनका स्नेह देखकर परमात्मा भाव-विभोर हो उठते हैं। सुदेव द्वारका गए। उन्होंने श्रीकृष्ण को वह पत्र दिया और कहा, 'रुक्मिणीजी अति सुन्दर है, अति योग्य है। मैं उसे बचपन से जानता और देखता हूँ। आप उसे ग्रहण कीजिये। श्रीकृष्ण वह पत्र पढ़ते हैं। अक्षर से ही बुद्धि की परीक्षा होती है जिसके अक्षर अत्यन्त सुन्दर होते हैं, वे बहुत बुद्धिमान होते हैं। बहुत से लोगों के अक्षर ऐसे होते हैं कि वे उसे स्वयं ही नहीं पढ़ पाते। रुक्मिणीजी के अक्षर मोती के दाने के समान हैं। उनके थोड़े शब्दों में अधिक भावार्थ निहित है। पत्र का अति विस्तार कोई बहुत उपयोगी नहीं होता। उसमें थोड़ा लिखने पर बहुत कुछ भाव आ जाता है। पत्र विवेक से लिखा होना चाहिए। पत्र में श्रीकृष्ण के लिये दो शब्दों से सम्बोधित किया गया है—भुवन सुन्दर और अच्युत।

श्रुत्वा गुणान् भुवनसुन्दर शृण्वतां ते निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम्।
रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रपंमे॥

(१०-५२-३७)

जो वैष्णव सहस्रनाम का पाठ करते हैं, उनको पता है कि उसमें अच्युत एक नाम आता है। अच्युत का अर्थ है जिसे काम का स्पर्श न हो, जो पूर्ण निष्काम हो। काम का स्पर्श होने पर जीव का पतन होता है, वह च्युत होता है। श्रीकृष्ण पूर्ण निष्काम हैं। इसलिए उन्हें अच्युत कहा जाता है। बिना सूर्य अन्धकार दूर नहीं होता और सूर्य को अन्धकार का स्पर्श नहीं होता। इसी प्रकार श्रीकृष्ण के पास काम नहीं आ सकता। रुक्मिणीजी का दूसरा सम्बोधन है—भुवन सुन्दर। श्रीकृष्ण के समान कोई सुन्दर नहीं है। अर्थात् श्रीकृष्ण अति सुन्दर हैं। श्रीकृष्ण करोड़ों सूर्यों से भी सुन्दर हैं, प्रकाशमय हैं और आनन्ददाता हैं। जिसे काम का स्पर्श होता है, उसका सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। मनुष्य तब तक ही टिक सकता है, जब तक उसे काम का स्पर्श नहीं होता है। श्रीकृष्ण निष्काम हैं। इसीलिए वे अधिक सुन्दर हैं। इस संसार में जो सौन्दर्य दिखाई देता है, वह श्रीकृष्ण का अल्पांश है। कोई सुन्दर वस्तु देखने को मिले तो उसका चिन्तन मत करना। जिस प्रभु ने ऐसे सुन्दर संसार की रचना की है वह कितना सुन्दर होगा! प्रभु का चिन्तन करो। रुक्मिणीजी लिखती हैं, ''आप अति सुन्दर हैं। आप निष्काम हैं। मैंने अनेक साधु-सन्तों के मुख से आपकी कथा सुनी है। आप साधु-सन्तों के दुःख-भंजक हैं।

तन्मे भवान् खलु वृतः पतिरंग जायामात्मार्पितश्च भवतोऽत्र विभो विधेहि।
मा वीरभागमभिमर्शतु चैद्य आराद् गोमायुवन्मृगपतेर्बलिमम्बुजाक्ष॥

(१०-५२-३९)

मुझे किसी राजा की रानी बनने की इच्छा नहीं है। मुझे निष्काम परमात्मा से ही विवाह करना है। आप निष्काम हैं, मैं निर्विकारी हूँ। मैं आपका एक भाग हूँ। हे नाथ, मुझ पर कृपा कीजिए। यदि सिंह का भाग सियार ले जाए, तो सिंह के लिए कलंक की बात होगी। शिशुपाल शृगाल के समान है।

यस्यांघ्रिपंकजरजःस्नपनं महान्तो, वाञ्छन्त्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै।
यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं जह्यामसून् व्रतकृशाच्छतजन्मभिः स्यात्॥

(१०-५२-४३)

मुझे तो विश्वास है कि मुझ दासी को आप स्वीकार करेंगे। यदि आप ग्रहण नहीं करेंगे तो मैं दूसरा जन्म लूँगी, अनेक जन्म लूँगी, किन्तु विवाह करूँगी तो परमात्मा के साथ ही करूँगी। प्रभु ने पत्र पढ़ा। उन्हें आनंद हुआ। उन्होंने सुदेव ब्राह्मण से कहा, ''मैं उस कन्या को जानता हूँ। मैंने उसकी प्रशंसा सुनी है। मैं उसे ग्रहण करूँगा।''

परमात्मा ने दारुक सारथि को बुलाकर रथ तैयार कराया और उस रथ मैं अपने साथ सुदेव ब्राह्मण को भी बैठाया। उन्होंने भूदेव को वन्दन किया और गणपति महाराज का स्मरण कर प्रस्थान किया।

श्रीकृष्ण संसार को यह आदर्श दिखाते हैं कि मैं ईश्वर होकर भी सबका सम्मान करता हूँ मैं धर्म–मर्यादा का पालन करता हूँ और धर्म नहीं छोड़ता।

श्रीकृष्ण एक ही रात्रि में विदर्भ नगरी में पहुँच गए। विदर्भ के लोग द्वारकानाथ श्रीकृष्ण के दर्शन करते हैं। उन्हें बड़ा आनंद होता है। वे लोग विचार करते हैं, हमारी राजकन्या राजलक्ष्मी के समान है। उसके लिए यही सुन्दर वर है।

राजमहल में रुक्मिणी देवी प्रतीक्षा कर रही है कि समय हो गया है, किन्तु अभी भूदेव पधारे नहीं हैं। उसी समय सुदेव ब्राह्मण वहाँ आ पहुँचे। वे बहुत प्रसन्न दिखाई दे रहे थे। उनको देखकर ही रुक्मिणीजी ने समझ लिया कि ये काम पूरा करके लौटे हैं। सुदेव ने कहा, "बेटी, चिंता मत करना! मैं तो भगवान् को लेकर ही आया हूँ। तू पार्वती की पूजा करने जा रही है। परमात्मा तुझसे मिलेंगे। पूजा करने के बाद वे रथ में बैठाकर तुझे द्वारका ले जाएँगे। यह सुनकर रुक्मिणीजी की आँखें भर आईं। वे ब्राह्मण को वंदन कर कहती हैं, "महाराज मैं आपकी क्या सेवा करूँ? ब्राह्मण ने कुछ लिया नहीं। उसने आशीर्वाद दिया और हाथ हिलाता हुआ घर चला गया। रुक्मिणीजी मन से ब्राह्मण को वंदन करती हैं।

रुक्मिणीजी को पति के रूप में श्रीकृष्ण के मिलने पर जो आनन्द होता, उससे अधिक आनंद सुदेव को रुक्मिणी के साथ श्रीकृष्ण को देखकर हुआ। सदगुरु सद्शिष्य का परमात्मा के साथ सम्बन्ध स्थापित कर आनंद का अनुभव करता है। पवित्र ब्राह्मण के चरण में महालक्ष्मी वंदन करती हैं। श्रीधर स्वामी ने अपनी टीका में लिखा है कि जो ब्राह्मण तीन बार संध्या करता है और सूर्य को अर्घ्य देता है उसकी सभी चिन्ताएँ सूर्य ले लेते हैं और उसके चरण में महालक्ष्मी वंदन करती हैं। त्रिकाल संध्या करने वाला दरिद्र और मूर्ख नहीं रहता। यदि कोई ब्राह्मण अति मूर्ख हो तो समझना चाहिए कि उसे सूर्य नारायण का श्राप हुआ है।

शिशुपाल बारात लेकर आया था। जरासंध दन्तवक्त्र इत्यादि अनेक राजा उसके साथ थे। वहाँ पहुँचने पर उसे समाचार मिला कि श्रीकृष्ण आए हुए हैं। यह सुनकर शिशुपाल घबरा उठा अति कामी बहुत डरपोक होता है। शिशुपाल रोने लगा। जरासंध उसे समझाने लगा, तू क्यों घबरा रहा है। हम लोग तुम्हारी सहायता के लिए हैं। वह अकेला आया हुआ है। मैंने उसे एकबार हरा दिया है। तू कोई चिन्ता मत कर।

वहाँ रुक्मी आया और बोला, ''तुम जरा भी चिन्ता मत करना। मैंने ऐसी व्यवस्था की है कि राजकन्या के पास कोई चिड़िया भी नहीं फड़क सकती। बड़े-बड़े पहलवान घेरा बनाकर उसके साथ चलने वाले हैं। पार्वती के मन्दिर तक खुली तलवार से पहरे की व्यवस्था की गई है।

सोलह सखियों ने रुक्मिणीजी को सोने के पाटले पर बैठाकर मांगलिक स्नान कराया और उनका सुन्दर श्रृंगार किया। रुक्मिणीजी प्रतिदिन अपने महल में तुलसीजी और बालकृष्णलाल की सेवा करती हैं और उनकी प्रदक्षिणा करती हैं। रुक्मिणीजी अपने पिताजी को वंदन करती हैं। उनके पिता आशीर्वाद देते हैं कि यह कन्या जिसके घर जाएगी वह बहुत सुखी होगा। ऐसा इस कन्या का योग है।''

माता-पिता को वन्दन कर रुक्मिणीजी आगे बढ़ती हैं। वे द्वार तक पहुँचती हैं। उस समय उन्हें कुछ याद आया और तुरन्त लौट पड़ीं। उन्होंने अन्दर जाकर अपनी माता के चरण पकड़े। माता ने पुत्री को उठा लिया और कहा, 'बेटी, तू क्यों दुबारा वन्दन करती है?' रुक्मिणीजी विचार करती हैं कि पूजा करने के बाद तो मैं द्वारका जाऊँगी। मुझे अब माँ के घर जल्दी नहीं आना है। इसलिए वह बारम्बार माँ की वंदना करती है। श्रीरुक्मिणीजी माता-पिता का आशीर्वाद प्राप्त कर आगे बढ़ती हैं। उनके दाहिने आठ सखियाँ हैं और बाँए आठ सखियाँ हैं। वे सखियों के साथ धीरे-धीरे चलती हैं।

पदा चलन्तीं कलहंसगामिनीं

उनकी चाल हँस के समान है। देश-विदेश के राजा रुक्मिणीजी को देखने के लिए एकत्र हुए हैं। सब पहलवान घेरा बनाकर रुक्मिणीजी को ले जा रहे थे। इसीलिये राजाओं को रुक्मिणीजी के दर्शन से वंचित होना पड़ा। राजा लोग अब पार्वतीजी के मन्दिर के पास जाकर खड़े हो गये हैं। उनकी इच्छा है कि पार्वतीजी के दर्शन से लौटती हुई रुक्मिणीजी के दर्शन करें। पार्वतीजी का वह मन्दिर आज भी वहाँ मौजूद है।

रुक्मिणीजी ने पार्वती की पूजा की और उनके चरणों पर अपना मस्तक रख कर कहा कि हे अम्बे, मुझे पति के रूप में श्रीकृष्ण मिलें। अम्बाजी के गले में सुन्दर पुष्पों की एक माला थी। वह एकदम सरक कर रुक्मिणीजी के माथे पर गिर पड़ी। रुक्मिणीजी ने ब्राह्मणों को दान दिया और मन्दिर के बाहर आईं। वे ऊपर से धीरे-धीरे मन्दिर की सीढ़ियाँ उतरने लगीं। राजा लोग उन्हें आँख फाड़-फाड़कर देखने लगे। वे कामान्ध थे, मोहान्ध थे। उनकी आँखों में काम था और मन में पाप था। वे बोल उठे अरे यह तो अति सुन्दर है। शिशुपाल बड़ा भाग्यशाली है। रुक्मिणीजी

को यह ढंग पसन्द नहीं आया। वे सोचने लगीं कि मैं तो जगत् की जननी हूँ। ये सब मेरे बालक हैं। ये मुझे काम-भाव से देखते हैं।

श्रीमान का अर्थ लक्ष्मीपुत्र है। यह जीव लक्ष्मी का पुत्र है। यदि लक्ष्मी को माता मान कर उन्हें घर में रखोगे ते उनकी तुम पर कृपा होगी। यदि कोई जीव लक्ष्मी का पति होने जाए, तो वह उसे थप्पड़ मारेगी। रुक्मिणीजी को कुछ क्रोध आ गया। उनकी आँखों से तेज प्रकट हो गया, जिसे श्रीकृष्ण को छोड़कर कोई दूसरा नहीं सहन कर सकता। वह तेज राजाओं से सहन नहीं हुआ। अति तेज से जीव को मूर्छा आ जाती है। राजाओं को मूर्छा आ गई।

उस समय श्रीकृष्ण के सारथी ने अपने घोड़ों को इशारा किया। घोड़े इतने गतिवान थे कि इशारा पाते ही उन्होंने रथ कुदा दिया। रुक्मिणीजी ने वह रथ देखा और उस पर फहराती गरुड़ ध्वजा देखी। वे दौड़ती हुई उस ओर गईं। प्रभु ने अपना हाथ बढ़ाया और रुक्मिणीजी का हाथ पकड़कर उन्हें रथ में बैठा लिया। वे द्वारका की ओर चल पड़े।

धरती पर गिरे हुए राजा खड़े हुए। वे अपने कपड़े पर पड़ी धूल झाड़ने लगे और कहने लगे, कृष्ण रुक्मिणी को ले गया। अभी कोई बहुत देर नहीं हुई है। उन्होंने अपनी सेना को हुक्म दिया। सब मिलकर कृष्ण से लड़ने को तैयार हो गये।

इस ओर दाऊजी महाराज को रात्रिकाल में द्वारका में यह खबर मिली। इन दोनों भाइयों में कितना प्रेम था? दोनों साथ भोजन करते हैं। बलरामजी पाटल पर बैठकर श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा कर रहे हैं और सोच रहे हैं कि अभी तक श्रीकृष्ण क्यों नहीं आए। उन्हें यह खबर मिली कि श्रीकृष्ण जल्दी में रथ पर बैठकर कहीं गए हैं। वे विचार में पड़े कि मेरा कन्हैया बहुत संकोची है। उसने मुझसे भी कुछ नहीं कहा और निकल पड़ा। वहाँ पर राजा लोग उससे युद्ध करेंगे। उन्होंने रात में ही सेना के साथ विदर्भ नगरी की ओर प्रस्थान किया। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि राजा लोग लड़ने को तैयार हैं। वहाँ पहुँचकर दाऊजी ने ऐसा पराक्रम दिखाया कि हल से खींचकर और मूसल से मारकर उनकी सारी सेना छिन्न-भिन्न कर दी। सभी राजा घबरा उठे कि यह दाऊजी है या ऊपर से काल उतरकर आया है। सभी राजा वहाँ से भाग खड़े हुए।

रुक्मी भी लड़ने आया था। प्रभु ने उसे रथ के स्तम्भ से बाँध दिया। रास्ते में श्रीकृष्ण और बलदेवजी मिले। दाऊजी लड़ने में बड़े वीर हैं और व्यवहार में भी कुशल हैं। उन्होंने विचार किया कि विवाह होने के बाद दो भाइयों का प्रेम कम हो जाता है। दोनों की पत्नियों के कारण अन्दर-अन्दर खटपट शुरू हो जाती है। मुझे भाई से अलग नहीं रहना है और एक ही घर में रहना है। रामायण और महाभारत का आदर्श है एक ही कुटुम्ब में, यदि संयुक्त कुटुम्ब में रहना हो तो भाभी

के साथ स्नेह रखना चाहिए और भाभी के पीहर वालों के साथ भी स्नेह दिखाना चाहिए। दाऊजी ने रुक्मी को छोड़ दिया और श्रीकृष्ण को डाँट दिया कि चाहे कुछ हो यह अपना सम्बन्धी है। इसे तुमने क्यों बाँधा? यह रुक्मिणीजी का बड़ा भाई है। दाऊजी ने रुक्मी को वस्त्र आभूषण दिया और सम्मान किया। अपने दोनों हाथ भी जोड़े। दाऊजी ने रुक्मी के साथ वेदान्त की चर्चा की, 'यह सब तो माया का खेल है। क्या हार? क्या जीत? हमारी जीत तुम्हारी ही जीत है। हम लोग अलग कहाँ हैं? ज्ञानी पुरुष जीत होने पर खुश नहीं होते, शाँत रहते हैं।' दाऊजी ने वेदान्त का उपदेश किया और ज्ञान दिया। यह देखकर रुक्मिणीजी दाऊजी को वन्दन करती हैं। पहले दिन ही रुक्मिणीजी के मन में दाऊजी ने प्रेम का ऐसा बीजारोपण किया।

श्रीकृष्ण-बलराम रुक्मिणीजी के साथ द्वारका आए नारदजी ने मुहूर्त बताया माघ महीना, शुक्ल पक्ष, पंचमी तिथि को विवाह हो। प्रभु ने उद्धवजी से कहा, ''उद्धव, मेरे माता-पिता गोकुल में हैं। माता जब तक द्वारका नहीं आएगी, तब तक कन्हैया कुंवारा ही रहेगा।'' उद्धवजी ने नन्दबाबा को पत्र लिखा। वह पत्र गोकुल में पहुँचा है। जिस दिन से श्रीकृष्ण ने गोकुल छोड़ा है, उस दिन से नन्दबाबा और यशोदा ने अनाज छोड़ दिया है। सखियों के बहुत आग्रह करने पर यशोदाजी थोड़ा दूध पी लेती हैं। उन्हें रात को नींद नहीं आती और दिन को भूख नहीं लगती। पति-पत्नी बहुत दुर्बल हो गए हैं। उनको सारे दिन कन्हैया की याद आती है और वे लाला की बात करते रहते हैं। कभी-कभी यशोदा माँ प्रेम में इतनी तन्मय हो जाती हैं कि श्रीकृष्ण का लगातार स्मरण करने से पालने में कन्हैया के सोते रहने का भ्रम होता है। दोनों सारी रात जागते हैं और पालना हिलाते हुए कहते हैं कि सूर्योदय हो गया। अभी कन्हैया क्यों नहीं उठता? वे पालना देखते हैं तो खाली दिखाई देता है। कभी-कभी उन्हें लाला की बाँसुरी सुनाई देती है। जब यशोदा स्नान करने जाती हैं, तब उन्हें ऐसा भ्रम होता है कि मेरा लाला छुम-छुम करता हुआ दौड़कर आ रहा है। यशोदाजी लाला को उठाने जाती हैं।

यशोदाजी ने नन्दबाबा को अनेक बार ठपका दिया और कहा, ''मुझे ऐसा लगता है कि हमारे घर में लाला को कष्ट हुआ। तुम उसे बार-बार गायों के पीछे क्यों भेजते थे? मुझसे कन्हैया कहता था कि माँ, ये गायें बहुत दौड़ाती हैं। मेरे घर में लाला को बहुत त्रास हुआ। इसी से वह गोकुल को भूल गया। कन्हैया यहाँ से जाने के बाद निष्ठुर हो गया। लेकिन यह कहना भी ठीक नहीं है। वह तो बहुत प्रेमालु है। मुझे ऐसा लगता है कि किसी स्त्री ने लाला पर जादू किया होगा। कोई मेरे लाला से जाकर कहे कि तेरी माता रो रही है, तो मेरा कन्हैया दौड़कर आएगा। लेकिन द्वारका तो यहाँ से बहुत दूर है। वहाँ तक खबर पहुँचाने कौन जाएगा?''

नन्दबाबा यशोदा से कहते हैं, "तू मुझे ठपका देती है, किन्तु कन्हैया मुझसे कहता है कि मैं गायों के लिए आया हूँ, इसी से मैं उसे गाय चराने भेजता था। कन्हैया जब तक मेरे घर में था तब मेरी गायें हृष्ट पुष्ट थीं। अब तो गायें खली खाती नहीं और पानी पीतीं नहीं। मुझसे यह दुर्दशा नहीं देखी जाती। तूने लाला को बाँधा था इसीलिए वह गुस्सा हो गया है।"

इस प्रकार पति-पत्नी लाला की बात करने में तन्मय थे उसी समय द्वारका से पत्र आया, पत्र देखकर यशोदा माता कुछ घबरा गईं। वे सोचने लगीं कि पत्र में क्या लिखा होगा? मेरे लाला को कुछ हुआ तो नहीं है? नन्दबाबा पत्र पढ़ते हैं। उसमें लिखा है, "एक अति सुन्दर कन्या के साथ कन्हैया का विवाह होने वाला है। उसने विशेष रूप से लिखाया है कि यदि मेरी माँ द्वारका नहीं आएगी तो मुझे विवाह नहीं करना है।" यह सुनकर यशोदाजी को बहुत आनन्द हुआ। उन्होंने सोचा कि द्वारका तो यहाँ से बहुत दूर है। हम लोग ब्रज छोड़कर कहीं गए नहीं है। मुझे अपने लाला को देखना है। उसे देखे बिना मुझे मरना नहीं है; किन्तु इस समय वह यहाँ आने वाला नहीं है और हम वहाँ जाने वाले नहीं हैं। फिर भी नन्दबाबा यशोदा ने निश्चय किया कि जिस दिन लाला का विवाह होगा उस दिन सारे गाँव वालों को भोजन कराऊँगा।

नन्दबाबा ने कुछ उत्तर नहीं दिया। विवाह का समय आ गया। श्रीकृष्ण बलरामजी से कहते हैं, "बड़े भाई, मैंने ऐसा सुना है कि माता बहुत याद करती है। चलिए, हम दोनों उसके पास चलें।" दोनों भाई रथ पर सवार हो गये। यशोदा माता को कन्हैया बहुत याद आता है। वे सोचती हैं कि अब कन्हैया एक राजा हो गया है। आज मुझे अच्छा शकुन हो रहा है। वह जरूर आएगा। उनके आँगन में कौआ 'का-का' करता है। जब भक्ति बढ़ती है, तब अभिमान नष्ट हो जाता है। यशोदा माता कौए से बात करती हैं, "आज यदि मेरा कन्हैया आएगा, तो मैं तेरी पूजा करूँगी।" उसी समय श्रीकृष्ण और बलराम का रथ वहाँ आ पहुँचा। दोनों ने रथ से उतरकर यशोदा माता को वन्दन किया। माता को देखते ही दोनों के नेत्रों में आँसू आ गए। उन्होंने कहा, "माँ-माँ, यहाँ से जाने के बाद मैं ऐसा उलझ गया कि वापस नहीं आ सका। बहुत देर से यहाँ आया। मुझे क्षमा करो।" आज यशोदा का आनन्द हृदय में नहीं समाता वे बोल उठीं, "बेटा अब तू कितना बड़ा हो गया है। कैसा दिखाई देता है?" उन्होंने दोनों को पाटले पर बैठाकर नजर उतारी गोपियों को यह समाचार मिला है। दर्शन करने के लिए दौड़ पड़ीं। उन्हें खूब आनन्द हुआ है। श्रीकृष्ण ने कहा, "माँ, यदि तू विवाह में नहीं आएगी, तो मैं विवाह नहीं करूँगा। मैं तुझे लेने के लिए ही आया हूँ।"

श्रीकृष्ण द्वारका की अति सम्पत्ति में अत्यन्त सावधान हैं। वे ब्रजवासियों का प्रेम नहीं भूले हैं। वे गोपियों और अन्य ब्रजवासियों को लेकर द्वारका आए हैं। द्वारका के पास गोपी तालाब है।

उसके पास ही गोपियों के निवास स्थान हैं। श्रीमहाप्रभु ने भागवत का पाठ किया है। विवाह वसन्त पंचमी के दिन माधवपुर में हुआ। उस दिन परमात्मा सोने के सिंहासन पर विराजमान हुए। मधुपर्क विधि करके उन्होंने रुक्मिणीजी को महल में ले लिया। ब्रजवासियों ने अन्तर्पट धारण कर कहा–

कस्तूरी तिलकं ललाटपटले वक्षःस्थले कौस्तुभम्,
नासाग्रे चरमौक्तिकं करतले वेणुः करे कंकणम्।
सर्वांगे हरिचन्दनं सुललितं कण्ठे च मुक्तावलिः,
गोपस्त्रिपरिवेष्टितो विजयते कुर्यात् सदा मंगलम्॥

लक्ष्मीनारायण का जयजयकार हुआ। जहाँ साक्षात् महालक्ष्मी का शुभागमन हुआ है, वहाँ के ऐश्वर्य का वर्णन कैसे किया जा सकता है? वहाँ श्रीकृष्ण रुक्मिणी के साथ सुवर्ण के सिंहासन पर विराजमान हैं। श्रीकृष्ण के साथ गोपियों ने रुक्मिणीजी को देखा तो वे बहुत आनन्दित हुईं। उनका ध्यान करते-करते वे परमात्मा के चरणों में लीन हो गईं। गोपी के श्रीअंग की मिट्टी का गोपी चन्दन हुआ।

रुक्मिणीजी जब से द्वारका आईं, तब से नगरी की शोभा खूब बढ़ गई है। द्वारका सोने की बनी है। वैष्णव कहते हैं, 'ये रुक्मिणीजी राजकन्या नहीं है। ये साक्षात् महालक्ष्मी हैं। श्रीकृष्ण आदिनारायण हैं। हम सब लक्ष्मीनारायण का ही दर्शन करते हैं।'

परमात्मा श्रीकृष्ण की आह्लादिका शक्ति का नाम ही श्रीरुक्मिणीजी है। जीव को ईश्वर का वियोग हुआ है। भगवान् से बिछुड़े हुए जीवों को उनका संयोग सिद्ध कराने वाली उनकी कृपा शक्ति का नाम ही रुक्मिणीजी है। वे सारे जीवों की माता हैं। वे दया की मूर्ति है। रुक्मिणीजी को जीवन में कभी क्रोध नहीं आया है। भागवत में ऐस लिखा है कि भगवान् श्रीकृष्ण को कभी-कभी क्रोध आता है, किन्तु श्रीरुक्मिणीजी को जीवन में कभी क्रोध नहीं आया।

भगवान् कृपापूर्वक मनुष्य को भक्ति करने का अवसर देते हैं, वे मनुष्य को भक्ति करने के लिए सुख देते हैं और सभी अनुकूलता करते हैं। इसका कारण यह है कि परमात्मा यह मानते हैं कि इससे मनुष्य अधिक भक्ति करेगा। लेकिन यह जीव जब सभी अनुकूलताएँ पाकर भी सुखभोगी बन जाता है और सब प्रकार की अनुकूलता में भी पाप करता है तब भगवान् को बुरा लगता है। वे सोचते हैं, मैंने अधिक भक्ति करने के लिए तुझे सारी अनुकूलता दे दी थी और तुझे भक्ति करने का एक मौका दिया था। तूने यह मौका खो दिया।' जो मौका खो देता है, उसकी उम्र घट जाती है। भगवान् कृपा कर जीव को भक्ति करने का मौक देते हैं, किन्तु यह जीव वह मौका

खो देता है। उस समय भगवान् को कुछ क्रोध भी आ जाता है। तब वे जीव को दण्ड देते हैं। ऐसे समय पर रुक्मिणीजी भगवान् को समझाती हैं–"दण्ड न दीजिए, दया कीजिएं।"

भगवान् आवेश में आकर कहते हैं, यह जीव दुष्ट है। आज तक मैंने इस पर बड़ी दया की। अब यह दया करने योग्य नहीं है।

उस समय रुक्मिणीजी समझाती हैं 'यह जीव योग्य नहीं है किन्तु आप तो योग्य हैं, महान् हैं। यदि आप इसे दण्ड देंगे तो यह कहाँ जायेगा? मुझे इस पर दया आती है।' जगन्माता होने के कारण रुक्मिणीजी को सब पर दया ही आती है। वे जीव को ब्रह्म-सम्बन्ध प्रदान करती हैं।

रुक्मिणीजी महालक्ष्मीजी का स्वरूप हैं। हमारे शास्त्रों में लक्ष्मी के तीन भेद किये गए हैं–अलक्ष्मी, लक्ष्मी और महालक्ष्मी। पाप का पैसा अलक्ष्मी है। अलक्ष्मी का वाहन उल्लू है। जो धन रुला-रुलाकर बाहर जाता है, उसे ऐसा समझो कि अधर्म अथवा पाप से घर में आया था। लक्ष्मी एक वह धन है, जो धर्म या अधर्म से घर में आती है। जो धन भगवद् सेवा में और परोपकार में थोड़ा जाए और भोग-विलास में भी थोड़ा जाए। वह लक्ष्मी का स्वरूप है। वह धन महालक्ष्मी का स्वरूप है, जो धर्म और नीति से घर में आता है। वही धन धर्म का है। महालक्ष्मी का वाहन गरुड़ है। श्री रुक्मिणीजी महालक्ष्मी स्वरूप हैं।

जीव पुत्र है। लक्ष्मी उसकी माता है और नारायण उसके पिता हैं। लक्ष्मी का विवेक से सदुपयोग करो। उसका दुरुपयोग न करो। पैसा कमाना बहुत मुश्किल नहीं है, बल्कि हाथ में आए हुए पैसे का विवेक पूर्वक सदुपयोग करना बहुत मुश्किल है। भगवान् शंकर स्वामी ने अर्थ को अनर्थ रूप माना है। पैसा विष है और पैसा अमृत भी है। वह लक्ष्मीमाता का स्वरूप है। यदि पैसा नीति से घर में आए और उसका सदुपयोग हो, तो वह जीव को परमात्मा के चरणों में ले जाता है। लक्ष्मी माता है। माता का उपयोग महत्त्व पूर्ण है। लक्ष्मी उपयोग के लिए है। वह उपभोग के लिए नहीं है।

कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि यह सब मैंने कमाया है। फिर अधिक सुख क्यों न भोगूँ? यह ठीक नहीं है। सुख उतना ही भोगना चाहिए जिसे भोगने से भगवान् न भूले और भगवान का स्मरण हो, उसकी याद आए। अति सुख भोगने से मन बिगड़ता है। लक्ष्मी भोग का साधन नहीं है, अपितु भक्ति का साधन है।

कोई भी जीव लक्ष्मी का पति नहीं हो सकता। लक्ष्मी के पति तो केवल एक नारायण ही हैं। नारायण को छोड़कर न तो कोई लक्ष्मी का पति हुआ है और न हो सकेगा। आगे यह कथा बताई गई है कि रुक्मिणीजी का अलौकिक सौन्दर्य देखने वाले राजा धरती पर पछाड़ खाकर गिर

पड़े। वे लक्ष्मी को काम-भाव से देखने लगे। इसलिए उनका पतन हुआ। यदि कोई जीव लक्ष्मी का उपयोग करने जाता है, तो उसे लक्ष्मी गड्ढे में धकेल देती है। यदि लक्ष्मी को माता मानकर घर में रखोगे तो वह तुम्हें नारायण की गोद में बैठाएगी।

यह जीव लक्ष्मी पुत्र है। बालक को सब कुछ मिलता है। मालिक को सब कुछ नहीं मिलता। इसलिए बालक होने में ही मजा है। कल्पना करो कि किसी माता को मन्दिर में पेड़े का प्रसाद मिला। वह प्रसाद लेकर माता घर में आती है। घर में तीन-चार वर्ष का एक बालक है। वह दौड़ता-दौड़ता अपनी माता के पास आता है। माता ने वह प्रसाद बालक को दे दिया बालक वह पेड़ा खा गया। यह देखकर माता पिता प्रसन्न हो उठे। वे ऐसा मानते हैं कि पुत्र के पेट में जो प्रसाद गया है, वह हमारे ही पेट में गया है। यदि घर में बालक न हो और केवल पति-पत्नी ही हों, तो क्या पति को पूरा पेड़ा मिलने वाला है? पत्नी कहेगी, "प्रसादी में पेड़ा मिला है। आधा तुम खाओ, आधा मैं खाऊँगी।" इसी प्रकार पति को आधा पेड़ा ही मिलेगा। यों पुत्र को पूरा पेड़ा मिल जाता है। इसलिए बालक होने में ही मजा है। मलिक होने की इच्छा मत रखो।

सूतजी सावधान करते हैं कि रुक्मिणी स्वयंवर से ऐसे अनेक भाव निकलते हैं।

७४- प्रभु का गृहस्थाश्रम

कामस्तु वासुदेवांशो दग्धः प्राग् रुद्रमन्युना।
देहोपपत्तये भूयस्तमेव प्रत्यपद्यत॥ (१०-५५-१)

रुक्मिणीजी ने प्रद्युम्नलाल को जन्म दिया। प्रद्युम्नलाल ने शंबासुर का विनाश किया।

भगवान् का दूसरा विवाह सत्राजीत की कन्या सत्यभामाजी से हुआ। उनका तीसरा विवाह उस समय जामवंती से हुआ, जिस समय वे स्यमंतक मणि ढूढ़ने के लिए गए थे। श्रीयमुनाजी के अंश से प्रकट हुई कालिन्दीजी के साथ उनका चौथा विवाह हुआ है। पाँचवाँ विवाह मित्रविन्दाजी के साथ और छठा विवाह नाग्नजीतीजी के साथ हुआ। उनका सातवाँ विवाह सत्याजी के साथ और आठवाँ विवाह लक्ष्मणांजी के साथ हुआ है। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण की आठ पटरानियाँ हैं।

गीता के सातवें अध्याय में अष्टधा प्रकृति की कथा आती है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन बुद्धि और अहंकार-यह अष्टधा प्रकृति है। यह जीव जब प्रकृति का दास बनता है तब बहुत दुःखी होता है। प्रकृति का उपयोग भक्ति के लिए करो। आप सब वैष्णव हैं, प्रभुजी के प्यारे हैं और परमात्मा के दास हैं। प्रकृति का उपयोग करते समय सावधान रहना है कि मैं प्रकृति का गुलाम नहीं हूँ बल्कि परमात्मा का दास हूँ। जो प्रकृति के आधीन बनता है उसे प्रकृति

रुलाती है और ज़ो अपने को परमात्मा का दास समझता है तथा परमात्मा को याद करते हुए प्रकृति का उपयोग करता है तो प्रकृति उस जीव को भक्ति पाने में सहायता करती है। जीव प्रकृति पर विजय प्राप्त कर सुखी होता है। प्रकृति अर्थात् स्वभाव। मनुष्य के दु:ख का कारण उसका स्वभाव है। अनेक बार मनुष्य अपना दोष तो समझता है, किन्तु स्वभाव के वशीभूत होकर काम करता है। मनुष्य अपना स्वभाव सुधार नहीं सकता। कथा सुनने के बाद यदि थोड़ा भी स्वभाव सुधरे तो मानना कि कथा अच्छी तरह सुनी है। कथा सुनने के बाद नया जन्म होता है, किए गए पाप के लिए मन से पश्चाताप होता है, पाप छोड़ने की इच्छा होती है और प्रभु में प्रेम होता है। स्वभाव सुधरने पर मनुष्य को मुक्ति भी सुलभ होती है।

अष्टधा प्रकृति श्रीकृष्ण की दासी है। अष्ट पटरानी हैं श्रीकृष्ण प्रकृति के अधीन नहीं होते, बल्कि प्रकृति परमात्मा की इच्छानुसार काम करती है। जब कि जीव प्रकृति के अधीन होकर काम करता हैं। जीव जो करता है, उसका नाम क्रिया है और परमात्मा जो काम करता है उसे लीला कहते है। क्रिया बंधन देने वाली है और लीला बंधन से मुक्त कराने वाली है। तुम अपने स्वरूप को मत भूलो।

इस स्कन्ध के एक अध्याय में सोलह हजार कन्याओं के साथ श्रीकृष्ण के विवाह की बात आती है। ये सोलह हजार राजकन्याएँ वेद के अभिमानी देवता हैं। वेद केवल शब्दरूप हैं ऐसा मत मानो। प्रत्येक वेद-मंत्र का अभिमानी एक देवता होता है, ऋषि होता है, व छन्द होता है। देव, ऋषि और छंद का ज्ञान होने पर ही वेद-मंत्र सफल होता है। आजकल कोई भी वेद-मंत्र बोलने लगता है, किन्तु बिना इन बातों को जाने वह सफल किस प्रकार हो सकता है? तुम उससे पूछो कि जो मंत्र बोल रहे हो उसका ऋषि कौन हैं? उसका छंद कौन है? और उसका देव कौन है? छंद, ऋषि और देवता इन तीनों का अच्छी तरह ज्ञान हुए बिना वेद-मंत्र फलदायी नहीं होता। कभी-कभी तो वह विपरीत फल देता है।

वेद परमात्मा का वर्णन करते-करते थक गए, किन्तु उनको परमात्मा का अनुभव नहीं हुआ—"नायं आत्मा प्रवचनेन लभ्य:।" केवल भोजन का वर्णन करने से तृप्ति नहीं होती, भोजन करने से ही तृप्ति होती है। परमात्मा के दर्शन करना भले ही थोड़ा सरल हो, किन्तु परमात्मा का अनुभव करना बहुत कठिन हैं। परमात्मा के दर्शन से बहुत लाभ नहीं है, परमात्मा का अनुभव करो।

यदि राजमहल में कोई राजा बैठा हो, तो उसे देखने से हमें क्या मिला? राजा के साथ कुछ प्रीति होनी चाहिए। यदि राजा के साथ कुछ प्रीति होगी, तो ही लाभ होगा, मन्दिर में भगवान्

विराजमान हैं। उन्हें देखने से कोई लाभ नहीं होना, न उनके दर्शन से बहुत लाभ ही है। यदि परमात्मा के साथ प्रेम करो, प्रीति करो तो ही लाभ है।

किसी ने कहा कि इस धरती के अन्दर सोना है, किन्तु इतना जानने से कोई लाभ नहीं होता। इसके बाद गड्ढा खोदने पर सोना दिखाई दिया, किन्तु सरकार को इसकी खबर पड़ी इसलिए सरकार के कर्मचारी आए और धरती का धन कहकर उसे ले गए। तुम जानते थे तुमने गड्ढा भी खोदा और तुम्हें सोना भी दिखाई दिया। फिर भी तुमको कुछ मिला नहीं। इस प्रकार धन दिखाई देने से कोई लाभ नहीं। यदि वह तुम्हारे हाथ में आए, तो ही लाभ है। अरे, धन हाथ में आने पर भी लाभ नहीं मिलता। यदि सेठ का रुपया मुनीम के हाथ में हो तो वह जानता है कि यह पैसा मेरा नहीं है, सेठ का है। मुझे तो सेठ को हिसाब देना है। मुझे तो जो वेतन मिलता है, वही मेरा है। इस प्रकार तुम्हारे हाथ में रुपया आए तो भी लाभ नहीं है, बल्कि रुपया तुम्हारा हो तो ही लाभ है इसलिए परमात्मा के साथ ऐसा प्रेम करो कि वह तुम्हारा बन जाए। केवल भगवान् के दर्शन से लाभ नहीं होता, बल्कि उसका अनुभव करने से लाभ होता है। महापुरुष लोग परमात्मा का अनुभव करते हैं। जो परमात्मा बैकुण्ठ में है और जो परमात्मा मन्दिर में है वही तुम्हारे हृदय में विराजमान है। आत्मस्वरूप में परमात्मा का दर्शन ही अनुभव कहा जाता है।

वेद के अभिमानी देवता ब्रह्म का वर्णन करते-करते थक गए, किन्तु ब्रह्मानुभव नहीं हुआ। इसीलिए वेद के अभिमानी देवता ब्रह्म सम्बन्ध स्थापित कर परमात्मा का अनुभव करने के लिए राज-कन्याओं के रूप में प्रकट हुए।

हमारे शास्त्रों में वर्णन है कि वेद-मन्त्र एक लाख हैं। उसमें से चार हजार मन्त्र ज्ञानकांड के हैं। सोलह हजार मन्त्र भक्ति उपासना कांड के हैं और शेष अस्सी हजार मन्त्र कर्मकाण्ड के हैं। वेद में कर्म, भक्ति और ज्ञान इन तीनों का वर्णन है। जीवन में इन तीनों की आवश्यकता है। कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि ज्ञान या कर्म की आवश्यकता नहीं। ये सभी भूल करते हैं।

कोई मिष्ठान्न बनाना हो तो तीन वस्तुएँ एकत्र करनी पड़ती है। एक या दो से मिष्ठान्न नहीं बन सकता है। लड्डू में मुख्य क्या है? शायद कोई मनुष्य ऐसा माने कि लड्डू में घी की कीमत अधिक होती है इसलिए घी ही मुख्य है और आटे की कीमत कम होती है इसलिए आटा गौण है परन्तु आटा गौण नहीं है। यदि आटा न हो तो लड्डू बनें ही नहीं। केवल घी और चीनी का गोला नहीं खाया जा सकता। इसी प्रकार जीवन में भी कर्म, भक्ति और ज्ञान तीनों की ही आवश्यकता है। इन तीनों में कोई गौण नहीं।

सत्कर्म से चित्त की शुद्धि होती है–'चित्तस्य शुद्धये कर्मः।' जिस प्रकार वर्तन पर जंग चढ़ता है उसी प्रकार मन पर अनेक जन्मों का जंग चढ़ा हुआ है। मन का यह जंग साफ करने के लिए अपने मन को किसी भी सत्कर्म में पिरो दो। सत्कर्म से कभी सन्तोष मत मानना। एक सत्कर्म पूरा होने पर दूसरा शुरू करो। जब तक अतिशय थकावट न लग जाए, तब तक सत्कर्म चालू रखो। भक्ति से मन एकाग्र होता है। प्रश्न है कि भक्ति किस प्रकार की जाती है? भगवान् के स्वरूप में भगवान् के नाम में मन को एकाग्र करने और मन को भगवान के चरणों में स्थिर करने के साधन का नाम भक्ति है। ज्ञान से परमात्मा के व्यापक स्वरूप का अनुभव होता है। जीवन में तीनों की आवश्यकता है। कुछ लोग कहते हैं कि गीताजी में कर्मयोग मुख्य है। कुछ लोग ज्ञानयोग मुख्य बताते हैं। कुछ लोग भक्तियोग को प्रधान मानते हैं। इन तीनों में कोई गौण नहीं है। गीताजी के प्रथम छह अध्याय कर्मयोग के हैं। सातवें अध्याय से बारहवें अध्याय तक भक्ति योग है। तेरहवें से अठारहवें अध्याय तक ज्ञानयोग है। ये तीनों ही मुख्य हैं। इनमें से कोई गौण नहीं है। यद्यपि वेद में कर्मकाण्ड के अस्सी हजार मन्त्र हैं, भक्तिकाण्ड के सोलह हजार मन्त्र है और ज्ञानकाण्ड के चार हजार मन्त्र हैं। ज्ञानकाण्ड बहुत कम है। विरक्त साधु-संन्यासी महात्मा ही ज्ञानकाण्ड पर विचार करते हैं। वेद की समाप्ति उपनिषद् में होती है। उपनिषद् आरण्यक में आता है। वेद के तीन भाग हैं–(१) संहिता, (२) ब्राह्मण और (३) आरण्यक। संहिता मन्त्र पर है और उस मन्त्र का उपयोग यज्ञ में किस प्रकार करना चाहिए, इसका वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थ में है। तीसरा भाग आरण्यक है। ऋषिमुनि अरण्य में रहकर कन्दमूल, फल खाकर जिस ज्ञान-तत्व पर विचार करते हैं, उसे आरण्यक कहते हैं। बंगले में रहकर विलासी जीवन गुजारना और उपनिषद् पढ़ना उचित नहीं है। ज्ञान एक पारा है, जो वैराग्य के पात्र के बिना नहीं टिक सकता। साधारणजन को ज्ञान का अधिकार ही नहीं दिया गया है।

शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं, राजन्! वेद में भक्तियोग के मन्त्र सोलह हजार हैं। सोलह हजार वेद मन्त्रों के अभिमानी देवता परमात्मा के साथ एकाकार होने के लिए ब्रह्मानुभव करने के लिए, राजकन्याओं के स्वरूप में प्रकट हुए हैं। इन राजकन्याओं को भौमासुर ने बन्दी बना लिया था। भौमासुर शब्द पर थोड़ा विचार करें। 'भौम' का अर्थ है शरीर, 'असु' का अर्थ है प्राण और 'र' का अर्थ रमण करना है। जो शरीर के साथ रमण करने में सुख मानता है, वह भौमासुर है। उसकी नीयत अच्छी नहीं है। वह राजकन्याओं को कैद में रखता है। यदि वेदमन्त्र विलासी के हाथ में आ जाए, तो वे लोग उसका अर्थ अपनी वासना के अनुसार करते हैं। वेदों को भोग पसन्द नहीं है। वेद का तात्पर्य त्याग में निहित है। निवृत्तिनिष्ठ वेदों में संसार-सुख भोगने की आज्ञा दी

गई है–'ऋतौ भार्यां उपेयात्।' वेद भगवान् जानते हैं कि जीव इस संसार को एकदम छोड़ नहीं सकता। इसीलिए उसने कहा है 'धर्म की मर्यादा में रहकर सुख भोगना चाहिए, किन्तु वेदों का तात्पर्य भोग में नहीं है, त्याग में है। वेदों को निवृत्ति इष्ट है। प्रवृत्ति केवल निवृत्ति का साधन है। जीवन केवल प्रवृत्ति के लिए नहीं है। मनुष्य प्रवृत्ति को एकदम छोड़ दे, यह भी इष्ट नहीं है। साधारण मनुष्य प्रवृत्ति छोड़ कर सारे दिन भक्ति नहीं कर सकता और यदि सारे दिन भक्ति न करे तो मन पाप करेगा। इसीलिए वेदों में वर्णन है कि प्रवृत्ति करो। फिर भी वेदों का लक्ष्य प्रवृत्ति नहीं है बल्कि निवृत्ति है–'त्यागेनैके अमृतं त्वमानशुः।' यदि वेदमन्त्र विलासी के हाथ में जाए तो वह अपनी वासना के अनुसार उसका अर्थ करता है कि वेद में भी ऐसा लिखा है।

एक सज्जन मुझसे कह रहे थे कि महाराज आप भले ही न मानें किन्तु गीताजी में भगवान् अर्जुन को समझाते हैं कि तू मजाकर। मैंने कहा 'भाई, मैं गीताजी का पाठ करता हूँ। मुझे उसमें ऐसा कोई श्लोक नहीं मिला है।' वे सज्जन बोले, 'आप जानते नहीं हैं। मैं आपको बताता हूँ। भगवान् ने कहा है–'सिद्धि भक्ति कर सजा।' यानी तू मजाकर, तुझे सिद्धि मिलेगी। विलासी लोग अपनी वासना के अनुसार उल्टा ही अर्थ निकालते हैं। राजकन्या स्वरूप इन वेदमन्त्रों के अभिमानी देवता भौमासुर के अधिकार में आ गए हैं।

भौमासुर की नीयत बिगड़ गई है। वह राजकन्याओं को कैद में रखता है। भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ पहुँचे हैं। वे भौमासुर को मार डालते हैं और राजकन्याओं को कारागृह से छुड़ाते हैं। इन राजकन्याओं के साथ जगत् का कोई राजपुरुष इसलिए विवाह करने को तैयार नहीं हुआ कि भौमासुर के कारागृह में रह चुकी हैं। सभी इन्हें ग्रहण करने से इनकार करते हैं और इनका तिरस्कार करते हैं। भगवान् निराधार के आधार हैं। मनुष्य दुःख में कभी ऐसा सोचता है कि संसार में मेरा कोई नहीं है। उस समय भगवान् को यह बात बहुत बुरी लगती है। ईश्वर सबके हैं। वे चौबीस घण्टे तुम्हें देखते हैं। कुछ लोग मन्दिर में दो-तीन बार दर्शन करने जाते हैं तो ऐसा लगता है कि मैं खूब भक्ति करता हूँ, मन्दिर में चार बार दर्शन करने जाता हूँ। भगवान् कहते हैं, 'तुझे खबर नहीं है। तू चार बार दर्शन करता है, किन्तु मैं चौबीस घण्टे तेरा दर्शन करता हूँ।' ईश्वर सर्वकाल सबको देखता है। भगवान् सबके हैं। ऐसा न मानो कि मेरा कोई नहीं है। भगवान् तुम्हारे हैं, वे तुमको देखते हैं। फिर भी यह जीव ईश्वर को देखता नहीं है।

ये सोलह हजार राजकन्याएँ निराधार हो गई हैं और श्रीकृष्ण की शरण में आई हैं। प्रभु ने निश्चय किया है कि मैं इन राजकन्याओं के साथ में विवाह करूँगा। वे बेचारी अपना जीवन कैसे व्यतीत करेंगी? ये बहुत दुःखी हो गई हैं। प्रभु ने विचार किया कि रामावतार में मुझे ऐसी इच्छा

हुई कि अयोध्या की प्रजा मेरे लिये क्या कहती है? इसका पता लगाने के लिए मैंने अपने सेवकों को रात्रि में अयोध्या में भेजा। एक सेवक ने आकर मुझसे कहा कि सीताजी के लिए खराब बोलते हैं। यह सुनकर मुझे सीताजी का त्याग करना पड़ा। इससे सीतारामजी दुःखी हुए। जो यह सोचता है कि लोग मुझे क्या कहते हैं उसका मन अशान्त रहता है। यदि तुम्हारे लिए लोग अच्छा कहें तो उसे मत सुनना और जहाँ तुम्हारी प्रशंसा हो वहाँ मत बैठना। क्योंकि प्रशंसा सुनने से अभिमान बढ़ता है। अपनी निन्दा भी मत सुनना। लोगों के निन्दा करने से तुम्हारा कोई नुकसान नहीं है और प्रशंसा करने से कोई लाभ नहीं है। जगत् खराब है। इसमें कोई निन्दा करे या प्रशंसा करे तो यह दोनों खराब हैं। तुम्हें अपने मन को शाँत रखना हो तो इसकी परवाह मत करना कि लोग तुम्हारे लिए क्या कहते हैं?

प्रभु ने कृष्णावतार में निश्चय किया है कि लोग चाहे जो कुछ भी कहें; किन्तु मुझे जो उचित लगेगा वही करना है। यदि इन १६००० (सोलह हजार) राजकन्याओं के साथ विवाह करूँ तो कुछ लोग मेरी भी निन्दा करेंगे। वे भले निन्दा करें। ये सोलह हजार राजकन्याएँ बेचारी किसी प्रकार अपना जीवन निर्वाह करेंगी? श्रीकृष्ण महायोगेश्वर हैं। उन्होंने सोलह हजार मंडप खड़े कर दिये। सोलह हजार राजमहल तैयार करा दिये। श्रीकृष्ण के सोलह हजार स्वरूप भी प्रकट कर दिये। ग्रन्थों में तो यह वर्णन आता है कि यादवों के कुलगुरु गर्गाचार्य हैं। प्रत्येक विवाह में ब्राह्मण की आवश्यकता पड़ती है। हमारे भारत में जो विवाह होता है वह धर्म के लिए होता है; किन्तु विदेश के लोग जो विवाह करते हैं वह भोग के लिए करते हैं। विवाह में देव ब्राह्मण और अग्नि—इन तीनों की साक्षी होती है। इसलिए विवाह का भंग नहीं हो सकता। प्रत्येक विवाह में गर्गाचार्य की—पुरोहित महाराज की आवश्यकता होती है। बिना पुरोहित महाराज के विवाह नहीं हो सकता। प्रभु ने तो ऐसी लीला की श्रीकृष्ण के सोलह हजार स्वरूप प्रकट हुए, उसमें कोई आश्चर्य नहीं है, सोलह हजार गर्गाचार्यों की भी रचना की। प्रत्येक मंडप में गर्गाचार्य बैठे थे। उन्होंने एक ही शुभ मुहूर्त में सोलह हजार राजकन्याओं से विधिपूर्वक विवाह किया। इस प्रकार श्रीकृष्ण सोलह हजार रानियों के स्वामी बने।

श्रीकृष्ण सबको प्रसन्न रखते। वे इस बात का अधिक ध्यान रखते कि घर के लोग दुःखी न हों और सब आनन्द में रहें। यदि तुम भी अपना आनन्द किसी स्त्री या पुरुष में न बाँधकर घर के सभी लोगों के साथ प्रेम करो तो तुम्हें भी परमात्मा आनन्द देंगे। आनन्द किसी पुरुष या स्त्री के पास नहीं होता। प्रभु ने गृहस्थ का धर्म समझाया है। वे सभी रानियों को सन्तुष्ट रखते हैं। वे रानियों से बाह्य रूप से प्रेम प्रकट करते हैं; किन्तु अन्दर से उनमें वैराग्य है। तुम्हें भी घर के लोगों

के साथ बाहर से प्रेम दिखाना चाहिए और अन्दर से ईश्वर के साथ प्रेम करना चाहिए। क्योंकि कोई मनुष्य अन्दर से प्रेम करने योग्य नहीं है। श्रीकृष्ण में वैराग्य परिपूर्ण है। वे सबको सन्तुष्ट रखते हैं; किन्तु किसी रानी में आसक्त नहीं हैं। गृहस्थाश्रम में पति-पत्नी शुभ भाव से प्रेम करें किन्तु शरीर में आसक्त न हों। क्योंकि यह मल-मूत्र से भरा हुआ शरीर अधिक प्रेम करने लायक नहीं है। आत्मदृष्टि से प्रेम करना चाहिए। यदि देहदृष्टि से प्रेम करने जाएँ तो पति-पत्नी का पतन होगा। परमात्मा सोलह हजार रानियों के पति हो गए हैं और सभी को सन्तुष्ट रखते हैं। उनके घर में तनिक भी झगड़ा नहीं है। अरे दो-चार स्त्रियाँ इकट्ठी हों, तो भी झगड़ा शुरू हो जाता है; किन्तु भगवान् के घर में सोलह हजार रानियाँ होने पर भी उनको ऐसा लगता है कि प्रभु का विशेष प्रेम मुझ पर ही है। प्रभु ने यहाँ गृहस्थ धर्म का आदर्श उपस्थित किया है। गृहस्थाश्रम भक्ति में बाधक नहीं हैं, पति-पत्नी का पवित्र सम्बन्ध संसार-सागर तरने के लिए है।

एक बार ऐसा हुआ कि श्रीरुक्मिणीजी को ऐसा अभिमान हुआ कि, "इतनी सारी रानियाँ हैं, किन्तु इनमें कोई भी मेरे समान सुन्दर नहीं हैं। मेरे बिना प्रभु को जरा भी कुछ सुहाता नहीं। मेरे पीछे फिरते रहते हैं। कुछ करना होता है उसे करने से पहले मुझसे पूछते हैं।

कर्हिचित् सुखमासीनं स्वतल्पस्थं जगद्गुरुम्।
पतिं पर्यचरद् भैष्मी व्यजनेन सखीजनैः॥ (१०-६०-१)

श्रीकृष्ण पलंग पर विराजमान हैं। रुक्मिणीजी ने सुन्दर शृंगार किया है, हाथ में पंखा ले लिया है और एकान्त में श्रीकृष्ण भगवान् की सेवा कर रही हैं। आश्चर्य है कि आज रुक्मिणीजी प्रभु की सेवा करती हैं; किन्तु बारंबार अपना शृंगार देखती हैं और सोचती हैं, "मेरा कितना सुन्दर शृंगार है। संसार में मेरे समान कोई सुन्दर नहीं है। इसीलिए ये मेरे आधीन हो गए हैं। मेरे बिना इनको जरा भी कुछ पसन्द नहीं आता। रुक्मिणीजी सेवा तो करती हैं श्रीकृष्ण की किन्तु चिन्तन करती हैं अपने सौन्दर्य का। वे अपने शृंगार को ही बारंबार देखती हैं। जगत् की अपेक्षा भगवान् के साथ अधिक प्रेम करना ही भक्ति है; किन्तु यह जीव जब भगवान् की अपेक्षा जड़ वस्तुओं के साथ अधिक प्रेम करता है, तब भक्ति में व्यभिचार नाम का दोष पैदा हो जाता है। तुम विचार करो कि तुमको इस संसार की अपेक्षा भगवान् अधिक प्रिय है अथवा भगवान् की अपेक्षा जगत् का कोई पदार्थ प्रिय लगता है? भगवान् की अपेक्षा जगत् में अधिक प्रेम करना प्रभु को पसन्द नहीं है। क्योंकि इससे भक्ति में दोष आ जाता है। इस संसार के साथ अधिक प्रेम स्थापित कर जीव दुःखित हो गया है। इसलिए जगत् के साथ विवेक से प्रेम करो, किसी जीव से वैर न करो और किसी का तिरस्कार मत करो। तुम जिस मनुष्य के साथ अथवा जिस जड़ वस्तु के साथ अधिक प्रेम करते हो उसका

वियोग होने ही वाला है। वियोग होने की बात याद रखते हुए प्रेम करो। जीव का ईश्वर के साथ होने वाला संयोग ही सच्चा है, जीव का संसार के साथ संयोग कच्चा है। जिसका संयोग तुमको सुख देता है, उसका वियोग तुमको अत्यन्त दुःख भी देगा। रुक्मिणीजी सेवा तो भगवान् की करती हैं; किन्तु सेवा में प्रमाद उपस्थित हो गया है। तुम ठाकुरजी की सेवा में बैठो तो आँख और मन को भगवान् में पिरो दो। मन को प्रभु में पिरो रखना कठिन है; किन्तु आँख को भगवान् में पिरो रखना बहुत कठिन नहीं है। कदाचित् तुम्हारा मन चंचल हो तो होने देना, किन्तु आँख स्थिर रखना। यदि आँख भगवान् में स्थिर होगी तो धीरे-धीरे मन भी स्थिर होगा। जिसकी आँख चंचल है उसका मन बहुत चंचल होता है। जप करने में, सेवा करने में कदाचित् मन उछल-कूद करे तो परवाह न करना; किन्तु आँख स्थिर करना। जहाँ आँख स्थिर होती है, वहाँ मन भी धीरे-धीरे स्थिर हो जाता है। जागृत अवस्था में मन आँख में होता है। रुक्मिणीजी की आँख चंचल है, मन चंचल है। वे मन से सौन्दर्य का चिन्तन करती हैं और आँख से अपना शृंगार देखती हैं। वे श्रीकृष्ण भगवान् को नहीं देखतीं।

प्रभु ने सब बातें समझ ली हैं कि इसे अभिमान हुआ है। प्रभु ने अभिमान दूर करने के लिए लीला की और रुक्मिणीजी से कहा, "देवी तुम अत्यन्त सुन्दर हो। मुझे तो ऐसा लगता है कि तुम्हारे समान सुन्दर स्त्री संसार में कहीं नहीं होगी; किन्तु मेरे साथ विवाह करने में तुमने भूल की है। मुझे यह समझ में नहीं आता कि तुमने मुझसे विवाह क्या देखकर किया है? तुम्हारा और मेरा कुजोड़ा है। तुम्ही विचार करो कि तुम राजमहल में बड़ी हुई हो, राजकन्या हो। मैं किसी राजा का पुत्र नहीं, बल्कि एक ग्वाल का पुत्र हूँ। मैं वृन्दावन में गायों के पीछे-पीछे नंगे पैर भटकता था। तुम गोरी हो; किन्तु मैं कोई गोरा नहीं हूँ। बड़े-बड़े राजा तुम्हारे लिए पागल हो गए हैं। राजा लोग ऐसी इच्छा रखते हैं कि रुक्मिणीजी एक बार मेरी ओर देखें, हम पर नजर करें। ये राजा तुम्हारे साथ बहुत प्रेम करते हैं; किन्तु मेरी निन्दा करते हैं और मुझसे वैर करते हैं। तुम्हें मालूम है कि मेरी जन्मभूमि मथुरा है। उसे छोड़कर मैं इस खारे समुद्र में, द्वारका में आकर रहता हूँ। मुझे राजाओं से बहुत भय लगता है।"

राजभ्यो बिभ्यतः सुभ्रूः शरणं गतान्।
बलवद्भिः कृतद्वेषान् प्रायस्त्यक्तनृपासनान्॥ (१०/६०/१२)

श्रीकृष्ण भगवान् की भाषा दो अर्थों वाली है। भगवान् कहते हैं कि मुझे राजाओं से डर लगता है। इसीलिए मैं अपनी जन्मभूमि मथुरा छोड़कर द्वारका में रहता हूँ। मुझे जरासंध से बहुत डर लगा। इसलिए मैं रण छोड़कर भाग आया। इसीलिए मुझे रणछोड़ कहते हैं। रणछोड़ अर्थात् डरपोक। मुझे राजाओं से बहुत डर लगता है।

राजा शब्द पर थोड़ा विचार करें। जहाँ रजोगुण अधिक होता है उसे राजा कहते हैं। गीताजी में भगवान् ने कहा है कि रजोगुण यह काम का बाप है।

काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः

रजोगुण से काम की उत्पत्ति होती है। राजा अर्थात् अत्यन्त कामी और विलासी जीव। इसीलिए भगवान् कहते हैं कि राजाओं से दूर रहता हूँ। मुझे उनसे डर लगता है। भगवान् को विलासी लोगों से डर लगता है। भगवान् कहते हैं, ''विलासी लोगों के साथ रहकर मन को पवित्र रखना असंभव है, विलासी लोगों का संग मन को बहुत बिगाड़ता है। मेरी जन्मभूमि मथुरा है। मुझे राजाओं अर्थात् विलासी लोगों से डर लगता है। इसीलिए मैं मथुरा छोड़कर द्वारका में आया और यहाँ रहता हूँ, राजा तो मेरी निन्दा ही करते हैं; किन्तु साधु और ब्राह्मण मेरी प्रशंसा करते हैं।

वैदर्भ्येतद्विज्ञाय त्वयादीर्घसमीक्षया,
वृता वयं गुणैर्हीना भिक्षुभिः श्लाघिता मुधा। (१०/६०/१६)

ये साधु-ब्राह्मण ऐसे होते हैं कि जिसका खाते हैं, उसी का बखान करते हैं। मुझे ब्राह्मणों को भोजन कराने और साधु-सन्तों की पूजा करने की आदत है। बड़े-बड़े धनवान लोग और राजा तो मेरी निन्दा ही करते हैं; किन्तु साधु-ब्राह्मण तो मेरी प्रशंसा ही करते हैं। वह प्रशंसा सुनकर तुम भरमा गई हो। यह तुम्हारी भूल हुई है। तुम अति सुन्दर हो। मैं तुमसे ठीक कहता हूँ। तुम्हारे सौन्दर्य का आदर मेरे घर में नहीं हो पाएगा।'' सौन्दर्य का आदर तो कामी पुरुष करते हैं। श्रीकृष्ण पूर्ण निष्काम हैं इसलिए वे सौन्दर्य का आदर नहीं कर सकते। सूर्पणखा शृंगार करके और बनठन कर रामजी के सन्मुख गई। रामायण में लिखा है कि श्रीरामचन्द्रजी ने उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। उन्होंने शबरी माता से प्रेम की बातें की हैं और शबरी माता ने जो दिया है उसे उन्होंने खाया है। शबरी माता का मन सुन्दर था, तन सुन्दर न था, उनकी वृद्धावस्था थी, शरीर की सभी हड्डियाँ दिखाई देती थीं। शबरी माता ने मन का शृंगार किया था और सूर्पणखा अपने तन का शृंगार कर आई थी। रामचन्द्रजी सूर्पणखा की ओर नहीं देखते; किन्तु शबरी माता से प्रेमपूर्वक बातें करते हैं। परमात्मा निष्काम हैं। इसलिए सौन्दर्य का आदर नहीं कर सकते। सौन्दर्य का आदर तो कामी पुरुष कर सकते हैं। प्रभु ने कहा कि तेरे सौन्दर्य का आदर मेरे घर में नहीं हो सकता। मुझे किसी स्त्री की तनिक भी आवश्यकता नहीं। कदाचित तुझे ऐसा लगता होगा कि मेरी आवश्यकता न थी तो मुझे लेने के लिए मेरे पीहर में क्यों आए? मैं वास्तव में वहाँ राजाओं को अपना पराक्रम दिखाने के लिए गया था; तेरे लिए नहीं गया था।

उदासीना वयं नूनं न स्त्र्यपत्यार्थकामुकाः।
आत्मलब्ध्याऽऽस्महे पूर्णा गेहयोर्ज्योतिर क्रियाः॥ (१०/६०/२०)

मुझे तेरी आवश्यकता नहीं है। मुझे किसी स्त्री की आवश्यकता नहीं है। मुझे यह भी इच्छा नहीं है कि मेरा वंश वृद्धि प्राप्त करे। यह तो परिवार लेकर इसलिए बैठा हूँ कि मेरे माता-पिता को खराब न लगे। विरक्त साधु मुझे प्रिय लगते हैं। जो एकान्त में बैठकर परमात्मा का ध्यान करते हैं उन्हें मैं प्रिय लगता हूँ और मुझे वे प्रिय लगते हैं।

प्रभु ने रुक्मिणीजी का अभिमान दूर करने के लिए कहा है, "तुम्हारे सौन्दर्य का आदर मेरे घर में नहीं होगा। तुम्हें यहाँ से जहाँ जाना हो, वहाँ जाओ। तुम किसी राजा की रानी भी बन सकती हो। उससे सुखी बनोगी। मेरे घर में तुम्हें सुख नहीं मिलेगा। मुझे किसी स्त्री की तनिक भी आवश्यकता नहीं है। श्रीकृष्णजी के इस कथन से रुक्मिणीजी बहुत घबरा गईं। वे सोचने लगीं कि कहीं मेरा त्याग तो नहीं करेंगे। उनके शरीर से पसीना छूटने लगा और पंखा हाथ से छूटकर नीचे गिर पड़ा। वे मूर्च्छित होने के समीप पहुँच गईं। प्रभु ने देखा कि दवा का अधिक असर हो गया है और ये मूर्च्छित होने के समीप पहुँच गई हैं। तब उन्होंने रुक्मिणीजी को उठाकर पलंग पर सुला दिया। उनके शरीर से छूटने वाले पसीने को प्रभु अपने रूमाल से पोंछ रहे हैं।

शुकदेवजी महाराज वर्णन करते हैं, "राजन्, श्रीकृष्ण सबसे श्रेष्ठ हैं, किन्तु उनको अभिमान नहीं है। अब प्रभु ने अपने हाथ में पंखा लिया और रुक्मिणीजी की सेवा करने लगे। जो वैष्णव 'विष्णु सहस्रनाम' का पाठ करते हैं, उन्हें खबर है-कि भयकृत, भीतिनाशनः। जब यह मानव अपना होश भूलता है, तब भगवान् इसे भयभीत करते हैं। हमारे जैसे साधारण मनुष्य भय लगने पर पाप छोड़ देते हैं और भय लगने पर भक्ति करते हैं। मनुष्य बिना भय के भगवान् की भक्ति करता ही नहीं। बिना भय के पाप नहीं छूटता। इसीलिए तो पुराणों में नरक की कथा का वर्णन है कि ऐसा पाप करने से उस नरक में जाते हैं। जहाँ बहुत सजा मिलती है। नरकों का वर्णन इसीलिए किया गया है कि उनका वर्णन सुनकर भय के कारण भी मनुष्य पाप छोड़ दे। भगवान् ही भय उत्पन्न करते हैं। मनुष्य भय लगने पर सुधरता है और भय लगने पर पाप छोड़ता है। जो अपने को निर्भय समझता है, वह पाप करता है। सभी को काल का भय होता है। इसलिए निर्भय होकर स्वच्छन्दी जीवन मत बिताना। रुक्मिणीजी के अभिमान को दूर करने के लिए प्रभु ने भय दिखाया है; किन्तु जब जीव बहुत घबरा जाता है तब भगवान् उसका भय दूर कर देते हैं। भगवान् भयदाता है और भयनाशक भी हैं। जब घर में लड़का बहुत शरारत करता है तो उसकी माता उसे डराती है। जब बालक सचमुच बहुत घबरा जाता है तो माता उसे छाती से लगाती है और प्यार करती है। परमात्मा का स्वभाव

माता के स्वभाव के समान है। रुक्मिणीजी जब बहुत घबराईं और उनका अभिमान हट गया तब प्रभु ने कहा, "मैं तो मजाक कर रहा था। अरे, मैंने थोड़ा विनोद किया और तूने उस पर विश्वास कर लिया! तेरे बिना तो मुझे कुछ भी नहीं सुहाता। तू गुस्से में कैसा बोलती है वह सुनने के लिए ही मैंने यह मजाक किया था। तू मुझे बहुत प्रिय लगती है। मैं तेरे अधीन हूँ।" इस जीव में जब अभिमान आता है तो ईश्वर उसकी उपेक्षा करता है। यदि जीव सब प्रकार का अभिमान छोड़कर भगवान् की शरण में आता है, सब प्रकार का अभिमान छोड़कर भक्ति करता है तो भगवान् कभी-कभी इस ज़ीव को अपने से भी बड़ा बना देते हैं। जीव जब तक अहं नहीं छोड़ता तब तक भगवान् भी यह नहीं भूलते कि मैं ईश्वर हूँ। रुक्मिणीजी समझ गई हैं, "यह सब बाहरी रूप है। श्रीकृष्ण में वैराग्य परिपूर्ण है। मैं मानती थी कि वे मेरे आधीन हैं; किन्तु यह बात गलत है। उन्हें किसी स्त्री की जरूरत नहीं है। वे स्वयं आनन्द रूप हैं।" अभिमान उतरने के बाद रुक्मिणीजी ने बहुत सुन्दर ढंग से कहा, "आपने जो कहा है वह गलत नहीं है। आपका और मेरा कुजोड़ा हुआ है।

नन्वेवमेतदरविन्दविलोचनाह यद् वै भवान् भगवतोऽसदृशी विभूम्नः।
क्व स्वे महिम्न्यभिरतो भगवांस्त्र्यधीशः, क्वाहं गुणप्रकृतिरज्ञगृहीतपादा॥

(१०/६०/३४)

अब रुक्मिणीजी के ध्यान में आया है कि मैं भगवान् के योग्य नहीं हूँ। जब रुक्मिणीजी को अभिमान हुआ था तब प्रभु ने कहा था कि मैं तेरे योग्य नहीं हूँ। अब अभिमान उतरने के बाद रुक्मिणीजी समझ गई हैं कि भला मैं भगवान् के योग्य कहाँ हूँ? कुछ लोग मेरे पीछे पड़ते हैं और ज्ञानी पुरुष उनके लिए पागल होते हैं। ज्ञानी पुरुष लक्ष्मी के पीछे नहीं पड़ते। वे लक्ष्मीपति के पीछे पड़ते हैं। मूर्ख लोग लक्ष्मी के पीछे पड़ते हैं। तुम्हारा और मेरा कुजोड़ा हुआ है यह बात सच है। योग्य न होने पर भी आपने कृपा कर इस दासी को अपने घर में रखा है, यह आपकी बड़ी महानता है। आज से मैं आपके घर की रानी नहीं, किन्तु इस घर की झाड़ू हूँ। मेरा त्याग मत कीजिए। आपने जो कुछ कहा है, वह सब ठीक है। फिर भी आपने अन्त में जो यह कहा है कि किसी राजा से विवाह कर लो यह बात मुझे रुची नहीं।

कान्यं श्रयेत तव पादसरोजगन्धमाघ्राय सन्मुखरितं जनतापवर्गम्।
लक्ष्म्यालयं त्वविगणय्य गुणालयस्य, मर्त्या सदोरुभयमर्थविविक्तदृष्टिः॥

(१०/६०/४२)

जिस स्त्री को आपका दर्शन नहीं होता वह भले ही किसी उस पुरुष शरीर के साथ प्रेम कर ले जो मल-मूत्र भरा हुआ है। जिसे आपका दर्शन न हो वह स्त्री भले ही किसी पुरुष को

प्रिय माने, प्रेम करे; किन्तु जिसे एक बार आपके दर्शन का लाभ मिला है उसे तो किसी को देखने की इच्छा भी नहीं होती। हे नाथ, कृपा कीजिए।' यह सब सुनने के बाद प्रभु ने रुक्मिणीजी का बहुत आदर किया और परमानन्द छा गया।

एक अध्याय में वंश की थोड़ी कथा का वर्णन आता है। रुक्मिणीजी से प्रद्युम्नलाल पैदा हुए। प्रद्युम्नलालजी के पुत्र अनिरुद्धजी हुये हैं। अनिरुद्धजी का विवाह बाणासुर की कन्या उषा के साथ हुआ था। उस विवाह में भयंकर युद्ध हुआ। बाणासुर शंकर भगवान् का अनन्य भक्त था। उस समय शिवजी महाराज वहाँ पधारे थे। भगवान् शंकर की भक्ति करने वाला व्यक्ति श्रीकृष्ण भगवान् को बहुत प्रिय लगता है और श्रीकृष्ण के सेवा स्मरण करने वाले वैष्णव शंकरदादा को बहुत प्रिय लगते हैं। शिव और विष्णु में तो परिपूर्ण प्रेम है, अभेद है। फिर भी शिव और श्रीकृष्ण में जैसा प्रेम है, वैसा प्रेम शैव और वैष्णवों में नहीं होता, कितने तो आपस में झगड़ पड़ते हैं। क्या भक्ति मन को बिगाड़ने के लिए है? क्या वह किसी देवता का अनादर करने के लिए है? वैष्णव होकर शिवजी का अनादर करे और शिवभक्त होकर श्रीकृष्ण में कुभाव रखे तो उसका पतन होता है। बाणासुर शिवभक्त था। इसीलिए श्रीकृष्ण उसे मारते नहीं। बाणासुर के हजार हाथ थे उनमें से नौ सो छानबे हाथ काट डाले और प्रभु ने बाणासुर को अपने समान चतुर्भुज बनाया। इससे परम आश्चर्य पैदा हुआ। इसके बाद नृगराजा के उद्धार की कथा आती है। नृगराजा को गिरगिट का अवतार मिला था। प्रभु ने उनका भी उद्धार किया। प्रभु ने सब कुछ जानते हुए भी पूछा कि तुम कौन हो? नृगराजा ने उत्तर दिया, मेरा जन्म इच्छवाकु वंश में हुआ है, मेरा नाम नृग है। मेरी यह भूल हुई थी कि मैंने अनजान के कारण ब्राह्मण का धन अपने घर में रख लिया था। इसीलिए मुझे गिरगिट का अवतार होना पड़ा। देवता का धन, समाज का धन, और ब्राह्मण का धन विष से भी भयंकर होता है उसका सदुपयोग अधिक विवेक से करना चाहिए। नृगराजा ने प्रभु के चरणों में पड़कर कहा कि मैं आपके दर्शन से कृतार्थ हो गया हूँ। इस कथा में नृगराजा को सद्गति देने का वर्णन है।

एक बार दाऊजी महाराज ब्रज में पहुँचे। वहाँ वे नाग-कन्याओं के साथ जो रास करते हैं उस कथा का वर्णन किया गया है। उस समय द्विविद नाम का राक्षस सबको सताता था। उसके उद्धार का वर्णन इस कथा में आता है। जिस समय बलराम ब्रज में आए उस समय करुष देश के राजा द्वारका में युद्ध करने आये थे। भगवान् ने पौण्ड्रक राजा तथा उसके मित्र काशीराज को युद्ध में मार कर सद्गति दी। दुर्योधन की कन्या लक्ष्मणा के साथ साम्ब का विवाह हुआ उसका भी वर्णन किया गया है। एक अध्याय में नारद परिहास की कथा भी आई है।

एकबार नारदजी के मन में ऐसा भाव पैदा हुआ कि दो-चार स्त्रियों वाले पति की दुर्दशा होती है। यदि एक को खुश करने जाएँ, तो दूसरी नाराज हो जाती है। श्रीकृष्ण तो सोलह हजार रानियों के पति हुए हैं। वे उनको किस प्रकार खुश रखते होंगे। वे उनसे कब बात करते होंगे। नारदजी ब्रह्मचारी हैं। जिसे ब्रह्मचर्य का पालन करना है वह काम सुख भोगने वाले गृहस्थ के घर का विचार भी नहीं कर सकता। क्योंकि ऐसा करने से उसका मन दूषित हो जाता है। नारदजी को इस प्रकार के झगड़े में पड़ने की क्या आवश्यकता थी? किन्तु उनकी ऐसी इच्छा हुई कि मैं द्वारका जाकर रानियों में कलह पैदा करूँगा। जिस महल में श्रीकृष्ण नहीं होंगे, उस रानी को समझाऊँगा, 'तेरी बात कौन पूछे?' तुझ पर तो उनका जरा भी प्रेम नहीं। वे तो रुक्मिणीजी और सत्यभामा के पीछे-पीछे फिरते रहते हैं। इससे उसको क्रोध पैदा होगा, क्रोध के बाद भगवान् उसे किस तरह मनाते हैं यह मुझे देखना है। इन ब्रह्मचारी महाराज को ऐसी खटपट करने की भला क्या आवश्यकता थी। इसका अर्थ यह है कि मन हमेशा एक समान नहीं रहता। वह सात-आठ घण्टे में बदलता रहता है। साधारण मनुष्य सात-आठ घण्टे से अधिक भक्ति नहीं कर सकता। आज नारदजी का मन भी बिगड़ गया है। उनको भगवान् के घर कलह पैदा करना है। वे रुक्मिणीजी के महल में आए हैं। भगवान् ने खड़े होकर उनका स्वागत करते हुये कहा है, 'पधारिये, पधारिये, जब आप जैसे सन्त आएँ तभी हमारा गृहस्थ आश्रम सफल हो। आपने बड़ी कृपा की। आपके दर्शन से हम धन्य हो उठे। कहिए, आपने किसलिए पधारने की कृपा की?'

नारदजी ने कहा कि कोई काम नहीं है। मैं आपके दर्शन के लिए ही आया था। भगवान् तो अन्तर्यामी हैं। वे तो जानते थे कि आज नारद दर्शन करने नहीं, किन्तु मेरे घर में आग लगाने आए हैं, कलह जगाने आये हैं। श्रीकृष्णजी ने फिर पूछा कि क्या आप दर्शन करने आए हैं? नारदजी ने फिर वही उत्तर दिया कि हाँ, दर्शन करने आया हूँ। श्रीकृष्णजी ने मन ही मन कहा 'तो मेरा दर्शन कर। मैं तुझे प्रत्येक राजमहल में दर्शन देता हूँ।' नारदजी वहाँ से उठे। वे सत्यभामाजी के महल में गए वहाँ भी श्रीकृष्ण विराजमान थे किन्तु उनका शृंगार भिन्न प्रकार का था। रुक्मिणीजी के महल के श्रीकृष्ण और सत्यभामाजी के महल के श्रीकृष्णजी दोनों अलग-अलग लग रहे थे। श्रीकृष्णजी ने खड़े होकर हाथ जोड़े और कहा कि पधारिये, पधारिये। बहुत दिन बाद आपने पधारने की कृपा की है। नारदजी विचार में पड़ गए कि रुक्मिणीजी के घर में जिसने मेरी पूजा की क्या उससे यह कोई भिन्न है? मुझसे कहते हैं कि बहुत दिन बाद आए हैं! अभी-अभी तो उन्होंने मेरी पूजा की है। नारदजी को आश्चर्य हुआ। वे वहाँ से जाम्बवतीजी के महल में गए। वहाँ भी श्रीकृष्ण विराजमान थे। नारदजी ने विचार किया कि मैं जरा बाहर से जाँच कराकर तभी अन्दर जाऊँगा, जब

वे अन्दर नहीं होंगे। वे जिस राजमहल में नहीं होंगे, वहीं मेरा काम होगा। वे जिस राजमहल में होंगे, वहाँ मेरा कोई बस नहीं चलेगा। नारदजी बाहर से जाँच कराते हैं कि क्या श्रीकृष्णजी अन्दर हैं? उत्तर मिलता है कि हाँ, विराजमान हैं। नारदजी पूछते हैं कि क्या करते हैं? उत्तर मिलता है कि वे स्नान करने बैठे हैं। नारदजी दूसरे राजमहल में जाकर पूछते हैं कि क्या श्रीकृष्णजी अन्दर हैं? तो उत्तर मिलता है कि हाँ, वे विराजमान हैं। क्या करते हैं? उत्तर मिलता है कि संध्या करने बैठे हैं तीसरे राजमहल में उत्तर मिलता है कि अग्नि में हवन करने बैठे हैं। चौथे राजमहल में खबर मिलती है कि अन्दर गरीबों को दान दे रहे हैं। पाँचवें महल में जवाब मिलता है कि छोटे-छोटे बालकों को गोद में लेकर खेल कर रहे हैं। बालक को खेलाते समय सच्चा ज्ञान मिलता है। उसकी आँख शुद्ध होती है और उसका मन अतिशुद्ध होता है, जिससे उसको देखने वाले का मन भी शुद्ध होता है। बालकों के खेलाने से बहुत कुछ जानने को मिलता है। जो ज्ञान बहुत-सी पुस्तकें पढ़ने पर नहीं मिलता वह बालक के साथ खेलते समय अनायास मिल जाता है। बालक का खेल निर्विकार होता है। उसे छल कपट करने की अक्ल नहीं होती। भगवान् बालकों को खेलाने बैठे हैं। छठे राजमहल में खबर मिली कि बाहर से कोई महाराज आए हैं भगवान् उनसे कथा सुनने बैठे हैं।

इतिहासपुराणानि श्रुणवन्तं मंगलानि च।

भगवान् कथा सुन रहे थे। वे साधुओं और ब्राह्मणों को बुलाते, उनकी पूजा करते और प्रार्थना करते कि महाराज, आज ऐसी कथा सुनाओ जिससे इस गृहस्थाश्रम की प्रवृत्ति में भगवान् न भूल सके। गृहस्थाश्रम की प्रवृत्ति में जीव ईश्वर को भूल जाता है। आज ऐसी कथा कहो, ध्यान योग पर कथा कहो। प्रभु के सन्मुख बोलते समय तो ब्राह्मणों और सन्तों को भी संकोच होता है। भगवान् हाथ जोड़कर कथा सुनने बैठते हैं और कहते हैं कि महाराज, मैं कुछ नहीं जानता। आप जरा भी संकोच नहीं करें। आप जो कुछ बोलेंगे वही मुझे सुनना है।

आप सब अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़ें यह अच्छा ही है; किन्तु सतत भक्ति करने वाले के मुख से कथा सुनना अधिक अच्छा है। क्योंकि जब साधु-सन्त बोलते हैं तब अपना अनुभव मिलाकर बोलते हैं। जिस अनुभव का ज्ञान किसी साधारण पुस्तक में नहीं मिलता। अच्छी पुस्तकें पढ़ने की अपेक्षा जिसका जीवन बहुत अच्छा है और जो सतत भक्ति करता है ऐसे महापुरुष के मुँह से कथा सुनना अधिक अच्छा है। भगवान् श्रीकृष्ण भी कथा सुनते हैं। यदि घर में झाड़ू न दें, तो घर गन्दा होता है, घर में जाने-अनजाने धूल आ जाती है। इसी प्रकार संसार व्यवहार का काम करते-करते मन पर धूल पड़ जाती है। मन को स्वच्छ करने के लिए सत्संग करने की आवश्यकता रहती है। इसलिए भक्ति करने वाले महापुरुषों का संग करना चाहिए। कुछ साधु ऐसे

होते हैं जिनको एक अक्षर भी बोलने की इच्छा नहीं होती। यदि संत न बोले तो भी उसके पास बैठने से बहुत कुछ जानने को मिलता है।

चित्रं वटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्याः गुरुर्युवा।
गुरोस्तु मानं व्याख्यानं शिष्यास्तु छिन्नसंशयः॥

सन्तों का मौन ही ज्ञान है। वे किस प्रकार चलते हैं, किस प्रकार बोलते हैं और क्या खाते हैं यह देखने पर ज्ञात होगा कि उनका प्रत्येक व्यवहार भक्ति से भरा होता है। सन्त का व्याख्यान ही उपदेश नहीं देता बल्कि उसका बोलना-चालना स्वयं ज्ञान है।

भगवान् कथा सुनने बैठते हैं। यह जानकर नारदजी को आश्चर्य होता है। वे सोचते हैं कि वे तो कथा सुनते हैं। मुझे तो कथा सुननी नहीं है। मैं तो कलह जगाने आया हूँ। यदि अन्दर जाऊँ तो मुझे कथा पूरी होने तक बैठना ही पड़ेगा। नारदजी आगे जाते हैं और अगले महल के पास खड़े होकर पूछते हैं कि क्या अन्दर श्रीकृष्ण भगवान् हैं? उत्तर मिलता है कि हाँ, यहीं विराजमान हैं। क्या करते हैं? उत्तर मिलता है कि दरवाजा बन्द है। एकान्त में रानी के साथ कुछ बातचीत कर रहे होंगे, कुछ कहते होंगे। इस प्रकार भगवान् ने गृहस्थ-धर्म का मर्म समझाया है। नारदजी सोलह हजार राजमहलों में फिर आये हैं। श्रीकृष्ण प्रत्येक राजमहल में विराजमान मालूम हुए हैं। नारदजी चलते-चलते थक गए हैं। फिर उन्होंने विचार किया कि अन्दर जाने पर थोड़ा आराम मिलेगा। वे अन्दर गये उनके अन्दर जाते ही भगवान् खड़े हो गए और बोले, 'महाराज, पधारिये; पधारिये। आपने बहुत दिन बाद आज पधारने की कृपा की।' नारदजी ने कहा कि मैं अभी आया हूँ। भगवान् तो सब कुछ जानते हैं। उनको पता है कि ये महाराज छह-सात घण्टे से भटक रहे हैं, बाहर से पता लगाते हैं और मुझसे कहते हैं कि मैं अभी आया हूँ। मैं इनको अच्छी तरह जानता हूँ। उन्होंने नारदजी की पूजा की। उसके बाद अपने दास-दासियों को आज्ञा दी कि तुम सब बाहर जाओ। मुझे इन महाराज से कुछ निजी बातें करनी हैं। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने अपने दास-दासियों को बाहर निकालकर दरवाजा अन्दर से बन्द कर लिया। इसके बाद नारदजी का कान पकड़कर बोले, 'अरे नारद!' यह सुनकर नारदजी कुछ शर्मिन्दा हो गए और विचारने लगे कि अभी तक मुझे महाराज कहते थे और अब 'अरे' कहकर पुकारते हैं।

भगवान् तो संसार को उपदेश देते हैं कि किसी के आने पर उठकर आदर करना चाहिए। यदि तुम्हारे यहाँ कोई साधु आए; कोई ब्राह्मण आए, कोई गरीब आये, तो उस समय गद्दी-तकिया से उठकर खड़े हो जाओ। भले ही उसे थोड़ा दो, किन्तु जितना दो उतना आदर के साथ दो।

भगवान् ने नारदजी से कहा, 'तू यह जानता है कि मेरा और तेरा क्या निजी सम्बन्ध है? तू किसका पुत्र है?' नारदजी ने कहा मैं ब्रह्माजी का पुत्र हूँ। श्रीकृष्ण ने कहा कि मैं तेरे बाप का भी बाप हूँ। मेरा वैभव देखकर तुझे खुश होना चाहिए कि यह सब तमाशा करना चाहिए। यह सुनकर नारदजी हरि का स्मरण करते-करते वहाँ से रवाना हो गये।

परमात्मा श्रीकृष्ण सोलह हजार रानियों के स्वामी हैं। फिर भी वे प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त में उठकर ध्यान करते हैं।

ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय वार्युपस्पृश्य माधवः।
दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम्॥ (१०-७०-४)

केवल कथा सुनने से जीवन नहीं सुधरता। कथा का सुनना-कहना तो अच्छा ही है। उससे पाप का क्षय होता है। फिर भी कथा सुनने के बाद कुछ साधना करनी होगी। यह साधना ब्राह्म मुहूर्त होगी। यदि नियम से छह-सात साधना करो, तो लाभ होगा। इससे मन सुधरेगा और मन का संकल्प-विकल्प कम होगा। भगवान् का ध्यान करो। उनकी सेवा करो और उनसे यह प्रार्थना करो कि हे प्रभु मेरे हाथों से सत्कर्म कराना।

सबेरे उठकर हाथ के दर्शन करो।

कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमूले सरस्वती।
कर मध्ये तु गोविन्दः प्रभाते करदर्शनम्॥

मनुष्य हाथ का अर्थात् क्रिया-शक्ति का उपयोग करे, तो उसे लक्ष्मी प्राप्त होगी। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है, किन्तु सभ्य लोग तो प्रातःकाल उठकर करदर्शनम् नहीं, बल्कि कप दर्शन करते हैं। तुम वैष्णव हो, तुम प्रभु के प्यारे हो, तुम किसी ऋषि वंश में पैदा हुए हो। इसलिए तुम्हें अपने पूर्वजों के मार्ग पर चलना है।

येन ते पितरो याताः

तुम सनातन धर्म की मर्यादा का जितना पालन करोगे, उतना ही तुम्हारा मन शुद्ध होगा। यह जीवन स्वेच्छाचार से बिगड़ता है और सदाचार से सुधरता है। तुम्हें क्या करना है और क्या नहीं करना है, इसे अपने मन से मत पूछो, बल्कि शास्त्र से पूछो।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।

सबेरे जल्दी उठकर धरती माता को वन्दन करो। फिर जिस नाक से श्वास निकलती हो, उस ओर का पैर धरती पर रखो। यदि दोनों नाकों में से समान प्रमाण में श्वास निकलती हो तो दोनों पैर एक साथ धरती पर रखना चाहिए। धरती माता को वन्दन किए बिना पैर नीचे नहीं रखना

चाहिए। धरती माता की प्रार्थना करो–

समुद्रवसने देवि! पर्वतस्तन मण्डले।
विष्णु पत्नि! नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे।।

भगवान् श्रीकृष्ण अपनी दिनचर्या से जगत को आदर्श दिखाते हैं। जो भगवान् सूर्य के उगने के पहले स्नान करते हैं, तुलसीजी की माटी–मृतिका का ललाट में तिलक करते हैं उसे स्नान करने का श्रेय मिलता है। आकाश में नक्षत्र दिखाई देते हों ऐसे समय नहाने का आग्रह रखो। स्नान कर भगवान् संध्या करते हैं, अग्नि में आहुति देते हैं, वे सूर्यनारायण को अर्घ्य देते हैं।

यदादित्यगतं तेजः

सूर्यनारायण में श्रीकृष्ण का ही निवास है, किन्तु वे जगत् को यह आदर्श दिखाते हैं कि मैं सूर्यनारायण की पूजा करता हूँ। जो सूर्यनारायण के प्रकाश का उपयोग करता है, वह उनका ऋणी है। उगते हुए सूर्य का दर्शन करते समय कोई मंत्र जपो। यदि उगते हुए सूर्य की किरणें शरीर पर पड़ें, तो तन और मन दोनों सुधर जाते हैं। सूर्यनारायण की उपासना से स्वास्थ्य सुधरता है उनकी उपासना के बिना बुद्धि नहीं सुधरती। सूर्यनारायण प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं, किन्तु अन्य देवता नहीं दिखाई देते। दूसरे देवता भावना से दर्शन देते हैं। इसलिए उनकी भावना करनी पड़ती है। सूर्यनारायण के तेजोमय स्वरूप का ध्यान करो।

श्रीकृष्ण प्रतिदिन अपने माता–पिता को वन्दन करते थे। द्वारका के मन्दिर के सामने देवकी माता का मन्दिर है। माता–पिता परमात्मा के स्वरूप हैं।

७५– शिशुपाल–वध

एक दिन श्रीकृष्ण को खबर मिली कि जरासन्ध पकड़े गए राजाओं का वध करना चाहता है। उन अभागे राजाओं ने श्रीकृष्ण से सहायता माँगी। इसी समय महर्षि नारदजी का वहाँ आगमन हुआ। उन्होंने कहा, "धर्मराज को राजसूय यज्ञ करना है। इसलिए आप हस्तिनापुर पधारिए।"

श्रीकृष्ण सब ज़ानते हुए भी उद्धव से पूछते हैं, "क्या करना चाहिए? कहाँ जाना चाहिए? उद्धव कहते हैं–

गायन्ति ते विशदकर्म गृहेषु देव्यो राज्ञां स्वशत्रुवधमात्मविमोक्षणं च।
गोप्यश्च कुञ्जरपतेर्जनकात्मजायाः पित्रोश्च लब्धशरणा मुनयो वयं च।।
जरासन्धवधः कृष्ण भूर्यर्थायोपकल्पते। प्रायः पाकविपाकेन तव चाभिमतः क्रतुः।।

(१०-७१-९/१०)

आप सब कुछ जानते हैं। फिर भी मुझे अतिशय सम्मान देने के लिए पूछते हैं। इसलिए मैं कहता हूँ कि आप हस्तिनापुर जाइए। राजसूय यज्ञ के लिए दिग्विजय करनी होती है। दिग्विजय में जरासन्ध को भी जीतना पड़ेगा। इस प्रकार वहाँ जाने से दोनों काम सिद्ध होंगे।

भगवान् हस्तिनापुर गए। पाण्डवों ने राजसूय यज्ञ में दिग्विजय प्राप्त की। उन्होंने जरासन्ध को युक्ति से मारा। इस प्रकार दोनों काम परिपूर्ण हुए।

राजसूय यज्ञ में अनेक ऋषि एकत्र हुए थे। उसमें यह प्रश्न हुआ कि यज्ञ में प्रथम पूजा किसकी की जाए। सबने कहा कि पहली पूजा श्रीकृष्ण की होनी चाहिए; किन्तु शिशुपाल उठकर उन्हें गाली देने लगा। श्रीकृष्ण चुपचाप उसे सुनते रहे, किन्तु उद्धवजी से यह बात सहन नहीं हुई। उद्धवजी ने उत्तर दिया, ''श्रीकृष्ण की हार नहीं हुई है, जीत हुई है। आज शिशुपाल क्रोध में आकर जो चाहता है, वह बोलता है। वह क्रोध के आधीन हो गया है। क्रोध ने उसे पराजित कर दिया है और श्रीकृष्ण ने क्रोध को हरा दिया है।'' ऐसी निन्दा सुनकर श्रीकृष्ण को जरा भी क्रोध नहीं आता। सभा में निन्दा होने पर भी उनको थोड़ा भी क्रोध न आया। वे शान्ति से सब सुनते रहे। यह उनका क्रोध-विजय है। रासलीला में काम-विजय और शिशुपाल-वध में क्रोध विजय है। श्रीकृष्ण को क्रोध आता ही नहीं। यदि उनको क्रोध आए, तो जगत में कोई बचे ही नहीं। वे अतिशय शान्त हैं। सभा में पूजा होने पर वे जितने शान्त थे, उतने शान्त शिशुपाल की गाली सुनकर भी थे। श्रीकृष्ण की मुद्रा शान्त है, प्रसन्न है। तुमको कोई सभा में गाली दे तो क्या शान्ति से सहन करोगे? अब भागवत की कथा सुनने के बाद सहन करना। इससे तुम बहुत सुखी होगे और तुम्हारा कल्याण होगा।

भगवान् के शान्त रहने का एक ही कारण है कि वे सोचते हैं, ''यह मूर्ख है, बक रहा है–''ग्रामसिंहस्य सिंहः।''

यह शिशुपाल ग्रामसिंह है, कुत्ता भूँकता है। भला उसका जबाब कौन दे? श्रीकृष्ण नरसिंह हैं। इसीलिए वे नहीं बोलते। भागवत के प्रधान टीकाकार श्रीधर स्वामी हैं। उन्होंने शिशुपाल के गाली के शब्दों को स्तुति पूर्ण अर्थ में देखा है। श्रीधर स्वामी से यह निन्दा सहन नहीं हुई। शिशुपाल कहता है–

यथा काकः पुरोऽशं सपर्या कथमर्हति।

वह गाली देता है उसमें काक कहता है। वह निन्दा करता है श्रीधर स्वामी ने उसका अर्थ बदल दिया है–

कं च अकं च इति काके कं सुखं कं दुखं।

श्रीकृष्ण तो आनन्द स्वरूप हैं। जहाँ सुख नहीं है और दुःख भी नहीं है, वहाँ आनन्द ही होता है। सुख-दुःख साथ ही रहते हैं। आनन्द इस सुख-दुःख से पृथक है।

सपर्यां नार्हति- सर्वस्वं अर्हत इति भावः।

जिसको संस्कृति भाषा का ज्ञान है, उसे श्रीधर स्वामी के इस अर्थ में बहुत आनन्द आएगा। वे गाली के शब्दों में से स्तुतिबोधक अर्थ कहते हैं। वास्तवस्त्वयं अर्थः। वाग्देवी श्रीकृष्ण की निन्दा नहीं कर सकतीं। वाग्देवी के पति परमात्मा श्रीकृष्ण हैं। मर्यादा के पूरा होनें पर गाली भी पूरी हो गई। इसके बाद श्रीकृष्ण ने प्रेम से शिशुपाल को मारा और उसका उद्धार किया। भगवान् को क्रोध ही नहीं आता। उन्होंने शिशुपाल का वध प्रेम से किया। उन्होंने सुदर्शन चक्र से उसका मस्तक काट दिया। इस प्रकार शिशुपाल को सद्गति मिली।

राजसूय यज्ञ में सब खुश हो गये, किन्तु दुर्योधन नाराज हो गया। दुर्योधन बड़ा अभिमानी है। जब अभिमान बढ़ता है, तब चाल भी बदलती है, हमको धरती पर नजर रखकर चलना चाहिए और ऐसी सावधानी रखनी चाहिए कि चलते समय किसी भी जीव की हिंसा न हो। दुर्योधन अभिमानी है। वह अकड़कर चलता है। जब वह पैर फिसलने से नीचे गिरा, तब भीमसेन बोल उठते हैं कि अन्धे के लड़के अन्धे ही होते हैं। महाभारत का मूल कारण कर्कश वाणी ही है। कर्कश वाणी से कलह होता है। इसलिए चाहे कैसा भी अवसर आवे, किन्तु घर में कभी कर्कश शब्द न बोलना। यह जीभ किसी का ताना मारने के लिए नहीं है। इस शरीर में सब जगह हड्डी है, किन्तु भगवान् ने जीभ में एक भी हड्डी नहीं दी है। जीभ में हड्डी न देने का कारण यह है कि उसकी रचना मधुर बोलने के लिए की है।

सूतजी सावधान करते हुए कहते हैं, श्रीकृष्ण भगवान् जब हस्तिनापुर के राजसूय यज्ञ में गये, तब द्वारका पर सल्व राजा ने चढ़ाई कर दी। प्रद्युम्न लालजी के साथ भयंकर युद्ध हुआ। जब भगवान् को खबर पड़ी। तब वे द्वारका आये और सल्व, दन्तवक्त्र, विदुरथ इत्यादि अनेक राजाओं का विनाश किया।

इधर दुर्योधन ने कपट किया। उसने पाण्डवों को जुआ खेलने का आमंत्रण दिया। दुर्योधन ने अधर्म से जुआ खेला। इसलिए पाण्डवों की हार हुई। पाण्डव वन में गये। वे राजमहल में रहते थे, किन्तु उनका सब कुछ चला गया और वन में रहने लगे। पाण्डव वनवास में भी मन को शान्त रखकर भक्ति करते थे और सोचते थे कि मेरे प्रभु ने जो किया है वह अच्छा ही किया है। राजमहल में ध्यान में तन्मयता नहीं रहती थी, लेकिन यहाँ ध्यान में तन्मयता आती है।

राजमहल में प्रभु के नाम का कीर्तन करते समय हृदय द्रवित नहीं होता था; किन्तु अब हृदय द्रवित होता है और आनंद आता है। वनवास में सात्विक आनंद है और राजमहल में राजसी सुख है। हमने राजमहल में राजसी सुख तो भोगे किन्तु हमें सात्विक आनन्द नहीं मिला। प्रभु ने सात्विक आनंद लेने के लिये ही वन में भेजा है। वनवास के बिना जीवन में श्वास नहीं आयेगी। जगत् के महापुरुषों ने वन में रहकर तपस्या की। इससे वे महान हो गये। वनवास परिपूर्ण करने के बाद पाण्डवों ने अपने राज्य को मांगा। दुर्योधन ने राज्य देने से इन्कार कर दिया। भगवान् दूत कार्य करने के लिए दुर्योधन के यहाँ गए, किन्तु सफलता नहीं मिली। अंत में कौरव-पाण्डवों में युद्ध होना निश्चित हो गया। उस समय बलरामजी ने विचार किया कि घर में रहने पर मुझे इस युद्ध में किसी का तो पक्ष लेना ही पड़ेगा, किन्तु मुझे इस युद्ध में किसी का पक्ष नहीं लेना है। इसलिए वे द्वारका छोड़कर यात्रा पर चल पड़े उन्होंने चार धाम, सप्तपुरी की यात्रा की।

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्त पुर्योत्र मोक्षदाः॥

सप्तपुरी में साढ़े तीन शिवजी की और साढ़े तीन विष्णु भगवानजी की हैं। अयोध्या, मथुरा और द्वारावती या द्वारका इन तीनों के मालिक विष्णु भगवान् हैं। काशी, अवन्तिका या उज्जयिनी और मायापुरी या हरिद्वार–इन तीनों के मालिक शिवजी महाराज हैं। सातवीं पुरी-काँची है। काँची के दो भाग हैं शिव काँची और विष्णु काँची काँची में वरदराज महा-विष्णु हैं और शिव काँची में अमरनाथ महादेव हैं। साढ़े तीन-साढ़े तीन मिलाकर सात होता है। इस सप्तपुरी में द्वारका की महिमा बहुत बताई गई है। द्वारका की गणना सप्तपुरी में होती है और भगवान् का पश्चिम धाम भी द्वारका है। द्वारका की गणना चार धाम में भी होती है। अयोध्या और काशी सप्तपुरी में होने से भी प्रभु के धाम में नहीं गिनी जातीं। द्वारका की गणना सप्तपुरी में भी है और चार धाम में भी है। द्वारकानाथ के आगमन से इस गुजरात की महिमा बहुत बढ़ गई है। देश के एक-एक मालिकदेव माने गए हैं। महाराष्ट्र के मालिक देव पंढरपुर के विट्ठलनाथजी हैं। महाराष्ट्र के अनेक लोग वर्ष में एक-दो बार विट्ठलनाथजी का दर्शन करने जाते हैं। कर्नाटक-आन्ध्र प्रदेश के मालिक देव श्रीव्यंकट बालाजी महाराज हैं। गुजरात-सौराष्ट्र के मालिक देव द्वारकानाथ हैं। द्वारकानाथ द्वारका में अखण्ड विराजमान हैं। कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि भगवान् द्वारका छोड़कर डाकोर में आ गये हैं। भगवान् व्यासजी को यह बात मान्य नहीं है। व्यासजी ने भागवत में द्वारका की महिमा का बहुत वर्णन किया है और कहा है कि भगवान् द्वारका छोड़ते ही नहीं। द्वारकानाथ द्वारका में अखण्ड विराजमान हैं। वृन्दावन में भगवान् का अखण्ड निवास है। इसलिए वृन्दावन में रासलीला

होती है और नित्य रास होता है। जिस प्रकार वृन्दावन में भगवान् का अखण्ड निवास है उसी प्रकार भगवान द्वारका में अखण्ड रूप से विराजमान हैं। बोडाणा को एक स्वरूप दिया गया है, किन्तु प्रभु ने द्वारकापुरी नहीं छोड़ी है। द्वारका अति-सात्विक दिव्य भूमि है। द्वारका में समुद्र नारायण विराजमान हैं। समुद्र और गोमती का संगम भी है। समुद्र में सभी तीर्थ आ जाते हैं—सागरे सर्वतीर्थाणि सप्तपुरी में द्वारका की महिमा विशेष रूप से बताई गई है।

दाऊजी महाराज की यात्रा का वर्णन किया गया है। वह वर्णन इस प्रकार किया गया है कि वे नैमिषारण्य तीर्थ में पहुँचे और वहाँ ऋषियों के साथ सत्संग किया। उन्होंने विल्वल राक्षस को मारा, उनकी लीला अनन्त है।

७६– मेरी मित्रता श्रीकृष्ण से जन्म-जन्मान्तर हो

राजा परीक्षित ने पूछा, "महाराज, कृपा कीजिए। श्रीकृष्ण की कथा सुनने से अब भी मुझे तृप्ति नहीं हो रही है मुझे मेरे भगवान् की कथा विस्तार से सुनाइए। मुझे श्रीकृष्ण लीला सुनने की बड़ी इच्छा है।" शुकदेव महाराज राजा परीक्षित का श्रीकृष्ण-लीला के प्रति प्रेम देखकर खुश हो गए। उन्होंने श्रीकृष्ण का स्मरण किया कि मेरे श्रीकृष्ण अधिक उदार हैं। श्रीकृष्ण अतिशय प्रेमालु भी हैं। इस जीव को भगवत स्वरूप का ज्ञान नहीं है।

भगवान् के स्वभाव को यह जीव नहीं जानता। इसीलिए यह संसार की खुशामद करता है। यदि यह ईश्वर का स्वरूप जान ले, परमात्मा का स्वभाव पहचान ले तो यह कभी संसार की खुशामद न करें। श्रीकृष्ण अत्यन्त उदार हैं। जो उनके साथ प्रेम करता है उसे वे श्रीकृष्ण बना देते हैं। शुकदेवजी महाराज कहते हैं, मेरे भगवान् अत्यन्त उदार हैं और बहुत प्रेम करते हैं। फिर भी यह जीव इतना अभागा है कि ईश्वर से प्रेम नहीं करता। यदि यह परमात्मा से प्रेम करे तो परमात्मा इसे परमात्मा बना देते हैं।

कृष्णस्यासीत् सखा कश्चिद् ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः।
विरक्त इन्द्रियार्थेषु प्रशान्तात्मा जितेन्द्रियः॥ (१०-८०-६)

शुकदेवजी महाराज श्रीकृष्ण के बालमित्र सुदामदेव की कथा सुनाते हैं, "सुदामदेव गरीब ब्राह्मण हैं; किन्तु महाज्ञानी सुदामदेव ने निश्चय किया था कि ज्ञान का फल पैसा नहीं है। मुझे ज्ञान का उपयोग परमात्मा के ध्यान में ही करना है। मुझे ज्ञान का उपयोग पैसे के लिए नहीं करना है। सुदामदेव दूर-दूर के गाँवों में कथा सुनाने जाते, यज्ञ में भाग लेते, कर्मकाण्ड कराते। उसमें उनको धन का ढेर मिल सकता था। वे चार वेद और छह शास्त्रों के परिपूर्ण ज्ञाता हैं। फिर भी

उन्हें पैसे के लिए ज्ञान का उपयोग पसन्द नहीं हैं। वे सोचते कि पैसे के लिए ज्ञान का उपयोग कौन करे?'' ज्ञान का फल ध्यान है। जब से जीवन में पैसा मुख्य हुआ तब से पाप बढ़ा है। जीवन में पैसा मुख्य होने के कारण जीवन बिगड़ गया है। सुदामदेव को पैसे के लिए प्रवृत्ति करने की इच्छा नहीं हुई। उन्होंने अयाचित व्रत लिया है। अयाचित व्रत में ऐसा नियम होता है कि किसी से यह नहीं कहा जाता कि मेरा अयाचित व्रत है। किसी के घर नहीं जाना। यदि कोई अपने घर आकर कुछ दे तो ले लेना; किन्तु अयाचित व्रत का दूसरा भी नियम है कि जिस दिन जो कुछ भी आए उसे सूर्यास्त होने के पहले ही उपभोग में ले लेना, कल के लिए एक दाना भी छोड़ना नहीं। इसीलिए सुदामदेव गरीब रह गए हैं। वे अत्यन्त शान्त हैं, जितेन्द्रिय हैं, महान् तपस्वी हैं। वे महान् ज्ञानी हैं, अन्तर्मुख हैं। वे सारे दिन घर में रहकर ध्यान करते हैं, ब्रह्मचिन्तन करते हैं। आज जिसे लोग पोरबन्दर कहते हैं वही सुदामापुरी है। सुदामदेव वहीं रहते थे। उनकी पत्नी का नाम भागवत में नहीं लिखा है; किन्तु अन्य ग्रन्थों में उनकी पत्नी का नाम सुशीला आता है। उनकी पत्नी महान् पतिव्रता है। पति को परमात्मा मानती है। स्त्री की परीक्षा सम्पत्ति में नहीं होती विपत्ति में होती है। यदि पति के घर में बहुत सुख हो, अधिक सम्पत्ति हो और पति के साथ प्रेम रखें तो यह ठीक ही है। पति के घर में खाना नहीं है, कपड़ा नहीं है; किन्तु वह पतिव्रता सुशीला पति को परमात्मा मानती है, दुःख सहन करती है। उसने कभी अपने पति से यह नहीं कहा है कि आप पैसे के लिए काम करें। यदि पैसे के लिए प्रवृत्ति नहीं करनी थी तो फिर विवाह करने की क्या आवश्यकता थी? वह महान् पतिव्रता है। उसके पतिदेव सारे दिन घर में बैठे रहते हैं और दिन भर भक्ति करते रहते हैं। वह पति को परमात्मा मानकर उनकी सेवा करती है। नाम के अनुसार उसमें गुण भी हैं वह बहुत सुशील भी है।

कितने लोगों का नाम शान्ताबेन होता है; किन्तु वे बातें बहुत करती है! जरा भी शान्ति नहीं रखती है। नाम के अनुसार गुण होना चाहिए। सुशीला अत्यन्त सुशील थी। घर में एक ही साड़ी थी। उसे स्नान करने पर वह अपने शरीर पर ही सुखाती है। किसी दिन अपने पतिदेव को थोड़ा भी नहीं सताती। कभी-कभी पन्द्रह-बीस दिन ऐसे चले जाते हैं जबकि खाना नहीं मिलता। सुदामदेव महान् ज्ञानी थे। कभी-कभी उन्हें बोलने की इच्छा होती ते वे घर में ही ठाकुरजी के सामने बैठकर कथा सुनाते, ''भगवान् मेरे श्रोता हैं। वे सुनते हैं और मैं बोलता हूँ। वे अपनी पत्नी से कहते कि यदि तेरी इच्छा हो और तुझे फुरसत हो तो मेरी कथा सुन। सुशीला कथा सुनती तो उसे आनन्द आता था। वह विचारती कि ये कैसा सुन्दर बोलते हैं। मेरे पतिदेव महान् ज्ञानी हैं। ये घर से बाहर जाकर कथा सुनाएँ तो इन्हें बहुत कुछ मिल सकता है; किन्तु इनको पैसे के लिए

प्रवृत्ति करने की इच्छा भी नहीं होती। घर में कुछ न होने पर भी पति-पत्नी के जीवन में अत्यन्त संतोष है। जिस घर में सन्तोष होता है उस घर में सब कुछ होता है; किन्तु जिस घर में सन्तोष नहीं होता उसमें कुछ नहीं होता। सुदामदेव अत्यन्त संतोषी थे। सुशीला भी उसी प्रकार पवित्र जीवन गुजार रही थी।

परमात्मा की लीला बड़ी विचित्र है उनके घर एक बालक का जन्म हुआ। वह बालक बड़ा होकर अपनी माँ को सताने लगा। वह कहता, "भूख लगी है, बहुत ठंडी पड़ रही है, कपड़ा नहीं है, खाना नहीं है। सुदामदेव एक छोटी सी झोंपड़ी में रहते हैं। वे एक ओर कोने में बैठे हैं। ध्यान करते हैं और दूसरी ओर लड़का बहुत रोता है। फिर भी महाराज का मन शान्त है। अनुकूल परिस्थिति में मन को शान्त रखना सच्ची शांति नहीं है। विपरीत परिस्थिति में जिसका मन शान्त रहता है उसी की शान्ति सच्ची है। अनुकूल परिस्थिति में तो सभी शान्ति रखते हैं। सुदामदेव के घर में खाना नहीं है। उनकी झोंपड़ी ऐसी है कि उसमें धूप भी अन्दर आती है और बरसात भी अन्दर आती है; लड़का रोता है। महाराज शान्ति से नारायण का ध्यान करते हैं। वे सच्चे ज्ञानी हैं। उनका मन अत्यन्त शान्त है बालक अपनी माता को हैरान करता है। माता का अपना हृदय होता है। सुशीला बहुत व्याकुल हो गई है। वह सोचती है, "प्रभु ने मुझे माता तो बनाया है; किन्तु इस बालक को कुछ खाने के लिए नहीं दिया है। यदि प्रभु ने मुझे बाँझ रखा होता तो कितना अच्छा था। इसके पिता को तो पैसे के लिए प्रवृत्ति करने की इच्छा ही नहीं होती। वे घर से कभी बाहर नहीं निकलते। किसी के सामने नहीं देखते और सारे दिन भक्ति करते रहते हैं। अपने पतिदेव से कैसे कहूँ कि अपनी भक्ति छोड़कर पैसे के लिए कुछ प्रवृत्ति करो। मुझसे कुछ कहा नहीं जाता।" बालक माँ को बहुत सताता है इससे सुशीला एक दिन बहुत व्याकुल हो गई। उसने विचार किया कि मैं अपने पतिदेव को युक्ति से समझाऊँगी। उसने एक दिन पतिदेव को वंदन कर कहा, "आज आपकी कथा मैं आपको सुनाना चाहती हूँ। मैंने आपके मुख से जो सुना है उसे ही मैं आपको सुनाऊँगी। आपने एक बार अपनी कथा में कहा था कि श्रीकृष्ण को अपने मित्र अतिशय प्यारे लगते हैं।" सुदामदेव ने कहा, "हाँ देवी। मेरा कन्हैया मित्रों के साथ बहुत प्रेम करता है। मित्रों के लिए तो वह माखनचोर कहलाया। उसे मित्र बहुत प्यारे लगते हैं।" सुशीला ने हाथ जोड़कर कहा, "मैंने ऐसा सुना है आप भी द्वारकानाथ के मित्र हैं। क्या यह बात सत्य है?" सुदामदेव ने माथा हिलाकर कहा, "यह बात सत्य है। हम दोनों एक ही गुरुकुल में पढ़ते थे। मैं श्रीकृष्ण का मित्र हूँ।" सुशीला ने प्रेम से समझाकर कहा कि यदि आप श्रीकृष्ण के मित्र हैं तो क्या आपको अपने मित्र का दर्शन करने की इच्छा नहीं होती? आप अपने मित्र से मिलने तो जाइए। सुदामदेव

ने कहा, ''देवी, मैं पैसे के लिए जरा भी प्रवृत्ति नहीं करता; किन्तु मैं तुझसे सच कहता हूँ कि मैं इस झोंपड़ी में एक क्षण भी खाली नहीं बैठता। मैं अपने मित्र से मन द्वारा मिलता हूँ, मन से उसके दर्शन करता हूँ, उसके नाम का जप करता हूँ और उसकी स्तुति करता हूँ। उससे मन द्वारा मिलने से मुझे आनन्द आता है। शरीर-मिलन की अपेक्षा मन के मिलने में अधिक आनन्द है।

सुदामदेव महान् ज्ञानी भक्त थे। सुशीला ने उनसे कहा 'आप उनसे मन द्वारा मिलते होंगे, किन्तु उनका प्रत्यक्ष दर्शन करने के लिए क्यों नहीं जाते हैं? एक बार प्रत्यक्ष दर्शन करने तो जाइए।' सुदामदेव ने कहा, मैं उनका प्रत्यक्ष दर्शन करने के लिए नहीं जाता। इसका एकमात्र कारण यह है कि मैं उनका मित्र होने पर भी दरिद्रनारायण हूँ और वे लक्ष्मीपति नारायण हैं। यदि दरिद्रनारायण लक्ष्मीपति नारायण से मिलने आये तो किसी को यह शंका होगी कि कुछ माँगने आया होगा। मेरे नियम के अनुसार माँगना और मरना समान है। चाहे कुछ भी हो मैं नहीं माँगूगा और प्रभु के द्वार पर भी माँगने के लिए नहीं जाऊँगा। भगवान् को जो देना होगा वह मेरे घर पर आकर देंगे।' सुशीला अपने पतिदेव को प्रेम से समझाने लगी। 'मैं वहाँ जाकर आपसे कुछ माँगने के लिए नहीं कहती। आपने ही मुझ से कथा में कहा है कि द्वारकानाथ की आँखें हमेशा प्रेमभीनी ही होती हैं। वे सबको बहुत प्रेम से देखते हैं। इसीलिए वे आपको देखते ही सब कुछ समझ लेंगे। उनसे माँगने की क्या आवश्यकता है? लोग बाग में जाकर बैठते हैं, तो पेड़ बिना माँगे उन्हें सुवास देते हैं। भला पेड़ से कौन माँगने जाता है? यदि ये पेड़ बिना माँगे देते हैं, जो परमात्मा हैं, अन्तर्यामी हैं, सर्वज्ञ हैं और सब कुछ जानते हैं। वे तुमको देखते ही सब कुछ समझ जाएँगे। उनके यहाँ जाकर कुछ माँगने की जरूरत नहीं हैं। केवल उनके पास जाने की जरूरत है। वे आपका आदर करेंगे। आप एकबार द्वारका जाइये।' सुदामदेव महान् योगी हैं, महान् तपस्वी हैं। सब सद्गुण होने पर भी उनके मन में कुछ अभिमान छिपा हुआ है। सुदामदेव ने कहा दूसरे ब्राह्मण जिस प्रकार द्वार-द्वार भटकते हैं उसी प्रकार मैं कहीं नहीं जाता। यह मेरा नियम है। मैं प्रभु के द्वार पर भी नहीं जाऊँगा। सुशीला ने अपने पति से प्रेमपूर्वक कहा, आपने किसी मनुष्य के दरवाजे पर न जाने का नियम बनाया है। श्रीकृष्ण तो परमात्मा हैं। प्रभु के द्वार पर तो जाना ही चाहिए। प्रभु के द्वार पर न जाना अभिमान कहा जायेगा। आप बहुत बड़े हैं। ऐसा अभिमान अपने मन में कभी मत रखिये। पत्नी ने पतिदेव से सत्संग की बात कहकर बहुत युक्तिपूर्वक उनके मन का अभिमान दूर किया।

सुदामदेव के मन में यह विचार आया, पत्नी भला मुझ से क्या गलत कहती है? विवाह करने के बाद आज तक मैंने इसे जरा भी सुख नहीं दिया, इसे खाना नहीं दिया, कपड़ा नहीं दिया। मेरे घर में इसके लिए सब दुःख ही दुःख है। फिर भी यह मुझे परमात्मा मानती है। इसके मन

में मेरे प्रति कैसा भाव है यह बहुत योग्य है। इसीलिए तो मैं भक्ति कर सकता हूँ। यह मुझे कभी सताती नहीं। यह रोज मुझे समझाती है कि अपने मित्र के दर्शन करने जाओ, दर्शन करने जाओ। इसमें खराब क्या है? हमें दर्शन करने तो जाना चाहिए। मेरा प्रभु के द्वार पर न जाना अभिमान है। अब मुझे अपने मन में अभिमान नहीं रखना है। मैं वहाँ जाऊँगा। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा, 'मैं द्वारका में तो जाऊँ, किन्तु बहुत दिन के बाद हम लोग मिलेंगे तो मित्र के लिए कुछ भेंट देनी चाहिये न? हमारे घर में तो कुछ भी नहीं है। सुशीला ने कहा कि मैं आपको भेंट लाकर दूँगी। सुशीला आज तक किसी के यहाँ माँगने नहीं गई थी, किन्तु आज पड़ोस में माँगने गई। वह अपने लिए नहीं भगवान् के लिए माँगने गई। वह चिउरा माँगकर ले आई। उसमें से एक दाना भी उसने घर में नहीं रखा और न एक दाना अपने बालक को खाने के लिए दिया। उसने निश्चय किया कि मैं परमात्मा के लिये माँगने गई थी। इस दाने में से मुझे कुछ भी रखने का अधिकार नहीं है। चिउरा बाँधने के लिए कपड़े का एक चीथड़ा भी उसके घर में नहीं था। उसने दो-तीन चीथड़े एकत्र कर चिउरा की गठरी बनाई और सुदामदेव को दी। वह विचार करने लगी, 'मैंने सुना है कि द्वारका सोने की बनी है, वहाँ जाने पर रानियों का वैभव और श्रृंगार देखकर मेरे पतिदेव घबरा उठेंगे। ये किसी के घर गये नहीं हैं। वे बहुत संकोची हैं। इन्हें यह चिउरा देने की हिम्मत भी नहीं होगी। मुझे डर है कि ये यह गठरी वापस ले आएँगे। उसने पतिदेव से कहा 'यह भेंट द्वारकानाथ को अर्पण करते समय यदि आपको संकोच हो तो मेरा नाम लें और उनसे कहें कि आपकी भाभी ने यह भेंट आपको दी है। उसने यह भी विचार किया कि मैं द्वारकानाथ की भाभी हूँ और द्वारकानाथ के एक मित्र की पत्नी हूँ। मेरे पतिदेव को तो कुछ चाहिये नहीं। यदि भगवान् बालक के लिए कुछ दे दें तो बहुत अच्छा है। वे यह चिउरा देखकर सब समझ जायेंगे। वे अत्यन्त उदार हैं। सुदामदेव द्वारका जाने के लिए तैयार हो गये। उन्होंने एक फटी हुई धोती पहनी थी। उनके बगल में गठरी दबी थी। उनके हाथ में एक छोटा डण्डा था। अन्य कोई चीज नहीं थी। सुशीला प्रेमसे पतिदेव के दर्शन करती है, उनके शरीर में हड्डी ही दिखाई देती है, उनका शरीर बहुत दुर्बल है। पतिदेव को जाता देखकर सुशीला का हृदय भर आया, उसकी आँख में आँसू आ गए। वह सोचती है, आज मैंने अपने पतिदेव को बहुत सताया। इनका शरीर बहुत दुर्बल हो गया है।

मैं बड़ी स्वार्थी हूँ। मैं इनके पीछे पड़ गई। मुझे सब कुछ चाहिए; किन्तु मेरे पतिदेव निरपेक्ष हैं। ये तो ऐसे हैं कि जहाँ बैठकर द्वारकानाथ का ध्यान करें, स्मरण करें वहीं इनको उनके दर्शन हों। ये महान् ज्ञानी भक्त हैं। इनको द्वारका जाने की जरूरत नहीं थी; किन्तु मैं बड़ी स्वार्थी हूँ और मैंने इनसे बहुत आग्रह किया। इसीलिए ये वहाँ जाते हैं। इनका शरीर बहुत दुर्बल हो गया है। द्वारका

तो यहाँ से बहुत दूर है। यदि इन्हें रास्ते में कुछ हो जाए तो। सुशीला का हृदय व्याकुल हो उठा। उसके मन में यह विचार आया कि मैंने अपने पतिदेव को बहुत सताया है यह सोचते ही वह पतिव्रता स्त्री रोने लगी। सुशीला ने सूर्यनारायण की मनौती की; 'हे सूर्यनारायण मेरे पतिदेव द्वारका जा रहे हैं। इनका शरीर बहुत दुर्बल हो गया है। हे सूर्य भगवान्, तुम मेरे पतिदेव के साथ रहना। मेरे पति ही मेरे सच्चे धन हैं। हे सूर्यनारायण यह गरीब ब्राह्मणी भला तुमको क्या दे सकती है? हाँ, मैं दिन में तीन बार तुमको वंदन करूँगी, तुम मेरे सौभाग्य की रक्षा करना। भगवान् भले ही इन्हें एक भी पैसा न दें, किन्तु मेरे पतिदेव सुखपूर्वक घर आ जायें यही मेरी इच्छा है और कोई दूसरी इच्छा नहीं है।

सुदामा ने द्वारका के लिए प्रस्थान किया वे द्वारकानाथ का स्मरण करते-करते चल रहे थे। सुदामदेव ने विचार किया, "बहुत वर्ष बीत गए। हम दोनों गुरुकुल में साथ-साथ रहते थे। मैं पत्नी के कहने से जा रहा हूँ। वह प्रतिदिन घर में बक-बक करती रहती है। कहीं वहाँ जाने से मेरा अपमान तो नहीं होगा। यदि वे कहें कि मैं तुझे नहीं पहचानता, तो क्या होगा? अब वे महान् बन गए हैं। नहीं-नहीं ऐसा कहना ठीक नहीं। मेरा कन्हैया बहुत प्रेमालु है। वह मुझसे कैसा प्रेम करता था। उसने मुझसे कहा है कि तू मेरे घर आना; किन्तु इस बात को कहे अनेक वर्ष बीत गए हैं।" सुदामदेव विचार करते-करते चले जा रहे थे।

द्वारकानाथ को यह खबर पड़ी कि एक सच्चा ब्राह्मण मुझसे मिलने आ रहा है। उसने इतना अधिक तो पढ़ा, किन्तु अपनी विद्या का उपयोग कभी पैसे के लिए नहीं किया। बेचारा कितना दुःख सहन करता है। उसने अयाचित व्रत लिया है। वह सारे दिन ध्यान करता है और त्रिकाल संध्या करता है। ऐसा तपस्वी ब्राह्मण किसी के घर नहीं जा सकता; किन्तु वह आज मेरे घर आ रहा है। उसे लाने के लिए मुझे कोई सवारी भेजनी ही चाहिए।"

रास्ते में चलते-चलते सुदामदेव बहुत थक गए। उनके सिर में चक्कर आ गया और शरीर अधिक कमजोर हो गया। वे एक पेड़ के नीचे सो गए प्रभु ने गरुड़ को आज्ञा दी कि तुम सुदामदेव को इस प्रकार द्वारका में उठा लाओ कि उनकी निद्रा भंग न हो। गरुड़जी सुदामदेव को धीरे से उठा लाए और उन्हें द्वारका के पास एक पेड़ के नीचे रख दिया।

एक घण्टे बाद सुदामदेव की नींद खुली। वे आगे ज्यों ही थोड़ा चले त्यों ही उन्हें सोने की द्वारका दिखाई देने लगी। उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने लोगों से पूछा कि इस गाँव का क्या नाम है? लोगों ने कहा कि महाराज इसे द्वारका कहते हैं। यह सुनकर सुदामदेव ने कहा कि क्या यह श्रीकृष्ण के सोने की द्वारका है? उन्हें उत्तर मिला, "हाँ, महाराज, श्रीकृष्ण के सोने की

द्वारका यही है। सुदामदेव को यह सुनकर आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे कि मेरे गाँव के लोग तो यह कहते थे कि द्वारका बहुत दूर है। वहाँ पन्द्रह-बीस दिन में पहुँचोगे। मैं आज सबेरे घर से चला और इस समय द्वारका में पहुँच गया। वह कहाँ दूर है?'' भूदेव को पता नहीं है कि गरुड़जी उन्हें उठाकर यहाँ ले आए हैं। वे लोगों से पूछने लगे कि श्रीकृष्ण कहाँ रहते हैं? लोगों को आश्चर्य हुआ कि यह क्या पूछता है! और उन्होंने कहा कि महाराज क्या आप श्रीकृष्ण को पहचानते हैं? सुदामदेव ने कहा, ''मैं उन्हें अच्छी तरह पहचानता हूँ। हम दोनों एक ही गुरुकुल में पढते थे मैं उनका मित्र हूँ। लोगों को बहुत आश्चर्य हुआ। वे सोचने लगे, ''इसने फटी हुई धोती पहनी है, बहुत दिन का भूखा दिखाई दे रहा है और कहता है मैं श्रीकृष्ण का मित्र हूँ। क्या श्रीकृष्ण को दूसरा कोई मित्र मिला नहीं जो उन्होंने ऐसे व्यक्ति को मित्र बनाया। लोगों ने पूछा कि महाराज क्या आप सच कहते हैं? सुदामदेव ने हाथ जोड़कर कहा, ''मैंने आज तक कभी झूठ नहीं बोला है। मैं श्रीकृष्ण का मित्र हूँ।'' लोगों ने कहा, ''इस रास्ते चले जाइए। आपको सोलह हजार राजमहल देखने को मिलेंगे। आप किसी भी राजमहल में जाएँगे, तो वहाँ श्रीकृष्ण विराजमान दिखाई देंगे।''

सुदामदेव आगे बढ़े तो उन्हें सबसे पहले रुक्मिणीजी का राजमहल मिला। महालक्ष्मी के ऐश्वर्य का वर्णन भला कौन कर सकता है? राजमहल सोने का बना हुआ है। चारों ओर सुन्दर बगीचा है और सिपाही पहरा दे रहे हैं। सुदामदेव दूर से वह राजमहल देखते हैं। वे गरीब है; किन्तु उनका हृदय गंगाजल के समान शुद्ध है। उनके मन में जरा भी मत्सर नहीं है। अभी प्रभु ने उनका स्वागत नहीं किया है—और न सन्मान किया है। फिर भी उनका राजमहल देखकर ब्राह्मण खूब खुश हो गया है। उसने हृदय से आशीर्वाद दिया, ''मेरे श्रीकृष्ण के घर में सदा-सर्वदा लक्ष्मी का अखण्ड निवास हो। इनका राजमहल कैसा सुन्दर है।'' एक सिपाही की दृष्टि उस पर पड़ी। उसने देखा कि यह कोई गरीब ब्राह्मण है। वह दौड़ता-दौड़ता उसके पास पहुँचा और वंदन कर बोला, ''यह राजमहल महालक्ष्मी माता रुक्मिणीजी का है। माताजी की हमें विशेष आज्ञा है कि यदि कोई साधु आए, कोई ब्राह्मण आए, कोई भी गरीब आदमी आए तो मुझे पूछे बिना वह जो माँगे उसे दे देना। माँ की ऐसी आज्ञा है। महाराज, हम आपकी क्या सेवा करें? आपको क्या चाहिए?'' सुदामदेव ने कहा मुझे कुछ नहीं चाहिए। मैं श्रीकृष्ण से प्रेमपूर्वक मिलने आया हूँ। मैं उनका मित्र हूँ, अन्दर जाना है और उनसे मिलना है।'' सिपाही ने कहा आप अन्दर जाकर क्या करेंगे? आपको जो काम हो वह मैं करने को तैयार हूँ। सुदामदेव ने कहा, 'मेरा कोई काम नहीं है। मैं प्रेम से मिलने आयां हूँ। तुम अन्दर खबर दे दो कि आपका एक बालमित्र सुदामा आपसे मिलने आया है।'' सिपाही अन्दर चला जाता है। सुदामदेव आँगन में खड़े हैं। वे थोड़ा घबरा उठे और सोचने लगे,

''जिसका वैभव ऐसा है, जिसका ऐश्वर्य ऐसा है, वह कदाचित मुझे भूल गया होगा। मैं यहाँ आया हूँ; किन्तु मेरा अपमान न हो तो ही अच्छा है।''

भूदेव धरती में नजर गड़ाकर खड़े हैं। वह सेवक अन्दर गया है। सिंहासन पर विराजमान द्वारकानाथ को वंदन कर सेवक कहता है, बाहर एक ब्राह्मण आया है, उसके शरीर की सभी हड्डियाँ दिखाई देती हैं वह अधिक दुर्बल है, उसने एक साधारण-सी फटी हुई धोती पहनी है। उसके बगल में एक छोटी सी गठरी हैं उसके हाथ में डण्डा है और कोई सामान उसके पास नहीं है। मैंने उसे बहुत समझाया कि मुझे सेवा बताइए। हम आपकी सेवा करेंगे। फिर भी वह कहता है कि मैं किसी से सेवा लेने नहीं आया हूँ। मैं तो मालिक से मिलने आया हूँ। वह यों तो बहुत गरीब दिखाई देता है, किन्तु उसकी आँख में और ललाट पर तेज दिखाई देता है उसका ब्रह्म तेज भला कैसे छिप सकता है। जो दिन में तीन बार संध्या करता हो और जो सूर्यनारायण की उपासना करता हो उसके कपाल में ब्रह्मतेज होगा ही। वह कोई साधारण व्यक्ति नहीं है, तेजस्वी ब्राह्मण है और वह यह कहता है कि मैं मालिक का मित्र हूँ मेरा नाम सुदामा है।

सु दा....मा....तीन अक्षर कान में पड़ते ही श्रीकृष्ण सिपाही के साथ बोलने को भी तैयार नहीं हुए, वे अपने स्थान से कूद पड़ते हैं और उनके मुँह से निकलता है मेरा सुदामा आया, मेरा सुदामा आया। जब यह जीव परमात्मा के साथ प्रेम करते हुए अपना देहभान भूल जाता है, तब परमात्मा भी अपने लक्ष्मीपति होने का गौरव भूल जाते हैं। आज भगवान् को यह याद नहीं रहा कि मैं द्वारका का राजा हूँ। वे दौड़ते हुए बाहर निकले। रुक्मिणीजी को बहुत आश्चर्य होता है कि अनेक लोग आए हैं, किन्तु कभी भी ये इस प्रकार दौड़ते हुए बाहर नहीं गए हैं यह कौन आया है? उसे देखने के लिए रुक्मिणीजी दौड़ पड़ती हैं। द्वारकानाथ दौड़ते हुए बाहर निकले हैं और सुदामदेव की छाती से अपनी छाती मिलाकर आलिंगन करते हैं। इनका हृदय स्वच्छ है इनका हृदय गंगाजल जैसा शुद्ध है। परमात्मा को किसी का कपड़ा देखने की जरूरत नहीं, वे तो हृदय देखते हैं। श्रीकृष्ण ने सुदामदेव को आलिंगन किया और उनके कंधे पर अपना मस्तक रखा। जब उन्होंने सुदामा की पीठ पर हाथ फिराया तब उनकी हड्डियों का स्पर्श हुआ। उनके शरीर की हड्डियों के स्पर्श से श्रीकृष्ण की आँखों से चौधार आँसू फूट पड़े। वे बोल पड़े, 'यह मेरा मित्र है इसकी यह दशा! यह कितना दु:ख सहनकर रहा है। यह तो मेरी भूल है कि ऐसे तपस्वी मित्र के घर जाकर मुझे कुछ देना चाहिए। मैं वहाँ नहीं गया। यह मेरी बहुत भूल हुई है। यह नियम के कारण किसी के द्वार पर नहीं जाता। श्रीकृष्ण ने सुदामदेव से कहा कि हे मित्र, तू यहाँ आया, तुझे देखकर मुझे बहुत आनन्द हुआ। वे सुदामदेव का हाथ पकड़कर अन्दर ले जाते हैं। उन्हें अपने सिंहासन

पर बैठाते हैं। श्रीकृष्ण उनके चरणों के पास बैठे हैं। सुदामदेव कहते हैं, आप बड़े हैं। आप यहाँ मेरे साथ सिंहासन पर बैठिये।' श्रीकृष्ण ने कहा, मित्र सबसे श्रेष्ठ होता है। तू सभी से श्रेष्ठ है। मित्र, मैं तेरे आशीर्वाद से बड़ा बना हूँ। मैंने अपने को भुलाया नहीं है मैं तो तेरे चरण में ही बैठूँगा। सुदामदेव के मन में यह शंका थी, मैं दरिद्र हूँ, वे लक्ष्मीपति हैं। यदि वे कहीं मेरा अपमान कर दें तो?' आज परमात्मा चरण में बैठे हैं।

श्रीकृष्णजी ने रुक्मिणीजी से कहा, मुझे मित्र की पूजा करनी है। तुम इसकी तैयारी करो। रुक्मिणीजी जब तक जल लेकर वहाँ पहुँचीं पहले ही प्रभु की आँखों के आँसूओं ने सुदामदेव के चरण धो दिये हैं। जब रुक्मिणीजी जल ले आती हैं और सुदामदेव के चरण पर गिराती हैं तब श्रीकृष्ण उनका चरण पखारते हैं। सुदामदेव तपस्वी ब्राह्मण हैं। इसीलिए वे पैर में जूता नहीं पहनते। रास्ते में चलते समय उनके पैर में काँटे धँस गए थे। श्रीकृष्ण उन काँटों को निकालते हैं और कहते हैं मित्र क्या तू जूता नहीं पहनता? सुदामाजी कहते हैं कि नहीं, जूता नहीं पहनता जिसे सारे दिन जप करना हो वह यदि जूता पहने तो मन्त्र जप किस प्रकार होगा, सारे दिन अस्पर्शावस्था में रहना और रात को भी उसी अवस्था में सोना है। ब्राह्मण का अवतार तप करने के लिए ही है। सुदामा ने कभी जूता पहना ही नहीं।

भगवान् ने सुदामदेव के पैर से काँटा निकाला है। एक काँटा बहुत गहराई तक गड़ गया था। भगवान् ने रुक्मिणीजी को आज्ञा दी कि सूई लाओ। रुक्मिणीजी को सूई लाने में विलंब हुआ। काँटा सुदामदेव के पग में दर्द देता है और श्रीकृष्ण के हृदय में दर्द होता है। श्रीकृष्ण प्रेम में इस प्रकार पागल हो गए हैं कि सुदामदेव का चरण हाथ में लेकर अपने दाँतों से काँटा निकालते हैं। जब जीव ईश्वर के साथ प्रेम करते हुए देहभान भूल जाता है, तब ईश्वर भी अपने ईश्वरत्व को भूल जाता है।

इसके बाद श्रीकृष्ण ने सुदामदेव की पूजा की। जब उन्होंने सुदामदेव के कपाल में चंदन लगाया, तब उनकी नजर उनके कपाल पर पड़ी। विधाता ने कपाल में लिखा था, "श्रीक्षय:!" यह विधाता का लेख था कि यह ब्राह्मण ज्ञानी होगा, तपस्वी होगा और जितेन्द्रिय भी होगा; किन्तु इसने पूर्व जन्म में महापाप किया है। इस कारण यह इस जन्म में दरिद्री होगा।

श्रीकृष्ण ने विचार किया, मेरे मित्र के कपाल में ऐसा लिखा है। क्या विधाता को लिखना नहीं आया? भगवान् ने अर्चना करते समय उस लेख को बदल दिया और लिखा, "यक्षश्री।" अर्थात् कुबेर के घर जो संपत्ति नहीं है, वह संपत्ति मुझे अपने मित्र को देनी है।

सुदामदेव ने भोजन कर लिया है। इसके बाद दोनों मित्र पलंग पर एक साथ बैठे हैं। भगवान् ने सुदामदेव का हाथ अपने हाथ में ले लिया है। वे पूछते हैं, "मित्र क्या तुम्हें याद आता है। श्रीकृष्ण ने कहा, "मैं तुझे लड़कपन से जानता हूँ। न तो तुझे खाने की इच्छा थी, न खेलने की इच्छा थी। तू सारे दिन संध्या करता था। गायत्री-जप बहुत करता था। मैं तुझे जबर्दस्ती खेलने ले जाता था। क्या यह सब तुझे याद आता है? मित्र मुझे कुछ इसकी खबर नहीं मिली कि तेरा विवाह हुआ या नहीं। सुदामदेव ज्ञानी भक्त हैं, वे बहुत कम बोलते हैं। वे मस्तक हिलाकर कहते हैं, विवाह हुआ है।"

श्रीकृष्ण ने कहा, "मित्र सच कहना। भाभी कैसी मिली है?" सुदामदेव को अपनी पत्नी का स्मरण हो आया और उनकी आँखों में आँसू आ गए। वे बोले, "पत्नी ने मुझे परमात्मा के दर्शन कराए। मैं उसका उपकार कभी नहीं भूलूँगा। मैं तो अभिमान में ही घर में बैठा था। पत्नी ने सत्संग कर मेरा अभिमान दूर किया।"

सुदामदेव ने अपनी पत्नी का बहुत बखान किया, "मेरी पत्नी बहुत योग्य है। मैं यहाँ नहीं आता था, किन्तु आपकी भाभी ने मुझे यहाँ भेजा है।" श्रीकृष्ण ने कहा, "मित्र क्या मेरी भाभी ने तुझे यहाँ भेजा है? उसने क्या मुझे कुछ दिया भी है?"

सुदामदेव संकोच में पड़ गए। रुक्मिणीजी पीछे ही खड़ी थीं। उनसे यह सहन नहीं हुआ। उनका स्वभाव ही ऐसा है कि वे जिनके पीछे पड़ती हैं अपना ध्यान भूल जाती हैं। रुक्मिणीजी ने कहा, "आप यह सब क्या बात कर रहे हैं? आपको यह बात शोभा नहीं देती। आप मुझे आज्ञा दीजिए तो मैं इनके घर कुछ भेजूँ। आप इस गरीब ब्राह्मण को क्यों सता रहे हैं?

रुक्मिणीजी के मुँह से यह शब्द निकला, "गरीब ब्राह्मण।" भगवान् को यह सहन नहीं हुआ। उन्हें रुक्मिणीजी के ये शब्द बाण जैसे लगे। वे बोले, "तू मेरे मित्र को गरीब कहने वाली कौन? हम दोनों मित्र प्रेम से बात करते हैं। इसमें तू अपनी होशियारी दिखाने क्यों आती है? यहाँ से अब चली जा।"

रुक्मिणीजी को आश्चर्य हुआ कि आज ये मुझे ऐसा कहते हैं कि तू यहाँ से चली जा। मैंने इनका ऐसा मित्र-प्रेम कभी नहीं देखा। क्या ये इस मित्र को घर में रखेंगे और मुझे बाहर निकाल देंगे? हाँ, मेरी एक भूल हुई है कि मैंने इनके मित्र को गरीब कहा है। मेरे पतिदेव जिसका चरण पखारते हैं वह कोई साधारण नहीं है। मेरी भूल हुई है इसीलिए इनको बुरा लगा है।

भगवान् सुदामदेव के पीछे पड़ गए हैं। वे मित्र से माँगते हुए कहते हैं, "मेरी भाभी ने मेरे लिए जो कुछ दिया हो उसे तू मुझे दे।"

सुदामदेव बगल में अपनी गठरी छिपाते जा रहे हैं। उनको चिउरा देने की हिम्मत नहीं होती। वे विचार करते हैं, "जिसका वैभव ऐसा हो, जो प्रतिदिन छप्पन प्रकार के भोग ग्रहण करता हो उनको मैं वह चिउरा किस प्रकार दूँ? ये सब रानियाँ क्या कहेंगी?" ब्राह्मण बहुत शर्मिन्दा होता है। उसकी नजर धरती पर है और गठरी बग़ल में दबा रखी है। वह बड़े प्रेम से गठरी ले आया है; किन्तु उसे देते समय बड़ा संकोच हो रहा है। प्रभु ने देखा कि सुदामदेव के बगल में कुछ दिखाई दे रहा है। उन्हें ऐसा लगा कि यह कुछ लाया है; किन्तु देता नहीं है। उन्होंने कहा, "मित्र, चल मैं तुझे अपना महल दिखाऊँ। देख, दीवाल पर यह रामायण के सब चित्र हैं, यह श्रीरामजी के वन में ज़ाने का चित्र है। मित्र, तू आँख उठाकर तो देख कि मेरा राजमहल कैसा है?"

भूदेव ने अपनी आँखें कुछ ऊँची कर चित्र देखा। इतने में श्रीकृष्ण ने उनके बगल से गठरी खींच ली और कहा। "मेरी भाभी ने मेरे लिए भेंट भेजी है; किन्तु तू मुझे देता नहीं।"

गठरी छोड़ने की भी जरूरत नहीं पड़ीं। चिउरा निकल पड़ा। श्रीकृष्ण ने कहा, "मित्र, मुझे यह चिउरा बहुत भाता है। आज मुझे बहुत भूख लगी है।"

श्रीकृष्ण को प्रेम की भूख लगी है। उन्होंने चिउरा खाना आरंभ कर दिया है। रुक्मिणीजी वहाँ खड़ी हैं। उनको ठीक नहीं लगता। वे मन ही मन कहती हैं, "ये मित्र से कैसी बातें कह रहे हैं कि मुझे बहुत भूख लगी है। ये छप्पन भोग ग्रहण करते हैं। फिर भी इनको भूख लगी है। कैसा बोलते हैं?

रुक्मिणीजी ने कहा, "क्या आप भूखे हैं? भगवान् कहते हैं कि मैं तुझसे सच कहता हूँ। जब से मैं यशोदाजी को छोड़कर आया तभी से भूखा हूँ। तू मुझे क्या खिलाती है? मेरी माता मुझे खिलाती थी, माँ के समान प्रेम कहाँ है?" श्रीकृष्ण को आज यशोदा माता याद आती हैं।

रुक्मिणजी देखती हैं। वे विचार करती है कि मैं रोज श्रीकृष्ण के दर्शन करती हूँ, इनके साथ ही रहती हूँ; किन्तु मैंने भगवान् का ऐसा स्वरूप कभी नहीं देखा। आज के श्रीकृष्ण कुछ अलग ही दिखाई देते हैं, आज के श्रीकृष्ण की मूर्ति कुछ भिन्न ही है।

भगवान् ने एक मुट्ठी चिउरा के बदले सुदामदेव को द्वारका की संपत्ति दे दी है।

भगवान् सुदामदेव के साथ बात करते हुए कहते हैं, "तेरा संसार किस तरह चलता है?" सुदामदेव सच्चे और तपस्वी ब्राह्मण हैं। उन्होंने अपनी जीभ नहीं बिगाड़ी है। उनके घर में कुछ नहीं है। भगवान् उनसे पूछते हैं कि तेरा संसार किस प्रकार चलता है? ब्राह्मण ने कहा कि बहुत आनन्द से चल रहा है। सुदामदेव को किसी भी वस्तु की थोड़ी भी जरूरत नहीं है।

भगवान् को आश्चर्य हो रहा है कि यह कैसा है। यह कुछ बोलता नहीं। मैंने दिया है; किन्तु मुझे कुछ कहना नहीं है।

रात को दोनों के बीच काफी बातें हुई। सुदामदेव ने प्रातःकाल स्नान किया। उन्होंने विचार किया कि मैं इनसे मिलने आया इसलिए एक दिन मेरे रहने के अधिकार का था। अब यदि ये बहुत आग्रह करेंगे तो दो-चार दिन रह जाऊँगा। ये बहुत प्रेम रखते हैं। इसलिए आग्रह तो करेंगे ही। ऐसा मुझे पूरा-पूरा भरोसा है। फिर भी मुझे विवेक दिखाना पड़ेगा। तुम यदि किसी के घर किसी खास अवसर पर जाओ, तो अवसर पूरा होते ही जो पहली गाड़ी मिले उस गाड़ी से जय श्रीकृष्ण कहकर ही विदा होना। घर वाले यद्यपि यह कहते हैं कि तुम थोड़े दिन रहो; किन्तु अंदर से उनकी इच्छा यह होती है कि अब यह बला यहाँ से चली जाय तो अच्छा है।

सुदामदेव ने श्रीकृष्ण से कहा कि मुझे आज घर जाने की इच्छा है। श्रीकृष्ण ने पूछा कि मित्र क्या तुझे आज ही जाना है? सुदामदेव ने कहा, "जी हाँ।" यह सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा कि अच्छी बात है, जाओ।

प्रभु ने विचार किया कि यह आज चला जाए तो बहुत अच्छा है। मैंने ऐश्वर्य तो भेजा है; किन्तु मेरी भाभी वहाँ चौखट पर खड़ी-खड़ी मित्र की प्रतीक्षा कर रही है।

सुशीला महान् पतिव्रता है। उसके सेवक हाथ जोड़ते हैं और प्रार्थना करते हैं कि आप भोजन कीजिए। आप अपना श्रृंगार कीजिए। प्रभु ने यह सब आपको दिया है। सुशीला कहती है, "यह सब तो ठीक है; किन्तु मुझे तो मेरे पति ही सच्चे धन हैं। क्या उनको रास्ते में कुछ हो गया होगा? वे अभी तक नहीं आए?" इस प्रकार सुशीला चौखट पर बैठकर पतिदेव की प्रतीक्षा कर रही है।

प्रभु ने विचार किया कि यदि मैं अपने मित्र को आग्रह करके दो-चार दिन रोक लूँ तो मेरी भाभी की हालत वहाँ खराब हो जायेगी। इसीलिए उन्होंने सुदामदेव को आज ही जाने की छुट्टी दी है।

श्रीकृष्ण कभी-कभी ऐसा नाटक करते हैं कि जगत् में उनके समान निष्ठुर कोई नहीं दीखता। प्रभु ने सुदामदेव के स्नान के बाद उनको जो पीताम्बर दिया था उसे उन्होंने पहन रखा था। जब सुदामदेव पीताम्बर पहनकर जाने लगे तो भगवान् को पसन्द नहीं आया। उन्होंने सुदामदेव के हाथ में धोती दे दी और कहा कि मित्र यह तेरी धोती है, तुझे पहचान हो तो इसे पहन ले। इसका अर्थ यह होता है कि तू मेरा पीताम्बर मत ले जा। तू जो धोती पहनकर आया था वही पहनकर घर जा। श्रीकृष्ण ने विचार किया कि मेरे मित्र का नियम है। उसके अनुसार यह किसी

के घर नहीं जाता। मुझे जो कुछ देना है उसे इसके घर जाकर दूँ। यदि वह यहाँ से पीताम्बर पहनकर जाए तो शायद लोग इसकी निन्दा करेंगे कि ये महाशय मेरे घर तो आते नहीं थे और द्वारका जाकर पीताम्बर ले आए हैं। यह जो धोती पहनकर आया है वही धोती पहनकर अपने घर जाए।

श्रीकृष्ण ने सुदामदेव के हाथ में धोती दे दी है। सुदामदेव ने पीताम्बर खोल कर रख दिया है और धोती पहन ली है। वे सच्चे ब्राह्मण हैं। उनके मन में जरा भी कुभाव नहीं है। उन्हें इसका जरा भी दु:ख नहीं कि कुछ मिला नहीं है। उनका मन अत्यन्त शान्त है। वे आनन्दमय हैं। वे तो ऐसा विचार करते हैं कि मुझे श्रीकृष्ण ने कितना आदर दिया।

सुदामदेव घर जाने को तैयार हो गए हैं। श्रीकृष्ण उनको द्वार तक पहुँचाने आए हैं और कहते हैं, 'मित्र तेरे आने से मुझे आनन्द हुआ। मैं तुझे कुछ देता नहीं। तेरे आशीर्वाद से ही मुझे यह सब मिला है। तू इस समय घर जा रहा है। इसलिए मैं तुझसे इतना ही कहता हूँ कि घर जाकर मेरी भाभी के चरणों में मेरा वन्दन कहना।'

सारा जगत् जिसे वन्दन करता है। वे लक्ष्मीपति परमात्मा एक दरिद्र ब्राह्मण की पत्नी को प्रणाम कहते हैं। उनको अभिमान का थोड़ा भी स्पर्श नहीं। यह देखकर ब्राह्मण की आँख में आँसू आ गये। वे बोले, 'महाराज, आपका वन्दन नहीं हो सकता, आपका आशीर्वाद हो सकता है।' श्रीकृष्ण ने कहा, 'मित्र, तू क्या कहता है। मैं भाभी के आशीर्वाद से सुखी हूँ। मित्र, मेरी भाभी तो यशोदा माता के समान हैं। मैं गोकुल में था और गायों को लेकर वृन्दावन में जाता था, तब यशोदा माता मुझे जैसा चिउरा देती थीं। वैसा ही स्वादिष्ट चिउरा भाभी ने मेरे लिए भेजा है। वे तो माता के समान है। उसके चरण में मेरा वन्दन ही कहना।

सुदामदेव को विश्वास हो गया है कि लोग श्रीकृष्ण की जितनी प्रशंसा करते हैं, वह बहुत कम है। श्रीकृष्ण के साथ मेरी मैत्री जन्म-जन्मातर हो और उनके चरणों में मुझे जन्मजन्मान्तर दास्यभक्ति मिले।

सुदामदेव को कुछ मिला नहीं; किन्तु उसको इसका जरा भी दु:ख नहीं। वे मन में विचार करते हैं, 'यदि अधिक धन मिलता तो मैं अपने को भूल जाता। इसलिए परमात्मा ने मुझे कुछ दिया नहीं। उनका मन अत्यन्त शान्त है वे श्रीकृष्ण का स्मरण करते-करते सुदामापुरी की तरफ चल पड़ते हैं।

सुदामापुरी और द्वारकाजी एक समान बन गई हैं। परमात्मा ने दोनों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं रखा है। सुदामदेव के मन में ऐसा हुआ कि मैं विचार करता-करता चल रहा था

इसलिए मेरी भूल हुई है। यह तो वही द्वारका दिखाई दे रही है। मैं भटक गया हूँ और लौटकर पुनः द्वारका आ गया हूँ।

सुशीला ने पतिदेव का स्वागत किया और कहा कि आपके मित्र ने आपको यह सब दिया है। सुदामदेव के मन में ऐसा हुआ कि मेरे कन्हैया ने तो एक अक्षर भी मुझसे कुछ नहीं कहा; किन्तु वह कितना उदार है। मैं तो एक मुट्ठी चिउरा लेकर गया था। उसने उसके बदले में इतना सब मुझे दे दिया।

सुदामदेव को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। वे गरीब थे तब तो भक्ति करते ही थे किन्तु अब सुखी और सम्पन्न होने के बाद अधिक भक्ति करने लगे। संसार का सारा सुख कच्चा है और सच्चा सुख तो परमात्मा ही है। सुदामदेव अति सम्पत्ति में अति भक्ति करते हैं।

एवं स विप्रो भगवत्सुहृत्तदा दृष्ट्वा स्वभृत्यैरजितं पराजितम्।
तद्ध्यानवेगोद्ग्रथितात्मबन्धनस्तद्धाम लेभेऽचिरतः सतां गतिम्।।

(१०-८१-४०)

श्रीकृष्ण के साथ मित्रता कर सुदामदेव द्वारकानाथ हो गये हैं। जब कोई जीव कुछ देता है तो संकोच करता हुआ देता है किन्तु परमात्मा जब जीव को देता है तब उसे थोड़ा भी संकोच नहीं होता। प्रभु ने सुदामदेव को द्वारकाधीश बना दिया। फिर भी इस अति सम्पत्ति में सुदामदेव अत्यन्त परोपकार करते हैं और अति सावधान होकर भक्ति करते हैं। इस प्रकार सुदामदेव कृतार्थ हो गए हैं।

सुदामदेव अपने को भूले नहीं हैं। वे अति सावधान हैं। वे भगवान् का नाम संकीर्तन करते-करते उनके चरणों में लीन हो गये हैं।

परमात्मा परमानन्द का स्वरूप ही है। आनन्दमय होने कारण श्रीकृष्ण को कोई सुख भोगने की इच्छा होती ही नहीं। गंगाजी को प्यास नहीं लगती, धरती माता को भूख नहीं लगती और अग्नि को ठण्डक नहीं लगती। इसी प्रकार आनन्दमय श्रीकृष्ण को कोई सुख भोगने की इच्छा नहीं होती। श्रीकृष्ण सदा सभी के साथ प्रेम करते हैं। संसार का सारा प्रेम स्वार्थ से भरा होता है। जहाँ स्वार्थ होता है वहाँ कपट भी आता है। जहाँ सुख भोगने की इच्छा होती है वहाँ भी थोड़ा कष्ट आ जाता है। संसार का सारा प्रेम स्वार्थ और कष्ट से भरा हुआ है। केवल एक परमात्मा ही इस जीव के साथ निस्वार्थ भावना से प्रेम करता है। प्रभु स्वार्थ छोड़कर सब जीवों के साथ प्रेम करते हैं। परमात्मा जीव को प्रेम करे तो वह इस जीव को परमात्मा बना देता है। सुदामदेव की इस कथा से ऐसे अनेक भाव प्रकट होते हैं।

एतद् ब्रह्मण्यदेवस्य श्रुत्वा ब्रह्मण्यतां नरः।
लब्धभावो भगवति कर्मबन्धाद् विमुच्यते॥

(१०-८१-४१)

यह परम पवित्र सुदामदेव की कथा वक्ता और श्रोता दोनों के मन के पापों का नाश करती है। जो वक्ता इस कथा का अत्यन्त भाव से वर्णन करता है और जो श्रोता इस कथा को बहुत भक्ति भाव से सुनते हैं उनको श्रीकृष्ण के चरणों में भक्ति प्राप्त होती है।

७७- ब्रह्मविद्या

भगवान् श्रीकृष्ण एकबार द्वारका में विराजमान थे। उस समय सूर्यग्रहण का दिन आया। सूर्यग्रहण-स्नान की कुरुक्षेत्र में बहुत महिमा है। इसके बाद वहाँ सूर्यग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र में बड़े-बड़े संत महात्माओं का आगमन हुआ, अनेक देश के राजा आए। उसमें ब्रजवासियों का मिलन हुआ है इसका वर्णन आता है।

जब सूर्य को ग्रहण लगता है तब दिन होने पर भी अन्धेरा हो जाता है। सूर्य ज्ञान स्वरूप है। राहु-केतु इस सूर्य-चन्द्र को निगलने आते हैं। इसी को ग्रहण कहा जाता है। जब ज्ञान किसी अज्ञान से ढँक जाता है तब स्नान करो और ध्यान के साथ जप करो। ग्रहण के समय कोई दूसरा काम नहीं करना चाहिए। ग्रहण में जो जप किया जाता है, उसका हजार गुना फल मिलता है। इसलिए जब-जब ज्ञान अज्ञान से ढँक जाए तब-तब स्नान करके ध्यान और जप करो। सब लोग यह जानते हैं कि सच बोलना चाहिए; किन्तु अपने लाभ के लिए मनुष्य झट झूठ बोल देता है। यहाँ मनुष्य का ज्ञान अज्ञान से ढक जाता है। यही ग्रहण का स्वरूप है।

सूर्यग्रहण की विशेष महिमा है। सूर्यनारायण बुद्धि के मालिक देव हैं। वसुदेवजी ने उस समय जो यज्ञ किया है, उस अवसर का वर्णन मिलता है।

भगवान् श्रीकृष्ण माता-पिता को वन्दन करने के लिए आए हैं। उस समय उन्होंने माता देवकीजी और पिता वसुदेवजी से पूछा है कि आपकी क्या इच्छा है? वासना पुनर्जन्म का कारण बनती है। वसुदेवजी ने कहा है कि मेरी अन्तिम परीक्षा सफल हो यही एकमात्र इच्छा है।

मानव-जीवन में अंतिम परीक्षा मरण है। जिसका मरण सुधरा उसका जीवन सुधरा गया, उसका जीवन मंगलमय बन गया। जिसका जीवन मंगलमय होता है, उसका मरण भी मंगलमय होता है। मनुष्य अपने जीवन में ऐसे पाप करता है कि भगवान् को भी उसे क्षमा करने की इच्छा नहीं होती। वे ही पाप मरण बिगाड़ते हैं।

भगवान् के नाम का जप करते-करते जो उनकी कथा सुनता है उसका पाप भस्मीभूत हो जाता है। जो कथा सुनता है उसका नया जन्म होता है। इस प्रकार कथा–नवजीवन देती है। इसलिए कथा सुनने के बाद कभी पाप न करो। यह पाप ही मरण बिगाड़ता है।

वसुदेवजी ने कहा, "मेरा मरण मंगलमय बने यही एक इच्छा है।"

श्रीकृष्णजी देवकीजी से पूछते हैं, "माता, तेरी क्या इच्छा है?" देवकीजी ने कहा कि कंस राजा ने मेरी जिन छह सन्तानों को मार डाला है। उन्हें एक बार फिर देखने की इच्छा है।

इस वासना की बलिहारी है। देवकीजी श्रीकृष्ण की माता हैं। श्रीकृष्ण का दर्शन करने पर भी देवकीजी के मन में अपने मरे हुए बालकों को देखने की इच्छा हो रही है।

वासना का विवेक से नाश करो और मन को बारंबार समझाओ कि तूने संसार का कोई सुख बाकी नहीं रखा। तूने उसे अनेक बार भोगा भी है। भोग से क्षणिक सुख मिलता है और त्याग में अनन्त शांति मिलती है।

भगवान् श्रीकृष्ण पाताल में जाते हैं। वहाँ से उन बालकों को ले आते हैं और देवकी माँ के सामने उपस्थित कर पूछते हैं कि माँ, अब तेरी क्या इच्छा है? यह सुनकर माँ कहती है कि अब मेरी कोई इच्छा नहीं है। अब एक ही इच्छा है कि मेरा मरण सुधरे।

श्रीकृष्ण ने अपने माता-पिता को तत्वज्ञान का उपदेश दिया है। आगे उसी कथा का वर्णन है। इसके बाद सुभद्राजी के विवाह का वर्णन है। आपने जगन्नाथजी के मंदिर में देखा होगा कि श्रीकृष्णजी और बलरामजी के मध्य में सुभद्राजी हैं। भद्र शब्द का अर्थ है कल्याण। कल्याण करने वाली विद्या का नाम ही सुभद्राजी है। सच्ची विद्या वही है जो जन्म-मरण के संकट से छुड़ाती है और प्रभु में प्रेम जागृत करती है। सुभद्रा ब्रह्मविद्या हैं जो श्रीकृष्ण–बलराम के बीच में विराजित हैं। बलराम शब्दब्रह्म के स्वरूप हैं और श्रीकृष्ण परब्रह्म हैं। जो शब्दब्रह्म-परब्रह्म की उपासना करता है उसकी बुद्धि में ब्रह्मविद्या स्फुरित होती है। प्रभु ने अर्जुन को सुभद्राजी का दान किया है। इसके बाद भगवान् मिथिला नगरी में श्रुतदेव ब्राह्मण और राजा बहुलाश्व जनक के घर पधारते हैं। उस कथा का वर्णन किया गया है।

इसके बाद वेद-स्तुति की कथा है। सभी वेद-परमात्मा की स्तुति करते हैं। परमात्मा निर्गुण-निराकार और सगुण–साकार भी हैं। तुम निर्गुण-निराकार का अनुभव करो और सगुण–साकार परमात्मा के साथ प्रीति करो। जो निर्गुण–निराकार परमात्मा का अनुभव करता है उसका पाप कट जाता है। साधारण मनुष्य जब पाप करता है, तब ऐसा समझता है कि यहाँ भगवान् नहीं हैं; परन्तु यह उसकी भूल है। जैसे राजा तो राजमहल में रहता है; परन्तु उसकी सत्ता उसके राज्य के अणु-

परमाणु में व्याप्त रहती है। राजसत्ता निराकार है। सत्ता आँख को दिखाई नहीं देती। इस राजसत्ता के अनुभव की तरह निर्गुण-निराकार परमात्मा का अनुभव करो। किसी धनवान आदमी की मोटर बहुत तेजी से जा रही हो और सिपाही हाथ ऊँचा करे तो मोटर उसे खड़ी करनी पड़ती है। कदाचित् उसके मन में यह विचार आता है कि मैं ऐसे अनेक सिपाहियों को नौकर रख सकता हूँ। यह बात सत्य है। सिपाही को मान देना सिपाही के पीछे छिपी हुई राजसत्ता को मान देना है। सत्ता निराकार होती है; परन्तु वह सत्ता जिसकी होती है वह राजा साकार है। सत्ता का कोई रंग और आकार नहीं होता। फिर भी वह राज-सत्ता है। जिस प्रकार राजसत्ता को मानते हो, उसी प्रकार परमात्मा की सत्ता को मानो। ऐसी कोई जगह ही नहीं है जहाँ भगवान् विराजमान न हो।

सगुण-साकार परमात्मा के साथ प्रेम करने से वासना को विनाश होता है। इस संसार में जितने आकार हैं वे सभी माया से बने हैं। इसलिए संसार के किसी भी आकार का चिन्तन करने अथवा उसके साथ प्रीति करने से मन में विकार ही उत्पन्न होगा। इसलिए इन सबसे बचने के लिए सगुण-साकार और निर्गुण-निराकार दोनों रूपों से भगवान् के दर्शन करो।

कुछ ज्ञानी पुरुष सगुण परमात्मा की भक्ति गौण समझते हैं। इसी प्रकार कुछ भक्त निर्गुण-निराकार परमात्मा के स्वरूप को गौण मानते हैं। ये दोनों भूल करते हैं। वास्तव में भगवान् के दोनों स्वरूपों के दर्शन की आवश्यकता है। क्योंकि ये दोनों उनके स्वरूप हैं। इनमें कोई गौण नहीं है। इसलिए दोनों की आवश्यकता है। माता और पिता दोनों में कौन गौण है? निर्गुण-निराकार परमात्मा पिता के समान है और सगुण-साकार परमात्मा माता के समान हैं।

वेद परमात्मा का निर्गुण-निराकार और सगुण-साकार दोनों रूप से वर्णन करता है। वेद-स्तुति में आरंभवाद, परिणामवाद एवं विवर्तवाद का रहस्य समझाया गया है।

वेद भगवान् कहते हैं कि ज्ञान से भी ध्यान श्रेष्ठ हैं। कुछ लोग अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़ते हैं। यह ठीक होने पर भी बहुत अच्छा नहीं है। अनेक पुस्तकें पढ़ने से शब्द ज्ञान बढ़ता है और शब्दज्ञान के बढ़ने के कारण मनुष्य बहुत चर्चा करता है। बहुत पुस्तकें पढ़ने की अपेक्षा शांति से बैठकर ध्यान करते-करते प्रभु के नाम का जप करना अधिक अच्छा है।

इस अध्याय में शिव तत्त्व और विष्णु तत्त्व का रहस्य समझाया गया है। बृकासुर के प्रसंग का वर्णन भी आता है। अर्जुन में होने वाला अभिमान प्रभु ने किस युक्ति से दूर किया उस कथा का भी वर्णन है।

श्रीशुकदेवजी महाराज कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण के गुण अनन्त हैं और उनकी कथा अनन्त है। इस अनन्त की कथा का अन्त आता ही नहीं। मेरे भगवान् का प्राक्ट्य मथुरा में हुआ

था। वहाँ से वह गोकुल में पधारे। ग्यारह वर्ष और बावन दिन तक गोकुल में रहकर लीला की और ब्रजवासियों को परमानन्द दिया। उन्होंने कंस आदि राक्षसों का विनाश कर मथुराधीश पद प्राप्त किया। वे द्वारकाधीश भी बने। उन्होंने अनेक रानियों के साथ विवाह किया और जगत् को गृहस्थ धर्म का आदर्श सिखाया।

कौरवों-पाण्डवों के युद्ध का निमित्त उपस्थित कर भगवान् ने अपना भार उतारा। उन्होंने अर्जुन और उद्धव को तत्वज्ञान का उपदेश दिया। अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण गोलोक धाम पहुँचते हैं। दशम स्कंध की समाप्ति में श्रीकृष्ण चरित का संक्षेप में वर्णन किया गया है।

शुकदेवजी महाराज परीक्षित राजा से कहते हैं कि जो मनुष्य श्रीकृष्ण की कथा रूपी गंगा में स्नान करता है उसके मन का मैल धुल जाता है। लोग चारों धाम की यात्रा करते हैं; किन्तु उनका स्वभाव नहीं सुधरता। यात्रा और यज्ञ करने से पुण्य बढ़ता है; किन्तु स्वभाव नहीं सुधरता। अनेक बार पुण्य बढ़ने पर अभिमान भी बढ़ जाता है। पुण्य के कारण बढ़ा हुआ अभिमान पाप कराता है। यात्रा करने से बिगड़ा हुआ मन जल्दी शुद्ध नहीं होता; किन्तु श्रीकृष्ण की कथा-गंगा में स्नान करने से मन का मैल धुल जाता है और स्वभाव भी सुधरता है।

मर्त्यस्तयानुसवमेधितया मुकुन्दश्रीमत्कथाश्रवणकीर्तनचिन्तयैति।
तद्धाम दुस्तरकृतान्तजवापवर्गं ग्रामाद् वनं क्षितिभुजोऽपि ययुर्यदर्थाः॥

(१०/९०/५०)

इति दशम् स्कन्ध उत्तरार्ध समाप्त

हरिः ॐ तत्सत्

श्रीगणेशाय नमः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्भागवत-रसामृत

एकादश स्कन्धः उत्तरार्ध

७८– उपसंहार

कृत्वा दैत्यवधं कृष्णः सरामो यदुभिर्वृतः।
भुवोऽवतारयद् भारं जविष्ठं जनयन् कलिम्॥

(११-१-१)

दशम स्कन्ध में श्रीकृष्ण का प्रेम स्वरूप बताया गया है और एकादश स्कन्ध में श्रीकृष्ण का ज्ञान स्वरूप बताया गया है। दशम स्कन्ध में निरोध लीला है और एकादश स्कन्ध में मुक्ति लीला है। जिसका मन अत्यन्त अशांत रहता है उसे मरने से पहले ही मुक्ति जैसा आनन्द मिलता है। मन जब तक विषयों का चिन्तन करता है, तब तक मरता नहीं; किन्तु वह परमात्मा का सतत चिन्तन करता है, तब उनमें मिल जाता है। तन के मरने पर मुक्ति नहीं मिलती; किन्तु जिसका मन मर जाता है उसे मुक्ति मिलती है। जब तक मन में संसार रहता है, तब तक वह जीता है। संसार के निकलते ही मन शांत हो जाता है। जब तक दीपक में तेल होता है तब तक वह जलता है; तेल न होने पर वह बुझ जाता है, शांत हो जाता है। इसलिए मन में से संसार को निकालने का प्रयत्न करो। प्रश्न यह है कि संसार छोड़कर कहाँ जाओगे? तुम जहाँ जाओगे वहाँ संसार तो है ही। जिसके मन में संसार है, वह जेल में भी संसार पैदा कर लेता है और मन्दिर में जहाँ पक्षी दिखाई दें वहाँ भी संसार पैदा करता है। इसलिए मन में से संसार बाहर निकालो। जो झाडू मारता है। जो कूड़ा-कचरा बाहर निकालने जाता है उस पर भी थोड़ा कूड़ा-कचरा पड़ता है। यदि हम संसार को मन में से बाहर निकालने जाएँ, तो मन संसार का चिन्तन करता है। यदि मन में श्रीकृष्ण का स्वरूप स्थिर हो, मन उनका चिन्तन करे तो धीरे-धीरे मन में से संसार निकल जाता है। श्रीकृष्ण की लीला में ऐसी शक्ति है कि वह जगत् से विस्मृति कराती है और परमात्मा की शरण में तन्मयता पैदा करती है।

एकादश स्कन्ध में पहला अध्याय वैराग्य का है। बिना वैराग्य के ज्ञान-भक्ति में दृढ़ता नहीं आती। मानव थोड़ी भक्ति करता है, ज्ञान की बातें करता है, किन्तु वैराग्य न होने के कारण उसका ज्ञान स्थिर नहीं रहता और संसार का सुख उसे मीठा लगता है। यदि संसार का विषय मनुष्य को रुलावे तो भी उसे वह मीठा लगता है। वैराग्य के बिना ज्ञान-भक्ति दृढ़ नहीं होते।

नैवान्यतः परिभवोऽस्य भवेत् कथञ्चिन्मत्संश्रयस्य विभवोन्नहनस्य नित्यम्।
अन्तःकलिं यदुकुलस्य विधाय वेणुस्तम्बस्य वह्निमिव शान्तिमुपैमि धाम॥

(११-१-४)

वैराग्य विवेक से जागृत होता है। जिसको अच्छा-अच्छा खाने में मजा आता है वह भला भक्ति करेगा? उसकी भक्ति एक दिखावा मात्र है। संसार में जो कुछ दिखाई देता है वह क्षणिक है, दुःखरूप है। ऐसा जानने वाले को ही भक्ति का आनन्द मिलता है। जिसको भक्ति का आनन्द मिला है, उसे संसार का सब कुछ तुच्छ लगता है। विवेक के बिना वैराग्य जागृत नहीं होता। इसलिए अपने मन को बारम्बार समझाओ कि संसार तुच्छ है। इसके सारे सुख खराब हैं। केवल परमात्मा सत्य है, आनन्दमय है।

प्रभु ने इस अध्याय में वैराग्य की लीला की है। द्वारका सोने की है। उसमें यादव रहते हैं। यादव अति सम्पत्तिवान हैं; किन्तु अत्यन्त सुख में अपने आपको भूल गए हैं। इसलिए अत्यन्त सुख मिलना अच्छा नहीं और अत्यन्त मान मिलना भी अच्छा नहीं है। मनुष्य यह सोचता है कि मुझे सब प्रकार का सुख मिल जाए तो उसके बाद में भक्ति करूँगा। यह कल्पना गलत है। अत्यन्त सुख में मनुष्य अपना मान भूल जाता है, उसकी बुद्धि बिगड़ जाती है। अति सम्पत्ति और सन्मति एक जगह नहीं रहती।

यादव अत्यन्त सुखी हो गए थे और उनके पास बहुत सम्पत्ति थी। उनके सब प्रकार से सुखी होने के कारण उनकी बुद्धि बिगड़ गई थी।

प्रभु ने विचार किया कि मुझे उपसंहार करना है। जब तक तुम्हारे शरीर में शक्ति है तब तक ही प्रवृति का उपसंहार करो, निवृति लो और भगवान् की भक्ति करो। जो शरीर बिगड़ने के बाद शरीर प्रवृत्ति छोड़ता है वह भक्ति नहीं कर सकता। शरीर में शक्ति होने पर ही भक्ति होती है। बिना शक्ति के भक्ति नहीं होती। इसलिए शरीर में शक्ति रहते-रहते समझकर प्रवृति का उपसंहार करता है उससे बहुत शान्ति मिलती है तब बहुत कष्ट होता है। रामायण में हनुमानजी ने रावण की लंका जलाकर भस्म कर दी है। इसी प्रकार प्रभु ने अपनी इच्छा से द्वारका को सागर

में डुबा दिया है। काल के धक्का मारने के पहले जो सब कुछ छोड़ देता है उसे आनन्द मिलता है। मनुष्य को बढ़ाना तो आता है किन्तु उसे समेटना नहीं आता।

भूभारराजपूतना यदुभिर्निरस्य गुप्तैः स्वबाहुभिरचिन्तयदप्रमेयः।
मन्येऽवनेर्ननु गतोऽप्यगतं हि भारं यद् यादवं कुलमहो अविषह्यमास्ते।।

(११-१-३)

भगवान् को ऐसा लगता है कि यह सब बहुत बढ़ गया है। मुझे अब सब कुछ छोड़ना है; उपसंहार करना है।

द्वारका के पास पिण्डारक क्षेत्र में ऋषि एकत्र होकर बैठे थे। उस समय यादवों की बुद्धि बिगड़ी। वे साम्ब को साड़ी पहनाकर, स्त्री का शृंगार करके ऋषियों के पास ले गए और उन्होंने उनसे पूछा, यह स्त्री सगर्भा है इसे लड़का होगा या लड़की होगी। आप इसे बताइए।

ऋषियों ने आँख बन्द करके देखा तो यह स्त्री नहीं है; किन्तु पुरुष है। ये सब हमारा मजाक कर रहे हैं। ऋषियों को यह मजाक पसन्द नहीं आया। उन्होंने शाप दिया कि लड़का या लड़की नहीं होगी, किन्तु तुम्हारे वंश को नाश करने वाला मूसल पैदा होगा। मूसल काल का स्वरूप है।

हमारे शास्त्रों में ऐसा लिखा है कि पुरुष को स्त्री के वेश में और स्त्री को पुरुष के वेश में देखने से मन दूषित होता है; मन में माया पैदा होती है। इसीलिए ब्राह्मण को विशेष रूप से आज्ञा दी गई है कि वह नाटक या तमाशा देखने न जाये। क्षत्रिय और वैश्य को थोड़ी छूट दी गई। बेचारे ऋषि शाँति से तपस्या कर रहे थे। उस समय यादव वहाँ गए और पुरुष को स्त्री का शृंगार किया। इसलिए क्रोध से भरकर ऋषियों ने वंश के विनाश का शाप दिया।

साम्ब के पेट से मूसल निकला। उसे देखकर सब घबरा उठे। सबने सोचा कि यदि श्रीकृष्ण से यह बात करें तो वे सजा करेंगे, नाराज होंगे। इस डर से उन्होंने यह पाप उनसे छिपाया। पाप करना साधारण अपराध है; किन्तु पाप का परमात्मा के समक्ष स्वीकार न करना बड़ा अपराध है। फिर भी परमात्मा के समक्ष पाप स्वीकार करने में शर्म आती है। जिस दिन पाप हो गए उस रात्रि में सोने के पहले भगवान् को वन्दन कर पाप स्वीकार कर लेना चाहिए। जो पाप स्वीकार करता है उस पर भगवान् को दया आती है, परन्तु जो पाप कबूल नहीं करता और उसे छिपा रखता है उसे बहुत सजा मिलती है।

यादवों ने अपना पाप छिपाया। भगवान् तो सब जानते ही थे। उन्होंने कहा कि जो हुआ वह अच्छा ही हुआ। यादव मूसल उठाकर प्रभास में ले गए। वहाँ उसे खूब घिसा। उसके लोहे का

जो भाग था उसे समुद्र में फेंक दिया जिसे एक मछली खा गई। जरा नाम के शिकारी को वह मछली मिली। मछली के पेट से लोहा निकला। जरा पारधी ने उस लोहे से बाण की अनि बनाई। जरा पारधी ने श्रीकृष्ण को वह बाण मारा है। श्रीधर स्वामी ने अपनी टीका में लिखा है कि जरा पारधी का बाण श्रीकृष्ण को नहीं लगा। 'जरा' शब्द का अर्थ है वृद्धावस्था। वृद्धावस्था भोगी को बाण मारती है और भोगी को चारों ओर से घेर लेती है। श्रीकृष्ण तो योगी हैं। वे तो हमेशा जवान रहते हैं। उनके पास वृद्धावस्था पहुँच ही नहीं सकती। जरा पारधी का बाण भगवान् को लगा ही नहीं।

एकादश स्कन्ध के दूसरे अध्याय से ज्ञान भक्ति का उपदेश आरंभ हो जाता है। एकादश स्कन्ध उपसंहार है। इस दस ग्यारह दिन से ज्ञानभक्ति का जो उपदेश दिया गया उसे फिर से श्रोताओं की बुद्धि में दृढ़ करने के लिए इस स्कन्ध की कथा कही जा रही है। व्यवहार में पुनरुक्ति को दोष माना गया है; किन्तु ज्ञान और भक्ति में पुनरुक्ति गुण है। वेद, उपनिषद् और गीताजी में अनेक बार पुनरुक्ति आती है, लेकिन यह पुनरुक्ति सिद्धांत को दृढ़ करने के लिए है।

अविद्यमानोऽप्यवभाति हि द्वयोर्ध्यातुर्धिया स्वप्नमनोरथौ यथा।
तत् कर्मसंकल्पविकल्पकं मनो बुधो निरुन्ध्यादभयं ततः स्यात्।।

(११-२-३८)

एक बार नारदजी द्वारका में पहुँचे। वसुदेवजी ने उनसे प्रश्न किया कि ऐसा कुछ उपदेश दीजिए जिससे जीव का कल्याण हो। नारदजी ने कहा, "राजा जनकजी ने ऐसा ही प्रश्न नौ योगियों से किया था। कवि नाम के योगीराज ने उनको यह उपदेश दिया–

मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्य, पादाम्बुजोपासनमत्र नित्यम्।
उद्विग्नबुद्धेरसदात्मभावाद् विश्वात्मना यत्र निवर्तते भीः।। (११-२-३३)

यह जीवात्मा परमात्मा का अंश है। यह परमात्मा से बिछुड़ने के कारण ही दुःखी है। यदि यह परमात्मा की शरण में जाए, तो इसका दुःख दूर हो। एक दिन ऐसा था कि हम सब भगवान् के चरण में थे। कुछ भूल के कारण यह जीव ईश्वर से अलग हो गया। तभी से इसकी दशा बिगड़ गई है। इसलिए हमेशा यह चिन्तन करो कि मैं परमात्मा का अंश हूँ और मुझे उसके चरण में जाना है।

तुम्हें जब कुछ फुर्सत मिलती है, तो क्या करते हो? लोगों को जब फुरसत मिलती है तब संसार के बारे में सोचते हैं कि यह अच्छा है और यह खराब है। किसी की निन्दा करेंगे, तो किसी का बखान करेंगे। यह छोड़कर तुम्हें जब कुछ फुरसत मिले तो अपने शरीर का चिन्तन करो कि मैं भगवान् का हूँ और भगवान् मेरे हैं। भगवान् को छोड़कर मेरा कोई दूसरा नहीं है। ऐसा चिन्तन बारंबार करो। घर जाकर ऐसा मत कहना कि तुम मेरे नहीं हो ऐसा मैंने आज कथा में सुना है। ऐसा

कहने से घर में झगड़ा खड़ा हो जाएगा। बाहर से घर के लोगों के साथ प्रेम करो और अन्दर से परमात्मा के साथ प्रेम करो। मन में ऐसा चिन्तन करो कि मैं किसी स्त्री का नहीं हूँ या किसी पुरुष का नहीं हूँ। थोड़ा विचार करने पर पता चलेगा कि जन्म से न कोई पति है और न जन्म से कोई स्त्री है। पति-पत्नी का सम्बन्ध व्यवहार में सत्य है। मरने के बाद न तो कोई पति है, न कोई स्त्री है। जन्म से और मरण के बाद जीव ईश्वर का है। जीव का ईश्वर के साथ का सम्बन्ध सच्चा है।

यदि निर्भय बनना हो, तो भगवान् के चरण का दृढ़ आश्रय ग्रहण करो। "मैं परमात्मा का हूँ।" यह बात कभी न भूलना। तुम चाहे जो काम करो; किन्तु मन में यह धारणा करो कि मेरे भगवान् सभी में विराजमान हैं। तुम जिस देव की पूजा करते हो, जिस देव के नाम का जप करते हो, वह देव तुम्हारे घर में सिंहासन पर ही नहीं बैठा है, बल्कि वह सर्व शक्तिमान् है। यदि तुम यह विचार करो कि वह सबका आधार है, तो इससे प्रभु में प्रेम जागेगा। हरि नाम के योगेश्वर ने कहा है–

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥ (११-२-४५)

यदि यह याद रखकर व्यवहार करो कि परमात्मा सब में विराजमान है, तो पाप से दूर रहोगे। सत्कर्म करो, किन्तु उसका फल मुझे ही मिलना चाहिए, ऐसी अपेक्षा मत रखो। किए गए कर्म का फल परमात्मा को अर्पण करो। जिस प्रकार घर में जाने-अनजाने धूल उड़कर आती है, उसी प्रकार व्यवहार में अशुद्धि भी आती है। उसे दूर करने के लिए प्रतिदिन नियमपूर्वक सत्संग करो।

माया का थोड़ा स्वरूप भी बताया गया है। प्रबुद्ध नाम के योगी ने माया से तरने के लिए उपाय बताया है। उन्होंने कहा है कि जिसे माया से तरने की इच्छा हो, उसे बहुत स्वतंत्र होकर इधर-उधर नहीं भटकना चाहिए। उसे किसी सन्त का चरण पकड़ रखना चाहिए।

पानी पीजे छान के, गुरु कीजे जान के॥

इसलिए गुरु करने में जल्दी मत करना। कुछ थोड़ा अनुभव होने पर गुरु करो। गुरु करने के बाद विचार न करो। गुरु करने के पहले खूब विचार कर लो। यदि गुरु ही लौकिक सुख में फँसा हो, बन्धन में पड़ा हो, उसे परमात्मा के दर्शन का लाभ न मिला हो, तो वह अपने शिष्य को प्रभु के दर्शन कैसे करा सकता है? शब्दब्रह्म और नादब्रह्म में निष्णात् सद्गुरुदेव का आश्रय लो। बहुत स्वतंत्र मत फिरो। स्वतंत्रता पतन की ओर ले जाती है। अपने माता पिता के अधीन रहना, किसी सन्त के अधीन रहना। यदि माया से तरने की इच्छा हो, तो गुरुदेव के चरणों का आश्रय ग्रहण करो और उनकी आज्ञा के अनुसार साधन एकत्र करो। किसी के धर्म की निन्दा मत करो।

जिसे माया से तरना है, उसे दिन में अधिक नहीं तो कम से कम चार घण्टे मौन रहकर शान्ति से भक्ति करनी चाहिए। जीभ से न बोलना साधारण मौन हैं मौन में मन से भी मत बोलना। जो मन से बोलता है वह उसे भंग करता है। बहुत से लोग मौना धारण करते हैं, किन्तु लिखकर बताते हैं कि आज मेरा मौन है। लिखना ही तो बोलना माना जाएगा। कुछ लोग मौन के समय आँख से इशारा करते हैं। वह भी बोलने जैसा ही है। जो मन से भी न बोले, वह सच्चा मौन है। इसलिए माया से पार उतरने के लिए नियम से मौन रखकर प्रभु को स्मरण करने की टेव डालो। इसके लिए प्रेम से परमात्मा के नाम का कीर्तन करो और सभी इन्द्रियों से ब्रह्मचर्य का पालन करो।

राजा ने प्रश्न किया कि महाराज, यह जीव चेतन है और माया जड़ है। तो फिर जड़-चेतन की यह गाँठ किस प्रकार पड़ गई और जीव का माया के साथ कैसे सम्बन्ध हुआ?

शुकदेवजी महाराज सावधान करते हुए कहते हैं, "अरे, माया को छोड़ो और परमात्मा को पकड़ो। तभी माया का स्वरूप समझ में आएगा। जीव माया को पकड़ रखता है और माया का ही विचार करता है। माया को छोड़े बिना माया समझ में नहीं आती।

एक भाई पेड़ के नीचे बैठे थे। अचानक एक साँप ऊपर से उनकी गोद में गिरा। साँप गोद में पड़ने से वे विचार करेंगे कि यह गोद में कहाँ से आकर गिरा? यह यहाँ कैसे आया? यदि वह ऐसा विचारने लगे, तो उसे सर्पदंश होगा। इसलिए पहले तो साँप को फेंक देना चाहिए उससे दूर हो जाना चाहिए। इसके बाद यह सोचना चाहिए कि वह कहाँ से आया?

माया सर्प के समान है। जिस प्रकार सर्प को फेंकने के बाद विचार करते हो उसी प्रकार पहले माया छोड़ो और परमात्मा के पकड़ो। इसके बाद ही माया का स्वरूप पहिचाना जाएगा।

यर्ह्यब्जनाभचरणैषणयोरुभक्तया चेतोमलानि विधमेद् गुणकर्मजानि।
तस्मिन् विशुद्ध उपलभ्यत आत्मतत्वं साक्षाद् यथामलदृ शोः सवितृप्रकाशः॥

(११-३-४०)

जिसे माया से छूटने की इच्छा हो उसे सूर्योदय और सूर्यास्त के समय सावधानी रखनी चाहिए। सूर्योदय के समय दूसरा कोई काम नहीं करना चाहिए। हाथ जोड़कर सूर्यनारायण के सामने खड़ा होना चाहिए। तुम जिस देवता की पूजा करते हो, वह सूर्यनारायण में ही विराजमान हैं, ऐसी भावना करके तेजोमय मण्डल के साथ इष्टदेव का ध्यान करना चाहिए। सूर्यास्त के समय बाहर भटकना नहीं चाहिए। सूर्य जब अस्त की ओर जाता है, तब घर में बैठकर परमात्मा के सामने दीपक जलाओ, कीर्तन करो, ध्यान करो। प्रत्येक इन्द्रिय का संयम करो।

सूर्य के अस्त-काल में ब्राह्मण लोग सायं सन्ध्या करते हैं। आज के सभ्य लोग तो कुछ मानते ही नहीं हैं। सायंकाल होने पर ताला बन्द कर बाहर भटकने जाते हैं। जो सायंकाल बाहर भटकते हैं, उनकी बुद्धि बिगड़ती है। सूर्योदय और सूर्यास्त के समय शान्ति से बैठकर भगवान् का कीर्तन करो और दीपक जलाकर पूजन करो। भगवान् से कहो कि आपको दीपक की आवश्यकता नहीं है, पर मुझे उसकी आवश्यकता है। आप प्रकाशमय हैं। आप मुझ पर ऐसी कृपा कीजिए कि मुझ में कभी अन्धकार न आ पाए।

वासना और अज्ञान ये दोनों अन्धकार हैं। भगवान् से प्रार्थना करो कि मुझ में प्रकाश बना रहे इसलिए मैं दीपक जला रहा हूँ। तुम प्रभु के समक्ष दीपक जलाओगे, तो तुमको लाभ होगा। उससे भगवान् को कोई लाभ नहीं है। परमात्मा जहाँ विराजमान होते हैं, वहाँ अन्धकार आ ही नहीं सकता। परमात्मा प्रकाशमय हैं।

उसके बाद कर्म और विकर्म का स्वरूप समझाया गया है सत्, त्रेता, द्वापर और कलियुग का रहस्य समझाया गया है।

गुप्तोऽप्यये मनुरिलौषधयश्च मात्स्ये क्रौडे हतो दितिज उद्धरताम्भसः क्ष्माम्।
कौर्मे धृतोऽद्रिरमृतोन्मथने स्वपृष्ठे ग्राहात् प्रपंन्नमिभराजममुञ्चदार्तम्।।
संस्तुन्वतोऽब्धिपतिताञ्छ्रमणानृषींश्च शक्रं च वृत्रवधतस्तमसि प्रविष्टम्।
देवस्त्रियोऽसुरगृहे पिहिता अनाथा जघ्नेऽसुरेन्द्रमभयाय सतां नृसिंहे।।
देवासुरे युधि च दैत्यपतीन् सुरार्थे हत्वान्तरेषु भुवनान्यदधात् कलाभिः।
भूत्वाथ वामन इमामहरद् बलेः क्ष्मां याच्ञाच्छलेन समदाददितेः सुतेभ्यः।।
निःक्षत्रियामकृत गां च त्रिःसप्तकृत्वो रामस्तु हैहयकुलाप्ययभार्गवाग्निः।
सोऽब्धिं बबन्ध दशवक्त्रमहन् सलंकं सीतापतिर्जयति लोकमलघ्नकीर्तिः।।
भूमेर्भरावतरणाय यदुष्वजन्मा जातः करिष्यति सुरैरपि दुष्कराणि।
वादैर्विमोहयति यज्ञकृतोऽतदर्हान् शूद्रान् कलौ क्षितिभुजो न्यहनिष्यदन्ते।।

(११-४-१८/२२)

इसके बाद नारदजी ने वसुदेवजी को समझाया कि अब समय बहुत कम है। बहुत गई, थोड़ी रही। ऐसा मत मानना कि श्रीकृष्ण मेरा पुत्र है। वे परमात्मा हैं। मृत्यु को सिर पर सवार जानकर पाप छोड़ो।

मैंने ऐसा सुना है कि जिसे फाँसी की सजा दी जाने वाली होती है उससे दो-तीन घण्टे पूर्व सरकार पूछती है कि तुम्हें क्या मिठाई खानी है? क्या किसी से मिलना है? जिसे फाँसी दी

जाने वाली होती है, वह अन्दर से इतना घबराया होता है कि वह स्वादिष्ट मिठाई खाने की इच्छा ही नहीं कर पाता। इसी प्रकार तुम भी मृत्यु को याद रखकर पाप छोड़ो और खूब भक्ति करो।

नारदजी ने वसुदेवजी को समझाया है और उनसे विदा लेकर प्रस्थान किया है।

७९- कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्

यहाँ ब्रह्मादिक देवता द्वारका में आए हुए हैं। वे द्वारकानाथ की स्तुति करते हैं कि अब आप स्वधाम में पधारिए। उसी समय उद्धवजी वहाँ आए। उनको मालूम हो गया है कि अब भगवान् स्वधाम को पधारने वाले हैं। वे बारंबार प्रभु के चरणों में वन्दन करते हैं। और कहते हैं कि मुझे भी आप अपने साथ लेते चलिए। श्रीकृष्ण कहते हैं कि उद्धव तू मुझे प्यारा लगता है; किन्तु नियम मुझे इजाजत नहीं देता। क्या तू मेरे साथ आया था? जीव अकेला आता है और अकेला ही जाता है। हे उद्धव! अब तक मैंने तुझ पर कृपा की है; किन्तु अब तू मुझ पर कृपा करना। ईशकृपा, सन्तकृपा, शास्त्रकृपा और चौथी आत्मकृपा है। तुझे अपने पर ध्यान होना चाहिए। हे उद्धव, यह जीव अनेक बार पति हुआ, पत्नी हुआ, अनेक बालक अपनी गोद में खेलाये और अनेक का विवाह किया। इसके पूर्व जन्म के बालक इस समय कहाँ होंगे? पूर्व जन्म के पति-पत्नी कहाँ होंगे? जीव तो अनादि काल से अपना संसार बनाता आया है। पशु-पक्षियों में भी पति-पत्नी होते हैं। हे उद्धव! तू ही अपना उद्धार कर। तू ही निश्चित कर कि तुझे किसी का पति होना है, न किसी की पत्नी होना है और हमें अब किसी के पेट में नहीं जाना है। मुझे भगवान् के चरणों में जाना है। जब तक तू अपने को नहीं पहचानेगा, तब तक तेरा उद्धार नहीं होगा।

धनवान् लोगों के घर बालकों को पढ़ाने के लिए मास्टरजी आते हैं। बालक यह समझते हैं कि मेरे पिताजी ने नौकर रखा है। इससे वे कुछ पढ़ते नहीं। उनको परीक्षा में उत्तीर्ण होने की लगन ही नहीं होती। मास्टरजी पढ़ाने आते हैं, सब अनुकूलताएँ हैं। फिर भी वे उत्तीर्ण नहीं होते। धनवान् मनुष्य का बालक यह सोचता है कि बाप की पेढ़ी अच्छी तरह चल रही है। मैं यदि अनुत्तीर्ण ही हो जाऊँ तो कोई हंर्ज नहीं है। मेरे घर में किस बात की कमी है? लेकिन गरीब के घर कौन पढ़ाने आता है? उसके घर में कोई अनुकूलता भी नहीं होती; किन्तु उसे लगन रहती है कि मैं उत्तीर्ण हो जाऊँ। वरना अनुत्तीर्ण होने पर खाना नहीं मिलेगा। जिसको परीक्षा में उत्तीर्ण होने की इच्छा होती है, वही अपना पाठ ठीक तरह तैयार करता है। जिसे परीक्षा में उत्तीर्ण होने की तीव्र इच्छा नहीं होती, वह अपना पाठ नहीं तैयार करता।

आत्मनो गुरुरात्मेव पुरुषस्य विशेषतः।
यत् प्रत्यक्षानुमानाभ्यां श्रेयोसावनुविन्दते।।

उद्धव, तुझे अपने कांम में लगन होनी चाहिए। तुझे संसार-सुख से घृणा नहीं होती। तू ऐसा निश्चय कर कि मुझे फिर इस संसार में नहीं आना है, मुझे भगवान् के चरणों में स्थान लेना है। हे उद्धव, तू देख रहा है कि तुझे जो मेरे बिना दिखाई देता है, वह क्षण-क्षण बदलता रहता है। जगत् सत्य नहीं है, परमात्मा सत्य है। तू जिस प्रकार का प्रश्न मुझसे करता है, वैसा ही प्रश्न यदुराजा ने गुरु दत्तात्रेय से किया था।

दत्तात्रेय स्वामी सह्यादि की तलहटी में विराजमान हैं। उनके शरीर पर लंगोटी छोड़कर कोई वस्त्र नहीं है। वे आनन्दमग्न हैं। उसी समय यदुराजा वहाँ पहुँचते हैं और पूछते हैं कि तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है। फिर भी तुम किस प्रकार आनन्दमग्न हो। मेरे घर में तो सब कुछ है। फिर भी मुझे शान्ति नहीं है।

गुरु दत्तात्रेय स्वामी ने उपदेश किया, "इस संसार में दो ही पदार्थ हैं। एक जड़ है, दूसरा चेतन। मैं निश्चित रूप से जानता हूँ कि जड़ से चेतन श्रेष्ठ है। जो दिखाई देता है उसे जड़ कहते हैं और जिसे दिखाई देता है, उसे चेतन कहते हैं। जो क्षण-क्षण बदलता है वह जड़ है और जिसका रहस्य सदा एक समान बना रहता है, वह चेतन है। चेतन का परिवर्तन नहीं होता, जड़ का परिवर्तन होता रहता है। आनन्द किसी जड़ वस्तु में नहीं होता। आनन्द तो चेतन परमात्मा का स्वरूप है। वह चैतन्य के रूप में मेरे अन्दर है। मैं आनन्द में निवास करता हूँ। मुझे कभी सुख-दुःख की अनुभूति नहीं होती। मैं आनन्द रूप परमात्मा से प्रेम करता हूँ। इसीलिए मैं जहाँ जाता हूँ वहीं मुझे आनन्द मिलता है मुझे जो ज्ञान मिला है, उसका एकमात्र कारण है अपनी दृष्टि को गुणमय रखना। मैं किसी का दोष नहीं देखता। ब्रह्माजी की सृष्टि गुण-दोष से भरी हुई है। फिर भी प्रत्येक में ईश्वर प्रदत्त कोई एकाध सद्गुण होता है। मैं उस सद्गुण पर विचार करता हूँ। जिसमें मुझे गुण दिखाई देता है, उसे मैं अपना गुरु बनाता हूँ। मेरे अनेक गुरु हैं।

शिक्षा-गुरु तो अनेक हैं, किन्तु दीक्षा-गुरु एक होता है। जहाँ उन्हें कोई सद्गुण दिखाई दिया है, वहाँ उस सद्गुण के लिए उसे गुरु बनाया है।

पृथिवी वायुराकाशमापोऽग्निश्चन्द्रमा रविः।
कपोतोऽजगरः सिन्धुः पतंगो मधुकृद् गजः।।
मधुहा हरिणो मीनः पिंगला कुररोऽर्भकः।
कुमारी शरकृत् सर्प ऊर्णनाभिः सुपेशकृत्।।

एते मे गुरवो राजंश्चतुर्विंशतिराश्रिताः।
शिक्षा वृत्तिभिरेतेषामन्वशिक्षमिहात्मनः।।

(११-७-३३ से ३५)

गुरुदत्तात्रेय ने कहा कि मैंने धरती को भी गुरु माना है। धरती मुझे यह उपदेश देती है कि कम खा और गम खा। जो गम खाता है उसका मन शांत रहता है और उसका मन रोगी नहीं होता। जो कम खाता है उसका शरीर रोगी नहीं होता। धरती माता मुझे सिखाती है कि कुछ लोग मुझमें गड्ढा खोदते हैं, कुछ लोग मुझ पर अपना पैर पटकते हैं किन्तु मैं कहती हूँ कि मेरा बेटा अपना होश भूल गया है। वह भले ही क्रोध में पैर पछाड़ता है किन्तु मुझे कभी क्रोध नहीं आता। धरती माँ सब सहन कर लेती हैं। यदि धरती माँ को क्रोध आ जाये तो हम सबका अच्युत्तम केशवम् हो जाये मैंने धरती माँ से यह तत्व सीखा है।

मैंने जल को गुरु माना है। मेरा स्वभाव बरफ जैसा शीतल रहता है मैंने अपना स्वभाव जल के समान मधुर रखा है। जिसका स्वभाव ठंडा है वह जहाँ जाता है वहीं ठंडक मिलती है।

मैंने अग्नि को गुरु माना है। अग्नि में यदि विष्ठा भी पड़ जाये तो वह उसे भी जलाकर भस्म कर देती है। मैं अपने पापों को विवेक–अग्नि में जलाकर भस्म करता हूँ। मैं किसी का पाप सुनता नहीं। यदि उसे कभी सुन भी लूँ तो मन में नहीं रखता। दूसरे का पाप मन में रखने से मन दूषित हो जाता है। जीवमात्र कुछ पाप करता ही है। उस पर विचार करने की मुझे क्या आवश्यकता है पानी गड्ढे में ही उतरता है अर्थात् उसका स्वभाव ही ऐसा है। मैं किसी का पाप मन में नहीं रखता।

मैंने वायुदेव को गुरु माना है। वायुदेव इत्र की दुकानों में सुगन्ध नहीं लेते और न किसी गंदे स्थान से दुर्गन्ध लेते हैं। वे सुगन्ध और दुर्गन्ध इन दोनों को छोड़कर फिरते हैं। तुम भी जगत् में मान और अपमान की परवाह किये बिना फिरते रहना। जिसको मान लेने की इच्छा होती है उसका मन अशांत रहता है। मान भी बुरा और अपमान भी बुरा इसीलिए संत लोग जगत् में मान और अपमान दोनों की चिंता छोड़कर जगत् में भ्रमण करते हैं। जिस प्रकार वायुदेव सुगन्ध और दुर्गन्ध को छोड़कर फिरा करते हैं। मैंने वायुदेव से यह तत्व सीखा है। मैंने ईयण को अपना गुरु माना है। ईयण भमरी का चिन्तन करते–करते भमरी बन जाती है। भमरी के साथ चोट सहन करती–करती भय से ईयण भमरी का ही ध्यान करती है। इसीलिए ईयण इसी जन्म में भमरी बन जाती है। यदि ईयण भमरी का चिंतन करती–करती भमरी बन जाती हो तो यह जीव ब्रह्म का चिन्तन करते–करते ब्रह्म रूप बन जाये तो क्या आश्चर्य?

मैंने मधुमक्खी को गुरु बनाया है और उससे यह सीखा है कि अधिक संग्रह मत करो। अधिक संग्रह करने से मृत्यु होती है।

मैंने भ्रमर को गुरु बनाया है। कमल के मकरन्द का पान करते-करते भ्रमर इस प्रकार तन्मय हो गया था कि सूर्यास्त के बाद कमल बंद हो गया और उसके अन्दर बंद होने वाला भ्रमर विचार करने लगा, "रात गुजर जाएगी, सूर्योदय होगा, और कमल खिलेगा तब मैं बाहर निकलूँगा।" भ्रमर के दांत में ऐसी शक्ति है कि वो लकड़ी में भी छेद बना सकता है, किन्तु वह कोमल कमल को छेद नहीं सका। आधी रात को वहाँ एक हाथी आया। उसने कमल को उखाड़ लिया और अपने पैर के नीचे कुचल डाला उसके अन्दर बंद भ्रमर मर गया। यह संसार कमल के समान है। यह जीव भ्रमर के समान उसमें फंसा हुआ है। प्रभु ने मनुष्य को ऐसी बुद्धि और शक्ति दी है यदि वह सावधान हो जाये तो पाप को छोड़ सकता है और सतत भक्ति कर सकता है। भ्रमर के दांत में ऐसी शक्ति है कि वह लकड़ी में भी छेद कर सकता है। परंतु ऐसा होने पर भी कोमल कमल में फँसा रहता है। वह कमल को नहीं तोड़ सकता है। इसी प्रकार मनुष्य भी संसार के विषयों में फँसा रहता है। वह उसे छोड़ नहीं सकता। काल उसे पैर के नीचे कुचल डालता है। काल–हाथी इस जीव को कुचल डाले उसके पहले हीं सावधान होना जरूरी है।

मैंने अपने जीवन में अनेक गुरुओं से अनेक तत्व जीवन में ग्रहण किया है।

गुरु दत्तात्रेय स्वामी ने संक्षेप में उपदेश दिया है। वह सुनकर यदुराजा को अतिशय आनन्द प्राप्त होता है वे उनके चरणों में साष्टाँग वन्दन कर जय-जयकार करते हैं।

इसके बाद भगवान् ने उद्धव को साधक-धर्म का तत्व समझाया है। वे यह भी समझाते हैं कि सिद्ध महात्माओं की स्थिति कैसी होती है? वह बन्धन और मोक्ष की महिमा-कथा है।

बद्धो मुक्त इति व्याख्या गुणतो मे न वस्तुतः।
गुणस्य मायामूलत्वान्न मे मोक्षो न बन्धनम्॥ (११-११-१)

संसार रूपी वृक्ष में जीव और शिव दो पक्षी बैठे हैं। उस रूपक की कथा भी सुनाई।

परा; पश्यन्ति, मध्यामा और वैखरी इस प्रकार चार तरह की वाणियों का रहस्य समझाया है और सन्तों का लक्षण भी समझाया है।

प्रायेण भक्तियोगेन सत्संगेन विनोद्धव।
नोपायो विद्यते सध्र्यङ् प्रायणं हि सतामहम्॥ (११/११/४८)

उद्धव ने प्रश्न किया है कि मन विषयों में जाता है या विषय मन में आते हैं? भगवान् समझाते हैं, ऐसा प्रश्न सनत्कुमारजी ने किया था। उस समय हंसनारायण की उत्पत्ति हुई थी।

हंसनारायण ने उपदेश दिया कि पहले मन विषयों में जाकर विषयाकार बनता है। उसके बाद विषयाकार मन में विषय स्थिर हो जाता है। हे उद्धव! मन में निवास करने वाला संसार बहुत रुलाता है। तू अपने मन से संसार को निकाल डालना और अपने मन को सम्हाल रखना।

दृष्टिं ततः प्रतिनिवर्त्य निवृत्ततृष्णस्तूष्णीं भवेन्निजसुखानुभवो निरीहः।
संदृश्यते क्व च यदीदमवस्तुबुद्ध्या त्यक्तं भ्रमाय न भवेत् स्मृतिरानिपातात्॥

(११/१३/३५)

जो तन और धन को सम्हाले, वह संसारी जीव है। जो मन को सम्हालता है, वह सन्त है। सन्त लोग तन और धन की अपेक्षा मन को अधिक सम्हालते हैं। यदि मन अधिक दूषित हो जाय तो यह जन्म तो बिगड़ेगा ही। तदुपरान्त दूसरा जन्म भी दूषित होगा। दूसरे जन्म में इसी मन के साथ जन्म लेना है। इसलिए हे उद्धव! तू मन को अधिक सम्हालना और अपनी वाणी पर नियन्त्रण रखना। मन जब मिलना चाहेगा तब भगवान् में ही मिल जाता है। वह संसार के विषयों में नहीं मिलता। मन इस संसार के विषयों में कुछ समय फिरता है। फिर वहाँ से हट जाता है। फूल में कुछ देर के लिए मन जाएगा, किन्तु उसमें मिल नहीं जायेगा। जब यह फूल कुम्हला जाता है, तब मन उससे दूर हट जाता है। मन साँसारिक विषयों में नहीं मिलता। मन जब मिलता है, तब भगवान् में ही मिलता है।

विषयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते।
मामनुस्मरतश्चितं मय्येव प्रविलीयते॥

(११-१४-२७)

यदि दूध में चीनी डालो तो वह उसमें मिल जाएगी; किन्तु यदि कोई दूध में पत्थर डालकर उसे खूब औटाए तो भी उसमें नहीं मिल सकेगा। इसका कारण यह है कि पत्थर और दूध दोनों विजातीय तत्व हैं। चीनी और दूध सजातीय तत्व हैं। इसलिये वे परस्पर मिल जायेंगे। चीनी में मीठापन है और दूध में भी मीठापन है सजातीय, सजातीय में मिलते हैं। हे उद्धव! यह मन जड़ नहीं है। इसीलिए संसार के किसी जड़ पदार्थ में यह मन नहीं मिलता। मन यदि मिलेगा तो चेतन परमात्मा के स्वरूप में ही मिलेगा। विषयों में तो मन फँसता है, उसमें मिलता नहीं है। यदि मन परमात्मा का ध्यान करे तो उसमें लीन हो जाता है।

तस्मादसदभिध्यानं यथा स्वप्नमनोरथम्।
हित्वा मयि समाधत्स्व मनो मद्भावभावितम्॥ (११-१४-२८)

इसके बाद श्रीकृष्णजी ने उद्धवजी को ध्यानयोग का मर्म समझाया है कि एक आसन पर बैठकर आँखों को स्थित करने की आदत डालो। इसके बाद मन स्थिर होगा। एक-एक अंग का चिन्तन करना ही ध्यान है। सर्वांग का चिन्तन करना धारणा है। हे उद्धव! जैसे-जैसे यह जगत् भूलने लगता है, वैसे-वैसे आनन्द बढ़ने लगता है। आनन्द इस जगत् में नहीं है; बल्कि इसकी विस्मृति में है। यह जगत् सुख-दुःख से परिपूर्ण है। जगत् के भूलने पर आनन्द मिलता है। यह प्रतिदिन का अनुभव है कि निद्रा में शान्ति मिलती है। क्योंकि जगत् के होने पर भी निद्रा में उसकी स्मृति नहीं रहती। निद्रा-काल में संसार इस मन से बाहर निकल जाता है। इसीलिए निद्रा में शान्ति मिलती है। हे उद्धव! जिस प्रकार निद्रा में यह मन जगत् को भूल जाता है, उसी प्रकार जाग्रत अवस्था में भी मन जगत् को भूल जाए और परमात्मा में तन्मय हो जाए, तो आनन्द मिलता है। ध्यानकर्ता ध्यान की तन्मयता में अपने आपको भूल जाता है और आत्मा इस देह से पृथक् हो जाती है। जब आत्मा का देह-सम्बन्ध टूटता है, तब ब्रह्म सम्बन्ध स्थापित होता है जिससे ध्यानकर्ता ध्येय में मिल जाता है।

एवं समाहितमतिर्मामेवात्मानमात्मनि।
विचष्टे मयि सर्वात्मन् ज्योतिर्ज्योतिषि संयुतम्।। (११-१४-४५)

इस प्रकार श्रीकृष्णजी ने ध्यानयोग का उपदेश दिया। ध्यानकर्ता को अनेक प्रकार की सिद्धियाँ मिलती हैं। यह कथा भी सुनाई। हे उद्धव! सिद्धि का उपयोग करने वाले की प्रसिद्धि होती है, किन्तु प्रसिद्धि से पतन भी होता है। ज्ञानी मनुष्य सिद्धि का उपयोग परोपकार के लिए भी नहीं करते।

अन्तरायान् वदन्त्येता युञ्जतो योगमुत्तमम्।
मया सम्पद्यमानस्य कालक्षपणहेतवः।। (११-१५-३३)

सिद्धियाँ प्रभु मिलन में विघ्न उपस्थित करने वाली होती हैं। माया गृहस्थ को काम सुख और पैसे में फँसा रखती है। इसलिए गृहस्थ को पैसा और कामसुख छोड़ना बहुत कठिन होता है। साधु को साधना से प्राप्त सिद्धि का मोह छोड़ भक्ति करना बहुत कठिन है।

इसके बाद इस अध्याय में विभूति योग की बात समझाई गई है। तत्पश्चात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का वर्णाश्रम धर्म समझाया गया है।

इसके बाद उद्धवजी ने अनेक प्रश्न किए हैं। उन्होंने पूछा, बड़े से बड़ा दान कौन-सा है? सोना देने से अधिक पुण्य मिलता है या चाँदी देने से? श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा, 'दण्ड न्यास परं

दानम्' सोना-चाँदी का दान तो अच्छा ही है। मैं तुझे अत्यन्त दान बताता हूँ, जो गरीब भी दे सकता है। इस संसार में जो सब दिखाई देता है और सुनाई देता है; वह तत्त्वत: परमात्मा का स्वरूप है। यह भाव अपने मन में लाकर किसी से द्रोह न करो। किसी के लिए बुरा विचार मत करो अथवा खराब शब्द मत बोलो। जो सबमें सद्भाव रखता है, वह बहुत बड़ा दान करता है।

उद्धवजी ने पूछा, महाराज, बड़े से बड़ा तप कौन-सा है? जंगल में रहने वाला बड़ा तपस्वी है? क्या दाढ़ी-जटा बढ़ाने वाला बड़ा तपस्वी है? भगवान् ने कहा उद्धव, यह सब ठीक है। जिसके मन में काम न आए और जो मन से काम-त्याग करे वह महान् तपस्वी है। चाहे वह घर में रहता हो या जंगल में रहता हो। जो मन में काम को नहीं आने देता और मन से ही काम-त्याग करता है, उसे मैं तपस्वी मानता हूँ। 'कामस्तागस्तप: स्मृतम्।'

उद्धवजी ने प्रश्न पूछा, दरिद्र किसे कहते हैं? भगवान् ने उत्तर दिया उद्धव जो ऐसा मानकर मन में सन्तोष करता है कि प्रभु ने मुझे मेरी योग्यता की अपेक्षा अधिक दिया है, बहुत अधिक दिया है वही धनवान् है। जिसे प्राप्त स्थिति में सन्तोष नहीं है, वह दरिद्र है।

उद्धव ने प्रश्न किया कि मूर्ख किसे कहते हैं? भगवान् ने उत्तर दिया, उद्धव जो ऐसा समझकर शरीर-सुख में फँसा रहता है कि मैं ही शरीर हूँ, वह मूर्ख है। आत्मा इस शरीर से अलग है। जो पुस्तक में लिखा गया ज्ञान अपने मस्तक में रखकर बोला जाए, वह साधारण ज्ञान है। जो जितना जानता है उतना अपने जीवन में उतारता है, वही सच्चा ज्ञानी है। तुम जो जानते हो, वह अपने जीवन में उतारो और अपने ज्ञान के अनुसार क्रिया करो। जो ज्ञान के अनुसार क्रिया नहीं करता उसका ज्ञान क्रिया के अनुसार हो जाता है। हे उद्धव जो ज्ञान के अनुसार क्रिया करे, वही ज्ञानी है।

उद्धवजी ने प्रश्न किया, "सच्चा धन क्या है?" भगवान् ने उत्तर दिया, "उद्धव, धर्म ही सच्चा धन है। 'धर्म इष्टं धनं नृणाम्'।

उद्धवजी ने पूछा, "स्वर्ग किसे कहते हैं? और नरक किसे कहते हैं?" भगवान् ने बताया, 'हे उद्धव, यदि मन में छल-कपट करने की इच्छा हो, मन में विकार वासना जागे, मन दूषित हो तो समझना चाहिए कि मैं नरक में पड़ा हूँ। यदि मन में सात्विक भाव जागे, परमात्मा का स्मरण करने से मन द्रवित हो, परोपकार में शरीर घिसने की इच्छा हो और अभिमान मरे, तो समझना चाहिए कि मैं स्वर्ग में हूँ।

उद्धवजी ने प्रश्न किया, "महाराज, जीव किसे कहते हैं और ईश्वर किसे कहते हैं? भगवान् बोले, "जो परतंत्र है, वह जीव है और जो स्वतंत्र है, वह ईश्वर है। जो माया के आधीन

है, वह जीव है और माया जिसके आधीन है, वह ईश्वर है। जो देह का अभिमान रखता है, वह जीव है और जिसे समष्टि ब्रह्माण्ड का अभिमान है, वह ईश्वर है। जीव अनेक हैं, ईश्वर एक है।

उद्धवजी पूछते हैं, ''वीर कौन है?''

भगवान् कहते हैं, ''जो बाहर के शत्रु को मारता है, वह वीर नहीं है। जो अन्दर के शत्रु को मारता है और विषयेन्द्रिय को वश में करता है, वह वीर है।

उद्धवजी प्रश्न करते हैं, ''जीव का मित्र कौन है?''

भगवान्–''सभी का मित्र मैं हूँ। मैं सभी जीवों के साथ निःस्वार्थ भाव से प्रेम करता हूँ।''

उद्धवजी ने पूछा, ''गुण किसे कहते हैं और दोष किसे कहते हैं?'' भगवान् ने कहा, ''दूसरे के दोषों पर विचार करना ही सबसे बड़ा दोष है। अपने दोष का स्मरण कर अपना जीवन सतत सुधारने का प्रयत्न करना ही गुण है। भले ही जगत् धिक्कारे, तिरस्कार करे या कुछ भी करे; किन्तु श्रेयार्थी अपना उद्धार करे यह इष्ट है। उद्धव, तुम जगत् के पीछे मत पड़ना, मेरे पीछे पड़ना। कोई इस संसार को सन्तुष्ट नहीं कर सका है। जो परमात्मा को सन्तुष्ट करता है, वही संसार को संतुष्ट कर सकता है। जो परमात्मा को जानता है, उसे कुछ जानने को शेष नहीं रहता। अपने मन को निन्दा स्तुति में शान्त रखो।

उद्धवजी ने कहा, ''महाराज, खोटी निन्दा क्यों सहन नहीं होती?'' भगवान् ने बताया, ''निन्दा खरी हो या खोटी, यदि वह सहन न हो तो यह मानना कि अभी भक्ति का रंग नहीं चढ़ा है। जिसको अपनी निन्दा सहन न हो, उसका ज्ञान कच्चा है। निन्दा-स्तुति तो शब्द रूप हैं यह शब्द आकाश में जाता है। वह आत्मा का धर्म नहीं है, बल्कि आकाश का धर्म है। वह शुद्ध आत्मा को नहीं स्पर्श करता। उद्धव, सूर्यनारायण न तो किसी की निन्दा करते हैं, न किसी की स्तुति करते हैं। सूर्यनारायण तेज़ोमय हैं। वे जगत् को पहचानते हैं कि इसमें कौन सज्जन और कौन दुर्जन है? कौन भागवत की कथा सुनता है और कौन चप्पल चुराकर ले जाता है। फिर भी सूर्यनारायण कभी यह नहीं कहते कि यह सज्जन है और यह दुर्जन है। संसार को पहचानना, किन्तु इसका बहुत बखान मत करना। इस संसार में कुछ खराब नहीं है और श्रीकृष्ण को छोड़कर कुछ अच्छा भी नहीं है। जगत् की निन्दा करने से मन दूषित होता है और जगत् का बहुत वर्णन करने से भी मन दूषित होता है।'' यह समझाने के बाद भगवान् ने कदरी ब्राह्मण की कथा सुनाई। कदरी ब्राह्मण को जब लोगों ने बहुत सताया, तब वह अपने मन को समझाता है–

नायं जनो मे सुखदुःखहेतुर्न देवतात्मा ग्रहकर्मकालाः।
मनः परं कारणमामनन्ति संसारचक्रं परिवर्तयेद् यत्॥ (११-२३-४३)

''यह सिद्धान्त सत्य है कि मैं सब में स्थित हूँ और मुझमें जो चैतन्य है, वह सब में व्याप्त है तो फिर मेरी निन्दा कौन करता है? यदि मेरी उँगली मेरी आँख में जाए तो उस उँगली को कौन सजा देता है? यदि मेरा दाँत मेरी जीभ को कुचले, तो वह उसे सहन करती है। एक ही परमात्मा सबमें है और जीव अपने किए गए कर्मों का फल भोगता है। मन सुख-दुःख की कल्पना करता है। मन माने तो सुख है और न माने तो दुःख है। यह सारा खेल मन करता है। मैं तो साक्षी भाव से उसे देखता रहता हूँ।'' इस प्रकार कदरी ब्राह्मण ने अपने को समझाया।

इसके बाद भगवान् ने उद्धव को अनुलोम, प्रतिलोम विधि से सृष्टि की उत्पत्ति-स्थिति की प्रक्रिया समझाई। उन्होंने प्रलय का क्रम बताया और सत्वगुण-रजोगुण तथा तमोगुण का लक्षण समझाया। वे उद्धवजी को सावधान करते हुए कहते हैं, ''उद्धव, परमात्मा के कृपा करने पर ही सत्संग मिलता है। फिर भी कुसंग से दूर रहना तुम्हारे वश की बात है। यदि सत्संग न मिले, तो कोई हर्ज नहीं। कुसंग से दूर रहना। अति कामी का संग कुसंग कहलाता है। जिसे पाप का डर नहीं लगता, और जिसे प्रभु से प्रेम नहीं है ऐसे जीव का संग ही कुसंग है। उद्धव, कुसंग से यह जीव जल्दी दूषित होता है। संग का प्रभाव पशु- पक्षियों पर भी पड़ता है। क़साई के घर का तोता गाली देता है और वैष्णव के घर का तोता 'रघुपति राघव राजाराम' बोलता है। हे उद्धव! कोई जन्म से नहीं बिगड़ता, संग से बिगड़ता है। संग से ही जीवन सुधरता है। जो ज्ञान में, भक्ति में वैराग्य में तुम्हारी अपेक्षा आगे बढ़े हैं, ऐसे महापुरुषों का स्मरण करो और ऐसे महापुरुषों को अपनी आँखों में और अपने मन में रखो। संसार-सुख में लिपटे हुए किसी विलासी गृहस्थ का ध्यान न करो। जिसका मन लौकिक सुख में फँसा हुआ है, वह दया का पात्र है। उसे सच्चे सुख की खबर नहीं होती।

निमज्ज्योन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायनम्।
सन्तो ब्रह्मविदः शान्ता नौर्दृढेवाप्सु मज्जताम्॥ (११-२६-३२)

हे उद्धव, जो ज्ञान, भक्ति और वैराग्य में आगे बढ़े हैं, उनका सत्संग करो। इसके बाद श्रीकृष्णजी ने ऐल राजा की कथा सुनाई। फिर सेवा-पूजा की विधि बताई। फिर सांख्य योग की प्रक्रिया का वर्णन किया। आत्मा शुद्ध चेतन है; किन्तु प्रकृति के धर्मों के आरोप के कारण वह किस प्रकार बन्धन में आ जाती है, इसको समझाया। उद्धवजी को भागवत धर्म का उपदेश भी किया। समाप्ति में श्रीकृष्ण ने उद्धवजी से कहा, ''अपने घर के लोगों को धन तो देना, किन्तु मन मुझे देना। घर के लोग तुम्हारा मन माँगते भी नहीं हैं। वे तुम्हारा धन माँगते हैं वे तुम्हारा तन भी माँगते हैं; किन्तु परमात्मा तुमसे मन माँगता है। उद्धव, यह मन देने लायक कोई पुरुष नहीं है; कोई स्त्री भी नहीं है। इसलिए तुम अपना मन मुझे ही देना। तू अपना धन देश को, समाज को और

कुटुम्ब को देना; किन्तु याद रखना कि मन देने लायक कोई मनुष्य नहीं है। जो मनुष्य को अपना मन देता है, उसका मन दूषित हो जाता है और वह दुःखी होता है। कभी-कभी कोई मनुष्य ऐसा कहता है कि इन लोगों ने मेरा मन खट्टा कर दियां है। मैं पूछता हूँ कि तुमने अपना मन दिया ही क्यों? मन देने लायक तो एक परमात्मा है। उद्धव तू इसे मत भूलना कि मैं सबमें निवास करता हूँ। अब तू सर्वान्तर्यामी नारायण की शरण में जा। कुछ समय में ही द्वारकापुरी समुद्र में डूब जाएगी। मेरी इच्छा है कि तू जल्द ही बदरीकाश्रम चला जा और वहाँ ध्यान कर।

उद्धव बारंबार वन्दन करते हैं–

नमोऽस्तु ते महायोगिन् प्रपन्नमनुशाधि माम्।
यथा त्वच्चरणाम्भोजे रतिः स्यादनपायिनी॥ (११-२९-४०)

उद्धव ने कहा कि आपने थोड़े समय में अच्छा ज्ञान दिया है। मैं आपकी शरण में आया हूँ। मैं कभी अकेला किसी जगह पर नहीं गया हूँ। आप चलिए, तो मैं भी आपके पीछे-पीछे चलूँगा। भगवान् ने कहा, "उद्धव, तेरे हृदय में चैतन्य रूप से मैं ही स्थित हूँ। तू मेरा जहाँ ध्यान करेगा, वहीं मैं प्रकट हो जाऊँगा। तू यह भावना रखना कि श्रीकृष्ण मेरे साथ ही हैं।" उद्धवजी ने कहा कि यह भावना करने के लिए कोई आधार दीजिए। यह सुनकर भगवान् को दया आई और अपनी चरण-पादुका उद्धव को देते हुए उन्होंने कहा, "उद्धव, तू यह चरण-पादुका ले।" इससे उद्धव को बड़ा आनन्द हुआ।

प्रेम में ऐसी शक्ति है कि वह जड़ को चेतन बना देता है। उद्धवजी को उन चरण-पादुकां में श्रीकृष्ण के दर्शन होते हैं। उन्होंने चरण-पादुकाओं को अपने मस्तक पर धारण कर लिया है। श्रीकृष्ण के चरणों में वन्दन कर उद्धव बदरीकाश्रम पहुँचते हैं। बदरीनारायण के पास पाण्डुकेश्वर में अलकनन्दा के किनारे उद्धवजी बैठे हैं। वे आदिनारायण के दर्शन करते-करते परमात्मा के चरण में लीन हो गए हैं। यह कथा एकादश स्कन्ध के उन्नीसवें अध्याय में वर्णित है। तीसवें और इकतीसवें अध्याय में यदुवंश के विनाश की कथा है। महान् सन्त श्री श्रीधर स्वामी ने इन दोनों अध्यायों का विस्तार करने की आज्ञा नहीं दी है। इसलिए इन अध्यायों का बहुत संक्षिप्त वर्णन किया गया है। यादवों में कलह हुआ और उनका विनाश हुआ।

श्री श्रीधर स्वामी ने इस स्कन्ध का उपसंहार बड़ा सुन्दर किया है। भगवान् की इच्छा से यादवों का विनाश हुआ। उस समय परमात्मा प्रभास क्षेत्र में एक पीपल के पेड़ के नीचे विराजमान थे। उस समय दक्षिण भारत में चन्द्रभागा नदी के तट पर पुण्डलीक नाम का एक महान् भक्त था। पुण्डलीक सारे दिन अपने माता-पिता की सेवा करता है और श्रीकृष्ण का स्मरण करता है।

पुण्डलीक बहुत गरीब है। वह प्रतिदिन भिक्षा माँगने जाता है, रसोई बनाता है और माता-पिता को भोजन कराता है। उसके माता-पिता को वृद्धावस्था में अनेक रोग हुए हैं। वृद्धावस्था में मनुष्य का स्वभाव यों ही चिड़चिड़ा बन जाता है। पुण्डलीक के सेवा करने पर भी उसके पिता उसका अपमान करते रहते हैं। वह अपने माता-पिता के सामने कभी जवाब नहीं देता। वह उन्हें बारंबार वन्दन करता है। वह अपने माता-पिता को ही परमात्मा मानता है। उसे बड़ी इच्छा थी कि एक बार द्वारकानाथ के दर्शन करने द्वारका जाऊँ; किन्तु माता-पिता की सेवा छोड़कर वह वहाँ नहीं जा सका। सतत् सेवा और स्मरण से पुण्डलीक का मन शुद्ध हो गया है। उसके शुद्ध मन में एक दिन ऐसा भाव जागा कि मैं तो द्वारका नहीं जा सका; किन्तु द्वारकानाथ श्रीरुक्मिणीजी को साथ लेकर मेरे घर पधारने की कृपा करें। मुझे इन युगल की पूजा करनी है।

पुण्डलीक का श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम बहुत बढ़ गया है। उसे परमात्मा का आकर्षण हुआ। प्रभु ने द्वारकाधीश का उपसंहार किया है। वे रुक्मिणीजी को साथ लेकर चन्द्रभागा नदी के तट पर पंढरपुर में पुण्डलीक के घर पहुँच जाते हैं। पुण्डलीक एक छोटी-सी झोंपड़ी में निवास करता है। चौदहों भुवन के नाथ उसके घर आए हैं। उन्हें देखकर उसका आनन्द मन में नहीं समाता। वह सोचता है कि मैं प्रभु का स्वागत किस प्रकार करूँ? मैं एक दरिद्र ब्राह्मण हूँ। उसने द्वारकानाथ को एक ईंट देते हुए कहा, "आप इस ईंट पर विराजिए। मैं माता-पिता की सेवा करने के बाद आपकी सेवा करूँगा।" माता-पिता के प्रति उसका प्रेम देखकर भगवान् उस पर खूब प्रसन्न हो गए हैं। उन्होंने कहा है, "मैं यहाँ खड़ा हूँ। तू अपने माता-पिता की सेवा कर।"

परमात्मा ईंट पर खड़े हैं। माता की सेवा करने के बाद पुण्डलीक अपने पिता की सेवा करने गया है। वहाँ से लौटते समय उसे विलम्ब हो गया है। खड़े-खड़े परमात्मा की कमर दुःखने लगती है। उस समय प्रभु ने अपने दोनों हाथ कमर पर रख लिये हैं। भगवान् की कमर तो भला क्या दुःखी होगी। फिर भी उन्होंने जगत् को उपदेश दिया है कि मैं तुम्हारे लिए यहाँ खड़ा हूँ। इस संसार-सागर में बड़े-बड़े डूब गए हैं, किन्तु जो मुझे भजता है, उसके लिए यह उतना ही गहरा है, जितना कमर तक पानी है।

प्रमाणं भवाब्धेरिदं मामकानां नितम्बः कराभ्यां धृतो येन तस्मात्।
विधातुर्वसत्यै धृतो नाभिकोशः परब्रह्मलिंगं भजे पाण्डुरंगम्॥

जो श्रीकृष्ण-चरण का आश्रय ग्रहण करता है, जो परमात्मा के सेवा-स्मरण में तन्मय बनता है, वह संसार-सागर में नहीं डूबता। कमर तक पानी होने पर कोई डूब नहीं सकता। जो परमात्मा के चरण का आश्रय ग्रहण करता है, वह अनायास ही तर जाता है उन्होंने जगत् से मानों

यह कहा है कि मैं कहीं गया नहीं हूँ। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करता हुआ यहीं खड़ा हूँ। विठ्ठलनाथजी महाराज सबकी प्रतीक्षा करते हैं और कहते हैं, "जीव मेरा है। मैं जीव मात्र के लिए यहाँ खड़ा हूँ। मैं सन्तों के हृदय में हूँ, भागवत में हूँ।"

भगवान् आज भी प्रत्यक्ष में विराजमान हैं। जहाँ-जहाँ भगवान् का ध्यान होता है, जहाँ-जहाँ वैष्णव परमात्मा के सेवा-स्मरण में तन्मय बनते हैं, वहाँ-वहाँ आज भी वे प्रकट हो जाते हैं। द्वारकानाथ ही विठ्ठलनाथ हैं।

इत्थं हरेर्भगवतो रुचिरावतारवीर्याणि बालचरितानि च शन्तमानि।
अन्यत्र चेह च श्रुतानि गृणन् मनुष्यो भक्तिं परां परमहंसगतौ लभेत॥

(११-३१-२८)

इति एकादश स्कन्ध समाप्त

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीगणेशाय नमः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमद्‌भागवत-रसामृत

द्वादशः स्कन्धः

८०- आश्रयलीला

स्वधामानुगते कृष्णे यदुवंशविभूषणे।
कस्य वंशोऽभवत् पृथ्व्यामेतदाचक्ष्व मे मुने॥ (१२-१-१)

एकादश स्कन्ध मुक्तिलीला है और द्वादश स्कन्ध आश्रयलीला है। मुक्त जीव परमात्मा के चरण का आश्रय ग्रहण करते हैं।

परीक्षित राजा ने पूछा, "मुझे कलियुग का वर्णन सुनने की इच्छा है।"

कलियुग का बहुत कुछ भविष्य वर्णन इस स्कन्ध में किया गया है। कलियुग के आरंभ में वृहद्रथ राजा के वंश का पुरंजय नाम का एक राजा भारत में राज्य करेगा। उसका मंत्री शुनक कपट से उसे मार डालेगा और वह अपने पुत्र प्रद्योत को गद्दी पर बिठाएगा। प्रद्योत के वंश के अनेक राजा राज्य करेंगे। इसके बाद कलियुग में चन्द्रगुप्त राजा का साम्राज्य स्थापित होगा। फिर अशोक राजा आएगा। इसके बाद संगत नाम के राजा का राज्य होगा। इस संग राजा के राज्य से बौद्ध धर्म का प्रचार शुरू होगा। उसके बाद भारत में आंभीर जाति के सात राजा राज्य करेंगे। तत्पश्चात् आठ यवन और चौदह गोरों का राज्य कलियुग में होगा। जैसे-जैसे कलियुग बढ़ेगा, वैसे-वैसे वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था छिंन्न-छिन्न होती जाएगी। कलियुग के विलासी लोग कुल, जाति-गोत्र का विचार किये बिना स्नेह-विवाह या प्रेम-विवाह करेंगे। कलियुग में वर्णसंकर और जातिसंकर अनेक होंगे। कलियुग में ब्राह्मण वेदाध्ययन नहीं करेंगे। वे तपश्चर्या से विहीन होंगे। कलियुग के साधु-संन्यासी पैसा इकट्ठा करेंगे। वे बड़े-बड़े बंगले बनाएँगे और गृहस्थ जैसा जीवन गुजारेंगे। ब्रह्मचारी विलासी बनेंगे। कलियुग के राजा प्रजा का शोषणकर कर-वसूल करेंगे। वे प्रजा की रक्षा नहीं करेंगे, बल्कि भक्षण करेंगे। कलियुग के राजा गायों को बहुत सताएँगे और उनका संहार करेंगे। कलियुग की स्त्रियाँ अति कामी, कपटी और झूँठ बोलने वाली होंगी। कलियुग में पैसे के लिए दो सगे भाई झगड़ा करेंगे। कलियुग की सन्तानें अंपने वृद्ध माता-पिता की सेवा नहीं

करेंगी। भयंकर कलियुग आने पर विष्णुयश नाम के ब्राह्मण के घर कल्कि नारायण का अवतार होगा। कल्कि नारायण कलियुग का उपसंहार करेंगे। कुछ वर्ष बीतने पर सतयुग का आरंभ होगा।

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत्॥
कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥ (१२-३-५१,५२)

कलियुग में दोष तो अनेक हैं; किन्तु एक सबसे बड़ा सद्गुण है। सतयुग में ध्यान-धारणा करने से जो सिद्धि मिलती है, त्रेतायुग में यज्ञ करने से और द्वापर युग में वैदिक-तांत्रिक विद्या से पूजा करने वाले को जो सिद्धि मिलती है वही सिद्धि कलियुग में बहुत प्रेम से परमात्मा के नाम का कीर्तन करने पर मिलती है। कीर्तनादेव कृष्णस्य...कलि परमात्मा के नाम से घबराता है। प्रभु के नाम के साथ ज़ो अतिशय प्रेम करता है, उसको कलि भक्ति में साधक बनता है और सताता नहीं। शुकदेवज़ी महाराज ने राजा को कलि की समाप्ति में चार प्रकार के प्रलय की कथा सुनाई।

नित्यो नैमित्तकश्चैव तथा प्राकृतिको लयः।
आत्यन्तिकश्च कथितः कालस्य गतिरीदृशी॥ (१२-४-३८)

नित्य प्रलय, नैमित्तिक प्रलय, प्राकृतिक प्रलय और आत्यंतिक प्रलय। शुकदेवजी राजा परीक्षित को सावधान करते हुए कहते हैं, राजन्, आज अन्तिम दिन है। अब तक्षक नाग के आने की तैयारी हो गई है। तक्षक शरीर काटेगा, किन्तु आत्मा को नहीं काटेगा। आत्मा तो परमात्मा का अंश है। यह प्रभु के चरणों में जाने वाला है। तू तेजोमय नारायण का ध्यान कर।

विद्यातपः प्राणनिरोधमैत्री तीर्थाभिषेक व्रत दानं जप्यैः।
नात्यन्तशुद्धिं लभतेन्तरात्मा यथा हृदिस्थे भगवत्यनन्ते॥

शुकदेवजी महाराज कहते हैं कि समय तो हो गया है, किन्तु मैं जब तक बैठा हूँ तब तक तक्षक नाग नहीं आयेगा और यदि आ भी जाए तो मेरी नजर उस पर पड़ेगी तो उसका जहर भी मैं अमृत बना दूँगा। मैंने ब्रह्मदृष्टि सिद्ध की है। तेरे मन में कुछ शंका हो तो तू मुझसे प्रश्न कर। यदि तुम्हें अब भी सुनने की इच्छा हो तो मुझसे कह। मैं तुझे कथा सुनाऊँगा। परीक्षित महाराज शुकदेवजी के चरणों में बारम्बार वन्दन करते हैं और कहते हैं, गुरुदेव आपने मुझ पर बड़ी कृपा की। अब मुझ में कोई शंका शेष नहीं है और मुझे कुछ पूछना भी नहीं है। मुझें अब तक्षक नाग से जरा भी डर नहीं लगता। मेरे अन्दर चैतन्य रूप से जो नारायण है वे ही नाग में भी है। आपने मुझे कथा नहीं सुनाई है, बल्कि परमात्मा के दर्शन की आँख दी है और मुझे कृतार्थ किया है।

जिसकी दृष्टि दिव्य होती है, उसकी दृष्टि भी दिव्य बन जाती है। मैं अब चारों ओर नारायण के दर्शन करता हूँ। दाहिनी ओर नारायण हैं, बाई ओर नारायण हैं, आगे नारायण हैं, पीछे नारायण हैं, अन्दर नारायण हैं और बाहर भी नारायण हैं। आपने प्रथम स्कन्ध की कथा कही और मुझे प्रभु के दक्षिण चरण के दर्शन हुए। आपने द्वितीय स्कन्ध की कथा कही उस समय मुझे भगवान् के वाम चरण के दर्शन हुए। तृतीय और चतुर्थ स्कन्ध की कथा सुनने से उनके दो हाथों के दर्शन हुए। पंचम और षष्ठ स्कन्ध की कथा में दो जाँघों के दर्शन हुए सप्तम स्कन्ध की कथा सुनी तो मुझे उनके कटि भाग के दर्शन हुए। अष्टम और नवम स्कन्ध की कथा सुनी तो मुझे परमात्मा के दो स्तनों के दर्शन हुए। आपने मुझे प्रेम रस पिलाया है और पवित्र कर दिया। आपने दशम स्कन्ध की कथा सुनाकर मुझे प्रभु के विशाल वक्षस्थल की झाँकी दिखाई है और एकादश स्कन्ध की कथा सुनाकर मुझे परमात्मा के प्रसन्न मुखारविन्द के दर्शन कराए हैं। भगवान् श्रीकृष्ण प्रेम से मुझे देखते हैं और गाल में धीरे-धीरे हँसते हैं। वे बहुत प्रसन्न दिखाई देते हैं। अब द्वादश स्कन्ध की कथा सुनाकर मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान् अब मुझे बुला रहे हैं, 'तू यहाँ आ जा।'

भगवंस्तक्षकादिभ्यो मृत्युभ्यो न बिभेम्यहम्।
प्रविष्टो ब्रह्म निर्वाणमभयं दर्शितं त्वया॥ (१२-६-५)

आपने मुझे निर्भय बनाया है और सन्देहहीन कर दिया है। मैं अब भगवान् के चरण में जाने वाला हूँ। शुकदेवजी को बहुत आनन्द होता है और वे कहते हैं 'राजन्, तू जैसा बोलता है वैसा मुझे भी दिखाई देता है। तू कृतार्थ हो गया है। तू मेरी कथा बहुत प्रेम से सुनता था। इसलिए मैं अपने श्रीकृष्ण का दर्शन करते-करते बोलता था। तू कथा में बहुत सावधान होकर बैठा था और मैं जगत् को भूलकर, भगवान् में तन्मय होकर कथा कहता था। मैं तेरा उपकृत हूँ कि तूने मेरी कथा बहुत प्रेम से सुनी। तेरे सत्संग में मुझे बहुत आनन्द हुआ है। तू तो भगवान् के धाम में जाने ही वाला है, किन्तु तेरे शरीर को तक्षक नाग डँस करे, यह प्रसंग मुझसे नहीं देखा जाएगा। मेरा काम पूरा हो गया है। मैं अब जाता हूँ। तू मुझे आज्ञा दे। परीक्षित महाराज बारम्बार वन्दन करते हैं और कहते हैं आप महान् पुरुष हैं। आपको जाने की आज्ञा कौन दे सकता है? आपने मुझ पर बहुत बड़ी कृपा की। मैं अत्यन्त आनन्द में हूँ और मेरा मन अत्यन्त शाँत हो गया है। मेरे मन में कोई विकार नहीं है और कोई वासना भी नहीं है। मैं परमात्मा के दर्शन कर रहा हूँ। मेरे मन में एक छोटी-सी इच्छा है कि समाप्ति के अवसर पर मैं अपने सद्गुरुदेव की पूजा करूँ।

परीक्षित राजा ने शुकदेवजी महाराज की पूजा की और उनके चरण में साष्टांग दंडवत् कर कहा, ''मैं शरण में आया हूँ। गुरुदेव आप एकबार मुझे कृपा-दृष्टि से देखिए। मैं अब प्रभु के धाम

में जाता हूँ।'' शुकदेवजी ने राजा के मस्तक पर अपना हाथ रखकर कहा, ''इस जीव का कल्याण हो।'' जिस समय शुकदेवजी का वरदहस्त राजा के मस्तक पर पड़ा उसी समय द्वारकाधीशजी की जय, शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी द्वारकाधीश के दर्शन का लाभ परीक्षित को प्रत्यक्ष रूप से हुआ। राजा को कृतार्थ करने के बाद शुकदेवजी महाराज खड़े हो गए। उनकी कथा सुनने के लिए बड़े-बड़े ऋषि वहाँ आए थे। शुकदेवजी के पूज्य पिता व्यास नारायण भी कथा में बैठे थे। वे उनकी कथा सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, ''यह मेरा पुत्र है; किन्तु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह मुझसे भी अधिक श्रेष्ठ अति सुन्दर कथा कह सकता है, इसका ज्ञान-वैराग्य, इसकी प्रेमलक्षणा भक्ति अलौकिक है।'' व्यासजी और नारदजी जैसे महान् पुरुषों ने उठकर और खड़े होकर कहा, ''श्रीशुकदेवजी महाराज की जय।'' सबने शुकदेवजी महाराज का जय-जयकार किया।

नैमिषारण्य में सूतजी, शौनक आदि ऋषियों को कथा सुनाते हैं और कहते हैं, ''मेरे सद्गुरु शुकदेवजी महाराज हैं। उनका ध्यान इस बात की ओर नहीं हैं कि कौन मुझे वंदन करता है और कौन मुझे मान देता है। शुकदेवजी की ब्रह्माकार वृत्ति स्थिर हो गई है। इसके बाद वे कहाँ गए और किस प्रकार गए यह किसी ने नहीं देखा। शुकदेवजी अदृश्य हो गए।''

समाप्ति में परीक्षित महाराज ने गंगामाता के दर्शन किए और उसमें स्नान किया। वे गंगा-तट पर पवित्र दर्भासन पर विराजमान हुए। सूतजी कहते हैं, ''मैं वहीं बैठा था। मैंने अपनी आँखों से देखा है कि राजा के शरीर से दिव्य तेज निकलकर व्यापक ब्रह्मस्वरूप में लीन हो गया। परीक्षित विमान में बैठकर बैकुण्ठधाम में चले गए। इसके बाद उनके शरीर को तक्षक का दंश हुआ, तक्षक की विषाग्नि में उनका शरीर धक-धक कर जलने लगा। देवों ने पुष्पवृष्टि करते हुए कहा, ''इस भागवत सप्ताह को धन्य है, शुकदेवजी महाराज को धन्य है और राजा परीक्षित को धन्य है। काल-तक्षक के काटने के पहले ही राजा प्रभु के धाम में पहुँच गए। परीक्षित राजा को सद्गति मिल गई है। गंगा-तट पर अपने सद्गुरुदेव श्रीशुकदेवजी महाराज के मुख से मैंने जो कथा सुनी थी वह मैंने यथामति आपको सुनाई। इस कथा में जो दिव्य तत्त्व है, वे मेरे सद्गुरुदेव का प्रसाद है। कथा में यदि कोई दोष होगा तो वह मेरा है। कथा में अनेक प्रमाद हुए हैं, वे सब भी मेरे हैं। मैं आप सबके चरणों में बारंबार वंदना करता हूँ। मुझे श्रीकृष्ण ही अनेक रूपों में दर्शन देते हैं। आप सब परमात्मा के स्वरूप हैं।'' सूतजी ने दीन बनकर और बारंबार वंदना कर क्षमा माँगी है। सन्त लोग कभी सत्कर्म की समाप्ति करते ही नहीं। जिस दिन इस शरीर की समाप्ति हो उस दिन भले ही सत्कर्म की समाप्ति हो जाए। जीवन की अन्तिम श्वास तक परमात्मा श्रीकृष्ण का ध्यान धरो, प्रेम से श्रीबालकृष्णलाल की सेवा करो, परमात्मा के नाम का कीर्तन करो। अंतिम श्वास तक इस शरीर

को परोपकार में लगाओ। परमात्मा की परिपूर्ण कृपा से अपना यह ज्ञानयज्ञ परिपूर्ण होता है। इस ज्ञानयज्ञ में वक्ता पाप करता है और श्रोता भी पाप करता है। इसलिए ज्ञानयज्ञ संपूर्ण सफल नहीं होता। इसलिए सूतजी की आज्ञा है कि प्रायश्चित किया जाए। अपने इष्टदेव के दर्शन मन से करो। भगवान् के चरण में भावपूर्वक वंदन करते हुए, ''हरये नमः, हरये नमः, इस पाँच अक्षर का मंत्र जोर से तीन बार बोलने की आज्ञा दी है। इसे मन में न कहकर जोर से बोलने की आज्ञा दी है।

पतितः स्खलितश्चार्तः क्षुत्वा वा विवशो ब्रुवन्।
हरये नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात्॥ (१२-१२-४६)

ऐसा करने से जाने-अनजाने जो पाप हुआ होगा उसे परमात्मा कृपा कर क्षमा कर देंगे, अपना ज्ञानयज्ञ परिपूर्ण सफल होगा; परमात्मा श्रीकृष्ण सबको सद्बुद्धि देंगे और श्रीबालकृष्णलाल सबका कल्याण करेंगे।

कस्मै येन विभासितोऽयमतुलो ज्ञानप्रदीपः पुरा।
तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा॥
योगीन्द्राय तदात्मनाथ भगवद्राताय कारुण्यत्।
स्तच्छुद्धं विमलं विशोकममृतं सत्यं परं धीमहि॥
नमस्तस्मै भगवते वासुदेवाय साक्षिणे।
य इदं कृपया कस्मै व्याचचक्षे मुमुक्षवे॥
योगीन्द्राय नमस्तस्मै शुकाय ब्रह्मरूपिणे।
संसारसर्पदष्टं यो विष्णुरातममूमुचत्॥
भवे भवे यथा भक्तिः पादयोस्तव जायते।
तथा कुरुष्व देवेश नाथस्त्वं नो यतः प्रभो॥
नाम संकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥ (१२-१३-१९/२०/२१/२२/२३)

इति द्वादश स्कन्ध
श्रीमद्भागवत-रसामृत ग्रंथ संपूर्ण
हरिः ओम् तत्सत्

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणतक्लेषनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥
भागवत-परायण समाप्त हुआ

हम भगवत्परायण बनने का संकल्प करें

पूज्य श्री रामचन्द्रजी डोंगरे महाराज ने हमको भगवत्परायण बनाने के लिए श्रीमद्भागवत परायण पूरा किया है। क्या आपने भगवत्परायण बननें का संकल्प किया?

भगवत्परायण होने का अर्थ है 'सबमें भगवान् बैठा है, ऐसी भावना करके सबके साथ प्रेम से, सद्भाव से और आदर से व्यवहार करना, हृदय को भगवद्भक्ति में सराबोर रखना और घूमते-फिरते अथवा सोते-जागते या कोई भी काम करते समय सतत् भगवद् स्मरणमय बना रहना।

श्रीमद्भागवत में वर्णित अनेक भक्त-चरित्रों की भगवद्-भक्ति इतनी ऊँचाई पर पहुँच गई थी कि उनके लिए भगवान् की प्रीति जीवन-सर्वस्व थी। भक्ति-मार्ग में आने वाली विपत्ति को भी उन्होंने सतत् भगवंत-स्मरण करने वाली संपत्ति के रूप में ग्रहण किया है। इसलिए कुन्तीजी जैसे भक्तों ने वरदान में दु:खों का पहाड़ माँगा था। भीष्म पितामह ने भी बाण-शैय्या की वेदना हँसते-हँसते सहनकर अपना मन-हृदय भगवान् के चरणों में समर्पित कर दिया था। इतना ही नहीं, अपितु आजीवन बन्दी बने वसुदेव देवकी ने भी भक्ति को पराकाष्ठा पर पहुँचाकर प्रभु को पुत्र-रूप में प्राप्त किया था। साथ ही सबके भले में अपना भला देखने नन्दराय और सबको सत्कार्य का यश देने वाली माता यशोदा ने अपने सर्वजन-सद्भाव को पराकाष्ठा पर पहुँचाकर भगवान् के बालस्वरूप को अपने आँगन में क्रीड़ा करने के लिए बुला लिया था।

पूज्य श्री डोंगरेजी महाराज जैसे भगवत्परायण सन्त के श्रीमुख से ये सब भगवत् चरित्रों को श्रवण कर यदि हमारे हृदय की भक्ति इतनी ऊँचाई पर पहुँच जाए, हमारे जीवन में भी भगवत्-प्रीति ही सर्वस्व बन जाए, हम भी विपत्ति को सतत् भगवत्-स्मरण के रूप में ग्रहण करने लगें, हम भी प्रभु द्वारा दी गई परिस्थिति को उनका कृपा-प्रसाद मानकर प्रेम से स्वीकार कर लें, हमारे मन-हृदय प्रभु के चरणों में समर्पित हो जाएँ, हमारी भक्ति भी प्रभु-प्राप्ति की पराकाष्ठा पर पहुँच जाए और हमारा सर्वजन-सद्भाव भी भगवान् को हमारे आँगन में क्रीड़ा करने को ललचा सके, तो कितना अच्छा हो।

यदि हम ऐसा बन सकें तो ही प्रभु-प्रदत्त मानव-देह को सार्थक बना सकते हैं, मानवता को दीक्षित कर सकते हैं और भगवत्परायण होने का बोध देकर विदा होने वाले सन्त के चरणों में सच्ची सद्भाव-दक्षिणा देकर उनके हृदय को सन्तुष्ट कर सकते हैं।

सद्विचार-परिवार
समर्पण विद्यापीठ

पूज्य श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज के श्रीमद्भागवत परायण की पूर्णाहुति के समय भगवत्परायण बनने के संकल्प की सद्भाव-दक्षिणा

१. 'सबमें भगवान बैठा है' इस भावना के साथ सबको हृदय से नमन करूँगा। सबके साथ प्रेम से, नम्रता से और प्रमाणिकता से व्यवहार करूँगा।

२. हृदय को भगवद्भक्ति में सराबोर रखूँगा।

३. घूमते-फिरते, उठते-बैठते, सोते-जागते किसी भी समय भगवद्-स्मरण करता रहूँगा।

४. भगवत्प्रीति प्रीति ही मेरे जीवन का सर्वस्व बनी रहेगी।

५. भक्ति-मार्ग में पड़ने वाली विपत्ति को सतत् भगवद्-स्मरण कराने वाली सम्पत्ति के रूप में मानूँगा।

६. भीष्म पितामह की तरह संकटों की बाण-शैय्या पर सोते-सोते भी मन-हृदय को प्रभु-चरण में समर्पण कर दूँगा।

७. वसुदेव-देवकी तरह अपनी तपस्या-तितिक्षा को ऐसी पराकाष्ठा पर पहुँचा दूँगा कि प्रभु को मेरे पास आना ही पड़े।

८. नन्द-यशोदा की तरह मेरे हृदय में सबकी भलाई के लिए आनन्द की और सबके अच्छे काम के लिए प्रशंसा करने की सर्वजन-सद्भावना को ऐसा व्यापक बनाऊँगा कि भगवान् को भी मेरे आँगन में खेलने का मन हो।

९. मर्यादा पुरुषोत्तम राम की तरह जीवन में विवेकपूर्ण मर्यादा का पालन करूँगा।

१०. रामायण के कर्त्तव्यनिष्ठ पात्रों की तरह सच्ची कर्त्तव्य-परायणता का आचरण करूँगा। जीवन के हर कार्यक्षेत्र में प्रतिपल मानवता को मँहकाऊँगा।

११. रामायण के राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न जैसा परस्पर त्यागपूर्ण बन्धु-प्रेम अपने भाइयों के प्रति भी रखूँगा। भाई पर कभी मुकदमा नहीं करूँगा। मुकदमा करके दोनों पक्ष बरबाद न हों, इसके लिए कुछ अधिक भाग देकर उसके साथ सद्भावपूर्ण समाधान करने के लिए तत्पर रहूँगा।

१२. अपने मन-हृदय को भगवन्नाम में और अपने हाथ-पग को भगवत्कार्य में स्थायी रूप से जोड़कर सच्चा भगवत्परायण बन जाऊँगा।

१३. मैं माता-पिता की ममता और समाज की सुव्यवस्था के कारण ही लाचार बालक से हटकर आज की स्थिति में पहुँच पाया हूँ। इस तथ्य को सदा याद रखकर दोनों का ऋण चुकाने के लिए सदा कार्य करता रहूँगा।

१४. मैं जीवन के किसी भी क्षेत्र में निष्णात् होने के पहले अच्छा मनुष्य बनने की पूरी सावधानी रखूँगा। अपने अगल-बगल वालों की तथा सम्पर्क में आने वाले सभी की सेवा करता रहूँगा।

१५. प्रभु द्वारा दी गई परिस्थिति को उनका प्रसाद मानकर प्रेम से स्वीकार करूँगा।

१६. समाज में सद्भाव और समर्पण भाव के प्रसार के लिए रोज-सप्ताह में-महीने में.....घण्टे सेवा करूँगा।

१७. अपने अगल-बगल में मानव-शिशुओं की सेवा के लिए अपनी आमदनी का...-वाँ भाग अपने आप खर्च करता रहूँगा।
१८. खराब फैशन और दुर्व्यसन से दूर रहकर सादा जीवन गुजारूँगा।
१९. जीवन के व्यवसाय-क्षेत्र में भी सबके साथ ईमानदारी का परिचय दूँगा।
२०. मैं नौकरी में काम-चोरी नहीं करूँगा और न किसी के कागजात व्यर्थ की लिखा-पढ़ी में फँसाऊँगा।
२१. उचित लाभ, पूरी तौल और पक्का माप मेरे व्यापार का ध्येय होगा।
२२. मैं कभी किसी से रिश्वत नहीं माँगूँगा और न किसी को रिश्वत दूँगा।
२३. किसी भी स्थिति में जान-बूझकर चोर-बाजारी का माल उपयोग में नहीं लूँगा।
२४. कभी काला बाजारी या संग्रहखोरी नहीं करूँगा।
२५. जुआ, लॉटरी, सट्टा, वरली-मटका, फीचर इत्यादि दूषणों से सदैव दूर रहूँगा। अपने पसीने की कमाई से स्वावलम्बी जीवन बिताऊँगा।
२६. कुटुम्बी जीवन में आने वाले जन्म, विवाह या मृत्यु के अवसर को बड़ी दावतों और खराब दिखावे से दूर रहकर सच्ची भावना का निर्वाह करते हुए सादगी से मनाऊँगा।
२७. जवानी में रक्त-दान और मृत्यु के बाद चक्षु-दान तथा देहदान करने की सावधानी रखूँगा।
२८. अधिक वृक्ष रोप जाएँ, कम वृक्ष काटे जाएँ और पौधा तैयार करने वाले केन्द्रों की स्थापना की जाए एवं विद्यार्थीवन, ग्रामवन, श्मशानवन लगाए जाएँ, ऐसा परिश्रम करूँगा।
२९. कुटुम्बी जीवन के संस्कार के लिए प्रतिदिन सायंकाल सबके साथ बैठकर पुस्तकाध्ययन, समूह-प्रार्थना और संकीर्तन करूँगा।
३०. रोज 'हरे कृष्ण-हरे राम' महामंत्र की माला का जप करूँगा।

उपर्युक्त बातों तथा जीवन को भगवत्परायण बनाने के लिए उपयोगी हर कोई संकल्प यदि आप भागवत-परायण की पूर्णाहुति के लिए सद्विचार परिवार समर्पण विद्यापीठ, दरियापुर टावर के सामने, अहमदाबाद के पते पर नीचे लिखे विवरण के साथ लिख भेजें, तो कृतज्ञ होऊँगा।

१. ऊपर बताए गए संकल्पों में से किन-किन संकल्पों को आपने ग्रहण किया, उसका उल्लेख।
२. यदि इसके अतिरिक्त कुछ अधिक संकल्प किए हों, तो उसका उल्लेख।
३. नाम, पता उम्र, योग्यता, व्यवसाय, व्यवसाय का पता, टेलीफोन नंबर, वाहन धारणकर्ता होने आदि की जानकारी भी दें। यह भी लिखें कि क्या आप सेवा करने के लिए समय दे सकते हैं?